कंब रामायण

[महाकवि कंबन-रचित मूल तमिल से अनूदित]

[भाग १]

अनुवादक

श्री न० वी० राजगोपालन



बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना

कंब रामायण

[महाकवि कंबन-रचित मूल तमिल से अनूदित]

[भाग १]

अनुवादक

श्री न० वी० राजगोपालन

संपादक

श्रीअवधनन्दन

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना

प्रकाशक
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

प्रथम संस्करण
विक्रमाब्द २०१९; शकाब्द १८८४; खृष्टाब्द १९६२
मूल्य : ९. ७५ न० पै०

मुद्रक
गया प्रिन्टर्स
पुरानी गोदाम, गया

वक्तव्य

सम्पूर्ण भारतीय राष्ट्र की एकात्म भावना और अखण्ड संस्कृति के निर्माण का सारा श्रेय संस्कृत-भाषा को है, जिसने कैलास से रामेश्वरम् तथा पश्चिम समुद्र से पूर्व सागर तक के जनमानस को एक साँचे में ढाल दिया था। आज उसी संस्कृत की तरह राष्ट्र को एक सूत्र में गूँथे रखने की शक्ति यदि किसी भाषा में है, तो वह राष्ट्रभाषा हिन्दी है। राष्ट्रभाषा देश की आत्मा होती है, जिसे राष्ट्र-रूपी शरीर की सभी धमनियों से रक्त-प्राप्ति आवश्यक है। दूसरी बात कि अब हिन्दी को स्वयं इस प्रकार समर्थ होना है, जिसके माध्यम से चाहे तो कोई भी समस्त भारतीय साहित्य और संस्कृति को समझ ले। इन्हीं दृष्टिकोणों के अनुसार बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् ने ग्रन्थ-प्रकाशन का श्रीगणेश किया था और निश्चय किया था कि दक्षिण के चारों भाषाओं (तेलुगु, तमिल, कन्नड और मलयालम) की रामायणों के हिन्दी-अनुवाद यहाँ से प्रकाशित किये जायँ। आज हमें प्रसन्नता है कि परिषद् ने तेलुगु की 'रंगनाथ रामायण' को प्रकाशित तो किया ही, अब तमिल की 'कंब-रामायण' का भी हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित कर अपना संकल्प पूरा कर लिया।

यह 'कंब रामायण' परिषद् की अनुवाद-योजना का बारहवाँ ग्रन्थ है। परिषद् ने इसके पहले जर्मन, फ्रेंच, अँगरेजी, संस्कृत और तेलुगु-भाषाओं के ग्रन्थों के अनुवाद प्रकाशित किये थे। यह तमिल से अनूदित है, जिसका साहित्य, संस्कृत को छोड़कर, सभी जीवित भारतीय भाषाओं के साहित्य से प्राचीन है। आज भी दक्षिण की सभी भाषाओं के साहित्य से तमिल-साहित्य सुसम्पन्न और सुष्ठु माना जाता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ तमिल का महाकाव्य है, जो बारह सौ वर्ष (कुछ के मतों से आठ सौ वर्ष) पुराना है। इस महाकाव्य की रचना-शैली बाणभट्ट की 'कादम्बरी' की-सी है; किन्तु इसका रचना-आधार वाल्मीकीय रामायण है। यद्यपि 'कंब-रामायण' वाल्मीकीय रामायण का अनुगामी है, तथापि दाक्षिणात्य संस्कृति से यह ओत-प्रोत है, जो वाल्मीकीय में दृष्टिगोचर नहीं होती। यह एक महान् आश्चर्य है कि काव्य के सौष्ठव की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ वाल्मीकीय रामायण से जरा भी घटकर नहीं है। हमारे ऐसे कथन की यथार्थता प्रबुद्ध पाठक स्वयं इसमें आँकेंगे। किन्तु, आश्चर्य की बात यह है कि ऐसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का अनुवाद आजतक दुनिया के किसी भी भाषा में नहीं छपा था, यहाँतक कि अँगरेजी-भाषा में भी नहीं। हिन्दी में इसका अनुवाद कराकर सर्वप्रथम प्रकाशित करने का सौभाग्य परिषद् को ही है।

परिषद् ने जब 'कंब रामायण' के अनुवाद कराने का निश्चय किया, तब एक जटिल समस्या सामने आई कि अनुवाद किससे कराया जाय ? क्योंकि दक्षिण की भाषाओं में भी दुरूह तमिल-भाषा है और उसके काव्यों में भी अत्युच्च महाकाव्य 'कंब रामायण' है, जिसका सजीव हिन्दी-अनुवाद केवल तमिल और हिन्दी जाननेवाला नहीं कर सकता था। इसके लिए उक्त दोनों भाषाओं के साहित्य - मर्मज्ञ के साथ-साथ संस्कृत-साहित्य के

तत्त्वदर्शी विद्वान् की आवश्यकता थी। किन्तु, इन सारे गुणों के रहते भी यदि वह व्यक्ति लेखन-कला में दक्ष न हुआ, तो भी समस्या उलझी ही रह जाने का भय था। किन्तु, ऐसे उपयुक्त अनुवादक को ढूँढ़ निकालने का सारा श्रेय श्रीअवधनन्दनजी को है। ये बिहार-प्रदेश के ही निवासी हैं, पर उस समय ये दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभा (मद्रास) के माध्यम से तमिलभाषी क्षेत्र में हिन्दी-प्रचार का काम कर रहे थे। परिषद् के अनुरोध पर इन्होंने तेलगु और तमिल—दोनों की रामायणों के अनुवाद करा देने का जिम्मा लिया और तदनुसार तमिल-रामायण के अनुवाद का काम श्री न० वी० राजगोपालन जैसे योग्य व्यक्ति को सौंपकर इसके सम्पादन का भार स्वयं सँभाला। श्रीअवधनन्दनजी के ऐसे सहयोग के लिए परिषद् सदा इनका आभारी है।

श्री न० वी० राजगोपालन तमिलनाड के तिरुचिरापल्ली जिले के निवासी हैं। आपने तिरुपति के श्रीवेंकटेश्वर प्राच्यकला-शाला-जैसी संस्था में संस्कृत-साहित्य के माध्यम से व्याकरण, न्याय और मीमांसा-शास्त्र का अध्ययन किया है। आपने कांचीपुरी में परमहंस-परिव्राजक श्रीरंग रामानुज महादेशिक और उ० वीर राघवाचार्य-सदृश महाविद्वानों से वेदान्त-दर्शन का भी अध्ययन किया। आपने फिर काशी-विश्वविद्यालय से हिन्दी में तथा मद्रास-विश्वविद्यालय से तमिल में एम्० ए० की उच्च उपाधि प्राप्त की। आप तमिल, तेलुगु, संस्कृत, अँगरेजी, हिन्दी और खूबी यह कि उर्दू के भी सुलेखक हैं। आजकल आप केन्द्रीय हिन्दी-शिक्षक-महाविद्यालय, आगरा में प्राध्यापक हैं। इसके पहले आप प्रेसीडेंसी कॉलेज (मद्रास) और दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभा (मद्रास) में भी अध्यापन का कार्य कर चुके हैं।

कंब रामायण दस हजार श्लोकों का एक बृहत्काय महाकाव्य है, जो छह काण्डों में विभक्त है। अतः, इसका प्रकाशन हम दो भागों में कर रहे हैं, जिससे ग्रन्थ का आकार-प्रकार सुहावना बना रहे। यह पहला भाग बालकांड से किष्किन्धाकांड तक है। दूसरे भाग में केवल दो काण्ड होंगे—सुन्दरकाण्ड और युद्धकाण्ड। किन्तु, दोनों भागों के आकार प्रायः समान होंगे; क्योंकि केवल युद्धकाण्ड ही लगभग तीन काण्डों के बराबर है। आज हिन्दी-जगत् के समक्ष 'कंब रामायण' के इस पहले भाग को प्रस्तुत करते हुए हमें पूरा संतोष है और विश्वास है कि हिन्दी के प्रकाशनों में यह चार चाँद लगायेगा। आप इसमें महाकवि कम्बन की कवित्व-शक्ति की पराकाष्ठा का दर्शन कर अपने को निश्चय ही कृतार्थ मानेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है। परिषद् का यह प्रकाशन उत्तर और दक्षिण में 'नये सेतु' का निर्माण करेगा और हमारे राष्ट्र की चिर एकात्मनिष्ठा को अधिकाधिक सुदृढ करेगा।

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पौष, कृष्णा एकादशी, २०१६ वि०

भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'
संचालक

प्रस्तावना

बहुत दिनों से मेरे मन में यह अभिलाषा थी कि तमिल-साहित्य के कुछ प्राचीन ग्रन्थों का हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित किया जाय, जिससे हिन्दीभाषा-भाषी जनता को तमिल-भाषा के प्राचीन साहित्य का रसास्वादन करने तथा वहाँ की समृद्ध संस्कृति एवं विचार-धारा को समझने का अवसर मिले। किन्तु, किसी योग्य प्रकाशक के अभाव में यह कार्य संभव नहीं था। सन् १९५५ ई० में मेरी भेंट आदरणीय श्रीशिवपूजन सहायजी से हुई। उस समय वे बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के संचालक थे। जब मैंने उनसे इस विषय की चर्चा की, तब वे बहुत प्रसन्न हुए और परिषद् की ओर से ऐसे ग्रन्थों को प्रकाशित करने का आश्वासन भी किया। उसी वर्ष २७ जुलाई को उनका एक पत्र मिला, जिसमें लिखा था कि राष्ट्रभाषा-परिषद् ने दक्षिण भारत की चारों भाषाओं में प्रचलित रामायणों का हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित करने का निश्चय किया है। योग्य अनुवादक चुनने तथा अनुवाद के संशोधन आदि का भार उन्होंने मुझे सौंपा था। मैं उस समय दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभा की तमिलनाड-शाखा के मंत्री की हैसियत से कार्य कर रहा था और तिरुच्चिरापल्ली में रहता था। सहायजी का पत्र पाकर मैं उत्साह से भर गया और योग्य अनुवादकों की तलाश करने लगा।

दक्षिण में चार प्रधान भाषाएँ बोली जाती हैं, जिनका अपना-अपना साहित्य है। वे हैं—तमिल, तेलुगु, कन्नड और मलयालम। तमिल मद्रास-राज्य में, मद्रास नगर तथा उसके दक्षिण में कन्याकुमारी तक बोली जाती है। तेलगु आंध्रदेश की भाषा है और मद्रास के उत्तर में विजगापट्टम् तक तथा हैदराबाद में बोली जाती है। कन्नड मैसूर-राज्य की भाषा है और मद्रास-राज्य के पश्चिम में अरब समुद्र के तट तक बोली जाती है। मलयालम केरल-प्रान्त की भाषा है और दक्षिण में तिरुवनन्तपुरम् (त्रिवेन्द्रम्) से अरब सागर के किनारे-किनारे कासरगोड तक बोली जाती है। ये चारों भाषाएँ द्रविड़-परिवार की हैं और आर्य-परिवार की भाषाओं से बहुत भिन्न हैं। तमिल को छोड़कर शेष तीन भाषाओं पर संस्कृत का बहुत प्रभाव पड़ा है और उन्होंने संस्कृत से बहुत-से शब्द ग्रहण किये हैं। इन चारों भाषाओं में तमिल सबसे प्राचीन है और उसका प्राचीन साहित्य सबसे अधिक समृद्ध है।

उपर्युक्त चारों प्रान्तों में रामकथा का प्रचार है और चारों भाषाओं में रामायण की रचना हुई है। किन्तु, मलयालम रामायण एक आधुनिक रचना है और वाल्मीकि रामायण का छायानुवाद-मात्र है। मलयालम रामायण रामानुजन् एषुत्तच्चन् नामक किसी कवि की रचना है, जो ईसवी-सन् १६वीं और १७वीं शती के मध्य वर्त्तमान थे। उन्होंने अपनी रामायण अध्यात्मरामायण के आधार पर लिखी है, जिसकी भाषा संस्कृत-गर्भित है। कन्नड की सबसे प्राचीन रामायण 'पंप रामायण' के नाम से प्रसिद्ध है और 'पंप' नामक एक जैनकवि की रचना है। पंप ने रामकथा में बहुत हेर-फेर किया है और जैन दृष्टिकोण से

उसकी रचना की है, अतएव यह निश्चय हुआ कि इस समय उक्त दोनों रामायणों का अनुवाद स्थगित रखा जाय और तेलुगु से रंगनाथ रामायण तथा तमिल से कंब रामायण का अनुवाद कराया जाय। ये दोनों रामायण वाल्मीकि रामायण की कथा के आधार पर लिखे गये हैं, किन्तु दोनों की रचना में पर्याप्त मौलिकता प्रदर्शित की गई है।

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् की इसी योजना के अनुसार रंगनाथ रामायण के हिन्दी-अनुवाद का कार्य मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज के हिन्दी-अध्यापक श्री ए० सी० कामाक्षिराव, एम्० ए०, बी० ओ० एल्० को सौंपा गया। प्रसन्नता की बात है कि रंगनाथ रामायण का हिन्दी-अनुवाद परिषद् की ओर से प्रकाशित हो चुका है।

कंब रामायण तमिल-भाषा की एक अत्यन्त लोकप्रिय तथा सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है और भारतीय भाषाओं में जितनी रामायणें उपलब्ध हैं, उनमें सबसे प्राचीन है। जनश्रुति के अनुसार कंबन का जन्म ईसा की नवीं शताब्दी (कुछ लोग उनका जन्म बारहवीं शताब्दी में मानते हैं) में हुआ था। उनकी भाषा अत्यन्त प्रवाहपूर्ण, ओजस्विनी तथा आलंकारिक है। वह तमिल की प्राचीन शैली का एक बहुत सुन्दर नमूना है। कवि ने अपनी रचना में संस्कृत तथा तमिल-अलंकारों और मुहावरों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। अतः, उसके अनुवाद के लिए एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी, जो संस्कृत, तमिल और हिन्दी तीनों भाषाओं का अच्छा ज्ञान रखता हो तथा जो वैष्णव-संप्रदाय की विचारधारा से भी परिचित हो। सौभाग्य से इस कार्य के लिए हमें श्री न० वी० राजगोपालनजी मिल गये, जो संस्कृत में मद्रास-विश्वविद्यालय के शिरोमणि परीक्षोत्तीर्ण हैं, हिन्दी में 'प्रवीण' हैं तथा तमिल का भी अच्छा ज्ञान रखते हैं। अभी हाल में उन्होंने तमिल में भी एम्० ए० की परीक्षा पास कर ली है। उनके अथक परिश्रम का ही यह फल है कि कंब रामायण का हिन्दी-अनुवाद हिन्दीभाषी जनता के संमुख उपस्थित किया जा रहा है।

एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद का कार्य साधारणतः कठिन होता है और किसी काव्य का अनुवाद करने में तो यह कठिनाई और भी बढ़ जाती है। कंबन की भाषा नवीं शती की है और प्राचीन तमिल शैली की है, जिसे 'शेन् तमिल' कहते हैं। अनुवादक का लक्ष्य यह था कि जहाँतक हो सके, मूल का सौन्दर्य नष्ट न होने पाये और कंबन की वर्णन-शैली में फर्क न पड़े। स्वतंत्र अनुवाद करने से मूल की विशेषता नष्ट हो जाने का भय था। इसी कारण अनेक स्थानों में अनुवाद की भाषा उलझी हुई और अस्वाभाविक दिखाई देगी। पाठक इसके लिए क्षमा करेंगे।

अबतक संपूर्ण कंब रामायण का अनुवाद किसी भी भाषा में नहीं हुआ है। यह प्रसन्नता का विषय है कि ऐसे आदरणीय ग्रन्थ का अनुवाद प्रकाशित करने का सर्व-प्रथम गौरव राष्ट्रभाषा हिन्दी को प्राप्त हो रहा है। बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद भी बधाई का पात्र है, जिसने सर्वप्रथम इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के प्रकाशन का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेकर उसे सफलतापूर्वक संपन्न किया है।

अवधनन्दन

भूमिका

तमिल-साहित्य ३००० वर्ष पुराना माना जाता है। ईसा-पूर्व चौथी शती तक उसमें काव्य, नाटक तथा गीति-साहित्य का विस्तृत प्रणयन हो चुका था। इस भाषा का सर्वप्रथम व्याकरण, जो 'तोलकाप्पियम्' के नाम है प्रसिद्ध है, ईसवी-सन् पूर्व तीसरी शती में लिखा गया था। यह एक बृहदाकार लक्षण-ग्रन्थ है और अब उपलब्ध तमिल-ग्रन्थों में सबसे प्राचीन है। इस ग्रन्थ में तमिल-भाषा के व्याकरण के अतिरिक्त काव्य-पद्धतियों, छंद, अलंकार एवं काव्य में वर्ण्य विषय-वस्तु (जिसे तमिल में 'पोरुल्' कहते हैं) का विशद विवेचन है। तमिल-व्याकरण में 'पोरुल्' के दो विभाग किये गये हैं—'अहम्' और 'पुरम्'। अहम् में शृंगार-रस का पोषण होता है, और 'पुरम्' में शृंगारेतर रसों का पोषण होता है, विशेष कर वीर रस का। अहम् और पुरम् मनुष्य के जीवन के अंतरंग एवं बहिरंग पक्ष के प्रतिपादक हैं। यह विभाजन तमिल-काव्यशास्त्र की विलक्षणता है, जो अन्य किसी भाषा के साहित्य में प्राप्त नहीं होता।

तमिल-साहित्य का आदिकाल 'संघम् काल' के नाम से प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि साहित्य की अभिवृद्धि के लिए मदुरा के पांडिय राजाओं ने, एक के पश्चात् एक, तीन 'संघम्' स्थापित किये थे। अपने समय के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् एवं कवि इस संघम् के सदस्य होते थे। संघम् का कार्य कवियों की रचनाओं की समीक्षा करके उनपर प्रामाणिकता एवं श्रेष्ठता की मुहर लगाना होता था। संघम् द्वारा स्वीकृत रचनाओं को ही लोक में प्रतिष्ठा मिलती थी। यह विश्वास प्रचलित है कि इन तीनों संघमों में कुल ६५७ कवि-सदस्य बने थे और हजारों वर्ष तक इन संघमों ने कार्य किया था। इस काल के कुछ कवियों की रचनाएँ पृथक्-पृथक् पुस्तकों में संगृहीत हैं।

ईसवी-सन् पूर्व तीसरी शती से ईसा की छठीं शताब्दी तक तमिल-देश में जैन तथा बौद्ध धर्मों का विस्तार रहा। जैन तथा बौद्ध कवियों ने अनेक सुन्दर ग्रन्थ लिखे और उनके द्वारा अपने धर्म का प्रचार तथा तमिल-भाषा की सेवा की। ईसा की दूसरी और तीसरी शताब्दियों में तमिल में पाँच महाकाव्य रचे गये, जिनके नाम हैं—१ शिलप्प-धिकारम्, २ मणिमेखलै, ३ जीवकचिन्तामणि, ४ वलयापति तथा ५ कुंडलकेशी। इनमें से प्रथम दो बौद्ध कवियों की रचनाएँ हैं और तमिल की विशिष्ट कला के परिचायक हैं। 'जीवकचिन्तामणि' किसी जैनकवि की रचना है। इसका छंद संस्कृत के वर्णवृत्तों पर आधृत है और अलंकार भी संस्कृत-साहित्यशास्त्र के अनुकूल बने हैं। अपने काव्य-सौन्दर्य के कारण यह ग्रन्थ अपने समय में बहुत लोकप्रिय बना था। 'कुंडलकेशी' और 'वलयापति'— ये दोनों काव्य अब अनुपलब्ध हैं।

ईसा की छठीं शती से तमिल-देश में भक्ति का आन्दोलन जोर पकड़ने लगा और बौद्ध तथा जैनधर्मों का प्रभाव कम होने लगा। छठीं तथा तेरहवीं शतियों के मध्य तमिलनाड में अनेक वैष्णव तथा शैव संत उत्पन्न हुए, जिन्होंने अत्यन्त सुन्दर काव्य-रचना

के साथ-साथ विष्णु तथा शिव-भक्ति की पीयूष-धारा बहाई, जिसने दक्षिण भारत-मात्र को ही नहीं, वरन् सारे भारतवर्ष को प्रभावित किया और हिन्दू-जनता को मुक्ति का एक नवीन मार्ग दिखलाया। पीछे चलकर इन धाराओं ने हिन्दी-जगत् एवं हिन्दी-साहित्य को भी आप्लावित कर दिया।

वैष्णवधर्म के अनुयायी बारह संत हुए, जिन्हें 'आलवार' कहते हैं। आलवार शब्द, का अर्थ होता है 'ज्ञानी'। उन्होंने भगवान् विष्णु को परम तत्त्व मानकर उनकी उपासना की और उनकी प्रशंसा में सहस्रों सुन्दर तथा मधुर गीत गाये। इन गीतों की संख्या चार हजार है, जो तमिल में 'नालायिरप्रबंधम्' या 'दिव्यप्रबंधम्' के नाम से प्रसिद्ध हैं। श्रीमद्रामानुजाचार्य इन्हीं आलवारों द्वारा प्रतिपादित वैष्णव धर्म के अनुयायी थे।

जिस समय वैष्णव संत भगवान् विष्णु को अपना आराध्य देव मानकर उनकी भक्ति का प्रचार कर रहे थे, प्रायः उसी समय शैव संत भगवान् शिव के गुणानुवाद में अपनी अमृतमय वाणी को सफल बना रहे थे। इस मत में ६३ संत हुए, जिन्हें 'नायनमार' कहते हैं। इन्होंने भगवान् शिव की प्रशंसा में हजारों ललित एवं गेय पद रचे, जो आज भी शिवभक्तों की अमूल्य निधि हैं। इनके द्वारा विरचित विपुल साहित्य बारह खंडों में विभाजित है।

कंबन का स्थान तमिल-साहित्य में अत्यन्त श्रेष्ठ है और वे कविचक्रवर्ती के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनकी रचना 'रामायण', जो 'कंब रामायण' के नाम से प्रसिद्ध है, १० हजार से अधिक पद्यों का एक विशाल ग्रन्थ है।

कंबन का समय निश्चित नहीं है। कुछ विद्वान् उन्हें ईसवी नवीं शताब्दी का मानते हैं, किन्तु अधिक प्रामाणिक समय बारहवीं शताब्दी है।[1] इस समय तक बारह आलवार हो चुके थे और यामुन, रामानुज आदि आचार्यों की परम्परा भी चल पड़ी थी। इन आचार्यों ने भक्ति एवं प्रपत्ति का शास्त्रीय विवेचन किया। कंबन वैष्णव थे, प्रमुख आलवार 'नम्मालवार' की उन्होंने प्रस्तुति की है और उनके काव्य में यत्र-तत्र इन आलवार की श्रीसूक्तियों की छाया दृष्टिगत होती है, तो भी कंबन ने अपने काव्य को केवल सांप्रदायिक नहीं बनाया है। प्रो० टी० पी० मीनाक्षिसुन्दरम् के अनुसार कंब रामायण केवल वैष्णव सम्प्रदाय का ग्रन्थ नहीं है। ग्रन्थारम्भ में तथा प्रत्येक कांड के आदि में मंगलाचरण के जो पद्य हैं, उनसे यह तथ्य प्रकट होता है। कवि ने परमात्मा का वर्णन शिव और विष्णु के रूप से भी अतीत, केवल सृष्टिकर्त्ता के रूप में किया है। किन्तु, रामचन्द्र को उस परमात्मा का अवतार ही माना है।

इसका परिणाम यह हुआ कि शैवों और वैष्णवों के मध्य 'कंब रामायण' का आदर हुआ और इन दोनों सम्प्रदायों में जो वैमनस्य था, उसके दूर होने में सहायता मिली।

कंबन का जन्मवृत्त कुछ निश्चित ज्ञात नहीं हुआ है। उनके संबंध में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं, जिनकी प्रामाणिकता संदेहास्पद है। कवि ने कहीं भी अपना

---

१. प्रो० टी० पी० मीनाक्षिसुन्दरम्—(तमिल-विभागाध्यक्ष, अन्नामलै-विश्वविद्यालय) इसी को प्रामाणिक मानते हैं।—अनु०

परिचय नहीं दिया है, किन्तु उन्होंने अपनी रामायण में तिरुवेण्णेयनल्लूर नामक ग्राम के 'शडयप्पवल्लर' नामक एक दानी और यशस्वी व्यक्ति का उल्लेख कई स्थानों पर किया है। अनुमान किया जाता है कि इसी उदार व्यक्ति ने महाकवि कंबन को आश्रय दिया था, जिसकी कृतज्ञता में महाकवि ने अपने काव्य में उस व्यक्ति का स्मरण किया है। यह ज्ञात होता है कि कंबन चोल और चेर राजाओं के दरबार में गये थे, लेकिन अपनी महान् कृति को किसी राजा को अर्पित नहीं किया।

कंबन की रामायण तमिल-साहित्य की सर्वोत्कृष्ट कृति एवं एक बृहद् ग्रन्थ है।[1] तमिल, हिन्दी, अँगरेजी आदि के साहित्यों के बड़े विद्वान् श्री वी० वी० एस० अय्यर ने लिखा है कि 'यह (कंब रामायण) विश्व-साहित्य में उत्तम कृति है, 'इलियड' और 'पैरेडाइस लास्ट' और महाभारत से ही नहीं, वरन् मूलकाव्य वाल्मीकि रामायण की तुलना में भी यह अधिक सुन्दर है। यह केवल आदरातिरेक से कही हुई उक्ति नहीं है, वरन् अनेक वर्षों तक किये गये गहन अध्ययन से धीरे-धीरे पुष्ट हुआ विचार है।'[2]

कंब रामायण वाल्मीकि रामायण का अनुवाद-मात्र नहीं है, उसका छायानुवाद कहना भी संगत नहीं है। कथानक-मात्र मूल से लिया गया है, लेकिन घटनाओं में सैकड़ों परिवर्त्तन किये गये हैं। प्रत्येक घटना के चित्रण में, परिस्थितियों को उपस्थित करने में, पात्रों के सम्भाषण में, प्राकृतिक दृश्यों के उपस्थापन में एवं पात्रों की मनोभावनाओं की अभिव्यक्ति में कंबन ने पर्याप्त मौलिकता दिखलाई है। तमिल-भाषा की अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी कंबन ने मौलिकता प्रदर्शित की है। छंदोविधान में, अलंकारों के प्रयोग में तथा शब्द-गुम्फन में अपूर्व सौंदर्य प्रकट किया है। सीता-राम-विवाह, शूर्पणखा-प्रसंग, वालिवध, हनुमान् के द्वारा सीता-संदर्शन, इन्द्रजित् का वध, राम-रावण-युद्ध इत्यादि प्रसंगों में प्रत्येक अपनी विशिष्ट सुन्दरता के कारण अत्यन्त आकर्षक हुआ है। प्रत्येक प्रसंग अपने में संपूर्ण-सा लगता है, प्रत्येक में काफी नाटकीयता है, प्रत्येक घटना का आरम्भ, विकास और परिसमाप्ति एक निश्चित क्रम से विकसित होते हैं। यह शिल्प-विधान कंबन के काव्य की एक विशिष्टता है।

राम के चरित्र को कंबन ने जिस ढंग से चित्रित किया है, वह विशेष अध्ययन का विषय है। वाल्मीकि के सम्मुख यह प्रश्न था कि लोकोत्तर आदर्श पुरुष कौन है? उन्हें 'पुरुषोत्तम' की खोज थी। नारद तथा ब्रह्मा से उन्हें ऐसे पुरुषोत्तम का परिचय प्राप्त हुआ। रामचरित का गान करके वाल्मीकि ने संसार के सम्मुख 'पुरुष पुरातन' की ही नहीं, अपितु एक 'महामानव' का चित्र उपस्थित किया था। कंबन के युग तक आते-आते वही आदर्श महामानव परमात्मा के अवतार के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका था। यह विश्वास दृढ हो गया था कि केवल राम-नाम का जप-मात्र अपवर्गप्रद हो सकता है। वैष्णव भक्ति का ज्यों-ज्यों प्रचार समाज में बढ़ा, त्यों-त्यों राम के प्रति आस्था अधिकाधिक बद्धमूल होती गई।

---

१. डॉ० आर० पी० सेतुपिल्लै, (तमिल-विभागाध्यक्ष, मद्रास-विश्वविद्यालय) का अँगरेजी लेख 'तमिल लिटरेचर'।

२. श्री वी० वी० एस० अय्यर : 'कंब रामायणम्—ए स्टडी'।

कंबन ने समयुगीन भावनाओं को भली भाँति पहचाना था। जनता की भक्तिपूर्ण भावना के कारण राम के चरित्र में जो महत्ता और परम-परिपूर्णत्व उत्पन्न हो गये थे उन्हें इस कुशल कवि ने अपने काव्य के द्वारा परिपुष्ट कर दिया। यह कोई साधारण कार्य नहीं था। केवल यह कहते रहने से कि राम परमात्मा हैं या स्थान-स्थान पर दैवी विशेषणों को जोड़ते रहने से यह ज्ञान हो सकता है कि राम परमात्मा के अवतार हैं, किन्तु उससे पाठकों पर राम के चरित्र का मानवोचित प्रभाव पड़ना सम्भव नहीं है। रस-पोषण के मार्ग में इस प्रकार की पुनरुक्ति से बाधा पड़ने की सम्भावना है। राम के दैवी तत्त्व का साहित्यिक प्रभाव उत्पन्न करना, पूरे काव्य में सब प्रसंगों के मध्य उस दैवी तत्त्व का निर्वाह करना एवं साथ ही मानव-जीवन की विविध सुख-दुःखात्मक परिस्थितियों के साथ उस दैवी तत्त्व की संगति बिठाना—यह एक अनन्यसुलभ प्रतिभावान् महाकवि का ही कार्य है। कंबन ऐसे ही कवि थे। कंब रामायण का कोई भी प्रसंग इसका प्रमाण हो सकता है।

कंबन ने बालकांड से युद्धकांड तक छह कांडों की रचना की। पौराणिकों के कारण अनेक प्रक्षेप भी इसमें जुड़ गये हैं। किन्तु, इन प्रक्षेपों को पहचानना उतना दुष्कर नहीं है; क्योंकि कंबन की भाषा और प्रतिपादन की शैली विलक्षण होती है, उनका अनुकरण नहीं हो सकता। अब उपलब्ध ग्रन्थ में १०,०५० पद्य हैं। एक उत्तरकांड प्राप्त हुआ है, जो कंबन के समकालिक एक अन्य महाकवि 'ओट्टक्कूत्तन' - विरचित माना जाता है।

तमिलनाड में ही नहीं, उसके बाहर भी धीरे-धीरे इस रामायण का प्रचार हुआ। तंजाउर जिले में स्थित तिरुप्पणान्दाल मठ की एक शाखा काशी में है। उस मठ में आज से तीन-साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व कुमरगुरुपर नामक एक तमिल संत रहते थे, जो तुलसीदासजी के समकालीन थे। वे नित्य प्रति संध्या के समय गंगा-तट पर कंब रामायण की व्याख्या हिन्दी में सुनाया करते थे। गोस्वामी तुलसीदासजी उन्हीं दिनों काशी में रामचरित-मानस की रचना कर रहे थे। दक्षिण के लोगों में यह विश्वास प्रचलित है कि तुलसीदासजी ने मानस लिखने में अनेक स्थलों पर कंब रामायण से प्रेरणा प्राप्त की थी। इस कथन की प्रामाणिकता निर्विवाद नहीं है। किन्तु, इतना तो सत्य है कि तुलसी और कंबन की कृतियों में कई घटनाओं में आश्चर्यजनक समानता दिखाई पड़ती है।[१]

अनुवाद का काम अनेक कारणों से कठिन होता है। पद्यकाव्य का अनुवाद और भी बहुत श्रमसाध्य है। कंबन की कृति बारहवीं शताब्दी की तमिल-शैली में लिखी गई है, उसका आधुनिक हिन्दी में यह अनुवाद लगभग पाँच वर्ष के अध्यवसाय से सम्पन्न हो सका है। मूल की अभिव्यक्तिगत सौंदर्य को भाषांतर में उसी रूप में प्रस्तुत करना असम्भव है। कंबन के भावगत सौंदर्य की किंचित् झलक-मात्र संभव हो सकी है। तमिल-भाषा की एक विशेषता यह है कि उसमें मिश्रवाक्य की रचना नहीं होती। सभी सरल

१. डॉ० एस्० शंकरराजुनायुडु (हिन्दी-विभागाध्यक्ष, मद्रास-विश्वविद्यालय) का प्रबन्ध 'कंबन और तुलसी' पृ० १०७-१०६।

वाक्य होते हैं। पूर्वकालिक कृदन्तों के सहारे लम्बे-से-लम्बे वाक्य लिखे जा सकते हैं। हिन्दी में ऐसा संभव नहीं है। हिन्दी में कृदन्त-विशेषण के द्वारा भूत और भविष्य काल को स्पष्ट नहीं किया जा सकता। इस कारण कंबन के कुछ लम्बे वर्णनों का अनुवाद यथामूल प्रस्तुत करने में बड़ी कठिनाई का अनुभव हुआ।

मूल में अनेक वृक्षों, लताओं, पशुओं, पक्षियों और विविध वस्तुओं का उल्लेख आया है। कहीं-कहीं मछलियों की अनेक जातियों और स्वभाव का वर्णन आया है। युद्ध-वर्णन में अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों तथा विविध व्यापारों का वर्णन हुआ है। इन सबका हिन्दी-अनुवाद यथामूल उपस्थित करने की भरपूर चेष्टा की गई है, फिर भी हिन्दी में उपयुक्त शब्दों के न मिलने के कारण कहीं कुछ नये शब्द गढ़ने पड़े हैं, कहीं तमिल का ही नाम देना पड़ा है।

यदि इस अनुवाद से मूल के सौंदर्य की थोड़ी-सी झलक भी पाठक पा सकेंगे, तो यह लेखक अपने को कृतार्थ समझेगा।

इस अनुवाद-कार्य में कई विद्वानों के परामर्श मुझे प्राप्त हुए हैं। पं० अवध-नन्दन ने पूरी पांडुलिपि को देखकर उसका संपादन किया और कई सुझाव देने की कृपा की। वै० मु० गोपालकृष्णमाचार्य की कंब रामायण-व्याख्या बहुत उपकारक रही। समय-समय पर अनेक तमिल तथा हिन्दी-विद्वानों ने मुझे इस कार्य में मार्गदर्शन प्रदान किया है। इन सबके प्रति मैं हृदय से धन्यवाद समर्पित करता हूँ।

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् ने इस अनुवाद को प्रकाशित करने का भार अपने ऊपर लिया है। इससे न केवल राष्ट्रभाषा हिन्दी की, अपितु तमिल-भाषा की भी सेवा हो रही है। परिषद् को मेरे धन्यवाद हैं।

न० वी० राजगोपालन

विषय-सूची

कंब रामायण

बालकांड

मंगलाचरण

काव्य-पीठिका

हम उस भगवान् की ही शरण में हैं, जो समस्त लोकों का सर्जन, उनकी रक्षा और उनका विनाश—ये तीनों क्रीडाएँ निरंतर करता रहता है।

बड़े-बड़े आत्मज्ञानी भी उस परमात्मा के पूर्ण स्वरूप को नहीं जान सकते; उस परमात्मा (के तत्त्व) को समझाना मेरे जैसे (मंदबुद्धि) व्यक्ति के लिए असंभव है; फिर भी शास्त्रों में प्रतिपादित त्रिगुणों (सत्त्व, रज और तम) में—जिनका प्रतिरूप बनकर वह परमात्मा त्रिमूर्त्ति के रूप में प्रकट हुआ, उनमें से प्रथम गुण के स्वरूप (विष्णु) भगवान् के कल्याणकारक गुणों के सागर में गोते लगाना तो उत्तम ही है।

जिन ज्ञानियों ने आरंभ तथा समाप्ति में 'हरिः ॐ' कहकर नित्य और अनन्त वेदों को अधिगत (प्राप्त) कर लिया है और जो अपने परिपक्व ज्ञान के कारण संसार-त्यागी बन चुके हैं, वे महानुभाव उस (विष्णु) भगवान् के उन चरणों को, जो सन्मार्ग पर चलनेवाले भक्तों के उद्धारक हैं, छोड़कर अन्य किसी से प्रेम नहीं करते।

अकलंक विजयश्री से विभूषित (श्रीरामचन्द्र) के गुणों का वर्णन करने की अभिलाषा मैं कर रहा हूँ; यह ऐसा ही है, जैसा कि कोई बिल्ली, घोर गर्जन करनेवाले ऊँची तरंगों से भरे क्षीरसागर के निकट पहुँचकर उसके समस्त क्षीर को पी जाने की अभिलाषा करे।

अभिशाप[1] की वाणी से (उस दिन) सप्त तालवृक्षों को एक साथ भेदन कर देनेवाले (श्रीराम) की महान् गाथा आविर्भूत हो गई थी; उस गाथा को मधुर काव्य के रूप में कहनेवाले (वाल्मीकि) की वाणी जिस देश में सुस्थिर हो चुकी है, वहीं मैं भी अपने (अर्थगांभीर्य-हीन) सरल तथा दुर्बल शब्दों में दूसरा काव्य रचना चाहता हूँ—यह भी कैसा (बुद्धिहीन) प्रयास है!

---

१. क्रौंच को मारनेवाले व्याध के प्रति वाल्मीकि के मुँह से जो अभिशाप-वचन निकल पड़ा था, वही रामायण का प्रथम मंगलाचरण भी हुआ।

(मेरी इस मूर्खता पर) संसार मेरा उपहास करेगा और इससे मेरा अपयश होगा, फिर भी मैं रामचरित का गान करने लगा हूँ ; इसका प्रयोजन यही है कि सत्यज्ञान तथा अलौकिक प्रतिभा से संपन्न (वाल्मीकि महर्षि) के दिव्य काव्य का महत्त्व और भी अधिक प्रकट हो।

जिन (सहृदय व्यक्तियों) के कान विविध प्रकार की रसमय कविता सुनने के आदी हो चुके हैं, उन्हें मेरी कविता उसी प्रकार (कर्कश) लगेगी, जिस प्रकार 'याल्'[१] (वीणा) के मधुर स्वर को सुनते हुए मुग्ध हो खड़े रहनेवाले अशुण[२] के कानों में 'पटह' (चमड़े के ढोल) की ध्वनि लगे।

(काव्य, नाटक और संगीत-रूपी) त्रिविध तमिल-वाङ्मय का जिन्होंने भली भाँति अध्ययन किया है, उन उत्तम विद्वानों और कवियों से मैं निवेदन करना चाहता हूँ— "क्या उन्मत्तों के वचन, मंद बुद्धिवालों के वचन तथा भक्तजनों के वचन, इनकी परीक्षा करना उचित हो सकता है ?"

बालक (खेलते समय) धरती पर घरौंदे बनाते हैं, जिन में कोठरियाँ, आँगन, नृत्यशाला आदि स्थानों को कुछ टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं से दिखाने की चेष्टा करते हैं (उन्हें देखकर) क्या कुशल कारीगर (उन घरौंदों के शिल्प-शास्त्र के अनुकूल न होने से) क्षुब्ध होंगे ? किंचित् भी काव्य-ज्ञान से रहित मैं, जो यह क्षुद्र काव्य रचने लगा हूँ, इस पर क्या मर्मज्ञ विद्वान् क्रुद्ध होंगे ?

देववाणी (संस्कृत) में जिन तीन महापुरुषों[३] ने रामायण की रचना की है, उनमें प्रथम कवि वाग्मी (वाल्मीकि) महर्षि की रचना के अनुसार ही मैंने तमिल-पद्यों में यह रामायण रची है।

धर्म-रक्षा के लिए, परम पुरुष ने जो अवतार लिये थे, उनमें से रामावतार का वर्णन करनेवाला यह प्रसिद्ध काव्य 'शडैयप्प वल्लर'[४] के ग्राम 'तिरुवेण्णेय नल्लूर' में निर्मित हुआ। (१–११)



१. 'याल्' एक प्रकार की वीणा। प्राचीन तमिल-साहित्य में याल् का प्रायः उल्लेख हुआ है। यह माना जाता था कि याल् का स्वर सुनकर हिरन मंत्रमुग्ध-सा हो जाता था और उसके बाद पटह की कर्कश ध्वनि का वह सहन नहीं कर सकता था और कभी-कभी वैसी ध्वनि सुनने पर अपने प्राण भी छोड़ देता था।

२. हिरन की एक जाति।

३. संस्कृत के तीन रामायणकर्त्ता हैं—वाल्मीकि, वसिष्ठ और बोधायन। कुछ विद्वान् वसिष्ठ के स्थान पर व्यास का नाम लेते हैं, जिन्होंने 'अध्यात्मरामायण' की रचना की थी। कंब ने भी कई स्थानों में अध्यात्मरामायण का अनुसरण किया है।

४. शडैयप्प वल्लर एक धनी और उदार व्यक्ति थे। उन्होंने महाकवि कंबर को आश्रय दिया था। यद्यपि बाद को महाकवि कंबर चोलराजा के आश्रय में भी रहे थे, तथापि अपने प्रथम आश्रयदाता का ही स्मरण कृतज्ञता के साथ उन्होंने इस प्रबन्ध के आरंभ में कई स्थानों में किया है।

अध्याय १

नदी पटल

[कोशल देश का वर्णन करने के लिए प्रस्तुत होकर कवि पहले उस देश को हरा-भरा करनेवाली सरयू नदी का वर्णन कर रहा है ।]

कोशल देश में, जहाँ बड़े ही अपराधकर्मी (पुरुषों की) पंचेन्द्रिय-रूपी बाण एवं रत्नहारों से विभूषित युवतियों के कटाक्ष-रूपी बाण—ये दोनों सन्मार्ग की सीमा को लाँघकर कभी नहीं चलते, उस समस्त भूप्रदेश को सुशोभित करती हुई सरयू नदी बहती है ।

भस्मधारी (शिव) के रंगवाले मेघ ने, गगनमार्ग से चलकर, समुद्र के जल का पान किया और (जल पीकर) वक्ष पर लक्ष्मी को धारण करनेवाले विलक्षण कांतिपूर्ण विष्णु का रंग पाकर लौटा ।

मेघ उमड़कर उठा और हिमाचल के ऊपर छा गया, मानों सागर ही, यह सोचकर कि शिवजी का ससुर यह (हिमाचल) पर्वत सूर्यातप से संतप्त हो रहा है और उस ताप से उसकी रक्षा करनी चाहिए, हिमाचल पर फैल गया हो ।

मेघ ने जलधाराएँ क्या बरसाईं, एक महान् दाता के सदृश अपनी समस्त संपत्ति को ही लुटा दिया । (वह दृश्य ऐसा था कि) आकाश ने जब देखा कि यह भारी हिमाचल[1] (पर्वत) स्वर्णमय है, तो उस सोने को खोदकर निकालने के उद्देश्य से अपने चाँदी के बने हथौड़े उस पर मार रहा हो ।

वर्षा के जल की धारा बड़े वेग से धरती पर प्रवाहित हो चली और उसने सर्वत्र शीतलता उत्पन्न कर दी, मानों मनु के उपदिष्ट धर्म-मार्ग पर चलनेवाले किसी प्रजावत्सल और गौरव-संपन्न राजा की कीर्त्ति ही सर्वत्र फैल रही हो, अथवा चतुर्वेदों को पूरा अधिगत किये हुए ब्राह्मण के हाथ से प्रदत्त दान (का यश) हो ।

हिमाचल के ऊपर से वर्षा की धारा प्रबल वेग के साथ नीचे बह चली और किसी रूपाजीवा (वेश्या) नारी के समान वह (पर्वत की) शिखा, हृदय तथा पाद से संलग्न होती हुई उसकी सीमा से बाहर चली गई ; क्षण-भर के लिए वह पर्वत से लगी रही, परन्तु दूसरे ही क्षण वहाँ की सभी वस्तुओं को अपने साथ बहाकर आगे बढ़ गई ।

वर्षा का प्रवाह हिमाचल के रत्न, मोर-पंख, हाथियों के दाँत, स्वर्ण, चन्दन आदि अमूल्य पदार्थों को समेटकर ले चला, जिससे वह वाणिज्य करनेवाले व्यक्ति की समानता करने लगा ।

वह प्रवाह कभी रंग-विरंगे पुष्पों से भर जाता ; कभी मृदु मकरंद उस पर छा जाते ; कभी मधु धारा, कभी हाथियों का मदजल और कभी लोहित धातु उसमें मिले

---

१. प्राचीन तमिल-साहित्य में हिमाचल और मेरु पर्वत दोनों को कभी-कभी एक ही माना गया है, अतः यहाँ हिमाचल को (मेरु के जैसे) सोने का पहाड़ कहा गया है ।

दिखाई पड़ते। यों अपने इन विविध रंगों के कारण वह (प्रवाह) गगन पर चमकनेवाले इन्द्र-धनुष की-सी शोभा दिखाने लगा।

वह प्रवाह कभी बड़े-बड़े प्रस्तर-खंडों को लुढ़काता हुआ, कभी गगनचुम्बी वृक्षों को उखाड़ता हुआ और कभी अपने समीप-स्थित पत्र-शाखा जैसी सभी वस्तुओं को उठाये हुए चल रहा था; वह प्रवाह भी क्या था? जब श्रीरामचन्द्र समुद्र पार करके लंका में पहुँचना चाहते थे, तब (वह प्रवाह) हिल्लोलों से भरे हुए समुद्र में सेतु बाँधने का आयोजन करनेवाली वानर-सेना ही जान पड़ता था। (अर्थात्, पत्थरों तथा वृक्षों से भरा हुआ वह प्रवाह समुद्र पर पुल बाँधनेवाली वानर-सेना के सदृश दीखता था।)

उसके मीठे जल पर भौंरों और मक्खियों का झुण्ड मँड़राता हुआ दिखाई पड़ता था; वह प्रवाह किनारों को लाँघकर उद्दाम उमंग के साथ वह चला; उसका अन्तर भाग स्वच्छ नहीं था और (वह) सागुवान[1] के बड़े-बड़े वृक्षों को गिराता हुआ दौड़ा जा रहा था, जैसे कोई मद्यप डकार लेते हुए भागा जा रहा हो।

उस प्रवाह में बड़े-बड़े मृग थे, भारी मुखवाले मत्त गज थे; वह भयंकर कोलाहल करता हुआ अपने आगे-आगे ध्वजाओं के समान बहुत-सी लताओं[2] को बहाता चला जा रहा था: (इन सबसे वह प्रवाह) ऐसा लगता था, मानों समुद्र पर चढ़ाई करने के लिए कोई बड़ी सेना को साथ लिये जा रहा हो।

[वर्षा-प्रवाह का वर्णन करने के पश्चात् अब कवि सरयू नदी का विशेष वर्णन करता है।]

क्षुब्ध जलधि से परिवृत इस धरती पर जीवन धारण करनेवाले जो प्राणी हैं, उनके लिए सरयूनदी मातृस्तन्य-सदृश है। सूर्यवंश के नरेश जिस महान् सद्धर्म का पालन अनादि काल से करते आ रहे थे, उसी धर्म का पालन वह नदी भी कर रही है।

सरयू की धारा, कोशल देश की रमणियों के बनाये सुगंधपूर्ण, कुंकुम, केसर, कोष्ठ (एक सुगंधित द्रव्य), इलायची, शीतल चंदन, सिन्दूर, नागरमोथा, गुग्गुल, मोम आदि पदार्थों के मिलने से बहुत ही सुगंधित रहती है। (जब स्त्रियाँ नदी में स्नान करती थीं, तब ये वस्तुएँ उसके प्रवाह में मिल जाती थीं और नदी का जल सुगन्धित हो जाता था।)

सरयू की बाढ़, अपने जल-रूपी बाणों के कारण, आसपास रहनेवाले व्याध लोगों के छोटे-बड़े गाँवों में बड़ी हलचल मचा देती है। वह व्याध-नारियों को अपनी छाती पीटकर रोते-कलपते हुए भागने पर बाध्य कर देती है। ऐसे समय में वह नदी शत्रुओं के लिए भयंकर (किसी) वीर नरेश की सेना का दृश्य उपस्थित करती है।

---

१. मद्यप और जल-प्रवाह दोनों के समान विशेषण दिये गये हैं। सागुवान पेड़ को तमिल में 'तेक्कु' कहते हैं। इस शब्द को क्रिया के रूप में रखने पर दूसरा अर्थ निकलता है। 'डकार लेते हुए', मद्यप के पक्ष में, यह अर्थ संगत होता है।

२. तमिल में 'कोडि' शब्द का अर्थ होता है 'लता'। शब्दश्लेष से उसका दूसरा अर्थ 'ध्वजा' भी होता है। मूल में इस शब्द का प्रयोग करके कवि ने बड़ा चमत्कार दिखाया है।

वह नदी, किनारे के छोटे-छोटे गाँवों में से, जमा हुआ गाढ़ा और सुगंधित दही, दूध, मक्खन और घी को छीकों के साथ ही उठा ले जाती है (बहा ले जाती है); कदंब-वृक्षों को गिरा देती है; हिरनी के समान भीरु नयनवाली ग्वालिनों के दुकूल बहा ले जाती है। प्रबल वेग से बहती हुई वह नदी, कालिय नाग पर, जो अपने फनों और धारियों से भयंकर लगता है—नाचनेवाले कृष्ण की समानता करती है।

सरयू का वह प्रबल प्रवाह अपने मार्ग में (बाँधों) के किवाड़ों को ढकेलकर आगे बढ़ जाता है; कृषक उसे देखते ही आनन्दित हो जाते हैं और हाथ उठा-उठाकर आनन्द-रव करने लगते हैं; नदी का पूरा भरा हुआ अग्रभाग किनारों से उमड़ता हुआ आगे बढ़ जाता है; उसके ऊपर भौंरे झुण्ड-के-झुण्ड मँडराते जाते हैं; वह यत्र-तत्र मोतियों और रत्नों को बिखेर देता है; बाढ़ को रोकने के लिए जहाँ-तहाँ गाड़े हुए खूँटों को वीचि-रूपी अपने विशाल हाथों से उखाड़ता हुआ, लहलहाते हुए खेतों से भरे 'मरुदम्'[1] (कहलानेवाले) प्रदेश में ऐसे आ पहुँचता, जैसे कोई मत्तगज मदजल बहाता हुआ आया हो।

हिमाचल के ऊपर से आया हुआ वह प्रवाह, पर्वत (कुरिंजि) के पदार्थों को पर्वत की तलहटी पर के अरण्य (मुल्लै) प्रदेश में बहा ले जाता है और अरण्य के पदार्थों को खेतों और बगीचों से भरे हुए (मरुदम्) प्रदेश में लाकर फैला देता है तथा समुद्री तट (नेयदल) प्रदेश को अपनी उपजाऊ मिट्टी के द्वारा लहलहाते खेतों में परिवर्त्तित कर देता है। इस प्रकार, वह पर्वत अरण्य, खेतों आदि की वस्तुओं को अपने-अपने स्थानों से हटा-हटाकर दूसरे स्थानों पर रख देता है। देव, मनुष्य, पशु-पक्षी तथा स्थावर—इन चार प्रकार की योनियों में भ्रमण करते रहनेवाले प्राणियों के साथ जिस प्रकार उनके संचित कर्म (पाप और पुण्य) लगे चलते हैं और उन्हें भिन्न-भिन्न योनियों में उत्पन्न होने के लिए बाध्य करते हैं, उसी प्रकार यह नदी भी विभिन्न भू-प्रदेशों के पदार्थों को स्थानान्तरित करती हुई आगे बढ़ती है।

नदी की बाढ़ को बढ़ते हुए देखकर कृषकजन आनन्दित हो उठते हैं और 'पटह'[2] बजाकर उसकी सूचना देते हैं। वह नदी अपनी वीचियों से जल-बिंदुओं तथा स्वर्ण और मोतियों को बिखेरती हुई, धरती को चीरती हुई, नालों की शाखा-प्रशाखाओं में बँटकर बहती हुई इस प्रकार दौड़ चलती है, जिस प्रकार किसी पुण्यवान् मनुष्य की वंशावली विभक्त होकर विकसित हो रही हो।

सरयू का प्रवाह हिमाचल पर उत्पन्न हुआ; वहाँ से चलकर वह समुद्र में जा मिला। वह आरंभ में एक ही रहा, परन्तु धीरे-धीरे असंख्य नालों, नहरों, तालाबों और

---

१. तमिल-लक्षणकार भूमि को पाँच प्रकारों में विभाजित करते हैं—(१) कुरिंजि—पार्वतीय प्रदेश, (२) मुल्लै—अरण्य-प्रदेश, (३) मरुदम्—नदियों के जल से सिंचित समतल प्रदेश, (४) नेयदल—समुद्री तट और (५) पालै—बालूमय प्रदेश या मरुभूमि।

२. प्राचीन तमिल देश में नहरों और नालों की रखवाली करने के लिए 'मल्ल' नामक लोग नियुक्त थे; नदी में जब पानी आता था, तब वे पटह-वाद्यों को बजाकर लोगों को सूचना देते थे, जिससे तट पर के गाँवों के लोग सूचना पाकर सावधान हो जाते थे।

रूपों में बँट गया। अनन्त वेदों के द्वारा प्रतिपाद्यमान जो अपरिमेय परब्रह्म है, वह एक और अद्वितीय होकर भी विभिन्न मतवादों के सिद्धान्तों के द्वारा बहुधा प्रतिपादित है और तद्विषयक ज्ञान अनेक रूपों में विभक्त हो गया है। उसी प्रकार सरयू नदी भी अनेक धाराओं में विभक्त हो गई है।

सरयू का प्रवाह मकरन्द बरसानेवाले उपवनों में, घने चंपा-वनों में, कमल-भरी वापियों में, सुरभिमय तडागों में, माधवी लता-कुंजों से घिरे क्रमुक (सुपारी)-वनों में, एवं लहलहाते खेतों में, सर्वत्र ऐसा वह चला, जैसे प्राणियों के नाना प्रकार के शरीरों में प्राण बहा करता है। (१–२०)

अध्याय २

कोशलदेश पटल

महर्षि वाल्मीकि ने अतिपरिष्कृत और सुन्दर श्लोकों में रामायण की रचना की है, जो देवताओं के लिए भी कर्णामृत के समान है। उस काव्य में वर्णित कोशल देश की महिमा, प्रेम से विवश होकर मैं गा रहा हूँ; किन्तु यह कार्य मेरे लिए वैसा ही दुष्कर है, जैसा गूँगे व्यक्ति के लिए बोलने का प्रयास करना।

वह कोशल देश बड़ा ही वैभवपूर्ण है; वहाँ के खेतों की मेड़ों पर मोती और नालों के जल में शंख बिखरे रहते हैं; तीव्र जल-धाराओं के किनारों पर सोने के ढेले पड़े रहते हैं; उन नालों में जहाँ भैंसें गोता लगाये पड़ी रहती हैं, रक्तवर्ण के कमल-पुष्प बड़े ही सुन्दर दृश्य उपस्थित करते हैं; जोतने के उपरान्त जब खेत समतल बना दिये जाते हैं, तब वहाँ मणियाँ चमकने लगती हैं; इतना ही नहीं, शालि-धान के खेतों में जहाँ निरन्तर जल का सिंचाव होता रहता है, हंस आकर विश्राम करने लगते हैं; गन्ने के खेतों में रक्तवर्ण लाल-लाल मीठा मधु बहता रहता है और पुष्प-वाटिकाओं में झुण्ड-के-झुण्ड भौंरे मँडराते रहते हैं।

वहाँ जीवन का कोलाहल खूब सुनाई पड़ता है; एक ओर गन्ने पेरने से ईख का रस, झरने के जल के समान, शब्द करता हुआ प्रवाहित होता है, तो दूसरी ओर नदियों के तट पर चरनेवाले शंख-कीटों के बोलने की ध्वनि सुनाई पड़ती है; एक ओर बड़े-बड़े बैल आपस में टकराकर बड़ा शब्द उत्पन्न करते हैं, तो दूसरी ओर तालाबों में महाकाय भैंसों के उतरने से जलास्फालन का शब्द होता है। इस प्रकार, नाना प्रकार की ध्वनियों का एक विचित्र कोलाहल उस 'मरुदम्' प्रदेश में सदा होता रहता है।

लहलहाते खेतों और सुन्दर वृक्षों का वह प्रदेश भी कैसा गंभीर है, मानों कोई राजा दरबार में सिंहासन पर आसीन हो और उसके सामने मोर नाच रहे हों, कमल-लतिकायें दीप लिये खड़ी हों, मेघ मर्दल बजाते हों, भ्रमर गुंजार करके मधुर वीणा का स्वर सुनाते हों; नदी के जल पर उठ-उठकर गिरनेवाली चंचल लहरें यवनिका का दृश्य उपस्थित

करती हों और कुवलय-पुष्पों का समुदाय अपने विशाल नयनों (पंखुड़ियों) को खोलकर इस सुमधुर दृश्य को मंत्र-मुग्ध होकर देखता खड़ा है।

वहाँ के विकसित कमल-पुष्पों पर भ्रमर तथा लक्ष्मी देवी विश्राम करती हैं; पुष्पमालाओं से अलंकृत रसिक-जनों पर रमणियों के कटाक्ष तथा कामदेव के बाण आघात करते हैं; बड़ी-बड़ी मेघराशियों से गिरनेवाली जलधाराएँ प्रवाल तथा मोतियों की संपदा उत्पन्न करती हैं; वहाँ के निवासियों की जिह्वा पर सदा सत्यवचन तथा शास्त्र-चर्चा निवास करती है।

शंख-कीट तालाबों में (निर्भय होकर) विश्राम करते हैं, (क्योंकि) भैंसें (उन्हें कष्ट न देकर) वृक्षों की शीतल छाया में विश्राम कर रही हैं; भ्रमर (नगर-निवासियों की पुष्पमालाओं पर) विश्राम करते हैं; (क्योंकि) लक्ष्मी देवी कमल-पुष्प पर विश्राम कर रही हैं; सीपियाँ (खेत की) मेड़ों पर विश्राम करती हैं; (क्योंकि) कछुए कीचड़ में विश्राम कर रहे हैं; हंस धान के अंबारों पर विश्राम करते हैं; (क्योंकि) मोर (उन्हें कष्ट न देकर) उपवनों में विश्राम कर रहे हैं।

(उस देश के वैभव की कितनी प्रशंसा करूँ ?) वहाँ खेतों में हल जोतने पर सोना निकल पड़ता है; उसको समतल बनाने पर रत्न बिखर जाते हैं; शंख मोती उगलते हैं; धान की सुनहली बालियाँ हैं; मछलियाँ हैं और कोमल पत्तेवाले गन्ने हैं; भ्रमरों, कमल-पुष्पों एवं कृषकों के हर्षोत्फुल्ल मुखों से परिपूर्ण वह देश कितना नयनाभिराम है ?

प्रभात के समय मधुर स्वरवाले 'याल्'-वाद्य (एक प्रकार की वीणा) को हाथ में लेकर, मृदंग की ध्वनि के साथ जब मधु-पान से मस्त गवैये गाने लगते हैं, तब उस संगीत-लहरी को सुनकर रजत-प्रासादों में, सुनहली धूप की छटा बिखेरनेवाले स्वर्ण-पर्यंकों पर निद्रामग्न मयूर-पंख के जैसे नयनवाली तरुणियाँ, जाग उठती हैं।

वहाँ एक ओर कोल्हुओं से गन्ने का रस निर्झर के रूप में बहता है, तो दूसरी ओर नारियल के कटे हुए घौदों से मीठा रस प्रवाहित होता है; कहीं उपवनों में पके हुए फलों का मीठा रस चू रहा है, तो कहीं पुष्पों से मकरन्द झरकर नीचे गिर रहा है। ये सभी रस मिलकर, लहराती हुई धारा बनकर, जब समुद्र में जा गिरते हैं, तब समुद्र के मीन उन रसों को पीकर मस्त हो जाते हैं।

मधु पीकर मस्त हुए कृषक लोग खेत निराने जाते हैं; वहाँ वे खेतों में पौधों के साथ उगे हुए कमल, कुमुद आदि पुष्पों में, मधुर स्वरवाली कृषक-बालाओं के नयन, कर, चरण आदि अंगों की छटा देखते हुए निराना भूल जाते हैं और यों ही इधर-उधर फिरते रहते हैं। नीच जन जब स्त्रियों पर आसक्त हो जाते हैं, तब उस आसक्ति को किसी भी अवस्था में नहीं छोड़ते।

वहाँ की रमणियों के सौन्दर्य का क्या कहना ! उनके मधुर स्वर, मनोहर कटाक्ष, जो कटार के जैसे पैने हैं, पुरुषों के मन को हर लेते हैं; उनकी विद्युत् की-सी छटा अवर्णनीय है; उनके केश पुष्प, कस्तूरी आदि सुगंधित द्रव्यों से सुवासित हैं; जब वे नदियों में स्नान करती हैं तो नदी का जल उनके केशों की सुगंधि से सुवासित हो जाता है;

इतना ही नहीं, जब वह जल समुद्र में जाकर गिरता है, तब सारे समुद्र की दुर्गन्धि को अपनी इस सुगंधि से मिटा देता है।

वहाँ पुरुष अतिरूपवान् हैं; उनके कानों और अन्य अंगों में कुण्डल आदि आभूषण शोभा देते हैं; उनके शरीर चन्दन, कर्पूर आदि से लिप्त रहते हैं; जब वे नदियों में स्नान करते हैं, तब नदियाँ इन सुगंधित द्रव्यों से भर जाती हैं और जिन खेतों को वे सींचती हैं, उनकी मिट्टी भी सुवासित होकर कर्पूर आदि की गंध बिखेरती है, जिस कारण से भौरों के झुण्ड सदा उस मिट्टी पर ही मँड़राते रहते हैं।

मीन के समान नेत्रवाली कृषक-बालाओं के पीछे-पीछे राजहंसिनियाँ, उनकी चाल का अनुकरण करती हुई, भटक जाती हैं, तो कमल की सेज पर सोये हुए अपने बच्चों को भी भूल जाती हैं; हँस-शिशु निद्रा से उठकर भूख से चिल्ला उठते हैं, उन्हें देखकर भैंसों को अपने बछड़ों की याद आ जाती है और उनके स्तनों से दूध स्रवित होने लगता है; उस दूध को पीकर हंस-शिशु तृप्त हो जाते हैं; फिर हरे-हरे मेढ़क लोरियाँ गाकर उन्हें सुला देते हैं।

वहाँ के उद्यानों में कहीं कोयल का जोड़ा, एक दूसरे को प्यार करता हुआ बैठा है; कहीं सुन्दर मयूर नाच रहे हैं; उन उद्यानों की शोभा, विशालनयन नर्त्तकियों की नृत्यशालाओं के लिए भी शृंगार है; प्रातःकाल के समय, मधुपान से मस्त भ्रमर भी संध्या-गीत गा उठते हैं (प्रभात-गीत गाने की सुध उन्हें नहीं रहती); पंकज-पर्यंकों में सोये हुए राजहंस उस ध्वनि को सुनकर अचानक जाग उठते हैं।

कोशल देश के निवासी मनोविनोदों में अपना समय व्यतीत करते हैं। कहीं सभी गुणों से संपन्न अपने-अपने योग्य सुन्दरियों के साथ युवक विवाह-संबंध करते हैं; कहीं लोग चील के साथ उड़नेवाली परछाईं के जैसे संगीत का रसास्वादन करते हुए मस्त होते हैं (अर्थात्, संगीत साहित्य का उसी प्रकार अनुसरण करता है, जिस प्रकार छाया उड़नेवाले पक्षी का अनुसरण करती है); कहीं रसिकजन अमृत से भी श्रेष्ठ काव्य-माधुर्य का पान करने में संलग्न हैं; कहीं अतिथि-सत्कार हो रहे हैं, जहाँ गृहस्थजन अतिथियों की मुखाकृति को देखकर ही उनके मनोभाव समझ लेते हैं और उन्हें उचित उपचार से संतृप्त कर आनन्द प्राप्त करते हैं।

कहीं लोग एकत्र होकर मुर्गों का युद्ध देखते हैं; पूर्व-वैर न होने पर भी, ये कुक्कुट एक दूसरे पर बड़ा क्रोध दिखाते हैं, उनके मन में रोष भरा है, सिर पर की कलँगी उनकी लाल-लाल आँखों से भी अधिक रक्तिम होकर चमकती है, टाँगों में बँधी छोटी-छोटी पैनी छुरियों से वे एक दूसरे पर चोट करते हुए अमन्द उत्साह से घनघोर युद्ध करते हैं: वे कुक्कुट यदि अपने वीरता-पूर्ण जीवन में कोई कमी रखते हैं, तो यही कि वे जीवन की सार्थकता को नहीं पहचानते।

कहीं लोग भैंसों को लड़ाकर उसका तमाशा देखते हैं; लाल आँखवाले वे भैंसे बड़े रोष के साथ एक दूसरे पर आघात करते हैं और एक दूसरे को ढकेलने की चेष्टा करते हैं; ऐसा प्रतीत होता है, मानों विश्व के नाना पदार्थों को एक रूप बना देनेवाला घोर

अंधकार अब दो पक्षों में विभक्त होकर इन भैंसों के भयंकर रूप में आ गया हो और लड़ रहा हो; उस युद्ध को देखनेवाले दर्शक जब प्रसन्नता से अट्टहास कर उठते हैं और सिर हिलाने लगते हैं, तब उनके सिर के फूलों पर बैठे हुए भ्रमर गूँजते हुए उड़ जाते हैं. वहाँ जो कोलाहल होता है, उसका शब्द मेघ-मंडल तक गूँज उठता है।

किसान खेतों को हल से जोतते हैं, वे बड़े-बड़े बलवान् बैलों को जोर-जोर से हाँक लगाते हुए ललकारते हैं; उनकी ललकारों की गंभीर ध्वनि से कमल के नाल टूट-टूटकर गिर जाते हैं; मोती और सोना धरती से फूट निकलते हैं; मणियाँ बिखर जाती हैं; 'चलंचल' नामक सीप मुँह खोलकर रो उठते हैं; हल की धारियों में तैरती हुई मछलियाँ छटपटाती हुई उछल पड़ती हैं; कछुए अपने पैरों और सिर को अपने पेट में समेटकर निःस्तब्ध हो पड़ जाते हैं और मीन खेतों से भागकर नालों के गहरे जल में छिप जाते हैं।

बड़ी-बड़ी नौकाएँ, जो अमूल्य वस्तुओं को लेकर विदेशों में गई थीं और वहाँ अपने बोझ उतारकर वापस लौट आई हैं, समुद्र-तट पर पड़ी हैं, मानों भारी बोझ ढोने से दुखती हुई अपनी लंबी पीठ को आराम दे रही हों। ये नौकाएँ भी उस पृथ्वी के ही समान दीखती हैं, जो मनु-नीति का अनुसरण करनेवाले, उचित स्थान पर क्रोध दिखानेवाले, दंड का भी उचित प्रयोग करनेवाले, इच्छाहीन, धर्मज्ञ और प्रजावत्सल राजा के द्वारा सुरक्षित होने के कारण पाप-भार से मुक्त हो गई हो।

धान की कटी बालियों का ढेर आसमान को छूता हुआ पड़ा है; कृषक लोग, (हाँकनेवाले के) संकेतों को समझकर चलनेवाले बैलों के द्वारा उन बालियों की दौनी करके धान निकाल लेते हैं; दरिद्रों को दान देने के बाद बचा हुआ धान गाड़ियों में लादकर अपने घर ले जाते हैं, जिससे अतिथियों तथा कुटुम्ब के संग वे भरपेट भोजन कर सकें। गाड़ियाँ जब धान लादकर चलती हैं, तब भार के मारे पहिये धँस जाते हैं, मानों धरती भी उस बोझ के आगे अपनी पीठ मरोड़ रही हो।

उस देश में सभी आवश्यक पदार्थ उपजते हैं; धान के खेतों में धान, महँकते बागों में पके फल, बाँगर भूमि में चना आदि अनाज, लताओं में फल, कंद-मूल—जो मिट्टी के भीतर से खोदकर निकाले जाते हैं—आदि वहाँ पर होते हैं, जिन्हें कृषक उसी प्रकार बटोर लेते हैं, जिस प्रकार भ्रमर पुष्पों से मधु को एकत्र कर लेते हैं।

उस देश के सभी प्रान्तों में अन्न का सदाव्रत बड़ी धूम से चलता है; ब्राह्मणों को भोजन देने के उपरान्त गृहस्थजन अपने अतिथियों तथा बंधुओं के साथ स्वयं भोजन करते हैं; भोजन के पदार्थ में तीन श्रेष्ठ फल[1] (आम, कटहल और केला), विविध रसमय दाल, उस दाल को डुबो देनेवाला घी, लाल-लाल दही के टुकड़े, खाँड इत्यादि होते हैं और इन व्यंजनों से घिरा हुआ भात होता है।

भ्रमर उस प्रदेश में निरन्तर निवास करते हैं, क्योंकि वहाँ की कामिनियों के

१.तमिल देश के तीन प्रधान फल हैं—आम, कटहल और केले। इन्हीं तीन फलों का वर्णन तमिल-साहित्य में प्रायः मिलता है।

पंकज समान मुख-मंडल पर जो काजल-अंकित रमणीय नयन हैं, उन्हें वे भ्रमरियाँ समझ लेते हैं और उन्हीं की संगति की कामना करते हुए सदा वहीं मँडराते रहते हैं।

कामदेव जिन पुरुषों को विचलित नहीं कर सकता, उन्हें भी वहाँ की युवतियों का दृष्टि-पात अधीर बना देता है; उनके मनोज्ञ स्तन, सामने आनेवाले पुरुषों का सिर इस तरह झुका देते हैं, जैसे मालिक अपने नौकरों पर क्रोध करके उनका सिर नीचे कर देता है। उधर नारियल के घौदों से जो मधु-धारा बहती है, उसे पीकर मोटे मीन मस्त पड़े रहते हैं।

धरती पर चलनेवाले काले बादलों जैसी भैंसें, नदी के ठंडे जल में गोता लगाती हुई अपने बछड़ों को याद करती हैं, तो उनके थनों से दूध स्रवित होने लगता है; जब वह दूध नदी के जल से मिलकर खेतों मेंप हुँचता है, तब उसी दुग्ध-धारा से सिंचकर धान का शस्य बढ़ता है।

वहाँ की अति समृद्ध पाक-शालाओं में बड़े-बड़े भांडों में चावल पकाया जाता है; चावल धोने का पानी कल-कल शब्द करता हुआ वहाँ से बहकर क्रमुक-वन में होकर लाल धान के खेतों में पहुँचता है और अंकुरों को पुष्ट करता है।

कूड़े के ढेरों पर बैठे हुए और सिर पर कलँगी से शोभायमान लाल मुर्गे जब अपने नखों से कूड़े को कुरेदते हैं, तब उसमें से चमकती हुई मणियाँ बिखर जाती हैं; चिड़ियाँ उन्हें जुगनू समझकर अपने घोंसलों में लाकर रखती हैं।

अहीर तरुणियाँ उज्ज्वल और गाढ़े दही को अपने सुन्दर करों से हिला-हिलाकर मथती हैं, तब मथानी की ध्वनि रह-रहकर जोर से उमड़ पड़ती है; उनके हाथों में पड़े शंख के नक्काशीदार सफेद कंगन बोल उठते हैं; और उनकी पतली कमर आगे बढ़-बढ़कर लचक जाती हैं।

फुलवारियों में तोते बोलते हैं; पुष्पों में भ्रमर गाते हैं; जलाशयों में पक्षियों का मधुर कलरव होता है; दानी लोगों के घरों में अतिथियों के भोजन के लिए धान कूटनेवाली औरतें गृहस्थ की प्रशंसा में गीत गाती रहती हैं।

भोली और काली आँखोंवाली बालिकाएँ नदी से मोतियों को अपने चुल्लू में भर-भरकर ले आती हैं और घर के आँगन में उनसे घरौंदे बनाकर खेलती हैं; इस तरह बिखरे हुए मोती गुवाक (सुपारी) के फलों में मिल जाते हैं; और गुवाक साफ करनेवाले लोग उन मोतियों को असार वस्तु समझकर फेंक देते हैं।

टेढ़े सींगों और कठोर कपालवाले भेड़ों के बलवान् जोड़े जब परस्पर भिड़कर लड़ते हैं, तब उनके टकराने की कर्कश ध्वनि से दूरस्थ पर्वत-शृंगों पर रहनेवाले मेघों में बिजली कौंध जाती है।

पर्वतों के बीच अरण्यों में जंगली हाथियों को फँसानेवाले वीर शिकारी कठघरे बनाकर उनमें हाथियों के झुण्ड को—बच्चोंवाली हथनियों से उन्हें अलग करके—फँसा लेते हैं; और जब उन मत्त हाथियों को सुदृढ शृंखलाओं से वे वीर बाँधने लगते हैं, तब वहाँ बड़ा विकट कोलाहल होता है; उस कोलाहल को सुनकर सरोवर में हंसिनी के साथ क्रीडा करनेवाले मराल (हंस) डरकर भाग खड़े होते हैं।

किसान लोग जब भूमि से कंद-मूल खोदकर निकालते हैं, तब उन कंदों के साथ कई श्रेष्ठ रत्न भी निकल पड़ते हैं ; फलों के भार से झुकी हुई आम्रवृक्षों की डालियों से निरन्तर मधु-धारा बहती रहती है ; सदा कमल-पुष्पों से प्रेम करनेवाले हंस 'पुन्नै' (नामक) पुष्पों से आकृष्ट होकर उनके पास अटक जाते हैं।

कृषक-रमणियाँ 'कुरवै' नृत्य (एक प्रकार का लोक-नृत्य) करती हुई गाती हैं ; उनके गायन का मधुर स्वर सुनकर ग्वालों के आँगन में बँधे हुए बछड़े, जो बाँसुरी का नाद सुनने के अभ्यस्त हैं, निद्रा-निमग्न हो जाते हैं ; वहाँ की स्त्रियों के राग सुनकर खेतों की रखवाली करनेवाले कृषक बेसुध हो जाते हैं।

पहाड़ों पर उगे हुए बाँस, हवा के झोंके खाकर टकराने लगते हैं ; उनकी चोट खाकर शहद के बड़े-बड़े छत्तों से शहद बह निकलता है ; ऊँची चट्टानों पर से गिरती हुई मधु की धारा ऐसी लगती है, मानों कोई विशाल सर्प चट्टानों से लटक रहा हो ; यह मधु की धारा कुमुद-पुष्पों से भरे सर में जा गिरती है, तो (शंख) कीट उसे पीकर तृप्त होते हैं।

वहाँ की सुन्दरियाँ, जिनके विशाल नयन और अर्द्धचन्द्र सदृश ललाट हैं, वे विद्या एवं धन से संपन्न हैं, अतः जो कोई दुःखी पुरुष उनके यहाँ आता है, उसे धन आदि देकर संतुष्ट करती हैं ; वे सदा इस तरह के धर्म-कर्मों में निरत रहती हैं ; उनका अन्य कोई दैनिक कार्य नहीं है।

भोजनालयों में, जहाँ रोज अनगिनत अतिथियों को भोजन दिया जाता है, अर्द्धचन्द्राकार कटारों से काटी गई तरकारियों, दालों और मोती के दानों जैसे चावलों की बड़ी-बड़ी राशियाँ लगी रहती हैं।

वहाँ के निवासियों की विभूतियों का वर्णन कौन कर सकता है ? बड़ी-बड़ी नावें विदेशों से अनन्त निधियाँ ला देती हैं ; धरती शस्य के रूप में अनन्त समृद्धि देती है ; खानें श्रेष्ठ रत्न प्रदान करती हैं तथा उनके विभिन्न कुल उन्हें दुर्लभ सदाचार की शिक्षा देते हैं।

वहाँ कहीं भी कोई पाप-कृत्य नहीं होता, अतः किसी की अकाल-मृत्यु नहीं होती ; लोगों के चित्त विशुद्ध रहते हैं, अतः किसी के मन में वैर या द्वेष-भाव नहीं रहता ; वहाँ के निवासी धर्म-कृत्यों को छोड़ अन्य कोई कार्य नहीं करते, अतः सदा प्रजा की उन्नति ही होती रहती है।

(उस देश में) नदियों के प्रवाह के सिवाय अन्य कोई अपना मार्ग छोड़कर नहीं चलता ; नारियों की कुंकुमपत्र-रेखाओं से चित्रित (पुरुषों की) भुजाओं को छोड़कर अन्य किसी वस्तु का (धान की राशियों पर लगाये गये निशान आदि) चिह्न नहीं मिटता ; रमणियों के कटि-प्रदेश के अतिरिक्त अन्य कोई क्षुद्र नहीं होता ; नारियों के पुष्पालंकृत घुँघराले और सुगंधित केशों को छोड़कर और कोई विक्षिप्त (बिखरा हुआ या पागल) नहीं दीखता।

अगरु का धूम, पाकशालाओं का धूम, गुड़ की भट्ठियों का धूम एवं वेद-ध्वनि से गुंजायमान यज्ञशालाओं का धूम—ये सब मिलकर मेघ बन जाते हैं और (अयोध्या के) गगन में फैल जाते हैं।

उस देश की नारियों की छटा प्राप्तकर मयूर (गर्व से) संचरण करते हैं; उनके वक्षों पर शोभायमान रत्नाभरणों की कांति पाकर सूर्यातप (आनन्द से) सर्वत्र फैल जाता है; उनके केशों की शोभा पाकर मेघ (अभिमान से) गगन पर चढ़ जाते हैं और उनके नेत्रों की छवि प्राप्त कर जलाशयों में मीन (हर्ष से) इधर-उधर तैरते हैं।

सरोवरों में नारियाँ जब अपनी टूटती-सी सूक्ष्म कटि के साथ लहरों को उद्वेलित करती हुई गोता लगाती हैं, तब उनके रक्ताधर को देखकर कुमुद खिल पड़ते हैं; जल पर चलनेवाले हँस की-सी गतिवाली नारियों के मुख की समता करते हुए कमल खिल जाते हैं।

वहाँ की वनिताओं के कटाक्ष अपने उपमानीभूत सभी वस्तुओं का उपहास करते हैं; उनकी गति हथिनी की गति का उपहास करती है; परस्पर सटे हुए उनके उन्नत उरोज पंकज की कलियों का उपहास करते हैं; और उनके सुन्दर मुख षोडश कलाओं से पूर्ण चन्द्रमा का उपहास करते हैं।

वहाँ जो रत्न बिखरे हैं, उनकी कांति सूर्य की किरणों से भी विलक्षण है; वहाँ की रमणियों के स्तन नारियल के शीतल फलों से भी विलक्षण हैं; उनके उज्ज्वल दुकूल दूध पर पड़े झाग से भी विलक्षण है और उनके विवाहोत्सवों में बजनेवाले नगाड़े काले बादलों (के गर्जन) से भी विलक्षण हैं।

उस देश के हरे-हरे उपवनों की समता कर सकती हैं, केवल काली घटाएँ; खेतों में लगे धान के अंबारों की समता कर सकता है, केवल पर्वत; वहाँ के बाँधों से घिरे हुए विशाल जलाशयों की समता कर सकता है, केवल अपार जलराशि समुद्र; और, अनन्त निधियों से संपन्न उस कोशल देश की समता कर सकता है, केवल देवलोक।

जो धानों की राशियाँ नहीं हैं, वे मोतियों के ढेर हैं; जो मोतियों के ढेर नहीं हैं, वे समुद्र से निकाले गये नमक के ढेर हैं; जो नमक के ढेर नहीं, वे नदियों से निकली अमूल्य वस्तुओं के समूह हैं; और, जो उन वस्तुओं के समूह नहीं हैं, वे सैकत श्रेणियाँ हैं, जहाँ रत्न बिखरे पड़े हैं।

बालिकाएँ जहाँ कन्दुक-क्रीडा करती हैं, वे चन्दन के बाग नहीं हैं, परन्तु चंपक-पुष्पों के उपवन हैं—(बालिकाओं के शरीर की सुगंधि पाकर चन्दन-वन भी चंपक-उपवन के समान महँक उठते हैं); मयूरवाहन सुन्दर सुब्रह्मण्यम् (कार्त्तिकेय) के जैसे वहाँ के बालक जहाँ धनुर्विद्या आदि कलाओं का अभ्यास करते हैं, वे नन्दन वन नहीं हैं, परन्तु मकरन्द-भरे रजनीगंधा के वन है - (उन बालकों के शरीर से भी रजनीगन्धा की-सी सुरभि पाकर परिजात-वन भी रजनीगन्धा की फुलवारी के समान महँकने लगता है।)

वहाँ के कोकिल उन सुन्दरियों की कंठध्वनि का अनुकरण करते हुए बोल उठते हैं; मयूर उनके नृत्य का अनुकरण करते हुए नाचने लगते हैं और सीप उनके दाँतों के उपमान होनेवाले मोती उगलते हैं।

(उस देश के) मद्य-विक्रेताओं के यहाँ मद्य पर्याप्त मात्रा में मौजूद रहता है; उन मद्यों का पान करनेवाले कृषकों के यहाँ खेती के उपयुक्त सभी आवश्यक साधन

उपस्थित रहते हैं; विवाह-मंगल में व्यस्त युवकों के घरों में उस समय के अनुकूल मंगल-वाद्य बजते रहते हैं; और, संगीत-कला-निपुण 'बाण' (एक गायक जाति) लोगों के घरों में घुमावदार 'किलै' (एक प्रकार की वीणा)-वाद्य विद्यमान रहते हैं।

वहाँ पुष्प-मालाएँ शीतल नव मधु बरसाती हैं; जल-पोत उत्कृष्ट रत्नों को (विदेशों से लाकर) बरसाते हैं; हवाएँ प्राणों को स्थिर रखनेवाला अमृत बरसाती हैं और कवियों की वाणी कर्ण-पेय मधुर कवित्व रस बरसाती है।

पुष्पों से अलंकृत केशों और मुक्ता-मालाओं से भूषित वक्षों से अतिरमणीय दिखनेवाली कामिनियों को उद्यानों में देखकर बड़े कलापवाले मयूर भ्रम में पड़ जाते हैं कि वे भी मयूरी हैं और इसलिए युवकों के मन के जैसे ही वे मयूर भी उनके पीछे-पीछे चलने लगते हैं।

उस देश में दान का महत्त्व नहीं, क्योंकि वहाँ कोई भी याचक नहीं है; शूरता का महत्त्व नहीं, क्योंकि वहाँ युद्ध नहीं होते; सत्यवचन का महत्त्व नहीं, क्योंकि वहाँ कोई कभी असत्य-भाषण नहीं करता; और, पंडितों का भी महत्त्व नहीं, क्योंकि वहाँ के सभी लोग बहुश्रुत तथा ज्ञानी हैं।

तिल, जौ, सामा, कुलथी आदि धान्यों से भरी हुई गाड़ियाँ और नमक के खेतों से नमक लादकर लानेवाली गाड़ियाँ, वहाँ की गलियों में पहुँचकर एक दूसरे की कतारों में इस प्रकार खो जाती हैं कि उन्हें अलग-अलग पहचानना कठिन हो जाता है।

वहाँ के विभिन्न प्रान्तों में उत्पन्न होनेवाले खाँड, शहद, दही, मद्य आदि पदार्थ दूसरे प्रान्तों में यों स्थानान्तरित होते रहते हैं, जैसे मोक्ष-प्राप्ति के उपाय से वंचित प्राणी अपने किये कर्मों के फल भोगते हुए विभिन्न जन्म ग्रहण कर भटकते रहते हैं।

यज्ञों को देखने के लिए आई हुई जन-मंडली और मेलों को देखने के लिए आई हुई जन-मंडली—दोनों, संगीत और बाँसुरी की ध्वनियों से प्रतिध्वनित होनेवाली गलियों में इस तरह मिल जाती हैं, जैसे अलग-अलग दिशाओं से बहती हुई दो नदियाँ एक स्थान पर आकर मिल जाती हों।

शंख-ध्वनि, मृदंग का नाद, पटहों का रव आदि स्वर, खेतों में बड़े-बड़े बैलों को हाँकनेवाले कृषकों की हाँक में समा जाते हैं।

माताएँ अपने नन्हें बच्चों को दूध पिलाकर अपने हाथ से अन्न उठाकर खिलाती हैं; उन बच्चों के मुँह से लार उनके वक्ष पर गिरती है, जहाँ (विष्णु भगवान् के) पाँच आयुधों के चिह्नोंवाली माला पड़ी है; अन्न उठाते समय उन नारियों के मुकुलित होनेवाले कर यों दीखते हैं, जैसे चन्द्र की कांति से पंकज मुकुलित हो रहे हों।

वहाँ के लोग शीलवान् हैं, इसलिए उनका सौन्दर्य नित नवीन रहता है; वे सत्यवादी हैं, इसलिए वहाँ नीति स्थिर रहती है; वहाँ स्त्रियों का आदर होता है, इसलिए धर्म सुरक्षित रहता है; और, वर्षा समय पर होती है, क्योंकि वहाँ की स्त्रियाँ पवित्र आचरणवाली हैं।

उस विशाल कोशल देश की, जो उपवनों से घिरा हुआ है, सीमा का पता कोई

भी नहीं लगा सकता ; सरयू नदी अपनी अनन्त शाखा-प्रशाखाओं से बहती हुई उस सीमा को खोज रही है, फिर भी उसे पहचान नहीं पाई है।

यह कोशल देश इतना पुण्यभूयिष्ठ है कि यदि प्रभंजन के आघात से समुद्र की जलराशि भूमि पर चढ़ आवे, तो भी उस देश की कोई हानि नहीं हो सकती। ऐसे कोशल का वर्णन करने के पश्चात् अब हम अयोध्या नगर का वर्णन करेंगे। (१—६१)

अध्याय ३

नगर पटल

अयोध्या नगरी संस्कृत भाषा के महाकवियों तथा विद्वानों द्वारा रस-भरे, सार-गर्भित, मधुर शब्दों में वर्णित हुई है ; जिस स्वर्गलोक की प्राप्ति की इच्छा से असंख्य लोकों के निवासी तपस्या में लीन रहते हैं, उस स्वर्ग के निवासी भी अयोध्या नगरी का निवास प्राप्त करने की कामना करते रहते हैं।

क्या वह अयोध्या नगरी भूदेवी का मुख है या उसका तिलक है ? अथवा उसके नयन है ? उसके स्तनों पर सुशोभित मनोहर रत्नहार है ? अथवा उस भूदेवी के प्राणों का निवास है ?

क्या वह नगरी लक्ष्मी देवी का आवास-भूत अति सुन्दर कमल है ? या वह स्वर्णमंजूषा है, जिसके भीतर विष्णु भगवान् के वक्ष पर प्रकाशित होनेवाले कौस्तुभ मणि जैसे सुन्दर रत्न रखे हुए हैं ? अथवा वह देवलोक से भी ऊँचा वैकुण्ठधाम ही है ? कदाचित् यह वह स्थान है, जहाँ प्रलय के समय सारी सृष्टि समा जाती है। इस नगर के सम्बन्ध में और क्या कहें ?

अपने अर्धांग में उमा देवी को स्थापित करनेवाले (परमशिव) दो देवियों (श्री और भूमि) के पति अतुलनीय (विष्णु) भगवान् तथा क्षमाधन देव (ब्रह्मा) ने भी इस अयोध्या की समानता करनेवाला दूसरा नगर नहीं देखा। चन्द्र तथा सूर्य भी इसके उपमान हो सकनेवाले एक नगर को देखने की प्रबल इच्छा से प्रेरित होकर ही निर्निमेष नयनों से अभी तक अंतरिक्ष में घूम रहे हैं : अन्यथा उनके इस प्रकार भ्रमण करने का दूसरा कारण क्या हो सकता है ?

ब्रह्मदेव ने बहुप्रशंसित इस रमणीय अयोध्यापुरी का निर्माण करने के हेतु तीक्ष्ण वज्रायुध धारण करनेवाले (देवेन्द्र) की नगरी अमरावती एवं कुबेर की राजधानी (अलकापुरी) की सृष्टि करके पहले ही नगर-निर्माण का अभ्यास कर लिया था ; मय आदि देवशिल्पी भी इस नगर की शोभा देखकर लज्जित हो गये और शिल्प-कला में अपनी हार स्वीकार कर संकल्पमात्र से सृष्टि करनेवाली अपनी शक्ति को भूल बैठे, तो मेघ-मंडल को छूनेवाले इन प्रासादों का वर्णन कैसे किया जाय ?

अपरिमेय वेदों में यह अर्थ प्रतिपादित हुआ है कि (इस संसार में) 'जो पुण्य

कर्म करते हैं, वे परलोक में आनन्द प्राप्त करते हैं'— वैसे धर्म का पालन करते हुए इस पृथ्वी पर श्रीराघव के अतिरिक्त और किन्होंने बड़ा तप किया है? धर्म के त्राता, अनिर्वचनीय गुणों से भूषित (रामचन्द्र) ने जिस नगर में रहकर सप्त लोकों की रक्षा की, उस अयोध्या से भी बढ़कर सुखप्रद स्थान दूसरा कोई हो सकता है— ऐसा मानना भी क्या उचित है?

महान् करुणा (भगवान् की करुणा) और धर्म की सहायता से पंचेन्द्रिय-रूपी अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके, उत्तरोत्तर बढ़नेवाली तपस्या और ज्ञान प्राप्त करनेवाले महापुरुष जिस भगवान् की शरण में जाते हैं, वह अरुण नयनवाले विष्णु इस नगर में अवतीर्ण हुए और (सीता देवी के रूप में रहनेवाली) लक्ष्मी के साथ यहाँ रहकर अनन्त काल तक लोक-पालन करते रहे, तो इस अयोध्या की समता कर सकनेवाला स्वर्णमय नगर देवलोक में भी कहाँ मिल सकता है?

सभी राज्यों के नरेश उसी अयोध्या में एकत्र रहते हैं; सभी श्रेष्ठ आभरण और दुर्लभ रत्न वहीं पर होते हैं; बड़ी जंजीरों से बँधे मत्त गज, तुरंग, रथ आदि इस संसार की सभी श्रेष्ठ वस्तुएँ वहीं पर होती हैं; मुनि, देव, यक्ष, विद्याधर आदि सब उसी नगर में जमा रहते हैं; तो उस नगर की उपमा किसके साथ हो सकती है? ऐसे नगरी के विषय में क्या मुझ जैसा व्यक्ति कुछ कह सकता है?

[नीचे के छह पद्यों में नगर के प्राचीर का वर्णन है।]

हिमावृत, अति उन्नत पर्वत-श्रेणियों में भी शिल्प-शास्त्र के अनुसार बने चतुष्कोण आकारवाले पर्वत इस सृष्टि में कहीं नहीं हैं, अतः (अयोध्या के) उस प्राचीर का उपमान भी कहीं नहीं है; वे स्वर्णमय प्राचीर उन विद्वानों के उन्नत ज्ञान के सदृश हैं, जिन्होंने बड़ी तत्परता के साथ सर्व शास्त्रों का अध्ययन किया हो।

गंभीर ज्ञान से भी उसका स्वरूप तथा अंत नहीं जाना जा सकता, अतः वह प्राचीर वेदों के समान है; उसके अति उन्नत शिखर अपर लोक तक पहुँचते हैं, अतः वह देवों के समान है; पंचेन्द्रिय-तुल्य बलवान् यंत्रों को अपने वश में रखने के कारण वह मुनियों के समान है; रक्षा करने में वह हरिणवाहना कन्या (दुर्गा देवी) के समान है; शूलायुधों को धारण करने के कारण वह कालिका के समान है; अपनी विशालता के कारण वह सभी महान् पदार्थों के समान है; किसी के लिए भी अगम्य (पहुँच के बाहर) होने के कारण वह स्वयं भगवान् के समान है।

ऊपर उठा हुआ वह प्राचीर अंतरिक्ष में पहुँच गया है, मानों वह देखना चाहता है कि क्या देवताओं का निवास (स्वर्गपुरी) इस अयोध्या से भी अधिक सुन्दर है, जिस नगर में मधुर-स्वरवाली ऐसी असंख्य रमणियाँ हैं, जिनके पद-नख, लाक्षा-रस से अंकित श्रेणी में रखे हुए चंद्रों के सदृश हैं; पद रक्त-कमल तुल्य हैं; कटियाँ नाल-तुल्य हैं; उरोज छोटे नारियल के समान हैं तथा जिनकी भुजाएँ लचीले कोमल बाँस के सदृश सुकुमार हैं।

वह प्राचीर उस नगर के चक्रवर्त्ती के ही समान है; क्योंकि वह संसार के मापकदंड से युक्त है—(चक्रवर्त्ती वेत्रदंड से युक्त हो सारे संसार की रक्षा करता है, उसी प्रकार प्राचीर

भी अपने भीतर दंडों से युक्त है); वह शत्रुओं के मुकुटधारी शिरों को काट देता है—(राजा अपने शस्त्रों से और प्राचीर अपने भीतर लगे हुए यंत्रों से शत्रु का शिर छेदन करता है।); वह मानव-शास्त्र के अनुसार स्थित है—(राजा मनु के प्रतिपादित धर्म पर चलते हैं और प्राचीर मानवों के शिल्प-शास्त्र के अनुसार बनता है); वह इस प्रकार (नगर की) सुरक्षा करता है कि कोई (शत्रु) आँख उठाकर भी उसे देख नहीं सकता; वह अत्यन्त बलिष्ठ है; वहाँ धनुष, तलवार आदि का अभ्यास होता रहता है; वहाँ कठोर तंत्र—(राजतंत्र तथा सेना का प्रबंध) रहता है; वह शत्रुओं के लिए दुर्जय है; महा औन्नत्य (ऊँचाई) से युक्त है तथा चक्र—(शासन-चक्र तथा यंत्र) चलाता रहता है।

उस प्राचीर में निष्ठुर त्रिशूल, प्राणघातक खड्ग, धनुष, फरसा, गदा, चक्र, तोमर, मूसल, मेघ के गर्जन के सदृश भयंकर 'कवणकल' (पत्थर फेंकनेवाला यंत्र) इत्यादि अनेक कल-पुरजे और यंत्र लगे हैं, जो मशकों को, पक्षिराज (गरुड) को, तीव्रगामी हवा को, अहित विचारवाले के मन को भी भग्न करनेवाले हैं।

अष्ट दिशाओं में भी अंधकार को हटाकर सुन्दर रूप में प्रकाश फैलानेवाले सूर्य के कुल में उत्पन्न जो राजा हैं, वे आभरणों की अपेक्षा यश को ही उत्कृष्ट (आभर आभरण) माननेवाले हैं; अतः वे अच्छे चरित्रवाले बनकर संसार के प्राणियों की रक्षा में निरत रहते हैं; उनका शासन-चक्र, अनुपम वेत्रदंड तथा आज्ञा, अष्ट दिशाओं में तथा ऊपर के लोकों में भी फैलकर रक्षा करते हैं। इसलिए, उस नगर के चारों ओर जो प्राचीर बनाई गई है, वह अलंकार-मात्र है।

[नीचे के आठ पद्यों में परिखा (खाई) का वर्णन है।]

अब हम जिस परिखा (खाई) का वर्णन करने लगे हैं, वह उस उन्नत प्राचीर को इस प्रकार घेरे हुए पड़ी है, जिस प्रकार उन्नत चक्रवाल पर्वत को घेरकर उत्तुंग तरंगों से भरा सागर पड़ा रहता है। वह (परिखा) वारनारी के मन के समान गहरी, असत्कविता के समान स्वच्छता-हीन (गंदी), कुलीन कन्याओं के जघन-तट के समान किसी के लिए भी अगम्य होकर सुरक्षित, तथा ऐसे मगरों से भरी है, जो (लोगों को) सन्मार्ग से हटाकर बुरे मार्ग पर खींच ले चलनेवाली इंद्रियों के समान प्रबल हैं।

गगन में संचरण करनेवाला मेघ-समुदाय, उस विशाल तथा पाताल तक गंभीर परिखा को देखकर समझता है कि यही भयंकर समुद्र है; और वहाँ उतरकर जल भर लेता है; फिर ऊपर उठकर उस प्राचीर को देखकर समझता है कि यह कोई गगनोन्नत पर्वत है और वहीं पर अपनी जलधाराएँ बरसाने लगता है।

ऊँचे प्राचीर के बाहर स्थित विशाल परिखा में अपनी सुरभि को चारों ओर फेंकता हुआ पंकज-वन खिला हुआ है; वह ऐसा लगता है, मानों मानिनियों के उज्ज्वल वदनों से जो कमल पहले परास्त हो गये थे, वे अब अपने समस्त बल को एकत्र करके युद्ध करने के लिए आ जुटे हों और उस प्राचीर को घेरकर पड़े हों।

बड़ी कुशलता के साथ लगाये गये यंत्रों से शोभित उस प्राचीर के चारों ओर

धरती को भेदकर जो परिखा बनाई गई है, उसके भीतर बड़े-बड़े मगर निवास करते हैं और ऊपर उठ-उठकर इस प्रकार डुबकियाँ लगाते रहते हैं, जिस प्रकार अतिगंभीर समुद्र के मध्य, अदम्य मद से डूबे हुए हाथी हों।

वे मगर, चोखे करवालों की जैसी अपनी पूँछों को हिलाते हुए जाज्वल्यमान नेत्रों से चिनगारियाँ उगलते हुए, एक दूसरे के साथ चढ़ा-ऊपरी करते हुए, आगे बढ़ते हैं, तो ऐसा लगता है, जैसे युद्धरंग में क्रोधोन्मत्त राक्षस टूट पड़े हों।

वह परिखा चक्रवर्त्ती की सेना की जैसी है; क्योंकि वहाँ उड़ते हुए हंस पक्षी श्वेत छत्रों के सदृश हैं; वहाँ के भयंकर मगर, ग्रहों से घिरे हुए पर्वताकार हाथियों के सदृश हैं; नालदंडों के साथ स्पंदित होनेवाले कमल-पुष्प घोड़ों के सदृश हैं; तथा वहाँ के मीन त्रिशूल, करवाल आदि शस्त्रों के सदृश हैं।

उस खाई के किनारे पर चाँदी के चबूतरे बने हैं और उन चबूतरों के मध्य फर्श पर स्वर्ण और स्फटिक-खंड बिछे हैं; इस कारण, देवताओं के लिए भी यह असंभव है कि वे उस स्वच्छ धरती और उस खाई के स्वच्छ जल को पृथक्-पृथक् पहचान सकें।

विचार करने पर ऐसा लगता है कि उस अति विशाल तथा दीर्घ परिखा-रूपी समुद्र के निकट फैले हुए वनों को, समुद्र के निकट स्थिर होकर पड़े हुए घनीभूत अंधकार कह सकते हैं; वे उपवन उस स्वर्णमय प्राचीर की नीले रंग की साड़ी के समान हैं।

उस नगर के चारों दिशाओं में चार नगर-द्वार हैं, जो दिगंतों में रहनेवाले गजों के समान खड़े हैं; पूर्वकाल में स्वर्गलोक को नापनेवाले त्रिविक्रम के चरण से भी अधिक उन्नत होकर, समस्त संपत्तियों से भरी इस धरती पर रहनेवाले प्राणियों को सन्मार्ग पर चलाते रहने के कारण वे चारों नगर-द्वार चारों वेदों की समानता करते हैं।

कबूतरी के बुलाते रहने पर भी कबूतर उसके पास जाकर प्यार से उसका आलिंगन नहीं करता; किंतु वहाँ पर निर्मित एक कपोती की प्रतिमा के पास (उसे सजीव समझकर) मुग्ध हो खड़ा रहता है। यह देखकर कबूतरी रूठकर अकलंक स्वर्णमय स्वर्गलोक में स्थित, पुण्यवान् लोगों के निवासभूत कल्पक-उद्यान में जा छिपती है।

[यहाँ से तीन पद्यों में नगर के गोपुर (शिखर) का वर्णन किया गया है।]

कटे हुए पत्थरों को चुनकर भित्तियाँ बनाई गई हैं, जिनके ऊपर स्फटिक पत्थर लगाये गये हैं; उनके ऊपर चमकते हुए स्वर्ण-पत्र बिछाये गये हैं; जिनके मध्य कांति बिखेरते हुए विविध रत्न जड़े हुए हैं; उन भित्तियों के ऊपर रुचिर रजतमय आड़े की छतें रखी गई हैं; जिनके ऊपर वज्रमय स्तंभ खड़े कर दिये गये हैं।

उन खंभों के ऊपर मरकत जड़ी हुई छतें बिछाई गई हैं; उन छतों पर हीरक-पत्थर चुने गये हैं; स्वर्ण-पत्रों और विद्युत् के समान चमकते रत्नों से निर्मित सिंह की प्रतिमाएँ यत्र-तत्र रखी गई हैं; उन सिंहों के ऊपर गोमेदक की छत बिछाई गई है।

उस छत के ऊपर एक दूसरी मंजिल निर्मित है, इस प्रकार सात मंजिलें बनी थीं, जो इस भाँति विशाल थीं, मानों सत्पलों के निवासियों के रहने के लिए ही बनाई गई हों;

शिल्प-शास्त्र के अनुसार निर्मित वह स्वर्ण-पत्रों से आवृत गोपुर अपनी कांति को ऊपर के सप्त लोकों तक फेंकता है; उस गोपुर पर माणिक्य-मय कलश रखे हैं। वह गोपुर ऐसा लगता है, मानों भूमिदेवी को मुकुट पहनाया गया हो।

धवल प्रासाद, जिनपर सफेद कौडि़यों को पकाकर बनाये गये चूने की पुताई की गई है और जो इतने उज्ज्वल हैं कि उनके सम्मुख चन्द्रमा भी काला दीखता है, ऐसे लगते हैं, मानों भयंकर प्रभंजन के चलने से क्षीर सागर से उत्तुंग तरंगें ऊपर की ओर उठ आई हों।

(उन धवल सौधों के उपरिभाग में) बिंदियोंवाले सुन्दर कबूतरों के रहने के लिए दरबे (कबूतरों के आवास) बने हुए हैं, जिनमें सोने के पत्र लगाये गये हैं; धवल प्रासाद पर ये सुनहले ताक ऐसे लगते हैं, मानों हिमाचल के शिखर पर अकलंक सूर्य की प्रभातकालीन सुनहली किरणों के पुञ्ज पड़े हों।

(उस नगर में) इस प्रकार के असंख्य कोटि प्रासाद हैं, जिनमें हीरकमय सुन्दर खंभों के मस्तकों पर मरकत-मय छतों को सुचारु रूप से बिठाकर उन छतों पर सजीव दीखनेवाले चित्र अंकित किये गये हैं; वे प्रासाद ऐसे हैं कि स्वर्ग-लोक के निवासी भी उन्हें देखकर विस्मित हो जाते हैं।

(उस नगर में) ऐसे अनेक सौध हैं, जिनके चन्द्रकांतमय तल पर चन्दन के खंभे खड़े करके, उनके प्रवालमय मस्तकों पर रक्तवर्ण के माणिक्य-मय शहतीर रखे गये हैं और जिनकी दीवारें इंद्रनील रत्नों से जड़ी हैं।

वे प्रासाद ऐसे हैं कि उनके खंभों के पाद कमल के आकार के हैं; वे नाग-लोक के सर्पों को छूनेवाले हैं; अतिमनोहर दर्शनीय अलंकारों से भरे हैं; विशाल अंतराल (खाली स्थान) से युक्त हैं; बाहर से सोने के उपकरणों से अलंकृत हैं; अतः वे (प्रासाद) वार-नारियों की तुलना करते हैं।

(वारनारियाँ) जिनके पाद कमल के समान होते हैं, जो कामी पुरुषों (चेटों)[1] का आलिंगन करती हैं; सुन्दर अलंकारों से सुशोभित होती हैं; उनका अंतर प्रेम से शून्य होता है, पर बाहर स्वर्णाभरणों से भूषित रहती हैं।

उन मनोहर प्रासादों के भीतर जानेवाले व्यक्ति उनकी शोभा पर मुग्ध होकर निर्निमेष नयनों से उसे देखते रह जाते हैं और जब दीवारों की कांति उन व्यक्तियों पर पड़ती हैं, तब वे देवों के समान दीखते हैं; अतः अपनी ऊँचाई के कारण देवलोक में भी पहुँचे हुए वे प्रासाद उन दिव्य विमानों के जैसे ही हैं, जो संकल्पमात्र से सब दिशाओं में चले जाते हैं।

वे प्रासाद, जो मनोहर आभरण-भूषित रमणियाँ और मालाधारी पुरुषों के आवास हैं और धर्म-मार्ग से कभी विचलित न होनेवाले (गृहस्थों) के आवास हैं, रत्न और स्वर्ण के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु से नहीं बने हैं; वे अपनी कांति से सूर्य को भी परास्त करनेवाले हैं।

गगन तक उन्नत, अपार संपत्ति से युक्त, अति प्रसिद्ध तथा देदीप्यमान कांति से

१. तमिल में 'चेट' शब्द के दो अर्थ होते हैं—(१) शेषनाग; (२) चेट या वेश्याप्रेमी। प्रासाद और वारनारी, दोनों, चेटों को आलिंगित करते हैं।

पूर्ण वे प्रासाद, उस नगर के उन निवासियों के समान हैं, जो त्रुटिहीन धर्म-मार्ग पर चलनेवाले हैं और चक्रवर्ती दशरथ के ही समान गुणवाले हैं।

वे प्रासाद, जिनमें झरनों के समान मुक्ताहार झूलते रहते हैं, विशाल मेघों के समान पताकाएँ फहरती रहती हैं, बड़े-बड़े रत्नों के समुदायों से युक्त हैं, पीतस्वर्णों से भरे हैं, सुन्दर मयूरों से निवासित हैं और पर्वतों की समानता करते हैं।

अगरु के धूम से सम्यक् मिले हुए और मेघों से पृथक् न पहचानने योग्य जो ध्वज-पट हैं, उनके साथ खड़े हुए दीर्घ दंडों के सिरों पर स्थित त्रिशूल इस प्रकार चमकते हैं, जैसे दिन के समय कौंधती हुई बिजलियों की पंक्तियाँ हों।

उन प्रासादों में, जहाँ डमरू-समान कटिवाली, पीन स्तनोंवाली, मयूर-सदृश रमणियों के चरण-युगल में बजनेवाले नूपुरों की ध्वनि मुखरित होती रहती है, बड़ी-बड़ी ध्वजाएँ लगी हुई हैं, जिनमें मुक्ताहार लटक रहे हैं; वह दृश्य ऐसा है, मानों कल्पवृक्ष अपने सुरभित पुष्पहारों के साथ खड़ा हो।

उन्नत पर्वतों के मध्य-स्थित ध्वजाएँ कदली-वन के समान ग्रह-मंडल तक उठी हुई फहरा रही हैं; गगन का चन्द्रमा (कृष्णपक्ष में) दिन में जो कांतिहीन होकर क्षीण होता हुआ झुकता जाता है, वह इसीलिए कि वे ध्वजाएँ उसे रगड़-रगड़कर (क्षीण और कांतिहीन) बना देती हैं।

जो स्वर्ण से बनाये गये दृढ मंडप नहीं हैं, वे पुष्पों के बने कुञ्ज-भवन ही हैं; जो सभा-भवन नहीं हैं, वे प्रासाद ही हैं; जो क्रीडा-पर्वत नहीं, वे रत्नमय कुटीर ही हैं; जो (भवनों के) आँगन नहीं, वे मुक्ता-वितान ही हैं।

अति उज्ज्वल स्वच्छ स्वर्ण से निर्मित उस अविनश्वर श्रेष्ठ नगर (अयोध्या) की छाया, बिजली के समान, दीप-शिखा के समान तथा सूर्य के किरण-पुञ्ज के समान स्वर्ग-लोक पर जाकर पड़ती है; अतएव वह देवलोक भी स्वर्णनगर बन गया है।

गगन में प्रकाशित होनेवाला वर्त्तुल प्रकाश-पुंज सूर्योदय-काल में अति दीर्घ हो, मध्याह्न में अति संकुचित हो, तथा संध्या में पुनः दीर्घ बनकर दिखाई देता है; अतः वह (सूर्य) वर्त्तुलाकार स्वर्ण-प्राचीरों तथा अग्नि-कण-सदृश माणिक्यों से सुचारु रूप में निर्मित उस अयोध्या नगर की परछाईं जैसा ही लगता है।

सुनिर्मित मेखला से भूषित सुन्दरियाँ वहाँ के स्वर्ण-प्रासादों में अगरु-धूम प्रसारित करती रहती हैं; उस धूम से भरे हुए मेघ समुद्र पर छा जाते हैं, तो वह विशाल सागर भी सुगंधित हो उठता है; उन मेघों से गिरनेवाली जलधारा के विषय में अब और क्या कहा जाये?

उन बालिकाओं की, जिनके अलक-जाल अभी-अभी (वेणी के) बंधन के उपयुक्त हो रहे हैं, अस्पष्ट उच्चरित बोली, सुन्दर वेणु-नाद के समान है; उन युवतियों की, जो अलक-जाल से सुशोभित हैं, बोली मकर-वीणा की ध्वनि के समान है और प्रौढ रमणियों की बोली, मधु बेचनेवालों के संगीत के समान है।

आँखों से चिनगारियाँ निकालनेवाले (मदमत्त) गज अपने पैरों से धरती को

खरोंच-खरोंचकर गड्ढे बना देते हैं ; जिससे मनोहर राजकुमारों का क्रीडा-स्थल असमतल (ऊबड़-खाबड़) हो जाता है ; फिर (खेलते हुए राजकुमारों के शरीरों से गिरनेवाले) सुगंध-चूर्णों से वे सब गड्ढे पट जाते हैं।

युवतियाँ गेंद खेलती हैं ; तब उनके आभरणों से मोती गिरकर धरती पर बिखर जाते हैं ; उन गिरे हुए मोतियों को असंख्य परिजन बुहार-बुहारकर एक ओर डालते रहते हैं ; इस प्रकार एकत्र मोतियों की राशियाँ शीतल कांति बिखेरती हुई चन्द्र को भी मंद बना देती हैं।

नृत्यशालाओं में सुन्दरियाँ नृत्य करती हैं ; उनके काले कटाक्ष-रूपी बरछे कामुक व्यक्तियों के हृदयों को खाते हैं (अर्थात् उनके हृदयों पर चोट करते हैं) ; फिर उन पुरुषों के प्राण, उन रमणियों की कटि के समान ही क्षीण होने लगते हैं और (उन रमणियों के प्रति) मोह बढ़ने लगता है।

कुछ उपवन सद्योविकसित पुष्पों से मधु प्रवाहित करते हैं ; उस मधु का पान करने की इच्छा से दक्षिण पवन और भ्रमर मंद-मंद गति से (उन उपवनों में) प्रविष्ट होते हैं ; उनके प्रविष्ट होते ही विरह से पीडित रमणियों के तपते हुए स्तन पीडा से कृश हो जाते हैं।

वक्र आकृतिवाली मकर-वीणा से उठनेवाले मधुर स्वर (रमणियों के) मनोहर संगीत के साथ ध्वनित होते रहते हैं ; उस संगीत के अनुकूल ही चर्म से ढके (मृदंग आदि) वाद्य बज उठते हैं ; (उस संगीत को सुनकर) रमणियों के साथ बोलते रहनेवाले शुक आँखें बंद कर सोने लगते हैं।

गाँठदार धनुष से युक्त ललाट (अर्थात्, सुपुष्ट भौंहों से सुशोभित) और बिंब-फल के समान लाल अधर, इन (दोनों) से शोभायमान सुन्दरियों के घने कमल-पुष्प-सदृश चरणों के आघात पाकर, जिनपर मृदुल महावर आदि से अलंकरण किया गया है, (पुरुषों की) बलिष्ठ भुजाएँ लाल हो उठती हैं।

उस नगर में, जहाँ (नारी-मणियों की मुख-कांति के कारण) समय का ज्ञान होना भी कठिन है, सब के द्वारा वंदनीय (सद्गुणवती) युवतियों के दीप-समान उज्ज्वल शरीर की कांति को देखने की इच्छा से ही चित्रों में अंकित प्रतिमाएँ भी अपलक हो खड़ी रहती हैं।

शीतल कमल-पुष्प पर निवास करनेवाली (लक्ष्मी) देवी के विश्राम-स्थल के सदृश बने हुए (अयोध्या के) प्रासादों में अंधकार को हटाता हुआ व्यापक कांति-पुंज क्या पुष्ट शिखाओं से युक्त घृत-दीपों से निकलता है, या रत्न-दीपों से निकलता है, अथवा सुन्दरियों के शरीर से ही निकलता है ?

नृत्य में कुशल युवतियाँ, मर्दल-ताल, संगीत आदि के अनुरूप, शास्त्र-सम्मत ढंग से, विविध पदगतियाँ दिखाती हैं ; उनकी पद-गतियों का विश्लेषण करके उन्हें समझानेवाले, उन रमणियों के मंजीर (पायल) ही नहीं, वहाँ के अश्वों के चरण भी हैं।[1]

---

१. वहाँ के अश्व भी उनकी पदगति का अनुकरण करके नाचने लगते हैं।

(वहाँ की रमणियों के मुख-मंडल पर) मंदहास उत्पन्न होते रहते हैं ; (उनको देखकर) कामुकों के मन में काम-वेदना उत्पन्न होती रहती है; इतना ही नहीं, (उन रमणियों के) मृदु स्तनों पर मुक्ताहार और रक्तस्वर्ण के हार निरंतर पड़े रहते हैं, जिस कारण उनकी कटियाँ दिन-दिन क्षीण होती रहती हैं।

अपने-अपने स्थानों में निरंतर नशे में चूर रहनेवाले तथा मनोहर गतिवाले बाल राजहंस हैं ; कमल-पुष्प हैं ; तडागों में स्थित मीन हैं; भ्रमरियों से युक्त भ्रमर हैं ; पुष्प-केसरों का आस्वाद लेनेवाले मत्त गज हैं; और इनके अतिरिक्त रमणियों के नेत्र हैं।

पर्वत की समता करनेवाले मत्तगजों से, जिनके भय से आँखों से आग उगलनेवाले सिंह भी सिंहनियों के साथ पर्वत की कंदराओं में (छिपे) रहते हैं, त्रिविध मदजल का प्रवाह ज्यों-ज्यों बहता है, त्यों-त्यों भूमि भी गहरी होती जाती है ; उस (मदजल) से जो कीचड़ उत्पन्न होता है, उसमें ऊँची ध्वजावाले सुदृढ रथ भी धँस जाते हैं।

अपने को अलंकृत करनेवाले जन अपने जिन पुष्पहारों को उतारकर फेंक देते हैं, वे नर्त्तनशील रमणियों के नूपुरों में उलझ जाते हैं ; अपने प्रियतम के साथ विहार में मग्न होकर सुन्दरियाँ अपने स्तनों पर से जिन चन्दन आदि के लेपों को उतारकर फेंक देती हैं, उन लेपों के कारण मार्ग पर चलनेवाले लोग फिसल जाते हैं।

अश्व, कभी न थकनेवाले अपने खुरों से धरती को कुरेदते रहते हैं, जिससे धूलि उड़कर (उन अश्वों के रत्नालंकारों और सवारों के रत्नाभरणों के) रत्नों पर छा जाती है ; इस प्रकार मंद पड़ी हुई रत्न-कांति को अश्वारोही पुरुषों की भुजाओं के पुष्पहारों से गिरनेवाला मधु फिर चमका देता है।

अदम्य मत्तगजों का मदजल 'वेगें' पुष्प के सदृश महँकता है ; उच्च कुल में उत्पन्न रमणियों के मुख कुमुद-गंध से युक्त हैं ; सुन्दरियों के अलक-जाल विविध पुष्पों की सुरभि से सुगंधित हैं ; और (उस नगर-वासियों के) आभरणों से अपार कांतिजाल छिटकता रहता है।

अनेक नगरों में से देव-नगरी (अमरावती) के विषय में क्या कहें, जो इस (अयोध्या नगरी) के उपमान के रूप में बनी हुई है ? वह अमरावती तो किसी भी गुण से उसकी समता नहीं करती है। स्वयं अलकापुरी भी, जो इस नगर के समान सब वस्तुएँ दे सकती है, यहाँ की पण्यवीथी (बाजार) को देखकर परास्त हो जाती है।

पुरुष-समाज में मुखरित वीर-वलय शब्द करते रहते हैं ; बरछे चमकते रहते हैं ; कांतिपूर्ण रत्नाभरण धूप फैलाते रहते हैं ; कस्तूरी, चंदन आदि अत्यधिक सुरभि को फैलाते रहते हैं ; मुक्ताएँ कौंधती रहती हैं ; भ्रमर गाते रहते हैं।

(उस नगर में) शंखों के नाद, शृंगों के नाद, मकर-वीणा आदि वाद्यों के नाद, मर्दल का नाद, किन्नर-वाद्य का नाद, छिद्रवाले वाद्यों (शहनाई, बाँसुरी आदि) के नाद तथा विविध प्रकार के बाजों के नाद, इस प्रकार उमड़ते रहते हैं कि समुद्र का घोष भी उस शब्द से मंद पड़ जाता है।

(सामंत) राजाओं के द्वारा (उस नगर में) दिये जानेवाले राजस्व तथा अन्य द्रव्यों को मापकर लेने के लिए मंडप बने हैं ; हंस-सम मंदगतिवाली रमणियों के नृत्य

के लिए मंडप बने हैं; स्मरण रखने में कठिन तथा महान् वेदों का अध्ययन करने के लिए मंडप निर्मित हैं तथा अपूर्व कलाओं के अध्ययन के लिए पाठशाला-मंडप भी निर्मित हैं।

(उस नगरी की) उन विशाल वीथियों से, जहाँ सूर्य के समान प्रकाशित होनेवाले उज्ज्वल रत्नों के तोरण बँधे हैं, दिशाएँ छोटी हैं; मदजल के प्रवाह दूर से दिखाई पड़नेवाले पर्वत-निर्झरों से बड़े हैं; तुरंगों की पंक्तियाँ समुद्र से भी अधिक विशाल हैं।

अपने शिखरों से बरसते बादलों को छूनेवाले, तोरणों से अलंकृत प्रासादों में सुन्दरियों के उज्ज्वल वदन चमकते रहते हैं; उन वदनों में (दृष्टि-रूपी) शर चमकते रहते हैं; वे शर सिंह-सदृश (पुरुषों) के वक्ष में गड़ जाते हैं।

स्वर्णमय अलंकरणों से युक्त रथों की ध्वनि, घोड़ों की किंकिणियों की ध्वनि, राजाओं के वीर-वलयों की ध्वनि—मिलकर, विलक्षण शब्द उत्पन्न करते हैं; (उनके साथ-साथ जब) मधुर मंदहास-युक्त युवतियों के नूपुर बज उठते हैं, तब (उस ध्वनि को सुनकर) नदी के उन घाटों में, जहाँ कन्याएँ स्नान करती हैं, कमलों में विश्राम करनेवाले हंस भी बोल उठते हैं।

उस पुरातन नगरी में, कुछ (रमणियों) का समय, प्रणय-कलह में; (उस प्रणय-कलह के समाप्त होने पर) समागम के सुख में; प्राणों से भी अधिक मधुर संगीत में; गायिकाओं के गान सुनने में; विशाल जलाशयों में क्रीडा करने में; स्नानानंतर सुन्दर सुमनों को धारण करने आदि कार्यों में ही व्यतीत होता है।

उस महान् नगर के कुछ (पुरुषों) का समय, चिंघाड़ते हुए बलवान् मत्तगजों पर धीरता के साथ चढ़कर उन्हें चलाने में; ऊपर उठे हुए खुरवाले (अपने आगे के पैरों को ऊपर उठानेवाले) घोड़ों तथा रथों पर आरूढ होकर उन्हें चलाने में तथा दारिद्र्य के कारण याचना करनेवालों को पर्याप्त रूप से दान देने आदि कार्यों में ही व्यतीत होता है।

उस विशाल नगर में, कुछ (पुरुषों) का समय, एक गज को दूसरे गज से लड़ाने में; गाँठदार धनुष आदि शस्त्रों के अभ्यास में; दीर्घ केसरवाले अश्वों पर बैठकर विहार करने में तथा युद्धकला का अध्ययन करने आदि जैसे कार्यों में ही व्यतीत होता है।

उस मनोहर नगर में, कुछ (रमणियों) का समय, सुन्दर उद्यानों में पुष्पों का चयन करने में, अपने प्रियतमों के संग सरोवरों में हरिणियों के जैसे उछलते हुए क्रीडा करने में; अपने मुखों के स्वाभाविक रक्त वर्ण को और बढ़ाते हुए मद्यपान करने में तथा अपने प्रियतमों के निकट संदेश भेजने आदि कार्यों में व्यतीत होता है।

जिस प्रकार श्वेतवर्ण के मेघ विशाल गगन-मार्ग से सत्वर चलकर, मीनों से सुशोभित समुद्र के जल को पीते हैं, उसी प्रकार वहाँ के पुरातन प्रासादों पर लगी हुई ध्वजाएँ, गगन-पथ में ऊँची उठकर आकाश-गंगा के जल को पीकर (उसे) सुखा देती हैं।

सुदृढ तोरणों से अलंकृत गोपुर-द्वार और स्वर्ण के बने तीनों प्राचीर, देव-लोक से भी ऊँचे होकर ऐसे खड़े हैं कि उससे ऊपर बढ़ने के लिए अवकाश न होने के कारण रुक गये हों; वे ऐसे लगते हैं, मानों पर्वताकार भुजावाले वीरों के सद्गुणों से प्राप्त यश ही हों।

वहाँ के वनों में, खेतों में, समुद्र-सदृश खाइयों में, उन तडागों में, जहाँ सुन्दरियाँ क्रीडा करती हैं, निर्झरों और जलस्रोतों से युक्त पर्वतों में, प्रासादों के उपरी भाग में, मुक्ताओं के बने वितानों में, वीणा के समान स्वरयुक्त भ्रमरों से मुखरित उद्यानों में; इन सब स्थानों में पुष्पों और पल्लवों की सेजें बिछी रहती हैं।

उस नगर में, चर्म के बने नगाड़े आदि वाद्य प्रतिदिन ऐसे बज उठते हैं कि स्वच्छ जल बरसानेवाले मेघ और तरंगों से पूर्ण समुद्र भी डर जाते हैं; वहाँ के निवासियों में चोरों का भय न होने से, संपत्ति की रक्षा करनेवाले रक्षक नहीं हैं; वहाँ याचकों के न होने से कोई दाता भी नहीं है।

वहाँ कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है, जो विद्यावान् न हो, इसलिए वहाँ पृथक् रूप से विद्याओं में पूर्ण पारंगत कहने योग्य व्यक्ति कोई नहीं है और उन विद्याओं में निपुण न होनेवाला (अपंडित) भी कोई नहीं है; वहाँ के सब लोग सब प्रकार के ऐश्वर्य से संपन्न हैं, इसलिए (पृथक् रूप से) धनिक कहने योग्य व्यक्ति भी कोई नहीं है और निर्धन भी कोई नहीं है।

वह नगर ऐसा स्थान है, जहाँ विद्यारूपी एक बीज अंकुरित होकर, श्रवण किये जानेवाले अपार शास्त्ररूपी शाखाओं को फैलाकर, अपूर्व तपस्या-रूपी पत्रों को विस्तारित करके, प्रेमरूपी कली से युक्त होकर, धर्मरूपी पुष्प को विकसित करके, फिर आनन्द-रूपी विलक्षण फल प्रदान करता है। (१–७५)



अध्याय ४

शासन पटल

गरिमा-भरे उस अयोध्या नगर में राजाधिराज दशरथ महाराज राज्य करते थे; उनका नीतिपूर्ण शासन सातों लोकों में निर्विरोध चलता था; वही सद्धर्म के अवतार चक्रवर्त्ती महाराज दशरथ, इस महान् गाथा के नायक, श्रीरामचन्द्र के योग्य पिता थे।

सत्य, ज्ञान, करुणा, क्षमा, पराक्रम, दान, नीतिपरायणता आदि सभी गुण उनके वशीभूत थे। अन्य राजाओं में ये गुण होते भी हैं, तो वे अपूर्ण ही रहते हैं, पर महाराज दशरथ के पास वे पूर्णता को पहुँच चुके थे।

अपार समुद्र से परिवेष्टित इस धरातल पर ऐसा कोई भी नर नहीं था, जो महाराज के द्वारा प्रवाहित दान-जल से सिंचित न हुआ हो। वेद-विहित मार्गों पर चलनेवाले राजाओं के लिए जो भी यज्ञादि कर्म करणीय हैं और जिन्हें अबतक अन्य कोई राजा पूरे तौर पर नहीं कर सका था, उन्हें दशरथ ने संपन्न किया।

वे प्रजा पर माता के समान ममता रखनेवाले थे; लोक-हित करने में स्वयं तपस्या के समान थे; सभी को सद्गति देनेवालों में पुत्र के समान आगे रहनेवाले थे; (दुर्जनों के

लिए) व्याधि के समान थे, तो (सज्जनों के लिए) औषध के समान भी थे और सूक्ष्म तत्त्वज्ञान में तो वे स्वयं ज्ञान के ही समान थे।

दान-रूपी नौका पर चढ़कर उन्होंने याचक-रूपी समुद्र को पार किया था; अपनी बुद्धि-रूपी नौका से गंभीर ज्ञान से परिपूर्ण दुस्तर शास्त्र-सागर को पार किया था; अपने खड्ग-रूपी नौका के द्वारा शत्रु-रूपी समुद्र का संतरण किया था तथा सांसारिक भोग-वैभव के समुद्र को, उसमें मन-भर गोता लगाते हुए ही पार किया था।

उनके शासन-चक्र में पक्षी, मृग तथा वेश्याओं के हृदय, सब एक ही मार्ग पर चलते थे। इस प्रकार, महाराज दशरथ अमर कीर्त्ति-संपन्न, महान् दानी तथा अनुपम पराक्रमी थे।

उनका राज्य भी कैसा था? पृथ्वी के सीमांत पर स्थित चक्रवाल पर्वत उनके राज्य के प्राचीर बने थे; अनन्त सागर उनके राज्य की परिधि बना था; पृथ्वी पर स्थित कुल-पर्वत उनके विविध रत्नमय प्रासाद बने थे; मानों सारी पृथ्वी ही उनके लिए अयोध्या नगरी बन गई थी।

ज्योंही महाराज दशरथ अपने शत्रुओं का बल-पराक्रम ठीक-ठीक आँककर अपना भाला उन पर चलाने के लिए तेज करने लगते थे, त्योंही वे शत्रुनरेश उनके चरणों पर आ गिरते थे और उन राजाओं के रत्नजटित बड़े मुकुटों से महाराज के चरण-वलय[1] घिस जाते थे।

दशरथ का विशाल श्वेतछत्र अत्यन्त उन्नत तथा उज्ज्वल था, पृथ्वी की सारी प्रजा को वह शीतल छाया प्रदान करता था तथा कहीं भी अंधकार को रहने नहीं देता था। उसकी उपस्थिति में गगन में चमकनेवाले चन्द्रमा की क्या आवश्यकता थी?

रत्नजटित आभूषणों से सुशोभित वे चक्रवर्त्ती (दशरथ) सिंह-सदृश पराक्रमी थे और सभी प्राणियों की रक्षा अपने ही प्राणों के समान करते थे, मानों सारी चर-अचर सृष्टि उनके अंक में आनन्द से निद्रामग्न हो।

पर्वत के समान उन्नत भुजाओंवाले दशरथ का शासन-चक्र उष्ण-किरण सूर्य के समान ही ऊँचा था; वह भुवन-भर में संचरण करता हुआ सर्वप्राणियों की रक्षा करता था।

भुवन में कहीं भी कोई ऐसा वीर नहीं रहा, जो युद्ध में दशरथ का सामना कर सके; मर्दल (वाद्य) के आकार की दशरथ की भुजाएँ युद्ध करने के लिए फड़क उठती थीं। जैसे कोई गरीब किसान अपनी छोटी-सी खेती की बड़ी सावधानी से देख-भाल करता है, वैसे ही दशरथ अपनी प्रजा की रक्षा करते थे। (१—१२)



१. चरण-वलय : प्राचीन तमिल राजा लोग अपने दाहिने पैर में सोने का एक कड़ा पहनते थे, जो उनकी वीरता का चिह्न होता था।

अध्याय ५

शुभावतार

एक दिन दशरथ, ब्रह्म-समान तपस्वी वसिष्ठ को प्रणाम करके कहने लगे— मेरे लिए माता, पिता, दयालु भगवान् , ऐहिक, आमुष्मिक सुख—सब कुछ आप ही हैं।

मेरे पूर्व पुरुषों ने संसार की रक्षा इस प्रकार की थी कि उनकी कीर्त्ति सदा अक्षय बनी हुई है ; उनके कारण इस वंश का यश सूर्य से भी अधिक उज्ज्वल बना हुआ है ; अब भी मैं आपकी कृपा से इस विशाल धरती की उसी प्रकार से रक्षा कर रहा हूँ।

मैं सभी शत्रुओं का नाशकर साठ सहस्र वर्ष तक शासन करता रहा हूँ। अब मुझे इस बात के अतिरिक्त अन्य कोई भी चिन्ता नहीं है कि मेरे पश्चात् यह संसार शासक के अभाव में दुःख पायेगा।

(मेरे शासन में) महान् तपस्या-संपन्न मुनि तथा विप्र बिना किसी विघ्न-बाधा के सुखमय जीवन व्यतीत करते रहे हैं ; मेरे पश्चात् (संरक्षक के न होने से) सब लोग बहुत दुःख पायेंगे—यही बात मेरे मन में गहरी व्यथा उत्पन्न कर रही है।

उस चक्रवर्त्ती ने, जिसके विराट् प्रासाद के द्वार पर नगाड़े बजते रहते हैं और जो मणिमय मुकुट धारण किये हुए हैं, जब यह बात कही, तब कमल से उत्पन्न (ब्रह्मा) के पुत्र (वसिष्ठ) सोचने लगे।

तरंगायित क्षीर-सागर के मध्य शेषनाग की पीठ पर नील पर्वत के सदृश शयन करनेवाले, महान् मेघ-सदृश विष्णु भगवान् ने दुःख से पीडित देवों को यह वचन दिया था कि दूसरों को विनाश में निरत (रावण आदि) राक्षसों का मैं वध करूँगा।

स्वर्ग-वासी देवता असुरों के आतंक से पीडित होकर नीलकंठ (शंकर) के पास गये और प्रार्थना की कि हे भगवन् , असुरों से हमारी रक्षा कीजिए। शिवजी ने उत्तर दिया—'हमसे यह कार्य नहीं हो सकता।' तब शिवजी को भी साथ लेकर देवता ब्रह्मा के पास गये।

देवताओं का समाज उत्तर दिशा में चलकर मेरु पर्वत पर स्थित रत्नमय मंडप में पहुँचा, जहाँ चतुर्मुख (ब्रह्मा) निवास करते हैं। ब्रह्मा की प्रस्तुति करके, उन्होंने राक्षसों के आतंक तथा अपनी दुःख की कहानी उनसे कह सुनाई।

तब ब्रह्मा ने शिवजी से कहा—एक बार रावण का पुत्र मेघनाद इंद्र को बंदी बनाकर लंका ले गया था, मैंने उसे (मेघनाद से) छुड़ाया था। (अब आगे मैं वैसा कोई कार्य नहीं कर सकता)।

बीस करों तथा दस शिरों से युक्त, सद्बुद्धि-रूपी संपत्ति से हीन उस (रावण) के बल का प्रतिकार हमसे संभव नहीं ; नील मेघ के सदृश नयनवाले दयासागर विष्णु भगवान् ही युद्ध करके (असुर-बाधाओं का) निवारण करेंगे, तो हमारा निस्तार हो सकता है—इस प्रकार विचार कर—

उन्होंने ऊँची तरंगों से पूरित क्षीर-सागर में योग-निद्रा में शयन करनेवाले,

उन्नत मरकत पर्वत-सदृश विष्णु का अपने मन में ध्यान किया, और कर-कमल जोड़कर खड़े रहे ; उस समय ज्ञानियों को परमगति प्रदान करनेवाले (विष्णु) भगवान् —

गरुड पर आसीन होकर उनके सम्मुख प्रकट हुए, जैसे कोई नीलमेघ, विकसित कमलपुंजों[1] के साथ, दीप्तिमान् सूर्य और चन्द्रमा को अपने दोनों पार्श्वों में धारण किये, विकसित कमल पर आसीन लक्ष्मी के संग, स्वर्ण पर्वत पर चढ़ आया हो।

नीलकंठ और कमलासन (ब्रह्मा) अन्य देवताओं के साथ उठ खड़े हुए और विष्णु भगवान् के सम्मुख आकर उनकी स्तुति करने लगे। वे ज्यों-ज्यों स्तुति करते, त्यों-त्यों उनका आनन्द बढ़ता ही जाता और वे सब विष्णु के चरणों में नत हो गये।

(उन देवताओं ने) तुलसीदल-शोभित विष्णु के चरण-कमलों को बारी-बारी से अपने मस्तक पर धारण किया और यह मानकर कि राक्षसों का नाश अभी हो गया, उमंग से भर गये और आनन्द-मदिरा का पान करके मत्त हो गये और नाचने, गाने तथा इधर-उधर दौड़ने भी लगे।

स्वर्णगिरि से उतरनेवाले मेघ के समान मेरे स्वामी[2] (विष्णु भगवान्) गरुड की भुजाओं पर से नीचे उतर आये और गगनचुंबी मंडप में आ विराजे। वहाँ सिंह की आकृति-वाले सोने के सिंहासन पर आसीन हुए।

ब्रह्माजी के साथ देवर्षि, स्वर्ग-वासी (देवता) तथा चन्द्र को अपनी जटा पर धारण किये त्रिशूलधारी शिव, सब विस्मयाविष्ट हो और उमंग से भरकर भगवान् के निकट उपस्थित हुए और अत्याचारी राक्षसों के क्रूर कृत्यों का वर्णन करने लगे।

हे लक्ष्मीनाथ ! शरीर-बल से परिपूर्ण दशानन (रावण) तथा उसके अनुज आदि राक्षसों के कारण स्वर्गवासी और मर्त्यलोक के निवासी अपने कर्त्तव्य कर्म भी नहीं कर पा रहे हैं ; अब हमें जीने का मार्ग नहीं मिल रहा है—यों कहकर उन्होंने ठंडी आह भरी।

जब देवताओं ने ये वचन कहे, तब चन्द्र एवं मधु-भरे पुष्पों को अपनी जटा में धारण करनेवाले शिवजी ने उन देवों को अपने हाथ से मौन रहने का संकेत करते हुए स्वयं स्वामी की ओर देखकर, इस प्रकार निवेदन करने लगे—

अरुण नयनों से शोभित हे प्रभु ! राक्षस कहलानेवाले ये लोग, हमारे द्वारा दिये गये शक्तिशाली वरों के प्रसाद से तीनों भुवनों को आहत कर रहे हैं। अब (यदि आप उनका) संहार नहीं करेंगे, तो क्षणमात्र में वे तीनों भुवनों को मिटा देंगे।

शिवजी के यों कहने पर देवों ने भगवान् की स्तुति की ; तब अत्यंत सुगंधित तथा सुन्दर तुलसी की माला धारण किये हुए विष्णु ने उनसे कहा—आपलोग दुःख मत कीजिए, मैं धरणी पर वंचक जनों के शिर काटकर (आपको) दुःख-मुक्त करूँगा, आप मेरी एक बात सुनिए—

स्वर्ग के निवासी आप सब वानर-रूप धारण कर काननों, पर्वतों, और सुगंध-भरे उपवनों में, दलबल के साथ, जाकर रहिए। क्षीर-सागरशायी विष्णु ने दया करके आगे कहा—

---

१. कमलपुंज—कर, चरण आदि ; सूर्य और चन्द्रमा—शंख और चक्र; स्वर्ण का पर्वत—गरुड।

२. कंबर विष्णु-भक्त थे, इसलिए उन्होंने 'मेरे स्वामी' कहकर संबोधित किया है।

मायावी नीच राक्षसों के वर और उनके जीवन को अपने तीक्ष्ण शरों से विनष्ट करने के लिए हम, चतुरंग सेना-रूपी सागर के प्रभु दशरथ के पुत्र बनकर धरती पर जन्म लेंगे।

शंख, चक्र एवं आदिशेष (जिसका विष वडवाग्नि को भी झुलसा देता है) मेरे अनुज बनकर मेरी चरण-सेवा करेंगे। इस प्रकार, हम प्राचीरों से आवृत अयोध्या में अवतार लेंगे।

भगवान् के इस प्रकार कहने पर (वे देवता) यह जानकर कि सुगंधित तुलसी-धारी विष्णु ने हमारी रक्षा की, आनन्द से उछल पड़े, और कृतज्ञता-सूचक मंगल-गीत गाने लगे।

हमारी विपत्तियाँ दूर हो गईं—यह सोचकर इन्द्र आनंदित हो उठा ; परिशुद्ध कमलपुष्प पर निवास करनेवाले (ब्रह्मदेव), चन्द्रशेखर (शिव) और ऊँचे स्वर्ग के निवासी (देवता) कहने लगे कि हमारी अवनति (नीची अवस्था) का अंत हो गया। विष्णु भगवान् ने, जिन्होंने विशाल भूमि को अपने अन्तर्गत कर लिया था, गरुड पर चरण रखा।

मेरे प्रभु के गरुड पर सवार होकर चले जाने के पश्चात् पितामह ने देवताओं से कहा—रीछों के राजा जांबवान्, जो कि मेरे अंशभूत हैं, पहले ही धरती पर अवतरित हो चुके हैं। विष्णु के कथनानुसार आप सब भी पृथ्वी पर अवतार लीजिए।

इन्द्र ने कहा—शत्रुओं के लिए अशनितुल्य (वालि) तथा उसका पुत्र (अङ्गद) मेरे अंश हैं ; सूर्य ने कहा कि उस (वालि) का अनुज (सुग्रीव) मेरा अंश है और अग्निदेव ने 'नील' को अपना अंश बतलाया।

वायुदेव ने कहा कि 'मारुति' मेरा अंश है ; दूसरे देवता भी (शत्रुओं का) विध्वंस करनेवाले वानर बनकर भूमि पर जाने को सन्नद्ध हो गये; शिवजी ने भी वायु के अंशभूत हनुमान् को ही अपना अंश बताया ; देवताओं ने अपने-अपने अंश को लेकर अन्यान्य दिशाओं में भी जन्म लिया।

कृपालु कमलनयन (विष्णु भगवान्) के कथनानुसार ही कमलासन (ब्रह्मा), नीलकंठ (शिव) तथा अन्य देवताओं के अंश, मनोहर काननों में और अन्य भू-प्रदेशों में वानर बनकर अवतरित हुए। इस प्रकार, अपने-अपने अंश के रूप में पुत्रों को उत्पन्न करनेवाले देवता अपने-अपने स्थान को लौट गये।

पूर्वकाल में निष्पन्न इस वृत्तान्त को मन में विचारकर वसिष्ठ ने कहा पर्वत-समान बलिष्ठ भुजावाले नृपते ! तुम चिन्ता मत करो ; जो यज्ञ चौदह भुवनों पर शासन करनेवाले पुत्रों को दे सकता है, उसे अविलंब संपन्न करो, तो तुम्हारी मनोव्यथा दूर हो जायगी।

जब वसिष्ठ ने इस प्रकार कहा, तब बड़ी उमंग से भरे हुए राजाधिराज (दशरथ) ने उस महान् ऋषि के चरणों पर नतमस्तक होकर निवेदन किया—मैं तो आपकी ही शरण में रहता हूँ, मुझे कोई दुःख किस तरह सता सकता है ? उस यज्ञ के लिए मेरे करने योग्य कार्य क्या-क्या हैं, कहने की कृपा कीजिए।

दोष-रहित देवों और अन्य (दानव, दैत्य, मनुष्य, मृग आदि) लोगों को भी जन्म देनेवाले काश्यप के पुत्र, विभांडक मुनि हैं, जो गंगाधारी शिव के लिए भी स्तुत्य हैं। वे महान् वेदों के ज्ञान तथा धर्माचरण में अपने पिता की समानता करनेवाले हैं।

शास्त्रज्ञान, नीतिमार्ग तथा सत्याचरण में जो चतुर्मुख ब्रह्मा के समान हैं; जिसके सिर पर एक सींग है और जो संसार के सभी मनुष्यों को पशु-तुल्य समझते हैं, अब यहाँ आयें और पुत्र कामेष्टि-यज्ञ संपादन करें।

आदिशेष के सहस्र फणों पर स्थित इस पृथ्वी के सभी मानवों को पशुवत् समझनेवाले महान् तपस्वी, ब्रह्मदेव एवं शिवजी की भी प्रशंसा के योग्य, उस शान्त महर्षि (ऋष्य-शृंग) के द्वारा यदि यज्ञ संपन्न हो, तो तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होंगे।

महर्षि वसिष्ठ के इस प्रकार कहते ही, उनके चरण-कमलों की वन्दना कर, चक्रवर्त्ती दशरथ ने विनती की—हे प्रभो ! अकलंक, गुणों से भूषित वह महान् तपस्वी ऋष्य-शृंग कहाँ रहते हैं? अब मेरा कार्य क्या है? बताइए।

(वसिष्ठ ने कहा) —स्वायंभुव मनु के वंश में उत्पन्न उत्तानपाद नामक नरपति के, 'पूत' नामक बड़े-बड़े पापों को मिटानेवाले, पुत्र रोमपाद नामक राजा रहते हैं, जो शासन के योग्य सभी आवश्यक गुणों से विशिष्ट हैं; प्रेम एवं शीतल कृपा के आगार हैं और (शत्रुओं के लिए) सभी प्रकार से अजेय हैं।

उस रोमपाद द्वारा शासित राज्य में दीर्घकाल से वर्षा नहीं हुई थी, इस कारण जब बड़ा अकाल पड़ा, तब उन नरेश ने बड़े-बड़े शास्त्रज्ञ ऋषियों को बुलाकर महादान दिये। फिर भी वर्षा नहीं हुई; तब ऋषियों ने उन रोमपाद से कहा कि जब इस देश में ऋष्यशृंग आयेंगे, तब अवश्य यहाँ वर्षा होगी।

राजा विचार करने लगे कि भूतल के सभी मनुष्यों को पशुवत् माननेवाले, निष्कलंक गुण-भरे उस तपस्वी को यहाँ ले आने का उपाय क्या है? तब उज्ज्वल ललाट, दीर्घ नयन, रक्ताधर, मोती के तुल्य दाँत तथा मृदु स्तन-युगल से शोभित कुछ वारवनिताओं ने आकर राजा से निवेदन किया – हम जाकर उस तपस्वी को यहाँ ले आयेंगे।

उनका कथन सुनकर रोमपाद प्रसन्न हुए और आभूषण, वस्त्र, शुभ द्रव्य आदि देकर कहा कि हिमकर को भी लजानेवाले ललाट, बलिष्ठ बाँस-जैसी भुजाओं, कृश कटि, पीन स्तनों, काले केशों, भीत नेत्रों और बिंबाधर से युक्त पुष्पलता-तुल्य नारियो, तुमलोग जाकर उन्हें ले आओ। वे नारियाँ राजा को नमस्कार कर रथ पर चढ़कर चलीं।

स्वर्णाभरणों से विभूषित वे नारियाँ, कई योजन पारकर, उस स्थान पर पहुँचीं, जो ऋष्यशृंग के आश्रम से एक योजन दूर था। वहाँ वे पर्णकुटी बनाकर तपस्वियों के जैसे रहने लगीं।

काले और दीर्घनयनोंवाली वे वारवनिताएँ, उस महातपस्वी ऋष्यशृंग के पिता की अनुपस्थिति में उनके आश्रम में जा पहुँचीं। उन्हें देखकर ऋष्यशृंग ने समझा कि ये भी संसार के लोगों को मृग समान मानकर अरण्य में तपस्या करनेवाले ऋषि हैं और उनका उचित सत्कार किया।

ऋष्यशृंग ने उन्हें अर्घ्य आदि उपचारों के साथ उचित आसन दिये। उनसे मधुर बातें की, पलाश-पुष्प-सदृश अधरवाली वे नारियाँ मुनि को प्रणाम करके शीघ्र ही अपनी पर्णशाला को लौट आईं।

सुन्दर आभूषण पहनी हुई उन रमणियों ने कुछ दिनों के पश्चात् देवामृत से भी मधुर कटहल, केले तथा आम के फलों के साथ मीठे नारियल भी उस ऋषि को प्रेम के साथ समर्पित किये और विनती की कि हे अपूर्व तपस्संपन्न, आप इनका भोजन करें।

इसी प्रकार जब कुछ काल व्यतीत हो गया, तब एक दिन सुन्दर और उज्ज्वल ललाटवाली उन रमणियों ने ऋष्यशृंग से विनती की कि हे ऋषि! आप हमारे आश्रम में पधारें। मुनि भी उनके साथ चल पड़े।

अपने मन के ही समान दूसरों को मोह में डालनेवाली वे रमणियाँ उमंग-भरी और आश्चर्य-चकित होकर, उस श्रेष्ठगुणभूषित मुनि को साथ लेकर दीर्घ मार्ग पारकर यह कहती हुई चलीं कि 'हे महर्षे! वह देखो, वह, वही हमारा आश्रम है।'

सब विभूतियों से संपन्न (राजा रोमपाद के) नगर में उस ऋषिश्रेष्ठ के पदार्पण करने के पहले ही आकाश के बादलों ने, नीलकंठ के कंठस्थ विष जैसे काले होकर, घोर गर्जन के साथ ऐसी वृष्टि की कि तालाब, नदी आदि सभी जलाशय जल से परिप्लावित हो गये।

गगन पर उमड़कर काले मेघों के वर्षा करने से नदियों और तलावों की प्यास बुझ गई। ईख, लाल धान आदि की फसलें लहलहाने और बढ़ने लगीं। यह देखकर उस समय रोमपाद नरेश ने विचार किया कि—

बिंबफल के समान अधर, कमलतुल्य वदन, मोती के जैसे स्वच्छ दाँत, धूम के समान काले केशपाश—इनसे शोभित वारवनिताओं के प्रयत्न से, काम, क्रोध और मोह इन तीनों से रहित हो उन्नत हुए ऋष्यशृंग महर्षि उस नगर में पधार रहे हैं।

सुगठित भुजाओंवाले वह रोमपाद, वेदों के ज्ञाता मुनियों और अपनी सेना के साथ दो योजन आगे बढ़कर (वहाँ) सुगंधित केशवाली रमणियों के मध्य तप के बड़े पर्वत के समान ऋष्यशृंग मुनि के सम्मुख पहुँचा।

'अब हमारा त्राण हो गया'—यों कहता हुआ आनन्द के साथ वह ऋष्यशृंग के चरणों पर गिरा ; उसके नयनों से अश्रु बहने लगे ; फिर (राजा के चरणों पर गिरकर) नमस्कार कर उठनेवाली उन वेश्याओं से उसने कहा—तुम लोगों ने अपने प्रयत्न से मेरी विपदा दूर की है।

जब रोमपाद और मुनिगण वहाँ आये, तब ऋष्यशृंग को यह ज्ञान हुआ कि यह सब कपट है। उस समय देवता भी भयभीत हो उठे, (परन्तु) रोमपाद नरेश की प्रार्थना के कारण महर्षि मर्यादा का उल्लंघन न करनेवाले तरंगायित समुद्र के समान स्थित रहे।

वज्र-समान खड्गधारी उस नरेश ने उस मुनिश्रेष्ठ को प्रणाम किया और (अनावृष्टि से होनेवाली) अपनी विपदा, जिसे कोई भी दूर नहीं कर सका था और जो अब ऋषि

के आगमन से दूर हो गई थी, कह सुनाई। राजा के बार-बार प्रार्थना करने पर ऋषि के मन का सारा क्रोध दूर हो गया।

विशुद्ध ज्ञानी और वरप्रदाता उन महातपस्वी ने दया करके उस नरेश को आशीर्वाद दिये; अब राजा तत्त्वज्ञानी मुनियों-सहित रथ पर आरूढ होकर शीघ्र ही नगर जा पहुँचा।

रोमपाद उस ऋषिश्रेष्ठ के साथ अलंकृत नगर में पहुँचे; मुनि को अपने स्वर्णमय प्रासाद में ले जाकर एक अनुपम सिंहासन पर उन्हें आसीन कराया।

उस नरेश ने, इस प्रकार से कि कोई त्रुटि न रह जाय, अर्घ्य आदि सभी उपचार किये और आनन्दित हो पलाश-सम अधर-युक्त शांता नामक अपनी पुत्री को वेदों के विधान से (उन मुनि को) दान किया।

वसिष्ठ ने कहा—हे राजन्, उस अंगदेश की सारी विपत्तियाँ अब मिट गई हैं, वहाँ वर्षा होने लगी है, जिससे वहाँ का दुर्भिक्ष दूर हो गया है। महातपस्वी और ज्ञानी वे (मुनि) राजा के द्वारा दान में दत्त शान्ता नामक नारी की सेवाएँ पाते हुए उसी स्थान पर रहते हैं।

वसिष्ठ के यह कहते ही महाराज दशरथ ने उनके चरणों में प्रणाम करके कहा कि मैं अभी जाकर उन (ऋष्यशृंग महर्षि) को ले आता हूँ। (उस समय) राजा लोग उनकी स्तुति कर रहे थे; सुमंत्र आदि महान् मेधा-शक्ति-संपन्न मंत्रिगण दशरथ के प्रति नतमस्तक हो गये; जब दशरथ रथ पर चढ़े, तब देवताओं ने उन्हें आशीर्वाद दिये और यह विचारकर कि हमारी विपदाएँ आज से मिट गईं, उनपर पुष्पवर्षा की।

'काहल' और अन्य वाद्य समुद्र से भी बढ़कर घोष करने लगे; वन्दी-मागध तथा वेदपाठी ब्राह्मणों ने राजा की प्रशंसा की और आशीर्वाद दिये। मधुर अधरवाली रमणियों ने उनकी जय-जयकार की और उनके आयुष्मान् होने के गीत गाये। समुद्र-तुल्य सेना से घिरे हुए राजा दशरथ दीर्घ मार्ग पार करके सूर्य के जैसे (तेजस्वी) चक्रवर्त्ती रोमपाद के देश में जा पहुँचे।

चरों ने रोमपाद को समाचार दिया कि चक्रवर्त्ती दशरथ, जिनका यश शाखा-प्रशाखाओं में बढ़कर व्याप्त हो रहा है, (नगर के) निकट आ पहुँचे हैं। (यह सुनकर) रोमपाद वीर-कंकण पहनकर उनकी अगवानी करने चला; दृढ धनुष धारण करनेवाली सागर समान उसकी विशाल सेना भी उसे घेरकर चली; मागध स्तुति-पाठ करने लगे; बड़ी उमंग के साथ वह एक योजन दूर तक गया।

अपने सम्मुख आनेवाले वीर रोमपाद को देखकर दशरथ मेघ-गर्जन करनेवाले अपने रथ से उतर पड़े। उस समय रोमपाद दशरथ के चरणों पर आ गिरा। अपने हृदय में प्रेम की बाढ़-सी उत्पन्न करते हुए दशरथ ने उसे उठाकर गले लगा लिया; रोमपाद ने आनन्द से भरकर तीक्ष्ण-धार भाला धारण किये हुए चक्रवर्त्ती दशरथ से निवेदन किया—

बलवान् भुजाओं से विशिष्ट वह रोमपाद, जिसके भाले की चोट से शत्रु शव-मात्र रह जाते हैं, यों कहने लगा—देवलोक की रक्षा करनेवाले भाले से युक्त हे राजन्!

मेरे बड़े तप के फलस्वरूप ही आपका यहाँ पदार्पण हुआ है; अथवा इस राज्य का ही यह पुण्य-फल है। फिर, वह मधुवर्षा करनेवाले पुष्पों की मालाएँ पहने हुए चक्रवर्त्ती दशरथ को रत्नमय रथ पर आसीन कराकर अपने नगर में ले आया।

घनी पुष्पमाला को धारण करनेवाला रोमपाद, हाटक नामक स्वर्ण से निर्मित अपने प्रकाशमान प्रासाद के एक मंडप में पहुँचा; वहाँ रक्तकमल के समान चरणवाली, प्रतिभा-समान सुन्दर रमणियाँ जयगान कर रही थीं; स्वर्णमय सिंहासन पर चक्रवर्त्ती दशरथ को, जिनके भाले में जयमाला लिपटी हुई थी, बिठाकर (अर्घ्य आदि) सभी उपचारों के साथ भोजन कराया। महाराज दशरथ, जिन्होंने देवलोक की रक्षा की थी, (रोमपाद के स्वागत-सत्कार से बहुत) आनन्दित हुए।

उपचार के पश्चात् सुगंधित चंदन दिया। दशरथ को देख रोमपाद ने पूछा आपके यहाँ पधारने का कारण क्या है, कृपाकर बताइए। जब दशरथ ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया, तब नरेश (रोमपाद) ने विनती की कि हे मनोहर मुकटधारी राजन्! ईर्ष्या (आदि दुर्गुणों) से रहित महान् तपोधन ऋष्यशृंग को मैं वहाँ (अयोध्या में) ले जाऊँगा। (इसके बाद) दशरथ रथ पर सवार हो अपनी सेना के साथ अयोध्या जा पहुँचे।

दशरथ के चले जाने पर वीर रोमपाद वेद-स्वरूप मुनिवर के निवास पर पहुँचा और उनके चरण-कमलों को अपने स्वर्ण-मुकुट पर धारण किया। ऋष्यशृंग ने उससे उसके वहाँ आने का उद्देश्य पूछा, तो उत्तर दिया मुझे एक वर दीजिए। मुनि से पूछा— कौन सा वर?

रोमपाद ने विनती की – उज्वल कीर्त्तिमान्, नीतिज्ञ, शासक दशरथ, जो कबूतर की रक्षा के निमित्त तुला पर अपने शरीर को रखनेवाले उदारगुण शिवि के प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न हुए हैं, जिनका मन धर्म में सुस्थिर है, जिनके भाले ने देवों को पीडा देनेवाले असुरों के बल को नष्ट किया था, उनके रत्नखचित अट्टालिकाओं से शोभित अयोध्या नगर को (आप एक बार) जाकर और फिर लौटने की कृपा करें।

तपस्वी ऋष्यशृंग ने कहा कि हमने वह वर दिया (स्वीकार किया), अब तुम रथ ले आओ। तब तीक्ष्णधार भाला धारण करनेवाले रोमपाद ने उनके चरणों को प्रणाम किया और कहा कि अब राजाधिराज (दशरथ) की चिन्ता मिटी। वह गर्जन करनेवाले रथ को ले आया और निवेदन किया कि हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ! आप सुन्दर ललाट, लक्ष्मी-सदृश शांता के साथ इस रथ पर सवार हो जाइए।

वक्र धनुष को धारण करनेवाला रोमपाद हाथ जोड़कर खड़ा रहा। ऋष्यशृंग मुनि जो अपूर्व वेदों के समान थे, अपनी पत्नी शांता के साथ रथ पर (आसीन हो) अयोध्या की दिशा में चल पड़े। उनके साथ शान्तस्वरूप अनेक ऋषि उनका अनुगमन करते हुए चले।

धर्मदेवता, इंद्रादि देवगण, यह सोचने लगे कि उत्तेजित राक्षसों के अत्याचारों का विध्वंस करनेवाले (समस्त सृष्टि) के आदिभूत भगवान् जिस उपाय से (इस मर्त्यलोक में) अवतरित हों, वह उपाय (ये मुनिवर) अवश्य करने की कृपा करेंगे—यह सोचकर अत्यन्त आनन्दित हो उठे और दुंदुभि बजाकर श्रेष्ठ पुष्पों की वर्षा की।

उसी समय दूतों ने अयोध्या पहुँचकर, पर्वत-समान भुजावाले राजाधिराज (दशरथ) को ऋष्यशृंग के आगमन का समाचार दिया; यह समाचार सुनते ही दशरथ भी आनन्द-रूपी असीम पारावार में गोते लगाने लगे।

चक्रवर्त्ती (दशरथ) कूदकर उठे, रथ पर सवार हुए और ऋष्यशृंग के स्वागत के लिए प्रस्थान किया। देवों ने पुष्पवृष्टि की, मुनिगण आशीर्वाद देने लगे, नगाड़े बजे, और अन्य कई प्रकार के वाद्य भी बजने लगे; पाप-कर्म समूल नष्ट हो गये।

चक्रवर्त्ती दशरथ ने, जिसके नगाड़े भीषण गर्जन करते थे, विचार किया कि अब मेरे मन की पर्वत-समान चिन्ता मिट गई और (नगर से) तीन योजन दूर आगे बढ़कर उस मुनि का स्वागत किया।

जिन्हें देखने से ऐसा प्रतीत होता था, मानों समस्त तपस्याएँ एक निष्कलंक (व्यक्ति का) रूप धारण करके आई हों, वे अपने कटि के वल्कल एवं (ऊपर धारण किये) अजिन (हरिण-चर्म) के साथ अत्यन्त गंभीर दीख रहे थे।

जो देवताओं के कष्टों और राक्षसों के बल को मिटाने के कार्य में समर्थ थे एवं जिनके विशाल करों में यथाविधि छत्र, ब्रह्मदंड और कमंडल शोभित थे।

(ऋष्यशृंग के दर्शन होते ही) चक्रवर्त्ती उसी स्थान पर रथ से उतर पड़े और पैदल चलकर (उन मुनिवर के) युगल चरण-कमलों पर जा गिरे। उन मुनि ने जो चतुर्वेद-रूपी लता के फैलाने के लिए अलान के समान थे, अर्थगर्भित वाक्यों में (राजा को) आशीर्वाद दिये।

दशरथ ने मेघ के समान दान देनेवाले अपने दोनों हाथ जोड़कर अन्य ऋषियों को भी नमस्कार किया और उनके आशीर्वाद प्राप्त किये। गंभीर जल में रहनेवाली मछली के समान नयन से युक्त शान्ता के साथ ज्ञानी (ऋष्यशृंग) को रथ पर आसीन कराकर यथाविधि (अयोध्या को) ले आये।

मुकुटधारी चक्रवर्त्ती (दशरथ) कमल जैसे मुख एवं सौन्दर्यवाली रमणियों की जय-जयकार के साथ मुनिवर को साथ लेकर शीघ्र ही अयोध्या पहुँच गये, जहाँ (उनके स्वागत में) नगाड़े गरज रहे थे।

(वसिष्ठ महर्षि) जिन्होंने चोर के समान पापकर्म में निरत पाचों इंद्रियों को अपने वश में कर लिया था और श्रेष्ठ ऋष्यशृंग, जो मूर्त्तिमान् वेदों-जैसे थे, आपस में ऐसे मिले कि सारी राज-सभा दीप्त हो उठी।

दशरथ ने उन वेद-समान ऋषिश्रेष्ठ ऋष्यशृंग को श्रेष्ठ रत्नमंडप में ले जाकर निष्कलंक स्वच्छ रत्नखचित आसन पर बिठाया और सभी कर्त्तव्य उपचार आनन्द के साथ सुसंपन्न किये; फिर ये वचन कहे —

हे श्रेष्ठों में श्रेष्ठ! धर्म एवं तपस्या के जैसे शोभायमान पावन रूप! (आपके यहाँ पधारने से) मेरा पुरातन वंश, जो आपकी कृपा से उज्ज्वल हो उठा है, अब आगे भी बढ़ता रहेगा और शासन पर स्थिर रहेगा; मैंने पिछले जन्म में जो तप किये, वे भी अब विफल नहीं होंगे।

दशरथ के ये वचन कहते ही ऋष्यशृंग उन्हें उल्लसित दृष्टि से देखकर बोले— राजाओं के राजन्, सुनो, तुम्हें वसिष्ठ नामक एक महान् तपस्वी की सहायता प्राप्त है; तुम्हारे कार्य पुण्यमय हैं; क्या तुम्हारी समानता इस संसार के क्षत्रिय कर सकते हैं ?

इसी प्रकार के विविध मीठे वचनों को कहकर पूछा—पर्वत के समान दृढ धनुष धारण करनेवाली स्फीत भुजाओंवाले (हे राजन्) तुमने मुझे यहाँ जो बुलाया है, क्या वह अश्वमेध यज्ञ करने के लिए ही, स्पष्ट कहो।

(दशरथ ने निवेदन किया) मैंने अनेक वर्षों तक, बिना किसी कष्ट के, धरती का भार उठाया है; अबतक मेरे कोई संतान नहीं हुई (जो मेरे बाद इस भार का वहन करे); आप हमें समुद्र से घिरी हुई इस पृथ्वी की रक्षा करनेवाले पुत्र दीजिए और मुझे अमल यशस्वी बनाइए।

दशरथ के इस प्रकार वचन कहते ही, ऋष्यशृंग ने कहा –राजन्! तुम चिन्ता मत करो; एकमात्र इस मर्त्य-लोक की ही क्या, चतुर्दश भुवनों की रक्षा करनेवाले महाबली पुत्रों का प्रदान करनेवाला यज्ञ करने के लिए अभी, इसी स्थान पर, सन्नद्ध हो जाओ।

उस यज्ञ के लिए आवश्यक सभी वस्तुएँ (सेवकगण) शीघ्र ही ले आये; चक्रवर्त्ती (दशरथ) भी परिशुद्ध (सरयू) नदी में स्नान करके वेदशास्त्रोक्त विधान से बिना किसी त्रुटि के सम्यक् रीति से बनाई गई यज्ञशाला में जा पहुँचे।

शब्दायमान हो बढ़नेवाली तीनों अग्नियों को प्रज्वलित करके उसमें आहुति देने लगे। बारह मास व्यतीत होने के पश्चात् देव-वाद्य बज उठे, देवगण विशाल आकाश में इस प्रकार छा गये कि कहीं थोड़ी भी जगह खाली नहीं रही।

विकसित कमल जैसे कांतिमय वदनवाले देवता, सुगंधित कल्पवृक्ष के पुष्प बरसा रहे थे; (उसी समय) सद्‌गुणों से विभूषित ऋष्यशृंग ने भी उस अग्नि के मध्य पुत्र-दात्री आहुतियों का होम किया।

उसी समय (उस होमकुंड से) एक भूत प्रकट हुआ, जिसके केश धधकनेवाली अग्नि के समान थे और जिसके नेत्र लाल थे; वह एक मनोहर सोने के थाल में पवित्र मधुर सुधा-सदृश एक पिंड लिये हुए होम की अग्नि से शीघ्रता के साथ उपर को उठा,

उसने थाल को धरती पर रख दिया और पुनः होमाग्नि में अदृश्य हो गया। तपस्वी ऋष्यशृंग ने दशरथ से कहा—इस (भूत के) दिये हुए अमृतसम पदार्थ को यथाक्रम अपनी पत्नियों को दो।

उन मुनिवर के आज्ञानुसार ही दशरथ चक्रवर्त्ती ने उस अमृत-पिंड का एक भाग धूम के सदृश काले, कोमल और घुँघुराले अलकों तथा बिंबफल के समान अधरोंवाली लावण्य-पूर्ण कौसल्या को दिया। उस समय शंखध्वनि हो रही थी।

उस कोशल देश पर, जहाँ के तालावों, नदियों और बागों में हंस विचरते हैं, शासन करनेवाले दशरथ चक्रवर्त्ती ने बचे हुए पिंड का आधा भाग केकय-राजकुमारी कैकयी के हाथ में दिया; तब देवता आनन्दोच्चारण कर रहे थे।

(इसके बाद) दशरथ चक्रवर्त्ती ने, जो शत्रुओं के हृदयों में कंपन उत्पन्न करने-

वाले बल से विभूषित थे और निमि नामक चक्रवर्त्ती के श्रेष्ठ वंश में उत्पन्न थे, उस अमृत-पिंड का बचा हुआ भाग सुमित्रा को दिया। देवपति इंद्र यह समझकर कि अब मेरा शत्रु मिट गया, अपने साथियों के साथ हर्ष-रव कर उठा।

और, उदार स्वभाववाले उन चक्रवर्त्ती ने थाल में अमृत पिंड के जो टुकड़े (पिंड को तोड़ने पर) बिखरे थे, उन्हें भी सुमित्रा देवी को दे दिया; (इस समय) शत्रुओं के वाम अंग और संसार के अन्य सभी प्राणियों के दक्षिण अंग फड़क उठे।

अश्वमेध यज्ञ तथा पुत्रकामेष्टि यज्ञ के सभी कार्य मुनि ने संपन्न कराये। यज्ञ समाप्त होने पर सब लोगों से अपनी प्रशंसा सुनते हुए, संसार का शासन करनेवाले दशरथ आनन्द के साथ (यज्ञ-मंडप से) बाहर आये।

विधि-विहित यज्ञ-कर्म जब समाप्त हुए, तब मर्दल आदि वाद्य जोरों से बज उठे; (राक्षसों के अत्याचारों के कारण) दुःख भोगनेवाले दुःख-मुक्त हुए; चक्रवर्त्ती सभी मंडप में आ पहुँचे।

(राजा दशरथ ने) वेदों के अनुसार सब विहित कर्म अपने कुलदेवता विष्णु-भगवान् को समर्पित किये;[1] उसी विधान के अनुसार देवताओं को भी हविर्भाग दिये; तथा महामहिम श्रेष्ठ विप्रों को भी अपने करों से स्वर्ण-दान दिये।

(यज्ञ में उपस्थित) राजाओं को धन, रथ, घोड़े, अमूल्य सुन्दर वस्त्र आदि प्रत्येक की योग्यता के अनुसार भेंट किये; फिर बाजे-गाजे के साथ सरयू नदी के सुन्दर घाट पर पहुँचे और (अघमर्षण) स्नान किया।

नगाड़े बज रहे थे, मुक्ता-मंडित श्वेतच्छत्र ऊपर छाया दे रहा था, राजे घेरे हुए आ रहे थे; इस प्रकार दशरथ राजसभा में आ पहुँचे; अपने वेदज्ञान से ब्रह्मा को भी लजानेवाले वसिष्ठ महर्षि के चरणों पर नत हुए।

फिर तपस्वी वसिष्ठ की आज्ञा से, हिरन के सींग जैसे सींग से शोभायमान ऋष्यश्रृङ्ग के चरणों को प्रणाम करके ये वचन कहे—हे तपस्विवर! (आप की कृपा से) मैं कृतकार्य हो गया, इससे बढ़कर प्राप्य फल मेरे लिए और क्या हो सकते हैं?

हे प्रभो! आपकी कृपा से यह जन दुःखमुक्त हो, कृतार्थ हो गया। (दशरथ की बात सुनकर) ऋष्यश्रृङ्ग मन में आनंदित हुए और आशीर्वाद दिये। अपने साथ आये हुए मुनिगण के सहित वे रथ में बैठकर (रोमपाद की नगरी के लिए) चल पड़े।

दशरथ नरेश ने दुःखों से मुक्त हो फिर एक बार नम्रता के साथ मुनियों के चरणों की वंदना की; वे (मुनिवर) आनंदित हो, आशीर्वाद देते हुए वहाँ से (अपने-अपने स्थानों को) चले गये। दशरथ चक्रवर्त्ती सुखी जीवन विताने लगे।

कुछ दिन व्यतीत होने पर चक्रवर्त्ती की तीनों पत्नियाँ गर्भधारण का क्लेश अनुभव करने लगीं। उनके अनुपम सुन्दर मुख ही नहीं, परन्तु उनके मनोहर शरीर भी चन्द्र के समान कांतिपूर्ण दीखने लगे।

---

१. वैष्णवों के बीच यह प्रथा प्रचलित है कि कोभी कार्य करने के बाद उसे भगवान् विष्णु को समर्पित कर देते हैं। इसे 'सात्त्विक त्याग' कहते हैं।

जब उन गर्भवती देवियों के प्रसव का उपयुक्त समय आया, तब विशाल भू-देवी आनंदित हुई ; पुनर्वसु नक्षत्र और देवों से प्रशंसित कर्कटक लग्न, दोनों आनन्द से उछलने लगे।

सिद्ध, यक्ष, यक्षों की देवियाँ, तत्त्वज्ञानी ऋषिगण, देवगण, नित्यसूरिगण[1] पंक्ति-पंक्ति में (खड़े) आनंदित हो जयघोष कर उठे; धर्म-देवता का मनस्ताप मिट गया और वह आनन्द से भर गया।

सद्गुणों से भरी कौसल्या देवी ने, काजल और नव मेघों की छटा दिखानेवाली उस तेजोमय विष्णु को जन्म दिया, जो समस्त सृष्टि को अपने उदर में लीन कर लेता है और जो महान् वेदों के लिए भी ज्ञानातीत है ; (उसके जन्म से) संसार की विभूति बढ़ गई।

देवता लोग दसों दिशाओं में और आकाश में स्थित हो आनन्द-घोष कर रहे थे ; इन्द्र आदि प्रणाम करके जय-जयकार कर रहे थे ; ऐसे 'पुष्य नक्षत्र' और 'मीन लग्न' से युक्त शुभ घड़ी में निष्कलंक केकय-राजपुत्री ने एक पुत्र को जन्म दिया।

कल्पवृक्ष के अधिपति, पर्वतों के पंखों को काटनेवाले इन्द्र तथा उनके साथी अंतरिक्ष में आनन्द-नाद कर रहे थे। बाँबी में रहनेवाले सर्प (आश्लेषा नक्षत्र[2]) के साथ 'कर्कटक' (लग्न) ने भी नया जीवन पाया ; पट्टमहिषियों में सबसे छोटी, कोमल लता-तुल्य सुमित्रा ने लक्ष्मण को जन्म दिया।

आदिशेष के सहस्र फणों से वहन की गई भूमि आनन्द से नाच उठी ; वेद नाट्य करने लगे ; सिंहराशि और मघा नक्षत्र ने ऊँचा जीवन पाया ; (इसी समय) विष के समान काले नयनोंवाली सुमित्रा ने एक दूसरे पुत्र को जन्म दिया।

'राक्षस मिट गये'—इस खयाल से आनंदित हो अप्सराएँ नाच उठीं ; किन्नर अपने अमृत-मधुर स्वर में गा उठे ; विविध वाद्य बजने लगे ; देवगण (आनन्द से) इधर-उधर दौड़ने लगे।

रानियों की सखियाँ दौड़कर दशरथ के पास गईं ; पुत्र-जन्म का समाचार सुनाकर आनन्द-नृत्य किया ; (ज्यौतिष में निपुण) ब्राह्मणों ने एकत्र होकर नक्षत्र और ग्रहों की स्थिति का अवलोकन करके कहा कि अब यह संसार दुःखों से मुक्त हो जायगा।

मुखपट्ट[3] से सुशोभित गज के समान गंभीर और नीतियुक्त श्रीरामचन्द्र के शुभावतार के समय मेष (चैत्र) मास था ; तिथि नवमी थी ; नक्षत्र पुनर्वसु था ; श्रेष्ठ लग्न

---

१. वैष्णवों के अनुसार श्रीवैकुंठ में विष्णु की चरण-सेवा करनेवाले गरुड, अनन्त, विश्वक्सेन आदि भक्त 'नित्यसूरि' कहे जाते हैं। भगवान् की आज्ञा से ये लोक-कल्याण के लिए कभी-कभी पृथ्वी पर अवतार भी लेते हैं।

२. लक्ष्मण का जन्म कर्कट राशि और आश्लेषा नक्षत्र में हुआ था। आश्लेषा नक्षत्र सर्पाकार होता है। साँप और केंकड़े की मित्रता बतलाकर कवि ने चमत्कार दिखाया है।

३. मुखपट्ट : हाथियों के मुख पर लगाया हुआ सोने या चाँदी का रत्न-जटित कवच।

कर्कटक था, ग्रहस्थानों की परीक्षा करके देखने पर (विदित हुआ कि) ग्यारहवें गृह में चार ग्रह उच्च स्थान में थे।

ज्योतिषियों ने श्रीरामचन्द्र की जन्म-पत्री तैयार कर दी ; फिर अन्य राजकुमारों की जन्मपत्रियाँ भी उपयुक्त क्रम से परीक्षा करके, स्वर्ण-फलक पर लिखकर, अत्यन्त चतुर देवगुरु बृहस्पति की प्रशंसा करते हुए, पढ़ सुनाईं।

दशरथ चक्रवर्त्ती ने आनन्द से (सरयू नदी में) स्नान किया ; अन्न तथा वस्त्र दान दिये; फिर जब श्वेत शंख बज रहे थे, तब वसिष्ठ मुनि को भी साथ लेकर अपने श्रेष्ठ कुमारों के मुख देखे।

दशरथ महाराज ने ढिंढोरा पिटवा दिया और आज्ञा दी कि 'राज्य-भर में सात वर्षों के लिए लगान माफ कर दिया जाय ; अन्न-भाँडारों के किवाड़ खोल दिये जायें, ताकि गरीब अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार अन्न उठा ले जायें।

(यह भी आज्ञा दी कि) युद्ध-कार्य बन्द हो जायें ; (कारागृह में) बंदी शत्रु-राजाओं को मुक्त कर दिया जाय और वे अपने-अपने राज्य को चले जायें ; ब्राह्मणों के नियमाचरण विना विघ्न के पूर्ण हों ; (मंदिरों में प्रतिष्ठित) देवता विशेष रीति से किये जानेवाले उत्सवों से संतुष्ट किये जायें।

देवालयों का संस्कार किया जाय ; ब्राह्मणों के निवासों, चौराहों और अन्य मार्ग-सन्धियों का नव-निर्माण हो ; प्रातः एवं संध्या के समय (देवालयों के) देवाताओं को मनोहर पुष्पहार समर्पित किये जायें।'

(चक्रवर्त्ती के यह) आज्ञा देते ही ढिंढोरा पीटनेवालों ने हाथियों पर बैठकर श्रुतिसुखद ढिंढोरे पीटकर सर्वत्र राजाज्ञा सुना दी ; नगर-निवासी और विद्युल्लता के समान क्षीणकटि नारियाँ आनन्द-सागर में डूब गईं।

नगर-निवासी प्रेम से भरकर आनन्द-नाद कर उठे ; उनके शरीर पुलकायमान हो गये और स्वेद-बिन्दुओं से भर गये ; राजा के सामने आकर जिन-जिन ने यह शुभ समाचार सुनाया, उन सबको बहुमूल्य भेंट दी गई ; कदाचित् उनके मन में यह विश्वास हो गया कि (राजकुमारों के रूप में) स्वयं विष्णु भगवान् ही अवतरित हुए हैं।

विशाल अयोध्या नगर में नारियों के झुंड, सखियों के समुदाय, पुरुषों के संघ तथा मित्रों के दल ने अतीव आनन्द के साथ तेल, चन्दन, घी, कस्तूरी तथा अन्य सुगन्धित द्रव्य अयोध्या की वीथियों में छिड़के।

इस प्रकार उस महानगरी के निवासियों ने बारह दिनों तक उत्सव मनाया और अपने मन में उमड़नेवाले आनन्द के कारण अपने-आपको भूल गये ; तेरहवें दिन अमर और सत्य तपस्यावाले वसिष्ठ ने (बालकों का) नामकरण करने की सोची।

मगर के साथ युद्ध करते समय जब गजराज के कर ढीले पड़ गये, तब उसने ज्योंही आदिशेष पर शयन करनेवाले आदिमूल भगवान् विष्णु का स्मरण किया, त्योंही आकर उसकी रक्षा करनेवाले उस परमार्थभूत विष्णु भगवान् का (वसिष्ठ ने) 'श्रीराम' नाम रखा।

अभीष्ट फल देनेवाले वसिष्ठ ने, जिनके लिए वेदों के यथार्थ तत्त्व हस्तामलक के समान थे, (रामचन्द्र के बाद) अवतरित दूसरे ज्योतिःपुंज का 'भरत' नाम रखा।

(जिसके उत्पन्न होते ही) वंचक (राक्षस) लोग मिट गये और देवता लोग तर गये ; भूमिदेवी करोड़ों कष्टों से मुक्त हुई ; उस अजेय और महाबली ज्योतिर्मय पुत्र का नाम 'लक्ष्मण' रखा।

ज्योतिःस्वरूप चौथा बालक ऐसा लगता था, मानों मोतियों के पुंज के मध्य रक्त-कमल विकसा हो। शत्रुओं का नाशक समझकर कुलगुरु ने उसका 'शत्रुघ्न' नाम रखा।

भूलकर भी असत्य पर न चलनेवाले (वसिष्ठ) मुनि ने जब उत्कृष्ट वेदमंत्रों का उच्चारण करके (चारों बालकों का) नामकरण किया, तब दान-नदियों ने चक्रवर्त्ती के हाथों से प्रवाहित होकर वेदशास्त्रों में निपुण ब्राह्मणों के सत्य अर्थों से भरे हुए हृदय-रूपी समुद्र को भर दिया।

समस्त संसार पर शासन करनेवाले राजाधिराज दशरथ (अपने ज्येष्ठ) कुमार से इस प्रकार प्रेम करते थे, मानों नीलोत्पलों के मध्य विराजमान रक्तकमल जैसे अतीव सुन्दर लगनेवाले श्रीरामचन्द्र के अतिरिक्त उन्हें दूसरे प्राण एवं शरीर ही न हों।

चारों कुमार, जिनकी तोतली बोली से अमृत बरसता था, अपनी सुन्दर विकंपित गति से भूमिदेवी की शोभा बढ़ाते हुए उसी प्रकार बढ़ने लगे, जिस प्रकार अंधकार को दूर करते हुए सूर्य बढ़ता है और स्वरों की ध्वनि के साथ चारों वेद (संसार में) बढ़ते हैं।

समय आने पर धवल चन्द्र से विभूषित शंकर समान वसिष्ठ मुनि ने यथाविधि उनके चूडाकरण तथा उपनयन-संस्कार कराये। (फिर) अमर वेदों एवं अनन्त शास्त्रों का इस प्रकार से अध्ययन कराया कि उनके ज्ञान की कोई सीमा ही नहीं रही।

देवताओं के एकमात्र नेता रामचन्द्र ने अपने भाइयों के साथ हाथी, रथ, घोड़े आदि सवारी तथा इसी प्रकार की अन्य (क्षत्रियोचित) विद्याओं की शिक्षा यथाविधि प्राप्त की और शत्रुओं का नाश करनेवाली सेना-संचालन कि रीति तथा धनुर्विद्या का भी अभ्यास किया।

वेदों के ज्ञाता मुनि, देवता, भूमिदेवी और उस नगर के सभी निवासी, यह सोचकर कि इन (राजकुमारों) से हमारे कष्ट एवं उनके कारण-भूत पाप और पुण्य कर्म भी मिट जायेंगे, उनके निकट से हटना नहीं चाहते थे।

श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण नदियों में, मेघों से आवृत (ऊँचे वृक्षों से भरे) उपवनों में और तड़ागों में साथ-साथ संचरण करते थे, जैसे ताने के साथ भरनी का सूत मिल गया हो; इससे भूमिदेवी कि तपस्याएँ प्रकट होती थीं।

भरत और शत्रुघ्न एक क्षण के लिए भी एक दूसरे से अलग नहीं होते थे ; रथ या घोड़े की सवारी करते समय या वेद-शास्त्रों का अध्ययन करते समय सदा एक साथ रहते थे। वे दोनों मेरे (लेखक के) स्वामी श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण के (जोड़े) जैसे रहते थे।

पराक्रमी राम और भरत अपने अनुज लक्ष्मण और शत्रुघ्न के साथ (प्रतिदिन) बड़े सवेरे नगर से बाहर सुगंध-भरे उपवनों में दयालु मुनियों के पास (अध्ययन के लिए)

जाते और सूर्यास्त के समय अपने सुन्दर नगर में लौट आते ; उस समय उनका स्वागत करने-वाले नागरिक जन आनन्द के कारण मेघों के आगमन से उल्लसित होनेवाले शस्य के समान दिखाई देते थे।

अयोध्यापुरी की नारियाँ, वहाँ के पुरुष, जो उन नारियों के पीन स्तनों के अनुरूप ही बलिष्ठ थे, तथा उनके बंधुजन, कौसल्या एवं दशरथ के सदृश ही अपने इष्टदेवों से प्रार्थना करते कि ये कुमार चिरंजीवी हों।

वेदों के लिए अगोचर, अनन्य समान श्रीरामचन्द्र और उनके साथ सदा लगे रहनेवाले लक्ष्मण को आते देखकर लोग उपमा देते हुए कहते थे कि (रामचन्द्र को देखने से ही ऐसा प्रतीत होता है) मानों नीलसमुद्र या कालमेघ उज्ज्वल विकसित कमलपुंज से शोभायमान हो, उत्तर दिशा में स्थित मेरु पर्वत के साथ आ रहा हो।

हमारे स्वामी रामचन्द्र अपने समक्ष आनेवाले नागरिकों को देखकर अपने मुख-कमल को विकसित कर बड़ी कृपा के साथ पूछते कि तुम्हारे कार्य क्या हैं? कोई कष्ट तो तुम्हें नहीं है? तुम लोगों की गृहिणियाँ एवं ज्ञानवान् संतति सुखी और स्वस्थ हैं न?

नगर-निवासी उत्तर देते—स्वामिन्! हम बड़े भाग्यवान् हैं ; आपके समान राजा को पाने पर हमें किस बात का अभाव हो सकता है? हमारे लिए सुखी जीवन प्राप्त करना कोई बड़ी बात नहीं ; (हमारी यही कामना है कि) जबतक ब्रह्मा जीवित रहें, तबतक आप हमारी आत्माओं पर एवं सप्तद्वीप विशिष्ट भूतल पर शासन करते रहें।

इस प्रकार, उस सुन्दर नगर के निवासियों की प्रशंसा प्राप्त करते हुए तथा अपने भाइयों के द्वारा अनुगत रहते हुए त्रिमूर्त्तियों के नेता श्रीरामचन्द्र जीवन बिताने लगे।

राजाधिराज दशरथ समस्त संसार को अपने श्वेत छत्र की छाया में आश्रय देते हुए, नगाड़ों की जय-ध्वनि सुनते हुए, मुनियों के द्वारा प्रशंसित होते हुए, निःसीम आनन्द-सागर में गोते लगाते रहते। (१—१३८)



अध्याय ६

समर्पण पटल

(दशरथ चक्रवर्त्ती) आकाश को छूनेवाले रत्न-खचित सभा-मंडप में आये। पुष्पभार से लदे कल्पवृक्ष से सुशोभित स्वर्गलोक के निवासियों को, उस मंडप को देखकर इंद्र के सभा-मंडप की भ्रांति हो गई।

(मंडप में पहुँचकर महाराज दशरथ) परिशुद्ध और कोमल (गद्देदार) सिंहासन पर विराजमान हुए। (उन्हें देखकर) गगन में संचरण करनेवाली अप्सराओं को यह संदेह हो गया कि यही उनके अधिपति इंद्र हैं; फिर (दशरथ के) हजार नयन न होने से उनका संदेह दूर हुआ।

उस सिंहबली दशरथ के सामने एकाएक बड़े क्रोधी विश्वामित्र ऋषि आ उपस्थित हुए, जिन्होंने कभी सभी प्राणियों और लोकों का अलग सर्जन करके नये देवगण तथा नये ब्रह्मा की भी सृष्टि करने का उपक्रम किया था।

मुनि के आते ही, दशरथ झट अपने आसन से उठकर उनके चरणों में नत हुए, जैसे कमलासन (ब्रह्मा) के आगमन पर इंद्र उठ खड़ा हुआ हो; तब दशरथ के वक्ष पर (उनके उठने के साथ) हार भी हिलडुलकर यों किरण फेंकने लगे, जिससे सूर्य की कांति भी परास्त हो जाती थी।

(दशरथ ने मुनि को) प्रणाम कर उन्हें रत्नों से जड़े हुए स्वर्णासन पर बड़े प्रेम से बिठाया और उनके चरणकमल-युगल की अर्चना करके, हाथ जोड़कर कहा कि (आपके आगमन से) मेरे प्रारब्ध कर्म की परंपरा अभी टूट गई। (अर्थात्, मैं कर्म-बंधन से मुक्त हो गया।

हे महात्मन्! आप इस नगर में सुलभता से पधारे और मैं आपकी परिक्रमा करके आपको प्रणाम कर सका, इस सौभाग्य का कारण यदि इस देश का किया हुआ तप मानें, तो वह नहीं है; या मेरे किये अच्छे कर्म मानें, तो वह भी नहीं है; हाँ इसका कारण मेरे पूर्वजों के द्वारा किया हुआ तप ही हो सकता है। जब दशरथ ने इस प्रकार कहा, तब विश्वामित्र ने उत्तर दिया—

शत्रुओं का वध करके उनके मांस से युक्त भाला धारण करनेवाले, हे (दशरथ)! मुझ जैसे मुनियों और देवताओं पर यदि कोई विपदा आ पड़े, तो सभी पर्वतों का उपहास करनेवाला धवल हिमाचल, क्षीरसागर, कमलासन के नगर (सत्य लोक) तथा कल्पवृक्ष से सुशोभित अमरावती के सदृश सुन्दर अट्टालिकाओं से विभूषित अयोध्या नगरी को छोड़, शरण देनेवाला स्थान क्या अन्य कोई हो सकता है?

हे चक्रवर्ती! मनोहर कल्पवृक्ष कि छाया में, जहाँ सुगंधित मधु यत्र-तत्र बिखरा रहता है, बैठकर शासन करनेवाला इंद्र जब राज्य से वंचित होकर तुम्हारे श्वेतच्छत्र की छाया में शरणागत हुआ था और अपने कष्ट बताकर सहायता की अभ्यर्थना करते हुए तुम्हारे सम्मुख आया था, तब तुमने ही तो उसपर कृपादृष्टि फेरकर कुलपर्वत-समान भुजाओं से युक्त 'शंबर' नामक असुर का समूल नाश करके इंद्र को उसका राज्य दिलवाया था; इन्द्र आज जो राज्य कर रहा है, वह तुम्हारा दिया हुआ ही तो है।

जब विश्वामित्र महर्षि ने इस प्रकार कहा, तब दशरथ के हृदय में आनन्द का एक समुद्र-सा उमड़ पड़ा, जिसका अंत कोई देख नहीं सकता था; उन्होंने हाथ जोड़कर मुनि से विनती की कि राज्यभार प्राप्त करने का जो फल हो सकता है, वह (आपके दर्शनों से) मुझे प्राप्त हो चुका; अब मुझे जो करना हो, उसकी आज्ञा दें; तब विश्वामित्र ने उत्तर दिया—

मैं एक यज्ञ करना चाहता हूँ; उस यज्ञ की रक्षा उन राक्षसों से करनी है, जो उसमें विघ्न डालने आयेंगे, जिस प्रकार काम, क्रोध आदि दुर्गुण, मुनियों को डराते हुए उनके पास आ पहुँचते हैं; तुम अपने चार पुत्रों में श्यामल (श्रीरामचन्द्र) को, युद्ध में अडिग रहकर उन राक्षसों से मेरे यज्ञ की रक्षा करने का आदेश देकर मेरे साथ भेज दो।

इस प्रकार विश्वामित्र ने दशरथ के मन में पीडा उत्पन्न करते हुए कहा, मानों यम ही प्राणों की याचना कर रहा हो।

अपरिमेय तपस्या-संपन्न विश्वामित्र के वचन (दशरथ को) ऐसे लगे, मानों शत्रु-प्रयुक्त भाले से उत्पन्न मर्मस्थान के घाव में लूक घुस गया हो। अंतर की पीडा से निकाले जानेवाले उनके प्राण दोलायमान हो उठे, जिससे उन्हें ऐसी वेदना हुई कि कोई जन्म का अंधा आँखें पाकर फिर खो बैठा हो।

निरंतर बहनेवाले मधु के छत्ते के समान मधुस्रावी मालाओं से सुशोभित उस चक्रवर्त्ती ने किसी प्रकार अपनी पीडा को दबाकर मुनि से निवेदन किया—हे महात्मन्! यह राम तो अभी छोटा है, शस्त्र चलाने का अभ्यास भी इसे नहीं है, यदि राक्षसों का वध ही आपका उद्देश्य हो, तो अपनी जटा के एक ओर से गंगा को प्रवाहित करनेवाला शिव, चतुर्मुख ब्रह्मा अथवा पुरंदर भी आकर विघ्नकारी बनें, तो उन विघ्नों का भी विघ्न बनकर मैं आपके यज्ञ की रक्षा करूँगा। आप यज्ञ करने के लिए प्रस्तुत हो जायें।

दशरथ के इस प्रकार कहते ही मुनि, जो किसी समय अपर सृष्टि करने के लिए उद्यत हो गये थे, क्रोध से उबल पड़े; देवता यह आशंका करने लगे कि सृष्टि का अन्तकाल आ गया है; आकाश में चमकनेवाला सूर्य भी अदृश्य हो गया; जहाँ-तहाँ स्थावर वस्तुएँ भी घूर्णायित होने लगीं; (मुनि की) भौंहों के घने कोने (उनके) उठे हुए ललाट पर फैल गये; नयन रक्त वर्ण हो गये; सभी दिशाओं में अँधेरा छा गया।

मुनि (विश्वामित्र) को क्रुद्ध जानकर (वसिष्ठ ने) उनसे प्रार्थना की कि हे मुनि, क्षमा करें; और (दशरथ से) कहा—जब तुम्हारे पुत्र को अप्राप्य हित स्वयं आकर प्राप्त हो रहा है, तब क्या उसका अवरोध करना उचित है?

हे राजन्! आज वह समय आया है, जब तुम्हारे पुत्र श्रीराम को अनन्त विद्याएँ उसी प्रकार प्राप्त हो रही हैं, जिस प्रकार वर्षा से बढ़ी हुई नदी की धाराएँ (स्वयं) सागर में जा मिलती हैं। (वसिष्ठ के) ये वचन सुनकर—

और गुरु की आज्ञा मानकर जयशील नरपति ने (अपने सेवकों को) आज्ञा दी कि तुम लोग जाकर राम को यहाँ ले आओ; सेवकों ने जाकर राम से निवेदन किया कि चक्रवर्त्ती आपको बुला रहे हैं; समाचार पाकर ज्ञानातीत श्रीरामचन्द्र अपने पिता के निकट आये।

दशरथजी ने रामचन्द्र को तथा उनके साथ आये हुए भाई लक्ष्मण को, चारों वेदों में निष्णात विश्वामित्र को दिखाकर कहा—प्रभो! इनके सत्पिता आप ही हैं; अनुपम माता आप ही हैं; मैंने इन्हें आपके सुपुर्द कर दिया; इनके अनुकूल जो भी कार्य हो, इनसे लीजिए। यों कहकर मुनिवर को अपने पुत्र सौंप दिये।

कुमारों को प्राप्त करके (कामादि) दुर्गुणों से रहित विश्वामित्र का क्रोध शान्त हो गया। उन्होंने (दशरथ को) आशीर्वाद दिया। फिर कुमारों से कहा—चलो अब हम जाकर यज्ञ सम्पन्न करेंगे। तीनों वहाँ से चलने को उद्यत हुए।

सभी लोकों की रक्षा करवाले (राम) ने विजयप्रद खड्ग अपनी कटि से बाँधा;

सत्य के समान ही दो अक्षय तूणीर अपनी पर्वत-जैसी दोनों ऊँची भुजाओं से बाँधे और (वाम कर में) विजय देनेवाला धनुष धारण किया।

(रामचन्द्र) अपने अनुज के साथ सभी प्रकार से (आयुधों से) सन्नद्ध हो, विश्वामित्र की छाया के समान उनका अनुसरण करते हुए, अयोध्या का ऊँचा स्वर्णमय प्राचीर पारकर यों चले, मानों पिता दशरथ के प्राण शरीर छोड़कर जा रहे हों।

(वे तीनों) अयोध्या नगरी को, जिसकी समानता करने में देवताओं की अमरावती भी असमर्थ थी, पारकर सरयू नदी पर पहुँचे, जिसमें हंसों का कल्लोल नृत्यशाला में नर्त्तकियों के मंजीरों की ध्वनि-सा प्रतीत होता था।

(वे लोग) एक उपवन में ठहर गये, जिसके चारों तरफ के खेतों में ईख के डंठलों के परस्पर संघर्ष से निकला हुआ मधुरस खेत की मेड़ों को पारकर बह रहा था और जहाँ के भ्रमर कुड्मल-समान स्तनोंवाली रमणियों के केशपाश-जैसे दीखते थे।

जब सात सुनहले घोड़ों के रथ पर सवार होनेवाला सूर्य, अपने शिखरों पर ठहरे हुए मेघों के कारण, मुखपट्टधारी गज के जैसे शोभायमान दीखनेवाले उदयाचल की दृढ चोटी पर पहुँचा, तब वे (तीनों) सरयू के पार पहुँच गये।

श्रीराम ने एक वन को देखा, जहाँ ऐसे यज्ञ होते थे, जिनमें देवता स्वयं आकर अपनी इच्छा से आहुति ग्रहण करते थे ; जहाँ का सारा वन धुएँ से भरा हुआ था ; चरम तत्त्वों के ज्ञाता भगवान् श्रीरामचन्द्र ने दिव्य और महातपस्वी विश्वामित्र को प्रणाम करके पूछा कि यह कौन-सा वन है ? (१–२४)



अध्याय ७

ताडका-वध पटल

(विश्वामित्र ने कहा—) यह वही स्थान है, जहाँ मन्मथ ने चंद्रशेखर शिव पर पुष्प-बाण चलाये थे और शिव के ललाट-नेत्र की क्रोधाग्नि ने उसे जलाकर भस्म कर दिया था। उसी समय से वह (मन्मथ) अपने कुसुम-समान अंग के दग्ध हो जाने से अनंग बन गया।

हे देवों के अधिष्ठाता ! जब हस्तिचर्म धारण करनेवाले (शिवजी) ने उस मन्मथ को जलाकर भस्म कर दिया, तब उसका शरीर राख बनकर इस स्थान में बिखर गया। इसी-लिए इस प्रान्त को अनंग देश कहते हैं और इसी कारण से इस आश्रम का नाम 'कामाश्रम' पड़ गया है।

आसक्ति, इच्छा आदि का समूल नाश करके आत्मज्ञान के इच्छुक (भक्त लोग) जन्म मरण के चक्कर से मुक्ति पाने के लिए जिस (शिव) का ध्यान करते हैं, उन्हीं (शिवजी) ने स्वयं इस स्थान पर रहकर तपस्या की थी; फिर इस स्थान की पवित्रता का क्या कहना है ?

विश्वामित्र की बात सुनकर राम और लक्ष्मण आश्चर्य में पड़ गये ; फिर तीनों उस स्थान में पहुँचे ; वहाँ पहुँचकर उन्होंने, उनके स्वागत के लिए आये हुए सन्मार्गधन मुनियों की सत्संगति में पूरा दिन व्यतीत किया और (दूसरे दिन) जब विस्तृत किरणों से प्रकाशमान सूर्य उदयाचल के शिखर पर चढ़ने लगा, तब (वे वहाँ से प्रस्थान करके) एक मरुस्थल में पहुँचे, जो (धूप में) तप रहा था।

उस मरुस्थल में ग्रीष्म ऋतु को छोड़कर अन्य कोई ऋतु नहीं होती थी; वहाँ सूर्यदेव भूमि का समस्त सार पीने के लिए विजय-ध्वजा फहराते हुए संचरण करते थे ; गरमी के ताप के कारण वह स्थान ऐसा हो गया था कि यदि अग्निदेव भी उसका स्मरण करें, तो उनका मन भी कुम्हला उठे और उसकी ओर देखें, तो उनके नेत्र भी झुलस जायें।

यदि कोई उस मरुभूमि की उष्णता का वर्णन करना चाहे, तो वर्णन करनेवाले की जिह्वा झुलस जाय ; वहाँ पहुँचकर (सारी सृष्टि को) आवृत कर फैलनेवाला अंधकार तथा अंतरिक्ष-रूपी आवरण भी झुलस जायें ; वहाँ उदय होने पर सूर्य भी झुलस जाय ; मेघ झुलस जायें ; बिजली और वज्र भी झुलस जायें ; ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो वहाँ पहुँचकर झुलस न जाय ?

वह बालुकामय प्रदेश उन योद्धाओं के हृदय के समान ही सर्वदा तपता रहता था और कभी ठंडा नहीं होता था, जो लड़ने की शक्ति खोकर, बाणों एवं भालों की वर्षा को सहते हुए युद्ध-क्षेत्र में पड़े हों और जो वंचक शत्रुओं के कुकृत्यों के कारण अपना मान-रूपी श्रेष्ठ रत्न खो बैठे हों।

उस बीहड़ प्रदेश में कहीं सूखे हुए सेंहुड, अगरु आदि के वृक्ष खड़े थे, जिनके तनों को चीरकर भूत के जैसा काला अगरु निकल रहा था ; कहीं पत्तों से रहित बाँस के फट जाने से श्वेत मोती बिखर रहे थे ; कहीं विषैले नागों के मुख से गिरे माणिक्य विकीर्ण हो रहे थे।

भू-माता उस स्थान से हट नहीं सकती थीं ; क्योंकि वह अचला हैं ; (उस स्थान की अधिष्ठात्री देवी) कालिका भी वहाँ से हट नहीं सकती थीं ; क्योंकि उन्हें अपना स्थान नहीं छोड़ना चाहिए ; उस स्थान के ऊपर सूर्य का रथ भी दौड़ नहीं पाता था ; वहाँ के आकाश में मेघ भी नहीं जा सकते थे, न वहाँ वायु का संचरण हो सकता था।

वहाँ (दर्शकों के) नेत्रों को झुलसानेवाली विषाग्नि उगलनेवाला आदिशेष, आकाश को चीरनेवाली बिजली के समान चमकदार माणिक्य बिखेरता था। जब धरती की छाती को विदीर्ण करनेवाली सूर्य की प्रचण्ड किरणें उन माणिक्यों पर पड़ती थीं, तब ऐसा लगता था, मानों भू-देवी के शरीर में खुले हुए घावों से रक्त निकल रहा हो।

व्याकुल करनेवाली क्षुधा से बेचैन होकर बड़ा अजगर जीव-जंतुओं को निगलने के लिए अपना मुँह खोलकर वहाँ पड़ा रहता था ; गर्जन करनेवाला बलवान् हाथी गगन पर जलनेवाले सूर्य की उष्ण किरणों से रक्षा पाने के लिए छाया की खोज में इधर-उधर भागता था और सामने अजगर के खुले मुख को देखकर उसके भीतर शीघ्रता से प्रवेश कर जाता था।

उस बालुका-भूमि में जहाँ अग्निदेव अपनी अतुलनीय उष्णता के साथ शासन

करते थे, कौए और हाथी भी झुलसकर काले हो जाते थे और यत्र-तत्र पड़े रहते थे, जिन्हें देखने से ऐसा लगता था, मानों उस मरुभूमि से उठकर सारे गगन में छा जानेवाली उष्णता के कारण मेघ-समूह जल-भुनकर जहाँ-तहाँ गिरे पड़े हों।

उस स्थान में जो मृग-मरीचिका संचरण करती थी, उसे देखने से भ्रम होता था कि वरुणदेव ही यह सोचकर वहाँ आ पहुँचे हों कि (उस मरुभूमि की) उष्णता कहीं बढ़कर गगन को भी न छू ले और कहीं देवलोक भी न जल जाय। (अर्थात्) देवताओं पर अनुग्रह करके ही वे वहाँ आ पहुँचे थे।

उस संतप्त भूमि पर जो ग्रीष्म-रूपी राजा राज्य करता था, उसके बैठने के लिए बनाये गये सुनहले पैरवाले स्फटिक-सिंहासन के समान ही, वह मृग-मरीचिका ऊपर उठी हुई दिखाई देती थी।

वह धरती इस प्रकार शुष्क थी, जिस प्रकार उन आत्मज्ञानियों का हृदय (शुष्क) होता है, जो (पुण्य और पाप-रूपी) दुःख-दायक विविध कर्मों को मिटाकर तथा दुर्निवार्य काम, क्रोध और मोह-रूपी बाधाजनक तीनों मोर्चों को पार कर, भक्ति-मार्ग पर चलते हैं; अथवा उन नारियों के मन के समान (शुष्क) था, जो सुवर्ण के लिए अपना शरीर बेच देती हैं।

तपानेवाली गरमी में झुलसे हुए छोटे-छोटे कंकड़ वहाँ बिखरे पड़े थे, (गरमी के कारण) धरती में जो दरारें पड़ गई थीं, वे पाताल-लोक तक चली गई थीं; इस प्रकार लंबी राह मिल जाने के कारण जगत् को तपानेवाली सूर्य-किरणें श्रेष्ठ माणिक्य से विभूषित सर्पराज के लोक में भी अनायास ही पहुँच जाती थीं।

जब इस प्रकार जलनेवाली बालुकामय उस भूमि में तीनों पहुँचे, तब विश्वामित्र ने सोचा कि यद्यपि राम और लक्ष्मण अपार शक्ति-संपन्न हैं, तथापि वे पुष्प से भी अधिक कोमल हैं, अतः (इस मरुभूमि में चलने में) उन्हें किंचित् कष्ट हो सकता है।

(यह सोचकर) विश्वामित्र ने उनके मुखों की ओर दृष्टि डाली। इंगित को सहज ही जाननेवाले वे कुमार भी अपनी ओर देखनेवाले विश्वामित्र के चरणों के निकट जा पहुँचे। तब विश्वामित्र ने उन्हें ब्रह्मा द्वारा आविष्कृत दो विद्याएँ (बला तथा अतिबला) सिखाईं। दोनों ने उन मंत्रों का जप किया।

जब वे उन मंत्रों का जप करते हुए चलने लगे, तब प्रलयाग्नि को भी पराजित करनेवाली भीषण अग्नि से उत्तप्त उस प्रदेश में यात्रा करना उसी प्रकार सरल हो गया, जैसे स्वच्छ तथा शीतल जल में चलना होता है। उस समय भक्तों की इच्छा पूरी करनेवाले (श्रीराम) ने विश्वामित्र को प्रणाम करके पूछा—

हे ज्ञानशिरोमणे! क्या यह प्रदेश, भँवरों से भरी हुई गंगा को पुष्पमाला के रूप में अपनी जटा में धारण करनेवाले (शिव) की ललाट-दृष्टि पड़ने से इस प्रकार जल गया है, अथवा कोई और कारण है? क्या कारण है कि यह प्रदेश किसी निन्दनीय अत्याचारी नरेश के राज्य से भी अधिक उजड़ा हुआ पड़ा है?

(राम के) यह प्रश्न पूछने पर विश्वामित्र ने उत्तर दिया—एक ऐसी स्त्री का

वृत्तान्त तुम्हें सुनाता हूँ, जो अच्छे-अच्छे प्राणियों को मारकर खा जाती है, जिसका रूप यमराज के जैसा भयंकर है और जिसमें हजार मदमत्त हाथियों का बल है।

यक्षों के कुल में सुकेतु नामक निर्मल स्वभाववाला एक व्यक्ति उत्पन्न हुआ था, जो अपने बल से सारे संसार को चकित कर देता था; जिसका क्रोध अग्नि के समान जलानेवाला था; जो मोह से रहित था और जो हाथी जैसा बलवान् होने पर भी बड़ा कृपालु था।

सुकेतु के कोई संतान नहीं थी, इसलिए वह बहुत चिन्तित रहता था। उसने (संतान-प्राप्ति के लिए) एक लंबी अवधि तक कमल-पुष्प पर आसीन ब्रह्मदेव के निमित्त कड़ी तपस्या की।

हे सूक्ष्म ज्ञानयुक्त (रामचन्द्र)! (सुकेतु के तपस्या करते समय) वेदों के आश्रय ब्रह्मदेव उसके संमुख प्रकट हुए और पूछा कि तुम्हारा अभीष्ट क्या है? सुकेतु ने प्रार्थना की कि मेरे कोई पुत्र नहीं, इसलिए मैं दुःखी हूँ। पुत्र-प्राप्ति का वर दीजिए। ब्रह्मा ने उत्तर दिया—तुम्हारे कोई पुत्र नहीं होगा; एक पुत्री ही होगी।

तुम्हारे एक ऐसी पुत्री होगी, जो कमल-पुष्प पर निवास करनेवाली सरस्वती के सदृश नित्य-यौवना, मयूर-जैसी सुन्दर, लक्ष्मी की समता करनेवाली तथा एक हजार मत्त हाथियों के बल से युक्त होगी। तुम चिन्ता छोड़कर अपने घर जाओ।

ब्रह्मदेव के वरदान के अनुसार उसके एक पुत्री हुई। जब वह पुत्री कमल-पुष्प-वासिनी सुन्दर लक्ष्मी के सदृश युवती हुई, तब सुकेतु ने सोचा कि इसके अनुकूल पति कौन हो सकता है? अंत में अपनी ही जाति के अधिपति सुंद नामक यक्ष से उसका विवाह कर दिया।

सुंद और उसकी पत्नी ताडका, रात-दिन आनन्द सागर में डूबे रहते। उनके सुख की कोई सीमा नहीं रही।

बहुत दिन बीतने पर, लक्ष्मी-समान उस ताडका के गर्भ से पर्वत-सदृश भुजाओंवाला मारीच एवं मल्ल-युद्ध में निपुण सुबाहु उत्पन्न हुए, जिनके जन्म से सारा संसार भय से काँप गया।

ये दोनों कुमार माया में, वंचना में और अपार बल में इस प्रकार उन्नति करते गये कि उन्होंने अपनी माँ से भी बढ़कर इन कलाओं का अभ्यास कर लिया और उससे भी आगे बढ़ गये। उनका पिता सुंद, जिसका क्रोध जलानेवाला होता था, आनन्द की अधिकता के कारण—

दुर्गुणों से भरे असुरों का अत्याचार मिटानेवाले तथा विक्षुब्ध सागर को एक ही चुल्लू में भरकर पी जानेवाले महातपस्वी (अगस्त्य) के आश्रम में पहुँचकर ऊँचे वृक्षों को जड़ से उखाड़कर फेंकने लगा।

अधिक स्पृहणीय तपस्या करनेवाले मुनि जिस आश्रम में रहते थे, वहाँ के कृष्णसार, रुरु, ऋष्य आदि (जातियों के) हिरणों को मारकर खा लिया और ऊँचे 'सुरपुन्ना' आदि वृक्षों को तोड़ दिया। इसपर महातपस्वी (अगस्त्य) ने क्रोध से अपनी अग्निमय दृष्टि फेरकर देखा, तो वह जलकर भस्म हो गया।

स्वर्ण-कंकण धारण करनेवाली उस ताडका ने जब सुन्द की मृत्यु का समाचार सुना, तब वह भयंकर अग्नि के समान क्रोध से भर गई और यह कहते हुए कि उस मुनि का समूल नाश कर दूँगी, अपने दोनों पुत्रों के साथ अगस्त्य के आश्रम में जा पहुँची।

वे तीनों बड़ा भीषण गर्जन करते हुए और चिल्ला-चिल्लाकर अगस्त्य मुनि को पुकारते हुए (आश्रम में) जा पहुँचे। (उन्हें देखकर) वज्र, प्रलयाग्नि और युगान्तकाल के पवन भी भयत्रस्त हो उठे; देवता (भय के कारण) कान्तिहीन हो गये; सूर्य तथा चन्द्र भीत हो गये; विद्युत्-युक्त मेघ भी थरथराने लगे और ब्रह्माण्ड टूटने-सा लगा।

तमिल-भाषा-रूपी अपरिमेय समुद्र को लानेवाले[1] उस मुनि (अगस्त्य) ने अपने नेत्रों से क्रोधाग्नि बरसाते हुए हुंकार भरा और वज्र से भी कठोर ध्वनि में उन्हें शाप दिया कि विनाश का कार्य करने के कारण तुम लोग तुरन्त राक्षस बनकर पतित हो जाओ।

तुरन्त (वे तीनों) ऐसे राक्षस बन गये, जिनके नेत्रों से पिघले हुए ताँबे के समान क्रोधाग्नि निकल रही थी; जो इस संसार तथा देवलोक के निवासियों को मारकर खाते हुए तथा उन्हें भयभीत करते हुए संसार में विचरने लगे।

उस समय उस मुनि के क्रोध तथा उनके दिये हुए अभिशाप का प्रतिकार करने में असमर्थ होने के कारण वे वहाँ से हट गये और सुमाली[2] नामक राक्षसराज के पास आ पहुँचे; सुबाहु और मारीच ने सुमाली से निवेदन किया कि हम आपके पुत्र के समान आपकी सेवा में रहेंगे।

उस पातकी ताडका के पुत्र, एक लंबी अवधि तक छिपे रहे। जब रावण ने उत्पन्न होकर तपस्या के द्वारा महान् बल प्राप्त किया और उन दोनों को मामा कहकर संबोधित किया। तब, वे बाहर निकल आये और सभी लोकों का विध्वंस करते हुए प्रलय-काल के प्रभंजन के समान विचरने लगे।

---

१. दक्षिण में यह कथा प्रसिद्ध कि है संस्कृत-भाषा कीअभिवृद्धि करने के लिए काशी में ऋषियों का एक संघ स्थापित हुआ था। अगस्त्य भी उस संघ के सदस्य थे। एक बार अन्य ऋषियों के साथ अगस्त्य का विकट मतभेद हो गया। इस पर अगस्त्य उस संघ से पृथक् हो गये और उन ऋषियों का गर्व चूर करने का निश्चय किया। उन्होंने शिवजी के निकट पहुँचकर अपना अभीष्ट सूचित किया। उसी समय, जिस मंडप में अगस्त्य शिवजी के साथ वार्त्तालाप कर रहे थे, वहाँ एक दिव्य सुगन्ध फैल गई। अगस्त्य ने जब उसके संबंध में शिवजी से पूछा, तो शिवजी उन्हें उस मंडप के एक कोने में ले गये, जहाँ तालपत्रों का एक ढेर लगा हुआ था। उस ढेर को देखते ही अगस्त्य के मुँह से 'तमिल' शब्द निकल पड़ा, जिसका अर्थ होता है मधुर। उन तालपत्रों पर जो भाषा लिखी हुई थी, उसका नाम उसी समय से तमिल हो गया। अगस्त्य ने शिवजी से तमिल-भाषा का उपदेश प्राप्त किया और दक्षिण दिशा में चले आये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने 'पोदियमलै' की पहाड़ी पर अपना आश्रम स्थापित किया और तमिल-भाषा के दो व्याकरण लिखे: १ पेरअगत्तियम (बड़ा अगस्त्तीयम्) और २ शिरुअगत्तियम (लघु अगस्त्तीयम)। फिर, उन्होंने अपने बारह शिष्यों को उस व्याकरण का उपदेश दिया। इस प्रकार, उन्होंने तमिल की अभिवृद्धि की। उपर्युक्त पद्य में इसी कथा की ओर संकेत है।—अनु०

२. सुमाली रावण की माता केवशी का पिता था, जो पाताल में रहता था।

इसके पश्चात् ताडका अपने अति प्रचंड पुत्रों से अलग होकर, इस वन में आकर रहने लगी, तपस्वी अगस्त्य के क्रोध का स्मरण करके उसका मन अग्नि के समान धधकता रहता है और इस वन के प्रान्तों में अग्नि की ज्वालाएँ फैली रहती हैं।

चाहे सारी धरती को उखाड़ फेंकना हो, चाहे सभी समुद्रों के जल को पी लेना हो, या गगन को ढाह देना हो—यह ताडका सबमें समर्थ है; वह जो चाहे कर सकती है; उसके लिए कोई भी कार्य असंभव नहीं; वह ऐसी लगती है, मानों संख्या और परिमाणहीन पाप ही इस स्त्री का रूप धारण करके आ गये हों।

यदि कोई चलने-फिरनेवाला ऐसा समुद्र हो, जिसके पास दो बड़े पर्वत हों, जिससे विष निकल रहा हो, जिसमें वज्रध्वनि से भी अधिक भीषण गर्जन हो, जिसके पास प्रलय-काल की अग्नि एवं दो अर्ध-चन्द्र[1] हों; तो उस स्त्री के भीषण शरीर से उसकी उपमा हो सकती है।

जिन सुन्दर भुजाओं को देखकर पुरुष भी स्त्रीत्व की कामना करते हैं, (जिससे कि उन भुजाओं का आलिंगन प्राप्त कर सकें) ऐसी भुजा-विशिष्ट (हे राम)! काले नाग को कंकण के रूप में पहननेवाली, हाथ में शूलायुध धारण करनेवाली और अरण्य में निवास करनेवाली उस कठोर स्त्री का नाम है—ताडका।

लोभ नामक एकमात्र दुर्गुण यदि किसी के मन में जमकर बैठ जाय, तो वह असंख्य सद्गुणों को मिटा देता है, उसी प्रकार अकथनीय अत्याचार करनेवाली उस राक्षसी ने इस विशाल भू-प्रदेश का विध्वंस कर डाला है, जहाँ पहले शस्य और वृक्षों की विस्तृत संपत्ति भरी पड़ी थी।

हे पुष्प-मालाओं से सुशोभित मेघ-सदृश (राम)! यह ताडका लंकेश्वर (रावण) की आज्ञा के अधीन रहती है, उसके दोनों पुत्र पर्वत के समान बलशाली होने के कारण मेरे लिए बड़ी बाधा बन गये हैं और मेरा यज्ञ अपवित्र कर देते हैं। यह (ताडका) सभी प्राणियों को उनके कुल-समेत मिटाती हुई अंगदेश-भर में विचरण करती रहती है।

विश्वामित्र ने कहा—हे पुरातन लोकों की रक्षा करते हुए सन्मार्ग पर चलनेवाले, सभी जन को अपने प्राण-समान समझनेवाले, सत्यकृतिवान् चक्रवर्ती (दशरथ) के पुत्र! अब उसके विषय में अधिक क्या कहूँ? वह कुछ ही दिनों में यहाँ के सभी प्राणियों को अपने उदर में समा लेगी।

विश्वामित्र की बात सुनकर पांचजन्य (शंख) धारण करनेवाले, (वाम) हस्त में धनुष धारण किये हुए (श्रीरामचन्द्र) ने सुगंधित पुष्पों से शोभायमान अपने सिर को हिलाकर पूछा—इस प्रकार का अत्याचार करनेवाली वह (राक्षसी) कहाँ रहती है?

पंचेन्द्रियों को अपने वश में रखनेवाले (विश्वामित्र) ने पर्वत, हाथी तथा ऋषभ-सदृश (रामचन्द्र) के वचन सुने और उत्तर दिया कि हे तात! यहाँ से निकट ही वह रहती है। उनके इतना कहने के पूर्व ही वह (ताडका) स्वयं वहाँ आ उपस्थित हुई, मानों अग्नि-ज्वालाओं से भरा हुआ कोई अग्निमय पर्वत ही आ उपस्थित हुआ हो।

१. दो अर्ध-चन्द्र ताडका के मुख से बाहर निकले हुए दो टेढ़े दाँतों के उपमान हैं।

जब वह (ताडका) चली आ रही थी, तब उसके नूपुर-अलंकृत पैरों के नीचे दब-कर पर्वत धरती के भीतर धँस रहे थे, जिससे धरती के तल में अस्त-व्यस्तता उत्पन्न हो रही थी और पहाड़ों के धँस जाने से बने गड्ढों में समुद्र का जल भर रहा था। अग्नि के समान तथा निर्भीक यमराज भी उससे डरकर विल के अन्दर जा छिपा था और अचल कहे जाने-वाले पर्वत भी (उसकी गति के वेग से उखड़-उखड़कर) उसके पीछे-पीछे उड़ते हुए आ रहे थे।

वेदों की विरोधिनी उस ताडका की भौंहों के कोने कुछ कंपित हो रहे थे; उसका गुहा-सदृश मुँह बंद था, उसके मुँह के दोनों छोरों पर दो लंबे दाँत, दो अर्धचंद्रों के समान, बाहर निकले हुए दिखाई दे रहे थे।

उसने मदजल बहानेवाले बड़े-बड़े हाथियों को लेकर तथा उनकी सूँड़ों को एक दूसरे से बाँधकर उनका हार बनाकर अपने गले में पहन रखा था, अतः (चलते समय) उसकी कमर लचक रही थी। जब उसने भयंकर गर्जन किया, तब देवलोक, दसों दिशाएँ, सातों लोक—सभी भयभीत होकर थरथराने लगे; (उसका) गर्जन सुनकर स्वयं वज्र-ध्वनि भी डर गई।

गरजनेवाले मेघों के सदृश वह ताडका उन तीनों (राम, लक्ष्मण और विश्वा-मित्र) को देखकर अट्टहास कर उठी; फिर अपने तीन पैनी नोकोंवाले, यम के समान भयंकर त्रिशूल पर दृष्टि रखती हुई और दाँतों को पीसती हुई, खुली हुई गुफा के समान अपना मुँह खोलकर कहने लगी—

मुझ दुर्दम बलशालिनी के शासन में रहनेवाले इस वन के सभी प्राणियों को मैंने खा डाला है; अब मेरे लिए स्वादिष्ठ भोजन दुर्लभ हो गया है; क्या इसी कारण से विधि से प्रेरित होकर मरने के लिए तुम लोग यहाँ आये हो, बताओ।

(यह कहते हुए) जब उसने अपनी आँखें खोलकर देखा, तब मेघ चूर-चूर होकर नीचे गिर पड़े; जब उसने क्रोध से भरकर अपना पैर पटका, तब गगनस्पर्शी पर्वत भी टूट-फूट गये; चंद्रमा के सुदृढ नुकीले छोरों के सदृश बड़े दाँतों को पीसती हुई वह क्रोध से यह कहकर दौड़ी कि इस भाले से इनकी छाती फाड़ दूँगी।

महात्मा (विश्वामित्र) चाहते थे कि उस ताडका का वध किया जाय, तथापि सद्‌गुण-संपन्न (राम) ने उसको मारने के लिए अपने तीखे शिरों का प्रयोग नहीं किया; (क्योंकि) यद्यपि वह उसके प्राण हरने के लिए उद्यत थी, तथापि उस महाभाग ने अपने मन में सोचा कि यह स्त्री है।

घने, मटमैले केशों और श्वेत दाँतोंवाली (ताडका) शूल फेंककर मारने के लिए उद्यत थी, फिर भी मालाओं से विभूषित (राम) उसका वध करने की इच्छा न करते हुए चुपचाप खड़े रहे। उनके मनोभाव को समझकर चतुर्वेदज्ञ कौशिक ने कहा -

हे रत्नविभूषित (श्रीराम)! जितने पापकृत्य हो सकते हैं, वे सब यह कर चुकी है; इसने हम तपस्वियों को इसलिए बिना खाये छोड़ दिया है कि हमारे शरीर सार-रहित, फीके और डंठल-मात्र हैं। क्या इस अत्याचारिणी को भी स्त्री समझना उचित है?

लज्जाशील स्त्री का वध करना उपहास का कारण हो सकता है, (परन्तु) इस (ताडका) का नाम लेने मात्र से पौरुषयुक्त बलवानों का सारा भुजबल नष्ट हो जाता है। फिर, पौरुष नामक गुण (इस ताडका के अतिरिक्त) अन्यत्र कहाँ स्थित है?

इंद्र इससे हार गया, असुर तथा स्वर्गवासी देवता इससे अपनी सेना के पराजित होने पर हारकर भाग गये; यदि इसकी भुजाएँ मंदर पर्वत की तुलना करती हैं, तो पौरुष में, पुरुष और इसमें क्या अंतर है?

राजाधिराज के प्रिय पुत्र (राम)! और एक वृत्तान्त तुमको सुनाना बाकी है, उसे भी सुन लो। प्राचीन काल में कभी ऐसा हुआ, इस प्रकार अनन्त तपस्यायुक्त विश्वामित्र कहने लगे—

भृगु नामक तपस्वी की मीन जैसे सुन्दर नयनोंवाली पत्नी ख्याति ने, बलवान् असुरों पर दया करके उन्हें छिपा रखा था और (उन्हें मारने के लिए दौड़कर उनके पीछे आनेवाले) चक्रपाणि विष्णु से उन्हें बचाया था, तब विष्णु ने उस नारी का वध किया था।

देवाधिराज इंद्र ने अपने वज्रायुध से कुमति नामक स्त्री का वध किया था, जो देव-लोक तथा भू-लोक के सभी निवासियों को अपना आहार बनाती थी।

स्त्री-हत्या के उस कार्य से विष्णु तथा इन्द्र को इतनी कीर्त्ति प्राप्त हुई, जिसका वर्णन हम नहीं कर सकते। उन्हें क्या किसी तरह का अपवाद मिला था? हे पुष्पों की घनी माला पहने हुए (राम)! तुम्हीं बताओ।

अपने अत्यंत बलशाली शासन-चक्र से समस्त पृथ्वी पर राज्य करनेवाले सूर्यवंश में उत्पन्न गरिमामय (रामचंद्र)! जिसने महात्माओं से विरोध किया, जिसने इस धरती के सहस्रों प्राणियों का वध किया और दृढतापूर्वक धर्म का विनाश किया, क्या उस ताडका के लिए पौरुष (पुरुषत्व) गुण भी आवश्यक है? (अर्थात्, इससे बढ़कर पुरुष कौन हो सकता है?)

हे यम के समान भयंकर शूलधारी (राम)! यम तो यह विचार करके ही कि प्राणियों का विधि-विहित जीवन-काल समाप्त हुआ या नहीं, उनके पुण्य कर्मों का भी खयाल करके, उन्हें अमरलोक में ले जाता है; परन्तु यह ताडका तो प्राणियों की गंध पाते ही उन्हें खा डालने की इच्छा रखती है; भला क्या, इससे बढ़कर भी कोई दूसरा यम हो सकता है?

हे प्रभो! अनेक जीवित प्राणियों को एक साथ अपने मुँह में डालकर चबा जाने से बढ़कर अधम तथा कठोर कृत्य और क्या हो सकता है? इस ताडका को जूड़ा बाँधने-योग्य केशोंवाली तथा भोली-भाली स्त्री मानने से हमारी निर्बलता ही प्रकट होगी।

शाश्वत धर्म का विचार करके ही मैंने तुम से (यह सब) कहा है; ऐसा मत समझो कि इस ताडका के साथ द्वेष-भाव रखने के कारण मैं ऐसा कह रहा हूँ। तुम जो इस पर क्रोधरहित हो रहे हो, यह धर्म नहीं है। इस राक्षसी का संहार करो। —इस प्रकार मुनि ने (राम से) कहा।

उन्होंने विश्वामित्र के ये वचन सुनकर कहा—हे सत्यस्वरूप! यदि धर्म-विरुद्ध

कार्य भी करना आवश्यक हो जाय और आप उसे करने का आदेश दें, तो आपका वचन वेद-वाक्य मानकर करना ही मेरे लिए परम धर्म है।

स्त्री-रूप में भी अग्नि के समान भयंकर उस ताडका ने, गंगा (सरयू ?) के मधुर प्रवाह से शोभित कोशल देश के राजकुमार (रामचंद्र) का मनोभाव जान लिया और (अपने) कठोर नयनों में क्रोधाग्नि प्रज्वलित करते हुए, अपने रक्तवर्ण हाथ के शूलाग्नि-रूपी तीक्ष्णाग्नि को (रामचंद्र के ऊपर) फेंका।

नवीन यम-स्वरूपिणी उस ताडका ने जाज्वल्यमान तीन फलोंवाले त्रिशूल-रूपी प्रलयंकर अग्नि को फेंका ; वह त्रिशूल (रामचंद्र की ओर) इस प्रकार बढ़ा, मानों पूर्णचंद्र को ग्रसने के लिए राहु आ रहा हो।

उस क्षण विष्णु के अवतारभूत (राम) ने किस तरह तीर उठाकर उसका प्रयोग किया और कब अपने धनुष को झुकाया, यह किसी ने नहीं देखा। सबने इतना ही देखा कि ताडका ने यम के हाथों से छीनकर जिस शूल को राम पर फेंका था, वह शूल दो टुकड़े होकर नीचे पड़ा है।

(इसके पश्चात्) अंधकार तथा मेघों की समता करनेवाली, काले रंगवाली, उस ताडका ने बड़े-बड़े पत्थरों को अपने हाथों से उठा-उठाकर इतना बरसाया कि समुद्र भी उन पत्थरों से पट जाय। पर, वीर (राम) ने पत्थरों की उस वर्षा को अपने धनुष से की गई शर-वर्षा से एकदम रोक दिया।

नीलवर्ण (श्रीराम) ने मुनि के शाप के समान अत्यन्त तीक्ष्ण तथा जलानेवाले एक शर को उस अंधकार-रूपिणी ताडका के ऊपर ज्यों ही प्रयोग किया, त्यों ही वह तीर ताडका के वज्र-पर्वत के समान कठोर छाती में घुसकर उसी प्रकार दूसरी ओर निकल गया; जिस प्रकार सज्जनों का उपदेश मूर्ख-जनों के हृदय को पार कर निकल जाता है।

अत्यन्त उन्नत स्वर्णमय मेरु पर्वत के समान गंभीर (रामचंद्र) के तीक्ष्ण अनी-वाले बाणों का प्रलयंकारी प्रभंजन ज्यों ही उठा, त्यों ही ताडका इस प्रकार (मृत हो) गिर पड़ी, जिस प्रकार गगन में गरजते हुए तथा पत्थरों की वर्षा करते हुए प्रलयकालिक मेघ, प्रभंजन से आहत हो, अपनी बिजली के साथ पृथ्वी पर आ गिरा हो।

जब गुफा-जैसा अपना मुँह खोलकर ताडका, जिसके बड़े-बड़े दाँतों में कई प्राणियों के मांस लगे हुए थे, नीचे गिरी, तब उसके शरीर से जो रक्त प्रवाहित हुआ, उससे वहाँ की धूल-भरी बीहड़ मरुभूमि भी सिंचित हो गई; उसका गिरना क्या था, दस सिरों पर मुकुट धारण करनेवाले (रावण) को उसके सर्वनाश की सूचना ही थी, मानों उस दिन उस (रावण) की विजय-पताका ही टूटकर धरती पर गिर गई हो।

ताडका के कठोर वक्षःस्थल में तीर लगने से जो रक्त-प्रवाह हुआ, उससे वह सारा वन अपना रूप बदलकर समुद्र बन गया। उस वन में फैली हुई रक्त की बाढ़ देखने से ऐसा प्रतीत हुआ, मानों संध्याकालिक लालिमायुक्त गगन आधारहीन हो पृथ्वी पर गिर पड़ा हो।

सुगंधित कमल-पुष्प पर बैठनेवाले ब्रह्मा के समान मुनि (विश्वामित्र) की आज्ञा

का पालन करके रत्नमय स्वर्णाभरण पहननेवाले काकुत्स्थ (रामचंद्र) ने जो प्रथम युद्ध किया, उसमें यम को, जो अबतक राक्षसों का रक्त पीने की अभिलाषा रखते हुए भी खड्गादि आयुधधारी राक्षसों से भयभीत होकर रहता था, राक्षसों के रक्त का थोड़ा सा स्वाद मिला।

तब देवताओं ने मुनि (विश्वामित्र) के निकट आकर कहा कि आज हमने अपना आश्रय-स्थान वापस पा लिया है; आपको भी अब कोई बाधा नहीं रही ; इसलिए अब आप चक्रवर्त्ती के कुमारों को दिव्य अस्त्र प्रदान करें। फिर, उन्होंने धनुर्धारी काल-मेघ सदृश (श्रीराम) पर पुष्पों की वर्षा की और उन्हें बधाइयाँ देकर वहाँ से विदा किया। (१—७६)

अध्याय ८

यज्ञ पटल

जब देवताओं की पुष्पवर्षा से वह उष्ण मरुप्रदेश शीतल हो गया, तब दूसरों के लिए दुर्लभ तपस्या से संपन्न विश्वामित्र ने (राम-लक्ष्मण के साथ) बड़ी सरलता से उसे पार कर लिया ; फिर उन्होंने उस महानुभाव (रामचन्द्र) को ऐसे अस्त्र दिये, जो तिरुवण्णय्नल्लूर के निवासी तथा महान् दानी शडैयप्पवल्लर के[1] भूलोकवासियों के दारिद्र्-रोग को दूर करनेवाले औषध-स्वरूप, वचन के समान अमोघ थे।

संयमी और त्रिकालज्ञ मुनिवर ने जो-जो अस्त्र, उनके मंत्रों को बताकर, महानुभाव (राम) को दिये, वे सब बड़ी उमंग के साथ वैसे ही उनके पास आ पहुँचे, जैसे शुद्ध मन से किये गये सत्कर्मों के फल दूसरे जन्म में स्वयं अपने कर्त्ताओं को प्राप्त हो जाते हैं।

(देवास्त्रों ने श्रीरामचन्द्र से निवेदन किया कि) हे वीर ! हम आपके आश्रय में आ पहुँचे हैं ; अब आपको छोड़कर अन्यत्र नहीं जायेंगे ; आप विधि के अनुसार जो भी आदेश हमें देंगे, हम उसका पालन आपके भाई लक्ष्मण के समान करेंगे। उन्होंने भी यह वचन सुनकर अपनी स्वीकृति दे दी। तब से वे देवास्त्र नीलकमल-तुल्य (श्रीराम) की सेवा में निरत हुए।

इन घटनाओं के पश्चात् वे लोग दो कोस आगे चले ; वहाँ एक बड़ा शोर सुनाई पड़ा, जो क्रमशः उनके निकट आने लगा। तब उन्होंने मुनि से पूछा कि 'हे महात्मन् ! यह ध्वनि कैसी है ?' तपस्या से अपने कर्मों को मिटा देनेवाले मुनि (विश्वामित्र) ने उत्तर दिया—

१. तिरुवण्णय्नल्लूर के शडैयप्पवल्लर कवि के आश्रयदाता थे और समय-समय पर धन देकर उनकी सहायता करते थे। कवि ने स्थान-स्थान पर उनका स्मरण करके उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की है।—अनु०

'मानस (मानस-सरोवर) से निकलनेवाली (और इसीलिए) सरयू' कहलानेवाली, देवताओं से भी प्रशंस्यमान नदी यहाँ बहती है, जिसमें गोमती नामक नदी आकर मिलती है ; उन दोनों के मिलने से ही यह ध्वनि उत्पन्न होती है।' उनके (विश्वामित्र के) यह कहने पर तीनों आगे बढ़े और भवसागर से पार उतारनेवाली एक पवित्र नदी के पास पहुँचे।

उस महानुभाव ने विश्वामित्र से पूछा कि हे देवगण से स्तुत्य मुनि ! यह बड़ी पावन नदी कौन-सी है ? वे बोले—"कमलासन ब्रह्मा ने प्राचीन काल में कुश नामक एक प्रतापी तथा गुणशील राजा को जन्म दिया था। उसके अपनी धर्मपत्नी से चार पुत्र हुए। उनके नाम थे—कुश, कुशनाभ, सद्गुणविशिष्ट आधूर्त्त और जयशील वसु। इनमें से कुश कौशांबी नगर में, कुशनाभ महोदय नामक नगर में, आधूर्त्त दोषहीन धर्मवन नामक नगर में और वसु गिरिव्रज नामक नगर में राज करते थे।

उनमें से कुशनाभ के एक सौ लड़कियाँ उत्पन्न हुईं, जो मिष्टभाषी, सुन्दर होंठोंवाली और सद्गुणों से विभूषित थीं। वे जब सयानी हुईं, तब एक दिन अपनी सखियों के साथ क्रीडा करती हुई एक उपवन में जा पहुँचीं। उसी समय वायुदेव वहाँ आये और उनके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उन कन्याओं से कहा —

'हे आम की फाँक के समान नुकीले नयनयुक्त कन्याओ ! मैं मकरकेतु (मन्मथ) के झुके हुए धनुष से निकले हुए पुष्प-बाणों से विद्ध हो गया हूँ, (अतः) तुमलोग मुझसे विवाह कर लो।' तब उन कन्याओं ने उत्तर दिया कि आप जाकर हमारे पिता से यह बात कहें ; यदि वे कन्यादान करके हमें आपकी पत्नी बनायेंगे, तो हम आपके संग जा सकती हैं। यह सुनकर वायुदेव बहुत क्रुद्ध हुए और उनकी पीठों को तोड़कर उन्हें कूबड बना दिया, जिससे सुन्दर प्रकाशमान कंकण पहनी हुई वे कन्याएँ धरती पर गिर पड़ीं।

जब वायुदेव चले गये, तब वे कन्याएँ किसी प्रकार घिसटती हुई अपने पिता के पास पहुँचीं और करुणा-भरी वाणी में सारा वृत्तांत कह सुनाया ; राजा ने उन दीर्घ केशोंवाली अपनी कन्याओं को आश्वासन दिया और महान् तपस्वी चूलि के पुत्र ज्ञानी ब्रह्मदत्त से उनका विवाह कर दिया।

उस ब्रह्मदत्त के कर-कमल का स्पर्श पाते ही उनका कूबड़ मिट गया और उन्होंने अपना पूर्व सौन्दर्य प्राप्त कर लिया। पूरी पृथ्वी पर शासन करनेवाले कुशनाभ ने अपुत्र होने के कारण मुनियों की सहायता से एक यज्ञ किया। उस यज्ञकुण्ड के मध्य से गाधि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसकी तीव्रगामी अश्वसेना (प्रसिद्ध) हुई।

कुशनाभ गाधि को राज्य देकर स्वर्ग सिधारा ; प्रसिद्ध महोदय नगर में राज्य करनेवाले गाधि के मैं और मुझसे पहले कौशिकी नामक एक कन्या उत्पन्न हुई। राजाओं के राजा गाधि ने कौशिकी का विवाह भृगु महर्षि के पुत्र ऋचीक के साथ कर दिया, जिनकी तपस्या की समानता स्वयं उनके पिता भी नहीं कर सकते थे। वह वेदज्ञ कुछ समय तक धर्म, अर्थ और काम को सम्पन्न कर फिर बड़ी तपस्या करके ब्रह्मलोक को प्राप्त हुए।

जब कौशिकी का प्रिय पति उसको छोड़कर स्वर्ग चला गया, तब वह पति-

वियोग नहीं सह सकी। वह भी नदी का रूप धारण कर पति की अनुगामिनी हुई। तपस्वियों में प्रधान ऋचीक मुनि ने उसे देखकर आशीर्वाद दिया कि तुम इसी भूतल पर रहो, जिससे भूतलवासी तुमसे (तुमसें स्नान करके) अपने दुःख मिटा सकें और ब्रह्मलोक प्राप्त कर सकें।

मेरी ही ज्येष्ठ बहन कौशिकी इस महान् नदी के रूप में भूतल पर रह रही है।" विश्वामित्र से यह कथा सुनकर वह उत्तम कुमार (राम) तथा उनके अनुज लक्ष्मण आश्चर्य में पड़ गये। कुछ दूर आगे जाने पर उन्हें एक उपवन दिखाई दिया, जहाँ मेघ आकर विश्राम करते थे; उनके पूछने पर कि यह कौन-सा उपवन है ? महान् तपस्वी विश्वामित्र कहने लगे—

यह उपवन उतना ही विशुद्ध है, जितना उन नारियों का मुख होता है, जो अपने पति के अतिरिक्त अन्य किसी दैव या तपस्या को नहीं मानतीं। और सुनो, अरुण-नयनों-वाले श्रीविष्णु, जिनका स्वरूप चार वेदों, देवताओं तथा मुनियों के लिए भी अज्ञेय है, कभी इस स्थान में रहकर तपस्या करते थे।

भूलोक तथा देवलोक के निवासी बंधनों से मुक्त होने के लिए जिसका नाम जपते हैं और जिसकी माया के रहस्य को कोई भी नहीं जान पाता, वही प्रसिद्ध अमल मूर्त्ति (विष्णु) ने इस स्थान पर एक सौ कल्प तक घोर तपस्या की थी।

जिस समय वे इस उपवन में तप कर रहे थे, उस समय महाबलि नामक एक राजा ने स्वर्ग और भूलोक दोनों को अपने अधीन कर लिया। वह महाबलि उस महावराह के समान बलवान् था, जिसने इस भूतल को अपने एक वक्र दन्त पर अनायास ही उठा लिया था।

'संसार में उसको कोई भी पराजित कर सकेगा', ऐसी शंका से मुक्त होकर, तपस्या में निरत उस चक्रवर्त्ती ने ऐसा एक महायज्ञ संपन्न करने का निश्चय किया, जो देवताओं के लिए भी असाध्य हो और जो घृत आदि होम-द्रव्यों से संपूर्ण हो। उसने निश्चय किया कि वह उस यज्ञ में अपनी भूमि तथा अन्य सभी संपत्ति ब्राह्मणों को दे देगा।

देवों ने जब इस यज्ञ का समाचार सुना, तब इस उपवन में आये। यहाँ तपस्या में निरत विष्णु को प्रणाम करके प्रार्थना की कि हे भगवन्! आप उस अत्याचारी महाबलि के दुष्कृत्यों को रोकिए। विष्णु ने भी ऐसा करने की सम्मति दे दी।

नीलवर्ण तथा सद्गुणों से विभूषित विष्णु, त्रिकालज्ञ कश्यप और अदिति के पुत्र के रूप में अवतरित हुए। वे वामन-रूप में थे, जैसे एक बड़े बटवृक्ष को अपने भीतर छिपाये हुए एक छोटा-सा बीज हो।

अद्भुत गुणों एवं कार्यों से युक्त (विष्णु), हाथ में अग्नि लिये हुए एक वामन का रूप धारण करके चले। इसका तत्त्व केवल ज्ञानी ही जानते हैं; उनकी यह आकृति ब्रह्म के ज्ञान-स्वरूप ही थी।

सभी लोकों को जीतनेवाले महाबलि ने जब यह समाचार सुना कि एक वामन मूर्त्ति उसके यहाँ आये हैं, तब वह आश्चर्य-चकित हो गया; उसने उठकर उनका स्वागत किया और कहा—हे परिपूर्ण! आपसे श्रेष्ठ ब्राह्मण संसार में दूसरा नहीं है, आपके दर्शन पाकर मैं कृतार्थ हो गया।

पौरुषवान् महाबलि की बात सुनकर सर्वज्ञ वामन ने कहा—तुमने याचकों की इच्छा से भी अधिक दान दिये हैं। (इसलिए) हे दीर्घ करवाले! अब याचक बनकर तुम्हारे समीप जो आये, वही महान् है और जो न आये, वह कैसे महान् हो सकता है?

यह सुनकर महाबलि आनन्दित हुआ और उत्तर में उसने पूछा—कहिए अब, आपके लिए मैं क्या करूँ? महाबलि के इतना कहते ही वामन ने कहा—यदि दे सको, तो तीन पग भूमि-मात्र मुझे दो। वामन के 'दो' कहने के पूर्व ही बलि ने कहा—'दिया।' इतने में शुक्राचार्य ने उसे रोका।

(शुक्र ने कहा) राजन्! जिस वामन-रूप को हम सामने देख रहे हैं, यह छल-मात्र है। यह मत सोचो कि जल-भरे मेघ-सदृश नीलवर्णवाला यह वामन साधारण मनुष्य है। यह वह पुरुष है, जिसने कभी सभी अंडों को तथा (उसमें रहनेवाले) सभी वस्तु-समूह को निगल लिया था। इस मर्म को समझो।

(बलि ने कहा) आप यह नहीं देख रहे हैं कि मेरा कर दान देने के लिए ऊपर उठा हुआ है और मेरे संमुख जलसमृद्ध मेघ जैसे विष्णु का कर दान लेने के लिए नीचे फैला हुआ है, जो उनकी महत्ता के अनुकूल नहीं है। अब इससे बढ़कर मेरा गौरव और क्या हो सकता है?

आदर-योग्य, सन्मार्ग बतानेवाले धर्मशास्त्रों के ज्ञाता (दान देते समय) यह नहीं सोचते कि यह (दान माँगनेवाला) अपना है या पराया, वे तो यह कहते हैं कि मेरे इस दान को कोई उत्तम व्यक्ति आगे बढ़कर ग्रहण करे। इस वामन के समान योग्य व्यक्ति और कौन हो सकता है?

आप वेल्ली[1] कहलाते हैं, इसलिए आपने इस प्रकार कहा। उत्तम नर याचकों के सभी अभीष्टों को पूर्ण करते हैं। यदि कोई उनके प्राण भी माँगे, भले ही किसी याचक के लिए ऐसा दान माँगना अनुचित है, तो वे अपने प्राणों का भी दान कर देते हैं।

हे पितृ-तुल्य! संसार में प्राण-रहित लोग (वास्तव में) मृत नहीं हैं, परन्तु जो प्राणों का त्याग न करते हुए भी दूसरों से याचना करते हैं, वे ही मृत हैं। जो शरीर त्याग कर मृत कहलाते हैं, वे मृत होने पर भी यदि दानी हों, तो अमर बन जाते हैं। ऐसे दानियों के सिवा संसार में कौन जीवित रहने योग्य है?

वे (वास्तव में) शत्रु नहीं होते, जो उत्तरोत्तर बढ़नेवाली हानि उत्पन्न कर देते हैं। दानियों के सच्चे शत्रु वे ही होते हैं, जो दान देते समय उनको रोकते हैं। वे दूसरों की ही नहीं, प्रत्युत अपनी भी हानि करते हैं। दाता को दान देने से रोकने के समान पापकृत्य दूसरा नहीं है।

(धर्मशास्त्रों के) वचनों के अनुसार जब संपत्ति अपने वश में रहती है, तब दान देना चाहिए और इस लोक में यज्ञ तथा उस धर्म का फल—पुण्य भी प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। इस प्रकार प्रयत्न करनेवालों के अंतरंग शत्रु वे लोग ही होते हैं, जो यह कहकर उन्हें दान देने से मना करते हैं कि 'लोभ-गुण का त्याग मत करो।'

---

१. तमिल में वेल्ली का अर्थ 'शुक्र' तथा 'अज्ञान' दोनों होते हैं।

हे सद्गुणहीन शुक्र, दान देते समय बाधा डालनेवाले निष्ठुर! किसी याचक को देने के पूर्व 'मत दो' कहकर किसी दाता को रोकना क्या तुम्हें शोभा देता है? तुम्हारे इस कार्य से तुम्हारे बन्धु भी वस्त्र और अन्न से वंचित हो जायेंगे।

इस प्रकार कहकर महाबलि ने शुक्राचार्य के सभी वचनों को यह समझकर कि मंत्री कठोर हृदयवाला है, अस्वीकार कर दिया और (वामन से) यह कहते हुए कि तुम्हीं तीन पग (भूमि) नापकर ले लो, उस वामन के छोटे-से हाथ में जल दे दिया।

सरोवर का स्वच्छ जल ज्यों ही वामन के हाथ में गिरा, त्यों ही वह वामन-मूर्त्ति, जिसका बौनापन उसके माता-पिता की भी घृणा का विषय हो सकता था, इस प्रकार गगन तक ऊँचा बढ़ गया कि सामने खड़े रहकर उसे देखनेवाले लोग विस्मय और भय में डूब गये। वह उसी प्रकार बढ़ता चला गया, जिस प्रकार उत्तम पात्र को दिये गये दान का फल बढ़ता चला जाता है।

उस बौने का जो पग धरती पर रहा, वह समस्त विश्व पर छा गया और धरती के छोटी होने के कारण और आगे नहीं फैल सका। दूसरा पग जो गगन-भर में छाकर स्वर्गलोक को भी पार कर गया था, आगे बढ़ने के लिए और स्थान न पाने के कारण लौट पड़ा।

समस्त भूतल और गगन-मंडल को अपने दो पगों के अन्तर्गत कर लेने के कारण तीसरे पग के लिए स्थान ही बाकी न रहा। उस तीसरे पग के लिए भक्त महाबलि का सिर ही स्थान बना। हे धनुष-शोभित भुजावाले (रामचन्द्र)! तुलसी-माला से विभूषित सिर-वाले विष्णु (सचमुच) बहुत छोटे हैं।[१]

यज्ञरूप विष्णु ने तीनों लोकों का राज्य इन्द्र का स्वत्व कहकर उसे दे दिया और स्वयं क्षीरसागर में जाकर शयन करने लगे, जहाँ उनके भुवनव्यापी चरण लक्ष्मी देवी के कर-स्पर्श से लाल दिखाई देते हैं।

कर्मबन्धनों को समूल नष्ट करनेवाले (रामचन्द्र)! इस उपवन में विष्णु भगवान् ने तपस्या की थी; अतः जो भक्ति-श्रद्धा के साथ इस प्रदेश के दर्शन करते हैं, वे फिर जन्म नहीं ग्रहण करेंगे। वेदोक्त विधि से यज्ञ करने के निमित्त मेरे लिए इस आश्रम से बढ़कर अन्य कोई उचित स्थान नहीं है।

इसी स्थान में रहकर मैं अपना यज्ञ करूँगा, यह कहकर विश्वामित्र उस सुन्दर उपवन में पहुँचे और यज्ञ के उपकरण एकत्र करके, रमणीय रूप-विशिष्ट राम तथा लक्ष्मण को रक्षा के लिए नियुक्त करके, अपना यज्ञ करने लगे।

देवताओं को उद्दिष्ट करके विश्वामित्र ने छह दिनों तक ऐसा यज्ञ किया, जो दूसरों के लिए दुष्कर था; भूमि की रक्षा करनेवाले दशरथ चक्रवर्त्ती के उन दोनों कुमारों ने उस यज्ञ की रक्षा इस प्रकार की, जैसे पलकें नेत्रों की रक्षा करती हैं।

यज्ञ की रक्षा करते हुए वृषभ-समान बली उन दोनों कुमारों में से ज्येष्ठ ने सर्वज्ञ

१. भाव यह है कि भगवान् के चरण संसार के लिए बहुत बड़ा होने पर भी भक्तों के सिर के सामने बहुत छोटा बन जाता है।

मुनिवर के निकट जाकर पूछा — हे अवर्णनीय गुण-विभूषित मुने ! आपने जिन अत्याचारी राक्षसों के सम्बन्ध में कहा था, वे कब आयेंगे ?"

विश्वामित्र मौन व्रत धारण किये हुए थे, इसलिए कुछ उत्तर नहीं दिया। युद्ध-निपुण कुमार उन्हें प्रणाम करके यज्ञशाला से बाहर आये और आकाश की ओर देखा। वहाँ (आकाश में) राक्षस लोग वर्षाकाल के काले मेघों के समान गर्जन कर रहे थे, जिसे सुनकर वज्र भी डर जाय।

उन राक्षसों ने बाण चलाये, भाले फेंके, आग और पानी बरसाये, बड़े-बड़े पहाड़ उखाड़कर फेंके, निन्दा-वचन कहे, डराया, धमकाया, कुठार, परशु आदि आयुधों का प्रयोग किया ; एक नहीं, ऐसे अनेक माया-कृत्य किये।

(राक्षसों द्वारा) क्रोध के साथ फेंके हुए आयुधों से, जिनमें (मारे गये) प्राणियों के मांस लगे हुए थे, प्रलय-काल की वर्षा के समान सारा वन-प्रदेश ढक गया। चारों ओर से राक्षस-सेना घिर आई और आकाश पर छा गई। (यह दृश्य ऐसा था) मानों मछलियों से भरे हुए लहराते समुद्र ने ही गगन को ढक लिया हो।

राक्षस-सेनाएँ, जिनमें बाण एवं चमकनेवाले खड्ग बहुत ही घने दिखाई दे रहे थे, मारू बाजा बजाती हुई संचरण कर रही थीं, मानों वे प्रलय-काल में उठी हुई तथा गर्जन करनेवाली अनुपम घटा ही हों।

राक्षसों के मुंह के दोनों ओर वराहदन्त निकले हुए थे ; वे क्रोध से ओठ चबा रहे थे ; उनके बाल रक्तवर्ण थे और नेत्रों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। इस प्रकार के उन राक्षसों की ओर संकेत करके रामचन्द्र ने लक्ष्मण से कहा—जटाधारी मुनि ने जिन राक्षसों के विषय में कहा था, वे ये ही हैं।

उन राक्षसों के आते ही क्रोध से अग्नि-ज्वाला बिखेरते हुए लक्ष्मण ने आँखों के कोरों से गगन की ओर देखा और फिर अपने धनुष की ओर देखा, फिर राम को प्रणाम करके कहा—अभी इसी स्थान पर आप इन राक्षसों को टुकड़े-टुकड़े होकर गिरते हुए देखेंगे।

धूम्रवर्ण एवं शूलधारी राक्षस कहीं होमकुण्ड की अग्नि में मांस और रक्त न डाल दें, यह सोचकर कमललोचन (राम) ने अपने शरों से उस मुनि-श्रेष्ठ के निवास के ऊपर एक दूसरी छत-सी बना डाली।

क्षीरसागर के मथते समय उसमें से हलाहल विष निकलकर जब सृष्टि का विनाश करने लगा था, तब देवता लोग जिस प्रकार भयभीत हो चंद्रचूड (शिव) की शरण में गये थे, उसी प्रकार महा तपस्वी मुनि भी वंचकराक्षसों से भयभीत हो रामचन्द्र से बोले—'हे अंजनवर्ण ! हम आपकी शरण में हैं ; हमें अभय दान दीजिए।'

तब कमललोचन (राम) ने यह कहकर कि आपलोग व्याकुल मत होइए—उन्हें अपनी भुजाओं की छाया में ले लिया और अपने धनुष की दिव्य प्रत्यंचा को अपने कान तक खींचकर सारे भूतल को (उन राक्षसों के) रक्त का समुद्र बनाया और उनके सिरों के पहाड़ बनाये।

लक्ष्मी के प्रियतम (श्रीराम) के दिव्य अस्त्रों ने भयंकर ताडका से उत्पन्न दोनों वीरों में प्रथम मारीच को समुद्र में फेंक दिया और दूसरे सुबाहु को यमलोक में पहुँचा दिया।

पुष्पगुच्छों की मालाओं से सुशोभित (रामचन्द्र) ने जो बाण बरसाये, उन बाणों से क्षण-भर में सारा अंतरिक्ष भर गया। (बचे हुए राक्षस) यह सोचकर कि ये दोनों राघववीर अब लाशों के पर्वत पर चढ़कर हमें (जीवित) पकड़ लेंगे, अहमहमिका से (आपस में चढ़ा-ऊपरी करते हुए) वहाँ से भाग चले।

वज्र के समान भयंकर राम के बाण भागते हुए राक्षसों का पीछा करते हुए चले, तब उन राक्षसों की शिरोहीन धड़ें तड़प-तड़पकर नाचने लगीं ; भूत-पिशाच भी, जो शव-भक्षण करने आये थे, मेरे (लेखक के) प्रभु (रामचन्द्र) का यश गाने लगे ; मांसभक्षी पक्षियों का एक चँदोवा-सा वहाँ तन गया।

(देवताओं से की गई) पुष्पवर्षा (उन पक्षियों के) चँदोवे को चीरती हुई नीचे बरस पड़ी ; गगन में मेघों के समान दुंदुभि गरज उठी ; इन्द्रादि देवता एकत्र हो गये और सुन्दर धनुर्धारी (रामचन्द्र) की जय-जयकार करने लगे।

पावन तपस्वियों ने आशीष-रूपी पुष्पों की वर्षा की तथा उस कानन के वृक्षों ने भी पुष्पों की वर्षा की। विश्वामित्र ने उसी समय अपना यज्ञ यथाविधि समाप्त किया और मुदित मन से (रामचन्द्र से) ये बातें कहीं—

सभी भुवनों का सर्जन करनेवाले तथा (प्रलय के समय) उन्हें अपने उदर में रखकर उनकी रक्षा करनेवाले तुम्हीं हो। आज तुमने मेरे इस छोटे-से यज्ञ की रक्षा की। मैं यही मानता हूँ कि यह सब मेरे पुण्यों का फल है, नहीं तो इस छोटे-से यज्ञ की रक्षा तुम्हारे लिए कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं है।

(दूसरे दिन प्रातःकाल) पुष्पों से भरे उस वन में, अपूर्व तपस्याशील अनेक ऋषियों के साथ निवास करनेवाले, पर्वत-समान सद्गुणों से पूर्ण विश्वामित्र के संमुख कौसल्या-पुत्र उपस्थित हुए और प्रणाम करके पूछा—'आज मैं आपकी क्या सेवा करूँ? आज्ञा दीजिए।'

हे पुत्र, यदि मैं किन्हीं कार्यों को दुःसाध्य समझकर तुम से करने के लिए कहता भी हूँ, तो वे तुम्हारे लिए दुःसाध्य नहीं होते। अभी (कुछ) बड़े कार्य करने बाकी हैं, जिन्हें बाद में किया जा सकता है। अभी हम विशाल और जल-संपन्न खेतों से घिरे हुए मिथिला नगर में जायेंगे और वहाँ जाकर महाराज जनक से किये जानेवाले यज्ञ का संदर्शन करेंगे। चलो। विश्वामित्र के यह कहते ही तीनों चल पड़े। (१—५६)



अध्याय ६

अहल्या पटल

वे तीनों (महर्षि विश्वामित्र एवं राम-लक्ष्मण) शोण (सोन ?) नदी-रूपी नारी के निकट जा पहुँचे। विविध रत्नों (से सुशोभित) तथा चंदन, अगरु आदि सुगंध-द्रव्यों से सुरभित सिकता-राशि ही उस शोण-रमणी के स्तन थे; सुकोमल लताएँ उसकी कटि थी; (भ्रमर-कुल से) गुंजरित नव विकसित पुष्प-पंक्तियाँ उसकी मेखला बनी थीं; उस स्थान में फैली हुई काली मिट्टी उसके केशपाश थी; निकटस्थ पर्वतों की परिक्रमा करती हुई उसकी जो नहरें बह रही थीं, वे उसके नूपुर थे। इस प्रकार, वह नदी-नारी शोभायमान थी।

ज्यों ही वे तीनों शोण नदी के तट पर पहुँचे, त्यों ही सूर्य भी अस्त हो गया, मानो वह अगले दिन प्रातःकाल उदित होते समय उन तीनों को शीतलता पहुँचाना चाहता हो और अपनी स्वाभाविक उष्णता को शांत करने के लिए, अरुण[१] के नयनों से भी तीव्र गति से जानेवाले अपने घोड़ों-सहित, पश्चिम सागर में डूब गया हो।

(पक्षियों के) कलरव से भरे सरोवरों में सुरभिमय दीर्घ नालवाले बड़े कमल-पुष्प खिले हैं, जो (प्यासे भ्रमरों को तृप्त करने के कारण) धर्म के आलय-स्वरूप हैं। वे कमल सूर्यास्त होते ही अपने दल-कपाटों को बंद कर लेते हैं, तो आश्रय की खोज में विलंब से आये हुए मस्त भ्रमर अपनी भ्रमरियों के साथ, उन पुष्पों से लौट जाते हैं और शोण नदी के तीरस्थ सुगंधित पुष्प-भरे उद्यानों में विश्राम पाते हैं। वे तीनों रात्रि में विश्राम करने के लिए उसी उद्यान में प्रविष्ट हुए।

श्रीराघव ने विश्वामित्र से प्रश्न किया—यह कैसा उद्यान है? तपस्वी एवं कर्म-बंधन से विमुक्त (विश्वामित्र) महर्षि ने उत्तर दिया—पुरातन काल में काश्यप महर्षि की पत्नी दिति ने अपने असुर-पुत्रों के शोक में इसी स्थान में तप किया था।

[यहाँ से आगे २५ पद्यों में इस उद्यान का इतिहास वर्णित है।]

कालमेघ की समता करनेवाले मेरे (लेखक के) स्वामी (महाविष्णु) इस अंडगोल से परे परमपद स्थान में रहते हैं। एक विद्याधर-स्त्री उस परमधाम में पहुँच गई और पुंडरीक के कोमल आवास में रहनेवाली लक्ष्मी का स्तवन किया। लक्ष्मी देवी ने प्रसन्न होकर एक पुष्पहार उस विद्याधर-रमणी को दिया, जो पुष्पमधु से पूरित एवं भ्रमरों से युक्त थे।

उस विद्याधर-कन्या ने लक्ष्मी देवी के प्रसाद-भूत उस पुष्पहार को अपनी वीणा में बाँध लिया और ब्रह्मलोक को लौट आई। इसी समय अतिक्रोधी दुर्वासा मुनि उसके सम्मुख आये। उन्होंने उस कन्या को लक्ष्मी देवी की भक्ता जानकर उसके चरणों की वंदना की।[२]

---

१. 'अरुण' सूर्य के सारथी का नाम है।

२. दक्षिण में वैष्णव अपने को भगवान तथा भगवान के भक्तों का भी दास मानते हैं। विद्याधरी विष्णु की भक्तिन होने के कारण दुर्वासा के लिए भी वंदनीय थी।

उस विद्याधर-कन्या ने दुर्वासा महर्षि से कहा—हे महिमामय महर्षे ! इसे लो। यह पुष्पहार श्रीमहालक्ष्मी के मुकुट का भूषण था, जो (लक्ष्मी) सृष्टि तथा स्थिति के कारण-भूत, सारे विश्व को निगलने और उगलनेवाले, उस विष्णु भगवान् के विशाल वक्ष पर आसीन रहती हैं। मैं तुमको प्रेम से इसे देती हूँ। यह कहकर उसने उस हार को दुर्वासा के हाथ में दे दिया।

दुर्वासा ने सोचा, सभी देवों की स्वामिनी लक्ष्मी देवी ने जो हार अपने मुकुट पर धारण किया था, उसे प्राप्त करने का सौभाग्य मुझे मिला है ; न जाने पूर्वजन्म में मैंने कौन-सा बड़ा तप किया था ; दुर्वासा अत्यन्त आनन्दित होकर नर्त्तन करने लगे ; अपने को कर्म-विमुक्त समझने लगे और अन्त में देवलोक में जा पहुँचे।

वहाँ इन्द्र अपने समस्त वैभव के साथ ऐरावत हाथी पर सवार होकर स्वर्ग-वीथि में जा रहा था। उस दृश्य को देखकर दुर्वासा विस्मय तथा आनंद से भर गये। (वह दृश्य कैसा था ?) मानों कोई रजत-पर्वत हो, जिस पर जलपूर्ण बादल छाये हों ; सहस्रों विकसित कमलपुष्प भी फैले हों और जिनपर सूर्य की स्वर्णिम किरणों की आभा पड़ रही हो ; ऐरावत का वैसा ही भव्य दृश्य था।

रंभा, मेनका, तिलोत्तमा, उर्वशी—ये अप्सराएँ इन्द्र के आगे-आगे नृत्य करती हुई जा रही थीं ; उनकी वाणी इतनी मधुर थी कि इक्षु-रस भी फीका पड़ गया था ; उनके पल्लव-कोमल चरण मन्मथ के पुष्पबाणों से भरे तूणीर जैसे थे ; उनके नूपुर मधुर नाद करते थे, तथा साथ-साथ संगीत भी हो रहा था।

इन्द्र के दोनों पार्श्वों में चामर डुल रहे थे ; वह दृश्य ऐसा था, मानों किसी बड़े नीलम के पर्वत के दोनों ओर चंद्रकिरणों का पुंज संचरण कर रहा हो ; उसके शिर पर भव्य श्वेत छत्र ऐसा शोभित था, जैसे पूर्णचंद्र अपनी ज्योत्स्ना फैलाता हुआ स्थिर खड़ा हो।

भेरी, ताल, शंख आदि बाजे ऐसा नाद उत्पन्न कर रहे थे, जिसमें मंगल-गीत भी डूब जाते थे। चतुर्वेदों का घोष समुद्र गर्जन के समान हो रहा था। इन्द्र का वह मनोहर वीथि-विहार (जुलूस)[1] ऐसा आ रहा था, मानों वह सारे विश्व को (आनन्द में) डुबो देगा।

उपमा-रहित (दुर्वासा) मुनि इस वैभव को देख हर्षित हुए और विद्याधर-कन्या का दिया हुआ पुष्पहार इन्द्र को उपहार दिया। इन्द्र ने अपने हाथ में रखे अंकुश से उस हार को उठा लिया और उसे ऐरावत के सिर पर डाल दिया। ऐरावत ने अपनी सूँड़ से उसे खींचकर पैरों तले रौंद दिया।

यह देखते ही दुर्वासा मुनि की आँखों से कठोर क्रोधाग्नि की ज्वाला उमड़ पड़ी। सारे अंडगोल जलकर भस्म हो जायेंगे—ऐसी आशंका से भयभीत होकर देवता बिखरकर भाग गये ; सूर्य-चंद्र भी अपनी गति रोककर स्थिर खड़े हो गये ; अष्ट दिशाओं में अँधेरा फैल गया ; सारे लोक चक्कर काटने लगे।

उस दुर्वासा महर्षि की साँसों से धुआँ निकलने लगा ; वे क्रोध से अट्टहास कर

---

१. तमिल में जुलूस के लिए 'पवनि' शब्द का प्रयोग होता है। यहाँ उसके लिए वीथि-विहार शब्द का प्रयोग किया गया है।—अनु०

उठे, जैसे त्रिपुर-दाह के समय शिवजी हँस रहे हों। उनकी भौंहें उनके विशाल भाल पर चढ़ गईं ; (उन्होंने अपनी) आँखों से ज्वाला उगलते हुए ऐसा गर्जन किया, जिससे स्वयं वज्र भी डर गया। उन्होंने कहा—हे पापिष्ठ शतमख ! सुन—

पंच महाभूतों के नायक, भूमि-वल्लभ एवं अनुपम वेदों के प्रभु महाविष्णु के वक्ष पर आसीन आदिलक्ष्मी के द्वारा यह हार प्रेम के साथ धारण किया गया था और विद्याधर-कन्या ने उनसे इसे प्राप्त किया था। बड़ी तपस्या की महिमा के कारण मैंने उनसे यह हार प्राप्त किया।

तेरे इस वैभव को देखकर मैं आनन्दित हुआ और आदर के साथ वह हार तुझे प्रदान किया ; किंतु तूने इसका अनादर किया, अतः तेरी सारी निधियाँ और अपार संपत्ति समुद्र में डूब जायें तथा तू महिमाहीन होकर दुःखी बन जा !'—क्रोधी मुनि ने इस प्रकार इन्द्र को शाप दिया।

(दुर्वासा के शाप देते ही) रंभा आदि अप्सराएँ, कल्पवृक्ष, नौ निधियाँ, सुरभि पशु, श्वेत अश्व, पर्वताकार मत्तगज (ऐरावत) इत्यादि सभी संपत्तियाँ इन्द्र के पास से हट गईं और उर्मियों से आकुल समुद्र में जाकर छिप गईं।

क्रोधी दुर्वासा मुनि के शाप के कारण स्वर्ग आदि सभी लोकों को दरिद्रता पीडित करने लगी। तब सभी देवगण, अर्धनारीश्वर एवं चतुर्मुख को साथ लेकर श्रीविष्णु भगवान् के समीप पहुँचे, जिनका वक्ष रक्त-कमल पर आसीन महालक्ष्मी तथा श्रीवत्स के चिह्नों से अंकित है।

नवविकसित कमल से उत्पन्न ब्रह्मा तथा शिव प्रभृति अन्य देवों ने दुर्वासा के कठोर शाप की बात बतलाई और प्रार्थना की कि आपके अतिरिक्त अन्य कोई शरण नहीं है, अतएव आप हम सबकी रक्षा करें। तब सभी लोकों को नापनेवाले (उस त्रिविक्रम) ने प्रेम से कहा—'डरो नहीं।—

तुमलोग असुरों को अपने साथ मिलाकर, गर्जन करनेवाले सागर को मथो ; मन्दर पर्वत को मथानी बनाओ, वासुकि सर्प को रस्सी बनाओ, शीतल चन्द्रमा को मथानी की टेक बनाओ और ओषधियों से भरकर इस सागर का मंथन करो और उसमें से अमृत को निकालो।

हम भी उस स्थान पर आयेंगे। तुमलोग शीघ्र ही अपना कार्य आरंभ कर दो।' विष्णु के ये वचन सुनकर देवता उनकी प्रशंसा करने लगे और दरिद्रता से मुक्त होने की बात सोचकर आनंद से नाचने लगे।

देवता मंदर पर्वत को उखाड़ लाये ; उसमें वासुकि नाग को लपेटा ; चंद्र को टेक बनाया ; ओषधियों से (समुद्र को) भरा और क्षीरसागर को मथने लगे, तो उसमें उथल-पुथल मच गई। भूमि डोल उठी ; भूमि के नीचे स्थित आदिशेष भी मरोड़ खाने लगा।

धर्म-रहित व्यक्तियों के मन जिन सद्गुणों को जान भी नहीं सकते, ऐसे सद्गुणों से युक्त (विष्णु भगवान्) ने महान् कूर्म का रूप धारण किया ; अपने सहस्रों बलिष्ठ करों को

फैलाकर दृढ खड़े रहे ; घूमनेवाला मंदर पर्वत उनकी पीठ पर था। इस प्रकार, उन्होंने दुर्वासा के शाप से नष्ट हुई सभी वस्तुओं को पुनः प्राप्त किया।

सभी खोई हुई वस्तुएँ प्रभु (विष्णु भगवान्) की कृपा से पुनः प्रकट हुईं। उस समय सुर तथा असुर आपस में कलह करने लगे। विष्णु ने मोहिनी का रूप धारण कर असुरों का विनाश किया और सुरों ने अमृत का पान किया।

श्रीधर मूर्त्ति ने हलाहल विष एवं चंद्रकला वृषभ-वाहन (शंकर) को दिया ; पंचवृक्ष तथा अन्य उत्कृष्ट वस्तुएँ इन्द्र को प्रदान किया ; शेष पुष्पक आदि संपत्तियों को अन्यान्य देवों को दिया और लक्ष्मी देवी तथा कौस्तुभमणि को अपने हृदय का हार बनाया।

उस समय, दिति अपने पुत्र असुरों के विनाश से अत्यन्त दुःखित हुई। उसने अपने पति कश्यप ऋषि के निकट पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया तथा उनसे प्रार्थना की कि इन्द्रादि देवों के षड्यंत्र से मेरे पुत्र मारे गये हैं ; इसलिए एक ऐसा पुत्र प्रदान करो, जो उन देवों को मिटाने में समर्थ हो।

कश्यप ने दिति की प्रार्थना सुनकर कहा—तुम्हें पुत्र का वरदान देता हूँ ; तुम पृथ्वी पर जाकर एक सहस्र वर्ष तक कड़ी तपस्या करोगी, तो तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। दिति तपस्या करने लगी।

इन्द्र ने दिति की तपस्या की बात सुनी। वह उसकी परिचर्या में लग गया। एक बार तपस्या से श्रान्त होकर जब दिति लेटी हुई थी, तब सूक्ष्म रूप धारण करके इन्द्र उसके गर्भ में प्रविष्ट हुआ और दिति के गर्भस्थ शिशु के सात खंड कर दिये। दिति जगकर रोने लगी, तब इन्द्र ने उन सातों खंडों को सप्त मरुत् बना दिया।

यही वह स्थान है, जो दिति की तपस्या से पवित्र हुआ है। यहाँ का शरवण (सरकंडों का वन) ही उमा और शंकर के पुत्र सुब्रह्मण्य (कार्त्तिक) का उद्भव-स्थान है, जिन्हें आदिवायु एवं गंगा देवी भी भरण नहीं कर सकी थीं। इस प्रकार, विश्वामित्र ने श्रीरामचंद्र को कथा सुनाई।[1]

फिर सूर्यदेव, यम के सदृश काल अंधकार को हटाकर, संसार की रक्षा करते हुए, अपने रथ पर आरूढ होकर, सहस्रों किरणों के साथ नील सागर से उदित हुए, जैसे विष्णु की नाभि से ब्रह्मा को लिये हुए आदिकमल निकला हो।

सूर्योदय होते ही त्रिमूर्त्तियों के सदृश वे तीनों (विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण) वहाँ से प्रस्थान कर चले और दोनों कूलों पर अपनी उमड़ती लहरों से टकराती हुई बहनेवाली सुंदर गंगा नदी को देखा, जो रक्त नेत्र तथा वृषभ-वाहन शंकर की 'कोण्णी' तथा 'कोण्ड्रे' फूलों से अलंकृत घने जटाजूट से निकलने के कारण, सुनहली धारा युक्त कावेरी[2] नदी के समान है।

राघव ने विश्वामित्र से कहा— पितृ-सदृश ऋषीश्वर ! इस महान् नदी की

१. यह कथा विस्तार के साथ कालिदास-कृत कुमारसंभव में वर्णित है।

२. कावेरी की धारा सुनहली होती है। गंगा की धारा भी शिवजी की जटा के फूलों तथा रक्त नेत्रों की छाया पड़ने से सुनहली दीखती है।

महिमा बताइए। विश्वामित्र कहने लगे—मेरे पालक राजकुमार! पुराने काल में तुम्हारे श्रेष्ठ सूर्यकुल में सगर नामक चक्रवर्त्ती उत्पन्न हुए थे, जिन्होंने अपनी बलिष्ठ भुजाओं से अयोध्या नगरी में रहते हुए सारी पृथ्वी पर शासन किया था।

उस विजयी चक्रवर्त्ती के दो पत्नियाँ थीं। विदर्भ देश में उत्पन्न पत्नी से 'असमंजस' नामक पुत्र हुआ, जिसका पुत्र 'अंशुमान्' था। उनकी दूसरी पत्नी, गरुड की भगिनी सुकुमारी 'सुमति' थी, जिसके धर्मपरायण साठ हजार बलवान् पुत्र हुए।

अत्यंत पराक्रमी सगर चक्रवर्त्ती अपने सभी पुत्रों की सहायता से अश्वमेध यज्ञ करने लगे। देवता लोग इससे असंतुष्ट हो उठे और देवेंद्र से यह समाचार निवेदित किया। इन्द्र ने जाकर यज्ञ के सुन्दर अश्व को पकड़ लिया और उसे ले जाकर पाताल में तपस्या करनेवाले कपिल महर्षि के पीछे छिपा दिया।

तीव्र गति से चलनेवाले उस यज्ञाश्व के पीछे-पीछे अंशुमान् जा रहा था। इन्द्र द्वारा उस अश्व का अपहरण होते ही वह आश्चर्य-चकित हुआ। इन्द्र के द्वारा अपहरण को नहीं जानने के कारण वह सर्वत्र भू-लोक में उसकी खोज करता रहा; किंतु असफल रहा। अंत में अपने पितामह सगर के पास आकर सारा वृत्तांत कहा।

अंशुमान् से समाचार पाकर सगर ने अपने साठ हजार पुत्रों से यह समाचार कहा, तो वे वडवाग्नि के समान कोपाग्नि से जल उठे और समस्त पृथ्वी पर घोड़े की खोज करके अन्त में (पृथ्वी को) खोदते-खोदते पाताल में उतर पड़े।

कहते हैं कि वे साठ सहस्र सगर-पुत्र उत्तर दिशा में खोदने लगे और शतयोजन चौड़ा और शतयोजन गहरा गर्त्त खोद डाला। पाताल में पहुँचकर उन्होंने महातपस्वी कपिल के पीछे अपना यज्ञाश्व देखा। वे आग की तरह क्रोध से जल उठे और कपिल महर्षि को गाली देने लगे। वे इस प्रकार अहंकार से भरकर उन (महर्षि) के निकट जा पहुँचे।

(उनकी बातें सुनकर) उस मुनि ने अत्यन्त उमड़ते हुए क्रोध के साथ अग्नि-सदृश अपनी आँखें खोलकर उन्हें देखा। तब, परमशिव के मंदहास से जिस प्रकार तीनों पुर जलकर भस्म हो गये थे, उसी प्रकार वे साठ हजार राजकुमार जलकर भस्मावशेष हो गये। चरों ने यह समाचार सगर चक्रवर्त्ती को दिया।

सगर, पुत्र-शोक से अत्यन्त उद्विग्न हो उठे। उन्होंने अपने शोक का अन्त न पाने पर भी अपने कर्त्तव्य का स्मरण करते हुए अपने पौत्र अंशुमान् को बुलाया और कहा—वे (पुत्र) तो मिट गये; अब क्या आरंभ किये हुए यज्ञ-कृत्य को रोकना उचित होगा? अंशुमान् अपने पितामह के यज्ञ की पूर्त्ति के निमित्त चल पड़ा और कपिल के निवास-स्थान पाताल में जा पहुँचा।

पाताल में अपने मृत पितृव्यों (चाचाओं) की भस्मराशियों को देख वह उद्विग्न हो उठा। फिर, कपिल मुनि के चरण-कमलों पर नत होकर खड़ा रहा; तब मुनि ने अश्व को ले जाने की आज्ञा दे दी और अश्व किस प्रकार वहाँ आया था, इसका सारा वृत्तांत भी कह सुनाया।

सब के द्वारा प्रशंसित (रामचन्द्र)! उस निष्कलंक मुनि के वचन सुनकर अंशुमान् ने आदर के साथ उनकी वंदना की और अश्व लेकर लौट आया। सगर ने यज्ञ पूर्ण किया। कुछ समय उपरांत अंशुमान् को राज्य सौंपकर चक्रवर्ती दिवंगत हो गये।

सगर-पुत्रों के द्वारा खोदे जाने से मकर-मत्स्यों से पूरित समुद्र ही 'सागर' कहलाया। अंशुमान् अप्रतिम पराक्रम के साथ भूमि का शासन करता रहा। उसके दीर्घवंश में भगीरथ नामक कुमार अवतरित हुआ।

वे चक्रवर्त्ती भगीरथ समस्त धरती पर अपना एकमात्र शासन-चक्र चलाते रहे। एक बार उन्होंने वसिष्ठ से अपने पूर्वज सगर-कुमारों की मृत्यु का वृत्तान्त सुना। तब उन्होंने वसिष्ठ के चरणतल को सिर से लगाकर प्रणाम किया और निवेदन किया—

कपिल की कठोर कोपाग्नि में मेरे पूर्वज दग्ध हुए और दीर्घकाल से निरय (नरक) में पड़े हैं। मैं उनके उद्धार के लिए तपस्या करना चाहता हूँ। कृपया आप तपस्या का क्रम मुझे बतला दें। मुनिवर ने कहा—

हे भूमि-पालकों के प्रभु! तुम ब्रह्मा को लक्ष्य करके अपने प्रपितामहों के उद्धार के निमित्त निरंतर कई दिनों तक अश्रान्त तपस्या करो।

तब भगीरथ सारी पृथ्वी का भार अपने मंत्री सुमंत्र को सौंपकर हिमालय के अंक में जा पहुँचे। जब उन्होंने दस सहस्र वर्ष तक कठिन तपस्या की, तब आदिकमल से उद्भूत ब्रह्मा प्रकट हुए।

ब्रह्मा ने भगीरथ से कहा—तुम्हारी इस बड़ी तपस्या से मैं संतुष्ट हुआ। महान् तपस्वी कपिल के क्रोध से तुम्हारे पूर्वपुरुष जल गये थे। यदि उनके भस्मावशेष आकाश-गंगा के प्रवाह से सिंचित हों, तो वे सद्गति को प्राप्त होंगे।

विशाल गगन में बहनेवाली गंगा नदी यदि भूमि पर उतर आयगी, तो उसके वेग को त्रिनेत्र के अतिरिक्त और कोई वहन नहीं कर सकता, अतः शिवजी को लक्ष्य कर तुम तपस्या करो। यह कहकर विश्व के निर्माता ब्रह्मदेव अदृश्य हुए।

फिर, भगीरथ ने शिवजी का ध्यान करते हुए पूर्वोक्त समय तक ही (दस सहस्र वर्ष) तप किया। अग्नि-समान कांतियुक्त देव (शिवजी) वहाँ पहुँचे और यह कहकर अदृश्य हो गये कि हम तुम्हारी इच्छा पूर्ण करेंगे। उसके पश्चात् पाँच सहस्र वर्ष तक गंगा देवी को लक्ष्य कर भगीरथ ने तप किया।

नदियों में श्रेष्ठतम (गंगा) नदी, तरुण नारी का रूप धारण कर भगीरथ के सम्मुख प्रकट हुई और उससे कहा—तुम किस प्रयोजन के निमित्त यह कठोर तप कर रहे हो? उत्तुंग तरंग-भरित (गंगा) प्रवाह यदि स्वर्ग से भूमि पर उतर आयगा, तो उसका वेग कौन सह सकेगा? शिव ने जो वचन कहा है, वह विनोद-मात्र है; उससे कुछ नहीं होगा। दुबारा तुम शिवजी की तपस्या करो और ठीक ढंग से यह जान लो कि शिव गंगा के वेग को सहने के लिए सन्नद्ध हैं या नहीं।

गंगा के वचन सुनकर वह (भगीरथ) खिन्नमन हो गया और फिर जाकर दो सहस्र वर्ष तक स्वर्णमय जटावाले एवं अग्नि-ज्वाला-स्वरूप (शिवजी) को लक्ष्य करके तप किया।

तब भगवान् (शिवजी) उसके सम्मुख प्रत्यक्ष हुए और उसकी इच्छा के विषय में पूछा। भगीरथ ने निवेदन किया—मेरे प्रभु! गंगा नदी ने कहा है कि उनके वेग को रोक लेने का आपका पूर्व वचन केवल विनोद-मात्र है, तो तथ्य क्या है, बतलाइए। यह सुनकर उन्होंने (शंकर ने) उत्तर दिया—डरो नहीं, मैं गंगा को इस प्रकार रोक लूँगा कि उसकी एक बूंद भी नहीं बिखरेगी। और फिर, वे (शिवजी) अदृश्य हो गये। तब उसने (भगीरथ ने) गंगा को लक्ष्य करके ढाई हजार वर्ष तक कड़ी तपस्या की।

उस राजा ने क्रमशः पत्ते, भस्म, जल, पवन, सूर्य-किरण—इनका आहार करते हुए और फिर इनका भी त्याग करके तीस सहस्र वर्ष तक महान् श्रद्धा के साथ तपस्या की।

(भगीरथ की तपस्या पूर्ण होते ही) श्रेष्ठ नदी आकाश से भू-लोक में आकर प्रकट हुई। वह इस प्रकार गर्जन करती हुई उतरी कि ब्रह्मदेव का सत्यलोक और इन्द्रादि देवों का स्वर्गलोक भी काँप उठे। पार्वती के पति (शिवजी) ने अपने विलक्षण जटाजूट में उसे पूर्णरूप से छिपा लिया।

घास की नोंक पर पड़ी हुई ओस की बूँद के समान, भगवान् (शंकर) की जटा में उस श्रेष्ठ नदी को छिपे हुए देखकर वह (भगीरथ) अत्यन्त विभ्रम के साथ सिर झुकाये मौन खड़ा रहा। उन्होंने (शंकर ने) उसे धीरज बँधाते हुए कहा कि डरो नहीं; अब गंगा मेरी जटा के मध्य में है, और फिर उसके एक थोड़े-से अंश को बाहर निकलने दिया। गंगा का वह अंश भूमि पर उतर पड़ा।

आगे-आगे राजा चलने लगा और उसके पीछे-पीछे गंगा, मृत सगर-पुत्रों को सद्गति देने की उमंग में, बड़ी तेजी से बह चली; उसने मार्ग में तपोनिरत जह्नु महर्षि के यज्ञ का ध्वंस कर दिया। जह्नु ने क्रोधाविष्ट होकर गंगा-प्रवाह को चुल्लू में भरकर पी लिया।

उस दृश्य को देखकर वेदज्ञ मुनि विस्मित रह गये। उसने (भगीरथ ने) जह्नु को नमस्कार करके गंगा को लाने का सारा वृत्तांत कह सुनाया; तब जह्नु ने द्रवी-भूत होकर कान के मार्ग से गंगा को बाहर निकाल दिया; तब वह मृतक राजपुत्रों की भस्मराशि पर उछलती हुई बह चली।

'निरय' (नामक नरक) में पड़े हुए सगर-कुमार अनन्त मार्ग (स्वर्गलोक) में जा पहुँचे। इस दृश्य को देखकर आनन्दित स्वर्गवासियों (देवों) ने सुगन्धित पुष्पों की वर्षा की। नगाड़े बज उठे। तब, भगीरथ अयोध्यापुरी को लौट आया।

(विश्वामित्र ने रामचन्द्र से कहा)— हे नृपकुमार! इस अण्डगोल से परे विद्यमान, समस्त विश्व को एक ही पग में नापनेवाले (त्रिविक्रम) के कमल-चरण से निस्सृत होकर कमलभव (ब्रह्मा) के कमंडल में जो जल संचित हुआ था, वही भगीरथ की तपस्या से लाया जाकर गंगा नदी के रूप में भूतल पर आया है।

भगीरथ ने अपने पितरों की सद्गति के लिए अनेक सहस्र वर्षों तक तपस्या करके यह जल भूतल पर लाया; अतः यह नदी भागीरथी कहलाई और जह्नु महर्षि के कर्ण-मार्ग से बहने के कारण यह जाह्नवी कहलाई।

(विश्वामित्र ने) गंगा की कहानी कह सुनाई, तो वे (राम और लक्ष्मण) सुनकर आश्चर्य और आनन्द में डूब गये। फिर, वे गंगा को पार कर विशाला नामक नगर में पहुँचे, जहाँ के पर्वत-सदृश भुजावाले नरेश ने उनका आदर-सहित स्वागत किया और (विश्वामित्र के) चरणों की वन्दना की। तीनों कुछ समय उस स्थान में ठहरे और (फिर) आगे बढ़ चले।

वे तीनों मिथिला देश में जा पहुँचे, जहाँ खेतों में असंख्य कमलपुष्प निद्रा से जग उठे थे। (जहाँ) खेतों को निराने में लगी हुई कृषक-नारियों के भाले-सदृश नुकीले एवं दीर्घ चंचल नयनों की परछाईं पानी में पड़ती थी, जिन्हें देखकर सारस पक्षी भ्रांति से उन्हें 'कयल' मीन समझ लेते थे और उन परछाइयों पर अपनी चोंच मारने लगते थे ; किन्तु मीन न पाकर लज्जित हो जाते थे।

[नीचे विदेह देश के उद्यानों का वर्णन है।]

(विदेह देश के) उद्यान कैसे हैं ?

बड़े-बड़े असंख्य बाँधों के जलमार्गों से होकर जल बहता है, तो मृदंग-नाद होता है; अशोकवृक्ष अपने नवीन पुष्पों के रूप में उज्ज्वल दीप लिये खड़े हैं ; तार के सदृश मधु-धारा बहानेवाले पुष्प-रूपी वीणा में भ्रमर संगीत गाते हैं तथा मयूर अपने पंख फैलाकर नाचते हैं।

वहाँ के खेतों में पंकज-पुष्प के साथ नीलोत्पल को देखकर कृषक भ्रांति से उन्हें किसी रमणी का वदन तथा नयन समझ लेते हैं और (उनसे) आकृष्ट हो उनके समीप आ पहुँचते हैं ; किन्तु वहाँ रमणी के बदले केवल पुष्प को देखकर खीझ उठते हैं और उन पुष्पों को उखाड़कर फेंक देते हैं। ऐसे उखाड़े गये पुष्प वहाँ बहुत-से पड़े हुए हैं।

उस देश की कोकिलकंठी रमणियाँ जब मंदगति से चलती हैं, तब वहाँ के हंस (उनकी गति से) उन्हें अपनी ही जाति की समझकर उनके पीछे चल पड़ते हैं ; वे रमणियाँ जब नदियों में स्नान करती हैं, तब उनके शरीर का कुंकुम-लेप जल में मिल जाता है और जलचर पक्षी उन रंगों से लिप्त होकर विविध दृश्य उपस्थित करते हैं ; एक ही जाति के पक्षी उनके (विविध रंगों के) कारण एक दूसरे को अन्य जाति का पक्षी समझ लेते हैं तथा (आपस में) कलह करने लगते हैं ; संध्या होने पर कमलपुष्प तो निद्रित हो जाते हैं, किंतु कलह करनेवाले पक्षी शब्द करते हुए जागरित ही रहते हैं।

कभी पंक्ति बाँधकर चलनेवाली बड़ी-बड़ी भैंसों के थनों से बहता हुआ दूध, वहाँ की नदियों में प्रवाहित होता है ; कभी तट पर रहनेवाले आम के पेड़ों से उनके फलों का रस झरकर बहता है ; तो कभी कोल्हू में पेरे जानेवाले गन्ने का रस ही बह चलता है ; और कभी आहत मधु के छत्तों से शहद गिरकर उन नदियों में प्रवाहित हो पड़ता है। इन वस्तुओं के कारण शीतल जल के बहने के लिए उनमें (नदियों में) स्थान ही नहीं रह गया है।

वहाँ की नृत्य-शालाओं में जलद-समान शीतल दृष्टिवाली रमणियाँ नाचती हैं, जिनके पर्वत-सदृश स्तनों के भार से सूत से भी सूक्ष्म (उनकी) कटियाँ लचक-लचक जाती हैं ;

उनके नृत्यों के साथ संगीत तथा मृदंग-ताल की ध्वनियाँ होती रहती हैं, जिन (शब्दों) से भड़ककर भैंसें भागकर नदियों में जा गिरती हैं, जिनके कारण (पानी में) उथल-पुथल उत्पन्न हो जाती है, जिससे मीन उछल-उछलकर तट पर के नारियल, गुवाक (सुपाड़ी) आदि वृक्षों के पत्तों पर जा गिरते हैं।

वहाँ के सरोवरों में कोमलांगी सुन्दरियाँ (जब) भाले-सदृश अपनी आँखें मीचकर और जलमग्न होकर ऊपर उठती हैं, तब वे क्षीर-सागर के मथने के समय जल से ऊपर उठती हुई लक्ष्मी देवी का दृश्य उपस्थित करती हैं। उनके करों के श्वेत कंगन वहाँ के जल-पक्षियों के साथ बोल उठते हैं। उन सरोवरों में भ्रमर सुगंधित पुष्प की कलियों को भेदकर भीतर पहुँचते हैं तथा मधुपान करके मत्त रहते हैं।

इस प्रकार के मिथिला देश में वे तीनों जा पहुँचे और प्राचीरों से आवृत, ऊँची ध्वजाओं से अलंकृत उस मिथिला नगर के बाहर आकर ठहरे। वहाँ एक उजड़े हुए स्थान में उन्होंने एक ऊँचा प्रस्तर पड़ा देखा, जो गृहस्थ-धर्म से च्युत होकर अभिशप्त हो पड़ी रहनेवाली गौतम-पत्नी अहल्या का ही रूप था।

उस प्रस्तर पर काकुत्स्थ (श्रीरामचन्द्र) की चरण-धूलि जा लगी ; तुरन्त ही वह (अहल्या देवी) प्रस्तर-रूप छोड़कर अपना पूर्व स्वरूप धारण करके उठ खड़ी हुई, जैसे कोई नर, अविद्या-मोह को मिटानेवाला तत्त्वज्ञान पाने पर मायावृत रूप छोड़ दे और यथार्थ आत्म-स्वरूप को पहचान ले और भगवान के चरणों को प्राप्त हो जाय। महामुनि (विश्वामित्र) कहने लगे—

गगन से भूतल पर गंगा को ले आनेवाले भगीरथ के वंश में उत्पन्न (रामचन्द्र) ! यह विद्युत्-समान नारी, जो अत्यन्त आनन्द के साथ एक ओर खड़ी है, उस गौतम मुनि की पत्नी अहल्या है, जिस (मुनि) ने पापकर्म करनेवाले देवेन्द्र को सहस्र रक्त-वर्ण नेत्र दिये थे।

सुनहली जटावाले (विश्वामित्र) का कथन सुनकर, पंकज पर विद्युत्-द्युति के साथ आसीन लक्ष्मी के वल्लभ (रामचन्द्र) ने आश्चर्य से कहा—इस संसार की भी कैसी प्रकृति है? इस प्रकार की घटनाएँ क्यों होती हैं? क्या ये पूर्वजन्मों के कर्मों का परिणाम हैं अथवा उन कर्मों के अतिरिक्त कोई और भी कारण है? संसार की माता-सदृश अहल्या की ऐसी दशा क्यों हुई?

रामचन्द्र की बात सुनकर ज्ञानी (विश्वामित्र) ने कहा— शुभाश्रय ! सुनो, पुराने समय में वज्रधारी इन्द्र कभी दुर्गुण-रहित संयमी गौतम महर्षि की मृग के समान नयनोंवाली पत्नी अहल्या के सौंदर्य पर मुग्ध हुआ और उसके स्तनों का स्पर्श प्राप्त करना चाहा।

अहल्या के नयन-रूपी भाले तथा मन्मथ के बाण इन्द्र को पीडित करने लगे। उसने सोचा, किसी भी उपाय से अहल्या की संगति प्राप्त करनी चाहिए ; एक दिन उसने कामांध होकर गौतम मुनि से अहल्या को पृथक् किया और सत्य-स्वरूप गौतम का वेष धारण कर उसके पास जा पहुँचा।

वह अहल्या की संगति में सुगंधित नवमधु का महान् आनन्द पा रहा था, उसी समय अहल्या को अनुभव हुआ कि यह इन्द्र है ; तो भी उसने उसे अनुचित कृत्य मानकर दूर नहीं किया ; उसी समय त्रिनेत्र (शिवजी) के समान सर्व-शक्तिमान् गौतम मुनि भी शीघ्र वहाँ लौट आये।

गौतम धनुर्बाण नहीं चला सकते थे, किन्तु प्रतिकार-रहित शाप देने में अत्यन्त समर्थ थे। उनको देखकर अमिट अपयश पाई हुई (अहल्या) भयभीत हो खड़ी रही ; इन्द्र काँपता हुआ बिल्ली के जैसे वहाँ से धीरे-धीरे खिसकने लगा।

सदा तटस्थ दशा में रहनेवाले परिशुद्ध गौतम महर्षि ने अग्नि उगलती हुई आँखों से देखा ; वे सारी घटनाएँ समझ गये और तुम्हारे (राम के) वाणों के समान तीक्ष्ण वचन (इन्द्र के प्रति) कहे—'तुम्हारे शरीर में एक हजार नारियों के चिह्न-रूप अवयव उत्पन्न हों !' क्षण-मात्र में इन्द्र का शरीर उन अवयवों से भर गया।

इन्द्र सभी का उपहास-पात्र हो गया। अमिट अपयश लेकर वह लज्जित हुआ और वहाँ से चला गया। तब गौतम ने सुकुमारी अहल्या को देखकर कहा – 'वारनारी के सदृश आचरण करनेवाली तुम पत्थर बन जाओ।' अहल्या पत्थर बनकर गिरने लगी।

(उस समय) उसने गौतम से प्रार्थना की कि हे अग्निमय रुद्र-समान मुनिवर ! (छोटों के) अपराधों को क्षमा करना महान् व्यक्तियों का स्वभाव होता है। अतः, मुझे क्षमा करो और मेरे शाप का अंत कब होगा, बताओ।

तब गौतम ने कहा—भ्रमरों से घिरे पुष्पहार धारण करनेवाले दशरथ-पुत्र (श्रीरामचंद्र) जब इस स्थान पर आयेंगे, तब उनकी पद-रज का स्पर्श होते ही तुम्हारा उद्धार होगा।

शाप से विकृतांग इन्द्र को देखकर सभी देवता ब्रह्मा को अपने साथ लेकर गौतम मुनि के पास आये और उनसे प्रार्थना करने लगे। देवताओं की प्रार्थना सुनकर संयसी गौतम शांत हुए और इन्द्र के शरीर पर के सहस्र स्त्री–चिह्नों को सहस्र नयन बना दिये। अहल्या प्रस्तर के रूप में पड़ी रही।

हे मेघ-समान कांतियुक्त (रामचन्द्र) ! प्राचीन काल में ऐसी घटना घटी थी। अब तुम इस भूतल पर अवतीर्ण हो गये हो, इसलिए आगे सभी प्राणिवर्ग का उद्धार होगा ; फिर क्या उनकी दुर्गति कभी संभव हो सकती है ? कदापि नहीं।[1] वहाँ अंजन पर्वत की जैसी ताडका से तुमने जो युद्ध किया, उसमें तुम्हारा हस्त-कौशल देखा था, अब यहाँ तुम्हारे चरणों का कौशल देख रहा हूँ।

श्यामल पुरुष (रामचन्द्र) ने, जिसके अरुण चरणों से अनन्त उपकार होता है, उनके (विश्वामित्र के) समस्त वचन सुनकर अहल्या के प्रति कहा – हे माता ! तुम अब महान् तपस्वी (गौतम) की सेवा में निरत हो जाओ, जिससे उनके मन में तुम्हारे प्रति

---

१. कंबर का यह भाव है कि श्रीरामचन्द्र के अवतार के पूर्व अहल्या-शाप जैसी घटनाएँ घटित होती थीं। अब उनका अवतार होने के पश्चात् ऐसी घटनाएँ संभव नहीं होंगी और जड़, चेतन सभी प्राणियों का उद्धार होगा। वैष्णव भक्तों का विश्वास है कि रामचन्द्र के चरणों के प्रभाव से अचेतन भी मुक्ति प्राप्त कर जाते हैं।—अनु०

करुणा उत्पन्न हो। बीच में आये कष्टों को स्मरण करके दुःखी मत होओ। अब तुम अपने पति के आश्रम में जाओ। यों कहकर अहल्या के चरणों की वन्दना की।

आगे चलकर वे सब गौतम मुनि के आश्रम में जा पहुँचे; गौतम उन अतिथियों के आगमन से अत्यंत हर्षित हुए और आगे बढ़कर आदर के साथ उनका स्वागत किया और सब प्रकार से उनका सत्कार किया। तब गाधिपुत्र ने उन तपस्वियों से कहा --

अंजनवर्ण (रामचन्द्र) की चरण-धूलि लगी नहीं कि अहल्या अपने पूर्व स्वरूप में खड़ी हो गई; उसने अपने मन से कोई पाप नहीं किया था, अतः अब तुम उसे स्वीकार करो। गाधिपुत्र के ऐसा कहने पर ब्रह्मदेव के समान उस (गौतम) ने अहल्या को स्वीकार कर लिया।

सकल सद्गुणों से पूरित (रामचन्द्र) ने गौतम की परिक्रमा करके उनके चरण-कमलों को प्रणाम किया और अहल्या को उन्हें सौंप दिया। फिर, तपस्वी (विश्वामित्र) के साथ मिथिला नगरी के निकट जा पहुँचे और उसके मणिमय प्राचीर को देखा। (१—८६)

●

अध्याय १०

मिथिला-दर्शन पटल

प्रहरियों से सुरक्षित वह मिथिला नगरी अपनी ऊँची और मनोहर ध्वजा-रूपी हाथों को ऊँचा उठाये हुए है, मानों उस कमल-नयन (रामचन्द्र) को यह कहकर आह्वान कर रही हो कि 'सुनहली आभावाली लक्ष्मी मेरी तपस्या के प्रभाव से अपना निवास कमल-पुष्प को छोड़कर यहाँ अवतीर्ण हुई हैं, अतः आप शीघ्र आइए।'

उन्होंने देखा कि उस नगर के ऊँचे-ऊँचे प्रासादों पर सुंदर ध्वजाओं की पंक्तियाँ नृत्य कर रही हैं; वे ऐसी लगती हैं, मानों धर्मरूपी दूत से संदेश पाकर, अनुपम सुंदरी जानकी का पाणिग्रहण करने के लिए योग्य वर (रामचन्द्र) को आते हुए देखकर, गगन-तल में अप्सराएँ आनन्द से नाच रही हों।

उस नगर में कहीं दो मत्त गज आपस में टकरा रहे हैं, जो दो पहाड़ों के जैसे दीखते हैं, जिनके बड़े-बड़े श्वेत दंत वज्र के समान हैं और जिनकी आँखों से कोपाग्नि निकल रही है; मानों प्रेमी दंपति मन्मथ के बाणों से विद्ध होकर (एक दूसरे से) मिलने चले हों और इतने में प्रणय-कलह में लग गये हों।

उन्होंने देखा कि जब सूर्य अस्तंगत होने लगता है, तब वहाँ का आकाश क्षीर-सागर के जैसा दीख पड़ता है; ऊँचे प्रासादों पर उड़नेवाली ध्वजाएँ मेघों का स्पर्श करती हुई गीली होती रहती हैं और साथ-साथ मेघों के समान ही फैले हुए अगरु धूम के स्पर्श से सूखती भी रहती हैं।

मन्मथ सीता देवी का चित्र खींचना चाहता है और अमृत में अपनी लेखनी

डुबोता है, लेकिन वह बेचारा सीताजी के अवयवों के सौंदर्य को अंकित करने में सर्वथा असमर्थ हो हारकर रह जाता है ; ऐसी अनुपम सुंदरी को अपने अंक में पाकर मिथिला नगरी अपने स्वर्णमय प्राचीरों के साथ ऐसी शोभायमान है, जैसे लक्ष्मी का निवासभूत कमल-पुष्प ही हो। ऐसी उस नगरी में वे तीनों प्रविष्ट हुए।

वे तीनों मिथिला की विशाल वीथियों से होकर जाने लगे, जहाँ चन्द्रोपम ललाट-वाली नारियों एवं पुरुषों के रत्नमय आभरण बिखरे पड़े रहते थे (समागम-काल में वे उन आभरणों को बाधाजनक पाकर उतारकर फेंक देते हैं); वे वीथियाँ देखने में ऐसी लगती थीं, जैसे तमिल-भाषा के पिता (अगस्त्य) मुनिवर के पी जाने पर रत्नमय समुद्र का तल हो; या रात्रि के समय घने नक्षत्रों से जड़ा हुआ आकाश हो।

वे लोग वहाँ की वीथियों में जाने लगे, जहाँ लोहे के अंकुशों को भी तोड़ देने-वाले पर्वत-सदृश मत्तगज मद जल बहाते थे ; जब उस मद-जल की धारा बह चलती थीं, तब लगाम में रहनेवाले घोड़ों के मुँह से जो झाग गिरता था, उसके मिलने से उस धारा का रूप बदल जाता था। फिर, रथों के निरंतर दौड़ने से कीचड़ बनता था और अनन्तर (उनके सूखने के बाद) धूल फैल जाती थी। यों उन विथियों की आकृति क्षण-क्षण में परिवर्त्तित होती रहती थी।

वे तीनों मिथिला की उन विशाल वीथियों में जाने लगे, जहाँ रति की वेला में मधुरभाषी रमणियों ने अपने पुष्प-हार फेंक दिये थे, जिन से मधु-धारा बह रही थी और जिनपर भ्रमर मँड़रा रहे थे। वे मुरझाई हुई पुष्पमालाएँ उन कोमलांगी नारियों की जैसी ही लगती थीं, जो निरंतर तुल्यानुराग-भरे अपने प्रेमियों के साथ काम-समर कर चुकने पर अत्यंत श्रांत हो पड़ी रहती हैं।

उन्होंने मिथिला नगर की स्वर्णमय नृत्यशालाएँ देखीं, जिनमें 'याक्'[1] (वीणा के जैसा एक तंत्री-वाद्य) के घृत-मधुर तारों के नाद, मधुर कंठ से गाये हुए गीत, उँगली से छेड़े जानेवाली 'मकरवीणा' की ध्वनि--ये सब एक दूसरे से एकश्रुति होकर गुंजित होते थे और जहाँ अस्ति और नास्ति का संदेह उत्पन्न करनेवाली सूक्ष्म-कटि रमणियाँ नृत्य करती थीं, जिनके हाथों के मार्ग पर उनके नयन चलते तथा उनके नयनों के मार्ग पर उनके मन (के भाव) चलते थे।

उन्होंने देखा—मरकत-सदृश गुवाक (सुपारी) के वृक्षों में शुद्ध प्रवाल जैसे फल लगे हैं ; उन वृक्षों में झूले लगे हैं ; उन में सुन्दर नारियाँ झूल रही हैं ; झूले बार-बार इधर से उधर और उधर से इधर आते जाते रहते हैं और यह स्मरण दिलाते हैं कि पापी जन भी इसी प्रकार पुनः-पुनः इस संसार में आते-जाते रहते हैं। उन रमणियों के पुष्पहारों पर से उड़े हुए भ्रमर गुंजार भरते हैं, मानों उनकी लचकती हुई सूक्ष्म कटियों पर दया उत्पन्न होने से वे चिल्ला उठे हों।

---

१. प्राचीन तमिल-साहित्य में चार प्रकार के याक्-वाद्य प्रसिद्ध हैं। उनके नाम हैं—(१) बेरियाक् (२) कमरयाक ; (३) गोड्याक ; (४) शगोड्याक , जिनमें क्रमशः २१, १९, १४ और ७ तंत्रियाँ होती थीं।—अनु०

उन तीनों ने मिथिला नगर की पण्यवीथि (बाजार) देखी, जहाँ दोनों ओर अपार रत्न, स्वर्ण, मोती, कवरी मृग के केश, अरण्य में उत्पन्न अगरु की लकड़ी, मयूर-पंख, हाथी के दाँत—इनके अंबार लगे थे। वह हाट ऐसी लगती थी, जैसे कावेरी नदी हो, जिसके दोनों तटों पर कृपकों ने मोती, अगरु आदि एकत्र कर उनकी राशियाँ बना दी हों।

उस नगर में रमणियाँ नुकीले और छोटे नाखूनवाले अपने कोमल कर-पल्लवों को दुखाती हुई वीणा की खूँटियों को घुमाती थीं और प्रवहमाण मधु-धारा सदृश तंत्रियों को कसती थीं ; वे अपने हाथ की उँगलियों के साथ मन को भी संलग्न करके, उज्ज्वल मंदहास बिखरेती हुई विस्पष्ट स्वर-युक्त संगीत-रूपी स्वच्छ मधु को पान कराती थी ; उस संगीत का पान करते हुए वे तीनों आनंद से आगे बढ़ चले।

कहीं उन्होंने अतिवेग से दौड़ते हुए घोड़ों की पंक्ति देखी, जो कुम्हार के द्वारा घुमाये गये चाक के समान वर्त्तुल आकार में दौड़ रही थी। (वह पंक्ति) महा-पुरुषों की मित्रता के ही समान अटूट गतिवाली थी तथा ज्ञानियों की बुद्धि के सदृश एकाग्र थी। वे घोड़े ऐसे दौड़ते थे कि उनका आकार स्पष्ट नहीं दिखाई पड़ता था।

उन्होंने ऊँचे प्रासादों के झरोखों में अनेक उदीयमान पूर्णचंद्र देखे, जो पैने भाले, मन्मथ का धनुष, भ्रमर-कुल से संकुल नील केशों का जूड़ा—इनसे शोभायमान थे तथा दीर्घकाल का कलंक भी जिनसे मिट गया था।

उन्होंने अनेक मनोहर कमल भी देखे, जो स्फटिक-चषकों में भरे नवसुरभित मद्य का पान करके हास प्रकट करते हुए मस्ती से अर्थहीन वचन बकते थे और अपने प्रियतमों के प्रति मान करने जाकर हँस पड़ते थे।

[उपर्युक्त दोनों पद्यों में वारनारियों का वर्णन है।]

वारनारियाँ गेंद खेल रही थीं। शारीरिक सुख के साथ ही धन भी प्राप्त करने-वाली, सर्पफन-तुल्य जघनवाली वेश्याओं के मन के जैसे ही स्फटिकवर्णवाले, कंदुक भी अपना स्वाभाविक रंग छिपाते थे। वे (कंदुक) उनकी कज्जलांकित आँखों की छाया पड़ने से काले तथा उनकी लाल हथेलियों की छाया से लाल होते रहते थे।

उन्होंने कई द्यूतशालाएँ भी देखीं, जहाँ भाले-जैसी नुकीली आँखोंवाली सुन्दर वेश्याएँ चौसर खेलती थीं। वे अपने हाथ के कंगन, कर्णाभरण, रत्नहार, कलिंगदेश की बनी अमूल्य चादर, मकरवीणा आदि को भी दाँव पर रख देती थीं। (खेलते-खेलते थक जाने से) उनके पुष्पालंकृत केशपाश शिथिल हो जाते थे और स्फटिक के बने कुत्ते के आकार की मुहरें उनकी हथेली की छाया से लाल दिखाई देती थीं।

उस नगर में कई बावलियाँ भी थीं, जिनमें अनुपम अंगोंवाली सुन्दरियाँ आनंद से स्नान करती थीं। उस समय वहाँ के कमल, नीलकमल, रक्तकुमुद, जल पर फैली हुई 'वल्लै' लता के पत्ते, नीलोत्पल, लाल-लाल 'किडै' (नामक पौधे), तरंगें, मीन आदि जलवर्त्ती वस्तुएँ (उनके अंगों की सुन्दरता देख) लज्जित हो, दुःख अनुभव करती थीं।

कहीं तरुण पुरुष खड्ग चलाने का अभ्यास करते थे। उनकी भुजाओं पर चंदन-

लेप तथा पीनस्तनी नारियों के आलिंगन से उत्पन्न चिह्न अंकित थे। उनका खड्ग-प्रयोग यह स्मरण दिलाता था कि मनुष्य का मन भी विषयभोगी इंद्रियों के द्वारा आकृष्ट होकर मोह-ग्रस्त हो इसी प्रकार भटकता रहता है।

उन्होंने यत्र-तत्र युवक-समूह भी देखे, जिनका शरीर सूर्य के समान उज्ज्वल था ; जिनका मन इतना उदार था कि वे माँगने पर कोई भी अभीष्ट वस्तु दे देते थे ; जिनके लाल करों में धनुष थे और जिनके केश, अपनी मानिनी प्रेयसियों के चरणों पर झुकने से महावर लगकर लाल हो गये थे। उन्हें देखने से ऐसा लगता था, मानों स्वयं मन्मथ शिवजी के नेत्र से बचकर भूतल पर आ गया हो।

उन्होंने मिथिला नगर की फुलवारियों को देखा और वहाँ पुष्प-चयन करती हुई मयूर की समानता करनेवाली तरुणियों को भी देखा। वे तरुणियाँ तोतों से चाशनी जैसी मीठी बोली में संभाषण कर रही थीं। उनके सौंदर्य से अप्सराएँ भी लजा जाती थीं। उनकी गति की कमनीयता से हंस भी परास्त हो जाते थे और भ्रमर उन तरुणियों की विजय पर हर्षनाद कर उठते थे।

उन्होंने चतुरंगिनी सेना-विशिष्ट जनक महाराज के स्वर्णमय प्रासाद के चारों ओर एक विशाल खाई देखी, जिसमें देवों के निवास-योग्य उन्नत अट्टालिकाओं की परछाईं पड़ती रहती थी और जहाँ देवनगर अमरावती की सुन्दरता उत्पन्न हो रही थी। तरंगायमान वह खाई उमड़ती हुई गंगा नदी के समान गंभीर थी।

वे तीनों राजप्रासाद में कन्यागृह की अट्टालिका के अग्रभाग को देखकर वहीं खड़े हो गये ; उस अट्टालिका में हंस और हंसिनियाँ इस प्रकार परस्पर मिलकर विचर रहे थे, जैसे स्वर्ण और उसकी आभा, पुष्प और उसकी सुवास, भ्रमरों का भोज्य मधु और उसकी मिष्टता तथा सुगुम्फित कवि-वचन तथा उसकी रसमयता।

अब हम सीताजी का वर्णन करना चाहते हैं, किन्तु कैसे करें ? कमलासन ब्रह्मदेव से लेकर सभी (व्यक्ति), किसी नारी का उपमान देते समय लक्ष्मी का उल्लेख करते हैं ; वही लक्ष्मी स्वयं सीता का रूप लेकर अवतीर्ण हुई हैं, तो उनका उपमान कहाँ से और कैसे ढूँढ़ा जाय ?

पार्वती प्रभृति देवियाँ भी सिर पर कर जोड़कर, सकल सद्‌गुण-संपन्न सीता को प्रणाम करती हैं। वैसी सीता को जो भी देखते हैं, वे कभी उस सुन्दरता का पार नहीं पाते हैं ; मानव समझते हैं, हाय ! हम देवताओं के समान निर्निमेष दृष्टि से नहीं देख सकते ; और, देवता लोग समझते हैं कि हम अपनी इन दो आँखों से सीता के सौंदर्य को कैसे देख सकते हैं (अर्थात्, इसके लिए दो आँखें पर्याप्त नहीं हैं) ?

सीताजी के वे चंचल नयन हरिण को भी अपने सौंदर्य-गुण से मात करते हैं। विजयशील भाला और तलवार भी उन नयनों की छटा से परास्त हो जाते हैं ; अन्य नारियों के नयनों के उपमान-भूत 'कयल' मीन भी उनसे डरते हैं। उस समय (रामचन्द्र के लिए) सीताजी, मंदर पर्वत के मथने से कल्लोलित समुद्र से उत्पन्न अमृत नहीं, परन्तु उस कन्यागृह के उस प्रासाद से उत्पन्न अमृत थीं।

यदि ब्रह्मदेव से प्रार्थना की जाय कि रथ-सदृश पीनजघनवाली ऐसी ही एक अन्य तरुणी की सृष्टि कीजिए, तो वह चतुर्मुख भी वैसी सृष्टि नहीं कर सकेगा। अ मृतभोजी देवगण ही क्यों न प्रार्थना करें, सागर अमृत नामक दिव्य औषध भले ही दुबारा दे दे, किन्तु ऐसी मनोहर रूपवती लक्ष्मी को कहाँ से लायगा ?

कांतिपूर्ण भाले के फल के जैसे नयनोंवाली मेनका आदि अप्सराएँ, जिनपर स्वर्ग के शासक इन्द्र तथा अन्य देवता भी मुग्ध होते रहते हैं, इन सीताजी के शरीर-सौंदर्य को देखकर मन मसोसकर रह जाती हैं। अब उन अप्सराओं के मुख-चन्द्र के लिए सर्वदा दिन ही रहता है (अर्थात्, दिन में चन्द्रमा जिस तरह कांतिहीन दीखता है, उसी प्रकार सीता की छवि के सामने वे कांतिहीन हो गई हैं)।

कमल-पुष्प पर निवास करनेवाली यह देवी इस धरती पर उतर आई है। इसके लिए किन्होंने बड़ी तपस्या की थी ? क्या वह असंख्य ब्राह्मण थे, या स्वयं धर्मदेवता थे, या सारा संसार था, या स्वर्ग था, अथवा सभी देवता ही थे, जिन्होंने ऐसी तपस्या की थी ? हम कह नहीं सकते कि यह किनकी तपस्या का फल है।

अनुपम रूपवती नारियाँ सीताजी की सेवा में संलग्न रहती थीं ; वे उन्हें, रक्त-कमल समान करवाली ! हरिणोपमे ! माता ! मधुतुल्ये ! अपूर्व अमृतसदृशे ! आदि शब्दों से संबोधित करती थीं। सीताजी के चरण जहाँ-जहाँ पड़ते थे, वहाँ वे, आगे-आगे पुष्प-राशि बिखेरती रहती थीं। उन पराग-भार से लदे पुष्पों के मध्य सीताजी विलक्षण कांति से शोभायमान दीखती थीं।

स्वर्णमय किंकिणी, रत्नहार, पुष्पमालाएँ, विशाल नितंबों पर पड़ी मेखलाएँ— इनसे भूषित लता-जैसी उनकी सहचरियाँ उनके सौंदर्य को मुग्ध होकर देखती खड़ी रह जाती थीं। उन सहचरियों के मध्य सीताजी ऐसी लगती थीं, मानों करोड़ों छोटी बिजलियों के बीच बड़ी विद्युत् राज्य कर रही हो।

'सबको मारनेवाले भाले तथा यम को भी पराजित करनेवाला कोई है'— यह जनश्रुति संसार में उत्पन्न करने के लिए ही सीताजी ने वैसे नयन पाये हैं। वे नयन अवर्णनीय हैं ; उस सुन्दर कन्यारूपी फल (सीता) को देखकर पर्वत, दीवारें, प्रस्तर, पेड़-पौधे जैसे अचेतन पदार्थ भी द्रवित हो जाते हैं (तो चेतनों की बात ही क्या ?)।

पुरुषों की प्यासी आँखें जिन कामिनियों को देखकर उमंग से भर जाती हैं, वे रमणियाँ भी सीताजी के रूप-सौंदर्य को देख-देखकर आनंदित होती रहती हैं। नारियों के मन में भी रूप-लालसा (आकर्षण) उत्पन्न करनेवाली अमृत-समान सीताजी हमारे प्रभु श्रीरामचन्द्र को न जाने कैसी लगेंगी ?

कर्णाभरण आदि आभूषण पहले से ही जलद-शीतल नयनयुक्त सुन्दरियों के शृङ्गार की वस्तु रह चुके हैं, किन्तु अब इस सीताजी के जन्म से सौंदर्य के साधन (वे आभूषण) नई शोभा से शोभित हो रहे हैं।

अकल्पनीय सौंदर्य-युक्त सीताजी कन्या-प्रासाद पर खड़ी थीं, उस महाभाग (राम) की दृष्टि उस (सीता) पर पड़ी और उसकी दृष्टि उस महाभाग पर ; तब श्रीरामचन्द्र और सीताजी

की आँखें एक दूसरे को पीने लगीं ; उनकी प्रज्ञा भी अपना आश्रय छोड़कर एक दूसरे से जा मिलीं।

(सीताजी के) नयन-रूपी दो अतितीक्ष्ण बरछे (रामचन्द्र की) पुष्ट भुजाओं में जा गड़े। मुखरित होनेवाले वीर पद-कंकण पहने हुए (रामचन्द्र) के अरुण नयन भी मोहिनी-तुल्य उस देवी के स्तनों में गड़ गये।

रूप-माधुर्य को पीनेवाले नयन-पाश से दोनों के मन बँध गये और उस बंधन के द्वारा खिंचे जाकर दृढ धनुष-धारी महाभाग तथा नुकीली दृष्टियुक्त तरुणी एक दूसरे के हृदय में पहुँच गये।

कटिविहीन (सीता) एवं दोषरहित (राम), दो शरीर, किन्तु एक प्राण हो गये। विशाल क्षीरसागर में आदिशेष के पर्यंक पर साथ रहनेवाले वे दोनों एक दूसरे से वियुक्त हो गये थे, अब पुनः संयुक्त हो रहे हैं, तो फिर उनके प्रेम का वर्णन करना क्या आवश्यक है ?

उस असीम सुन्दर की भुजाओं का आलिंगन नहीं पा सकीं, अतः स्वर्ण-कंकण-धारिणी (सीता) प्रतिमा के जैसे स्थिर खड़ी रह गई। उधर सीताजी की स्मृति, मन की दृढता तथा शरीर-सौंदर्य को साथ लेकर कुमार भी मुनिवर का अनुसरण करते हुए आगे चले और दृष्टि-पथ से ओझल हो गये।

अपने नयन-मार्ग से सुगन्धित पुष्पधारी (रामचन्द्र) के अदृश्य होते ही (सीताजी के) मन नामक मत्तगज का धृति नामक अंकुश भी हट गया। अब चन्द्रकला-सदृश ललाट से शोभित उनके स्त्रीत्व की क्या दशा हुई ? (स्त्री-सुलभ लज्जा, संकोच आदि गुण भी छोड़ चले।)

विष्णु के अवतार-भूत (रामचन्द्र) के सम्मुख होते ही सीता के मन और शरीर उनकी तंतु-सूक्ष्म कटि के जैसे ही कंपित हो उठे। प्रेम की व्याधि उनके नयन-मार्ग से शरीर में जा पहुँची और तुरत ही सारे शरीर में इस तरह फैल गई, जैसे दूध में जामन फैल जाता है।

सीता देवी काम-व्याधि से पीडित हुईं। क्षण-क्षण वर्धमान उस व्याधि को वे किसी पर प्रकट भी नहीं कर सकती थीं। मूक व्याधि के समान अपनी पीडा को मन में ही छिपाये वे अति व्याकुल हो उठीं। उसी समय मन्मथ ने भी एक बाण उनके मन में छोड़ा, मानों जलते आग में किसी ने इंधन डाल दिया हो।

सीताजी की आँखें कान के उज्ज्वल ताटंकों तक फैल जाती थीं और विना तेल लगाये तथा विना आग में तपाये ही तीक्ष्ण फलवाले बरछे की जैसी लगती थीं। ऐसे नयन से शोभित (वैदेही) अब आग में पड़ी लता के सदृश झुलश गई। उनके केशपाश ढीले होकर बिखर गये और वस्त्र भी अंगों से नीचे फिसल पड़े।

वियोग-व्याधि से पीडित होने के कारण (सीता) अपनी मेखला, शंख-निर्मित कंगन, शरीर की कांति, मन की दृढता, स्मृति आदि सब खो बैठीं। (क्षीरसागर मंथन के बाद) अपनी समस्त संपत्ति देवताओं को देकर समुद्र जिस प्रकार कांतिहीन हो गया था, उसी प्रकार वह निश्चेष्ट रह गईं।

सखियों ने देखा कि स्वर्ण-ताटंक धारिणी, मयूर-सदृश उसके आभरण स्रस्त हो रहे हैं, उनकी लज्जा भी गलित हो रही है, स्तनों पर मन्मथ-बाण का आघात होने से वे शर-विद्ध हरिणी के समान तड़प रही हैं। उस दशा को प्राप्त सीता को वे बड़ी कठिनाई से उपचार के लिए ले गईं।

जिनके मीन-तुल्य नयन ताटंक-युक्त कानों के साथ सदा समर करते रहते थे, उनको (सखियों ने) कोमल शय्या पर लिटा दिया; जिसपर उनके कर-चरण सदृश ही, अति मृदु पल्लव तथा पुष्पदल बिछाये गये थे और अतिशीतल ओस की बूंदें भी छिड़काई गई थीं।

सुगंधि से भरे नवपुष्पों की उस सेज पर जब वे लेटीं, तब उनके शरीर-ताप से वह शय्या झुलसकर ऐसी हो गई, जैसे पाला पड़ने पर कमलों से भरा सरोवर या राहुग्रस्त होने पर चन्द्रमा।

पर्वत की चोटी पर मेघ-वर्षा के समान सीताजी के स्तनों पर उनके दीर्घ नयनों से मोती की धारा झरने लगी। धनुष-सदृश भौंहों से शोभित उनके ललाट पर स्वेद-बिंदु छा जाते, किंतु दूसरे ही क्षण भट्ठी से निकले हुए धुएँ के जैसे उनके उष्ण उच्छ्वासों के लगने से तुरंत सूख जाते थे।

कठोर हृदयवाले वन्य व्याध के शर से आहत मयूर की जो दशा होती है, वही उनकी भी हो गई। विरह की अग्नि में लता-सुकुमार उनका शरीर झुलस गया और उस पुष्प-पर्यंक पर लुढ़क गया।

उन्हें वे कोमल पुष्प भी काँटे जैसे लगे। चंदन का लेप शरीर के ताप से जलकर चिनगारी बनकर गिर पड़ा। आभरणों के भीतर के डोरे जलकर टूट गये और पर्यंक पर के पल्लव झुलसकर काले हो गये।

सीताजी की धाइयाँ, दासियाँ, माता, बहनें—सब उनकी वेदना को देखकर बहुत ही व्याकुल हुईं। उनकी समझ में नहीं आया कि उन्हें कौन-सी व्याधि है। उन्होंने सोचा कि किसी की नजर लग गई है और वे नीराजन करके वह दोष दूर करने की चेष्टा करने लगीं।

सखियाँ पंखे झल रही थीं, पर पंखे की हवा से उनका विरह-ताप शांत न हुआ, और बढ़ता ही गया, जिससे उनके आभरण तथा शरीर पर के पुष्पहार, जो अब तक कुम्हलाये-से दीख पड़ते थे, अब झुलस गये और कुछ जलने भी लगे। उस समय सीताजी का वह दृश्य ऐसा था, मानों कोई सोने की प्रतिमा तपाई जाकर पिघल रही हो।

वे विरह में प्रलाप करने लगीं। वह उनके (रामचन्द्र के) रूप-लावण्य का स्मरण करती हुई, कभी उनके केशों को पुष्पालंकृत अंधकार-वन कहतीं, उनके दोनों भुजाओं को दो स्तंभ या मरकत-रत्नमय दो पर्वत कहतीं, उनके नयनों को कमल-पुष्प कहतीं, और कभी कहतीं कि यह तो कोई मेघ इन्द्र-धनुष के साथ ही आकाश से धरती पर उतर आया है।

वह कहतीं—जो सुन्दर पुरुष मेरे हृदय में प्रवेश करके मेरी मनोदृढ़ता, महिलो-

चित लज्जा आदि गुणों को गलाकर मेरे प्राणों के साथ ही पी गया है, उसकी पर्वतोपम भुजाओं में आश्रित धनुष, इक्षु-धनुष नहीं है और वह पुरुष मन्मथ भी नहीं है।

अब मैं अपनी नारी-निसर्ग रमणीयता, स्वाभाविक लज्जा, मन की स्मृति—इन्हें कहीं भी नहीं देख पा रही हूँ; अतः जो पुरुष अपने कोमल पदों को दुखाते हुए धरती पर चल रहा है, वह अवश्य ही एक चोर है, जो नेत्रमार्ग से हृदय में प्रवेश करने में निपुण है।

इन्द्रनील-तुल्य केश, चन्द्र-सदृश मुख, लंबी भुजाएँ, सुन्दर नीलरत्न-पर्वत के जैसे उनके कंधे, ये मेरे प्राणों को पीनेवाले नहीं हैं; किंतु इन सबसे बढ़कर उनकी वह मुस्कान है, जो मेरे प्राणों को पी रही है।

विशाल, उज्ज्वल तथा देखनेवालों के प्राण हरनेवाला उनका वक्ष तथा भव्य तामरस-सदृश उनके चरण ही नहीं, किंतु मस्त हाथी की जैसी उनकी पदगति भी है जो, मेरे मन में अमिट रूप से अंकित हो गई है।

मैं क्या कहूँ? वह पुरुष देवलोक का निवासी नहीं है; क्योंकि उनके पंकज-नयनों की पलकें स्पंदित होती हैं; उनके विशाल कर में धनुष था तथा उनके वक्ष पर यज्ञोपवीत भी था, अतः वह युवक अवश्य कोई राजकुमार ही है।

वह राजकुमार मेरे कौमार्य-रूपी बड़े प्राकार[1] को ढाहकर चला गया है, जिसमें मेरे सहजात महिलोचित लज्जा, संकोच आदि गुण सुरक्षित थे और मन की दृढता-रूपी यंत्र भी सुरक्षा के लिए संचालित होते थे। क्या मैं अपने ये विरह-व्याकुल प्राण त्यागने के पूर्व फिर एक बार उस सुन्दर पुरुष के दर्शन कर सकूँगी?

इस प्रकार के वचन कहती हुई (सीताजी) उन्मत्त-सी प्रलाप करने लगीं; वे कभी कहतीं—देखो, वह सुन्दर (कुमार) यहाँ मेरे सामने खड़ा है; फिर कहतीं, हाय! वह अदृश्य हो गया है। वे अपने विरह-उत्तप्त मन में विविध प्रकार की कल्पनाएँ करने लगीं।

उस समय (सृष्टि के) आदिकाल से ही उष्ण किरणों को बिखेरनेवाला सूर्य, मानों हंसगतिवाली सुकुमारी सीता के विरह-ताप की आँच को सह नहीं सका, अतएव काँपनेवाले अपने दीर्घ करों को समेटकर समुद्र में जा डूबा।

उसी समय संध्या-रूपी कालदेव, पुष्पों की सुगन्धि लेकर बहनेवाले मलयानिल-रूपी पाश को लिये हुए, रक्त गगन-रूपी लाल-लाल केश और अंधकार-रूपी अपने काले रूप को लेकर आ पहुँचा और संसार में अपूर्व उस देवी को और अधिक सताने लगा।

वह संध्याकाल एक भूत के समान बढ़ने लगा। उसके पास आकाश में शब्द करनेवाले विहग-रूपी 'पटह' था। भूमि पर गर्जन करता हुआ सागर रूपी नूपुर था; आसमान की लाली उसका रक्त था और उसके पास पापमय अंधकार-रूपी काला कवच था। इस प्रकार, वह देखने में अति भयंकर लगता था।

---

१. यहाँ किसी यंत्र की ओर संकेत है, जो प्राचीन काल में दक्षिण के नगरों के प्राकारों में सुरक्षा के निमित्त लगे रहते थे।

सरोवर-रूपी अग्नि में तपा हुआ, सुगंध-पुष्पों के मधु-रूपी विष में बुझा हुआ वह मंद मारुत संचरण करता हुआ आया और मन्मथ के बाणों से विद्ध उनके शरीर में जा लगा, जिससे सीता अत्यन्त अधीर हो उठीं और संध्याकालीन गगन को देखकर डर गईं कि यह यम का ही भयंकर रूप न हो।

वह संध्याकाल काले रंग के साथ बढ़ता हुआ आया। सीता सोचने लगीं कि दुःखपूर्ण युवतियों के प्राण हरनेवाला यह कौन है? काला समुद्र है? कालमेघ है? बहुत बड़ा इन्द्रनील पर्वत है? 'काया' पुष्प है? नीलकुमुद है? या नीलोत्पल पुष्प है? उनके सामने राक्षसों के झुण्ड जैसे रात्रिकाल बढ़ता आया। (सीताजी रात्रि को संबोधित करके कहती हैं) हे रात्रि-रूपी कालसर्प! ये नक्षत्र तुम्हारे विषदंत हैं, मलय-समीर तुम्हारी फुफकार है, अरुण गगन तुम्हारे मुँह का विषकोश है। इनको लेकर तुम कहाँ से आये हो?

मन्मथ-रूपी अहेरी पहले से ही मुझपर तीर छोड़ने से विरत नहीं हो रहा है; तुम भी क्यों अब अपना मुँह बाये मेरी ओर बढ़ रहे हो? मेरे दो प्राण नहीं हैं, एक ही है; मैं किसी प्रकार से मन्मथ के बाणों से बचने की चेष्टा कर रही हूँ; इतने में तुम कहाँ से आ निकले? मुझसे तुम्हारा क्या विरोध है? क्यों तुम स्त्री-हत्या का पाप अपने ऊपर लेना चाहते हो?

यह दुःखद अंधकार जो बढ़ता चला आ रहा है, विश्व-भर में व्याप्त होनेवाला हलाहल तो नहीं है? समुद्र ही तो नहीं है, जो उमड़ता चला आ रहा है? या उन (रामचन्द्र) का नीलवर्ण ही तो नहीं है, जो सभी लोगों के द्वारा स्मरण किये जाने के कारण सर्वत्र फैल रहा है? अथवा यह यमराज का रंग है, जिसको अंजन के साथ मिलाकर गगन और भूतल पर लीपा जा रहा है?

उसी समय अपने जोड़े से विलग होकर एक क्रौंच पक्षी शब्द करने लगा। (सीता उसको संबोधित कर कहती हैं)—मेरे दृष्टिपथ में क्षण-भर के लिए स्थित होकर वे ओझल हो गये। उन्हें रोककर रखनेवाला कोई नहीं रहा। मुझ निस्सहाय पर दया न करके रात्रि के अंधकार में छिपा हुआ मन्मथ मुझपर बाण चला रहा है। तुम भी मुझे क्यों सताने आये हो? क्या उसी निष्ठुर कामदेव ने तुम्हें यह कर्म सिखा दिया है? अथवा मेरे पूर्वजन्म-कृत पाप ही तुम्हारे रूप में अब मुझे सताने आये हैं?

इस प्रकार सोचती हुई (सीता) जब बहुत दुःखी हो रही थी, तब सखियों ने उन्हें गगनस्पर्शी प्रासाद के ऊपर एक चन्द्रकान्त-वेदिका पर लिटा दिया। अति प्रकाशमान घृतदीपों को उष्णतावर्धक समझकर वहाँ से हटा दिया और तैल-रहित रत्नदीपों को ला रखा, जिनके प्रकाश से रात्रि का समय भी दिन के समान हो गया।

उसी समय चंद्र उदित हुआ। जब देवताओं ने, अपना भोजन अमृत को प्राप्त करने के लिए, मंदर पर्वत में वासुकि सर्प को लपेटकर समुद्र का मंथन किया था, तब समुद्र से गगन-तल पर उठे हुए जलबिन्दु तथा रत्नजाल नक्षत्रों से भी अधिक चमक उठे थे; उस समय समुद्र से अमृत का स्वर्ण-कलश जिस प्रकार ऊपर निकला था, उसी प्रकार अब चंद्र समुद्र से ऊपर उठने लगा।

सृष्टि के आरंभ में समस्त विश्व को अपने उदर में आलीन करके जब विष्णु वट-पत्र पर लेटे थे, तब उनकी नाभि-रूपी समुद्र से एक कमल निकला था, जिसपर ब्रह्मदेव भ्रमर बनकर चार वेदों का गान करते हुए बैठे थे। समुद्र और चंद्रमा के उदय होने का दृश्य ऐसा था, मानों वीचि-भरा एक अन्य समुद्र श्वेतकमल को लेकर शोभायमान हो रहा हो।

आकाश पर नक्षत्र बिन्दियों के समान चमकते थे, जिनके मध्य उज्ज्वल चन्द्र निशा के अंधकार को चाटता हुआ बढ़ रहा था; उस समय प्राची दिशा की चंद्रिका, रजतमय मंगल-कलश के समीप रखे हुए कोमल क्रमुकपत्र के समान फैली हुई थी। न जाने, शुक-भाषिणी सीता के लिए वह क्या बनकर रहेगी?

संध्याराग-रूपी अपने हाथों को फैलाकर समस्त विश्व को आवृत करनेवाला जो अंधकार था, उसको निगलने के लिए शीतल चन्द्रमा उदित हुआ। उसकी चन्द्रिका सर्वत्र इस प्रकार फैली, जिस प्रकार विशाल जलाशयों तथा खेतों से भरे तिरुवण्णैनल्लूर ग्राम के निवासी 'शडयप्पवल्लर' की कीर्त्ति नभ, धरती तथा दिशाओं में व्याप्त हो रही हो।

समुद्र के जल से विशद उज्ज्वल चन्द्रमा नामक एक चतुर बढ़ई निकला है। वह अपने करों को ऊपर फैलाकर अतिश्वेत चन्द्रिका रूपी सुधा (चूना) से समस्त ब्रह्मांड को पोत रहा है; क्योंकि विष्णु के नाभि-कमल से उत्पन्न यह अंडगोल बहुत पुराना हो गया है और उसे अब नया बनाना है।

इसी समय कमल-पुष्प मुकुलित हो गये, जिससे लक्ष्मी तथा गुंजार भरनेवाला भ्रमर-कुल तिरोहित हो गया। (उसके पश्चात्) रक्तकुमुद सिर उठाकर ऐसे विकसित हुए, जैसे सर्वत्र अपने आज्ञा-चक्र को संचालित करनेवाले चक्रवर्त्ती राजा के हटते ही अनेक सामन्त नरेश अपना-अपना स्वतंत्र अधिकार चलाने लगते हैं।

(बढ़ते हुए चन्द्र को देखकर विरह-तप्त सीता देवी कहने लगीं)—समस्त विश्व को निगलकर बढ़नेवाले अंधकार-रूपी काले रंग की अग्नि में तुम श्वेत रंग की अग्नि बनकर निकले हो। उस मायामय पुरुषोत्तम से समुद्र, रूप-रंग में हार गया है, इधर मैं भी लोक मार्ग के विरुद्ध चलकर उनके प्रेम में अपने को खो बैठी हूँ। इस प्रकार, दुःखी होनेवाले हम दोनों (समुद्र और सीता) पर तुम निष्ठुरता कर रहे हो।

सागर में उत्पन्न हे चन्द्र! तुम तो कठोर नहीं हो; क्योंकि तुम किसी की हत्या करनेवाले नहीं हो। तुम्हारा जन्म क्षीर समुद्र से हुआ है और तुम्हारे सहोदर हैं अमृत तथा गजगामिनी सुन्दरी लक्ष्मी। ऐसे तुम, क्या अब मुझे जलाने पर तुले हो?

ऊपर उठा हुआ चन्द्र-किरण-रूपी हथौड़ा सीता के सुकुमार स्तनों पर चोट करने लगा। जैसे कोई हंसिनी आग में गिर पड़ी हो, उसी प्रकार सीता कमल-पुष्पों की सेज पर तड़पने लगी।

जब चन्द्र-किरण लगातार चोट करने लगी, तब उनका शरीर तप्त हुआ, शिथिल हुआ और सेज पर लुढ़क गया। उनके स्पर्श से कमलदल झुलस गये। उस शुक-भाषिणी देवी की यह दशा हुई।

ज्यों-ज्यों सखियाँ सुगन्धित चन्दन आदि का लेप उनके शरीर पर लगाती थीं,

त्यों-त्यों उनका ताप बढ़ता ही जाता था। वे तड़फड़ा उठीं। पंखा झलने से उनके कोमल स्तनों में गरमी बढ़ गई ; क्या संसार में काम-व्याधि का औषध भी कहीं है ?

सीता के शरीर-ताप से कोमल पुष्पों की सेज झुलसकर काली पड़ जाती थी, तो माता से भी बढ़कर ममता रखनेवाली उनकी दासियाँ सहस्रों शय्याएँ सजा देती थीं।

मनोहर कन्यावास में पुष्पों की सेज पर हंसिनी-सदृश पड़ी सीता इस प्रकार विरह-विह्वल हो रही थी। उधर उनके विद्युत्-जैसी देह-लावण्य को देखने से उस कुमार की क्या दशा हुई, उसका भी थोड़ा वर्णन करेंगे।

जब ये (विश्वामित्र, रामचन्द्र और लक्ष्मण) महाराज (जनक) के सम्मुख आये, तब उन्होंने अत्यन्त आनन्द के साथ उन तीनों की अगवानी की तथा अपने भोग-वैभव से अमरावती की समता करनेवाले गगन-चुंबी प्रासाद में उन्हें ठहराया।

वीर पुरुष (श्रीराम) की चरण-धूलि के स्पर्श से शाप-मुक्त होनेवाली अहल्या के पुत्र महर्षि (शतानन्द) वहाँ पधारे, मानों समस्त तपस्याएँ साकार होकर आ गई हों।

कुमारों ने उस आगत तपस्वी को आदर के साथ नमस्कार किया। अनंत सद्गुण-पूर्ण (शतानन्द) मुनि ने आशीष दिये और कौशिक के निकट आये।

गौतम के सत्पुत्र ने महान् तपस्वी विश्वामित्र को देखकर कहा—इस मिथिला की भूमि ने कैसी तपस्या की थी कि आपके यहाँ पदार्पण का फल उसको प्राप्त हुआ ?

शीतल कमल पर आसीन पुनीत ब्रह्मदेव की समानता करनेवाले, सर्वमैत्री की भावना से पूर्ण तथा महान तपस्वी शतानन्द से सर्वज्ञ (विश्वामित्र) ने कहा—'हे तपस्विन्, सुनें, इस उदार रामचन्द्र ने वज्रघोष करनेवाली ताडका का शरीर, मेरा यज्ञ तथा आपकी माता का शाप—तीनों को समाप्त किया है और मेरे मन का क्लेश दूर किया है।

यह सुनकर शतानन्द ने उत्तर दिया—हे तपोधन ! यदि आपकी कृपा रहे, तो इन दोनों वीरों के लिए कोई भी कार्य असंभव नहीं है। इस प्रकार कहकर—

उन्होंने श्रीरामचन्द्र के चन्द्रमुख की ओर देखा, जो अतसी-पुष्प, नीलकांत मणि, नील समुद्र, नीले मेघ तथा नीलोत्पल के समान था ; और बोले—

हे सुगन्धित पुष्पों की माला पहने हुए प्रभो ! मैं आपको एक वृत्तांत सुनाता हूँ, सुनें। अपूर्व तपस्या करनेवाले ये विश्वामित्र पहले भूतल के राजा बनकर अनेक वर्षों तक नीति से शासन करते रहे।

राजधर्म में निरत रहते समय एक बार ये आखेट करने के लिए एक घने अरण्य में गये और वहाँ अति प्रख्यात वसिष्ठ महर्षि के निकट जा पहुँचे।

अरुंधती के पति (वसिष्ठ) ने विश्वामित्र नरेश का उचित सत्कार किया तथा बैठने के लिए समुचित आसन दिया। जब कौशिक बैठे, तब उनको भोजन देने के उद्देश्य से वसिष्ठ ने अपनी सुरभि (गाय) को बुलाया और उसे आदेश दिया कि वह अमृत-सदृश भोज्य पदार्थ दे। सुरभि ने आज्ञा के अनुसार तत्काल सभी वस्तुएँ उपस्थित कर दीं।

उस मुनिवर (वसिष्ठ) ने कौशिक नरेश तथा उनकी सेना को षड्रस भोजन कराया और कहा—'आपलोग भर-पेट खाइए।' उनके भोजन करने के उपरांत सुवासित

पुष्प और श्रेष्ठ चन्दन-लेप भी दिये ; तब वे बहुत संतुष्ट हुए। फिर कुछ सोचकर कहने लगे—

हे तपस्विन्! आप अपने स्थान से उठे भी नहीं, तो भी इस दिव्य धेनु ने मेरी सारी सेना को पवित्र तथा बढ़िया भोजन प्रदान कर दिया ; ऐसी विशेषता से युक्त है यह गाय। शास्त्रों के पारंगत वेदज्ञ पंडितों का कहना है कि सभी उत्तम वस्तुएँ राजाओं के ही भोग के योग्य होती हैं।

यह धेनु आप जैसे ब्राह्मणों के लिए रखने-योग्य नहीं है। अतः, यह सुरभि मुझे दे दीजिए। कौशिक के ये वचन सुनकर वसिष्ठ कुछ क्षण तक कुछ भी कहे बिना मौन रहे। फिर कहा—हे शत्रु-भयंकर शूलधारी राजन्! मैं वल्कलधारी मुनि हूँ। मुझे यह अधिकार नहीं है कि मैं इसे और किसी को दूँ। यदि वह स्वयं आपके पास जाय, तो उसे ले जायें।

यह सुनकर 'आप के कथनानुसार ही करूँगा'—कहते हुए कौशिक उठे। उन्होंने बड़े उत्साह से उस सुरभि को बाँध लिया और चलने लगे, तो सुरभि बंधन तोड़कर वसिष्ठ के पास आ पहुँची और उनसे पूछा—क्या आपने मुझे विश्वामित्र को दे दिया है? वेदादि सभी तत्त्वों के पारंगत (वसिष्ठ) ने कहा—

मैंने विश्वामित्र को दिया नहीं। वह विजयी नरेश स्वयं ही तुम्हें ले जाना चाहता है। यह सुनते ही सुरभि क्रोध से भर गई तथा वसिष्ठ से यह कहती हुई कि आप देखें, वज्रनाद के समान भेरी बजानेवाली इस सारी सेना को मैं किस प्रकार नष्ट कर देती हूँ, और उसने अपने रोंगटे खड़े कर लिये।

तत्क्षण उस कपिला धेनु ने हथियारों के साथ बर्बर, किरात, चीन, शोणक आदि विविध जाति के सैनिक उत्पन्न किये। उन सैनिकों ने कौशिक की बलवती सेना का संहार कर दिया। यह देखकर विश्वामित्र के पुत्र क्रुद्ध हो उठे।

यह सुरभि की शक्ति नहीं, श्रुतिशास्त्र में पंडित वसिष्ठ की ही माया है। यह कहते हुए उन कौशिक-कुमारों ने वसिष्ठ का सिर काटने के लिए उन्हें आ घेरा। तब वसिष्ठ ने उनको क्रोधाग्नि की ज्वाला से भरी दृष्टि से देखा, तत्काल वे सब मृत होकर गिर पड़े।

कौशिक ने अपने सौ पुत्रों को मरते हुए देखा, तो वे घृत डालने से भड़की हुई अग्नि के समान उग्र हो उठे। वे रथ पर बैठकर आये और अपने धनुष को खूब झुकाकर वसिष्ठ पर एक के पश्चात् एक करके अतिवेग से तीर बरसाने लगे। वसिष्ठ ने अपने हाथ के ब्रह्मदंड को आज्ञा दी कि वह उन तीरों को रोक ले।

(कौशिक ने) साधारण शस्त्रों से लेकर दिव्य अस्त्रों तक अपने अभ्यस्त सभी आयुधों का प्रयोग किया, पर वसिष्ठ का ब्रह्मदंड सभी को निगलकर उज्ज्वल हो खड़ा रहा। तब कौशिक ने मेरु को धनुष बनानेवाले (शिव) का ध्यान किया ; शिव साक्षात् हुए तथा एक बलिष्ठ अस्त्र देकर चले गये।[1]

कौशिक ने उस रुद्रास्त्र का प्रयोग किया। उसे देख देवता डर गये कि अब

१. कंब रामायण के कुछ संस्करणों में यह पद्य नहीं मिलता।—अनु०

तीनों लोक जल जायेंगे; अतः वे उस अस्त्र को आते हुए देखकर स्वयं आगे बढ़े तथा उसे स्वयं ही निगल लिया। उस अस्त्र की ज्वालाएँ उनके शरीर के भीतर से बाहर निकलने लगीं, जिनसे वे और भी तेजस्वी हो निखर उठे। विध्वंसक रुद्रास्त्र की यह दशा हुई।

कौशिक ने यह सब देखा। वे सोचने लगे—वेदों के ज्ञाता महर्षियों के वंश में जो शक्ति तथा तेज रहते हैं, वे अन्य (लोगों) के पास नहीं होते। समस्त पृथ्वी पर राज्य करने की शक्ति भी उस ब्रह्मतेज के सामने कुछ भी नहीं। यह सोचकर उन्होंने कठिन तपस्या करने की ठानी और इंद्र की दिशा में (प्राची में) चले गये।

राजाओं के अधिराज (विश्वामित्र) महिमामय (वसिष्ठ) की विजय का ही स्मरण करते हुए चले और घोर तपस्या करने लगे। यह देखकर इंद्र डरा और अप्सराओं में श्रेष्ठ तिलोत्तमा को उनकी तपस्या भंग करने के लिए भेजा।

कौशिक उस सुन्दरी के रूप को देखकर काम-पीडित हो उठे; काम-समुद्र में डूबकर अपनी सुध-बुध खो बैठे और उसकी संगति में असंख्य दिन बिताये। जब उनका विवेक जागा, तब काम-भोग को विष के समान मानकर वे अट्टहास कर उठे।

अब कौशिक ने जाना कि यह सब इंद्र की वंचना है; उन्होंने क्रुद्ध हो तिलोत्तमा को शाप दिया कि वह मनुष्य-योनि में जन्म ले। लाल नेत्रों और क्रोध-भरे मन को लेकर वे वहाँ से चल खड़े हुए और यम-दिशा (दक्षिण) की ओर चले गये।

कौशिक दक्षिण दिशा में तप कर रहे थे। उसी समय अयोध्या के राजा त्रिशंकु ने अपने गुरु वसिष्ठ से प्रार्थना की कि मैं सदेह स्वर्ग जाना चाहता हूँ, आप मेरी इच्छा पूरी करें। उन्होंने उत्तर दिया कि मुझसे यह कार्य नहीं हो सकता।

वसिष्ठ के ऐसा कहने पर त्रिशंकु बोला—यदि आपसे यह कार्य नहीं हो सकता है, तो मैं किसी अन्य व्यक्ति की सहायता से अपनी अभीष्ट-सिद्धि के लिए यज्ञ करूँगा। इस पर वसिष्ठ ने क्रुद्ध होकर उसे शाप दिया कि तुम अपने प्राचीन गुरु को छोड़कर दूसरे का आश्रय खोज रहे हो, अतः तुम चंडाल बन जाओ।

(शतानंद ने रामचंद्र को आगे की कहानी सुनाई) हे वत्स! ब्रह्मा के मानस-पुत्र (वसिष्ठ) के शाप से राजाधिराज त्रिशंकु का वह तेज मिट गया, जिससे सूर्य भी लज्जित होता था। सूर्योदय-वेला के विकसित कमल-सदृश उसके मुख की वह कांति नष्ट हो गई। वह चंडाल बन गया, जिसके रूप की सर्वत्र निन्दा होती है।

उसके रत्नहार, मुकुट तथा अन्य आभरण लोहे के बन गये; उसके वस्त्र तथा यज्ञोपवीत चर्ममय हो गये; उसका शरीर मलिन हो गया और उसका सौंदर्य मिट गया। जब वह इस रूप को लेकर अयोध्या को लौटा, तब सभी लोग उसका धिक्कार करने लगे। तब दुःखी होकर वह अरण्य में चला गया।

कुछ दिनों के उपरांत वह उसी अरण्य में तप करनेवाले विश्वामित्र के आश्रम के पास आया। विश्वामित्र के पूछने पर कि तुम कौन हो, क्यों आये हो? त्रिशंकु ने नमस्कार करके अपनी सारी कहानी सुनाई।

विश्वामित्र त्रिशंकु का वृत्तांत सुनकर हँस पड़े और बोले—बस इतना ही।

ठहरो, मैं एक बड़ा यज्ञ करूँगा और तुम्हें सदेह स्वर्ग पहुँचा दूँगा। उन्होंने बड़े-बड़े ऋषियों को बुलाया : उनका निमंत्रण पाकर आसपास के सभी मुनि आ गये।

किंतु वसिष्ठ के पुत्रों ने कह दिया—'हमने यह कहीं नहीं पढ़ा है कि कोई क्षत्रिय किसी चंडाल के लिए यज्ञ कराये।' हम इस यज्ञ के लिए नहीं आयेंगे। (यह सुनकर) उन्होंने क्रुद्ध होकर उन्हें शाप दिया कि वे नीच कर्म करनेवाले व्याध बन जायें। तुरंत वसिष्ठ-कुमार व्याध बनकर जंगलों में भटकने लगे। विश्वामित्र यज्ञ करने लगे और देवताओं को हविर्भाग स्वीकार करने के लिए बुलाया।

(परन्तु) देवों ने उस यज्ञ की निंदा की कि यह यज्ञ एक चांडाल के निमित्त किया जा रहा है और इसका हविर्भाग लेने के लिए उनसे शीघ्र आने को कहा जा रहा है। वे इस पर हँसे और हँसकर रह गये। किंतु विश्वामित्र रुकनेवाले नहीं थे। उन्होंने कहा—'मैं अपने तपोबल से कहता हूँ कि तुम स्वर्ग जाओ, इसके लिए किसी की सहायता आवश्यक नहीं।' त्रिशंकु स्वर्ग पर चढ़ने लगा।

जब वह स्वर्ग में पहुँचा, तब उसे देखकर देवता क्रुद्ध हो उठे। 'यह चंडाल स्वर्ग में कैसे रह सकता है ? यह भूतल पर लौट जाय।'—यों कहकर उसे नीचे गिरा दिया। निराधार हो औंधा गिरता हुआ त्रिशंकु कौशिक को संबोधित करके चिल्लाया कि हे मुनि, मेरी रक्षा करो। तब विश्वामित्र वज्र के जैसे गर्जन में अट्टहास करते हुए बोले—'वहीं ठहर ! वहीं ठहर !'

उन्होंने कहा—देवगण ने मेरा निरादर किया है। अब मैं अपर स्वर्गलोक तथा उसके लिए इन्द्र आदि देवों की नई सृष्टि करूँगा ; नया आकाश सिरजूँगा ; जिसमें नये सूर्य, नये चंद्र तथा नये ग्रह एवं नये नक्षत्र अपने पूरे प्रकाश-सहित दक्षिण दिशा से उत्तर की ओर संचरण करते रहेंगे। इतना ही नहीं, मैं सभी स्थावर तथा जंगम वस्तुओं की भी प्रति-सृष्टि करूँगा।

मधु-भरे कल्पक वृक्ष का स्वामी इंद्र, चतुर्मुख ब्रह्मदेव, नीलकंठ महादेव तथा अन्य देव और मुनिगण सब मिलकर विश्वामित्र के समीप आ पहुँचे और उनसे निवेदन किया कि हे मुनिवर ! हमें क्षमा करें। शरणागत की रक्षा करने की आपकी यह प्रतिज्ञा नितान्त धर्मसंगत है, अतः त्रिशंकु तारागण के मध्य प्रकाशमान हो स्थित रहेगा।

फिर उन्होंने उनसे कहा—आप उत्तम राजर्षि हैं। आपकी महिमा को जानते हुए (सत्ताईस नक्षत्रों में से) पाँच नक्षत्र दक्षिण दिशा में आकर स्थित होंगे। यह कहकर देवगण चला गया। तदुपरांत वे तपोनिरत (कौशिक) शीघ्र ही महासमुद्र के अधिष्ठाता वरुण की दिशा (पश्चिम) में गये और वहाँ तपस्या करने लगे।

अंबरीष नामक एक महाराज थे, जिनके पास धनुष-बाण तथा दृढ खड्ग धारण किये विशाल सेना थी : जो सुधासम मधुर भाषण करते थे, और जो संसार के समस्त प्राणिवर्ग के लिए प्राण-समान ही प्रिय थे। वे एकबार नर-मेध करने का उपक्रम करने लगे। एतदर्थ एक बालक को क्रय करने के उद्देश्य से वे संपत्तिवान नरेश स्वर्णरथ पर आरूढ हो अरण्यों में (बालक को) ढूँढ़ते हुए चले।

वह विजयी नरेश ऋचीक मुनि के पुष्प-पल्लवों से पूर्ण उपवन में जा पहुँचे तथा उनसे उनके एक पुत्र को माँगा। ऋचीक के तीन पुत्रों में से कनिष्ठ का विक्रय करने के लिए माता सम्मत नहीं हुई ; क्योंकि माता का स्नेह कनिष्ठ पुत्र पर अधिक होता है। पिता (ऋचीक) ज्येष्ठ पुत्र से अधिक ममता रखने के कारण उसका विक्रय करने को राजी नहीं हुए। माता-पिता दोनों से उपेक्षित मध्यम पुत्र शुनःशेप अपनी असहाय दशा पर स्वयं हँस पड़ा और अंबरीष से बोला—

मेरे पोषणकर्त्ता पिता (ऋचीक) को अभीष्ट द्रव्य दो, जिससे उनका सारा दारिद्र्य दूर हो जाये। फिर अपने पिता को नमस्कार करके शुनःशेप अंबरीष के निर्विरोध चलनेवाले रत्नजटित रथ पर चढ़कर चल पड़ा। इतने में प्रखर किरणोंवाला सूर्य आकाश की चोटी पर जा पहुँचा।

दोपहर हो जाने से राजा उस स्थान पर (विश्वामित्र के तपोवन के निकट) रथ से उतर गये और मध्याह्नोचित नित्य-कर्म करने लगे। सद्गुण शुनःशेप ने भी अपने नित्य-कर्म करने के निमित्त जाकर वहाँ निष्कलंकचित्त विश्वामित्र को देखा और उनके चरणों पर सिर रख दिया।

मृत्यु-भय-ग्रस्त तथा चरणों पर नत, उस मुनि-कुमार पर उत्तम गुणवान् मुनि की मधुर दृष्टि पड़ी। उन्होंने उससे कहा—कहो, तुम्हारे भय का कारण क्या है ? शुनःशेप ने निवेदन किया—हे धर्म के तत्त्वज्ञ ! आपकी अग्रजा मेरी माता तथा मेरे पिता ने बड़ी संपत्ति के बदले में मुझे अंबरीष को दे दिया है।

अपनी भगिनी और बहनोई के ऐसे कर्म को सुनकर मुनिवर (विश्वामित्र) ने शुनःशेप को अभय-वचन देकर कहा—तुम दुःखी मत होओ। मैं तुम्हारी प्राण-रक्षा करूँगा। फिर, उन्होंने अपने पुत्रों से कहा कि उनमें से कोई अंबरीष के नर-मेध के लिए आये। पर उनके सभी पुत्र उसके लिए सम्मत न होकर वहाँ से खिसक गये। यह देखकर—

विश्वामित्र के दोनों नेत्र क्रोध से लाल हो गये, जिनसे उदयकालीन सूर्य भी लज्जित हो गया। उनके मन में क्रोध-ताप भर गया और उनके रोम-रोम से चिनगारियाँ निकलीं, तो उनकी आँच से बडवाग्नि भी झुलस गई। उन्होंने अपने पुत्रों को शाप दिया—हे निष्ठुर चित्तवालो ! तुम लोग असभ्य पुलिन्द बनकर अरण्यों में कष्ट भोगो।

वसिष्ठ महामुनि के कोप से जो चार पुत्र पहले बच गये थे, उन्हें अब व्याध बनाने के पश्चात् उन्होंने अपने अच्छे भाँजे को आश्वासन दिया कि तुम अपने मन की पीड़ा छोड़ो, मैं अभी तुम्हें दो मंत्रों का उपदेश देता हूँ। फिर मंत्रोपदेश करके कहा—

(शतानंद ने रामचन्द्र से कहा)—हे मधुपूर्ण मृदु पुष्पों से अलंकृत (राम) ! विश्वामित्र ने शुनःशेप को यह निर्देश दिया कि तुम अंबरीष के संग जाओ और जब यूप-स्तंभ के साथ तुम्हें (याग-पशु के रूप में) बाँधा जाय, तब इन मंत्रों का जप करो, तुरंत ही ब्रह्मा, रुद्रादि देवता अपना-अपना हविर्भाग लेने के लिए आ जायेंगे। इससे तुम्हारे प्राण बचेंगे तथा राजा का यज्ञ भी पूरा हो जायगा। शुनःशेप संतुष्ट हो विश्वामित्र की प्रशंसा करता हुआ वहाँ से विदा हुआ।

उस मुनिकुमार ने वेदज्ञ ऋषि के कथनानुसार ही यज्ञ में मंत्र का जप किया। तुरंत ही विशाल पक्ष-युक्त गरुड, हंस, ऋषभ आदि वाहनों के अधिष्ठाता त्रिदेव, अन्य देव परिवार-समेत, उस यज्ञशाला में आ उपस्थित हुए और उस मुनि-कुमार के प्राणों की तथा वेदविहित यज्ञ की भी रक्षा की। अब मुनिवर (विश्वामित्र) भी उत्तर दिशा की ओर चल पड़े।

उत्तर दिशा में पहुँचकर विश्वामित्र तपोमग्न हुए। अपने कर-कमल से नासिका को बन्द किया, इडा को पिंगला[1] से दबाया और हृदय में एकाक्षर प्रणव का ध्यान करते रहे। इस प्रकार, अनेक वर्ष (ध्यान-मग्न) रहने पर कुंडलिनी मूल की अग्नि से उनका सहस्रार स्फुटित हुआ और उनके कपाल से तमपुंज उठे और सभी लोकों को आवृत करने लगे, जिससे सभी डर गये।

उनके कपाल से उत्थित वह धुआँ विश्व-भर में ऐसे फैल गया, जैसे त्रिपुर-दाह करनेवाले (शिव) ने गजासुर का संहार करके उसके चर्म को अपने शरीर में समेट लिया हो, या प्रलय-मेघ ही घिर आये हों।

सभी लोक अंधकार में डूब गये। अति प्रखर सूर्य के किरण-जाल भी उस तम में अदृश्य हो गये। दिक्पालों तथा धरणी को धारण करनेवाले दिग्गजों की आँखें उस गाढ़ अंधकार में अंधी हो गईं।

नभ में, जहाँ संसार के जीवन-प्रद घन-समूह घिरे रहते हैं, वहाँ अब धुआँ भर गया। इससे धरती के सभी चर-अचर, पदार्थ-समुदाय भयभीत हो उठे। खर-किरण (सूर्य) के कर कहीं भी आगे न बढ़ सके और सर्वतः मार्ग को रुद्ध पाकर लौट आये। सभी देवता थर-थर काँपने लगे।

पुंडरीक पर स्थित ब्रह्मदेव, गरुडवाहन विष्णु, वृषभ पर संचरण करनेवाले शंकर, वज्रधारी इन्द्र तथा अन्य देवता पृथक्-पृथक् चलकर उस तपोधन के समीप आ पहुँचे।

अर्धचंद्र को सिर पर धारण करनेवाले (शिव), हरित तुलसीमाला-धारी (विष्णु) तथा उस विष्णु के नाभि-कमल पर आसीन ब्रह्मा—इन तीनों ने विश्वामित्र से कहा—हे महान् तपोधन! तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कौन ऐसा है, जो वेदों का पारंगत हो।

उनके वचन सुनकर विश्वामित्र अपना सिर नवाकर, दोनों कर-कमल जोड़े खड़े रहे और यह कहकर कि अभीष्ट पुण्य-फल मुझे अभी प्राप्त हुआ है, आनंद से फूल उठे। फिर, सभी देव अपने-अपने स्थान पर जा पहुँचे।

यह प्राचीन युग की घटना है। इन कौशिक के समान तपोमहिमा से युक्त अन्य कोई नहीं है। इस नियमनिष्ठ नीतिज्ञ की करुणा आप दोनों को मिली है। अब आपके लिए असंभव कार्य कुछ भी नहीं है। अनंतगुण-पूर्ण शतानंद ने इन शब्दों में राम-लक्ष्मण को विश्वामित्र की कहानी सुनाई।

गौतम के प्रियपुत्र शतानंद के मुख से यह वृत्तान्त श्रवण करके वे दोनों वीर

---

१. इडा को पिंगला से दबाना—यह प्राणवायु की एक प्रक्रिया है।

विस्मय तथा आनन्द से भर गये। उन्होंने उन तपस्वी के चरणों की वन्दना की और वे उन्हें आशीष देकर अपने आवास को लौटे।

विश्वामित्र तथा लक्ष्मण जब अपनी-अपनी शय्या पर जाकर लेटे, तब रामचन्द्र किसी तमोमय फल के समान ऐसे रह गये कि वहाँ पर केवल निशा थी, चन्द्र था, एकान्त था, सीता (की स्मृति) थी तथा स्वयं राम थे।

(राम सोचने लगे) कदाचित् कोई बिजली मेघ से अलग होकर नारी के सुन्दर रूप में आ उपस्थित हुई है। बहुत सोचने पर भी मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि यह क्या है, क्या नहीं है ? उस रूप को मैं अपने नेत्रों और मन में अंकित देख रहा हूँ।

उस सुन्दरी (सीता) के नयन उस क्षीरसमुद्र के जैसे प्रकाशमान हैं, जहाँ कालवर्ण विष्णु आदिशेष पर लेटे रहते हैं। अब वह सुन्दरी मेरे हृदय-रूपी कमल में आ विराजी है। अतः, कदाचित् वह पंकज-निवासिनी लक्ष्मी ही है।

यद्यपि मुझपर वह रमणी करुणाहीन है, तथापि मेरा मन उसपर मुग्ध हो गया है। उसने भयदायक काम-पीडा उत्पन्न करनेवाले अपने विष-सदृश नयनों से मुझे पी-सा लिया है, अतः अब मुझे इस संसार के सभी चर-अचर वस्तु-समूह उसी रमणी के सोने के रंग में अंकित-से दीखते हैं।

यद्यपि मैं अपने इस अभागे वक्ष से उस सुन्दरी के स्वर्ण-कलश-तुल्य स्तनों का—जहाँ पर आभरण स्पंदित होते रहते हैं—आलिंगन नहीं कर पाया हूँ, तथापि मैं सोचता हूँ कि क्या मैं फिर उसकी उज्ज्वल चन्द्रिका जैसी हँसी को तथा उसके बिंबफल-तुल्य अधर को कभी देख सकूँगा ?

मनोहर मेखला से भूषित रथ-सदृश नितंब एक है, खड्ग-जैसे दो-दो नयन हैं, दो पीन स्तन भी हैं तथा मुख पर अंकित मंदहास भी एक है। हाय ! अपने पराक्रम में प्रख्यात यम-सदृश (मुझे मारने के लिए) क्या इतने आयुधों की आवश्यकता है ?

रसपूर्ण इक्षु को धनुप बनाकर और सुन्दरी को व्याज बनाकर यदि मन्मथ मुझ पर पुष्पबाणों की वर्षा करे तथा मुझे परास्त कर दे, तो अब शौर्य नामक गुण किसके पास बचेगा ?

यह चाँदनी ऐसी फैली है, मानों क्षीर-समुद्र का गंभीर जल संसार को निगलने के लिए उमड़ पड़ा हो। ज्यों-ज्यों मैं उस रमणी का स्मरण करता हूँ, त्यों-त्यों वह चाँदनी मेरे प्राणों को समूल उखाड़ने लगती है। क्या संसार में श्वेत रंग का विष भी होता है ?

क्या मेरा शुद्ध मन भी सन्मार्ग से हटकर अनैतिक मार्ग पर चल सकता है ? (नहीं) अब यदि यह मन इस नारी पर मुग्ध हुआ है, तो इसका कारण यही है कि वह चाशनी (मिसरी) जैसी मधुर बोलीवाली तथा सोने के रंगवाली बाला कुमारी ही है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

इतने में रात्रि व्यतीत हुई ; चन्द्र पश्चिम समुद्र में डूब गया, मानों रात्रिकाल-रूपी राजा के मरने पर उसका उज्ज्वल श्वेतच्छत्र गिर गया हो, या पश्चिम दिशा-रूपी नारी के अति प्रकाशमान भाल पर रहनेवाला वर्त्तुल आभरण खो गया हो।

अपने प्रियतम चन्द्र के चले जाने पर उसकी प्रेयसी दिशा-नारियों ने मानों अपने शरीर पर लगे हुए मनोज्ञ श्वेतचन्दन रस को शोक के कारण पोंछ दिया हो, त्योंही चन्द्र के अस्तङ्गत होते ही उसकी चन्द्रिका भी अदृश्य हो गई।

सघन पुष्पहार को धारण करनेवाले पुरुषोत्तम (श्रीरामचन्द्र) जिस समय काम-पीडा से इस प्रकार व्याकुल हो रहे थे, उसी समय रक्तवर्ण उष्ण-किरण (सूर्य) व्याकुल-हृदय कमलिनी-रूपी अपनी प्रियतमा का मुख विकसित करता हुआ उदित हुआ, मानों लाल बिन्दियों से अलंकृत अंधकार-रूपी मत्तगज का चर्म धारण करनेवाले, उदय-पर्वत-रूपी रुद्र के भाल का अग्नि-नेत्र ही खुल गया हो।

उस महान् उदयाचल के समस्त शिखरों पर बालसूर्य की अरुण-किरणें फैल गइ, मानों सूर्य के अति वेगवान् तथा शक्तिशाली हरे रंग के घोड़ों के खुरों से उड़ी हुई धूलि ही उदयाचल पर फैल रही हो और अर्घ्य-प्रदान के लिए द्विजों के हाथ में लिये हुए मधुसंचित पुष्प तथा जल के प्रवाह से वह धूलि सिक्त हो रही हो (अथवा) मानों उष्ण-किरण (सूय) प्राची (रूपी) दिग्गज (के मस्तक) पर सिंदूर का तिलक लगा रहा हो।

जिस प्रकार शत्रु की विजय करने या धन कमाने के लिए दूर देशों में गये हुए प्राण-समान अपने प्रिय पति को सुन्दर रथों पर चढ़कर वापस लौटते हुए देखकर साध्वी पत्नियों के मन आनन्द से भर जाते हैं और उनकी कांति लौट आती है, उसी प्रकार कमलिनी-कुल के मुख विकसित हुए। उन कमलों के कारण सरोवर भी सौंदर्य से संपन्न हो गये।

आकाश-रूपी रंगमंच पर असंख्य वेदों-सहित किन्नरों के गाते हुए, सभी लोकों द्वारा स्तोत्र-पाठ होते हुए, देवों, मुनियों तथा ब्राह्मणों के हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए एवं सागर-रूपी गर्जन करनेवाले 'मर्दल'[१] के बजते हुए, सूर्य की किरणें चारों ओर फैल गईं, मानों उज्ज्वल सूर्य-रूपी ललाट-नेत्र से सुशोभित रुद्र ही नृत्य कर रहा हो और उसकी लाल जटाएँ चारों ओर बिखरी हों।

विनाशकारी चक्रायुध को त्यागकर अनुपम वर्त्तुल तथा दृढ धनुष को धारण करने-वाले श्यामल (रामचन्द्र) जो सहस्रफन (आदिशेष) के सहस्र माणिक्य-दीपों से जाज्वल्यमान शेष-शय्या का त्याग कर अब वियोग-रूपी गंभीर समुद्र में लेटे हुए थे। एक चक्र-रथवाला सूर्य जब अपने कोमल करों से उनके चरण धीरे-धीरे सहलाने लगा, तब वे व्याकुल निद्रा का त्याग कर उठे और रात्रि-रूपी समुद्र के तट पर पहुँचे।

वह रजनी भी ऐसी बीती, मानों एक कल्प व्यतीत हुआ हो। निद्रा से उठकर मत्तगज के समान वे नित्य-कर्म से निवृत्त हुए। फिर, श्रुति-सदृश महातपस्वी (विश्वामित्र) के चरणों पर नत हुए। तब वे अपने प्रिय भाई लक्ष्मण को साथ लेकर सुगन्धित पुष्पहार तथा रत्न-किरीट से अलंकृत जनक महाराज की बड़ी यज्ञशाला में जा पहुँचे।

उन जनक महाराज ने क्रमानुसार वेदोक्त यज्ञकर्म को संपन्न किया। चारों ओर मेघ-गर्जन जैसे नगाड़ों के बजते समय, इन्द्र के समान वे चल पड़े और चन्द्रमंडल को छूने-

१. मर्दल, एक प्रकार का ढोल या नगाड़ा।

वाले अपने प्रासाद में आये। (वहाँ) रत्नखचित उन्नत मंडप में आसीन हुए तथा उनके पार्श्व में महातपस्वी (विश्वामित्र) सुन्दर विजयमाला धारण किये हुए धनुर्हस्त (रामचन्द्र) और उनके अनुज (लक्ष्मण) आसीन हुए।

जनक महाराज ने वहाँ पर आसीन उत्तमकुल चक्रवर्त्ती-कुमारों को ऐसे देखा, जैसे वे अपनी आँखों से उन दोनों के मुख-लावण्य को पी रहे हों। फिर, तपस्वी विश्वामित्र के सम्मुख सिर नवाकर प्रश्न किया—हे पूज्यपाद! ये कौन हैं? विश्वामित्र ने उत्तर दिया—ये दोनों कुमार महिमामय दशरथ के पुत्र हैं। तुम्हारे यज्ञ के दर्शनार्थ आये हैं। तुम्हारे पास रहनेवाले शिव-धनुष को भी वे देखेंगे। फिर, वे उन दोनों कुमारों की महिमा का बखान करने लगे। (१–१५७)

अध्याय ११

वंश-महिमा-वर्णन

सूर्य के प्रथम पुत्र मनु को कौन नहीं जानता? इन्हीं के वंश में एक ऐसे नरेश (पृथु चक्रवर्त्ती) उत्पन्न हुआ था, जिसने सभी प्राणियों को भूख से बचाने के लिए अपने तेजस्वी धनुष की सहायता से धेनु-रूप धारण किये हुए पृथ्वी से दुग्ध प्राप्त किया था।

नवरत्न-खचित मनोहरकिरीटधारी (हे जनक)! इसी वंश के एक दूसरे नरेश (इक्ष्वाकु) ने जगत् की व्याधियों तथा पापों को मिटाते हुए अनेक वर्ष-पर्यन्त ब्रह्मा की उपासना की थी और ब्रह्मा की कृपा से आदिशेष पर शयन करनेवाली उस परम ज्योति को हम जैसे लोगों के भी दर्शन का विषय बनाते हुए, मनोज्ञ श्रीरंगविमान[1]-सहित उस परम ज्योति को (पृथ्वी पर) ला दिया था। उन महाराज को जो नहीं जानते, वे अज्ञ हैं।

इन्हीं कुमारों के वंश में पहले एक दूसरा राजा उत्पन्न हुआ था। देवेन्द्र ने अपने शत्रु असुरों को पराजित करने में असमर्थ हो, उस राजा से प्रार्थना की कि वह उन

१. दक्षिण के श्रीरंगक्षेत्र के संबंध में यह प्रसिद्ध है कि यहाँ का प्रणवाकार विमान, जिसमें विष्णु भगवान श्रीभूमिनायिका-समेत आदिशेष-शय्या पर लेटे हुए हैं, पहले सत्यलोक में ब्रह्मा के द्वारा पूजित था। वैवस्वत मनु की नासिका से उत्पन्न इक्ष्वाकु महाराज ने ब्रह्मा को अपनी तपस्या से संतुष्ट किया तथा उनसे श्रीरंगविमान को प्राप्त कर उसे भूलोक पर ले आये। इक्ष्वाकु से श्रीरामचन्द्र तक सूर्यवंश के सभी नरेशों ने (कुलदेव के रूप में) इसी श्रीरंगनाथ की पूजा की थी। रामायण की घटनाओं के पश्चात् जब विभीषण अयोध्या से लंका को लौट रहा था, तब रामचन्द्र ने विभीषण को अपने कुलदेव की मूर्त्ति और श्रीरंगविमान दिया था। विभीषण ने उस विमान को कावेरी की दो शाखाओं के मध्य रखकर विश्राम किया, फिर चलने के समय उसे उठाना चाहा, तो वह विमान उठा नहीं। तब विभीषण ने यह समझकर कि भगवान् की इच्छा वहीं पर रहने की है, उसने उस विमान को वहाँ प्रतिष्ठापित कर दिया। श्रीरामानुजाचार्य के अनुयायी मानते हैं कि भूतल के १०८ विष्णु-क्षेत्रों में श्रीरंगक्षेत्र सर्वश्रेष्ठ है। —अनु०

असुरों से स्वर्ग की रक्षा करे। तब इन्द्र को अभयदान देकर वह नरेश हाथ में धनुष-बाण लेकर गया था तथा असुरों को युद्ध में हराया था। स्वयं इन्द्र वृषभ का आकार लेकर (युद्ध में) उस नरेश का वाहन बना था। (यह 'ककुत्स्थ' नामक इक्षुकुल के राजा की कहानी है।)

उस (ककुत्स्थ) महाराज के पश्चात् जो महान् व्यक्ति इस वंश में उत्पन्न हुए थे, उनका वर्णन करना मेरे लिए संभव नहीं है। इसी वंश में एक ऐसा नरेश उत्पन्न हुआ था, जिसने अपने पलित केशों, संकुचित चर्म तथा वार्द्धक्य को दूर कर दिया था। जिसने तरंगों से शब्दायमान क्षीरसागर को बड़े पर्वत से मथकर अमृत निकाला था और देवेन्द्र को अमर बनाया था। उसकी कीर्त्ति शब्दों में वर्णित नहीं हो सकती है। (इस पद्य में वर्णित राजा कौन है, यह मूल कथानक में नहीं है।)

युद्ध समाप्त करके भाले को कोश में ही रखनेवाले (हे जनक)! अब तुमसे युद्ध करने के लिए कोई सन्नद्ध नहीं है। इन राजकुमारों के ऐसे अनेक पूर्वज हुए हैं, जिनका आज्ञाचक्र त्रिभुवन में चलता था और जिनमें असंख्य श्रेष्ठ गुण थे। उनमें एक (मांधाता) ने इस प्रकार शासन किया था कि सहज वैरी व्याघ्र तथा हिरण एक ही घाट पर जल पिया करते थे।

अनेक विजयी राजाओं के द्वारा वंदित चरणवाले (हे जनक)! सहनशील देवता और दानव एक बार युद्ध करने लगे थे, तब इन्हीं के वंशज एक नरेश ने—जिसने वेदोक्त रीति से अपने राज्य पर अभिषिक्त होकर उसके चिह्नभूत रत्न-किरीट तथा हार धारण किये थे—प्रकाशमान धनुष धारण करके, धर्मदेवता के समान एकाकी संचरण करता हुआ अमरावती की रक्षा की थी। (यह कदाचित् 'मुचुकुंद' नामक राजा है।)

हे विद्युत्-सदृश ज्योतियुक्त दीर्घशूलधारी (जनक)! इस वंश के राजाओं की, जो सौन्दर्यवर्धक वीरकंकण धारण करनेवाले थे और जो सब प्यारे प्राणियों के प्राण-समान रहकर भूलोक पर शासन करते थे, हम क्या प्रशंसा कर सकते हैं? इन्हीं में से एक (शिबि) ने एक पक्षी के प्राणों के बदले में अपने प्राण दे दिये थे।

शत्रु-नरेशों के शरीर भेदनेवाले शूलधारी, हे नृपवर! इस वंश के नरेशों ने (एकबार अश्वमेध अश्व के खो जाने पर) बड़े-बड़े पर्वतों को रास्ते के रोड़ों के समान उड़ा दिया था। इस भूलोक को एक ऊँचा टीला बनाते हुए लवण-जल से भरे सागर को खोदा था। इनकी महिमा को जताने के लिए और क्या कहें? (यह सगर-कुमारों से संबद्ध घटना है।)

हे (शत्रुओं के) मांस-सिक्त कांतिवाले शूल को धारण करनेवाले! जब अनंतशेष ही इस वंश के महत्त्व का बखान नहीं कर सकते हैं तो क्या यह मेरे लिए सुलभ हो सकता है? पुष्प-भूषित शिवजी के मस्तक पर जो पवित्र गंगा आकर ठहरी थी, उसे स्वर्ग से भूतल पर ले आनेवाला नरेश भी इसी वंश में उत्पन्न हुआ था।

कलंक-रहित पूर्णचन्द्र-समान उज्ज्वल श्वेतच्छत्रधारी (हे जनक)! इस वंश के एक नरेश ने जलचरों से भरे सागर से घिरी हुई धरती को हस्तामलक के समान अपने वश

में कर लिया था। उसने वेदोक्त विधान से एक सौ दुष्कर यज्ञ संपन्न किये थे, जिससे देवेन्द्र भी संकट में पड़ गया था। (कुछ विद्वानों का कहना है कि इसमें वर्णित नरेश 'नहुष' है।)

इस वंश में कोई एक ऐसा नरेश हुआ था, जिसने चन्द्र को जीता था, किसी ने रुद्र को परास्त किया था, किसी ने बाण से दुंद[1] नामक असुर को मारा था और रघु नामक राजा ने इन्द्र को परास्त करके आगे की दिशाओं पर विजय प्राप्त की थी।

इस वंश के अज नामक राजा ने अपने धनु-रूपी मंदरपर्वत को मथनी बनाकर शत्रुराजकुल-रूपी समुद्र का मंथन किया था और मल्लयुद्ध में कुशल उस राजा ने ज्योतिर्मय मंदहास से शोभायमान इन्दुमती-रूपी लक्ष्मी देवी को, अपने कंधे का उसी प्रकार आभरण बनाया था,

जिस प्रकार अंधकार-समान वर्णवाले विष्णु ने (लक्ष्मी को अपना आभरण) बनाया था। विविध वाद्य-घोष से मुखरित राजद्वारवाले (हे जनक)! ऐसा कोई नहीं है, जो अज महाराज के पुत्र दशरथ को नहीं जानता। उन दशरथ के ही ये दोनों पुत्र हैं। यदि चतुर्मुख ब्रह्मा भी इनकी महिमा का यथावत् वर्णन करने लगें, तो उन्हें भी (इनकी महिमा का) पार पाना कठिन है। फिर, भी मुझसे जहाँतक हो सकेगा, मैं उसका वर्णन करूँगा।

जाज्वल्यमान विष्णुचक्र-तुल्य सूर्य जिस प्रकार ओसकणों को परास्त करता है, उसी प्रकार वे दशरथ महाराज शत्रु-राजाओं को पराजित कर समस्त प्राणी-वर्ग के अविपन्न जीवन बिताने में सहायक हुए हैं। अपने हाथ के धनुष के अतिरिक्त अन्य कोई उनका साथी नहीं है (ऐसे पराक्रमी हैं वे)। धर्म ही उनका कवच है। उन्होंने अपनी नीति से स्वयं मनु को भी जीत लिया है। वे दशरथ संतानहीन होने के कारण बहुत दुःखी थे।

फिर, दशरथ ने उस ऋष्यशृंग मुनीश्वर की सहायता से अपने दुःख से निस्तार पाना चाहा, जो पहले कभी धनुषाकार भाल, मधुरभाषी बिंबाधर, काले और दीर्घ नयन, मूल्य पर दिये जानेवाले विशाल जघन, विद्युल्लता-सदृश विकंपित कटि से शोभायमान वेश्याओं को स्तन-रूपी शृंगवाले मृग समझकर उनपर मोहित हुए थे और अपने आश्रम को छोड़ उनके साथ ही (रोमपाद के यहाँ) आ गये थे।

दशरथ ने ऋष्यशृंग के चरणों पर नत हो प्रार्थना की - (हे मुनि!) मेरी तपोहीनता के कारण, कंचुक-बद्ध स्तनवाली मेरी पत्नियों के पवित्र गर्भ से पुष्पालंकार के योग्य मस्तकवाले पुत्र उत्पन्न नहीं हुए हैं। अतः, आप मुझे ऐसे सत्पुत्र प्रदान करें, जो मेरे बाद समुद्र से आवेष्टित इस धरणी का शासन कर सकें।

ये वचन सुनकर ऋष्यशृंग ने कहा — मैं तुम्हें ऐसे पुत्र प्रदान करूँगा, जो इस धरणी का ही नहीं, परन्तु सभी लोकों की रक्षा अनायास ही कर सकेंगे। (इसके लिए) देवताओं के हविर्भाग प्राप्त करने योग्य यज्ञ करना चाहिए, उसके लिए आवश्यक वस्तुएँ संग्रह करो।

---

१. गुरु-पत्नी का हरण करनेवाले चन्द्र को दिलीप ने परास्त किया था। स्कंदपुराण तथा सनत्कुमार-संहिता से विदित होता है कि भगीरथ ने अपने यागाश्व का हरण करनेवाले षण्मुख के साथ युद्ध करते हुए शिवजी को भी पराजित किया था और कुवलयाश्व नामक राजा ने उत्तंग महर्षि के शत्रु 'दुंद' को मारा था।—अनु०

दशरथ ने त्वरित ही पुत्र-प्राप्ति के निमित्त-भूत यज्ञ के लिए आवश्यक सब पदार्थ संगृहीत करा दिये। महान् तपस्वी (ऋष्यशृंग) ने पुत्रकामेष्टि-यज्ञ सम्पन्न किया। उस यागाग्नि से भूतगण का नायक महाभूत, प्रकाशमान सुन्दर थाल में अमृत-तुल्य श्वेत खीर लेकर निकला।

गुणों में अपना उपमान न रखनेवाले दशरथ ने वेदों के तत्त्वज्ञ ऋष्यशृंग की आज्ञा से स्वर्णपात्र-सहित उस अन्न को क्रमशः रमणीय ललाट-युक्त अपनी तीनों पत्नियों को चार भागों में बाँटकर दिया।

महान् पापों के पाप के कारण तथा अनन्त वेदों में कथित धर्मों के धर्म (पुण्य) के कारण, अरुण अधरवाली कौशल्या ने इस नीलसमुद्र (राम) को जन्म दिया, जिसके विशाल हस्त में 'कटक' (आभरण) भूषित हैं तथा जिसका सुन्दर रूप चित्र में अंकित करने में असम्भव है।

केकय-नरेश की पुत्री (कैकेयी) ने भरत नामक पुत्र को जन्म दिया, जो अनिवार्य नीतिधर्म-रूपी अनुपम नदियों के द्वारा भरा गया गंभीर समुद्र है, अनिन्दनीय सद्गुण-संपन्न है और सौन्दर्य में भी इस (रामचन्द्र) की समता करनेवाला है।

इन दोनों रानियों में कनिष्ठा (सुमित्रा) ने दो पुत्रों (लक्ष्मण और शत्रुघ्न) को जन्म दिया जो अपूर्व शक्ति-संपन्न हैं तथा धर्मघाती असुरों को भी कँपा देनेवाले हैं। स्वर्णमय मेरु और उन्नत रजतमय हिमाचल, दोनों यदि धनुष धारण करके खड़े हों, तो उन दोनों कुमारों की समानता कर सकेंगे।

चतुर्वेदों के तुल्य वे चारों कुमार सभी विषयों के परिज्ञान में सरस्वती से भी बढ़-कर हैं। धनुर्विद्या में ऐसे हैं कि स्वयं धनुर्वेद भी उनसे परास्त होकर, उनके वशीभूत शत्रु के समान उनकी सेवा में निरत रहता है। वे (चारों बालक) राका-चन्द्र के उदय-काल में आनन्द-घोष के साथ उमड़नेवाले तरंगपूर्ण समुद्र के जैसे बढ़ते रहे हैं।

शत्रुओं का विनाश हो जाने से अब कोश में रखे हुए दीर्घ शूलवाले (हे जनक)! ये दोनों नाममात्र से उस दशरथ के कुमार हैं, जो (दशरथ) कर देनेवाले सभी नरेशों के द्वारा वन्दित तथा वीर-वलयधारी चरणवाले हैं और जो अत्यन्त क्षमाशील हैं। वस्तुतः, इनका उपनयन-संस्कार करके वेदों की शिक्षा देकर इन्हें पालनेवाले वसिष्ठ ही हैं।

मैंने सोचा कि मेरे यज्ञ में अधिक विघ्न उपस्थित करनेवाले अत्याचारी राक्षसों को इन दोनों कुमारों के द्वारा मैं मिटा दूँगा। ज्योंही मैं इन पुष्पकोमल चरणवाले सुकुमार कुमारों को लेकर अरण्य में गया, त्योंहीं असह्य शक्तिशालिनी ताडका नामक राक्षसी स्वयं सामने आ गई।

हे राजन्! तरंगायित समुद्र जैसे इस श्यामल पुरुष-श्रेष्ठ की इन दीर्घ तथा पुष्ट नील भुजाओं का बल भी तो तुम देखो। इसका एक बाण, युद्ध-रंग में लाल-लाल अग्निवर्षा करनेवाले नयनोंवाली उस ताडका का हृदय चीरकर, पर्वत को भेदकर, वृक्षों को काटकर, धरती को चीरता हुआ चला गया।

गगन के रंगवाले तथा आग की लपटों के जैसे बालों से भरे हुए, जलते हुए-से

लगनेवाले (राक्षसों के) जो सिर कट-कटकर पर्वताकार गिरे, उनकी कोई गणना ही नहीं रही। उस ताडका का एक पुत्र (सुबाहु) एक ही बाण से परलोक जा पहुँचा। दूसरा पुत्र (मारीच) कहाँ जा गिरा, उसका पता नहीं है। मैं अपना यज्ञ भी संपन्न करके अब यहाँ आ पहुँचा हूँ।

हे राजन्! यह जानो कि हम इनकी महिमा जानने में भी असमर्थ हैं। मैं अपनी तपस्या के फलस्वरूप इन्हें ऐसे अस्त्र प्राप्त करके दे सका हूँ, जो समुद्र तथा पर्वत-सहित सारे संसार को जला सकते हैं। वे सभी अस्त्र इनकी आज्ञा के पालक दास बने हुए हैं।

इनके कमल-सदृश, वीर-वलय-भूषित चरण की रज ही गौतम की पत्नी को (शाप-मुक्त करके) पूर्वरूप प्रदान करनेवाली है। मुझे अपने प्राणों से भी बढ़कर इस श्यामल पर प्रेम है।

ऐसा है इस रामचन्द्र का दिव्य चरित तथा भुजबल—यों विश्वामित्र ने कहा।
(१–२९)

अध्याय १२

धनुर्भंग पटल

तब जनक ने विश्वामित्र के प्रति ये वचन कहे—आपको मैं क्या बताऊँ? मैंने उस मायावी धनुष को प्रणबन्ध कर रखा है, जिससे मैं अब अपने इच्छानुसार कुछ नहीं कर सकता। मेरा मन (इस श्रीरामचन्द्र को देखकर, उसे सीता के योग्य वर समझकर और शिव-धनुष की बात स्मरण करके) अत्यन्त अधीर हो रहा है। यदि यह कुमार धनुष पर डोरी चढ़ा सके, तो मैं दुःख-सागर को पारकर जाऊँगा तथा मेरी पुत्री भी भाग्यवती होगी।

यों कहकर जनक ने अपने सम्मुख स्थित कुछ सेवकों को आदेश दिया कि पर्वत-सदृश उस धनुष को यहाँ ले आओ। 'यथाज्ञा' कहकर चार सेवक दौड़कर उस आयुधागार में गये, जहाँ स्वर्ण-वलयों से अलंकृत वह धनुष रखा था।

अतिबलशाली गज-जैसे शरीरवाले, पहाड़-जैसे पुष्ट तथा लोमश कंधोंवाले, साठ सहस्र वीर, बड़े-बड़े बल्लों पर रखकर उस धनुष को उठा लाये।

वह धनुष लाया गया, तो विशाल धरती (जहाँ पर एक दीर्घकाल से वह धनुष रखा हुआ था) अपनी पीठ की पीड़ा दूर कर सकी। (उसे देखकर) सुदृढ खड़ा ऊँचा मेरु गिरि भी लज्जित हो गया। समुद्र जैसी जनता शोर-गुल करती हुई उस धनुष को देखने के लिए उमड़ आई। ऐसा लगा कि उस विशाल धनुष को रखने योग्य खाली स्थान कहीं भी नहीं है।

कुछ लोग कहते थे—शंखचक्र-विभूषित हस्तवाला, सिंह-सदृश यह (विष्णु का अवतार रामचन्द्र) यदि इस शिव-धनुष पर डोरी न चढ़ा सके, तो संसार में इसे छू सकने-

वाला भी कोई व्यक्ति नहीं मिलेगा। यदि आज ही यह कुमार इसे चढ़ा दे, तो सीताजी का शुभ-विवाह सुसंपन्न हो सकेगा।

कुछ लोग कहते थे—इसे धनुष कहना धोखा है, यह सोने का पहाड़ मेरु है। कुछ कहते थे—ब्रह्मा ने इसे अपने हाथों से स्पर्श करके नहीं बनाया, किन्तु अपने महान् तप के प्रभाव से ही इसे निर्मित किया है और कुछ कहते थे—न जाने पूर्व काल में इसे कौन चढ़ाता था ?

कुछ लोग कहते थे—दृढ मेरु को ही इस धनुष का आकार दिया गया है; या पूर्वकाल में जिस मंदरपर्वत से क्षीरसागर को मथा गया था, वही पर्वत इस धनुष के रूप में यहाँ पड़ा है, या प्रभावशाली, प्रकाशमान सर्पराज (आदिशेष) ही है यह, या गगनस्थ दीर्घ इन्द्र-धनुष ही अब किसी प्रकार यहाँ आ गिरा है।

कुछ कहते थे—महाराज ने इसे ले आने की आज्ञा ही क्यों दी ? इसे प्रणबंध बनानेवाले उनके जैसा बुद्धिहीन व्यक्ति कोई है क्या ? कुछ कहते—पूर्व-पुण्य से ही यह कार्य पूर्ण हो भी सकता है। कुछ कहते—क्या सीता ने अपने (विवाह के) लिए दाँव पर रखे गये इस धनुष को कभी देखा भी है ?

कुछ कहते—इस धनुष से छोड़े गये बाण का लक्ष्य कौन हो सकता है ? कुछ कहते—इस महान् धनुष को अपनी कन्या के सामर्थ्य के अनुरूप ही बनाया है। कुछ कहते—चक्रायुध धारण करनेवाला (महाविष्णु) क्या निश्चय ही इस धनुष को झुका सकता है ? कुछ कहते—यह पूर्वजन्म-कृत पाप ही है (जो प्रणबंध होकर यहाँ पड़ा है)।

वहाँ एकत्र नर-नारी इस प्रकार के वचन कह रहे थे, तब सेवकों ने वह धनुष जनक के सम्मुख रखा, जिससे धरित्री की पीठ नीचे को धँस गई। उस धनुष को देखते ही वहाँ के राजाओं की भुजाएँ, यह सोचकर कि 'इसे कौन चढ़ा सकता है ?', काँपने लगीं।

जनक महाराज (कभी) कलभ जैसे उस वीरकुमार (राम) के सौन्दर्य को देखते, कभी दुःख देनेवाले उस बड़े धनुष को देखते, फिर अपनी पुत्री (सीता) की ओर देखते। उनके मन की अधीरता को जानकर शतानन्द कहने लगे—

मेरु को धनुष बनानेवाले शिवजी, अपने पार्श्व में रहनेवाली उमा का अपमान करनेवाले दक्ष के यज्ञ में, क्षमारहित क्रोध के साथ, इसी धनुष को लेकर गये थे।

(शिवजी के किये गये आघातों से उन देवताओं के) दाँत और हाथ टूटकर गिर पड़े। वे देवता भागे और अज्ञात स्थानों में जा छिपे। दक्ष की यागाग्नियाँ ध्वस्त हो गई , तब जाकर त्रिनेत्र तथा अष्टभुजावाले रुद्र का क्रोध शान्त हुआ।

उसके बाद शिवजी ने देवों की थरथराहट देखी। उन देवों की आयु अभी शेष थी। अतः, (शिवजी ने) उस दृढ धनुष को इस वृषभ-समान वीर जनक के वंश में उत्पन्न एक खड्गधारी नरेश को दे दिया।

इस धनुष की कठोरता के बारे में मुझे कहना ही क्या है ? दीर्घजटाधारी (शिव)

तुल्य हे मुनिवर (विश्वामित्र)! आपसे बढ़कर सर्वज्ञ दूसरा कौन है? अब रथ के सदृश जघनवाली जनक की पुत्री इस सीता का वृत्तान्त भी सुनिए।

एक बार हमने यज्ञ करने का उपक्रम करके लौह-समान दीर्घ शृंगद्वय से भूषित दो वृषभों के अतिभारी कंधों पर स्फटिकमय जुआ रखा और उससे असंख्य रत्न-खचित हल को बाँधा और उसमें हीरे की बनी फाल लगाकर दृढ भूमि को जोता।

जोतते समय फाल के सिरे पर उदीयमान कांतिपूर्ण-सूर्य की जैसी एक सुन्दरी निकल पड़ी, मानों भूमि स्वयं नारी की आकृति धारण कर निकल आई हो। वह इतनी सुन्दरी थी कि क्षीराब्धि से स्वच्छ अमृत के साथ उत्पन्न लक्ष्मी भी अपने को छोटी मानकर दूर हटकर खड़ी हो जाय तथा हाथ जोड़कर नमस्कार करे।

इस कन्या के गुणों के संबंध में क्या बताऊँ? सभी सद्गुण इस लतांगी के पास रहकर नव-जीवन पाना चाहते हैं और चढ़ा-ऊपरी करते हुए इसके पास आ पहुँचते हैं। रूप-सौन्दर्य बड़ी तपस्या करके ऐसी कन्या को प्राप्त कर सका है। विशाल कर्णाभरणों से अलंकृत इस कन्या के आविर्भाव से अन्य सभी सुन्दरियाँ वैसे ही शोभाहीन हो गईं, जैसे सूर्य से प्रकाशमान नभ से गंगा के भूमि पर उतर आने से अन्य नदियाँ प्रभावहीन हो गई थीं।

हे सर्वज्ञ! (जो सीता का पाणिग्रहण करना चाहता है, उसे) धनुर्विद्या का चातुर्य अपने व्यापार में प्रकट करना होगा और (उसके लिए) भाग्य का भी बल होना आवश्यक है। ये दोनों (बल) किसी के पास एक साथ नहीं रहते; उनके पृथक्-पृथक् होने पर भी पृथ्वी के सभी राजाओं ने इस सीता को प्राप्त करना चाहा, जैसे समुद्र से निकली हुई लक्ष्मी को सभी देवताओं ने अपनाना चाहा था। ऐसे आश्चर्य का विषय संसार में और क्या होगा?

अपनी सूँड़ से मद-जल बहानेवाले मत्तगज के जैसे राजा अपनी भारी सेनाओं-समेत, कोलाहल मचाते हुए, समुद्र के समान आते और सीता का पाणिग्रहण करने की इच्छा प्रकट करते। उनके उत्तर में हम कहते—व्याघ्रचर्म को कटि में तथा गजचर्म को उत्तरीय के रूप में धारण करनेवाले (शिवजी) ने युद्ध में जिस धनुष का प्रयोग किया था, उसे चढ़ानेवाला ही इस सीता का वर हो सकता है।

वाणी-रूपी धनुष से लोक की रक्षा करनेवाले (हे विश्वामित्र)! वे राजा इस कठोर (शिव) धनुष को चढ़ाने में असमर्थ हुए। परन्तु, वे मन्मथ के छोटे-से ईख के धनुष (के बाणों) को भी सहने में असमर्थ थे, इसलिए वे कर्णाभरण-विभूषित उस सीताजी को बहुत चाहने लगे, जिसके विवाह के लिए शिवधनुष पण बनाया गया था; अतः वे हमारे साथ युद्ध करने आये।

हमारे महाराज (जनक) की सेना इस प्रकार घटती गई, जैसे किसी दाता राजा की यशःप्रद संपत्ति घटती है। किन्तु, गुंजायमान भ्रमरों से अलंकृत घुँघराली लटों से सुशोभित सीता के मोह से आये हुए उन राजाओं की सेनाएँ उनकी इच्छा के सदृश ही विफल हुईं।

उज्ज्वल किरीटधारी देवों ने जब देखा कि बलशाली सुन्दर भुजावाले ये (जनक) वृषभवाहन (शिव) के धनुष के कारण उत्पन्न युद्ध में शिथिल पड़ रहे हैं, तब उन्होंने कृपा करके इन्हें चतुरंग सेना प्रदान की। उस सेना को देखते ही वे शत्रु राजा डरकर इस प्रकार भागे, जैसे रात में उल्लू को देखकर कौए डरकर भाग जाते हैं।

तब से अबतक अन्य कोई राजा इस शिव-धनुष के पास भी नहीं फटका। वे रथी नरेश, जो डर के मारे भाग खड़े हुए थे, कभी नहीं लौटे। हम यही सोचते रह गये कि अब सीता का विवाह नहीं होनेवाला है। यदि यह कुमार (राम) धनुष चढ़ा दे, तो बड़ा हित होगा और पुष्पमालालंकृत सीता का लावण्य व्यर्थ नहीं जायगा।—शतानंद यों कहकर चुप हो रहे।

अपूर्व तपस्वी (विश्वामित्र) ने उस मुनि के वचनों पर विचार किया; फिर जटालंकृत अपना सिर हिलाया और युद्ध-कला में निपुण वृषभतुल्य राम के मुख की ओर निहारा। चित्र की प्रतिमा-जैसे सौन्दर्यवान् (रामचन्द्र) ने विश्वामित्र के मन का विचार ताड़कर उस दीर्घ शिव-धनु पर दृष्टिपात किया।

प्रवाहित घृत की आहुति पाकर जैसे प्रज्वलित अग्नि ऊपर उठती है, वैसे ही रामचन्द्र अपना आसन छोड़ उठ खड़े हुए और (धनुष की ओर) पग धरने लगे। तब देवगण ने 'धनुर्भंग हो गया!' कहकर घोष किया। शत्रुत्रय, (काम[1] क्रोध और मोह) को परास्त करनेवाले ऋषियों ने उन्हें आशीष दिये।

पवित्र तपःसंपन्न मुनि की आज्ञा पाकर श्रीराम ने अभी शिव-धनुष को चढ़ाया भी नहीं था कि अनंग (मन्मथ) ने मनोहर आभूषणों से भूषित तरुणियों के हृदय में तीर मार-मारकर सहस्रों धनुषों को तोड़ दिया।

वहाँ की नारियाँ कई प्रकार की बातें करने लगीं। कोई कहतीं—यह सामने रखा हुआ धनुष भीतर से बहुत ही कठोर है। और कोई कहतीं—यदि लज्जाशील सीता के मनोहर लाल कर को इस कुमार (राम) का विशाल हाथ न छुए, तो (अर्थात्, इन दोनों का विवाह न हो तो) कांत ललाटवाली (सीता) का जीवन ही व्यर्थ हो जायगा।

कुछ नारियाँ अपने करों को जोड़कर कहतीं—यदि मत्तगज-समान यह राजकुमार हमारी आँखों को आनंदाश्रु से भरते हुए इस धनुष को न चढ़ा दे, तो हम कस्तूरीगंध-युक्त केशोंवाली सीता के साथ जलानेवाली अग्नि में डूब जायेंगी।

कोई कहतीं—ये वदान्य महाराज (जनक) यदि सीता का विवाह करना चाहते, तो इस राजकुमार को देखते ही यह कहकर कि 'मेरी कन्या सीता से विवाह कर लो,' पहले ही अपनी कन्या उन्हें दे देते। उलटे, इन्होंने, गंगा को जटा में बाँधनेवाले (शिवजी) के धनुष को लाकर इस कुमार के सामने रख दिया है, यह कैसा भोलापन है?

---

१. संस्कृत-ग्रन्थों में 'अरि-षड्वर्ग' प्रसिद्ध है। तमिल-ग्रन्थों में प्रायशः काम, क्रोध, मोह, मद, लोभ, मात्सर्य—इन छह दुर्गुणों को काम, क्रोध और लोभ के अंतर्गत मानकर 'शत्रुत्रय' का प्रयोग होता है। —अनु०

कोई कहतीं—इस तत्त्वज्ञ मुनि में लज्जा नहीं है। कोई कहतीं—इस जनक से बढ़कर कठोर अन्य कोई व्यक्ति नहीं हैं। यह श्रेष्ठ कुमार यदि इस धनुष को न झुकावे, तो पीनस्तनी सीता भाग्यहीन हो जायगी।

मयूर-सदृश नारियाँ इस प्रकार कह रही थीं। उधर साधुजन शुभवचन कह रहे थे। स्वर्ग में देवता आनंदित हो रहे थे। तब वे (राम) नाग (मत्तगज) तथा नाग (पर्वत) को लजाते हुए आगे पग बढ़ाते हुए चले।

उन्होंने बड़े स्वर्ण-पर्वत-सदृश उस धनुष को इस प्रकार उठाया, मानों वे सुवर्ण-चूड़ियाँ पहनी हुई दुर्लभ रत्न-समान (सीता) को पहनाने के लिए कोई दीर्घ पुष्पमाला उठा रहे हों।

देखने में बाधा पड़ेगी, इस भय से सभी दर्शक निर्निमेष नयनों से देख रहे थे; किन्तु वे लोग यह देख और समझ भी नहीं पाये कि कब उन्होंने धनुष के एक सिरे को पैर से दबाया और कब उसको झुकाकर दूसरे सिरे पर डोरी चढ़ा दी। उन्होंने केवल धनुष का उठाना देखा और उसके टूटने की ध्वनि सुनी।

उस ध्वनि को सुनते ही देवता डर गये कि ब्रह्मांड ही फट गया है। वे चिन्ता करने लगे कि अब हम किसकी शरण में जायँ। अब इस पृथ्वी की क्या दशा हुई। मैं क्या कहूँ? नीचे इस पृथ्वी को अपने सिरपर ढोनेवाला, इसका मूल स्वरूप आदिशेष भी यों भयभीत हुआ, मानों उसके सिर पर वज्र गिर पड़ा हो।

'जयशील, शत्रु-भयंकर, शूलधारी जनक को आज पुण्यफल प्राप्त हुआ है'—यह सोचकर देवों ने पुष्प-वर्षा की। मेघों ने सोने की वर्षा की। झाग-भरे सभी समुद्रों ने विविध रत्नों को बिखेरकर आनन्द-घोष किया। मुनियों ने आशीष दिये।

मिथिला नगरी में श्वेतशंख तथा अमृतनादयुक्त विविध वाद्य बज उठे। पुष्प-मालाएँ, आभरण, चंदन, सुगंध-चूर्ण, सुगंध-द्रव्य, समुद्रों से उत्पन्न उज्ज्वल मुक्ताएँ, स्वर्ण, मणियों, उत्तम वस्त्र आदि वस्तुएँ वहाँ के लोग दान करने लगे। वह नगर ऐसा लगा, जैसे पर्वकाल में (पूर्णिमा या अमावास्या के दिन) समुद्र उमड़ पड़ा हो।

भाले के जैसे नुकीले नयन और रात्रि में शोभायमान चंद्रोपम वदनवाली रमणियाँ, वर्षा ऋतु में गगन के नीर-भरे बादलों को देखकर नाचनेवाली मयूरों की जैसी नाच उठीं। उस समय सुनाद-भरी मकरवीणा की संगीत-सुधा बरसने लगी और मंदहास तथा कर्णाभरणों की चमक चारों ओर छा गई।

मानिनी नारियों ने, जिनके रक्तवर्ण और काले सुन्दर नयन मस्ती से भरे थे, अपना मान छोड़कर अपने-अपने प्रियतम का आलिंगन कर लिया। विशाल समुद्र में जैसे सफेद बादल पानी पियें, वैसे ही दरिद्रों ने जनक-महाराज की संपत्ति को भर लिया।

नर्त्तकों के मधुर गीत, रमणियों के अमृत-गीत, तंत्री-वाद्य बजानेवालों की मकर-वीणा से उत्पन्न मधु-सदृश दिव्य गीत तथा वंशी के विविध गीत—इन सबका पान करते हुए देवता अपने शरीर और प्राण के जडीभूत होने से यों खड़े रहे, मानों चित्र ही हों।

देवलोक की अप्सराएँ, प्रभु के धनुष तोड़ने का अद्भुत दृश्य देखने के लिए

भूतल पर उतर आईं तथा अंगों के व्यापार में, आकार में, नाच में, गान में—सभी प्रकार से, भूतल की नारियों के साथ एकाकार हो गईं और पृथ्वी की ललनाओं का (अप्सरा समझकर) आलिंगन करने लगीं; किन्तु इन ललनाओं को अपनी पलकें स्पंदित करते हुए देखकर विस्मय-विमुग्ध हो गईं।

(दर्शकों में से) कुछ कहते—देखो, यह दशरथ का पुत्र है। कुछ कहते, यह कमलनयन है (विष्णु का भी एक नाम कमलनयन या 'पुण्डरीकाक्ष' है)। कुछ कहते—इसका शरीर ही कालमेघ है और (अतसी) पुष्प की तुलना करता है। कुछ कहते—यह मनुष्य नहीं है, मीन-भरे समुद्र का निवासी विष्णु ही है; किन्तु संसार भ्रम में पड़ा है (इनको पहचान नहीं रहा है)।

कुछ कहते—इस कुमार (के सौन्दर्य) को देखने के लिए उस कुमारी (सीता) को सहस्र नयन चाहिए और उस लतांगी (सीता के सौन्दर्य) को देखने के लिए इस पुरुषश्रेष्ठ को भी वैसे ही सहस्र नयन चाहिए। फिर कहते—देखो, इसका भाई भी कितना सुन्दर है। इनको प्राप्त करके पृथ्वी अत्यंत पुण्यवती हुई है। और, कुछ कहते—इस नगर में इन कुमारों को ले आनेवाले मुनिवर (विश्वामित्र) को हम सभी नमस्कार करें।

यहाँ राजदरबार में यह दृश्य था। उधर चन्द्र और रात्रि के चले जाने पर (राम के) पुनर्दर्शन की अभिलाषा से, प्राणों को कुछ रोककर बैठी हुई उस लघुकटि, पीन उरोज, लाल रेखाओं से युक्त और काले भाले जैसे तीक्ष्ण नयन तथा स्वर्ण-कंकण से सुशोभित सीता की क्या दशा हुई, अब हम इसका वर्णन करेंगे।

वह सीता दोलायमान प्राणों के साथ (उष्णता से) शरीर को गलानेवाली पुष्प-शय्या को छोड़कर स्वर्णाभरणों से अलंकृत चेरियों से घिरी हुई, वहाँ से उठीं और सुन्दर कमल-सरोवर के तट पर एक स्फटिक-प्रासाद में, चन्द्रकांत से उत्पन्न शीतल जल से छिड़काई हुई कोमल शय्या पर, बड़ी कठिनाई से जा लेटीं।

(विरह-ताप से पीडित वह कहने लगीं) शीतल सुरभित कमललताओ! ऐसा प्रतीत होता है कि एक बाला की विरह-व्यथा को समझने की उदारता तुममें है, इसीलिए तुमने अपने पत्तों की छटा में (उस श्रीरामचन्द्र के शरीर का) अपूर्व रंग दिखाकर मेरी मनोव्यथा को कुछ कम किया है; किन्तु मेरे पल्लव-समान रंग का हरण करनेवाले (उन रामचन्द्र) के नेत्रों की आंतरिक कांति को भी (अपने दलों में) दिखाकर मेरे प्राणों को लौटाने से क्यों पीछे हटती हो?

(उन राम की भुजाओं को देखकर) लज्जित मेरु-सदृश उनका धनुष तथा उसकी डोरी पर संचरण करनेवाले उनके हस्त, स्तंभ-सदृश उनके स्कंध, बाणों से भरा तूणीर, उज्ज्वल चन्द्रिका-जैसा यज्ञोपवीत और जयमाला से अलंकृत उनका वक्ष—ये सब फिर देखने को मिलेंगे, तो मेरे प्राण भी देखे जा सकेंगे। (अर्थात्, तभी मेरे प्राण बचेंगे, अन्यथा अदृश्य हो जायेंगे)।

नभोमंडल में प्रकाशमान चन्द्रमा और उसके साथ भ्रमरावृत पुष्पमालाधारी केशों

से अलंकृत दीर्घधनुर्धारी एक मेघ आया था, जो अपने दो नयनों से मेरे प्राणरूपी जल को उठाकर पी गया। वह मेघ मेरे हृदय में अब भी छाया हुआ है और सदा छाया रहेगा।

निष्ठुर मन्मथ ने ऐसे तीक्ष्ण बाण मेरे हृदय पर मारे हैं, जो तूल को जलानेवाली अग्नि के समान मेरे प्राण हरकर चले गये हैं और उसे पीडित कर रहे हैं। अब मैं अत्यंत व्याकुल हो रही हूँ, ऐसी दशा में पास आकर मुझ अबला को जो अभयदान न दे, जो यह न कहे कि 'डरो मत, डरो मत'—उसका पौरुष भी कोई पौरुष है?

हे कभी कृश न होनेवाले (मेरे) स्तन! उमड़ते-उमड़ते रहकर तुमने क्या काम किया? उदय न होनेवाले (अर्थात्, सर्वदा एक जैसे चमकनेवाले) चन्द्र-जैसा कांतिमान् वदनवाले, (शिव के) कठोर धनुष को उठानेवाले उस महाप्रभु (राम) के वक्ष का गाढालिंगन यदि प्राप्त करना चाहते हो, तो उसके लिए उचित तपस्या करो।

यह चन्द्रमा कहाँ से निकल आया है, जो मेरे ऐसे स्तनों पर विष बरसा रहा है, जिनमें मेरे हृदय में अनंग के द्वारा छोड़े गये शरों से उत्पन्न विरह-पीडा उमड़ रही है। विष बरसाने पर भी यह रात्रि-काल में उदित होनेवाला चन्द्र[1] नहीं है; क्योंकि इसके मध्य कलंक नहीं दीखता।

हे मेरे हृदय! अनंग ने निकट आकर, क्रुद्ध हो शर बरसाये; उनके विष से जलाये जाकर भी मेरे ये प्राण जले नहीं हैं; किन्तु ये (प्राण) मेरे शरीर से निकलकर उष्ण मदजल बरसानेवाले काले हाथी के जैसे दीखनेवाले उस युवक (राम) के चरणों[2] की शरण में पहुँच गये थे। वे प्राण फिर लौटकर कैसे आयें?

मानों गगनगत-मेघ, बिजली के साथ, इस धरती पर उतर पड़ा हो, ऐसा ही दीखनेवाला वह श्वेत यज्ञोपवीतधारी राजकुमार (रामचन्द्र) आया और चला गया। वह यद्यपि मेरे हृदय-गत है, तथापि मैं उसे जान नहीं पाती कि वह कौन है? वह यद्यपि मेरे नयन-गत है, तथापि मैं उसे देख नहीं पाती। यह क्यों?

उदार समुद्र में उत्पन्न, अन्यत्र दुर्लभ अमृत को पाकर भी उसे मनोहर स्वर्णकलश में न भरकर बहा देनेवाले मूर्ख के समान मैं रह गई और उस कुमार की महान् बलिष्ठ भुजाओं को देखते ही आलिंगन में न बाँधकर मैंने उसे हाथ से जाने दिया। अब बहुत कहने से क्या प्रयोजन?

सोने के लेप-जैसे चिह्न-भरे स्तनोंवाली (सीता), उपयुक्त प्रकार से कहती हुई, अत्यन्त व्याकुल हो, सिसक-सिसककर रोने और दुःख-सागर में डूबने लगी। इतने में मुदित मन और अंजन-अंजित नयनोंवाली एक सखी पर्वत-जैसे धनुष के तोड़े जाने का समाचार लेकर आई। उसका वर्णन हम अभी करेंगे।

विशाल सरोवर में उत्पन्न नील कुईं समान नयनोंवाली माला नामक सखी, लचकती हुई बिजली की-सी शीघ्रता से आई; उसके रत्नमय कंठहार और कर्णभूषण इन्द्रधनुष का

---

१. रामचन्द्र का मुख ही सीता की दृष्टि में फिर रहा है, जिसे वह चन्द्रमा समझती है।

२. 'विष्णुपद' के दो अर्थ होते हैं—(१) स्वर्ग तथा (२) राम के चरण। मृत्यु प्राप्त करने पर प्राण फिर कैसे शरीर में आयें, यह संकेत है।

दृश्य उपस्थित कर रहे थे, तथा उसके घने पुष्प-भरित केश तथा वस्त्र-नीचे खिसके पड़ते थे।

वह सखी आई; तो उसने सीताजी के चरणों का नमस्कार भी नहीं किया और शोर मचाने लगी। असीम आनन्द से भरी हुई वह नाचने-गाने लगी। उसे देख सीता ने पूछा—हे सुन्दरि! तेरे मन में यह कैसा आनन्द है? ऐसी क्या बात हुई है, जो तू इतना आनन्दित है? तब वह सखी सीता के चरणों की वंदना कर कहने लगी—

गज, रथ, तुरंग के समुद्र से युक्त विपुल विद्या-संपन्न, मेघ-सदृश (दान-वर्षा करनेवाले) करों से युक्त, दशरथ नामक एक छत्रधारी चक्रवर्त्ती हैं। उनका पुत्र पुष्पबाणों द्वारा प्रेम उत्पन्न करनेवाले मन्मथ से भी अधिक सुन्दर है।

उस कुमार की भुजाएँ सालवृक्ष के-जैसे बढ़ी हुई हैं। उसे देखने से सन्देह उत्पन्न होता है कि कहीं अनन्त पर शयन करनेवाले विष्णु भगवान् ही तो इस रूप में नहीं आये हैं। उसका नाम है 'राम'। वह और उसका अनुज प्रशंसनीय मुनिवर विश्वामित्र के संग इस नगर में आये हैं।

वलय-विभूषित भुजावाला वह महापुरुष शिवजी का धनुष देखने के लिए आया है—यह समाचार विश्वामित्र से पाकर जनक ने वह धनुष लाने का आदेश दिया। वह धनुष लाया गया, तो उस पुरुषश्रेष्ठ ने उस पर डोरी चढ़ा दी। तब देवलोक भी काँप उठा।

क्षण-भर में उसे पैर से दबाकर अपने भुजबल से ऐसा झुका दिया, मानों उस धनुष को चढ़ाने का उसे पहले से ही अभ्यास रहा हो। तब देवताओं ने उसकी प्रशंसा की, और पुष्प-वर्षा की; वह धनुष टूटकर ऐसा गिरा कि राजदरबार उस शब्द से काँप उठा।

उस सखी ने जब यह कहा कि विश्वामित्र के साथ आया हुआ राजकुमार मेघवर्ण है और कमलनयन विष्णु की छटावाला है, तब सीता का यह सन्देह दूर हो गया कि यह वही राजकुमार है, जिसे पहले दिन उसने देखा था, या कोई अन्य। सीताजी का नितंब (आनन्द से) ऐसा बढ़ गया कि मेखला टूट गई।

(सीता की यह दशा देखकर सखियाँ आपस में कहने लगीं) कोई कहती—'इसके कटि नहीं है?' तो दूसरी कहती कि 'नहीं, इसके कटि है।' सीता के सुकुमार स्तन उमंग से उभर उठे। यों आनन्दित होती हुई उसने मन में निश्चय कर लिया कि इस सखी के कहे लक्षणों से लगता है कि अवश्य वही राजकुमार है। पर, यदि धनुष तोड़नेवाला व्यक्ति कोई अन्य होगा, तो मैं अपने प्राण छोड़ दूँगी।

विरह-वेदना से पीडित सीता की दशा ऐसी हुई। उधर जनक महाराज ब्रह्मा के द्वारा निर्मित धनुष के टूटने से उत्पन्न ध्वनि सुनकर अत्यंत आनन्दित हुए और विश्वामित्र से कहा—

हे भगवन्! क्या आप इस कुमार का विवाह अविलंब, आज ही, कर देना चाहते हैं या सर्वत्र इस विवाह का ढिंढोरा पिटवाकर तथा मुखरित वीर-वलयधारी और गरजनेवाली सेनाओं-सहित दशरथ चक्रवर्त्ती को भी यहाँ बुलाने के पश्चात् विवाह संपादित करना चाहते हैं? आप कृपया बतायें।

मल्लयुद्ध में निपुण उस जनक के यों कहने पर महातपस्वी (विश्वामित्र) ने अपना मत प्रकट किया कि दशरथ का भी यहाँ आना अच्छा होगा। अति आनन्द-भरित राजा ने वहाँ का सारा वृत्तांत दशरथ से कहने का आदेश देकर, विवाहोत्सव के लिए निमंत्रण-पत्र-सहित, दूतों को अयोध्या रवाना किया। (१–६६)



अध्याय १३

दशरथ-प्रस्थान पटल

जनक के द्वारा प्रेषित वे दूत अतिवेग से, पवन के जैसे चलकर, वज्र-ध्वनि करनेवाले नगाड़ों से प्रतिध्वनित अयोध्यापुरी में आ पहुँचे और दशरथ चक्रवर्ती के उस प्रासाद के द्वार पर गये, जहाँ चक्रवर्ती के चरणों की वन्दना करने के लिए आये हुए राजा लोग अति भीड़ के कारण भीतर जाने का मार्ग न पाकर वहीं (द्वार पर ही) एकत्र हो गये थे और (भीड़ के कारण) उनके किरीट एक दूसरे से रगड़ खा रहे थे।

(अंत में) दूतों को चक्रवर्ती की कृपा प्राप्त हुई और वे यथाविधि राजा के सम्मुख जाकर उनके अति उज्ज्वल चरण-युगल को नमस्कार किया तथा उनकी स्तुति की। फिर बोले—हे महाराज! आपके पुत्र जबसे विश्वामित्र के साथ चले, तबसे जो घटनाएँ घटित हुईं, उन्हें हम आपको सुनाते हैं। यह कहकर (उन्होंने) समस्त वृत्तांत कह सुनाया।

सारा वृत्तांत सुनाने के पश्चात् उन्होंने अपने साथ लाये हुए पत्र को दशरथ के हाथ में दिया और कहा कि हे अनंतगुणसंपन्न! यह उस जनक महाराज द्वारा प्रेषित पत्र है। दरबार में स्थित एक पंडित ने उस पत्र को आनंद के साथ ले लिया। तब मुखरित वीर-वलय पहने हुए (दशरथ) चक्रवर्ती ने उस पत्र को पढ़ने की आज्ञा दी।

जनक ने ताल-पत्र पर उनके (दशरथ के) ज्येष्ठ पुत्र की धनुर्विद्या-चातुरी का जो चित्र अंकित करके भेजा था, उसके अपने श्रुति-पट पर अंकित होते ही दशरथ की वज्र-सम भुजाएँ पर्वत के जैसे फूल उठीं और (भुजा के) वलय अपना मुँह बाये अपने स्थानों से खिसक गये।

जयप्रद शूलधारी (दशरथ) चक्रवर्ती ने कहा—उस दिन यहाँ एक बड़ी ध्वनि प्रतिध्वनित हुई थी, वह क्या उसी धनुष के टूटने की थी, जिसका प्रयोग घनी दीर्घ जटाधारी, विशाल गण-सहित (शिवजी ने) दक्ष-यज्ञ के समय सातों लोकों को पराजित करते हुए किया था?

पर्वत-सदृश पुष्ट भुजावाले (दशरथ) ने उपर्युक्त वचन सभी दरबारियों से कहा, फिर अनुरूप नादविशिष्ट वीर-वलयधारी दूतों को स्वर्णमय आभरण, वस्त्र आदि निरंतर और अधिकाधिक मात्रा में दिलाते रहे।

उन्होंने आज्ञा दी कि हाथियों पर बैठकर नगाड़े बजाये जायें और इस बात की घोषणा की जाय कि सूर्यवंशी मेरे पूर्वजों के पुण्य-फल से उत्पन्न मन्मथ जैसे श्रीराम अब जहाँ हैं, उस मिथिला नगरी की ओर हमारी सेनाएँ तथा राजसमूह पहले प्रस्थान करें।

'वल्लुवन'[1] ने अति वेगवान् अश्व-रूपी तरंग-युक्त (सेना-रूपी) समुद्र में घूम-घूमकर उपर्युक्त घोषणा सुनाई, (ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार) पूर्वकाल में जब मधुस्रावी तुलसी-पुष्पमाला से विभूषित शिरवाले विष्णु भगवान् ने (बलि का) दान स्वीकार करते हुए समस्त लोकों को नापा था, और जांबवान् ने उसकी घोषणा घूम-घूमकर प्रकाशित की थी।

नगाड़े का तुमुल शब्द कानों में पड़ने के पहले ही, मनोहर कंकण पहने हुई नारियाँ, सुन्दर पुरुष, भाले के (प्रयोग में) निपुण राजकुमार, विजयी नरेश, सभी आनंद से यों उमंगित हो उठे, जैसे प्रभंजन से आहत समुद्र हो।

वृषभ-समान गंभीर पदगतिवाले (दशरथ) की सेनावाहिनी, जिसकी विशालता से ऐसा जान पड़ता था कि धरती पर थोड़ा भी खाली स्थान नहीं है, इस प्रकार चली, जैसे कल्पान्त के समय प्रलय-मारुत से विताडित होकर समुद्र सभी वस्तुओं को मिटाकर उमड़ता हुआ आगे बढ़ रहा हो।

(उस सेना के मध्य) डंडे के ऊपर फैले हुए ऊँचे श्वेतच्छत्र यत्र-तत्र ऐसे लगते थे, मानों असंख्य हंस दुग्ध-समान श्वेत कांति बिखेरते हुए उड़ रहे हों। नभ में छाई हुई ऊँची पताकाओं का समूह ऐसा लगता था, मानों सारा आकाश (सर्प के समान) अपनी केंचुली उतारकर गिरा रहा हो।

हस्तिसेना के ऊपर उड़नेवाली श्वेत वस्त्रों की ध्वजाएँ उन मेघों की तरह लगती थीं, जो अपनी सूँड़ से मदजल बहानेवाले हाथियों की सेना को भ्रांति से समुद्र समझकर, अंतराल को ढकते हुए उमड़ आये हों और जल पीने के लिए नीचे उतर रहे हों।

(नर-नारियों के) आभरणों से बालातप छिटक रहा था। वह बालातप मयूर-पंखों से बने छत्रों की छाया को हटाता हुआ फैल रहा था। वे मयूर-छत्र मेघ की शोभा को मिटाते हुए विकसित हो रहे थे। उन मेघों को परास्त करते हुए पुंजीभूत नगाड़े बज उठते थे।

वे किंकिणीधारी अश्व, जिनपर रमणियाँ सवार होकर जा रही थीं, हंसों को लेकर चलनेवाली तरंग-युक्त नदी के प्रवाह-जैसे लगते थे। स्वर्णाभरण-भूषित, परस्पर संघट्ट-मान स्तनोंवाली, घुँघुराली अलकों से युक्त रमणियाँ बिजली की जैसी थीं और उनके वाहन—छोटी-छोटी हथिनियाँ मेघों की जैसी थीं।

एक दूसरे को धक्का देते हुए, बड़ी भीड़ लगाकर चलने के कारण रमणियों के सटे हुए कुचों पर के कुंकुम-लेप तथा पुरुषों की सुंदर पर्वत-जैसी भुजाओं पर के चंदन-लेप, मार्ग

[1]. तमिल-देश में, प्राचीनकाल में 'बल्लुव' नामक जातिवाले राजघोषणा का ढिंढोरा पीटने का कार्य करते थे। —अनु०

में स्थान-स्थान पर गिर रहे थे, जिससे उस सेना-समुद्र का मार्ग कोमल पर्यंक के सदृश शोभित हो रहा था।

चाशनी से भी अधिक मीठी बोलीवाले लाल अधरों से शोभित रमणियों के आँचल में छिपे हुए यम (अर्थात्, काल की तरह मरण-पीडा उत्पन्न करनेवाले स्तन) मुक्ताओं से विभूषित होने से राका की चंद्रिका फैलाते थे और बहुल रत्नहारों से विभूषित होने से प्रातःकालिक बालातप फैलाते थे।

उस सेना के पुरुष सुरभित कुंतलवाले थे, पर्वतों को लजानेवाले थे, सोने के आभूषणों से विभूषित थे तथा धनुष और खड्ग धारण किये थे। वे अपनी लता जैसी कटिवाली प्रेयसियों के संग ऐसे चले, जैसे सुन्दर हथिनियों का अनुसरण करते हुए मत्तगज चलते हैं।

कुछ रमणियाँ पालकियों में बैठकर जा रही थीं। सुरभित, मनोहर तथा नव-विकसित पुष्पों से भरे हुए मेघों का दृश्य उपस्थित करनेवाले केशों से विभूषित उन रमणियों के मुखमात्र (उन पालकियों में से) दिखाई पड़ते थे, जिससे ऐसा लगता था, मानों अनेक पूर्ण-चन्द्र विमानों पर चढ़कर जा रहे हों।

प्रवहमाण मदजल की वर्षा थमती नहीं थी। उससे जो कीचड़ उत्पन्न हो जाता था, उसमें मुखपट्टधारी हाथी फँस जाते थे और पागल हो जाते थे; वे (उस कीचड़ से) बाहर न निकल सकने के कारण घनी तरंगोंवाले समुद्र के समान शब्दायमान नथनोंवाली अपनी सूँड़ों को उठा-उठाकर टटोलते थे, मानों दिग्गजों को खोज रहे हों।

घोड़ों की पंक्तियाँ किंकिणियों के कलरव तथा टापों के ताल के साथ फाँदती हुई जा रही थीं। देवों के समान ही उनके पैर धरती को छू नहीं रहे थे। उनकी चाल बार-नारियों के मन के समान थी, जो (बाहर से अधिक प्रेम दिखाने पर भी) अंतर से प्रेम-रहित होती हैं। (भाव यह है कि जिस प्रकार बारनारियों का मन बाहर से कुछ और, भीतर से कुछ और होता है, उसी प्रकार घोड़ों के पैर पृथ्वी को छूते हुए भी न छूते-से लगते थे।)

कुछ मानवती स्त्रियाँ (जो अपने पतियों से रूठी हुई थीं) अपनी दृष्टि अपने पति पर नहीं डालती थीं, वे निःश्वास भरती थीं, उनकी भौंहें तनी हुई थीं, पल्लव-संयुक्त पुष्प भी नहीं पहने थीं। वे अपने पतियों के संग ऐसे चल रही थीं, मानों उन (पतियों) के प्राण ही जा रहे हों।

झरने के समान मद-धारा प्रवाहित करनेवाले गंडस्थलयुक्त, अंकुश का नाम सुनते ही कोपाग्नि उगलनेवाले निर्भीक हस्तिगण, पर्वतों को अपना प्रतिद्वन्द्वी समझकर, उनसे टकरा जाते थे। बड़े-बड़े वृक्षों को तोड़कर नीचे गिरा देते थे और कभी उनको रगड़ते हुए निकल जाते थे। वे ऐसे चलते थे, जैसे कोई नदी-प्रवाह हो।

सभी दुःख-मग्न प्राणियों के आलंबन-भूत, करुणार्द्र वे (दशरथ) अभी प्रस्थान के लिए उठे भी नहीं (क्योंकि वे इसी प्रतीक्षा में थे कि अयोध्या की सारी सेना पहले प्रस्थान कर जाये, तो उनके पीछे चलें) कि उधर धरती में कोई खाली स्थान नहीं है, ऐसा भाव

उत्पन्न करती हुई, जो सेना अयोध्या से निकलकर मिथिला के मार्ग में चली, उसका अग्र-भाग ध्वजांकित प्राचीर से आवृत मिथिला नगर के पास जा पहुँचा (अर्थात्, वह सेना एक-दम अयोध्या से मिथिला तक के मार्ग में फैल गई) ।

दर्शकों का मन मुग्ध करनेवाले जुते हुए रथ, भ्रमर-कुल-संकुल कुंतलोंवाली रमणियों के वदन-समूह के कारण ऐसे लगते थे, मानों कमल-पुष्पों से सुशोभित सरोवर ही जा रहे हों ।

रथ में बैठी हुई एक सुन्दरी, अति प्रेम के कारण अपने रथ के साथ-साथ डग भरते हुए आनेवाले युवक की ओर देखने लगी, तो उस सुन्दरी की आँखों में लगा हुआ (काला) अंजन, उस युवक के लिए मधुर अमृत बन गया ।

बाल-हरिण की जैसी दृष्टिवाली (अपनी प्रेयसी) से बिछुड़कर जानेवाले एक पुरुष ने पानी और कीचड़ से भरे 'मरुद' प्रदेश में हंसों तथा कोमल कमलों को देखा, तो (अपनी प्रेमिका की पदगति एवं पैरों का स्मरण करके) उसका मन अकेलेपन का अनुभव करके अत्यंत व्याकुल हो उठा ।

उस सेना में शंख तथा भेरियाँ मेघ-जैसी बज रही थीं ; वे उज्ज्वल श्वेतच्छत्रों तथा चामरों की बहुलता के कारण गंगानदी की समानता कर रही थीं । ओह ! इस सुन्दर पृथ्वी पर कैसे-कैसे राजचिह्न सर्वत्र दिखाई देते ।

वहाँ की मिष्टभाषिणी तथा श्रेष्ठ देव-रमणियाँ जैसी लावण्यवती स्त्रियाँ, प्राण पीने-(हरने) वाले अतितीक्ष्णनेत्र नामक यम के योग्य शूलायुधों को युवकों के हृदयों पर फेंक रही थीं, जिससे वह सेना ऐसी दीखती थी, मानों वह युद्ध-क्षेत्र में ही हो ।

(वीरों की) भुजाएँ परस्पर सटी हुई थीं, जैसे पत्थर के खंभे एक दूसरे के साथ खड़े हों । करवाल सटे हुए थे, जैसे गगन में बिजलियाँ सटी हुई हों । (उनके) पद सटे हुए थे, जैसे कमल सटे हुए हों । पदाति सेना सटी हुई थी, जैसे सिंहों की पंक्तियाँ सटी हुई हों ।

(किसी रमणी की अँगिया में) कसे हुए स्तनों में गड़े हुए अपने नयनों को हटाने में असमर्थ, चमकता चेहरावाला एक युवक अपने आगे के मार्ग पर दृष्टि नहीं रख पाता है और अंधे की तरह बड़े बलिष्ठ हाथी से जाकर टकरा जाता है ।

भौरियोंवाले और फाँदकर दौड़नेवाले एक घोड़े के उछलने से, उसपर आसीन कोई मयूरी-जैसी छटावाली सुन्दरी, अपना संतुलन खोकर नीचे गिरने लगी । इतने में एक उदारहृदय (युवक) ने लौहस्तंभ जैसी अपनी लंबी बाँहों से उसे सँभाल लिया और उस सुन्दरी को धरती पर उतारे बिना वैसे ही अपने अंक में भरकर जड़वत् खड़ा रह गया ।

(अपने) युगल कमलों को दुखाती हुई चलनेवाली तथा (युवकों के) मन को दुखानेवाली शर-सदृश काले नयनों से युक्त रमणी को देखकर एक (युवक) कह उठा—'देखो, इस सुन्दरी के पीन और मनोहर उरोज-रूपी मदजलस्रावी हाथी को बाँधने के लिए पर्याप्त विशाल स्थान (वक्ष) कहीं है क्या ?'

अपने घुँघराले बालों पर बैठे हुए भ्रमरों को उड़ाकर, उन्हें गुञ्जरित करते हुए, मदजल बहानेवाले गज के समान एक युवक एक सुन्दरी के काले और नुकीले नयनों को देखता है और फिर अपने हाथ के भाले की ओर देखता है।[1]

तरंग-समान काली और लम्बी घुँघराली अलकों, कमल-समान छोटे पदों तथा करवाल-समान काले नयनों से शोभित एक रमणी को देखकर कोई युवक पूछता है—परस्पर सटे हुए, आभरण-भूषित स्तनों तथा कंकण-भूषित दीर्घ बाहुओं से शोभायमान हे सुन्दरी, तुम अपनी कटि को कहाँ भूल आई ?

एक तरुणी ऐसी है, जो अपने नयनों से ही—जो यम के जैसे ही (दर्शकों के) प्राण हरनेवाले थे—बातें करती है, लेकिन अपना मुँह खोलकर कोई बात नहीं कहती है। उससे एक युवक पूछता है—हे सुन्दरी, जब तुम किसी नदी की धारा में खड़ी (फँसी) रह जाओगी, तब तुम्हारे सुन्दर करों को पकड़कर किनारे पर पहुँचानेवाला कौन होगा ? (अर्थात् यदि तुम बात नहीं करोगी, तो तुम्हें बचाने की चेष्टा भी कौन करेगा ?)

(उस सेना के) ऊँट, जो इतना भारी बोझ ले जा रहे थे, जिसे उतारना भी कठिन था, स्वच्छ तथा मीठे पल्लवों को कभी नहीं खाते थे ; किन्तु कड़ुवे (नीम आदि पेड़ों के) पत्ते ही खोजते हुए, मद्य पीने में निरत नरों के जैसे ही (लड़खड़ाते हुए) चल रहे थे। उनके मुख उनके हृदय के जैसे ही सूखे थे।

लाल नेत्र और गाढ़े अंधकार-जैसे शरीरवाले बर्बर (जाति के लोग) भारी बोझों को उठाये हुए ऐसे चल रहे थे, जैसे मत्तगज अपने कंधे पर अंकुश और अपने को बाँधने के लिए उपयुक्त बड़े आलान भी उठाकर लिये जा रहे हों।

(एक) मत्तगज मस्त होकर अड़ गया और किसी हथिनी पर सूँड़ बढ़ाने लगा। तब उस हथिनी पर बैठी हुई कुछ स्त्रियाँ भयभीत होकर अपनी आँखों को हथेलियों से मूँदने लगीं। किन्तु, उनकी विशाल आँखें उन हथेलियों में समा नहीं पाईं, तो वे बहुत खिन्न होकर रह गईं।

ऐसी हथिनियों के ऊपर, जिनकी पूँछ पृथ्वी को छूती है, बैठे हुए मेखला-भूषित रमणियों के मध्य बौने भी जा रहे हैं, जैसे सद्योविकसित मनोहर पुष्प-समूह के मध्य कछुओं पर बैठकर मेंढक जा रहे हों।

एक अश्व, पुष्पलता-सदृश एक सुन्दरी को अपनी पीठ पर लेकर अपने पैरों को झुका-झुकाकर फाँद रहा है। बड़े आलान से बँधा रहनेवाला एक हाथी उसके पीछे दौड़ता है, तो भी वह अश्व उसके काबू में नहीं आता। वह दृश्य ऐसा है, मानों वह अश्व यह सोचकर कि यह सुन्दरी इस धरती पर रहने योग्य नहीं है, किन्तु देवेंद्र के योग्य है, उसे उड़ाकर स्वर्ग की ओर ले जाना चाहता हो।

(कवि कहते हैं) मेरे पितृसमान श्रीराम ने शिव-धनुष को तोड़ा, ज्योंही यह

---

१. यह संकेत है—वह युवक यह देखना चाहता है कि उसका भाला भी उस सुन्दरी के नयन-जैसा पैना है या नहीं।

मधुर समाचार पुरुषों ने सुनाया, त्योंही अत्यंत आनंद में विभोर होकर वहाँ की नारियाँ (विवाह को देखने के लिए) ऐसे दौड़ीं कि अपने दीर्घ तथा मनोहर केशपाशों के खुल जाने पर भी उन्हें बाँधने की या मेखला की मणियों के टूटकर गिर जाने पर भी उन्हें उठाने की सुध नहीं रही।

मत्त हस्तियों तथा कामिनियों से शंकित रहनेवाले विप्रजन हाथों में छाता और कमंडल लिये हुए, (प्राणयाम के समय) नासिका पर लगे रहनेवाले अपने हाथ को (चलते समय भी) नीचे की ओर नहीं गिराकर उचक-उचककर डग भरते हुए (अर्थात्, एँड़ी को पृथ्वी पर न लगाकर सावधानी से अशुद्ध स्थानों से बचकर प्रयत्नपूर्वक डग रखते हुए) आगे-आगे निकले जा रहे हैं।

सुरभित पुष्पधारी कुंतलों से सुशोभित कुछ नारियाँ अपने नयनों में (श्रीरामचन्द्र का) प्रतिबिंब देखकर समझती हैं कि स्वयं श्रीराम ही आ गये हैं और कहती हैं कि 'हमारा स्वागत करने के लिए तुम्हीं आ गये हो, आओ, हमारे रथ में बैठ जाओ', यों कहकर रथ की ओर अपना हाथ झुकाकर संकेत करती हैं।

शब्दायमान रथ, हाथी, घोड़े, बड़े-बड़े नगाड़े— सर्वत्र भरे हुए हैं। उनके कोलाहल में एक का कहना दूसरा सुन नहीं पाता, अतः सब गूँगे के जैसे चल रहे हैं।

अत्यंत झीने, मकड़े के जाल-जैसे वस्त्र पहने हुई, भ्रमर से गुंजरित पुष्पों से अलंकृत केशोंवाली रमणियों का समूह अपने पैरों की पायलों की झनझनाहट के कारण पक्षियों के कलरव से भरे तालाब की समानता करता है।

स्वच्छ तरंगों से शोभित समुद्र से अद्भुत लक्ष्मी की समता करनेवाली कुछ नारियाँ झीने वस्त्र से जब देखती हैं, तब उनकी आँखों को देखकर पुरुषों के नयन कोलाहल कर उठते हैं, मानों मत्तगजों के मद को देखकर मोद-भरे भ्रमर कोलाहल भर रहे हों।[१]

(पुरुषों के) प्राणों को भेदकर चलनेवाली तीक्ष्ण नील नयनोंवाली नारियों के नूपुर 'उल्लै' (नामक) वाद्य के समान बज रहे हैं। उसके लिए सहायक वाद्य बनकर घोड़े हिनहिनाने लगते हैं, जैसे (आकाश में) उठनेवाले मेघ गर्जन कर रहे हों।

पृथ्वी देवी के हृदय को पुलकित करती हुई अपना मृदुपद रखनेवाली रमणियों के उज्ज्वल मुख को देखकर कुछ युवकों के नयन, यह समझकर आनंदित हो रहे हैं कि विकसित कमल-पुष्पों में मोदमत्त भ्रमर विहरण कर रहे हैं; उन युवकों की भावना से मन्मथ भी आनंदित हो रहा है।

मन के लिए भी अगोचर (अतिसूक्ष्म) कटि, मनोहर श्रेष्ठ प्रवाल जैसे अधर तथा त्रिफल[२] रस जैसे मधुर वचनवाली तरुणियों के कसकर बाँधे हुए लाल नारियल-जैसे कुचों से

---

१. पुरुषों के नयन एवं भ्रमरों में और मत्तगज एवं झीने वस्त्र पहने हुई नारियों में समानता दिखाई गई है।—अनु०

२. तमिल-साहित्य में कटहल, आम और केले को त्रिफल कहते हैं। ये तीनों फल तमिल-देश में बहुत होते हैं।—अनु०

गिरा हुआ सुगंध-लेप और (सेना के पैरों से उठी) धूल—दोनों मिलकर (आकाश में) भर गये।

बड़े-बड़े चित्रमय रथों पर सवार हो उपर्युक्त प्रकार के असंख्य नर और नारियाँ, बड़ा शोर मचाते हुए अपने मार्ग में आगे बढ़ते जा रहे हैं।

लगाम-लगे घोड़े, रथ तथा वीर, सर्वत्र दल बाँधकर तेजी के साथ चल रहे हैं; उससे अति शीघ्रता से ऊपर उठी हुई धूल सर्वत्र फैल गई है और बादलों के जलधारा बरसानेवाले सजल रंध्रों में भी जाकर भर गई है, तथा दिशाओं में स्थित गजों के मदजलप्रवाही रंध्रों में भी घुस गई है।

(उस सेना के वीरों ने) ढाल पकड़े हुए अपने बायें हाथ से (दाहिने हाथ में रहनेवाले) चमकते हुए करवाल को भी पकड़ रखा है, और रुचिर रत्नमय सोने के कड़ों से भूषित (अपने) दायें हाथ से, 'कटक' (नामक पदभूषण) से शोभित अपनी पत्नियों की चूड़ियों से अलंकृत कर-पल्लव को पकड़कर स्वर्ण-मुखपट्टों से विभूषित हाथियों के मदजल के कारण सिलौए (बने) रास्ते पर धीरे-धीरे पैर रखते हुए जा रहे थे।

खेतों में, सरोवरों में तथा छोटे-छोटे जलाशयों में बहुलता से खिले हुए कुमुद, उत्पल, रक्तकमल आदि (सुन्दरियों के) हाथ, चेहरे, मुख तथा नयन की छवि उपस्थित करते हैं, जिन्हें देखकर वे रमणियाँ अपने पतियों से प्रार्थना करती हैं कि ये पुष्प तोड़कर हमें ला दो।

पंक्तियों में बाँधे गये घोड़ों पर से कुछ सुन्दरियाँ पृथ्वी पर उतर गईं। इतने में मत्तगज को निकट आते देखकर, डर गईं। (उनके) सुगंधित केशभार शिथिल हो खिसक पड़े। श्रेष्ठ रत्नाभरण टूटकर गिर गये और मनोहर कटि-वस्त्र भी ढीले पड़कर शरीर से खिसकने लगे, तो अपने पल्लव-करों से अपने ढीले वस्त्रों को पकड़कर, मयूरों के समान लड़खड़ाती हुई, मार्ग से हट गईं।

छत्र, हाथी, मयूर-पंखों के बने पंखे और ध्वजाओं के समूह ने मिल-जुलकर समस्त खाली स्थानों को आवृत कर लिया है और अंधकार उत्पन्न कर दिया है। हथियार, किरीट और आभूषण अपनी आभा से धूप फैला रहे हैं। अतः, उस सेना के मार्ग पर एक साथ ही रात्रि तथा दिन भी वर्त्तमान हो रहे हैं।

'पलाश पुष्प-सदृश अधर, मुक्ता-सदृश दाँत, तथा मंदहास से सुशोभित सुन्दरियों के रमणीय मुख (नामक) कमल पर के तीक्ष्ण खड्ग (नयन) भीड़ को चीरकर निकल जायेंगे; अतः तुमलोग मार्ग छोड़कर हट जाओ' – इस प्रकार कहते हुए सूर्य-समान उज्ज्वल शरीरवाले पुरुष मार्ग छोड़ देते हैं।

दुस्तर भीड़ के कारण मार्ग में, मुक्ताहार और रत्नहार टूटकर बिखरे हुए हैं। कलाप नामक सोलह लड़ियोंवाली मेखला से आवृत तथा सर्पफण-सदृश जघनवाली रमणियाँ, (मार्ग पर बिखरे हुए मोतियों और रत्नों के पैरों में चुभने से) लड़खड़ाती हैं, तो उनके स्वर्णमय नूपुर भी रो उठते है; 'हमसे इस मार्ग पर चला नहीं जायगा'—यों कहकर वे मार्ग के मध्य में रुकी रह जाती हैं।

उत्तम वाद्य जब मेघ के जैसे घोर गर्जन कर उठते हैं, तब गाड़ियों में जुते हुए बड़े-बड़े बैल भड़क उठते हैं, हंस पक्षियों के सदृश रमणियाँ इधर-उधर भाग जाती हैं, बैल रस्सियों से बँधे हुए सामानों को इधर-उधर बिखेरकर बंधन-मुक्त हो जाते हैं, जैसे योगी संसार के बंधनों से मुक्त हो जाते हैं।

पर्वत-जैसे हाथी कहीं-कहीं जलाशयों को देखते ही उनमें उतर पड़ते थे, तब उनके महावत हवा के जैसे तेज चलनेवाले कमान के गोलों से उन्हें मारते थे, फिर भी वे हाथी उन चोटों की परवाह किये बिना (किसी रमणी के) कसे हुए स्तन-समान कुंभों और दाँतों को बाहर किये हुए खड़े रह जाते थे, मानों क्षीरसागर में तालवृक्ष-सदृश शुंडवाला ऐरावत खड़ा हो।

काली मिट्टी-जैसे केशों, शूल-तुल्य नेत्रों, अमृतवर्षी कुमुद-तुल्य रक्ताधरों से विभूषित गायिकाओं के साथ, उत्कृष्ट वीणा-वादन में चतुर 'वाण' (कहलानेवाले गायक), किन्नरों के समान, घोड़ों पर सवार होकर 'नैवल्ल' (नामक) राग का विशुद्ध आलाप करते हुए जा रहे थे, मानों श्रोताओं के कानों में मधु की वर्षा कर रहे हों।

महावत के अंकुश उठाते ही, निर्झर-युक्त पर्वत-समान हाथी बिगड़ उठता था और लोग तितर-बितर हो जाते थे। मद-भरे छोटी आँखोंवाले बाल-हाथियों पर के भ्रमर, जिनके पंख फूले हुए थे, दूसरे हाथी पर जा बैठते थे और फिर किसी हथिनी के पीछे-पीछे उड़कर उसपर बैठी हुई किसी रमणी की बिखरी अलकों से टकरा जाते थे।

चक्रवर्त्ती की प्रेयसियाँ रवाना हुईं, तो पूर्णचंद्र के दर्शन से उमड़े हुए नील समुद्र के समान भेरियाँ बज उठीं। हाथी, रथ, नाट्यशील अश्व, रक्तरंजित शूल समान नयन-युक्त नारियाँ और नर पंक्ति बाँधकर रमणीय ढंग से शीघ्रगति के साथ चलने लगे।

तालाबों में विकसित मनोहर कमल-वन के मध्य शोभायमान किसी हंसिनी के समान केकयराज-पुत्री, सहस्रों गणिकाओं के झुंड से घिरी हुई, अति सावधानी के साथ, रत्नों से अलंकृत शिविका में आसीन हो चलीं ; तब मधु-मधुर संगीत होने लगे ; (उनके रूप को देखकर) देवलोक की सुन्दरियाँ भी लज्जित हो गईं।

अकारण ही अग्नि-ज्वाला उगलनेवाली क्रोधी आँखोंवाले, वेत्रदंडधारी तथा (आपाद) लटकनेवाले अँगरखा पहने हुए कंचुकी, उन मधुरभाषिणी तथा अपूर्व सौंदर्य-विशिष्ट स्त्रियों के पद-मार्ग की यथाक्रम रखवाली करते हुए जा रहे थे, जो किंकिणी-भूषित घोड़ों पर या पैदल ही जा रही थीं।

रुचिर नूपुर पहने हुई, खच्चरों पर सवार, लाल रेखाओं से युक्त कमल-सदृश विशाल नेत्रवाली दो सहस्र नारियों से घिरी हुई, युगल (लक्ष्मण और शत्रुघ्न) बच्चों को जन्म देनेवाली (सुमित्रा) देवी, नीलरत्न-खचित शिविका में बैठकर ऐसी चली कि दर्शक समझने लगे कि जल-भरे बादल पर चमकनेवाली विद्युल्लता ही जा रही है ; उस समय वीणागान भी हो रहे थे।

अपने मनोहर करों में मयूर, हंस, छोटे शुक, सारिकाएँ, प्रतिभाएँ, सद्यः आवरण से निकले हुए शंख-समान चामर आदि वस्तुओं को लिये हुए असंख्य नारियाँ (सुमित्रा के)

पार्श्व में जा रही थीं? उनको देखने से ऐसा लगता था कि सप्त समुद्रों से घिरी इस पृथ्वी पर अब अन्यत्र कहीं स्त्री ही नहीं रह गई है (अर्थात्, सब यहीं आ एकत्र हो गई हैं।)

महाभाग (रामचन्द्र) को जन्म देनेवाली (कौशल्या देवी) (एक रत्नमय) शिविका पर सवार होकर चलीं, तो ऐसा लगा, मानों उज्ज्वल श्वेत दंत तथा सेमल के फूल-जैसे अधरवाले (कौशल्या के) वदन को देखकर, धवल चन्द्रमा की भ्रांति से असंख्य नक्षत्र आ एकत्र हुए हों। निपुण गायक भ्रमर गुजार-सदृश 'पांडि' (नामक) राग अलाप रहे थे और देवगण (कौशल्या को) नमस्कार कर रहे थे।

कुबड़े, बौने, ठिगने तथा दासियाँ इनको लेकर दूध-जैसे सफेद घोड़े हंस-पक्षियों के समान धरती पर चल रहे थे। भ्रमर, मधुमक्खी आदि से भरे पुष्पों से अलंकृत केशोंवाली रमणियाँ उनके पार्श्वों में चल रही थीं।

कली-जैसे स्तनों और अवर्णनीय लक्ष्मी से भी अधिक सौंदर्य से विशिष्ट साठ सहस्र नारियाँ, प्रवाल, रत्न, स्वर्ण, उज्ज्वल मरकत, मुक्ता तथा अन्य अनुपम अलंकरणों से युक्त, चित्रस्थ प्रतिमाओं के समान, गाड़ियों में सवार हो (कौशल्या देवी को) घेरकर चलीं।

पातिव्रत्य से श्रेष्ठ अरुन्धती के पति (वसिष्ठ) छत्र की छाया में, मुक्ता-खचित शिविका में बैठकर, हंसवाहन ब्रह्मदेव के सदृश चले। कर्णों के द्वारा अमृत-सदृश शास्त्रों को अघाकर पीये हुए तथा अपने हाथों से देवताओं को हवि देने का सामर्थ्य रखनेवाले दो सहस्र ब्राह्मण उन्हें घेरकर चले।

युद्ध में समर्थ हाथी, घोड़े, सुन्दर रथ, स्वर्णमय वीर-वलयधारी पदाति, उन (वसिष्ठ) के आगे-पीछे ऐसे जा रहे थे, मानों महान् पर्वत को घेरकर समुद्र जा रहा हो। जयलक्ष्मी से सुशोभित वक्षवाले, देवसेना को भी वेधने में चतुर तीरन्दाज अतिरथी, दोनों वीर (भरत और शत्रुघ्न) वसिष्ठ के आगे-पीछे इस प्रकार जा रहे थे, जैसे विश्वामित्र के आगे और पीछे राम और लक्ष्मण जा रहे हों।

मुक्ता तथा मनोहर हीरे से खचित आभरण धारण किये हुए (दशरथ) चक्रवर्त्ती ने अपने नित्य कर्म पूरे किये। चक्रायुध धारण करनेवाले विष्णु के पद अपने शिर पर रखे। ब्राह्मणों को अनन्त रत्न, स्वर्ण, गायों की पंक्तियाँ, भूमि आदि आदर के साथ दान कर एक अच्छे मुहूर्त्त में प्रस्थान किया।

आठ सहस्र ब्राह्मण रत्न-कलश हाथ में लिये हुए, अर्थगंभीर वेद-मंत्रों का पाठ करते हुए, दुर्वा से मंत्रपूत जल का प्रोक्षण करते हुए, आशीष दे रहे थे। मंगल-वचन कहनेवाली, मधुर अरुण मुखवाली, भारी रत्न-खचित मेखला धारण करनेवाली, वंदीजन की परंपरा में उत्पन्न, अनेक रमणियाँ प्रस्तुति गा रही थीं।

(उस समय) कुछ लोग कहते थे कि यह शंख क्यों बज रहा है? कुछ कहते थे कि कदाचित् राजा प्रस्थान कर चुके हैं। यों कहते हुए बड़ी भीड़ लगाकर राजा लोग आये? (उनमें से) कुछ कहते कि चक्रवर्त्ती ने मेरा अवलोकन किया और कुछ कहते कि हाय! मुझपर चक्रवर्त्ती का कटाक्ष नहीं पड़ा। कोई कहता, हाय! मेरा कुंडल गिर पड़ा। कुछ

कहते, अब उस चक्रवर्त्ती के समीप पहुँचना दुष्कर है। यों, चक्रवर्त्ती के चारों ओर राजा लोगों की भीड़ एकत्र हो गई।

स्वर्ण-कंकणधारिणी रमणियों को लेकर स्वर्ण-किंकिणीधारी अश्व-समूह (चक्रवर्त्ती के) चारों ओर ऐसे जा रहा था, मानों कमल-पुष्पों से भरा समुद्र हो। विजयी शूलधारी राजाओं के अरुणहस्त-रूपी कमल मुकुलित हो (नमस्कार की मुद्रा में) खड़े थे। इनसे घिरे हुए चक्रवर्त्ती, अपर सूर्य के सदृश रथ पर चढ़कर चले।

उस समय (दशरथ की सेना से) उठी हुई धूलि-राशि ने अंतराल को भर दिया और गगन में जा लगी और फिर वहाँ से लौटकर सभी विशाल दिशाओं को यों आवृत कर लिया कि लोगों को एक दूसरे को पहचानना भी कठिन हो गया। फिर, वह सगर-पुत्रों से वैर-सा करती हुई जाकर (उनके द्वारा खोदे गये) तरंगायित समुद्र को भी भरने लगी।

शंखवाद्य, मधुर बाँसुरी, शृंग-वाद्य, ताल, काहल, मंगल-भेरी -- इनसे उत्पन्न ध्वनियों ने मेघ-गर्जन को भी दबा दिया। मोर-पंखों के झालर, छत्र आदि ने सूर्य की किरणों को वहाँ आने से रोक दिया। चंद्रमा वहाँ के श्वेतच्छत्रों को देखकर लज्जा से हट गया। यों, दशरथ देवताओं को भी चकित करनेवाले वैभव के साथ चले।

इन्द्र के समान दशरथ चक्रवर्त्ती जब जा रहे थे, तब मंत्रगान के शब्द दक्षिणावर्त्त शंख[1] के शब्द, ब्राह्मणों के आशीर्वाद के शब्द, गर्जन करनेवाले नगाड़ों के शब्द, आलान-स्तंभ को तोड़ देनेवाले बलवान् हाथियों के शब्द, समय की माप रखनेवाले 'घटिक' (नामक लोगों) के वेला-सूचक शब्द—सभी दिशाओं में सर्वत्र गूँज उठे।

जिस किसी भी दिशा में दृष्टि जाती, वहाँ वीर-वलयधारी नरेश अपने कमल-जैसे हाथ जोड़े चक्रवर्त्ती की दिशा में ही (इस विचार से) देखते हुए खड़े रहते थे कि चक्रवर्त्ती का कटाक्ष उनपर पड़े। एक दूसरे को धक्का देते हुए चलनेवाले अनेक हाथी, रथ, घोड़े पदाति सैनिक—इनके कारण उठी हुई धूल गगन और धरती को भरती चली।

पदाति सैनिक, हाथी, रथ, अश्व इन चारों से खूब भरी हुई सेना यदि अपने स्थान से आगे बढ़ भी जाना चाहे, तो उसके जाने के लिए मार्ग नहीं था; समुद्र जल-रूपी वस्त्र से आवृत धरती भी (उस सेना के भार से) अपनी पीठ लचकाने लगी। अब कहो, इस चक्रवर्त्ती को (अपने धर्मपूर्ण शासन से) भूमि-भार हरनेवाला कैसे कहा जाय?

वे चक्रवर्त्ती इस प्रकार दो योजन दूर चलकर, स्वर्णमय (मेरु) पर्वत-सदृश चंद्र-शैल की तराई में जाकर ठहरे। चतुरंगिनी सेना भी वहीं ठहर गई। उस (सेना) में रहनेवाली रमणियों के केश मन्मथ के वाहन[2] बने हुए हाथी (अर्थात्, अंधकार) के जैसे थे, तथा उनके दोनों स्तन, (क्रमशः) मन्मथ के बाण बने हुए पुष्पों और मलयपर्वत पर के चंदन के लेप से सुगन्धित हो उठे थे। (१—८२)

●

---

१. शंख प्रायः वामावर्त्त होते हैं, दक्षिणावर्त्त शंख अधिक मंगलप्रद माना जाता है।

२. तमिल-साहित्य में कहीं-कहीं अन्धकार को मन्मथ का वाहन कहा गया है।

अध्याय १४

चंद्रशैल पटल

(हाथियों पर बैठी सुन्दरियाँ अपने पतियों के सहारे नीचे उतर पड़ीं) तब मुक्ताहार-विभूषित, मेरु को भी अपने गुरुत्व से पराजित करनेवाले (अपने प्रियतम के) प्राणों को हरने के इच्छुक सारिका-तुल्य मधुर बोलीवाली कुछ रमणियों ने, दृढ धनुर्धारी मन्मथ के आश्रयभूत अपने स्तनों को, अपने पतियों की भुजाओं के साथ (आलिंगन में) बाँध दिया ; इधर ऊँचे और गगन-चुंबी वटवृक्ष को भी तोड़नेवाले, सरोवर को जाने के इच्छुक, दृढ धनुर्धारी मन्मथ-समान वीरों को ले चलनेवाले कुछ हाथी[1] भी देवदारु तथा चंदन के वृक्षों से बाँध दिये गये।

जो शत्रु सम्मुख होकर युद्ध करने से नहीं दबता, उसे कोई चतुर नरेश असावधानी-रहित विवेक के साथ राजतंत्र से उखाड़ देता है। उसी प्रकार (ऊँचे पेड़ से बँधे हुए) एक हाथी ने मेघ-मंडल को अपनी शाखाओं से छूनेवाले सुन्दर वृक्ष के तने को, समूल उखाड़ दिया और चलने लगा।

कृष्ण (अपनी माता यशोदा द्वारा ऊखल से बाँधे जाने पर) अपने पीछे ऊखल को भी लुढ़काते हुए, अति पुष्ट तनावाले युगल अर्जुनवृक्षों के मध्य से होकर निकल गये थे और दोनों वृक्षों को बीच से तोड़कर गिरा दिया था, उसी प्रकार एक हाथी अपनी (पिछली) टाँग से बँधे आलान-स्तंभ को भी खींचता हुआ, वहाँ खड़े दो आम्रवृक्षों के मध्य से होकर निकल गया और एक साथ दोनों पेड़ों को गिराता हुआ चला गया।

(हाथी के मन में) वैर उत्पन्न कर देनेवाले कोप को दूर करने के लिए, मीठी बोली बोलकर निपुणता के साथ उसको वश में लानेवाला कोई महावत, किसी (राजा के) मंत्री जैसा था ; और वह हाथी, विविध शास्त्रों के अनुकूल हित-वचन धीरे-धीरे कहने पर भी उसे न सुननेवाले किसी (उद्धत) राजा के जैसा था।

(कोई हाथी किसी जंगली हाथी की गंध पाकर क्रुद्ध हो उठता है और उसकी खोज में निकल पड़ता है।) अंकुश से आहत कोई मत्त गज, अपने शत्रु हाथी को न देखकर मेघ के जैसे गरजता हुआ, बनगज के मार्ग का अनुसरण करता हुआ वायुवेग से चल पड़ा (क्रोध के आवेश में वह अपने मार्ग में आये विविध प्राणियों को मारता हुआ चला), तो बाज, चील आदि पक्षी झुण्ड बाँधकर उसके पीछे-पीछे उड़े। वह दृश्य ऐसा था, जैसे किसी नदी के मार्ग में दूसरी नदी की धारा बह चली हो।

बहुत-से हाथियों की पंक्तियाँ जहाँ बँधी हुई थीं, उस स्थान में कहीं से (सप्तपर्णी वृक्षों की) मदजल की-सी गंध आई, तो एक हाथी पागल हो उठा और अपने को दबाने-वाले अंकुश को झटके से दूर हटाकर मदगंध की दिशा में दौड़ चला और पुष्पों से लदे (सप्तपर्णी) वृक्ष को उखाड़, अपने अगले दोनों पैरों से रौंदकर चूर-चूर कर दिया।

---

१. मूल में स्तन और हाथी दोनों के लिए एक ही विशेषण का प्रयोग किया गया है और श्लेष के आधार पर दो अलग-अलग अर्थ निकाले गये हैं।

असंख्य गज, उनके मध्य सिंदूरांकित संकीर्ण ललाटवाली हथिनियाँ और हाथी के बच्चे झुण्ड बाँधकर खड़े थे। वृक्षों से भरा हुआ वह अरण्य (हाथियों के) एक यूथ-जैसा खड़ा था और वह चन्द्रशैल उस यूथ का पति जैसा खड़ा था।

'विशद ज्ञानवाले उत्तम जन, नीच जनों की संगति करने पर, उन नीच जनों के बुद्धि-विकारजनक दुर्गुणों को दल देते हैं'—यह कथन ठीक ही है ; क्योंकि (सोने के चक्रवाले रथ) अपने स्वर्णमय चक्रों के मार्ग में पड़नेवाले काले पत्थरों को भी रगड़-रगड़कर अपने (सुनहले) रंग से युक्त कर देते थे।

जंगली मयूर, (उस सेना की) सुन्दरियों के बिंब-समान अरुण अधरों को देखकर यह समझते थे कि ये बीरबहूटी[1] को मुख में उठाये हुए हैं। कदाचित् इसी भ्रांति से रमणीय मेखलाधारिणी, हरिणनयनोंवाली उन रमणियों के सुनहले लावण्य को देखते हुए वे घूम रहे थे।

गतिशील घोड़ों से उतरकर, हंस-गति से चलकर, घनी वृक्षों की छाया में जाकर ठहरनेवाली स्त्रियाँ, अपने शरीर पर के कलाप, (सोलह लड़ियोंवाली) मेखलाओं, कर्णाभरण तथा अन्य आभूषणों की चमक के कारण पुष्पित लताओं जैसी सुशोभित हो रही थीं।

यात्रा करने से थकी हुई स्त्रियाँ स्फटिक-प्रस्तरों पर लेटकर सो गईं, तो भ्रमरों के झुण्ड उनके कोमल चरणों तथा मुखों पर, उन्हें सघन दलवाला कमल समझकर, मँडराने लगे। (दूसरे) स्फटिक-शिलाओं में उनके प्रतिबिंबों को देखकर सखियाँ इस भ्रम में पड़ गईं कि यही वास्तविक स्त्रियाँ तो नहीं हैं।

(जिस प्रकार) विद्युत् से शोभित मेघ उस चन्द्रशैल से लगे रहते हैं, उसी प्रकार जब हथिनियाँ धरती से लगकर बैठ गईं, तब लता-समान नारियाँ उनपर से उतरीं। शब्द करनेवाले अपने नूपुरों के साथ वे अपने निवास-गृहों (खेमों) में ऐसे चलीं, मानों वे लक्ष्मी हों, जिसकी कटि की समानता डमरू भी नहीं कर सकता—अपना निवास कमल-पुष्प छोड़कर उन गृहों में जा रही हों।

पुष्टिवर्धक दाना खाने से खूब पुष्ट, तुरुष्कों के द्वारा कई नगरों से लाये गये, घोर शब्द करनेवाले अति सुन्दर और बलिष्ठ अश्व, भूमि-देवी के हृदय को अलंकृत करनेवाले रत्नहार के समान, अश्व-शालाओं में बाँधे गये।

जहाँ-तहाँ लंबे परदे लगाये गये, मानों जल की वीचियाँ खड़ी कर दी गई हों। हाट सजाई गई, मानों समुद्रों को ही सँवारकर रख दिया गया हो। वृक्षों के मध्य हाथियों को बाँधा गया, मानों बादलों को ही लाकर खड़ा कर दिया गया हो। घोड़ों को पंक्तियों में बाँधा गया, मानों पवनों को ही बाँध रखा गया हो।

नर्त्तनशील मयूर की जैसी गतिवाली और हरिण की आँखों के जैसी नेत्रवाली (रमणियाँ) तथा तीक्ष्ण शूलधारी योद्धा (अपना-अपना स्थान न पहचान लेने के कारण)

---

१. बीरबहूटी नाम का कीड़ा मयूर का भोजन होता है।

भटक रहे थे ; (फिर) भेरी के नाद और दूर तक सुनाई पड़नेवाले शंख के रव सुनकर तथा ध्वजाओं को देखकर पहचान सके कि दशरथ चक्रवर्त्ती का आवास कौन-सा है, फिर वहाँ पहुँच गये।

(सेना के) पैरों से उठी हुई धूलि (रमणियों के) मनोहर और उज्ज्वल शरीर पर छा गई। युवक कुमार दूध के झाग के समान वस्त्रों से (अपनी प्रियतमाओं के शरीर पर से) धूलि पोंछने लगे ; उससे वे तरुणियाँ ऐसी चमकीं, जैसे चित्रकार ने अपने घर के चित्रों को पोंछकर नया बना दिया हो।

हाथी पर सवार हो आनेवाले राजकुमार, ऊँचे पर्वतों पर से (समतल) भूमि पर उतर आनेवाले सिंहों के जैसे ही नीचे उतरे तथा विशाल तालपत्र-जैसे बने हुए चामरों-सहित चलकर, अति सुन्दर ढंग से बनाये गये डेरों में प्रविष्ट हुए।

श्वेत वस्त्रों की बनी पताकाओं से युक्त उन आवासों में, मंदहास और सुगंधि से भरी सुन्दरियों के वदन ऐसे लगते थे, जैसे मेघों से भरे आकाश में रहनेवाले चन्द्रमा के उज्ज्वल प्रतिबिंब, चारों तरफ उठी हुई तरंगोंवाले समुद्र के धवल जल के भीतर से दिखाई दे रहे हों।

कोई मत्तगज धूल में लोट जाता और उठकर आकाश को छूता हुआ-सा ऊँचा खड़ा हो जाता। फिर, अपने काले रंग को ढकनेवाली सफेद धूलि को शरीर के एक पार्श्व में से पोंछ देता ; किंतु दूसरे पार्श्व में उस धूलि से लिप्त वह ऐसा चला आता, मानों शिवजी को अपने पार्श्व में लेकर विष्णु भगवान् ही आ रहे हों।

दुर्गुण व्यक्तियों के साथ (अविचार के कारण) मिलकर रहने पर भी चतुर सज्जन उनके स्वभाव को पहचानने पर जिस प्रकार उन्हें एक दम छोड़कर अलग हो जाते हैं, उसी प्रकार वेगवान् अश्व अति सूक्ष्म धूलि पर लोट जाते और झट उठकर, उस धूलि को झाड़कर, दूर हट जाते।

(भूमि, नारी और धन—इनकी कामना-रूपी) तीन प्रकार के पाश को तोड़कर, उत्तम गुणवान् योगी, अपने योग-बल से, अपने स्वरूप को पहचानते हैं, इहलोक तथा परलोक के फल को पहचानते हैं तथा अपने लक्ष्य-स्थान 'मोक्ष' के स्वरूप को भी पहचानकर उसकी ओर तेजी से बढ़ते हुए सन्मार्ग में चलते हैं। उन योगियों के समान ही, घोड़े भी, तीन गुणवाली रस्सियों के बंधन को तोड़कर, अश्वपाल की दक्षता के कारण, अपने कार्य को पहचानते हुए अपने (लक्ष्य) स्थान को जानकर उसकी ओर दौड़ चलते थे, पर (अश्वारोही की) आज्ञा से दबकर वापस लौट आते थे।

जब कलकल करती हुई वीचियाँ इस प्रकार ऊँची उठती हैं कि उनसे छिटककर जल किनारे के झीलों में जा गिरता है, तब उनके साथ ऊपर फेंके गये पुष्ट मीन भी उछलकर चमक उठते हैं, उसी प्रकार जब आकाश से गिरते हुए कुहासे के जैसे (डेरों के) परदे हवा के झोंके खाकर उड़ते थे, तब परदों के भीतर गोटी खेलनेवाली स्त्रियों के काले नेत्र उन मीनों के समान ही चमक उठते थे।

स्वच्छ जलवाली नदियाँ, अपने प्रवाह के सूख जाने पर भी खोदने से थोड़ा-थोड़ा

जलदान करती रहती हैं। वे उस दाता के समान हैं, जो (दान में सारी संपत्ति देकर निर्धन बनने के पश्चात् भी) याचकों को अपना बंधु समझकर, 'नाहीं' नहीं कहता है, किंतु अपने पास बची हुई संपत्ति में से ही कुछ दान देता ही रहता है।

वीर योद्धा, जिनके वक्ष पर रत्नखचित (स्वर्ण) हार ऐसे लगते थे, जैसे अग्नि के संग बिजली संचरण कर रही हो, जब अपने घने बाँधे गये केशों को हिलाते हुए, सद्यःसुवासित डेरों में प्रवेश करते थे, तब पर्वत की कंदराओं में प्रविष्ट होनेवाले सिंहों के समान लगते थे।

शूल और वराह-दंत के जैसे (तीक्ष्ण) दाँतोंवाले, रक्त-केशों से भरे अपने माथे पर, अनुपम (अतिरक्त वर्ण) इंगुलिक धारण किये हुए बड़े-बड़े हाथी, (अपने शरीर पर बँधी) विविध घंटियों को ध्वनित करते हुए जब तरंग-भरे प्रवाह को हिलोरने लगते थे, तब वे ऐसे लगते थे, जैसे मधु और कैटभ मनोहर नीलसमुद्र का आलोडन कर रहे हों।

काले-काले मत्तगज, उन्हें ठीक-ठीक मार्ग पर चलानेवालों (महावतों) के संकेतों को नहीं मानते थे और (अपने) दोनों ओर खड़े अपनी जातिवालों (हाथियों) के द्वारा बाहर निकलने के लिए प्रेरित किये जाने पर भी, बे-परवाही के साथ, जलाशयों में ही पड़े रहते थे। वे (हाथी) वेश्याओं के मेखलांचित जघन-तटों में ही मग्न उन (कामुक) जनों के जैसे थे, जो ठीक मार्ग पर चलनेवाले (गुरुजनों) के उपदेशों को नहीं मानते और समवयस्क साथियों के द्वारा (वेश्या-गृहों से) बाहर निकलने को प्रेरित किये जाने पर भी उसकी परवाह नहीं करते।

श्रेष्ठ वस्त्रों से भूषित कटिवाली रमणियों के साथ, पुरुष, पाकशालाओं से जलती हुई अगरु की लकड़ियाँ ले आते थे और आग जलाकर धुआँ उठाते थे, जिससे वे सूर्य के आतप को भी मंद कर देते थे; इस कारण से उनके ठहरने का वह पुरातन स्थान, गर्जन न करनेवाले मेघों से आवृत, विशाल समुद्र के जैसा ही था।

कंदरा-युक्त पर्वतों में निवास करनेवाले विद्याधर (उस सेना के नर-नारियों को) देखने के लिए आते और उनके सौंदर्य को देखकर यों आश्चर्य में पड़ जाते थे कि अपने साथी-संगियों को भी भूल जाते थे। इस प्रकार, सुन्दर राजकुमारों और तरुणियों के जमघट से वह सेना ऐसी लगती थी, मानों अमरलोक ही भूल से धरती पर उतर आया हो।

तरुणियाँ अपने स्थान पर आने के पूर्व ही (मार्ग की थकावट के कारण) लेटे हुए पुरुषों से रूठ जाती थीं। वह मान उनके सौंदर्य को बढ़ा देता था। तब वे कभी तोते से मधुर भाषण करने लगतीं, कभी अपने नूपुरों से मधुर नाद उत्पन्न करती हुई, धूप को भी लजानेवाली अपनी स्वर्णिम कांति को आगे-आगे फैलाती हुई चलने लगतीं, मानों मयूरों का झुंड ही विहार कर रहा हो।

कुछ वीर पुरुष जब अपनी भुजाओं के जैसे ही उन्नत उस (चन्द्रशैल) पर्वत के परिसरों को निहारते हुए भयंकर सिंहों के समान घूमते थे, तब उनके उभय पदों के वीर-वलय बज उठते थे, उनके पुष्पहारों पर के भ्रमर शब्द करते हुए उड़ जाते थे, उनके पार्श्व

में खड्ग चमक उठते थे और लाल रत्न जड़े हुए उनके अंगद रह-रहकर दीप्तिमान् हो उठते थे।

(धरती को चारों ओर से) घेरकर पड़े हुए समुद्र जैसे उज्ज्वल रत्न-भरित स्वर्णिम (मेरु) पर्वत को पकड़ने के लिए आ पहुँचे हों, उसी प्रकार वह सेना उमड़कर आई और उस पर्वत-प्रांत में ठहर गई। अब हम उस चन्द्रशैल के रूप का वर्णन करेंगे, जिसे राजागण, उनकी पत्नियाँ, राजकुमार और लता-समान कुमारियाँ—सब मिलकर देखने लगे थे।

दीर्घ दंतवाले गज, अपनी तालवृक्ष-सदृश सूँड़ों को बढ़ाकर, स्वर्गलोक में स्थित कांतिपूर्ण कल्पवृक्ष की ऊँची शाखाओं को, जिनपर अनेक भ्रमर संगीत गाते हुए नृत्य करते रहते थे, पत्तों सहित तोड़कर अपने प्राण-समान हथिनियों को दे देते थे।

प्रवाल-सम लाल मुँह, जिनसे राग विकसित होते थे, तथा शीतल कुवलय-पुष्प-समान नयनों से युक्त कुरिंजि-प्रदेश (पार्वत्य-प्रदेश) की सुन्दरियों को ऋतु-परिवर्त्तन की सूचना देनेवाले भ्रमर 'वेंगे' (नामक) वृक्ष के पुष्पों से अघाकर गगन के नक्षत्रों पर यह सोचकर लपक पड़ते थे कि ये भी नवमधु देनेवाले 'सुरपुन्ना' के फूल हैं।

'नक्षत्र' नामक हथिनी-सहित 'श्वेत चन्द्र' नामक हाथी अपनी दोनों कोटियों (धनुष की नोंक) रूपी सुन्दर वक्र दंतों से मधु-धाराएँ बहा देता था (अर्थात्, उस पर्वत के शहद के छत्तों में चन्द्र अपनी कोटियों को गड़ाकर उनसे मधु-धाराओं को बहा देता था)। वे धाराएँ नालों के रूप में बह चलती थीं। खेती करनेवाले किसान उन धाराओं का मार्ग बदलकर उनमें आकाशगंगा के जल को बहा देते और उससे धान के अपने खेतों को सींचते थे।

उस पर्वत को लाँघ न सकने के कारण उसकी तलहटी में ही अटककर रह जाने-वाले चन्द्रमा-रूपी मुकुर में एक ओर से (धरती पर रहनेवाली) पर्वत की स्त्रियाँ अपने शृङ्गार को प्रतिबिंबित देखती थीं, तो दूसरी ओर से (स्वर्गलोक में रहनेवाली) अप्सराएँ अपना सौंदर्य देखती थीं।

वहाँ के पर्वतीय पुरुष, अपनी उन सुन्दरियों के ललाट के साथ चन्द्रमा की तुलना करके देखते थे जिन (रमणियों) के नेत्र उस शूलायुध के समान थे, जो हवा निकालने-वाली भाथियों की धधकती आग में तपाये विना तथा धार पर विष और तेल चढ़ाये विना भी प्राण हर लेनेवाले थे।

(वहाँ के झोपड़ों के) आँगन में भयंकर सिंह-शावक सुन्दर हथिनियों के जाये हुए बच्चों के साथ खेलते रहते थे। वक्र बालचन्द्र भी उज्ज्वल ललाट-युक्त पर्वत-जाति की नारियों के बच्चों के साथ खेलता रहता था।

उस पर्वत के इन्द्रनील से भरे तटों पर तथा वहाँ के विद्याधरों के केश-भूषित सुन्दर शिरों पर, क्रमशः अंजन-पर्वततुल्य गजों को मारनेवाले कठोर सिंह के दृढ चरणों के (लाल) चिह्न तथा (विद्याधर) स्त्रियों के महावर-लगे कमल-चरणों के लगने से उत्पन्न आर्द्र चिह्न दिखाई दे रहे थे।

यहाँ की रमणियाँ इस प्रकार गाती थीं कि सुन्दर मीन जैसे उनके नयन कानों

को न छूकर स्थिर रह जाते थे। उनके दाँतों की चमक बाहर नहीं दिखाई देती थी। उनके दीर्घ केश बंधन से मुक्त होकर खिसक नहीं पड़ते थे। उनकी भौंहें टेढ़ी होकर नहीं मिलती थीं। अपनी पुष्प-कोमल हथेली और अपने स्वर को सँवारकर (वीणा के) तारों को मेड़ती हुई वे अमृत वर्षा-सी करती थीं। उनके उस संगीत को सुनकर किन्नर भी विस्मय-विमुग्ध हो जाते थे।

मधु बहानेवाले पुष्प-हारों से भूषित तथा कानों के साथ संबंध जोड़नेवाले करवाल-तुल्य नयन से युक्त तरुणियाँ जब स्फटिक-वेदिकाओं पर आसीन होती थीं, तब उन धवल शिलाओं से उत्पन्न जलधाराएँ उन तरुणियों के कुंकुम-लेप से मिलकर ऐसी लगती थीं, मानों असंख्य रत्नों के बने चषकों में मद्य भरा गया हो।

अपने पतियों के प्राणों को व्याकुल करती हुई, अंजन-युक्त अश्रु बहाती हुई, रूठ-कर आँखें लाल करती हुई देवस्त्रियों ने अपने केशों से मंदार-पुष्पमालाओं को निकालकर फेंक दिया था। वे अम्लान और मधु भरी मालाएँ उस पर्वत पर यत्र-तत्र शोभायमान थीं।

आम्रपल्लव के रंगवाली पहाड़ी स्त्रियाँ मुकुलित क्रमुक-पत्रों में पुष्पमालाएँ डालकर अपने केशों के साथ उनकी तुलना करके देखती थीं। आभरण-भूषित देवांगनाएँ अपने अग्नि-जैसे चमकते रत्न-खचित 'कटक' (नामक आभूषणों) को उतारकर 'काँदल' (नामक पौधे) के पुष्पों को पहना देती थीं और अपने करों के साथ उनकी तुलना करके देखती थीं।

तीर चढ़ाये हुए धनुष के जैसी स्पंदित भौंहों के साथ (वीणा) तंत्री से एकस्वर होकर मधुर गान करनेवाली तथा मयूरों के साथ नाचनेवाली देवस्त्रियाँ (अपने प्रियतमों से) मान करती हुई अपने रत्नहारों को उतारकर फेंक देती थीं। (उस पर्वत पर के) वानर उन हारों को उठाकर पहन लेते थे और वानरियाँ उन्हें देख-देखकर आनंदित होती थीं।

ऊँचे बढ़े हुए चंदनवृक्षों से युक्त सानु-प्रदेशों में स्थित गैरिक के लगने के कारण मनोहर दिखाई देनेवाली लोभ-भरी हथिनियाँ महावर लगाये हुए-सी दीखती थीं। (उस पर्वत पर के) उज्ज्वल पद्म-रागों की लाल कांति (किरणें) फैलने से वहाँ के आकाश पर सदा लाली छाई रहती थी।

पृथ्वी के अलंकरण के निमित्त किरण-पुंज-विशिष्ट मुक्ताओं को बिखेरती हुई, पार्वती के प्रियतम (शिवजी) के शिर पर जो गंगा उतरी थी, उसकी समानता करती हुई, अनन्त स्वर्ण को बहाती हुई, मोतियों के साथ आ गिरनेवाले निर्झरों की पंक्तियाँ (उस चंद्रशैल पर) ऐसी दृष्टिगत होती थीं, जैसे त्रिविक्रम के वक्ष पर उत्तरीय वस्त्र लहरा रहे हों।

'सुरपुन्ना' के पुष्पों के साथ लवंग-पुष्पों को भी सम्मिलित करके पहननेवाले तथा मत्त भ्रमरों को उड़ाकर शुद्ध मधु का पान करनेवाले (वहाँ ठहरे हुए) उन लोगों ने अश्व-मुखी देवताओं को देखा, जो किन्नर-मिथुनों के संगीत सुनकर अपना प्रणय-कलह त्याग देते थे।

उन लोगों ने देखा कि अत्यंत मुदित युवकों के सुन्दर वक्षों पर आघात करनेवाले स्तन-युगल जैसे अनुपम 'कोंगु' वृक्ष की कलियों के निकट ही, रमणियों की ही कटि के समान

के समान (पतली) शाखाएँ लचक रही हैं। उनमें भ्रमरियों और (उन लोगों के) केशों पर मंडराने की प्रकृतिवाले चंचरीक नव विवाह का संबंध जोड़ रहे हैं।

(उस पर्वत पर के) जलाशय को स्फटिक-मय स्थान समझकर, चूडामणि से सुशोभित, सुन्दर कमल तथा उज्ज्वल चंद्र जैसे वदनवाली (रमणियाँ) शीघ्रता से वहाँ चली जाती हैं और अपने उत्तरीय तथा कटि-वस्त्र को जल से भिगो लेती हैं। वह दृश्य देखकर वीर-वलयधारी युवक ताली बाजकर हँस पड़ते थे।

(उन लोगों ने) अनेक पुष्प शय्यायें देखीं। (बिखरी हुई) पुष्पमालाएँ देखीं। मनोहर बीरबहूटी-जैसी पान की पीक पड़ी देखी। प्राणों से भी अधिक प्यारे पतियों के विरह में मूर्च्छित विद्याधर-स्त्रियों के लेटने से झुलसी हुई पल्लवों की सेजें भी देखीं।

(उन्होंने देखा कि) देवनारियाँ सुगन्ध-भरे (पुष्पमय) झूलों पर झूल रही हैं। उन देवस्त्रियों के नीलकमल-जैसे नेत्र अत्यन्त चंचल हो घूम रहे हैं। उनके प्रवाल-जैसे मुँह पर मंद हास बिखर रहे हैं। उनके उभरे हुए पीन स्तनों पर अमूल्य रत्नहार डोल रहे हैं। मधुमत्त भ्रमर उनके केशों के मध्य शब्द करते हुए उड़ रहे हैं और उनके रत्न-खचित कर्णाभरण डोल रहे हैं।

अपनी लज्जा को धन के लिए बेचनेवाली, स्वर्ण-आभरण पहने हुई (बार) नारियाँ, जिस प्रकार किसी पुरुष की सारी संपत्ति अपहरण करने के पश्चात् उसे सारहीन समझकर तिरस्कृत कर दूर कर देती हैं, उसी प्रकार सुन्दरवदना नारियों के प्रवाल-अधरों के द्वारा, विविध मद्यों का पान किये जाने के उपरान्त, लुढ़काये हुए मधु-पात्रों को (उन लोगों ने) देखा।

रात्रि को दिन बनानेवाले प्रकाश से युक्त स्फटिक की शय्याओं पर, अति विशाल पुष्ट भुजाओंवाले देवगण जब धनुष को परास्त करनेवाली भृकुटि-युक्त अप्सराओं के साथ रति-क्रीडा करते थे, तब उपेक्षा से दूर फेंके गये कल्पक-पुष्पहारों और अन्य आभरणों को (उन लोगों ने) यत्र-तत्र पड़े देखा।

उस सेना की रमणियाँ कभी हथेली के-जैसे विकसित होनेवाले उत्पल की कली को देखकर उसे फनवाला सर्प समझ लेतीं और डर से अपनी शूल-जैसी आँखों को बंदकर लेती थीं। (कभी) चिकने हीरे-भरे पत्थरों में पुष्पों के प्रतिबिंबों को देखकर उन्हें वास्तविक पुष्प समझ लेतीं और अपने पतियों से उन पुष्पों (प्रतिबिंबों) को ला देने की प्रार्थना करती थीं।

कभी वे स्त्रियाँ अशोकवृक्ष के मनोहर पल्लवों को अपने नखों से नोचकर छोटे-छोटे टुकड़े बना डालतीं और उन्हें अपने स्तन-तटों पर चिपकातीं। कभी वे मधु-युक्त पुष्पों को चुनतीं, कभी कांतिमय रत्न-भरे उस पर्वत पर हंसों के समान विशाल झरने में गोते लगातीं।

[यहाँ से आगे नौ पद्यों तक मूल में यमक की अति सुन्दर छटा दिखाई गई है, अतः अर्थ की अपेक्षा शब्द-गुंफन पर कवि का अधिक ध्यान रहा है।]

उस पर्वत का मध्य भाग, जो आम के कोमल पल्लव के समान चमकता था, वह (वास्तव में) सोने का पत्र ही था। उसके (पर्वत के) दोनों पार्श्वों में हरिण, हाथी, सर्प आदि जन्तु तथा स्त्रियों के कंधों जैसे बाँस, पुन्नाग आदि के वृक्ष लगे थे।

अंधकार-सदृश वराहों के शरीर पर (वहाँ रहनेवाली रमणियों के द्वारा उत्पादित) जो कुंकुम-पंक लग जाता, उसे वे आम, चंदन आदि के पेड़ों पर रगड़कर हटा देते थे। देवस्त्रियाँ-जैसी मधुरभाषिणी उन रमणियों के कारण वह विशाल पर्वत-प्रदेश स्वर्ग के ही सदृश था।

वहाँ (चारे की खोज में) बड़े-बड़े सर्प संचरण करते थे, तो बड़े-बड़े बाँस जड़ से उखड़कर गिर पड़ते थे। वन्य-मृगों के भागने से धूलि उड़ने लगती थी। वहाँ के झरने मुक्ताओं को साथ लेकर बड़े शब्द करते हुए वह चलते थे।

प्रशस्त करवाल के-जैसे कठोर सिंहों की समानता करनेवाले (पुरुषों) की सुन्दर भुजाओं पर, उज्ज्वल तथा लाल रेखायुक्त रमणियों के आभरणालंकृत स्तन लगने से तथा उन स्तनों पर के अगरु-चंदन का लेप और मुक्ताहार लगने से (वे भुजाएँ) जिस प्रकार शोभित होती थीं, उसी प्रकार उस पर्वत-प्रदेश पर चंदन, कुंकुम आदि के वृक्ष शोभायमान थे।

घने अरण्य से आवृत उस पर्वत पर रहनेवाला केले का वन वहाँ संचरण करती हुई देवनारियों की ऊरुओं के सदृश था; वहाँ की (वन्य) स्त्रियाँ, किन्नरों की-सी मधुरनाद-युक्त वीणा का वादन करती थीं।

मत्तगजों के मदजल का प्रवाह बड़े वनस्पतियों को गिराता हुआ वह रहा था, जिसमें यत्र-तत्र स्थिर पड़े हुए वृक्ष दिखाई देते थे; दूसरी ओर पहाड़ी नदियों में जल पीने के लिए पहाड़ी बकरे तथा अन्य मृग चलते हुए दिखाई पड़ते थे।

बाघों के निवासभूत पर्वत-प्रदेशों में बड़े बड़े 'पटह'[1] यह सूचना देते हुए बज रहे थे कि अब पर्वतवासी काले रंग की नारियों के द्वारा कंद-मूल खोदकर निकालने का समय आ गया है।

बलिष्ठ गज जब उस पर्वत के जलाशय में डुबकी लगाते थे, तब (तट पर के) शीतल वटवृक्ष और सरोवर की कमललताएँ विध्वस्त हो जाती थीं; उग्र सिंह जहाँ टहलते रहते थे, ऐसे घने जंगलों से आवृत उस पर्वत पर देवबालाएँ आराम करती थीं तो भ्रमर उनके केशों में आनंद से बैठे रहते थे।

उस पर्वत के ऊपर मेघ-पंक्तियाँ आकर ठहरती थीं; निचले भाग में पुष्प-श्रेणियाँ भरी रहती थीं। वह पर्वत ऐसा था, जैसे विष्णु अपने हृदय पर लक्ष्मी को धारण किये हुए विराजमान हों।

पुष्पों पर मँडराते हुए मधु का पान करनेवाले भ्रमरों के समान ही, तरुण और तरुणियाँ घुल-मिलकर उस ऊँचे पर्वत के तट-प्रदेशों में क्रीडाएँ करते थे।

(वहाँ रहनेवाले नर-नारी) उस पर्वत से उतरकर नीचे आने का विचार भी इस-

---

१. पहाड़ी जाति के लोग कंद निकालने का मौसम आने पर चमड़े के विविध बाजों को बजाने लगते थे।

लिए नहीं करते थे कि उस विचार-मात्र से उन्हें अत्यन्त पीडा होती थी। जिस प्रकार अपवर्ग-लोक में पहुँचे हुए मुक्तजन उस लोक के सुखानुभव के अतिरिक्त अन्य कोई विचार नहीं रखते, उसी प्रकार वे लोग उस पर्वत के ही वैभव में लीन रहते थे।

मेघों का विश्राम-स्थान बना हुआ वह पर्वत हाथी के सदृश था। गगन पर संचरण करता हुआ उष्ण किरणवाला सूर्य उस हाथी पर आक्रमण करनेवाले सिंह के सदृश था। नभ, जो सूर्यास्त के समय की लालिमा से भर गया था, सिंह के आघात से बहनेवाले रक्त के सदृश था।

बड़ी-बड़ी शाखाओं से युक्त वहाँ के वृक्ष नभ-लालिमा के प्रकाश में ऐसे लगते थे, मानों वे नये पल्लवों के भार से लद गये हों। अपने ऊपर सर्वत्र उस लालिमा के पड़ने से वह पर्वत रत्नों के पहाड़ जैसा लगता था।

नेत्रों को रमणीय दीखनेवाले दृश्यों तथा असंख्य शिरों के कारण वह सुन्दर पर्वत मनोहर चन्दन-रस से लिप्त वक्षवाले श्यामल (विष्णु) भगवान् के सदृश था।

प्राण एवं शरीर के तुल्य परस्पर (प्रेम से भरे वे नर-नारी) गुंजार भरते हुए मँडरानेवाले मधुपायी भ्रमर कुल के साथ, उस उन्नत पर्वत के प्रांत में आ ठहरे, जैसे वे हाथी और हथिनी, सिंह और सिंहिनी, या हरिण और हरिणी ही हों।

गगन में संचरण करनेवाला, एकचक्रविशिष्ट रथवाला सूर्य-रूपी सिंह, जो तीक्ष्ण ताप-जनक दृष्टिवाला है, जिसके किरण-रूपी केसर हैं, जिनमें दूसरों के फेंके हुए तीर भी (छिपकर) खो जाते हैं तथा जो क्रोध से दूसरों का विनाश करनेवाला है—अब अस्ताचल में प्रविष्ट हुआ। उसके अस्त होने पर घना अंधकार, जो सिंह के डर से कहीं दूर छिपा हुआ था, हाथियों के झुण्ड के समान बाहर निकला और सर्वत्र फैल गया।

मंदार-पुष्प की सुगन्ध एवं मधु-भरी मालाओं से अलंकृत चक्रवर्त्ती (दशरथ) की सेना-वाहिनी रूपी गरजते हुए समुद्र में सर्वत्र दीपमालाएँ जल उठीं, मानों लाल कमल खिल उठे हों।

शीतलता-युक्त रमणीय समुद्र की झाग-भरी वीचियों में से निकला हुआ उज्ज्वल चन्द्रमा, नक्षत्रों से घिरा हुआ गगन में आकर चमकने लगा, मानों रुचिर चन्द्रिका के सदृश (उज्ज्वल) वालुका पर, कांतिमय मुक्ताओं के साथ धवल शंख संचरण कर रहा हो।

मत्स्यों की दुर्गन्धि से पूर्ण समुद्र ने एक धवल चन्द्रमा को पा लिया था, जिसे देखकर, ईर्ष्यावश, उस सेना-समुद्र ने भी देवनारी-सदृश अपनी तरुणियों के मुख-रूपी असंख्य चन्द्रमाओं से अपने को प्रकाशित कर लिया।

जहाँ-जहाँ नर्त्तकियाँ नर्त्तन कर रही थीं, वहाँ-वहाँ 'मार्जन' करने के कारण सुंदर हुए मद्दल (वाद्यों) का नाद, गायिकाओं का संगीत-नाद, संगीत के आलाप के अनुकूल बजनेवाली तंत्रियों का नाद, हाथों से ताल देने से उत्पन्न नाद, गाँठदार बाँसुरी का नाद—ये सभी नाद इस प्रकार उमड़ उठे कि स्वर्ग के निवासी भी आश्चर्य से चकित हो गये।

ठंडक के लिए रत्नाभरणों को हटाकर अपनी सखियों से प्रकाशमान मुक्ताहारों को लेकर अपने वक्ष पर पहननेवाली तथा अगरु-धूम से (पत्रभंगों को) सुखानेवाली (वहाँ

की रमणियाँ) शीतल मधु-भरी मल्लिका-मालाओं को हटाकर सुगंध-युक्त तथा घने दलोंवाले 'करुमुहै' (वृक्ष) के पुष्पहारों को पहनने लगीं।

(उस पर्वत में) नये-नये (पकड़कर) लाये गये हाथियों को बाँधनेवाले लोग जो गीत रचकर गाते थे, उनका शब्द कहीं सुनाई पड़ता था, कहीं मद्य पीकर मत्त हुए पुरुष अपनी प्रेयसियों के साथ जो प्रलाप कर रहे थे, उसका शब्द था, कहीं वेश्याओं की मेखला का शब्द था और कहीं मदोन्मत्त गजों के बेसुध हो चिंघाड़ने का शब्द हो रहा था।

रसना के द्वारा अपेय, अमृत-समान रतिशास्त्र के विषय का अनुभव करने, दुर्लभ अमृत-जैसी रमणियों के हृदय में उत्पन्न मान को दूर करने, राग-युक्त गीतों को श्रवण कर उनके भाव को नयनों के नृत्याभिनय में देखने आदि कार्यों में ही (उनलोगों की) वह रात्रि व्यतीत हुई। (१-७७)

●

अध्याय १५

पुष्प-चयन पटल

नक्षत्रों से पूर्ण रात्रि-रूपी खड्ग-दंतवाले हिरण्यकशिपु पर क्रोध करके, पुंजीभूत उष्ण किरण-रूपी सहस्र करों को बाहर निकाले हुए, अपने उदयस्थान भूतपर्वत-रूपी सोने के स्तम्भ से, उज्ज्वल सूर्य-रूपी नरसिंह[1] निकले।

नित्य कर्मों को पूरा करने के उपरांत, (दशरथ) चक्रवर्त्ती ने जब प्रस्थान किया, तब सभी राजा लोगों ने खड़े होकर नमस्कार किया। फिर, उनकी सेना-वाहिनी चलकर उस शोण नदी के निकट पहुँची, जिसके तटों के ऊँचे टीलों पर लहलहाते वन थे, टीलों के नीचे तलैयों में 'ककुनीर' (नामक लताएँ) फैली हुई थीं और जिसके घाटों में कमललताएँ फैली हुई थीं।

उस (शोण नदी के) स्थान पर पहुँचकर सारी सेना विश्राम करने को ठहर गई; (उधर) सूर्य भी गगन-मंडल के मध्य जा पहुँचा ; राजा और राजकुमार अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ, स्वच्छ जलाशयों से शोभायमान शीतल तथा सुगंधित उद्यान में, भ्रमरों के विश्राम भूत कोमल पुष्पों का चयन तथा जलविहार करने के लिए गये।

(उस उद्यान में, उन सुन्दरियों को देखकर) मयूर वहाँ से कदाचित् यह सोचकर दूर हट गये कि (वे सुन्दरियाँ) भ्रू-रूपी सुदृढ धनुष के द्वारा अरुण रेखाओं से युक्त काली आँखें-रूपी बाण चलाकर कहीं उन्हें आहत न कर दें। वे तरुणियाँ जब मंजुल नूपुरों को बजाती हुई डग भरती थीं, तब हंस (पुष्पों के मध्य) छिप जाते और गानेवाले भ्रमर (उन पुष्पों से) गुंजन करते हुए बाहर-उड़ जाते थे। ऐसा लगता था, मानों वे हंस (उन तरुणियों की पदगति से) लज्जित हो पलायन कर रहे हों।

---

१. इस पद्य में रात्रि को हिरण्यकशिपु और सूर्य को नरसिंह-रूप बतलाया गया है।

वे रमणियाँ अपनी सखियों के साथ मिलकर, अपने अंग लचकाकर नाचने लगीं, तो पीले सोने के बने 'शुरुल' (नामक कर्णाभरण) तथा भव्य 'कुलै' (नामक कर्णाभरण) एक साथ चमक उठे और (उनकी पुष्प-मालाओं में) बैठे हुए भ्रमर उड़कर गुजार भरने लगे।

उन (नाचनेवाली स्त्रियों) को देखकर सुगंधित पुष्प-मालाओं से शोभित वक्ष-वाले पुरुष उन लता-सदृश नारियों को पुष्पित लताओं से पृथक् नहीं पहचान पाते थे और भ्रांत होकर खड़े रह जाते थे।

रत्नों से खचित पीले स्वर्ण के आभरणों से अलंकृत विशाल जघन, संगीतमय भाषण, शीतल पुष्प-मधु से युक्त केश—इनके साथ जब वे रमणियाँ झुण्ड बाँधकर समीप आतीं, तो उनकी आहट सुनकर ही कोयलें अपना मुँह बंद कर लेतीं। वह उनके डर के कारण नहीं, किंतु लज्जा के कारण ही था। वाग्मी व्यक्तियों के सामने कौन मुँह खोल सकता है?

वे सुन्दरियाँ अपने उन नेत्रों से, जो विष से अधिक कठोर होने पर भी अमृत जैसे लगते थे, प्रेम के साथ देखकर और कमल-सदृश अपने करों से पकड़कर ऊँचे बढ़े हुए फूल के पौधों को जब झुकाने लगीं, तब वे पौधे उनके नूपुर-भूषित चरणों पर सुकुमार पुष्पों को बरसाते हुए झट झुक गये। यदि जड़ वृक्षों की यह दशा हो, तो अब कौन ऐसा (चेतन) व्यक्ति होगा, जो लतातुल्य सूक्ष्मकटिवाली (स्त्रियों) के निकट झुके बिना रह सके?

कमल-पुष्प पर आसीन (लक्ष्मी) देवी-जैसी उन (सुन्दरियों) के मनोहर कमल-सदृश करों से छुए जाने पर सुरभित पुष्पालंकृत केशवाले पुरुषों की पर्वत-समान भुजाएँ भी, जिनके बल से भयंकर सिंह भी डर जाते हैं, झुककर रह जाती हैं, तो क्या यह भी कहने योग्य कोई विशेष बात है कि विकसित सुमनवाले पौधे (उन सुन्दरियों के स्पर्श से) झुक जाते हैं?

मधुर नाद करनेवाले भ्रमरों ने देखा कि पुष्पलताएँ, नदियों या तालाबों में उत्पन्न न होनेवाले (उन रमणियों के) चन्द्रमुख-रूपी कमल-पुष्पों को कुवलय-पुष्पों के साथ खिलाये हुए खड़ी हैं, (अर्थात् वे स्त्रियाँ लतातुल्य हैं, उनके बदन कमल और नेत्र कुवलय हैं)। आश्चर्य में डूबे वे भ्रमर (उन मुख, कमलों पर) ऐसे मँडराने लगे कि उड़ाने पर भी नहीं उड़ते थे। जो नवीनता के प्रेमी होते हैं, वे नई वस्तु को देखने पर क्या उन्हें छोड़ देंगे?

कुछ लताएँ झुक-झुक जाती थीं, तो कुछ पुष्पित वृक्ष हाथ की पहुँच से भी ऊँचे होकर ऐसे खड़े रहते थे, जैसे रूठे हुए हों और झुकना नहीं चाहते हों। वह दृश्य ऐसा था, जैसे दृढ पर्वत-सदृश पुष्ट भुजाओंवाले उज्ज्वल शरीरवाले, विकसित पुष्पहार धारण करनेवाले पुरुषों के मध्य मयूर-सदृश कुछ (नारियाँ) खड़ी हों।

पुष्पों के चुन लिये जाने पर शोभाहीन होकर म्लान दिखाई पड़नेवाली (शाखाओं को) देखकर चित्र की प्रतिमा (जैसी वे रमणियाँ) सोचती थीं कि ये (शाखाएँ) हमारे पतियों की दृष्टि में सौंदर्यहीन लगेंगी, इसलिए वे अपने रत्नहार, मुक्तामाला, मेखला, कर्णाभरण आदि उतारकर उनको पहना देती थीं और उन शीतल तथा सुकुमार शाखाओं को प्यार-भरी दृष्टि से देखती रहती थीं।

घने पुष्पों में बैठकर मधु का पान करके संचरण करते रहनेवाले भ्रमर, अब सुगंधित पुष्प मालाओं तथा कलियों को भी उतार देनेवाली (स्त्रियों) के रीते (खाली) केशों में ही रमने लगे और अपने प्रेम के पात्र पुष्पों पर नहीं जाते। बड़े लोग उत्तम स्थान में ही सभी भोग्य विषयों का अनुभव करते हैं।

अपने शरीर-सौंदर्य के कारण, पुष्पासीन (लक्ष्मी) देवी का भी शृंगार बननेवाली (एक सुन्दरी), धवल स्फटिक-शिला में, कर में पुष्प लिये दिखाई पड़नेवाले अपने ही प्रतिबिंब को देखकर समझ बैठी कि यह कोई अन्य स्त्री है, जो मेरे पति की प्राण-समान प्रेयसी है। वह (अपने) दीर्घ नेत्रों से अश्रु बहाती हुई हाथ में पुष्प लिये वैसे ही खड़ी रह गई।[१]

मेघों से घिरे हुए चन्द्र के समान मुखवाली, अनुपम पुष्पलता-तुल्य (एक नारी) ने देखा कि एक राजा अपनी भुजा पर का पुष्पहार उतारकर मयूर-तुल्य किसी (नारी) को पहना रहा है, तब वह कंचुक के खुल जाने पर कटि को लचकानेवाले (भारी) स्तनों के अग्रभाग पर, शूल-जैसे नेत्रों से अश्रुवर्षा करती हुई[२] वहीं खड़ी रही।

एक प्रेमी राजा मयूर की-सी गति से आनेवाली अपनी प्रेयसी के मन की परीक्षा करने की इच्छा से उस सुन्दर उद्यान के एक माधवीलता-कुञ्ज में जा छिपा। अपने पति के साथ निरंतर रहनेवाली वह सुन्दरी, जो इसके पहले कभी उससे विलग न हुई थी, व्याकुल होकर भटकने लगी, मानों प्राणों की खोज में शरीर चक्कर लगा रहा हो।

एक नारी, जो घृतसिक्त शूल धारण करनेवाले (अपने) पति से मान करके, इस प्रकार हो गई थी कि उसकी काजल-अंकित काली आँखों में बहुत लाली उत्पन्न हो गई थी, अपने हाथ की पहुँच से ऊँचे रहनेवाले पुष्पों को देखकर एक कोयल से हाथ जोड़कर विनती करने लगी कि इन पुष्पों को मेरे लिए तोड़ दो। (मान के कारण पति से न कहकर कोयल से कहती है)।

ऊँचे नारियल के पेड़ पर लगे हुए फल को देखकर एक युवक ने कहा—'आह! ये (फल) तरुणियों के स्तनों[३] के समान हैं'। (यह सुनकर) एक मुग्धा, जो उसकी पत्नी थी, 'ये नारियल किस नारी के स्तनों के-जैसे हैं?' यह सोचती हुई क्रुद्ध हुई, सिसकियाँ लेने लगी और स्वेद-सिक्त होकर ठंडी आहें भरने लगी।

युद्ध का संदेश पाते ही फूल उठनेवाली पर्वत-जैसी बलिष्ठ तथा सुन्दर भुजाओं से युक्त मन्मथ-समान अपने पति को पुष्प तोड़ते हुए देखकर, जलद-सदृश केशवाली और

---

१. इसमें यह अर्थ ध्वनित होता है कि उस स्त्री का पति स्फटिक-शिला में उस नारी का प्रतिबिंब देखकर उसी को अपनी प्रेयसी समझ लेता है और उससे प्रेम करने लगता है। इसपर उसकी प्रेयसी उस प्रतिबिंब को अन्य नारी समझकर रुष्ट होती है।

२. यह विरहिणी नायिका है, अतः अपने-पति के स्मरण में अश्रु बहाती है।

३. 'तरुणियों के स्तन'—बहुवचन के प्रयोग से इस मुग्धा नायिका को संदेह हुआ कि उसका पति अन्य स्त्रियों से प्रेम करता है।

कोकिल-जैसी वचनवाली उस स्त्री ने निकट आकर उसकी आखें वँद की, तो उस (पुरुष) ने पूछा—'कौन है ?'[1] इसपर वह (नारी) अग्नि के जैसे निःश्वास भरने लगी।

एक राजा मधु-भरे नवविकसित पुष्पों को (अपने हाथ में) लिये हुए खड़ा था। तब अनेक नारियों ने पंक में अनुत्पन्न, सुगंधित रक्तकमल-जैसे, अपने करों को एक साथ (उन पुष्पों को लेने के लिए) आगे बढ़ाया, तब वह राजा उनके मध्य, याचकों को कुछ न देनेवाले और 'नाहीं' भी न कहनेवाले कठोर लोभी के समान ही खड़ा रहा। (एक को देने पर अन्य सुन्दरियाँ रूठ जायेंगी, इस आशंका में पड़ा हुआ वह खड़ा रहा।)

कज्जलांकित नयनोंवाली एक (रमणी) ने अपने सामने ही अपने प्राण-समान प्रभु को किसी दूसरी (स्त्री) का नाम लेते हुए पाया, तो उसने चुभनेवाले शूल जैसी (तीक्ष्ण) दृष्टि से उसकी ओर देखा और वास्तविक लज्जा के भार से दबी हुई, सिर झुकाये, रोती हुई, कोमल पुष्पों को हाथ में लेकर सूँघा, तो उसके निःश्वास के स्पर्श से (वे पुष्प) झुलस गये।

विजयशील रथवाला एक नरेश, जिसके सौंदर्य को देखकर उसकी कुलीन पत्नियों के मनोज्ञ कमलोपम वदन पर के काजल-लगे नयन मुग्ध हो जाते थे, इधर-उधर घूमता हुआ उस महामत्त गज के समान लगता था, जिसके मदजल पर आसक्त हो भ्रमर मँडरा रहे हों।

अनिन्दनीय रूप-युक्त एक नृपति ने, सन्ध्याकालीन उज्ज्वल अर्धचन्द्र के जैसे ललाटवाली (एक पत्नी) को तथा वंदनीय पातिव्रत्य-युक्त (दूसरी पत्नी) को (अपने लाये गये पुष्पों में से) आधा-आधा भाग बाँटकर दिया, तो वे दोनों उन सुकुमार पुष्पों को नीचे फेंककर, आँखें लाल करती हुई ऐसे लौट चलीं, जैसे कलाप-युक्त मयूर जा रहे हों।[2]

एक नारी उस उद्यान में, सर्वत्र मधु बहानेवाले सुगन्धित पुष्पों की खोज में इस प्रकार घूमती रही कि सहज गन्ध से युक्त अपने खुले हुए केशों की भी उसे सुध नहीं रही, अपने वस्त्रों का भी उसे ध्यान नहीं रहा, अपने मुक्ताहारों के टूट जाने से दूर-दूर तक बिखरते हुए मोतियों की भी परवाह नहीं रही। (लोग उसे देखकर सोचने लगे) यह अपने प्राणों को खोज रही है या और कोई वस्तु ढूँढ रही है ?

'याल्' (वीणा)-जैसी स्वरवाली तथा लक्ष्मी देवी-जैसी (एक नारी) अतुलनीय बलशाली (अपने पति) नरेश के (प्रेम की भिक्षा में) झुके खड़े रहने पर भी स्वयं झुकी नहीं (अर्थात्, द्रवित नहीं हुई); फिर उस राजा के निराश होकर चले जाने के पश्चात् वह द्रवितमन हुई। अब अत्यन्त व्याकुल हो गम्भीर चतुर विचार करती हुई पहले उस राजा के स्थान पर अपने तोते को भेजा और (उसकी खोज करने के बहाने से) उसके पीछे-पीछे स्वयं चल पड़ी।

सुन्दर पुष्प-माला से विभूषित वक्ष पर मन्मथ के पाँच वाण शत सहस्र होकर

---

१. यह ध्वनि है कि पुरुष के प्रश्न करने पर वह नारी यह आशंका कर उठी कि इसकी अन्य प्रेमिकाएँ भी हैं, इसीलिए वह मेरा कर-स्पर्श पहचान नहीं सका है।

२. यह अर्थ ध्वनित है कि दोनों पत्नियाँ अपने-अपने मन में अबतक यह सोचे हुए थीं कि नृपति उसी को अधिक चाहते हैं, किन्तु अब पुष्प बाँट देने से वह विचार गलत प्रमाणित हुआ, जिससे दोनों क्रुद्ध हो गईं और झमककर चली गईं।

गिरने लगे, जिससे एक नृपति का मन विचलित हो उठा। वह कर्त्तव्यविमूढ हो माधवी-लता से पूछने लगा कि क्या तुम मन्दार-पुष्प नहीं दे सकती हो ? (अर्थात्, उन्मत्त-सा प्रलाप करने लगा)। इस प्रकार, वह चन्दनांकित स्तनों एवं पुष्पालंकृत केशोंवाली (अपनी प्रेमिका) के लिए विकल हो खड़ा रहा।

एक सुन्दरी ने (अपने पति में) कोई अपराध जान-बूझकर ढूँढ़ निकाला, जिससे वह अशमनीय कोप से भर गई और मान करने लगी। जब उसके पति ने उसके मान को देख लिया, तब वह प्रकट आनन्दित हो उठी। वह वहाँ से दूर चली गई और सुगंधित पुष्पों को ढूँढ-ढूँढकर उनकी माला बनाकर पहन लिया; किन्तु मान की आशंका से (अपनी पति के वापस न आने के कारण) आईने में अपना सौन्दर्य देखकर दुःखी होने लगी।

एक विरहिणी कहने लगी—मैं ऐसा अलंकार नहीं कर सकी, जिसको देखने के लिए मेरा वह पति आ जाता, जिसके हाथ में यमराज को भोजन देनेवाला शूल रहता है। अब मैं इस शरीर के साथ जीवित नहीं रहना चाहती। इस उत्तम साज-शृंगार का क्या प्रयोजन है ? यह कहती हुई वह अपने आभरण इस प्रकार उतारने लगी, जैसे उन्हें गायिका को दे देना चाहती हो (अर्थात्, वह मरना चाहती है और अपने अमूल्य आभरणों को अपने प्रेमपात्र गायिका को दे देना चाहती हो)।

(किसी स्त्री का पालित तोता खो गया था) एक सुन्दरी समीपस्थ पुष्प-शाखा में छिपे हुए अपने तोते को पकड़ने के लिए द्रवणशील पीत स्वर्ण के चषक को (तोते के लिए कुछ भोजन उसमें रखकर) हाथ में लिये इस प्रकार बल खाती हुई चलने लगी कि कंचुक-बन्धन में न समाते हुए, उभड़नेवाले स्तनों का भार वहन करने की शक्ति न होने से उसकी सूक्ष्म कटि लचक-लचक जाती हो।

एक सुन्दरी ने राजहंसिनी को देखा, उसकी पदगति को देखा और उसे बन्धु के समान ही अपने समीप आते हुए देखा। उसने सोचा कि यह मित्रता करने के लिए ही आ रही है, यह मेरी सखी हो सकती है। (फिर उसका सम्बोधन करके) कहा—तुम्हें देखने वाले हसेंगे, (क्योंकि तुम वस्त्रहीन हो) यह उचित नहीं, तुम यह वस्त्र पहन लो,—यह कहकर वह उस हंसिनी को वस्त्र देने लगी।

चाशनी-जैसी मधुर वचनवाली, झीने वस्त्र धारण किये रहनेवाली एक नारी (झीने पट से) अपने विशाल जघन-तट को देखकर यह सोचने लगी कि यह नाचते हुए सर्प के फन जैसा है और फिर वहीं फिरनेवाले मयूर को देखकर डर गई ; (क्योंकि मयूर सर्प पर झपटेगा)। वह झट पुष्प-शाखाओं के मध्य जा छिपी और (लज्जा के कारण) पुष्पित शाखा-सदृश अपने हाथों से नेत्र बन्द किये शिथिल खड़ी रही।

अपना उपमान न रखनेवाली एक सुन्दरी अपनी सखी से यह कहकर कि 'हे स्वर्ण-तुल्य मधु-समान लक्ष्मी-सदृश सुन्दरी, मुझे पहचानो' —उस उद्यान में चयन करने योग्य पुष्पभार से लदे एक कुंज के मध्य छिपी रही, (सखी जब उसे पहचान न सकी[1] तब) 'अब

१. वह सुन्दरी पुष्पित लताओं से इतना सादृश्य रखती थी कि उस लताकुंज में छिपी रहने पर उसे पहचान न सकी।

तो तुम मुझे देख लोगी'—कहती हुई उसके सुन्दर नीलकुवलय-जैसे नयनों को अपने हाथों से वन्द करके हँस पड़ी।

एक उत्तम (नृपति) धनुष की डोरी को अंगुस्ताने पर लगाये हुए दूसरे बलिष्ठ कर में एक रमणीय कोमल कमल-पुष्प लिये हुए केश-रूपी अन्धकार से घिरे नारियों के मुख रूपी कमल-वन के मध्य अरुण किरण-युक्त सूर्य के समान घूम रहा था।

खेतों के पुष्ट, स्वच्छ रस से भरे इक्षु-रूपी लाल धनुष को हाथ में रखनेवाले मन्मथ भी जिनसे लज्जित होता था, ऐसे सुन्दर पुरुष अपनी मुग्धा पत्नियों के मीठे तथा प्रीतिजनक दिव्य गानों का ऐसे ही विवेचन कर रहे थे, जैसे वे शास्त्रों का विवेचन कर रहे हों।

धनुष पर चढ़ाने योग्य यष्टि (तीर) हाथ में लिये हुए मन्मथ-रूपी ग्वाला जब उद्यानों के भ्रमरों के नाद की मधुर वेणु बजाकर संकेत देने लगा, तब जैसे संध्याकाल में गायों के झुण्ड के मध्य बड़े-बड़े वृषभ चलते हैं, उसी प्रकार नीलकमल-जैसे काजल-लगे नेत्रोंवाली नारियों के घेरे में राजा लोग चलने लगे।

मन में (तपस्या के लिए) उत्साह से भरे हुए मुनियों के द्वारा यह वचन प्रसिद्ध हुआ है कि 'यदि हमें वचना चाहिए, तो मन्मथ के हाथ के धनुष से'— किन्तु (सच्ची बात यह है कि) पुष्प-लताओं से पुष्प चुननेवाली (एक नारी की) भौंह का एक कोना-मात्र (उन मुनियों के धैर्य को हिला देने के लिए) पर्याप्त है। (अर्थात्, मन्मथ के धनुष से भी अधिक कठोर स्त्रियों के भौंह-कमान हैं।)

पुष्प-गंध से सुवासित केश और रमणीय ललाटवाली एक (सुन्दरी) कदंब-वृक्ष पर (पुष्प चुनने के लिए) चढ़े हुए (अपने) पति के मन में जा चढ़ी (अर्थात्, उसके मन में जाकर बैठ गई)। (उत्तरोत्तर) विकसित होनेवाले ज्ञान से जो महान हुए हैं, वे भी क्या पीन स्तनोंवाली नारियों पर विजय पा सकते हैं? (अर्थात्, उन्हें नहीं भूल सकते।)

पुष्प-शाखा पर चढ़ा हुआ एक (पुरुष), देवताओं के लिए भी जिसका रूप चित्रित करना संभव नहीं था, ऐसी रूपवती (अपनी पत्नी) के सौन्दर्य में ही डूबा रहा तथा उसी पर अपने नयन गड़ाये रहा और पुष्पों के बदले कलियों और पल्लवों को तोड़-तोड़कर उसे देने लगा।

अनुपम मुद्‌गर-जैसी भुजाओंवाला एक पुरुष, भ्रमरों से अलंकृत केशोंवाली (अपनी पत्नी) का वदन देखकर, उसके बिंब-समान मुँह के स्पंदन के द्वारा ही यह संकेत पाकर कि उस (नारी) के मन में कोप बसा है, अपने मन में व्याकुल हो उठा।

इस प्रकार, वे नर-नारी विशुद्ध तथा शीतल छाया देनेवाले उद्यान के पुष्पपुंज का चयन करते-करते ऊब गये और फिर धवल वीचियों से भरे निर्मल जल में क्रीडा करने की कामना रखते हुए (जलक्रीडा के लिए) उद्यत हुए। (१–३६)



अध्याय १६

जलक्रीडा पटल

वे उत्तम नर और अप्सरा-सदृश नारियाँ उस पुष्पोद्यान से निकलकर, शोभायमान पुष्पों से युक्त जलाशयों की ओर ऐसे चले आये, जैसे वन्य गज हथनियों के साथ चलते हैं। तब निर्मल स्वर्ग के निवासी देवता भी उन्हें देखकर लज्जित हो गये और भ्रमर गुंजार भरते हुए वहाँ से उड़ चले।

उनके जलक्रीडा करने का वह दृश्य ऐसा था, जैसे पुराने काल में गंगा से अलंकृत जटावाले (शिव) के सदृश महान् तपस्वी (दुर्वासा) के शाप से देवेन्द्र का ऐश्वर्य अप्सराओं के साथ, उमड़ते हुए क्षीरसमुद्र में जा डूबा हो।[1]

काले रंग से युक्त कुवलय-पुष्प उन नारियों के नेत्र-पुष्पों के समान खिले थे, (तो) उन अलंकृत रूपवति (नारियों) के नयन (उन) विकसित कुवलय के जैसे ही शोभित थे। रक्त कमल (उन) रमणियों के वदनों के जैसे ही खिले थे (तो) उन रमणियों के वदन (उन) रक्त कमल पुष्पों जैसे ही सुशोभित थे।

(वे रमणियाँ कैसी थीं ?) कुछ रमणियाँ नालयुक्त कमल पर आसीन (लक्ष्मी-देवी) के सदृश (अपने पतियों के) वक्षों का गाढालिंगन करनेवाली थीं, तो कुछ (अपने पतियों के) कंधों का सहारा लिये हुए, विजयलक्ष्मी के सदृश दृष्टिगत होती थीं, कुछ जल को यों फैलाकर उछालती थीं कि वह ताड़ के पत्ते जैसा फैल जाता था, तो कुछ रमणियाँ पोठी मछलियों के उछलने पर भीत हो (अपने) पुरुषों का आलिंगन कर लेती थीं।

भ्रमरों को आकृष्ट करनेवाली सुगंधि से भरे सुगंध-चूर्ण को तथा सुगंधित तैल से युक्त कस्तूरी को वे एक दूसरे पर छिड़कती थीं। कुछ एक दूसरे पर पुष्प-मालाएँ फेंकती थीं और कुछ निर्मल जल को बिम्ब-समान मुँह में भरकर अपने प्रेमियों पर फेंकती थीं और कुछ पुंडरीक-समान करों को जोड़कर उसमें पानी भरकर दूसरों पर फेंकती थीं।

बिजली-समान कटि तथा चिकने बाँस-जैसे कंधोंवाली (कुछ नारियाँ) (जल में डुबकी लगाकर ऊपर उठने पर) अपने वदन को ढँकनेवाले पुष्पों-भरे केशों को हटाती हुई हंसों को अपने साथ क्रीडा करने के लिए बुलाती थीं। कुछ रमणियाँ ऐसी थीं, जो स्वर्ण-समान स्तनों पर (जल के) पुष्पों का स्पर्श होने से तड़प उठती थीं।

प्रवाल, बिंबफल तथा कमल की समानता करनेवाले संगीत के अभ्यस्त रमणीय मुँह तथा नीलकमल-जैसे मनोहर नयनों से युक्त कटिहीन रमणियाँ (जल के) भीतर रहनेवाले 'कयल' मीनों को देखकर अपने पतियों से पूछती थीं कि 'क्या जलधाराओं के भी नयन होते हैं ?'

भ्रमरों के आनन्द के कारण, मधुपूर्ण पुष्पों से शोभित घने केशोंवाली, अप्सरा-समान एक तरुणी, अपने रूप को तालाब (के जल) में प्रतिबिंबित देखकर यह सोचने लगी

१. देखिए मिथिला-दृश्य पटल।

कि यह सुन्दर ललाटवाली (कोई अन्य नारी है, जो) मेरे हँसने पर हँसती है, अतः मेरी यह सखी है, फिर आनन्द से अपने निर्दोष स्तनों का हार उतारकर उस प्रतिबिंब को देने लगी।

भ्रमरों से घिरे पुष्प-हारों से शोभित रमणियाँ (अपने) प्रियतमों की वज्र-सदृश दृढ भुजाओं का आलिंगन करने की इच्छा से जलाशय के तट की ओर चलने लगीं, तो वे गगनोन्नत पर्वतों पर रहनेवाले सुकुमार मयूरों के समान लगती थीं। उनके कर्णाभरणों की कांति छिटक रही थी और श्रेष्ठ मुक्ताओं का हार (उनके ऊपर) प्रकाशमान था।

न जाने, उस जलक्रीडा के समय (पति के द्वारा) क्या अपराध हुआ, जिससे लाल रेखाओं से युक्त 'कयल' मीन जैसी आँखोंवाली एक सुन्दरी अपनी आँखें (और भी) लाल करती हुई, क्रोध से जाकर कमलवन के भीतर छिप रही और उसका पति यह नहीं पहचान सकने के कारण कि कौन पंकज है और कौन उसकी पत्नी का मुख है, संदेह-ग्रस्त हो खड़ा रहा।

जब-जब वे सुन्दरियाँ जल में डुबकी लगाकर ऊपर उठती थीं, तब-तब (उनके) पल्लव-समान हाथों के स्वर्ण-कंकण और शंख-वलय भ्रमर के साथ बोल उठते थे। उनके भारी नितंबों पर से अनेक लड़ियों की मेखलाएँ खिसक जातीं और उनके छोटे पैरों से उलझ जाती थीं; तब वे रमणियाँ यह सोचकर कि पैरों से साँप ही लिपट गये हैं, डर से थरथरा उठतीं।

वहाँ वर्त्तुल अंगदों से भूषित विशाल भुजाओं से शोभायमान, पुष्पमालाधारी एक नृपति जल में मग्न हो क्रीडा करनेवाली नारियों के दल से घिरा हुआ इस प्रकार खड़ा था, जिस प्रकार मंदरपर्वत (क्षीर सागर के) मंथन के समय समुद्र से, अमृत के साथ उत्पन्न देवनारियों से घिरा हुआ खड़ा हो।

'तोड़ि' (नामक कंकणों) से शोभित कमल-समान लाल-लाल कर, स्वच्छ हास-युक्त अरुण मुँह तथा लता-समान कटि-सहित सुन्दरियों के मध्य एक राजा इस प्रकार खड़ा था, जिस प्रकार सुगंधित कमल-भरे किनारोंवाले वन-सरोवर में हथिनियों से घिरा हुआ कोई मत्तगज खड़ा हो।

अरण्य के मयूरों के गर्व को भी मिटानेवाले सौंदर्य से युक्त तथा निरन्तर बरसने-वाले मेघ की समानता करनेवाले दीर्घ केशों से विभूषित रमणियों के मध्य एक राजा इस प्रकार खड़ा था, जिस प्रकार आकाशगंगा के मध्य अनेक स्थानों में चमकते हुए नक्षत्रों से घिरा हुआ उज्ज्वल किरणोंवाला चन्द्रमा खड़ा हो।

इक्षु का धनुष रखनेवाला बलिष्ठ भुजाशाली (मन्मथ) को (सौंदर्य) गुण के अतिरिक्त बाण भी देनेवाले दीर्घ नयनों से विभूषित एक मुग्धा, सखियों के द्वारा अलंकृत होकर, नारियों के मध्य इस प्रकार शोभायमान थी, जिस प्रकार विविध जलज-पुष्पों से प्रकाशित सरोवर में शतदल पुष्प (कमल) शोभित हो।

'ये दृढ तथा कठोर शूल हैं, नहीं, ये तो चमकते हुए करवाल हैं'— यों कहने योग्य वदन पर संचरमाण (विशाल) नयनों से शोभायमान एक रमणी मयूर-जैसी सखियों

से घिरी हुई इस प्रकार खड़ी थी, जिस प्रकार पल्लवों तथा पुष्पों के साथ बढ़नेवाली लताओं से घिरी हुई, सागर से उत्पन्न कोमल पुष्पवाली कल्पलता हो।

रथ से लिये हुए (अंग-जैसे) जघनवाली, नारिकेल-वृक्ष से लिये हुए (फल जैसे) स्तनोंवाली, अन्यत्र कहीं प्राप्त न होनेवाले सौन्दर्य से युक्त एक सुन्दरी, जल में मग्न होकर इस प्रकार ऊपर उठी कि कंचुक में बँधे हुए उसके स्तन बाहर दिखाई देने लगे। तब उसका वदन निर्मल जल में दृश्यमान चन्द्र के प्रतिबिंब के सदृश शोभित हुआ।

पर्वतों को परास्त करनेवाली भारी भुजाएँ, वस्त्र के अन्दर न समानेवाले विशाल जघन, घटों के समान स्तन—ये सब परस्पर धक्का देते हुए संघर्ष-से करने लगे, जिससे (उस सरोवर का) जल तटों को पारकर फैल गया।

लाल अधर श्वेत हो गये, नेत्र लाल हो गये, शरीर का अंगराग गलित हो गया, (कटि में बँधा) वस्त्र खिसक गया। कुंकुमराग से लिप्त भारी स्तनोंवाली रमणियाँ उस जलाशय में इस प्रकार मग्न होने लगीं कि उस समय वह जलाशय भी प्रेम के साथ आलिंगित होनेवाले उनके पति के समान दीखता था।

'विशुद्ध ज्ञानवान् व्यक्ति के साथ सहवास करनेवाले (साधारण) नर भी ज्ञान प्राप्त करते हैं', यह कथन ठीक ही है; उसी प्रकार (उस जलाशय के) मीन भी मधु, कस्तूरी, शालवृक्ष का धुआँ, अगरु लकड़ी का धुआँ—इनकी गंध से सुवासित हो उठे थे। (उपर्युक्त कथन के लिए) इससे बढ़कर अब और क्या उदाहरण आवश्यक है?

बड़े राजाओं की देह से प्राप्त चन्दन-लेप, क्रीडा में निरत रमणियों से प्राप्त कुँकुम-राग—इनसे भर जाने से वह मनोहर जलाशय ऐसा दिखाई पड़ता था, जैसे कोई नील मेघ आकाश की लालिमा से रँग गया हो।

शरीर पर के अगरु, चन्दन आदि से बने अंगराग के धुल जाने से चाशनी-जैसी मीठी बोली तथा बिम्ब-जैसे लाल अधर से शोभित वे सुन्दरियाँ सान पर चढ़ाये गये रत्न के समान चमक उठीं।

झपटनेवाले सिंह के समान एक वीर की स्वच्छ स्वर्णाभरण-भूषित भुजाओं पर आर्द्रचन्दन से लिखा गया चित्र जल का प्रवाह लगने से घुल गया। उसे देखकर एक तन्वी के लाल रेखाओं से अंकित काले नेत्र लाल हो उठे।

काम-वेदना से जली हुई तथा नितंब-भार से युक्त एक रमणी के देह ताप से तप्त होकर, मकरंद-पूर्ण, नवविकसित तथा मधुस्रावी केशरवाले पुष्पों से युक्त वह तरंगायमान शीतल जलाशय भी उष्ण हो उठा।

अनुपम पुष्पों से अलंकृत भुजाओंवाले एक नरेश ने (अंजलि में) जल उठाकर एक रमणी के तैलाक्त केशों पर चढ़ाया, जैसे रक्तपंकज पर आसीन लक्ष्मी को श्रेष्ठगज अपने हाथ (सूँड़) से जल-स्नान करा रहा हो।

तरुण हंस कमल-पुष्पों पर बैठे थे। वे ऐसे लगते थे, मानों यह सोचकर कि ये कमल हमारी चंचल गति को परास्त करनेवाली (सुन्दरियों) के मृदुल पदों की समानता कर रहे हैं, क्रोध प्रकट करते हुए उन पुष्पों को (अपने पैरों से) रौंद रहे हों।

चन्दन के धुल जाने पर नख-क्षतों के चिह्नों-सहित दृष्टिगत होनेवाले (उन रमणियों के) स्तन, सुन्दर धागों में लिपटे स्वर्णकलश-जैसे थे। उन कलशों को देखकर कितने पुरुषों के चित्त जल उठे—मैं क्या कहूँ ?

चक्रधारी एक नरेश ने अपने दीर्घ घने दलवाले कमल-जैसे हस्त से (कुछ संकेत) प्रकट किया, उसको देखकर 'वीलि' (नामक लाल) फल के समान अधरवाली एक तन्वी ने अपनी सखी के कटाक्ष के द्वारा ही उसका उत्तर दिलाया।

लहरों के आगे ढकेले जाने और उथल-पुथल होने से निर्मल जल में रक्त पंकज डूब-डूब जाते थे, मानों वे कमल चितकबरे हरिण की समानता करनेवाली उन (सुन्दरियों) के वदन की सदृशता न कर सकने के कारण ही लज्जित हो अपने को (जल में) छिपा रहे हों।

उपर्युक्त ढंग से जलक्रीडा करने के पश्चात् वीर-वलयधारी पुरुष तथा स्त्रियाँ उस जलाशय से निकलकर, उसको शोभाहीन बनाते हुए किनारे पर आ गईं और योग्य वस्त्रों तथा आभरणों को पहना।

जलक्रीडा के बाद (उनके बाहर) निकल आने से, वह जलाशय उस आकाश के सदृश दीखने लगा, जिसमें से तैरते हुए चन्द्र और नक्षत्र अदृश्य हो गये हों, या अबतक उसमें जो कमल-पुष्प (सुन्दरियों के वदन आदि) विकसित थे, वे अब उससे दूर हट गये हों।

हरिण-सदृश नयनोंवाली (रमणियों) ने पुरुषों-सहित जो जलक्रीडा की थी, उसको देखता हुआ उष्णकिरण (सूर्य) मीनों से पूर्ण समुद्र में समा गया, मानो वह स्वयं भी वैसा ही जलविहार करना चाहता हो।

अपनी निर्बलता के कारण हारकर भी फिर अपने शत्रु पर चढ़ आनेवाले राजा के जैसे ही, सर्वत्र रमणियों के वदनों से पराजित हुआ चन्द्रमा, फिर प्रकट हुआ। (१-३३)



अध्याय १७

मद्यपान पटल

सर्वत्र शीतल ज्योत्स्ना इस प्रकार फैल गई, मानो वह श्वेत रंग के मद्य की बाढ़ हो, या संगीत ही साकार होकर जगत् में फैल गया हो, या (प्राणियों के) हृदय की कामना बहिर्गत हो गई हो।

सम्मिलित रहनेवाले लोगों (स्त्री-पुरुषों) के लिए सुखदायक मद्य बनकर वियोग का दुःख भोगनेवालों के लिए प्राण-पीडक विष बनकर तथा प्रणय-कलह में क्रुद्ध व्यक्तियों के लिए सहायक दूत बनकर, वह समृद्ध ज्योत्स्ना मन्मथ की प्रार्थना से सर्वत्र फैलने लगी।

(उस चाँदनी में) सब नदियाँ गंगा नदी के समान दृष्टिगत होती थीं, सब समुद्र

विख्यात क्षीरसमुद्र से लगते थे, सब पर्वत अनंत भगवान् (शिव) के पर्वत (कैलास) के समान दीखते थे ; उस चाँदनी के प्रसार के बारे में हम और क्या कहें ?

सभी निर्मल दिशाएँ तथा उनमें रहनेवाले सब चेतन-अचेतन पदार्थ उस चंद्रिका की बाढ़ में श्वेत हो गये थे, मानों समुद्र से घिरी यह धरती, वज्र-सदृश करवाल-युक्त मकर-केतन (मन्मथ) के (जन्मदिवस के सूचक) श्वेतवस्त्र को धारण किये हुए शोभित हो रही हो।

सब रमणियाँ, उज्ज्वल तारकों के सदृश मुक्ताओं (के बने चँदोवे) की छाया में, संचरमाण मेघों के विश्रामस्थान बने हुए उद्यान-रूपी जवनिकांतर में, सरोवरों के समान चमकते हुए स्फटिकों से प्रकाशमान काननों में और शोभायमान पुष्प-कुंजों में जा पहुँचीं।

पुष्पों से सुरभित कुंतलवाली (रमणियाँ) पुष्पों की शय्याओं के (रति) समर में आनन्द पाने का विचार करती हुई मनोहर स्वर्ण-चषकों में ढाले गये अमृत-सदृश मद्य का पान करने लगीं।

नक्षत्रों से शोभित गगन पर विहार करनेवाली (अप्सराएँ) तथा विद्याधर सुदरियाँ भी जिनकी सुन्दरता की समता नहीं कर सकतीं, वैसी (सुन्दर) शरीरवाली तथा हरिणों को परास्त करनेवाले नयनों से युक्त वे (रमणियाँ) अपने मुख से मद्य को इस प्रकार पीने लगीं, मानों भ्रमरों से घिरे पुष्प में मधु ढाला जा रहा हो।

वह चषक, जो बिखरे हुए दूध के जैसे चन्द्र-किरणों से अंकित था, (किसी रमणी के) कर की मनोहर अरुण कांति के पड़ने से लाल दिखाई पड़ने लगा है। उस अनुपम सुंदरी के मुख में गिरा हुआ मद्य अमृत बनकर चमक उठा (अर्थात्, उसके श्वेत दाँतों की छाया से मद्य भी श्वेत हो उठा), तब उसकी अंजन-लगी आँखें भी लाल हो गईं।

पुष्पमाला, 'पुनहु' (एक सुगन्धित द्रव्य), शीतल अगरु का धूम, इनसे सुवासित कुंतलवाली (रमणियाँ), जिस श्वेत मद्य का पान करती थीं, वह (मद्य) अग्निकुण्ड में डाले गये होमघृत के समान अंतर में स्थित कामाग्नि को भड़काकर बाहर प्रकट कर देता था।

कांतिपूर्ण ललाटवाली एक (सुन्दरी) स्वर्ण के बने शीतल सुगंधित मद्य-भरे चषक में अपने भव्य प्रतिबिंब को देखकर (यह समझकर कि कोई अन्य नारी मद्यपान कर रही है) कह उठी—'हे सखी, मेरे साथ तुम भी आनन्द से मद्यपान करो।' विष समान दीर्घ नयन तथा सुधा-समान मधुरवाणी युक्त (तरुणियों) के अज्ञान-सदृश अज्ञान भी क्या कहीं हो सकता है ?

(यह टूट न जाये) ऐसा डर उत्पन्न करनेवाली सूक्ष्मकटि-युक्त अप्सरा-समान कोई (सुन्दरी) अलकभार, विषाक्त शूल-सदृश काले नयन, रक्त मुख—इनसे सुशोभित हँसता हुआ अपना वदन मद्य में (प्रतिबिंबित) देखकर (यह समझकर कि यह कोई अन्य नारी है) कह उठी कि 'हे पगली, तू ने यह क्या काम किया ? यहाँ (सुराही में) अधिक मात्रा में मद्य के रहते हुए भी तू व्यर्थ ही जूठन का पान करती है' और अपने दंत-रूपी कुंद-कलियों को प्रकट करती हुई हँस पड़ी।

अनुपम रूपवती, अन्यादृश (विचित्र) कठोरता रखनेवाले तथा हत्यारे शूल की समानता करनेवाले नयनों से युक्त (एक रमणी) रत्नमय मधुपात्र में श्वेत ज्योत्स्ना पड़ने

से उसे मधु से भरा हुआ समझकर उठाकर पीने लगी, तो आसपास के सब लोग उसका उपहास करते हुए हँस पड़े ; वह (बेचारी) अपने मन में बहुत लज्जित हुई।

किंशुक पुष्प-समान मुखवाली एक (तरुणी), जिसका मृदु वचन ऐसा था कि उसे सुनकर लोग कहते थे कि 'वीणा तथा वेणु को नाद-माधुरी देनेवाली इसकी ही बोली है,' नालसहित नीलकुवलय [1] को भीतर रखनेवाले सुगंधित मद्य-भरे पात्र में, अपने करवाल-तुल्य नयनों का प्रतिबिंब देखा और भ्रमर की भ्रांति से उस (प्रतिबिंब) को उड़ाने लगी।

वहाँ सोने का कर्णभूषण पहनी हुई, एक (तरुणी) ने मद्य में दिखाई देनेवाले सुन्दर चन्द्र-प्रतिबिंब को अपने नयनों को संतृप्ति देती हुई देखा और उसे समझाकर मधुर वचन कहने लगी—'(हे चन्द्र !) तू आकाश के राहु नामक सर्प से डरकर यहाँ (इस मद्य पात्र में) आ छिपा है, मैंने तुझे अभय प्रदान किया, तू डर मत।'

नदी-धारा की भौंरी एक ही स्थान पर स्थिर खड़ी रह गई है, ऐसा अनुमान उत्पन्न करनेवाली नाभि से शोभित एक (तरुणी) ने रक्त-मधु की वर्षा करनेवाले पुष्पों के चँदोवे को चीरकर नीचे झरनेवाली घनी ज्योत्स्ना को देखा और (मद्यपान से) ज्ञानभ्रष्ट हो जाने के कारण अथवा स्त्री-सहज अबोधता के कारण उसे मद्य समझकर पात्र में भरने का प्रयत्न करने लगी।

बिजली के समान लचकती हुई कटिवाली एक (सुन्दरी) की उज्ज्वल अमृत-तुल्य मधुर वाणी बीच में ही (पूर्ण हुए बिना ही) स्खलित हो जाती थी। वह (नारी) अपने जघन पर की मेखला को हटाकर उसके स्थान में पुष्पहारों को पहनने लगी और स्वर्ण-हार को केशों में धारण करने लगी। (ये सब मद्यपान से मत्त व्यक्ति के कार्य हैं।)

एक (रमणी) ने मद्य-भरे रत्नखचित चषक में हास्ययुक्त अपने वदन (के प्रतिबिंब) को देखकर यह सोचा कि गगन पर का चन्द्र मधु की कामना से (उस पात्र में) उतर आया है ; वह उस (प्रतिबिंब) से कहने लगी—'हृदय को आनन्द देनेवाले अपने पति के साथ जब मैं मान करूँगी, तब तुम यदि मुझे जलाओगे नहीं, किंतु शीतल ही बने रहोगे, तो मैं यह मद्य तुमको पीने के लिए दूँगी।'

तिल-पुष्प सदृश सुन्दर नासिकावाली, आभूषण पहनी हुई एक रमणी नशे के कारण यह भी न जान सकी कि हाथ के काँप उठने से मद्य आसन पर गिर गया है और यह सोच कर कि अभी पात्र में मद्य है उसे हाथ से उठाकर अपने पद्मराग तुल्य अधर से लगा लिया।

झुण्डों में मँडराते हुए भ्रमर आकाश में ऐसे फैले हुए थे, जैसे किसी बड़े लोभी की संपत्ति की कामना करते हुए याचक आ जुटे हों। एक सुन्दरी, मधुस्रावी कमल-समान अपने अरुण मुँह को खोलकर मद्य पीने से डरती थी (इसलिए कि कहीं भ्रमर मुँह में न घुस जायँ), अतः चषक में कमल के खोखले नाल को रखकर उसके द्वारा मद्य (चूसकर) पीने लगी।

एक (रमणी), जिसकी आँखें चर्मकोष से तत्क्षण निकाले गये खड्ग के समान चमक उठती थीं और जिनको देखकर जलपक्षियों से भरे कमल तडाग में रहनेवाले मीन

१. कहा जाता है कि मद्य में सुगंध उत्पन्न करने के लिए कुवलय, कमल आदि पुष्पों को डाला जाता था।

भी व्याकुल हो भाग खड़े होते थे, जो मधु से पूर्ण पुष्पों से अलंकृत कोमल कुंतलवाली और मयूर-तुल्य थी, इसलिए मद्यपान नहीं करती थी कि उसके हृदय में निवास करनेवाला प्रेमी मद्यसेवी नहीं था।

एक नारी; क्रोध का अभिनय दिखानेवाले व्यक्ति के सामान ही यम-समान नेत्रों को लाल किये, ललाट पर टेढ़ी भौहों को चढ़ाये, चमकते दाँतों को कटकटाती हुई मनोहर पल्लवों को परास्त करनेवाले अपने करतलों से ताली बजाती थी।

एक रमणी, काँपते हुए अतिरक्त अधर-बिंब को श्वेत ज्योत्स्ना पर क्रोध करनेवाले अपने दाँतों से दबाये हुए, बहुत पैने और खून में लथपथ शूल-जैसी आँखों से घूर रही थी। उसकी देह से जो स्वेद बह चला, वह (शरीर से) बाहर उमड़ते हुए मद्य के समान ही दीखता था।

किसी नारी के बिंबफल-सदृश उभड़े अधर से प्रकट होनेवाली लाली आँखो में जा चढ़ी। वह सोचती कुछ थी और कहती कुछ। उसके अनुपम कमल-तुल्य वदन पर भ्रू-रूपी धनुष झुक गये। ललाट-रूपी चन्द्र भी ओस बरसाने लगा।

(किसी के) सेमल के फूल-जैसे अधर की लाली छूट रही थी, दाँतों से मधुर-रस (लार) बह रहा था, स्तन-कुंचक का बंधन और नीवी-बंधन ढीले पड़ रहे थे, लहराते हुए केशपाश छूटकर लटक रहे थे। उसके वदन से हास उत्पन्न हो रहा था। पति-समागम और मद्यपान—दोंनों एक ही जैसे (लक्षणवाले) होते हैं।

'मुखर नूपुरवाले मन्मथ से मैं जो पीडित हूँ, इसे उस (मेरे प्रियतम) को बताओ,' यों कहकर अपनी सखी को प्रियतम के पास भेजती हुई रत्न-खचित मेखलावाली एक (रमणी) ने फिर प्रश्न किया—'हे सखी, क्या तुम भी मेरे मन के जैसे ही (प्रियतम के पास) रह जाओगी या (शीघ्र समाचार लेकर) लौट आओगी?'

हरिण को भी मुग्ध करनेवाले नयनोंवाली एक (रमणी) ने, किसी एक बलशाली नरेश के निकट, अपने अनुकूल रहनेवाली सभी सखियों को, एक के पीछे एक को भेज दिया। फिर स्वयं ही अकेली उस (प्रियतम) के पास चल पड़ी।

सुगन्धित पुष्प-शय्या की परतों पर, सीमा-रहित प्रेम-समुद्र में डूबी हुई, मधु-भाषिणी एक (रमणी) ने अपने पति के सब नाम बतानेवाले तोते को बहुत आनंदित होकर अंक में भर लिया।

उज्ज्वल ललाटवाली एक (रमणी) सुगंधित स्थान में रहती हुई, अपने संगी तोते को अंक में लिये कह रही थी कि मेरे प्राण-सम (पति) को तू आज नहीं ला सका, फिर तू मेरी क्या सहायता कर सकता है? मेरे लिए तू क्रौंच पक्षी के समान (दुःख को बढ़ानेवाला) हो गया है, और वह क्रुद्ध होकर रो पड़ी।

प्रियतम ने उसकी सौत का नाम लेकर उसका संबोधन किया, तो स्वर्ण-कंकण-धारिणी मयूर-सदृश एक (रमणी), अंकुर-सम दाँतों को प्रकट करती हुई हँस पड़ी और 'कयल' मीन-जैसे उसके नयनों से अश्रुधारा बह चली।

एक पुरुष ने अपने पूर्व अपराध के कारण मान किये बैठी हुई अपनी प्रेयसी का

मान दूर करने की इच्छा से उस (रमणी) की, नितंबों पर फैली हुई मेखला को पकड़ा, तब स्वर्णवलय-भूषित उस (स्त्री) के नयनों में न समाकर मोती (जैसे आँसू) झर पड़े और टूट-कर बिखरे हुए मेखला के रत्नों के पास धरती पर जा गिरे ।

पुष्प-भार से विकसित कुंतलवाली (एक रमणी) अपने मन में विविध प्रकार विचार करती हुई बैठी रही कि प्रियतम से साक्षात् होते ही उससे मान करूँ या प्राणों को गलानेवाली विरह-पीडा को दूर करती हुई उससे मिलन का आनन्द उठाऊँ अथवा उसके गुणों का वीणा पर गान करूँ ।

एक (रमणी) जो अपनी सखियों पर अपने (पति के साथ हुए) मान को वचनों के द्वारा नहीं प्रकट कर सकी, (किन्तु उन्हें मान की बात जताकर प्रियतम के साथ संधि करा लेना चाहती थी) मकरवीणा पर, विकसित कमल-समान अपने कर को लाल बनाती हुई फेरने लगी और अपने मन की बातें संगीत के द्वारा प्रकट करने लगी ।

पुष्पित शाखा समान एक सुन्दरी (अपने पति के न आने से) मिलनसूचक रेखाएँ खींचने लगी, किन्तु उन रेखाओं के अपने अनुकूल फल न दिखाने से निःश्वास भरने लगी।[1] अनंग के अमोघ बाण से आहत होकर वह इस प्रकार पीडित हुई कि देखनेवाले 'इसके प्राण हैं या नहीं'—यह संदेह प्रकट करने लगे ।

कंदुक को शोभा देनेवाली अँगुलियों से युक्त एक (रमणी) ने विरह से उद्विग्न होकर अपने सुन्दर (प्रियतम) के पास दूत भेजा। जब वह (प्रियतम) आ पहुँचा, तब उस सुन्दरी के नेत्र लाल हो गये और उसने कपाट बन्द करके मार्ग रोक दिया। न जाने उस सुन्दरी के मन में क्या विचार था ?

एक तरुणी, जो पुष्प-शय्या पर (मान किये हुए सोई-सी पड़ी थी) यह चाहने लगी कि अब मान छोड़ दे; किंतु उसकी इच्छा को, उसका पति (जो उसके मान से व्याकुल हो मौन पड़ा था) नहीं समझ सका। तब उस सुन्दरी ने एक झूठी अँगड़ाई लेकर अपने हाथ-पैर फैलाती हुई यह प्रश्न किया कि कितनी घटिकाएँ बीत गई हैं ?

एक (सुन्दरी) उतावली हो उठी और महावर लगे पाँव से (अपने पति पर) आघात किया, तो उस (पति) के रोमांच हो आया, मानों (आनन्द के) नीर से सिक्त शरीर-रूपी उद्यान में रोपे गये प्रेम-बीज अंकुरित हुए हों।

शत्रु-नरेशों को सतानेवाले करवाल का धनी एक वीर, रमणी (अपनी पत्नी) के स्तनों को अपनी प्रकृति के विरुद्ध कृश[2] हुए देखकर मन में उमंग से भर गया और आनन्द के कारण आपे से बाहर हो गया। उसका मुख चमक उठा और उसकी भुजाएँ फूल उठीं।

एक अतिसुन्दर पुरुष ने देखा कि उसकी प्रेयसी पुष्प-शय्या पर पड़ी है, जो मन्मथ

---

१. विरहिणी नायिका आँखें बन्द करके बालू पर वर्त्तुल रेखा खींचती है, यदि उस रेखा के दोनों सिरे मिल जायें, तो यह मानती कि प्रियतम का मिलन होगा ; नहीं मिलें, तो उसे अपशकुन मान लेती है !

२. यह ध्वनित होता है कि उसके वियोग के कारण ही उसकी प्रेयसी के स्तन कृश हो गये थे। अपने प्रति गाढ प्रेम की यह सूचना पाकर वह वीर अति हर्षित हुआ। —अनु०

के बाणों से सर्वत्र आवृत-सी है और शय्या पर बिछाये गये पल्लव झुलस गये हैं।[1] यह देखकर उसका चित्त विभ्रांत हो गया।

एक युवती के स्तन, जो पोते हुए चंदन-लेप को भी तपाकर सुखा देनेवाली उष्णता से भरे थे, ऐसे लगते थे, मानों करवाल का व्यवसाय (युद्ध) करनेवाले किसी कुमार को लक्ष्य करके, 'तुम देश की रक्षा करो' कहकर बड़ों ने उसके अभिषेकार्थ (स्वर्ण के) जल-कलश रख दिये हों।

एक सुन्दरी ने; जो अपने प्राण-समान नायक के पास स्वयं अभिसार करना चाहती थी, मुखरित मंजीर, विस्तृत मेखला तथा हीरे के बने हुए श्रेष्ठ आभरणों को उतार दिया और अपराधी चन्द्र की ओर झुलसानेवाली दृष्टि से देखा।[2]

उद्यान की कोयल-जैसी एक सुन्दरी ने कोल्हू में पड़े हुए मृदु गन्ने के समान (काम-व्याधि से पीडित) एक पुरुष को पुष्प के हार से बाँध दिया था, उस पुरुष की वज्र-सदृश भुजाएँ उस बंधन को तोड़ नहीं सकीं। इस पुष्पहार की भी शक्ति कैसी थी ?

घने कुंतलोंवाली एक (सुन्दरी) ने अपनी विरह-पीडा को जताने के लिए (चित्र में स्थित) मन्मथ को देखकर फिर एक (सखी) नारी की ओर देखा। उस (सखी) ने भी उस सुन्दरी का मनोभाव समझकर, मधुस्रावी पुष्पहार धारण करनेवाले (पुरुष) के घर की ओर देखा।[3]

एक शूलधारी (तथा शत्रुओं के प्रति) क्रोधी राजा के पास, स्वर्ण का कर्णभूषण पहने हुई मयूर-सदृश एक नारी त्वरित गति से जाने लगी। उसे (इस प्रकार आने के लिए) निमंत्रण देनेवाला दूत कौन था ? मन को द्रवित करनेवाला मद्य था ? रात्रि-काल था ? अथवा मन्मथ ही था ? विदित नहीं है।

पूर्ण प्रेम के सामने परास्त हो मान करनेवाली अर्धचन्द्र-सदृश ललाटवाली एक (सुन्दरी) ज्योंही मेघ-सदृश अपने नयनों से अश्रु बहाने लगी, त्योंही प्रियतम ने आकर पूछा कि तुम्हें क्या हुआ है ? तुरंत ही वह हँस उठी और मान को छोड़ बैठी।

झुठलानेवाली कटि-युक्त (अति सूक्ष्म कटिवाली) एक सुन्दरी ने मन से अपने प्रियतम को न हटाती हुई भी आलिंगन-बद्ध हाथों को हटा दिया। यह विचित्र कार्य पुरुष को हृदय में लगे शर के समान दुःखदायक था।

एक कोमलांगी अपने प्रेमपात्र सखी का हाथ अपने हाथ में लिये हुए यह कहना चाहती थी कि तुम (मेरे प्रियतम के पास) दूत बनकर (सन्देश ले) जाओ; किन्तु लज्जा की अधिकता के कारण दीर्घ समय तक मौन रहकर सिसकियाँ भरती खड़ी रही।

---

१. उसके विरह में तपती हुई नायिका के शीतोपचार के लिए बिछाये गये पल्लवों की यह दशा थी। इससे नायिका का प्रेमाधिक्य व्यंजित है।

२. यह ध्वनित है कि औरों से छिपकर अभिसार करने की इच्छा से शब्द करनेवाले आभरणों को दूर कर दिया और प्रकाश करनेवाले चन्द्रमा को भी कांतिहीन कर देना चाहा, जिससे सर्वत्र अंधकार हो जाय।

३. नायिका का यह संकेत है कि वह मन्मथ के बाणों से पीडित है और सखी उसको बचावे। सखी का संकेत है कि वह उसके प्रियतम को ले आयेगी।

उत्तरोत्तर उमड़ते हुए प्रेमवाली एक (सुन्दरी) अपने प्राण-समान प्रियतम के व्यापारों के बारे में, सुरभित पुष्पहार धारण करनेवाली एक अन्य स्त्री से कहना चाहती थी, किन्तु लज्जा के कारण वैसा न करके कुछ असंबद्ध वचन कहकर रह गई।

प्रेमी और प्रेयसी परस्पर इस प्रकार गाढ आलिंगन में बँध गये। (यह दृश्य) ऐसा लगता था कि इनके मन एक ही प्रकृति के हैं, प्राण भी एक ही हैं, परस्पर का प्रेम भी एक समान है ; अब इनके शरीर भी एक होकर रह गये।

बाँस के जैसे कंधोंवाली एक (रमणी) का मन, उसके प्रभु के सामने आकर उपस्थित होते ही आगे बढ़कर उसके पास पहुँच गया, किन्तु वह अपने चन्द्र-वदन को झुकाये खड़ी रही। उसका वैसा मुँह झुका लेना, उस पुरुष के लिए नया था, अतः उसके मन में कुछ आशंका उत्पन्न हुई।[1]

वंकिम ललाटवाली एक (तरुणी) मान करने का आनन्द उठाना चाहती थी, (किन्तु पहले अपने पति से रूठकर उसके चले जाने के पश्चात्) वियोग से व्याकुल हो उठी। (प्रियतम को लाने जाकर भी) उस प्रियतम को लिये बिना ही अकेली लौटी हुई सखी, मधुर मंदानिल तथा रजनी-वेला के जैसे ही उसकी माता की समानता करने लगी। (अर्थात् वह सखी, नायिका को मंदानिल, रात्रि तथा माता के समान धिक्कारने लगी।)

(अपने प्रियतम पर) दृढ प्रेमवाली एक (बाला) ने अपने पति के निकट भेजी गई दूती के साथ ही अपनी प्रज्ञा को भी भेज दिया और टकटकी लगाये देखती खड़ी रही और (दूसरों की) कही बात को भी समझ नहीं सकी। वह इस प्रकार थी, मानों संध्या के समय किसी देवता का उसपर आवेश हो गया हो।

(एक रमणी) अपने प्रियतम को भूल नहीं पाती थी। उसके आगमन की प्रतीक्षा करती हुई, पुष्पित शाखा-सदृश उस बाला के मन की यह दशा हुई, मानों जन्म के साथ-साथ मृत्यु भी आ गई हो। (अर्थात्, उसके मन में आनन्द और दुःख दोनों के भाव आते-जाते रहते थे।) एक क्षण के लिए वह अपने घर से बाहर निकल आती और दूसरे ही क्षण घर के भीतर चली जाती, जैसे बादल के बीच में बिजली चमक-चमककर छिप जाती हो।

(एक तरुणी) वर्णन के लिए दुष्कर स्तनों पर मन्मथ के शरों के लगने से उत्पन्न तीक्ष्ण व्रणों पर वलय-भूषित हस्त रखकर दबाती, रोती, हँसती और अपने दुःख बताती हुई किसी नारी के पास जाकर उससे दूती बनने की प्रार्थना करने लगती।

एक नारी, यह सोचकर कि जो लोग हृदय में उत्पन्न हुई पीडा (विरह-दुःख) की तथा उसके अभावों को पहले से जानते हैं और उन्हें शब्दों में बताना आवश्यक नहीं है, शरीर से स्वेद बहाने लगी, मन में उद्विग्न हो उठी, म्लान हुई और (शय्या पर) लुढ़क गई ; फिर अपनी सखी की ओर निहारने लगी।

स्तनवती तरुणियों की अपेक्षा तीनगुणा अधिक आनन्दित हो, मन्मथ उन स्थानों

---

१ इसका तात्पर्य यह है—नायिका के मन में मान उत्पन्न हुआ है, इस विचार से नायक आशंकित हुआ है।

में विचरन करने लगा। कदाचित् उसने भी, चोर के जैसे उन नर-नारियों के मन में घुसकर उनके पिये हुए मद्य का पान किया होगा।

मधु-गंध से भरे विस्पंदित पुष्प-हारों से अलंकृत शिखावाले युवकों ने रति-कला-चतुर तरुणियों के वस्त्रों को उतारकर फेंक दिया। फिर, भरे हुए विशाल जघन की मेखला को भी अनादर के साथ दूर उठाकर फेंक दिया। जब अप्रकटनीय रहस्य-कृत्य होते हैं, तब पटहवाद्य[1] के जैसे वाचाल लोगों को साथ रखना उचित नहीं।

स्वर्ण की मनोहर मेखला तथा वस्त्र इन दोनों बाह्य वस्तुओं को (किसी स्त्री ने) हटा दिया, इसमें आश्चर्य की क्या बात है? क्योंकि सुन्दर ललाटवाली उस (तरुणी) ने अपने अन्तरंग में स्थित लज्जा को भी दूर कर दिया था। अनिर्वचनीय वैराग्य से युक्त दृढचित्त (संन्यासी) के समान ही अपने (अहं) को दूर करने की प्रवृत्ति काम में भी होती है न ?

अनुपम मन्मथ-समान एक पुरुष तथा पुष्प पर आसीन लक्ष्मी के उपमान बनने योग्य एक तरुणी—दोनों अनंग-समर में किसी से कोई हारनेवाले नहीं थे। जब उन दोनों के प्राण एक हैं और भाव (प्रज्ञा) भी एक है, तब कौन किसको जीते ?

(प्राण) हरण करनेवाले, युद्ध में प्रयुक्त होनेवाले खड्ग-समान नयनोंवाली एक प्रगल्भा ने, कार्त्तिकेय के समान अपने सुन्दर पति को, घने पुष्पहारों से भूषित वक्ष को, अपने कर-कमलों से ढकते हुए देखा और क्रुद्ध होकर कह उठी—तुम अपने मन में स्थित प्राण-समान अपनी (एक दूसरी) प्रियतमा पर पदाघात होने की आशंका से कपट करते हुए अपनी छाती को ढक रहे हो।

दूध के स्वाद और प्रवाल के रंग से युक्त अधर, उभरे हुए उरोज, परस्पर समवृत्त कंधे, शूल-सदृश नेत्र—इनसे शोभायमान एक मृदंगी ने, समुद्र के जैसे प्रेम से भरे चित्त तथा मेघ-सदृश दीर्घ बाहुवाले एक युवक को ऐसा प्रेम-सुख दिया, मानों वह कोई अप्सरा ही हो।

किसी पर्वतोद्यान के मयूर की समानता करनेवाली एक (रमणी) अपने प्रियतम के (पहले कभी कहे हुए) झूठे वचनों को स्मरण कर मान करने लगी, किन्तु उसके उस मान के साथ प्रेम का जो युद्ध हुआ, उसमें प्रेम ही विजयी हुआ।

एक प्रमदा ने, जिसके नेत्र हत्या के ही स्वरूप थे और जिसका नितंब मेखला के घेरे को भी भेदकर निकल पड़ता था, अपने प्रियतम का गाढ आलिंगन करके उसकी पीठ की ओर यह सोचती हुई देखा कि कदाचित् उसके स्तन, पर्वत को परास्त करनेवाले पति के दृढ वक्ष को भी चीरकर बाहर न निकल आये हों।

युवतियों के नव आनन्द को युवकजन अनुभव करने लगे, कुंकुम-लेप झर पड़े, कुंतल-बंध खिसक पड़े, शंख-वलय बज उठे, मेखलाएँ (या नीवी-बंधन) ढीले पड़ गये, नूपुर बहुत अधिक कोलाहल मचाने लगे।

---

१. पटहवाद्य = एक प्रकार का ढोल।

प्रेम ने दुःखदायक मान को इस प्रकार हटा दिया, जिस प्रकार किरण-युक्त सूर्य ओस को हटा देता है। तब आभरण-भूषित मयूर की छटावाली एक (तरुणी) ने उतावलेपन के साथ निद्रा का बहाना करती हुई स्वप्न के व्याज से अपने पति का आलिंगन कर लिया।

वर्त्तुल, कान्तिपूर्ण मुखवाली एक मयूर (-समान स्त्री) तथा उसके पुरुष—दोनों ने, परस्पर समीप आने पर एक दूसरे को आलिंगन पाश में बाँध लिया। फिर एकीभूत शरीरों को अलग न जानने के कारण उन्होंने एक दूसरे को छोड़ा नहीं। उधर रजनी-वेला जो बीत गई, उसे भी पहचाना नहीं।

अपूर्व उमंग से भरे मत्तगज-सदृश पुरुषों तथा काले कुतलोंवाली रमणियों के उस समर में वह रात उसी प्रकार कट गई, जिस प्रकार परस्पर संघट्टमान पीन स्तन-युग का भार न सहन कर कटि कट जाति है (क्षीण हो जाती है)।

पुण्य-कर्म पूरा न करनेवाले व्यक्तियों की मध्यकाल में प्राप्त संपत्ति के समान ही चन्द्र अस्त हुआ। विशाल वीचियों से पूर्ण नील समुद्र में सूर्य उसी प्रकार प्रज्ज्वलित हो उदित हुआ, जिस प्रकार परम पुरुष (नारायण) के वक्ष पर प्रकाशमान (कौस्तुभ) रत्न हो।
(१–६७)



अध्याय १८

अग्रयान (अगवानी) पटल

महाराज दशरथ—जो अनुचित मार्गों का कभी अवलम्बन न करनेवाले, अपूर्व वेदों में प्रतिपादित नीति का कभी त्याग न करनेवाले, सच्चरित्र, उत्कृष्ट ज्ञानी, उत्तम शासक, श्वेत छत्र से युक्त तथा राजाओं के अधिराज थे—अपनी उस (सेना) वाहिनी के साथ गंगा नदी के किनारे जा पहुँचे, जिसमें मुखपट्ट-सहित हाथी के समान पर्वतों से निकलनेवाली, तथा वर्षाकालीन प्रवाह की जैसी बहनेवाली मद-जल की नदियाँ जाकर गिरती रहती हैं।

जब बाण आदि आयुधों-सहित उस सेना-वाहिनी ने अधिक मात्रा में जल का पान किया, तब उस गंगा नदी का—जिसकी रेत इतनी स्वच्छ थी कि फटी हुई जीभवाले नागों का लोक (पाताल) भी दृष्टिगत होता था—जल बहुत कम हो गया। उस समय लवण-समुद्र भी उस (गंगा के) स्वच्छ जल की प्यास से व्याकुल हो उठा। (अर्थात्, सेना के पीने पर गंगा इतनी कृश हो गई कि समुद्र तक उसकी धारा न पहुँच सकी। इसलिए समुद्र उसकी प्यास से व्याकुल हो गया।)

विस्तृत पृथ्वी के शासक (दशरथ) उस स्थान से चलकर विशाल खेतों से घिरी हुई और अत्यन्त जल की समृद्धि से युक्त मिथिला नामक नगरी के निकट जा पहुँचे। उस समय खूब फाँदनेवाले घोड़ों की सेना तथा शीतल करुणा से युक्त, स्तम्भ-समान अतिदृढ भुजावाले (राजा) ने जो किया, उसका वर्णन आगे करेंगे।

'(दशरथ) महाराज आ पहुँचे हैं'— यह समाचार पाकर मन में उमड़ती उमंग के साथ, आलान-स्तम्भों को तोड़ देनेवाले मत्तगज, रथ, लगाम-लगे घोड़े—इनके समुद्र से घिरे हुए (जनक) महाराज, देवेन्द्र के वैभववाले दशरथ की अगवानी करने के लिए उठ आये, जैसे चन्द्रमा सूर्य के निकट आ रहा हो !

गंगाजल से सिक्त (कोशल) देश के अधिप (दशरथ) की सेनाएँ (मिथिला नगरी के पास) इस प्रकार आ पहुँची, जिस प्रकार अन्य सब समुद्र, अपने-अपने शंखों के घोष करते हुए (क्षीर सागर के पास) आ पहुँचे हों। उस समय, उत्तम कन्या (सीता) को (अपनी पुत्री के रूप में) पाये हुए (जनक) महाराज की समृद्ध नगरी (की प्रजा) इस प्रकार स्वागत के लिए आई, मानों पंकज पर आसीन लक्ष्मी को जन्म देनेवाला क्षीर-समुद्र (अन्य समुद्रों का स्वागत करने के लिए) आया हो।

मकर-मीनों से भरे हुए सात संख्यावाले विशाल महासमुद्र (सातों समुद्र) यदि अनन्त महागजों, रथों, घोड़ों तथा पदातियों का रूप लेकर संसार-भर में उमड़ते हुए फैलें, तो वे (आम के) पत्ते-जैसे शूल को धारण करनेवाले (दशरथ) की सेना का उपमान हो सकते हैं।

झालरों से अलंकृत श्वेत छत्रों तथा मयूर-पंखों के घने गुच्छों से आकाश ढक गया ; उससे सूर्य का प्रकाश छिप गया और अंधेरा छा गया। वह सेना कमल-पुष्पों के अरुण वर्ण तथा श्वेत वर्ण से युक्त सरोवर के ही समान दीखती थी।

कमलवासिनी लक्ष्मी, प्रख्यात तथा तंद्राहीन शासक (दशरथ) की ध्वजा में स्थित है या उनके अनुपम श्वेत छत्र में ; उनके परम्परा में स्थित है या समुद्र के जैसे विस्तृत उस सेना के मध्य में ; उनके वक्ष पर स्थित है या उनके ऊँचे किरीट में—वह कहाँ स्थित है, हम यह पहचान नहीं पा रहे हैं।

(उस सेना में होनेवाले) सप्तस्वरों का नाद, कंचुकाबद्ध उभरे स्तनोंवाली नारियों के केशों में स्थित भ्रमरों के नाद के सदृश था। रथों का शब्द, श्वेत तरंगों से भरे समुद्रों के गर्जन के समान था। भयंकर हाथियों का गर्जन, वर्षाकालिक मेघों के गर्जन के समान था।

(उस सेना के चलने से उठी हुई) धूल इस प्रकार फैली कि चारों ओर फैले हुए समुद्र को पाटकर टीले बनाती हुई, ऊपर के सात लोकों में भी भर गई। इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? लोकों को नापते समय चक्रधारी के चरण से अन्तरिक्ष में जो छेद हो गया था, उसी छेद के द्वारा धूल ऊपर के सात लोकों में ही क्या, ब्रह्मांड के परे भी तो पहुँच गई।

(उस सेना के) दीर्घ छत्रों के सटे रहने से आकाश ढक गया और उनकी छाया से अँधेरा फैल गया ; किन्तु उसे दूर करना भी सुलभ ही था। (क्योंकि) उन पृथ्वी-वासियों के सुन्दर रत्नखचित स्वर्णाभरण बिजली की कान्ति बिखेरते थे, इन्द्र-धनुष की कान्ति बिखेरते थे, सूर्यातप की कान्ति बिखेरते थे और चन्द्रिका की कान्ति भी बिखेरते थे।

निष्कलंक राजाधिराज (दशरथ) के आगमन पर उनका स्वागत करने के लिए बलशाली तथा चतुर धनुर्धर जनक महाराज आगे बढ़े। उनके मार्ग में जो धूल उड़ी,

वह लोगों से बिखेरे जानेवाले सुगन्ध-चूर्ण, (आभरणों से गिरी हुई) स्वर्ण-रज तथा पुष्पों के मकरंद की ही धूल थी।

(राजा जनक के) मार्ग में स्थान-स्थान पर जो कीचड़ फैला था, वह वास्तव में सुगंधित मधु (जो नर-नारियों के धारण किये पुष्पों से बहा था), कस्तूरी (जो रमणियों के केशों से गिरी थी), सुवासित केसर-पुष्प तथा अगरु-काष्ठ को मिलाकर बनाया गया लेप, कस्तूरी तथा अन्य सुगन्ध-द्रव्यों से संयुक्त चन्दन आदि के मिलने से ही उत्पन्न हुआ था।

(राजा जनक के) उस मार्ग में जो छाया पड़ रही थी, वह जयसूचक ध्वजाओं तथा ऊँचे वितानों से संयुक्त श्वेत छत्रों की ही छाया थी, जिसपर सुवासित मनोहर कुंतलवती नारियों के रत्नखचित स्वर्णाभरणों की उज्ज्वल कान्ति भी छिटककर अपूर्व रमणीयता उत्पन्न कर रही थी।

सामने से आती हुई अनुपम बलशाली (दशरथ) की बड़ी सेना के साथ, अधिकाधिक बढ़ते हुए आनन्द से युक्त (जनक) की सेना जा मिली। उस समय ऐसा बड़ा (आनन्द) घोष उठा, जैसा अनन्त गर्जन से भरे तरंगित समुद्र में नदी के गिरने से उत्पन्न होता है।

आलान-स्तम्भों को भी तोड़ देनेवाले हाथियों की सेनायुक्त जनक, उमंग से प्रेरित होकर अवर्णनीय सद्‌गुणशाली तथा प्रजा के लिए पिता समान उस चक्रवर्त्ती (दशरथ) के सम्मुख अपने उदार मन की समता करनेवाले बड़े रथ में आ पहुँचे।

(दशरथ) के निकट पहुँचते ही, जनक महराज अपने बड़े रथ से उतर पड़े और अपने विशाल तथा सुन्दर सेना को पीछे ही छोड़कर, आगे बढ़े। (दशरथ ने) उन्हें रथ पर चढ़ने का संकेत किया। उस संकेत को पाकर वे सत्वर उनके रथ पर आरूढ हो गये; तब उस चक्रवर्त्ती ने मन में प्रमोद तथा मुख पर प्रफुल्लता के साथ (जनक का) आलिंगन कर लिया।

व्याघ्र से स्वागत पाये हुए सिंह के सदृश, सर्वोत्तम महाराज दशरथ ने (जनक का) आलिंगन करके, उनके विशाल बन्धु-वर्ग और उनके अन्य परिवार के लोगों का कुशल निष्कलंक चित्त से यथाक्रम पूछा। फिर (जनक से) यह कहकर कि आप आगे बढ़ें ; उनके साथ ही (मिथिला में) आ पहुँचे।

इस प्रकार, उन दोनों ने बड़े मनोहर ढंग से (मिथिला नगर में) प्रवेश किया ; तब उस विशाल मिथिला नगर से उनके सम्मुख (स्वागतार्थ) स्वयं अपने ही उपमान बने हुए, (रामचन्द्र) आये, जिन्होंने अपनी भुजाओं को फुलाकर अग्नि-तुल्य (रुद्र) के स्वर्ण धनुष को तोड़ डाला था।

देवों, मर्त्यों तथा नागों से वंदित होते हुए, घनी बलिष्ठ अश्व-सेना और अन्य योद्धाओं से घिरे हुए, पुरुषोत्तम (रामचन्द्र), अपने भाई को साथ लिये, उस असंख्य सेनावाले (जनक) की नगरी से, हरे रत्नखचित स्वर्ण-रथ पर आरूढ होकर सम्मुख आ पहुँचे।

जब दोनों योद्धा (राम और लक्ष्मण) अपने उत्तम पिता के सम्मुख आये, तब उनके साथ, श्रेष्ठ सेनानी जनक की आज्ञा से जो सेना आई थी, उसमें कितने हाथी,

कितने रथ, कितने अश्व और कितनी हथिनियाँ थीं, इनकी गणना कौन कर सकता था ? वास्तव में उनकी गणना करनेवाले तथा उस गणना के उपयुक्त अंक जाननेवाले कौन हैं ?

नीलोत्पल, कुवलय तथा सुगन्धित अतसी पुष्प की सदृशता करनेवाले, चित्र की प्रतिमा को भी लजानेवाले अनुपम रूप-विशिष्ट तथा देवों के द्वारा वंदित चरणवाले वे कुमार (राम) चक्रवर्त्ती के निकट यों आ पहुँचे, जैसे शरीर से पूर्व निकला हुआ प्राण फिर उसमें आ मिले।

सेनाओं के द्वारा अपनी चरण-वन्दना के उपरांत, (श्रीराम ने) त्वरित गति से जाकर चक्रवर्त्ती (दशरथ) के मनोहर, स्वर्ण-वलय-भूषित चरणों की वन्दना की। उनके (वन्दना करके) उठते ही, चक्रवर्त्ती ने उन्हें आलिंगन में बाँध लिया। उस समय मनु की-सी गरिमा भरे (चक्रवर्त्ती) की छाती के बीच, पर्वत-सदृश विलक्षण (शिव) धनुष को तोड़नेवाले दो बड़े पर्वत (अर्थात् राम की भुजाएँ) छिप गये।

दुर्निवार (शंबर आदि असुरों के द्वारा उत्पन्न) विपदाओं को भी दूर करने के कारण गगन तथा अष्ट दिशाओं में व्याप्त यशवाले सबसे श्रेष्ठ उस चक्रवर्त्ती ने फिर कनक वर्णवाले कनिष्ठ कुमार (लक्ष्मण) के अपनी चरण-वंदना करते ही उसे उठाकर पुष्पमालाओं से अलंकृत अपनी छाती से लगा लिया।

घनी तथा दीर्घ जटावाले (शिव) के हाथ के धनुष को जिनकी विजयप्रद दीर्घ भुजाओं ने तोड़ा था, वे उत्तम कुमार (राम) फिर अपनी जननी तथा अन्य माताओं को उसी प्रकार (अर्थात्, जिस प्रकार दशरथ को किया था) प्रणाम कर खड़े हुए। उस समय उन माताओं के हृदय में जो उमंगें उमड़ पड़ीं, उनका वर्णन कौन कर सकता है ?

ध्यान-युक्त अपनी चरण-वन्दना करके खड़े हुए उस भरत को, जिसके उज्ज्वल नेत्रों से (आनन्द) अश्रु की धारा इस प्रकार बह रही थी, मानों उसके हृदय में स्थित (राम के प्रति) सतत ध्यानयुक्त अपार प्रेम ही उमड़ रहा हो, (श्रीराम ने) प्राणों में प्राण मिलाते हुए स्वर्णाभरणों से भूषित अपने वक्ष से लगा लिया, जिस प्रकार पहले दशरथ चक्रवर्त्ती ने उन्हें आलिंगन में बाँध लिया था।

श्यामल (राम) का अनुसरण करते हुए चलनेवाले (लक्ष्मण) तथा अपूर्व प्रेम में उत्कृष्ट (भरत) के अनुज (शत्रुघ्न) अपने सुन्दर सुवासित केशवाले शिर से दोनों के वीर-वलय-भूषित चरणों का (अर्थात, क्रमशः भरत और राम के चरणों का) स्पर्श किया।

उत्तम राजनीति तथा शासन में करुण-दृष्टि— ये दोनों ही जिनकी संपत्ति हैं, ऐसे महाराज दशरथ के सदृश ही उत्तम शील-गुणसंपन्न वे चारों कुमार, वेद-प्रतिपादित धर्मों का अनुसरण करते हुए चार वेदों के जैसे ही थे।

उन चक्रवर्त्ती ने जिनका वेत्रदंड सबका साक्षी कहलाने योग्य था (अर्थात्, पक्षपातहीन शासन करते थे) तथा जिनको सभी लोग अपनी-अपनी जननी ही मानते थे, (अर्थात् , प्रजा पर मातृतुल्य करुणा करनेवाले थे) अपने कुमार (राम) को आदेश दिया कि इस सारे (छत्र, चामर आदि) वैभव को साथ लेकर तुम आगे बढ़ो।

हाथी-जैसे वीर सैनिकों का (उन चारों कुमारों के प्रति) जो प्रेम था, उसको

हम ठीक-ठीक आँक नहीं सकते। उस समय उन योद्धाओं का जो स्वच्छ आनन्द था, वह कम था या उससे बढ़कर और कोई आनन्द हो भी सकता है, यह भी हम नहीं जानते। (हम इतना ही जानते हैं कि) पुष्पालंकृत केशवाले उन चारों कुमारों के अपने निकट आते ही, उस सेना की दशा उनके पिता (दशरथ) की जैसी ही हो गई।

राम के दोनों पार्श्वों में उनके प्यारे भाई, सेवा में निरंतर निरत होकर, कभी कम न होनेवाले आनन्द के साथ, विजयशील अश्वों पर आरूढ हो आ रहे थे। उनके चलते समय शंखध्वनि के साथ बड़े-बड़े नगाड़े भी बज रहे थे ; इस प्रकार (श्रीरामचन्द्र) अति उन्नत रथ पर आरूढ हो चले।

(रामचन्द्र) प्राचीरों से आवृत मिथिला नगर की विशाल वीथियों में जा पहुँचे, जहाँ महावर-लगे मृदु पदवाली, प्रतिमा-समान सुन्दरियों का समूह चारों ओर मेघावृत ऊँची अट्टालिकाओं पर निरंतर पंक्तियों में एकत्र था तथा अपने विष-भरे नयनों से (राम पर) पुष्प-वर्षा कर रहा था।

वे सुन्दर प्रासाद, जहाँ (नारियों के) करों के कंकण बज रहे थे, केशपाश शिथिल हो खिसक रहे थे, रक्तकमल से कोमल पदों के 'पाटक' नामक आभरण भरत (भरत-नाट्य-शास्त्र में प्रतिपादित ताल) को निरूपित कर रहे थे। कहीं नृत्यशालाएँ तो नहीं थीं, जिनमें ऐसी सुन्दरियाँ नृत्य करती हों, जिनके स्तन मदोष्ण कुंभोंवाले गजों के (ऊपर उठे हुए) दाँतों को परास्त करनेवाले थे।

उस आदिदेव (अर्थात्, विष्णु के अवतारभूत राम) के निकट आने पर मन्मथ के बाणों से प्रेरित होकर, वहाँ आई हुई मनोहर कुंतलोंवाली नारियों—बालाओं से वृद्धाओं तक—की क्या दशा हुई, उसका वर्णन करेंगे। (१–३४)



अध्याय १९

वीथी-विहार पटल

पुष्प (मधु) से आर्द्र केशोंवाली अनेक स्त्रियाँ सर्वत्र त्वरित गति से आ एकत्र हुईं। उस समय उनके पुष्पों में स्थित भ्रमर गुंजार कर रहे थे, नूपुर आदि पादाभरण शब्द कर रहे थे ; उनका आना वैसा ही था, जैसे हरिणियाँ आ रहीं हों, मयूर-गण संचरण कर रहे हों, नक्षत्र-गण चमक रहे हों या बिजलियाँ एकत्र हो गई हो।

दुर्लभ आभरणों से अलंकृत नारियाँ, बंधन से छूटकर गिरनेवाले अपने केशों की ओर ध्यान नहीं देती थीं, मेखलाओं का टूट-टूटकर गिरना भी नहीं देखती थीं ; खिसकनेवाले पुष्प-समान अपने झीने वस्त्रों को भी नहीं सँभालती थीं ; उनकी कटि लड़-खड़ाती थी ; इस प्रकार एक दूसरे से 'हटो, हटो' कहती हुई मधुपान करनेवाले भ्रमरों के समान वे स्त्रियाँ घिर आईं।

नयनों से प्रेम नामक पदार्थ को ही (अर्थात्, साकार प्रेम को ही) (राम के रूप में) हम देख रही हैं। इस स्त्री-जन्म के फल को आज ही प्राप्त कर रही हैं; यह सोचती हुई वे नारियाँ इस प्रकार आईं, जिस प्रकार हरिणों के झुंड, सारी पृथ्वी का पानी सूख जाने तथा आकाश से वर्षा के भी न होने पर, किसी स्थान पर पीने योग्य जल देखकर प्रेम से आ जुटे हों।

निम्न स्थल की ओर वह जानेवाली जलधारा के समान नील कुवलय-तुल्य तथा समुद्र से भी विशाल नेत्रवाली वे स्त्रियाँ वहाँ आईं। उस समय उनके मंजुल नूपुर शब्द कर रहे थे, मृदुल पुष्पहार हिल रहे थे, उनकी सूक्ष्म कटि दुख रही थी। वे इस प्रकार दौड़ीं, मानों वे अपने मन को, जो राम के पास चला गया था, पकड़ने के लिए उसके पीछे-पीछे दौड़ी आ रही हों।

'रक्तवर्ण को इसने निगल लिया है'—(दर्शकों में) ऐसा भाव उत्पन्न करनेवाले तथा अहल्या को आनन्द देनेवाले पद-युग और सुवासित केशोंवाली सीता को प्राप्त करने के लिए शिवधनुष को तोड़नेवाली फूली हुई भुजाएँ—उन्हें देखने के लिए उस राज-वीथी में जो नारियाँ एकत्र हुईं, वे ऐसी लगती थीं कि मधुमक्खियाँ शोर मचाती हुई अमृत पर घिर आई हों।

वे (रामचन्द्र) प्रकट रूप में तो वीथी में जा रहे थे ; पर वस्तुतः वे ऐसे घोड़े जुते हुए रथ में जा रहे थे, जो निर्निमेष खड़ी रहनेवाली उन नारियों के नेत्रों में फाँद जाते थे। अब उन्होंने सब लोगों को यह भली भाँति जता दिया कि महान् लोग उन्हें 'कण्णन्'[1] क्यों कहते हैं!

वे नारियाँ यह सोचकर (प्रेम की) वेदना से भी पीडित होती थीं कि हाय! इस (राम) का रथ अब मन से भी अधिक वेग से दौड़ता चला जा रहा है। (कवि कहता है कि) पृथ्वी से भी परे जाकर स्वर्ग को पार करनेवाले (अर्थात्, त्रिविक्रिमावतार में त्रिभुवन को नापनेवाले उस राम) को जिस सुन्दरी ने अपने दृष्टि-पथ में ही बिठा लिया है, वही धन्य है।

एक सुन्दरी सिहरन, संकोच, शरीर का वस्त्र, शंख-वलय आदि को तथा अपना मन, प्रज्ञा, तेज, लज्जा, मुग्धता, संयम आदि अच्छे गुणों को—अपने प्राणों के अतिरिक्त अन्य सभी महिलोचित गुणों का त्याग कर खड़ी रही।

(किसी नारी के) कर्णाभरण पर संचरण करनेवाले मीन-सदृश नयनों से वर्षा के सदृश अश्रु-धारा बह रही थी। वह ऐसे जुड़े हुए स्तनों से सुशोभित थी, जिनके मध्य से एक धागा भी नहीं जा सकता था और जो मन्मथ के इक्षुधनुष के बाणों से विक्षत थे।

---

१. 'कण्णन्' यह तमिल शब्द संस्कृत शब्द 'कृष्ण' का ही रूपान्तर है। किन्तु, इस तमिल शब्द के, तमिल भाषा की प्रकृति के अनुकूल अन्य भी कई प्रकार के अर्थ हो सकते हैं। इस शब्द का अर्थ तमिल में नेत्र होता है। इसलिए, कण्णन् का एक अर्थ है 'कृपादृष्टिवाला', दूसरा अर्थ है 'सब की आँखों का तारा'।

इस प्रसंग में 'कण्णन्' शब्द के एक तीसरे अर्थ की ओर संकेत है, वह है—'नेत्र-मार्ग से (हृदय में) पहुँचनेवाला'। इस प्रसंग में इस नये अर्थ में यह शब्द व्यवहृत हुआ है।

वह (नारी) शिथिल हो इस प्रकार कुम्हलाई हुई काँपती खड़ी रही, जिस प्रकार उसकी बिजली समान कटि काँप रही थी।

रुई जैसी मृदु उँगलियोंवाली उन (रमणियों) के भाले जैसे दीर्घ नयनों ने अपने प्रभु (राम) के शरीर की कालिमा को प्राप्त किया था, या मेघ-समान शरीरवाले उस (राम) का वर्ण उन नारियों के अंजनाञ्चित नयनों के द्वारा देखे जाने के कारण ही उस प्रकार (काला) हो गया था ? इसको कुछ निश्चित रूप से विदित नहीं हुआ।

आम के पल्लव-समान (अरुण) शरीरवाली तथा उज्ज्वल ललाटवाली एक सुन्दरी मन्मथ को सर्वत्र पुष्प-बाणों की वर्षा करते हुए देखकर कह उठी— यह कौन है, जो चक्रवर्त्ती (दशरथ) की आज्ञा का तथा इस वीर (राम) के धनुश्चातुर्य का भी निरादर करता हुआ, आभरण-भूषित अबलाओं पर बाणों का प्रहार कर रहा है ?

लक्ष्मी की समता करनेवाली एक नारी, जिसके आभरण खिसककर गिर गये थे, और जो अपने शरीर को भी सँभाल नहीं पा रही थी, एक वस्त्र को ही पकड़े हुए इस प्रकार (राम के प्रेम में मग्न हो) खड़ी थी, मानों अपूर्व सौंदर्य को भली भाँति पहचाननेवाले किसी चित्रकार ने, शब्दों से अतीत तथा सभी प्रकार के ऐन्द्रिय अनुभवों से श्रेष्ठ कामानुभव को एक स्त्री के रूप में चित्रित कर दिया हो।

प्राणहर शूल-सदृश तथा यम की समता करनेवाले नेत्रोंवाली मयूर-तुल्य एक (सुन्दरी) इस प्रकार खड़ी थी कि उसकी धनुष जैसी भौंहों और ललाट से स्वेद बह रहा था; सारे शरीर में पीलापन छा गया था; मन शिथिल हो गया था; वह राम के अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं देख पाती थी, इसलिए बोल उठी—'क्या मेरे प्रभु अकेले ही जा रहे हैं?'

अंजन-जैसे काले कुंतलोंवाली, अरुण अधरवाली तथा उज्ज्वल ललाटवाली एक रमणी ने (राम के प्रति प्रेमाधिक्य से) मन में द्रवित होती हुई, अपनी सखी से कहा— 'हे सखी ! वह वंचक (राम) मेरे मन के भीतर आ पहुँचा है और मैंने नेत्र नामक उसके आगमन के द्वार को दृढ़ता से बंद कर दिया है, जिससे अब वह बाहर निकलकर नहीं जा सकता है; अब मैं पर्यंक पर जाऊँगी।'

गढ़ी हुई प्रतिमा के समान एक सुन्दरी, मोहिनी-सदृश अपने शरीर में चुभनेवाले मन्मथ-बाणों का भी ध्यान नहीं करती थी; उसने यह भी नहीं जाना कि उसके आभरण और वस्त्र कैसे खिसक-खिसककर पृथक्-पृथक् हो गिर रहे हैं। वह उस अमल (राम) के रूप को (प्रेम के साथ) देखनेवाली (नारियों को) अपनी आँखों से चिनगारियाँ उगलती हुई (ईर्ष्या और क्रोध के साथ) देख रही थी।

एक सुन्दरी जिसके नयन (सहज) आमोद से भरे थे, खूब बढ़े हुए थे, दीर्घ होकर कपोलों को नापते थे, (दूसरों के मन को) चुराने की कला को अपने में छिपाये हुए थे, बार-बार बाहर निकलकर उड़ जाना चाहते-से थे। वे अरुणाई को भीतर रखे हुए श्वेत एवं काले वर्णवाले थे तथा भाले के जैसे थे; शीतल मन के साथ (श्रीराम को) देखने के लिए आई और (देखने पर प्रेम की वेदना से पीडित होकर) उष्ण मन के साथ घर में लौट गई।

एक तरुणी जो (राम के) अपार सौंदर्य को देखने की अभिलाषा से प्रेरित हो

रही थी ; पर (वहाँ एकत्र स्त्रियों के) काले केशपाश, कंचुकाबद्ध भारी स्तन, मेखलावृत नितम्ब, आदि के घने रूप में छाये रहने से राम के रूप को नहीं देख पाती थी ; तब वह अतिविशाल नेत्रवती (उन रमणियों की सूक्ष्म) कटियों के मध्य से राम को देखने लगी।

उन (मिथिला की) वीथियों में, कसे हुए खड्गवाले अनंग के द्वारा फेंके गये पुष्प-बाण (नारियों के) मन को पार करके बाहर बिखरे पड़े थे। उन (नारियों) के (विरह-ज्वाला से) झुलसकर गिरे हुए आभरण, स्तनों पर स्वेद आने से गिरे हुए कुंकुम-लेप, खिसककर गिरी हुई मेखलाएँ, मुक्ताहार, शंख-वलय, दीर्घ केशों से ग्रस्त हुए पुष्प—इनसे रिक्त स्थान वहाँ कहीं भी नहीं था।

(उन नारियों में से) जो (राम की) भुजाएँ देखने लगी, वे उन भुजाओं को ही देखती रह गईं ; जो वीर-कंकण भूषित कमल-सदृश उनके चरणों को देखने लगीं, वे उन चरणों को ही देखती रह गईं ; (जो उनके) विशाल हाथों को देखने लगीं, वे वैसी ही (उन हाथों को देखती हुई) अड़ी रह गईं। उन शूल-तुल्य नेत्रवतियों में कौन ऐसी थी जिसने (राम के) रूप को पूर्ण रूप से देखा हो ? (अर्थात् , भगवान् के अवतारभूत राम को पूर्ण रूप से किसी ने नहीं देखा है।) वे नारियाँ, विभिन्न धर्मों के उन अनुयायियों के समान थीं, जो अपने-अपने सिद्धांतों के अनुसार भगवान् के किसी एक अंश का ही ध्यान करते रहते हैं।

सूक्ष्म कटि तथा दीर्घ कुंतलोंवाली एक सुन्दरी को जीवन-दान देते हुए उसका उद्धार करते हुए, उसके मन में (श्रीराम) अन्तर्भूत हो रहे। समस्त भुवनों को अपने उदर में अन्तर्भूत करनेवाले (हमारे) प्रभु से बढ़कर, कहो, अब और कौन बड़ा हो सकता है ?

हिलनेवाले दीर्घ केश-भार तथा उत्तम आभरणों से सुशोभित एक तरुणी, अपनी पायल तथा नूपुरों को ध्वनित करती हुई, अति सुन्दर पुष्पित शाखा के समान पग रखती हुई आई और (राम को देखते ही प्रेम-पीडित) हो रोती हुई सखियों के हाथों पर (आरूढ होकर) चली गई। (अर्थात् , प्रेम-व्याधि से पीडित उस नायिका को उसकी सखियाँ अपने हाथों पर उठाकर रोती हुई चली गईं।)

उस स्थान में 'कुड्मल' जैसे स्तनोंवाली, आभरणालंकृत एक युवती ने (राम का सम्बोधन करके) कहा—तुम्हारा हृदय लोहे के समान कठोर है, फिर भी तुमने एक मुग्धा (को प्राप्त करने) के लिए मेरु-सदृश धनुष को तोड़ा है। हे पुण्यस्वरूप ! (मन्मथ) के इक्षु-धनुष को तोड़कर मुझे भी अपनाओ न !

काजल से अंजित नयनोंवाली तथा उज्ज्वल ललाटवती एक तरुणी ने कहा—फलीभूत तपस्यावान् यह (राम) अपने रथ का त्याग कर मेरे नेत्रों के अत्यन्त निकट आ खड़ा है, यह कोई इन्द्र-जाल है या स्वप्न ?

एक नारी ने, जिसके पास अपने मन के अतिरिक्त और कोई दूत नहीं था और जिसके प्राण द्रवित हो उठे थे, कहा—'कमलपुष्प के समान लाल रेखाओं से अंकित

नेत्रोंवाली उस सीता ने न जाने कैसी तपस्या की थी (जिससे इस सुन्दर पुरुष को प्राप्त किया है) ?'

त्रुटि-रहित प्रतिमा-समान एक सुन्दरी (राम के प्रति प्रेमाधिक्य के कारण) तड़पकर रो उठी ; उष्ण निःश्वास भरने लगी ; शिथिल हो व्याकुलता के साथ, अपनी प्राण-सखी के प्रति हाथ जोड़कर कहने लगी—इस कुमार को क्या मन्मथ के द्वारा चित्र में अंकित कराया जा सकता है ?

अरुण अधरवाली तथा उज्ज्वल ललाटवती एक नारी ने (अपने पास खड़े व्यक्तियों को देखकर) कहा—क्या, किसी मानव-मात्र में इस प्रकार के लक्षण हो सकते हैं ? (नहीं ; अतः) यह विष्णु ही हैं ; मैं तुम लोगों को यह समझा रही हूँ ; इस कथन की सचाई को तुम लोग भविष्य में प्रत्यक्ष देखोगे ।

उज्ज्वल ललाटवाली एक सुन्दरी ने जिसके स्वर्ण नूपुर और हाथ के कंकण खिसक रहे थे, जिसका मन द्रवित हो रहा था, बहुत म्लान होकर कहा—'यह अनघ इस नगर में आया है, यह जनक महाराज की तपस्या का ही फल है ।'

अश्रुपूर्ण आँखों और स्वर्ण-भूषित कटिवाली एक रमणी ने; जो इतनी व्याकुल हो उठी थी कि उसका समस्त सौन्दर्य उसके शरीर को छोड़कर चला गया था, कहा—'क्या यह सम्भव हो सकता है कि मुनियों तथा श्रेष्ठ राजाओं से घिरा हुआ यह कुमार (राम) अकेले ही, स्वप्न में, मेरे निकट आ जाये ?'

वन में निवास करनेवाले वर्षाकाल के मयूर की समता करनेवाली एक स्वर्णलता ने अपने मन के (राम के प्रति उत्पन्न) प्रेम को छिपाना चाहा ; किन्तु मन्मथ ने उस बात को जान लिया । गुप्त बातों को मन जिस प्रकार छिपा लेता है, क्या उसी प्रकार मुख भी छिपा सकता है ? (अर्थात्, मन में छिपे हुए भाव को मुख की कान्ति प्रकट कर देती है ।)

दो दीर्घ नयनोंवाली एक इन्दुमुखी (विरह-बाधा से उद्विग्न हो) पुष्प-पर्यंक पर जा लेटी । वह वज्रनाद सुनकर डरे हुए साँप के जैसे विभ्रांत होकर निःश्वास भरने लगी, और उसके परस्पर घर्षमाण स्तन-द्वय पर स्वेद छा गया ।

लाल अतसी-पुष्प के सदृश, अमृत-पूर्ण अधरवाली वे सुन्दरियाँ (राम के प्रेम के कारण) पृथक्-पृथक् उद्विग्न होती हुई विकल-प्राण हो गईं ; दुखती हुई सूक्ष्म कटिवाली सीता के समान, आनन्द के कारण (राम को) जिन्होंने नहीं पाया है, वे कैसे जीयेंगी ?

(एक नारी कहने लगी) स्वेद-भरे शरीर, व्याकुल प्राण तथा अत्यन्त वेदना के साथ पीडित होनेवाली इन नारियों में से किसी को इस परिशुद्ध पुरुष ने अपने आरक्त नेत्रों से प्रेम के साथ देखा तक नहीं । कदाचित् यह प्रेमहीन (कठोर) चित्तवाला है ।

उस नगर में नारियाँ असंख्य थीं । इधर राम के सौन्दर्य की भी कोई सीमा नहीं थी, अतः सुन्दर धनुर्धारी मन्मथ भी क्या कर सकता था ? उसके हाथ के सब बाण चुक गये, तो उसने अपने खड्ग पर हाथ रखा (अर्थात्, खड्ग का प्रयोग करने लगा) ।

हम यह तो जानते हैं कि कस्तूरी से सुवासित दीर्घ कुंतलोंवाली उस नगर

की नारियों पर मन्मथ ने कैसे अस्त्र प्रयुक्त किये ; पर यह नहीं जानते कि वसन्तकालीन मन्मथ ने स्वर्गवासिनियों के साथ कैसा युद्ध किया। उसके बाण तो स्वर्ग की निवासिनी अप्सराओं के हृदयों में भी जा लगे होंगे ।

(किसी नारी ने कहा) अपने पर मोहित होनेवाली किसी नारी से कुछ भी न चाहता हुआ, यह (राम) चला जा रहा है ; क्या यह उचित है ? करुणा क्या होती है, यह जानता भी नहीं। क्या यह परिणत चित्तवाला (संयम में सफलता प्राप्त किया हुआ) कोई तत्त्वज्ञ है (जो किसी नारी की ओर दृष्टि नहीं उठाता है) ? (नहीं, नहीं) यह तो बड़ा हत्यारा है (जो इतनी नारियों को प्राण-पीडा दे रहा है) ।

चन्दन रस से लिप्त, उष्ण स्तनों तथा डमरू-समान मृदु कटि से शोभित एक उत्तम युवती अपने व्यापार तथा शरीर की सुधि खोकर शिथिलता से चूर होकर गिर पड़ी, जिसे देखकर लोग सन्देह करने लगे कि वह बचेगी या नहीं ।

चाशनी-जैसी मीठी बोलीवाली एक नारी उस वीर (राम) के रथ के पीछे-पीछे दौड़ने लगी, जिससे पैरों में वैसे ही छाले पड़ गये जैसे क्रमुक-वृक्ष पर लगाये गये झूले को झुलानेवाली किसी नारी के पैरों में पड़े हों। (वह कुछ दूर जाकर) फिर लौट पड़ी, इससे उसने क्या प्राप्त कर लिया ?

अपार प्रेम से मत्त होकर उन नारियों में से एक ने दूसरी से पूछा—क्या तुमने उस राम के मार्ग में मेरे मन को भी जाते हुए देखा था ?' जब कामना अत्यन्त तीव्र हो जाती है, तब लज्जा भी शेष नहीं रहती ।

वहाँ पर लक्ष्मी-सदृश एक रमणी ने कहा—'इस (राम) के पूर्वजों ने अपने शरणागत याचकों की रक्षा के लिए अपने प्यारे प्राणों का भी दान किया था। न जाने, उस वंश में उत्पन्न इस (राम) में ऐसी कठोरता कहाँ से आ गई है कि यह हमारे प्यारे प्राणों को हमें नहीं छोड़ता ?'

(काम-पीडा से उत्पन्न) भय से विकल होती हुई, एक सुन्दर ललाटवाली कहने लगी—(इसने) आयुधागार में स्थित शिव-धनुष को जो तोड़ा, वह अगरु से सुवासित कुंतलोंवाली, पवित्र वाणी-युक्त मयूर-सदृश सीता के प्रति प्रेम के कारण नहीं था ; किन्तु अपना धनु-कौशल दिखाने के लिए ही था ।'

ढीले केशोंवाली एक रमणी ने, जिसके हार, वस्त्र तथा अन्य आभरण खिसके जा रहे थे, तथा जिसके प्यारे प्राण भी शिथिल हो रहे थे, कहा—मन्मथ के समान बलशाली इस विश्व में दूसरा कौन है, जो इस भयंकर धनुर्धारी राम के सामने ही मेरे प्राण हर रहा है ?

इस प्रकार, सभी दिशाओं में नारियाँ घिर आई थीं। उधर श्रीराम उस सभा-मण्डप में अन्य राजकुमारों के साथ जा पहुँचे, जहाँ निष्कलुषचित्त वसिष्ठ तथा वेदपारग कौशिक विराजमान थे ।

लक्ष्मीनायक (राम) ने उन दोनों (महर्षियों) के चरणों का इस प्रकार साष्टांग प्रणाम किया कि उनके रत्नहार इस प्रकार हिलने लगे, जैसे बादलों में बिजलियाँ चमक रही हों और वर्षाकालिक मेघ धरती पर आ लगा हो ।

धर्म की रक्षा के लिए अयोध्या में अवतीर्ण उस पुरुष के प्रणाम करने पर उन (महर्षियों) ने आसन ग्रहण करने की आज्ञा दी। उनकी आज्ञा पाकर वे पुष्पाकार चित्रों से उत्कीर्ण एक आसन पर आसीन हुए और छाया के समान अपना अनुगमन करने-वाले तीनों भाइयों के मध्य प्रकाशमान होने लगे।

उसके पश्चात्, मानों चन्द्रमा सब नक्षत्रों के साथ गगन को प्रकाशित करता हुआ आया हो, यों दशरथ चक्रवर्त्ती अपने बन्धु-मित्रसहित, उस रत्नमय मण्डप में आये।

(चक्रवर्त्ती ने) आकर महातपस्वियों (वसिष्ठ और कौशिक) के चरणों की वन्दना की और अपने बरसाये जानेवाले मधुपूर्ण पुष्पों से भी अधिक (मात्रा) में, ब्राह्मणों के आशीर्वाद पाकर, आसन पर इस प्रकार विराजे कि देवेन्द्र भी उन्हें देखकर लज्जित हो गया।

गंग, कोंगु, कलिंग, कुलिंग, सिंहल, चेर, दक्षिण राज्य (पांड्य), अंग, चीन, कुलिन्द, अवंती, वंग, मालव, चोल, महाराष्ट्र—इन देशों के राजा;

वैभवयुक्त मगध, मत्स्य, म्लेच्छदेश, लाट, विदर्भ, महाचीन, तेंगनदेश (टंकण या दक्षिण ?), मगदेश (म्लेच्छ देशों में से एक), सोमक, सोनक, तुरुष्क, कुरुदेश—इन देशों के नरेश;

आयुधहस्त माधव राजा, सप्तधा विभाजित कोंकण, चेदी, तेलंग (आन्ध्र), कर्नाटक इत्यादि नभ से आवृत पृथ्वी-भर के उज्ज्वल तथा दीर्घकिरीटधारी राजा लोग उस मण्डप में आ पहुँचे।

मधुर इक्षु से भी अधिक मीठे वचनवाली रमणियाँ, (दशरथ के) पार्श्वों में चामर डुला रही थीं। वह दृश्य ऐसा था, मानों उनकी कीर्त्ति-रूपी वृक्ष के, जो ऊपर के (स्वर्ग आदि) लोकों में भी व्याप्त था, कोमल पल्लव हिल रहे हों।

मँड़रानेवाले भ्रमर तथा मधुमक्खियों को आकृष्ट करनेवाली सुगन्ध से युक्त मधु-पूर्ण पुष्पों से अलंकृत केशवाली स्त्रियाँ, बाँसुरी की ध्वनि के साथ स्वर मिलाकर जय-गान कर रही थीं। वे गान उनकी वाणी-सदृश वीणा को भी मात कर रहे थे।

कठोर तथा भयंकर नेत्रवाले हाथियों की सेना से युक्त (चक्रवर्त्ती) का अनुपम श्वेतच्छत्र, ऐसा शोभित हो रहा था, मानों चन्द्रमा अपनी वंशजा सीता के शुभ विवाह उत्सव को देखने के लिए आ पहुँचा हो और करुणा से पूर्ण हो, फूला हुआ, ऊँचाई पर खड़ा हो।

(चक्रवर्त्ती की) सेनाएँ अपार समुद्र के समान व्याप्त होकर सर्वत्र ऐसी फैली पड़ी थीं कि किसी के उठकर जाने या हिलने-डुलने के लिए भी रिक्त स्थान नहीं था। विजयप्रद मत्तगज सेना से युक्त उस (जनक) नरेश का सारा देश उस जनसमुदाय के कारण एक नगर-जैसा दीखने लगा।

कांत ललाटवाली सीता के पिता ने असीम आदर तथा प्रेम के साथ आनन्दित हो अपनी समस्त संपत्ति को लुटाकर उनका आतिथ्य-सत्कार किया। उनका वह आतिथ्य रामचन्द्र और अन्य साधारण जनता, सभी के प्रति समान ही रहा। इससे बढ़कर उनके आतिथ्य की महत्ता के सम्बन्ध में और क्या कहा जाय ? (१–५४)



अध्याय २०

प्रसाधन पटल

चक्रवर्त्ती (दशरथ) अपनी सजीव प्रतिमा-समान सुन्दर देवियों सहित आनन्द भरित हो, इस प्रकार आसीन थे, मानों अपनी देवियों के साथ देवेन्द्र ही विराजमान हों। उस समय वसिष्ठ ने श्वेतच्छत्र तथा नीतिपूर्ण शासन दंडयुक्त जनक को मधुर दृष्टि से देखकर कहा—'आम के टिकोरे-जैसे नयनोंवाली (सीता) को ले आइए।'

(वसिष्ठ के) यह कहते ही, (जनक ने) मुनि को प्रणाम किया और मुदित होकर आभूषणों से भूषित कुछ दासियों को आदेश दिया कि वे नारियों की रानी (सीता) को ले आयें। मधु-समान वचनवाली वे स्त्रियाँ, अपार प्रेम से प्रेरित हो, त्वरित गति से गईं और सीता की सखियों को वह समाचार दिया।

(सीता की सखियों ने) यह नहीं सोचा कि आभामय आभरण, सुन्दरी (सीता) के रूप को छिपा देनेवाले ही हैं, जैसे नेत्रों के ऊपर और नीचे उसको छिपानेवाली दो पलकें सौन्दर्य के लिए रखी गई हैं। उन सखियों ने सौन्दर्य का शृंगार किया, मानों अमृत को मधुर बना रही हों। आह! शब्दायमान वीचि-भरे समुद्र से घिरी इस पृथ्वी के लोग भी कैसी अज्ञता से भरे हैं।

शोभा को बढ़ानेवाले (सीता के) कुंतल ऐसे थे, मानों विष्णु (के अवतारभूत राम) का नीलवर्ण, जो उन (सीता) के हृदय में भरा था, वही उमड़कर ऊपर उठ आया हो और चारों ओर अपनी छवि को फैला रहा हो। मेघ-मध्य विराजमान चन्द्र-कला के समान उस कुंतल-भार के मध्य कोमल फूलों का गजरा रखा।

जैसे विधि के वश हो गगन के नक्षत्र चन्द्र-कला को घेरे रहते हैं, वैसे ही चमकते हुए माँग-फूल को (सीता के) ललाट पर बाँधा; चन्द्र को जन्म देनेवाली 'मेघ' नामक माता ने (अपने बछड़े को चाटने के लिए) अपनी टेढ़ी जीभ को बाहर निकाला हो— वैसे ही घने अंधकार समान अलकों पर वर्त्तुल आभरण (जो माथे पर केशों के किनारे-किनारे पहना जाता है) पहनाया।

गंगा-प्रवाह को जटा में धारण करनेवाले (शिव) के भयंकर धनुष को जिसने तोड़ा, वह वीर क्या वही युवक है, जो मेरे स्त्रीत्व-रूपी अनुपम श्रेष्ठ गुण को चुराकर ले गया है और मुझे विकल छोड़ गया अथवा वह वीर दूसरा कोई है?—यों सोचती हुई (सीता का) मन जिस प्रकार झूल रहा था, उसी प्रकार झूलनेवाले कान के 'कुलै' नामक आभरण भी उन (सखियों) ने पहनाये।

सीताजी हरिण नयनोंवाली सभी नारियों के मंगलमय कण्ठों के आभरण-सदृश थीं, तो उन (सीता) के कंठ का हार कौन हो सकता है? उस कंठ में, जो ऐसा था मानों विष्णु के द्वारा धारण किया गया शंख ही उस रूप में आ स्थित हुआ हो, (उन सखियों ने) अनेक दोष-रहित आभरण पहनाये।

(सीता के) आभरणों की शोभा को भी बढ़ानेवाले स्तनों पर (पहनाये गये)

हार के बारे में क्या कहें ? क्या यह कहें कि गगन के नक्षत्रों में से योग्य नक्षत्रों को चुनकर (उनका) हार बनाकर पहनाया गया है ? या कहें कि अति उज्ज्वल किरणवाले चन्द्र को काटकर हार बनाकर पहनाया गया है ? या यह कहें कि (सीता की) लज्जायुक्त हँसी की चन्द्रिका-जैसी कांति ही इस प्रकार छिटकी पड़ी है ? मैं क्या कहूँ ?

जिन (सीता) के रक्त चरणों ने, सौन्दर्य की स्पर्धा में परास्त होकर शरण में आये हुए रक्त कमलों को अरुणाई की भिक्षा दी थी ; उनके अमृत-समान शरीर की कांति पड़ने से मनोहर आभरण-युक्त स्तनों पर के श्वेत मोती भी लाल दिखाई पड़ते थे। जो अच्छे लोगों की संगति में रहते हैं, वे भी अच्छे हो जाते हैं न ?[1]

उन (सीता) की कटि अतिपुष्ट तथा अधिकाधिक उभरते रहनेवाले ईंगूर (धातु) के बने हुए कलश-समान स्तनों का भार बढ़ जाने से लचक उठती थी ; यदि (अपने प्रकाश से) चौंधियाकर दर्शकों की आँखों को बंद करानेवाली लाल कांति से युक्त पद्मराग-पुंजों तथा मोतियों से खचित कोई बाँस हो, तो वह उन (सीता) की आभरण-भूषित भुजाओं की समता कर सकता है।

विकसित पुष्पों से भूषित कुतलोंवाली जानकी के पल्लव-कोमल कर नामक कमलों ने ऐसी तपस्या की है कि वे रामचन्द्र के अरुण हस्तों के द्वारा यथाविधि गृहीत होनेवाले हैं। ये कर सभी के प्रेम के पात्र हैं, रात्रि के समय भी मुकुलित नहीं होनेवाले हैं, यही सोचकर उनकी सखियों ने बालातप-सदृश कांतिवाले पद्म-परागों से खचित 'कटक' (नामक आभरण) उनके हाथों में पहनाया, मानों उन्होंने उनके करों की रक्षा के लिए उनमें रक्षा-बंधन बाँधा हो ।

(पाटों में) विभाजित केशोंवाली (जानकी) के स्तन नामक दो औंधाये (गये) स्वर्णकलशों पर, जिनमें एक-एक इन्द्रनील रत्न भी जड़ा था, उन सखियों ने कस्तूरी-लेप से पुष्पलता और अनंग-धनुष को चित्रित किया और विविध धर्म-मतों के द्वारा विचार्यमाण भगवान् के समान ही 'अस्ति' या 'नास्ति' की विचिकित्सा के कारण-भूत उनकी कटि के लिए विपदा उत्पन्न कर दी ।

छवि को छिटकानेवाले अत्यन्त सूक्ष्म कौशेय (रेशमी) वस्त्र की परतों में न आनेवाली (अतिसूक्ष्म) कटि पर मेखला तथा उसके नीचे, (मोतियों की लड़ी से बने) 'तारकपुंज' (नामक आभरण) पहनाया। उन आभरणों के विविध रत्नों से जो कान्ति फूट पड़ती थी, वह उन (सीता) के शरीर की कांति से विलक्षण रहकर चारों ओर घूम जाती थी, जिससे वे सखियाँ भी अपनी आँखों की ज्योति खोकर स्तब्ध रह जाती थीं।

नाचनेवाले फणी के तुल्य जघन-तटवाली (सीता) के उन कमल-सदृश चरणों में, जो अतिकोमल, शिरीष पुष्प से भी अधिक कोमल थे और महावर के बिना भी लाल

---

१. मूल में अंतिम वाक्य में, 'शेय्यर' शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसके श्लेष से दो अर्थ होते हैं—(१) लाल रंगवाले और (२) अच्छे। दोनों अर्थों को लेने से अंतिम वाक्य का चमत्कार बढ़ता है। —अनु०

दीखते थे, उन सखियों ने नूपुर पहनाये। वे नूपुर बार-बार बोल उठते थे। वे यह कह रहे थे कि ये (चरण) बहुत कोमल हैं, बहुत कोमल हैं।

जैसे बीच में विष रखकर उसके चारों ओर अमृत रखा हो, वैसे (सीताजी के) वे नयन, सीधे तथा लम्बे होकर कान तक फैल गये थे और उसके परे स्थान न मिलने से लौट पड़े थे। उनमें कुछ लाल-लाल रेखाएँ भी दिखाई देती थीं, उनमें छल या छिपाव न होने से वे मेघ के जैसे शीतल थे। उनमें जो रेखाएँ थीं, वे अंजन की ही रेखाएँ थीं या उस कुमार (राम) के शरीर का ही वर्ण था, कुछ निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता।

(उन सखियों ने) मर्त्य-लोक की स्त्रियों, नाग-कन्याओं तथा स्वर्ग की सुन्दरियों के लिए तिलक जैसी (उन सीता) के ललाट पर तिलक अंकित किया। दो पुष्ट नीलोत्पलों के साथ विकसित कोई रक्तकमल हो और उसमें शुक्लपक्ष तृतीया का वर्धमान चन्द्र आ उपस्थित हुआ हो, और उस चन्द्र के मध्य एक नक्षत्र उदित हुआ हो, यदि ऐसा कोई दृश्य उत्पन्न हो जाय, तो उससे सीताजी के तिलकांतिक वदन की तुलना हो सकती है।

भ्रमर, मधुमक्खी आदि को आकृष्ट करनेवाले खिले हुए पुष्प, केशों में खोंसने योग्य मृदुल पुष्प, जूड़े में धारण करने योग्य गजरे, कपोलों पर धारण करने योग्य वृन्तहीन अति मृदुल पुष्प—यथास्थान पहनाया तथा कल्पवृक्ष के पल्लव-जैसे चमकते हुए 'पुन्ना' (पुष्प) के स्वर्ण-धूलि-तुल्य पराग को सीता के केशों पर लगाया।

(इस प्रकार, अलंकार करने के उपरांत, दृष्टि-दोष-परिहार करने के लिए उन सखियों ने) घृत-दीप की आरती उतारी, जल-सहित पुष्पों को (उनके सम्मुख) बिखेरा; इष्ट-देवों से प्रार्थनाएँ कीं; वेद-पारग विप्रों को स्वर्ण का दान किया। छोटी पीली सरसों को माथे पर लगाया। सावधानी के साथ बनाये गये (चूना और हल्दी को मिलाकर) रक्तवर्ण नीर की आरती उतारी। उन देवी की, जिन्हें अपने हाथों में ही रखकर मयूर के समान ही उन सखियों ने अबतक पाला था, परिक्रमा की, इस प्रकार उन सखियों ने उनका, 'दृष्टि-परिहार' किया।

जो सीता शुकों को मीठे बोल सिखाया करती थीं, उनकी उस सुषमा को वे सखियाँ कमल-पुष्प से मधु का पान करनेवाले भ्रमरों के समान देखती रहीं। उन (सखियों) की वाणी गद्‌गद हो उठी। वे अपने सहज स्वभाव को भूल गईं। चाहे पुरुष हो या स्त्रियाँ, सबका मन एक (जैसा) ही होता है न ?

मेघ-तुल्य केशवाली वे सखियाँ, आभरणालंकृत वक्षवाली उन सीता को देखकर आनन्दमत्त हो खड़ी रहीं, जैसे पूर्णिमा के चन्द्र को देख रही हों। हरिणनयना स्त्रियों में भी कोई-कोई अवयव ही सुन्दर होता है (अर्थात्, किसी के सभी अवयवों का सुन्दर होना सम्भव नहीं है), जब सभी प्रकार का सौन्दर्य एक ही स्थान में एकत्र हो जाय, तो उसे देखकर कौन मुग्ध नहीं होगा ?

अपने सुन्दर कर में शंख (शंख-वलय) धारण करने से, कमल (योगियों का हृदय-कमल तथा कमल-पुष्प) को आवास बनाकर रहने से, सर्वत्र व्यापक होकर, प्रत्येक के

हृदय में पृथक्-पृथक् अंकित होकर रहने से अरुंधती के सदृश साध्वी सीता भी पुरुषोत्तम (श्रीराम) के समान ही थीं। अब हम और क्या कहें ?

देवेन्द्र के शासन में रहनेवाली रंभा आदि अप्सराएँ जा रही हों, इस प्रकार असंख्य सखियाँ सीताजी को चारों ओर से घेरकर चलीं। उस समय विशाल मेखलाएँ, पादजाल (नामक पाद-आभरण), सर्प के आकार के नूपुर और कर-वलय बज उठे।

बौने, ठिंगने, कुबड़े, दासियाँ सभी बड़ी भीड़ लगाकर आये और सीता के चरणों की वन्दना करके खड़े रहे। अक्षीण दीप के समान वह देवी रत्न-वितान की छाया में चलने लगीं, मानों बाल-चन्द्र नक्षत्रों के साथ जा रहा हो।

अपने आभरणों में लगे रत्नों की कांति को आगे-आगे फेंकती हुई सीता इस प्रकार चलीं, मानों उन्हें जन्म देनेवाली भूदेवी ने यह सोचकर कि इसके चरण अति कोमल हैं, उनके मार्ग में पल्लव और पुष्प बिखेर रही हो।

उनके दोनों पार्श्वों में डुलनेवाले कांतिपूर्ण चामर इस प्रकार थे, मानों सीताजी के समान ही चलने की इच्छा से आये हुए हंस उनके वंदनीय मृदु चरणों की गति से परास्त हो गये हों और बार-बार नीचे गिर-गिरकर उठ रहे हों। सीता यों चली, मानों अपने कलाप की कांति को सर्वत्र बिखेरता हुआ कोई मयूर चल रहा हो।

सीता भूलोक आदि सब लोकों की युवतियों के लिए आँख के तारे के समान प्रिय थीं, ऐसी कन्या (अविवाहित सीता) के रूप को देखने के लिए मानों पुरुषोत्तम (राम) के कुलपुरुष सूर्य नभ से उतर आया हो—इस प्रकार का था वह रत्नमय वितान, जिसकी छाया में सीता चल रही थीं।

पुंजीभूत घनी स्वर्ण-कान्ति से युक्त कलाप, (सोलह लड़ियोंवाली) मेखला, तथा अन्य रत्नखचित आभरणों से किरणें छिटक रही थीं ; देह की कांति अत्यन्त उज्ज्वल हो रही थी ; कटि लचक रही थी ; इस प्रकार अपने प्रकाशमान छोटे पदों को उठाकर रखती हुई सीता आगे बढ़ीं।

उन देवी की शरीर-कांति, उनके स्वर्ण-आभरणों की कांति, उनके पुष्पों की सुगन्ध तथा चन्दन की शीतलता, चारों ओर बिजली की चमक-जैसी ही फैल रही थीं, जिन्हें देखकर अप्सराएँ और अमृत भी लज्जित हो रहे थे। इस प्रकार सीता उस रत्नमय मण्डप में जा पहुँचीं, जहाँ राजसभा एकत्र थी।

भारी स्तनों से युक्त उनके उस पवित्र रूप को, जो जन्मदाता के अभाव के कारण (स्वयंभूत) वेदों के समान ही था, देखकर बाँस-जैसी भुजावाली रमणियाँ तथा पुरुष, सब लोग चित्र के समान निर्निमेष, जीवन के लक्षणों से रहित (निर्जीव)-से खड़े रहे।

समुद्र वर्णवाले (राम), जो अबतक इसी संदेह में पड़े थे कि जनक की कन्या वही रमणी है, जिसे उन्होंने पहले (राजप्रासाद पर) देखा था, या वह कोई दूसरी स्त्री है, अब अमृत-मय उन (सीता), को देखकर इस प्रकार आनन्द से भर गये, जिस प्रकार देवेन्द्र, क्षीर-सागर के मंथन के समय, इतना अधिक परिश्रम करके कि जिससे उसके प्राण भी शरीर

को छोड़ जाने के लिए सन्नद्ध हो गये थे, हठात् ही अमृत को उत्पन्न होते हुए देखकर आनन्द से भर गया हो।

अत्यंत मधुर अमृत को (साँचे में) ढालकर, पूर्वकृत सुकृतों के फल के समान निर्मित, अरुण अधर तथा कोकिल-स्वर से युक्त यह कन्या, जो कन्या-प्रासाद से राजमंडप में उतर आई है, मेरे अंतर में ही नहीं, बाहर भी स्थित है क्या ? इस प्रकार राम ने मन-ही-मन सोचा। (सीता राम के हृदय में तो पहले से स्थित थी ही, अब वह बाहर भी है क्या, इसका संदेह राम को हुआ।)

वसिष्ठ यह सोचकर अत्यंत मुदित हुए कि हमारे कृत तप के फलस्वरूप राम के रूप में आया हुआ व्यक्ति, शंख-चक्रधारी पुंडरीकाक्ष जगदीश्वर (विष्णु) ही है, और यह कन्या भी अरुण कमल पर आसीन (लक्ष्मी) देवी ही है।

समस्त धरती पर समान रूप में चलनेवाले शासन-चक्र से विशिष्ट चक्रवर्त्ती (दशरथ), घने कुंतलोंवाली सीता को देखकर सोचने लगे—यद्यपि सत्यलोकों में मेरा शासन चलता है, फिर भी मैं वैभव और समृद्धि की देवी (लक्ष्मी) को आज ही अपने वश में कर सका हूँ।

'नैवल' नामक वाद्य-सदृश स्वरवाली (सीता) के समीप में आते ही भूमि के विजयी शासक दशरथ तथा तपस्वियों के कर (प्रणाम की मुद्रा में) उनके शिरों पर मुकुलित हो उठे ; क्योंकि सब के मन तथा इन्द्रियों ने उन (सीता) को देवी के रूप में पहचाना। यह शरीर मन के अधीन ही रहता है न ?

(अपने आवास-भूत) कमल-पुष्प का त्याग कर, (जनक) राजा के स्वर्ण-प्रासाद में अवतरित हुई उस देवी ने पहले महान् तपस्वियों को नमस्कार किया, फिर सब राजाओं में श्रेष्ठ (दशरथ) के चरणकमलों की वन्दना की और आँखों से आनन्दाश्रु बहानेवाले अपने पिता के समीपस्थ आसन पर विराजमान हुईं।

'विष को अंतर में रखनेवाले आम के टिकोरे के सदृश नयनवाली यह कन्या यदि कमलासना (लक्ष्मी) ही है, तो हरे पर्वत के समान बलवान् राम, मेरु-सदृश एक धनुष क्या, सात पहाड़ों को भी तोड़ सकते हैं।' इस प्रकार रथ की कील (अर्थात्, सब धर्म-कार्यों के प्रधान कारक) जैसे ब्राह्मणोत्तम (वसिष्ठ अथवा विश्वामित्र) ने सोचा।

(सीता ने) यह सुना तो था कि (राम ने) शिव-धनुष को चढ़ाकर उसे तोड़ डाला है, किन्तु उनके रूप के संबंध में उनके मन में संशय अभी शेष था—(अर्थात्, यह वही राजकुमार है, जिसे स्वयं उन्होंने राजप्रासाद से देखा था या कोई और है, यह संदेह था)—उस पुराने संशय को दूर करने के हेतु सीता ने उस प्रभु (राम) को अपने अंतर में ही नहीं, अब अपने कंकणों को सँवारने के व्याज से आँख की कनखियों से भी देख लिया।

(सीता की) काली तथा दीर्घ कनखियों से जो दृष्टि-नदी श्रीराम-रूपी भरे हुए समुद्र में निमग्न हुई, उससे उनके चंचल प्राण (जो यह वही राजकुमार है, या अन्य कोई है—इस संदेह से विकल हो रहे थे) अब स्थिरीभूत हो गये। राम के रूप को देखकर आभरण-भूषित तथा स्त्री-रत्न वह सीता निःश्वास भरने लगीं और इस प्रकार आनन्द से फूल गईं,

मानों कोई व्यक्ति अलभ्य अमृत को पाकर एकदम सबको स्वयं ही पी जाये और आनन्द से फूल उठे।

घने कुंतलोंवाली सीता ने यह जानकर कि धनुष को तोड़नेवाला कुमार उनके हृदय में स्थित वह 'चोर' ही है, चिन्ता-मुक्त हो गईं; वह उनकी समता करने लगीं, जिन्होंने जन्म-कारण अविद्या को दूर करनेवाली विद्या को (तत्त्वज्ञान को) प्राप्तकर परमात्म-स्वरूप को जान लिया हो और उस ज्ञान के परिणामस्वरूप ब्रह्मानन्द-रूपी फल को प्राप्त कर लिया हो।

(शत्रुओं के) विनाश में चतुर हाथियों की सेना से युक्त उस सभा में आसीन चक्रवर्त्ती (दशरथ) ने ज्ञान-सागर के पारंगत मुनि कौशिक को देखकर प्रश्न किया—हे उत्तम! पुष्पलता-समान सूक्ष्म कटिवाली इस कन्या (सीता) के विवाह का अपार शुभप्रद दिन कौन-सा है? कृपया बतावें।

'वालै' नामक बड़े मीन तथा 'कयल' नामक छोटे मीनों के उछलने से जहाँ भैंसों के क्रमशः शिर तथा पीठ चिर जाती हैं; जहाँ के, 'वराल' नामक बलिष्ठ मीन (समीप के नारियल, पुंगी आदि पेड़ों के) विशाल पत्रों को फैलाते हुए उनपर उछल पड़ते हैं, ऐसे खेतों से समृद्ध (कोशल) देश के राजन्, विवाह के लिए शुभ दिन कल ही है।—यों श्रेष्ठतपस्वी (विश्वामित्र) ने उत्तर दिया।

यह वचन सुनने के पश्चात्, दशरथ, तपस्वियों की आज्ञा लेकर वहाँ से चलने लगे। तब अन्य राजे हाथ जोड़कर खड़े हो गये। उनका विलक्षण, रत्न-खचित, घुमावदार विजय-शंख बज उठा; उनके स्वर्ण-किरीट की कांति बालातप के समान छिटक उठी, यों चलकर वे अपने आवास में जा पहुँचे।

वह हंसिनी (सीता) बड़ी कठिनाइयों से वहाँ से चली, तो रामचन्द्र भी वहाँ से चलकर स्वर्ण-प्रासाद रूपी पर्वत के भीतर जा पहुँचे; रत्नाभरण-भूषित राजे भी चले गये; महातपस्वी मुनिगण भी चले गये; उधर उज्ज्वल कांतिमान् सूर्य भी मेरु-पर्वत के तट में अदृश्य हो गया। (१—४३)

●

अध्याय २१

शुभ विवाह पटल

प्रख्यातकीर्त्ति जनक महाराज के आतिथ्य के कारण, मदस्रावी गज-सेना से युक्त नरपतियों से ऊँचे कंधोंवाले कनिष्ठ कुमारों तक, सभी ऐसा समझ रहे थे, मानों वे सदेह ही स्वर्ग-लोक की नगरी (अमरावती) में आ पहुँचे हों।

दुर्लभ स्वच्छ जल की प्यास से पीडित कोई पिपासु समीप में ही एक विशाल

सरोवर को पा लिया हो, किन्तु उसमें उतरकर जल पीने का मार्ग न पाकर अत्यन्त व्याकुल हो उठा हो—स्वर्ण-कंकणधारिणी, कोकिलवाणी (सीता) की भी वही दशा हो गई ।

(सीता रात्रि का सम्बोधन कर कहती हैं—) हे निष्ठुर रजनी ! क्या ऐसे भी लोग होते हैं, जो निर्बल व्यक्तियों के प्राण हरने का वीरवाद (डींग मारना) करते रहते हैं ? (अर्थात्, तू ऐसा ही व्यक्ति है) सूर्य का उदय होते ही मेरे प्रभु आ जायेंगे ; अतः तू शीघ्र ही बीत जा, जिससे प्रभात होने में विलम्ब न हो ।

हे मेरे मन ! नीलसूर्य-सदृश (उन राम के) चरणों के संग ही तू चला गया और उनके आने के समय ही तू उनके साथ आनेवाला है । दीर्घ समय से मेरे संग रहनेवाले मेरे मन ! एक दिन के विलम्ब को भी न सहकर इस प्रकार छोड़ जानेवाले (व्यक्ति) भी क्या संसार में होते हैं ?

तालवृक्ष पर रहनेवाले हे (चकवा) पक्षी ! यह रात्रि, जो गर्जन करते हुए सप्त समुद्रों के सदृश अपार (जान पड़ती) है, मुझ, प्रयत्नशीला (अर्थात्, राम की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करती हुई) के पाप के कारण यदि (रात्रि) व्यतीत न हो और प्रभात न होने पाये, तो क्या तू किंचित् भी न्यायान्याय का विचार न करके, एकाकी उड़ता हुआ (मेरी हत्या से उत्पन्न) अपयश का भार ढोता फिरेगा ?

तीक्ष्ण शूल और अग्नि की कठोरता तथा उष्णता को प्रकट करनेवाले आतप के सदृश ही छायी हुई हे चाँदनी ! तू ही कह, क्या इस संसार में ऐसे भी लोग होते हैं, जो निरपराध अबलाओं के प्राण हरते रहते हैं ।

सुरभि और शीतलता के आगार उष्णता को फैलानेवाले मुँह और प्रकाश-पुंज-भूत चन्द्रिका नामक दंत-समूह से युक्त होकर, मलय-पर्वत की ऊँची तथा बड़ी कंदरा में निवास करनेवाले हे दक्षिण अनिल नामक व्याघ्र ! क्या तू आहार की खोज में मेरे निकट आया है ?

वीथी में संचरण करनेवाला, कालमेघ-सदृश एक वीर है, जो दिन-रात मुझे छोड़ता नहीं है, यह कैसा न्याय है ? उच्च कुल के राजकुमारों में क्या ऐसे भी होते हैं, जो कन्याओं के निकट आ पहुँचते हैं ?

वह कठोर पुरुष (राम) विश्वास न करने योग्य कार्य करता रहता है, करुणा-हीन है और मुझे अपने संग नहीं लेता है ; उस छलिया की भुजाओं से प्रेम करना भी क्या उचित है ? (अन्धकार-रूपी) इस कालिमा-पूर्ण समुद्र की सीमा भी नहीं दीख पड़ती है ; रात्रि का समय न जाने कितने युगों का होता है !

संगीत-नाद थमते नहीं हैं (आनन्द मनानेवाले लोग संगीत गा रहे हैं, जिससे विरहिणी सीता की वेदना बढ़ रही है, उनकी ओर संकेत है) ; दिन भी नहीं आता है ; मेरी चिन्ता दूर नहीं होती है ; यह रात्रि व्यतीत नहीं होती है ; मन की व्यथाएँ मिटती नहीं हैं ; आखें लगती नहीं हैं ; क्या इस प्रकार दुःखित होना भी मेरे भाग्य में है ?

हे समुद्र ! अपने शंख (रूपी कंकणों को) गिराता हुआ तू उठ-उठकर गिरता है। तू अत्यन्त शिथिल हो जाने पर भी कभी नहीं सोता है। अतः, क्या तू भी कोई कन्या (अविवाहिता) है, जो मन्मथ के प्राणहारी बाणों से व्याकुल है ?

इस प्रकार विलाप करती हुई, पर्यंक पर लेटने में भी असमर्थ हो व्याकुलता के साथ सीता दुःख भोग रही थीं और उनके (लज्जा आदि) सहज गुणों के कारण उनकी विकलता अधिक होती जा रही थी। ऐसी रात्रि के समय, उधर अनघ (रामचन्द्र) अपने प्रासाद में, भरे हुए अन्धकार में, क्या सोच रहे थे और क्या बोल रहे थे--यह अब कहेंगे।

पहले (कन्या-प्रासाद पर) देखा, तब अनिवार्य प्रेम की प्रेरणा से, नेत्रों (की लेखनी) को लेकर मन पर उसे अंकित कर लिया, फिर (आज) सम्मुख ही मैंने उसे देखा, तो भी उस असमान सुन्दरी कन्या (के सौंदर्य) का पार नहीं पा रहा हूँ। जो बिजली को देख रहे हों, वे अन्य व्यापारों पर कैसे दृष्टि रख सकते हैं ?

हे लक्ष्मी-तुल्य सीता के मुख-मण्डल (चन्द्र)! सोचने पर ज्ञात होता है कि शाक और फल के उत्पादक काम-रूपी बीज के बढ़ने के लिए सहायक खाद तू ही है (अर्थात्, चन्द्रमा काम को बढ़ाता है, जिससे विरहावस्था में शाक का और संयोगावस्था में फल का रस मिलता है।) हे चन्द्र! तूने यह क्या किया ? मुझ, एक व्यक्ति के साथ क्या तू मित्रता नहीं कर सकता था ?

यह सर्वत्र व्याप्त अन्धकार ऐसा बढ़ गया है, मानों मेरे प्राणों को बाहर निकालने के लिए उस रमणी (सीता) के नयन ही इस प्रकार बढ़ गये हों। यह कभी क्षीण होनेवाला नहीं दीखता। यह अधिकाधिक इस प्रकार बढ़ रहा है, जिस प्रकार युद्ध में अपने प्रभु के मारे जाने पर भय के कारण युद्ध-रंग से भाग खड़े होनेवाले सैनिक का अपयश बढ़ता जाता है।

वन्य हरिण के से नयनवाली उस सुन्दरी के संग गये हुए मेरे मन! तूने मेरी चिन्ता कभी नहीं की! कदाचित् तेरा मार्ग अधिक लम्बा है (इसीसे अबतक नहीं लौटा है) या उन्होंने (सीता ने) तेरी बात नहीं पूछी है, जिससे तू अभी तक वहीं अटका हुआ है, या तू भी मुझे भूल गया है।

कठोर विष आँखों से आग उगलनेवाले, करवाल-जैसे तीक्ष्ण सर्प के दाँतों को अपना आवास बनाकर रहता है—यह कथन अतीत काल में सत्य था; किन्तु अब तो मेरे नयनों तथा मेरे मन में सदा अवस्थित (सीता की) कोमल दृष्टि में ही वह (विष) बसा हुआ है।

पर्वत-प्रदेश, पुष्पों से भरे हुए सरोवरों के परिसर, विशाल उद्यान इत्यादि अनेक स्थान (खेलने योग्य) हैं; फिर भी अलभ्य अमृत से भी अधिक मीठे बोलवाली, और चमकते कुंतलोंवाली (सीता) के लिए क्रीडा का स्थान क्या मेरा हृदय ही है ?

देवों के प्रभु (विष्णु के अवतार राम) इस प्रकार के मनोभावों से समय व्यतीत कर रहे थे, उधर (जनक ने) हाथियों पर से यह ढिंढोरा पिटवाया कि भ्रमरों को मत्त करनेवाले कुंतलोंवाली (सीता) का विवाह कल होनेवाला है; अतः पुष्पों, रत्नों तथा वस्त्रों से मिथिला नगरी सजाई जाय।

ढिंढोरे के साथ ऐसी घोषणा होते ही, वृद्ध, युवक, सुवासित केशोंवाली स्त्रियाँ, सब एकत्र हुए। (नगर को सजाने के लिए) सब उतावले होने लगे तथा अपने बंधु-मित्रों के साथ आनन्द-संलाप करते हुए उस दुर्लंघ्य रात्रि-रूपी समुद्र को पार कर लिया।

अंजनवर्ण (राम) तथा कमल पर आसीन (सीता) देवी, कल परिपूर्ण मंगल-युक्त विवाह के द्वारा परस्पर मिलेंगे—यह घोषणा होते ही दिनकर अपने अरुण करों से अंधकार को चीरते हुए ऐसे उदित हुआ, मानों अपने वंशज के विवाह के दर्शनार्थ ही आ गया हो।

कुछ लोग वंदनवार बाँधने लगे। कुछ लोग खंभों पर रंग-विरंगे कपड़े लपेट कर सजाने लगे। कुछ पूर्ण कुंभों पर वस्त्र लपेटने लगे; मेघस्पर्शी अट्टालिकाओं पर कुछ उज्ज्वल रत्न-खचित कवच डालने लगे। वेदों के तत्त्वज्ञ ब्राह्मणों को भोज देने के लिए कोई अमृतरसोपेत भोजन बनाने लगे।

हंसिनी की गतिवाली नारियाँ तथा वृषभ की गतिवाले पुरुष उस नित्य नवीन नगरी में केले और पुंगीवृक्षों को स्थान-स्थान पर गाड़ने लगे। कोई अति उत्तम मोतियों में से चुन-चुनकर भारी मुक्ताओं को पहनने लगे। कोई स्वर्णाभरण और कोई रत्नाभरण पहनने लगे।

कोई सुगंधित चन्दन तथा अगरु के अंजन को वीथियों में छिड़कने लगे। कोई पुष्पों को (वीथियों में) बिखेरने लगे। कोई इन्द्रधनुष को लजानेवाले विविध कांति-पूर्ण रत्नों से खचित प्रासादों पर अमूल्य मुक्ताओं की झालर लटकाने लगे।

(कुछ लोगों ने) किरण-पुंजों को बिखेरनेवाले भारी रत्नदीपों को और शीतल अंकुरों से पूर्ण 'पालिका' नामक (मिट्टी के) पात्रों[1] को उन स्फटिक वेदिकाओं पर सजाया, जो (वेदिकाएँ) किनारों पर के सुनहले वर्ण और अपनी श्वेतता के कारण एक साथ धूप और चाँदनी को फैला रही थीं।

(कुछ लोगों ने) मंदर पर्वत-सदृश ऊँचे सौधों के आँगनों में, इन्द्रलोक में जिस प्रकार नक्षत्रों की कांति फैली रहती है, उसी प्रकार अनन्त कांति फैलानेवाले भारी मोतियों की लड़ियों को लटकाकर 'मुतु पेंडल' (चंदोवे)[2] लगाये, जिससे धूप रुक गई।

कहीं कुछ दासियों ने हीरकों से खचित मरकत की वेदी पर स्वच्छ प्रकाशवाले दीप सजाये। चन्द्र को छूनेवाले उन्नत प्रासादों पर सूर्य-समान कांतिवाली तथा सुनहले डंडोंवाली पताकाएँ लगाईं और कोई अगरु लकड़ी को जलाकर सुगंध फैलाने लगीं।

कोई सुगंध-पुष्पों को गाड़ियों पर लादकर ला रहे थे। कुछ लोग उपवनों से पत्तों और फलों को लादकर ला रहे थे; कुछ लोग 'कुरवै'[3] नामक नृत्य करते हुए अपने कुंडलों की कांति को चारों ओर बिखेर रहे थे; कुछ लोग अन्न-पिंडों को खाकर तृप्त हुए मत्तगजों के माथों पर मुखपट्ट बाँध रहे थे।

(कुछ नारियाँ) चन्दन का लेप (अपने शरीर पर) लगा रही थीं, कोई श्रेष्ठ वस्त्र पहन रही थीं, कोई पुष्पों को अपने केशों में सजा रही थीं, निर्मल मुकुर के सामने खड़ी

---

१. विवाह आदि के अवसर पर मिट्टी के पात्रों में नव-धान्य के अंकुर उगाये जाते हैं और शुभकार्य हो जाने के पश्चात् नदियों में बहा दिये जाते हैं।

२. दक्षिण में विवाह के समय 'मुतु-पंदल' लगाते हैं।

३. 'कुरवै' नृत्य में बहुत-से नर-नारी एक दूसरे का हाथ पकड़े वृत्ताकार में नाचते हैं।

होकर कुछ स्त्रियाँ अपने चन्द्र-समान मुखों पर तिलक लगा रही थीं; कोई अपने जूड़े में गजरे सजा रही थीं, कुछ सेमल की रूई जैसे अपने कोमल अधरों पर रक्तवर्ण लगा रही थीं।

मयूर-सदृश कुछ नारियाँ, जब शृंगार कर लेतीं या अपने पतियों से मान करती हुई अपने आभरण उतार फेंकतीं, तब जो मोती, रत्न, शंख (वलय), प्रवाल-सदृश लाल और कोमल सुगंध-लेप, छूटे हुए पुष्प आदि गिर पड़ते थे, कुछ दासियाँ उन सब वस्तुओं को इकट्ठा करके महलों के बाहर फेंक देती थीं।

(कहीं) आगंतुक राजा लोग जमा थे, तो कहीं विप्र लोग इकट्ठे थे, कहीं मधुस्वरवाली वीणा का संगीत आस्वाद करनेवाले (जमा थे); तो कहीं संचरण करनेवाले 'बाण' (जाति के गायक) एकत्र थे, कहीं झुण्ड बाँधकर चलनेवाली दासियाँ थीं, तो कहीं घटिका-यंत्र में विवाह लग्न के समय की गणना करनेवाले गणक लोग थे।

कहीं गणिकाएँ इकट्ठी थीं, कहीं पर कुछ लोग विविध कलाएँ (इन्द्रजाल आदि) दिखा रहे थे। कुछ लोग राजप्रासाद के द्वार पर एकत्र हो रहे थे, जहाँ विविध देश के राजाओं के आभरणों से गिरे हुए भारी मोती तथा दीर्घ किरीटों के रगड़ खाने से गिरे हुए रत्न और स्वर्ण-चूर्ण के अंबार पड़े हुए थे।

कुछ ऐसे पुरुष घूम रहे थे, जिनकी ढालों से धूप और पैने शूलों से चाँदनी छिटक रही थी। वे युद्ध के लिए जानेवाले ऊँचे दाँतोंवाले मत्तगज के जैसे थे। कुछ सुन्दरियाँ, आनन्द-नृत्य कर रही थीं और अपने हास्य से पुरुषों के प्राण हर रही थीं।

उज्ज्वल रत्नों की चमक के कारण सर्वत्र ऐसा प्रकाश फैला था कि नयन-गोचर पदार्थ भी दृष्टि में नहीं आते थे। देवता और पुष्पालंकृत केशवाली देवांगनाएँ यह पहचान नहीं पाती थीं कि स्वर्गपुरी वहाँ (स्वर्ग में) है, अथवा यह (मिथिला) ही स्वर्गपुरी है और व्याकुल हो भटक रही थीं।

कुछ लोग रथों पर आते थे, कुछ शिविकाओं में आते थे, कुछ अन्य प्रकार के वाहनों पर आते थे, कुछ रत्नमय मुखपट्टों से अलंकृत मेघ-जैसे हाथियों पर आते थे, कुछ हथिनियों पर आते थे, कुछ पैदल आते थे और कुछ गाड़ियों पर आते थे।

कुछ मुक्ताभरणों से भूषित थे, कुछ पुराने पहने हुए रत्नाभरणों को निकालकर नवीन श्रेष्ठ स्वर्णमय विविध आभरण पहने हुए थे, कुछ (नारियाँ) पुष्पमालाओं को घुँघराले केशों में पहने हुए थीं, कुछ विचित्र अलंकारयुक्त रेशमी वस्त्र धारण किये हुए थीं।

(कुछ सुन्दरियाँ) विष-समान नयनोंवाली थीं, कुछ अमृतसमान बोलीवाली थीं, कुछ रक्त अधरवाली थीं, कुछ उज्ज्वल मंद हासवाली थी, कुछ विशाल स्तन-भार से युक्त थीं, कुछ सूक्ष्म कटिवाली थीं, कुछ हंसगामिनी थीं, और कुछ हथिनियों के सदृश चलनेवाली थीं।

उस मिथिला-नगर की समृद्धि को एक ही स्थान पर, एक ही समय में एकत्र देखना असंभव है। उसके बारे में सोचना भी दुष्कर है। ओह ! वह विवाह-दिन उतना वैभवपूर्ण था, जितना प्रकाशमान स्वर्गलोक में देवेन्द्र के मुकुट-धारण (राज्याभिषेक) का उत्सव-दिन था।

जिसकी सीमा को पहचानना कठिन है, जिस पर स्वर्णपत्र छपे हैं, जो पर्वत के जैसे ऊँचा उठा है, जिसमें विविध रत्न खचित हैं, वैसे मनोहर कंकणधारिणी सीता के विवाह-योग्य सामग्री से परिपूर्ण उस मण्डप में राजाओं के अधिराज (दशरथ) आ पहुँचे।

श्वेतच्छत्र चाँदनी छिटका रहा था; आभरण-समूह, आँखों को चौंधियानेवाले सूर्य के जैसे प्रकाश को छिटका रहा था। भ्रमर-समुदाय संगीत गा रहे थे। विजयप्रद अश्वों की टाप से उठी हुई धूल गगन को ढक रही थी। इस प्रकार (दशरथ) आ पहुँचे।

मंगल-भेरियाँ मेघ के समान गर्जन कर उठीं। शंख-वाद्य भी बज उठे। तुरहियाँ युद्ध में जिस प्रकार घोष करती हैं, वैसे ही बज उठीं। ब्राह्मणों के द्वारा उच्चरित चतुर्वेद, रात्रि के समय समुद्र के घोष के समान ही शब्दित हो रहे थे।

रथ, हाथी और घोड़े, झुण्ड-के-झुण्ड, पृथक्-पृथक् पंक्तियों में चल रहे थे। विशाल सेना-युक्त दशरथ की सेवा में निरन्तर लगे रहनेवाले राजा भी इन्द्र के समीपस्थ देवताओं के समान शोभित हो रहे थे।

चक्रवर्त्ती इस प्रकार विवाह-मण्डप में आ पहुँचे और स्वच्छ स्वर्ण के रत्नखचित आसन पर विराजमान हुए। मुनि और राजा यथाक्रम आसीन हुए, जनक भी अपने बन्धुवर्ग-सहित आसन पर आ विराजे।

राजा, मुनि, स्वर्गवासी हंस-समान मृदुगतिवाली लक्ष्मी-सदृश रमणियाँ, सब एकत्र थे, वह विलक्षण विवाह-मण्डप उस मेरु पर्वत के तुल्य था, जिसके चारों ओर प्रकाश-पिण्ड घूमते रहते हैं।

'मय' के द्वारा प्राचीन काल में निर्मित उस मण्डप में मेघ थे (दाता लोग थे), बिजलियाँ थीं (सुन्दर स्त्रियाँ थीं), अनुपम नक्षत्र थे (राजा थे), अन्य तारिकाओं के संघ (राजाओं के परिवार) भी थे, दो प्रधान ज्योति-मंडप, अर्थात् सूर्य-चन्द्र भी थे (दशरथ और जनक थे); अतः वह मण्डप मानों सृष्टि के आदि में अज (ब्रह्मा) के द्वारा निर्मित अंडगोल ही था।

आदरणीय तपस्यावाले मुनिवर, सभी राजा, देवता तथा अन्य जन उस मण्डप में एकत्र हुए थे; अतः वह पृथ्वी स्वर्ग प्रभृति समस्त अंडगोल को निगले हुए, विष्णु के नीलरत्न-तुल्य उदर के सदृश था।

भूलोक आदि सब लोकों के जन (विवाह देखने की इच्छा से) प्रेरित होकर उस मंडप में इकट्ठे हुए। अब और क्या कहना है! अब हम सर्प-पर्यंक अंडगोल को छोड़कर (अयोध्या में) अवतीर्ण हुए राघव के कार्यों का वर्णन करेंगे।

रामचन्द्र यथाविधि, उन सप्त समुद्रों के जल में, जिनमें शंख-समूह संचरण करते हैं तथा शाश्वत वेदों में प्रशंसित गंगा प्रभृति नदियों के जल में स्नान किया।

फिर ब्रह्मा से तृण-पर्यंत, समस्त प्राणिवर्ग को, उनके अनादि गाढ (अज्ञान के) अंधकार को मिटाकर दीर्घ अपुनरावृत्ति के मार्ग में (अपवर्ग में) पहुँचानेवाला अपने (अर्थात् विष्णु के) चिह्न-भूत ऊर्ध्व-पुण्ड्र[1] को धारण किया।

---

१. इस पद्य में ऊर्ध्व-पुंड्र का माहात्म्य कहा गया है।

मीन के जैसे नेत्रवाली कन्याओं का, वेदज्ञ ब्राह्मणों को वेद-विहित रीति से दान किया। निष्कलंक तपस्यावाले अपने पूर्वज, जिनकी उपासना (कुलदेव के रूप में) करते रहे हैं, उन आदि ज्योतिस्वरूप (रंगनाथ)[1] के चरणों को प्रणाम किया।

(राक्षसों के द्वारा) नष्ट की जानेवाली तपस्या तथा धर्म के उद्धार के लिए निरन्तर वर्त्तमान रहनेवाली (भगवान् की) करुणा ही इस आकार में आई हो, इस प्रकार भासित होनेवाले, चित्रित करने के लिए भी दुष्कर (अर्थात्, उतने सुन्दर राम) ने अपने शरीर पर चन्दन-रस का लेप किया। वह दृश्य ऐसा था, मानों काले मेघ पर ज्योत्स्ना छा गई हो।

उमड़नेवाले अपार सागर ने मंगलप्रद तथा सर्व कलाओं से पूर्ण चन्द्रमा को अपने मध्य विकसित पाया हो, इस प्रकार का दृश्य उपस्थित करते हुए राम ने 'किडै' (नामक लाल जटामांसी), लाल स्वर्ण के हार और पुष्पमालाओं को ऐंठकर अपने केशों में धारण किया।

(राम के दोनों कानों में) दो कुण्डल इस प्रकार शोभित हुए, मानों रात्रि और दिन में (सीता की) विरह-पीडा को देखकर, सूर्य और चन्द्रमा दूत बनकर (राम के पास) आये हों और सीता के मनोभावों को राम के कानों में कह रहे हों।

नील विष को कंठ में धारण करनेवाले, परशु-आयुधधारी (शिव) ने अपनी दीर्घ जटा पर चन्द्र की एक कला धारण की थी, अब (मानों उनकी शोभा को मंद करने के लिए ही राम ने) सब ज्योतिर्मय देवताओं (सूर्य, अग्नि, नक्षत्र आदि) को अपने सिर पर धारण कर लिया हो, इस प्रकार (राम ने) 'वीरपट्ट' (नामक आभरण) तथा, 'तिलक', (नामक आभरण) धारण किये।

(विष्णु के) चक्रायुध के निकटस्थ शंख की समता करनेवाले, अति सुन्दर (राम के वदन के निकटस्थ) कंठ में लता-सदृश उज्ज्वल मुक्ताहार शोभायमान था, वह ऐसा लगता था, मानों घने कोमल कुन्तलोंवाली (सीता) के मंदहास (राम के) मन में भर गये हों और अब शरीर के बाहर भी उमड़ रहे हों।

(राम ने) अंगद धारण किये, जिसमें पंक्तियों में जड़े हीरे बिंदियों के समान चमकते थे और लाल माणिक्य अग्नि के जैसे लगते थे, अतः (उनकी) सुन्दर भुजाओं पर के अंगद, प्राचीन काल में (क्षीरसागर के मंथन के समय) मन्दर को लपेटे रहनेवाले वासुकि सर्प के समान दिखाई देते थे।

मुक्ताओं की बड़ी-बड़ी मनोहर लड़ियाँ (राम की) रक्षा करनेवाली दीर्घ-बाहुओं में बाँधी गईं, वे अतिविलक्षण आभरण मानों इस बात के चिह्न हों कि तीनों भुवनों के अनादि प्रभु यही हैं।

उनके, देखने योग्य (अति सुन्दर) करों में 'कटक' आभूषण चमक उठे, मानों

---

१. वाल्मीकि रामायण से विदित है कि रंगनाथ ही इक्ष्वाकु-वंश के राजाओं के कुलदेव थे; श्रीरंगम (जिला तिरुचिरापल्ली) के क्षेत्र-पुराण से भी यही बात मालूम होती है।—अनु०

कल्पक वृक्ष, अपने याचकों को दान देने के लिए, भव्य रत्न और स्वर्ण-वलयों को अपनी पुष्ट शाखाओं में लिये खड़ा हो।

मधुपूर्ण कमलपुष्प की देवी (लक्ष्मी) जिस वक्ष पर निरंतर क्रीडा करती हैं, उसके मध्य सुन्दर हार ऐसे चमक रहे थे, जैसे बिजली से शोभायमान मेघों के मध्य इन्द्र-धनुष चमक रहा हो।

उनका उत्तरीय उन ज्ञानियों के निर्मल ज्ञान के समान उज्ज्वल था, जो किसी वस्तु को अपनाने या त्यागनेवाली स्वाधीन इच्छा रखते हैं, मानों राम की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई असीम करुणा ही, उनके मुक्ताहार की कांति के सदृश ही, उस उत्तरीय के रूप में पड़ी हो।

जिनके समीप में जाना भी दुष्कर है, ऐसे प्रकाश से पूर्ण तीन ज्योतियों (अर्थात् सूर्य, चन्द्र और अग्नि) के जैसा चमकता हुआ उनका यज्ञोपवीत, मानों संसार के सब लोगों को यह बताने के लिए ही तीन सूत्रों को एक रूप में बाँधकर बनाया गया हो कि त्रिमूर्तियों का स्वरूप स्वयं यह राम ही है।

(राम की कटि में 'उदर-बंधन' नामक आभरण बाँधा गया।) चारों दिशाओं में अत्यधिक स्वर्णिम आभा को फेंकता हुआ, मध्य में एक बड़े रत्न से जाज्वल्यमान 'उदर-बंधन' ऐसा लगता था, मानों एक दूसरे अंडगोल के स्रष्टा ब्रह्मा को उत्पन्न करनेवाला एक बड़ा स्वर्ण-कमल विष्णु की नाभि से विकसित हुआ हो।

उन्होंने श्वेतवर्ण का कौशेय धारण किया, मानों उज्ज्वल रत्नों के आगार, महिमापूर्ण नील समुद्र को, (तरंग-रूपी) दीर्घकरों के युक्त, शीतल श्वेतवर्ण के क्षीर सागर ने आलिंगन-बद्ध कर लिया हो।

समुद्र के जल में उत्पन्न मुक्ताएँ और उज्ज्वल-नील रत्न, जिस करवाल में चमक रहे थे, वह (करवाल) उनके कमनीय स्वर्णपट्ट में बाँधा गया, जैसे ऊँचे स्वर्ण पर्वत (मेरु) की परिक्रमा करनेवाला सूर्य एक ही स्थान पर स्थिर खड़ा रह गया हो।

उनकी कटि के पट्ट में श्रेणियों में जो मुक्ताएँ जड़ी थीं, उनकी धवल कांति का पुंज, उत्तरोत्तर विकसित होता हुआ, चारों ओर बिखर रहा था। कटि से एक रत्न-माला लटकाई गई, जो कमनीय खड्ग रूपी सूर्य के बालातप के सदृश चमक रही थी।

(उनकी जंघाओं पर 'किंपुरी' नामक आभरण पहनाया गया, जिसका आकार खुले मुखवाले मकर के समान था।)

किंपुरी नामक आभरण में जो मकर के आकार का था, उसके नेत्रों के स्थान में खचित रत्नों की कांति फैल रही थी तथा दाँतों (के स्थान में खचित मुक्ताओं) की कांति चाँदनी के समान छिटक रही थी। नक्काशीदार उस आभरण ने चमकती बिजली के समान सभी दिशाओं को प्रकाश से भर दिया।

अब देखेंगे कि (ये चरण) विशाल होकर कैसे लोकों को नापते हैं—यों सोचकर मानों पृथक्-पृथक् रूप में उनको रोकने के लिए ही, अति सूक्ष्म शिल्प-युक्त नूपुर और वीर वलय उनके शीतल, पुष्ट, रक्तकमल-सदृश चरणों को घेरकर पड़े रहे।

माणिक्य-दीपों से प्रज्वलित पन्नग-पर्यंक पर योगनिद्रा छोड़कर जो (विष्णु) अवतरित हुए हैं, वे इस प्रकार दैवकार्य के निमित्त विलक्षण अलंकार से सुशोभित हो गये।

(त्रिमूर्त्ति-रूपी) तीन परम तत्त्वों में जो प्रधान है, जो सृष्टि का आदि कारण है, जो संसार के संबंध को त्यागनेवालों के द्वारा प्राप्यमान ब्रह्मानन्द-स्वरूप है, तथा जो सर्व-पिता है, उस क्षीर-सागर से उत्पन्न अमृत-तुल्य (विष्णु के अंशभूत) श्रीराम ने जो अलंकार किया था, उसका वर्णन करना क्या संभव है ?

अनेक सहस्र गायें, पीत स्वर्ण, असीम भूमि, नव रत्न आदि का सत्पुरुषों को दान दिया ; प्रशंसनीय चतुर्वेद ही जिनके धन हैं, वैसे (ब्राह्मणों) के द्वारा अभिनन्दित होते हुए (राम) रथ पर आरूढ हुए।

स्वर्ण की धुरीवाला, रजतमय योग्य चक्रों से अलंकृत, हीरकों से खचित पीठिका-युक्त तथा चारों ओर से जड़ित नवरत्नों की कांति से जाज्वल्यमान वह रथ, सूर्य के एक-चक्र रथ की तुलना करता था।

शास्त्रोक्त (उत्तम) लक्षणवाले, ध्यान के द्वारा जानने योग्य, शक्ति से पूर्ण, प्रभूत सौंदर्यवाले, धर्म आदि चार पुरुषार्थों के जैसे चार अश्व, संसार की प्रकृति को जाननेवाले (राम) के रथ में जोते गये।

इस प्रकार के रथ पर, अरुण के समान ही, आनन्दाश्रु से पूर्ण नेत्रवाले भरत, वेत्र धारण करके (सारथि बनकर) आसीन हुए। वक्र धनुष-धारी लक्ष्मण तथा उनके अनुज शत्रुघ्न सुन्दर सोने की मूठवाले चामर डुलाने लगे।

अन्यों के लिए दुर्लभ, अति रमणीय आकारवाले (राम) के अत्यधिक सौंदर्य के कारण वैसा हुआ, या शांत मन से (राम के सौंदर्य का) चिंतन करते रहने के कारण वैसी दशा हुई—हम कुछ निश्चित रूप से नहीं जानते। चाहे जो भी कारण हो, (इस दृश्य को देखकर) इस पृथ्वी के लोग अनिमेष (अर्थात्, पलक न मारनेवाले देवता) हो गये।

(मिथिला के लोगों ने) पुष्प बरसाये ; सुगंध-चूर्ण बिखेरा ; कांतिवाले रत्न, स्वर्ण, वस्त्र आदि (दान में) दिये ; उस मंगल-पूर्ण नगर के लोगों के ऐसे कार्यों का क्या कारण है, नहीं जानते। कदाचित्, उन्होंने (राम के) सौंदर्य (रूपी मद्य) को छककर पी लिया हो। (जिससे उन्मत्त होकर इस प्रकार के कार्य कर रहे हों।)

राम को देखनेवाली सब नारियाँ स्तब्ध हो खड़ी रहीं और उनके सब आभरण खिसककर गिर गये ; वह दृश्य ऐसा था, मानों सारी संपत्ति का दान करने के पश्चात् वे अपने पहने हुए आभरण भी लुटा रही हों।

समस्त संसार के सब आयुधधारी राजा लोग, हाथियों के झुंड के जैसे, (राम को) घेरकर आ रहे थे और निष्ठुर क्रोधवाले धनुर्धारी (राम) विजयी चक्रवर्ती (दशरथ) से अधिष्ठित मण्डप के निकट रथ से जा पहुँचे, जैसे अरुण-किरण सूर्य ऊँचे महामेरु पर जा पहुँचा हो।

ताजे फूलों के हार से शोभित वह वरद (राम) उस मण्डप के निकट रथ से उतरे ; उनके दोनों पार्श्वों में भरत तथा लक्ष्मण उनके दोनों बाहुओं को आदर के साथ

सहारा देते हुए जा रहे थे; मण्डप में पहुँचते ही उन्होंने (राम ने) महान् तपस्वी मुनिवरों को प्रणाम किया; फिर नीति-व्रतधारी अपने पिता के चरणों को नमस्कार करके (उनके) पार्श्व के आसन पर आसीन हो गये। तब—

मानों कोई अरुण स्वर्ण की लता, एक धनुष और दो मछलियों से शोभायमान चन्द्र को उठाये हुए, कलियों के साथ, रथ पर पूर्वदिशा में उदित हो रही हो, ऐसा दृश्य उपस्थित करती हुई जानकी उस मण्डप के मध्य आ पहुँची, जैसे (लक्ष्मी) पहले तरंगायित क्षीर सागर में उत्पन्न होकर, फिर भूमि पर अवतरित हो गई हो और अब किसी पर्वत के मध्य आविर्भूत हों।

विभूतियों से समृद्ध सब देवता लोग (उस मण्डपों में) आसीन कुमार (राम) को देखकर कहने लगे—भरे हुए बड़े सागर को मंथन करने से उत्पन्न, सुवासित कुंतलोंवाली (लक्ष्मी) ने जिस दिन (विष्णु को विवाह के चिह्नभूत) माला पहनाई थी, उस दिन से भी यह दिन अधिक मनोहर है।

जब, गर्जन करनेवाले समुद्र से घिरी हुई धरती की नारियों, देवांगनाओं तथा नाग-कन्याओं से भी (सीता) का लावण्य अत्यधिक है, तो उनके विवाह के समय (उनके) बढ़े हुए सौंदर्य का, अल्प बुद्धिवाला मैं किस मुँह से वर्णन कर सकता हूँ?

(विवाह की वह) शोभा देखने के लिए अंतरिक्ष में इन्द्र, शची के साथ आ पहुँचा। चन्द्रशेखर (अपनी) उमा के साथ आ पहुँचे: कमलासन भी वाणी देवी के साथ आ पहुँचे।

यज्ञोपवीत से शोभित वक्षवाले अपार समुद्र के सदृश वेदज्ञों के संघ से घिरे हुए वसिष्ठ, परिपाटी के अनुसार उस समारोह-पूर्ण विवाह को संपन्न कराने के लिए निर्दोष उपकरण (आदि) लेकर आनन्द के साथ आ पहुँचे।

(उन्होंने) तंडुल[1] फैलाकर उसपर दर्भों को बिछाया। वेदोक्त विधान से (अग्नि-स्थापना के लिए उचित) स्थानों को निर्मित किया। कोमल पुष्पों को उन स्थानों के चारों ओर बिखेरा। होमाग्नि प्रज्वलित की और अनादि वेदमंत्रों का यथाविधि उच्चारण किया।

विवाह की वेदी पर आकर, विजयी वीर, महानुभाव (राम) और प्रेमभरी (उनकी) संगिनी, हंस-तुल्य गतिवाली (सीता) विवाहोचित आसन पर आसीन हो गये। एक साथ आसीन वे दोनों क्रमशः ब्रह्मानन्द और (उसके उपायभूत) योग की समता करते थे।

चक्रवर्त्ती के कुमार के सम्मुख (स्थित होकर) जनक ने कहा —'परतत्त्व (विष्णु) तथा लक्ष्मी देवी के सदृश तुम मेरी रूपवती पुत्री के संग चिरजीवी रहो! और, यह कहकर स्वच्छ शीतल जल-धारा को (राम के) रक्तकमल सदृश विशाल हाथ में दिया। (अर्थात्, जनक ने अपनी कन्या को राम के प्रति प्रदान किया।)

१. कुछ विद्वानों ने मूल में, तंडुल, के स्थान पर, 'तंडिला' पाठ को माना है, जो संस्कृत, स्थण्डिल, का रूपान्तर माना गया है, जिसका अर्थ होता है 'मिट्टी का आस्तरण'। यह अर्थ भी उपयुक्त मालूम होता है।—अनु०

ब्राह्मणों के आशीर्वाद-घोष, आभरणों के सदृश सौंदर्य को बढ़ानेवाली नारी-मणियों के अभिनन्दन-गानों के घोष, पुष्पालंकृत शिखावाले राजाओं तथा वंदनीय देवों के आशीर्वाद-घोष—इनके समान ही उत्तम शंख-वाद्य भी निनादित उठे ।

देवों के बरसाये कल्पक-पुष्प, राजाओं के बरसाये सोने के पुष्प, अन्य लोगों के बरसाये उज्ज्वल मोती और स्वयं विकसित पुष्प—इनसे यह पृथ्वी नक्षत्रों से प्रकाशमान आकाश की तरह शोभित हो उठी ।

वीर (रामचन्द्र) ने, उस समय, सभी पवित्र मंत्रों का उच्चारण करके, प्रज्वलित अग्नि में घृत की आहुतियाँ दीं और सुन्दरी (जानकी) के पल्लव-कोमल पाणि का अपने विशाल शुभ हस्त से ग्रहण किया ।

उचित होम करनेवाले, विशाल भुजाओं से शोभायमान (राम) के संग जब (सीता) प्रज्वलित अग्नि की परिक्रमा (भाँवरी) करने लगीं, तब सहज मुग्धता से युक्त वह देवी ऐसी लगीं, जैसे परिवर्त्तनशील जन्म-चक्र में कहीं देह, आत्मा का अनुसरण करती जा रही हो । (आत्मा शरीर की खोज में जाती है, किन्तु शरीर आत्मा का अनुगमन नहीं करता । यहाँ पर इस 'अभूतोपमा' में कवि की एक विलक्षण, किन्तु अतिसुन्दर उद्भावना है ।)

सुन्दर तीन धागों के कंकण से युक्त उन दोनों ने होमाग्नि की प्रदक्षिणा करके नमस्कार किया । अन्य कर्त्तव्य कर्म सम्पन्न किये । कांतिपूर्ण सिल पर पद रखा ।[1] फिर, सम्मुख-स्थित, अचंचल पातिव्रत्यवाली अरुंधती (नक्षत्र) को देखा ।

(राम ने) अन्य कर्त्तव्य पूरा करके, आनन्द-भरे, महातपस्वियों के चरणों से सिर लगाया । फिर, चक्रवर्ती (दशरथ) के चरणों की वंदना की और स्वर्ण-कंकणधारिणी सीता का कर अपने हाथ में लेकर अपने मनोहर भवन में जा पहुँचे ।

भेरियाँ गर्जन कर उठीं, शंख बज उठे, चतुर्वेदों के घोष हो उठे, देवता आनन्द-घोष कर उठे, विविध शास्त्र तथा अभिनन्दन-गीत प्रतिध्वनित हुए, भ्रमर-समुदाय भी गुंजार कर उठे और समुद्र भी गर्जन कर उठे ।

(राम ने) केकय-पुत्री के प्रकाशमान चरणों को, अपनी जननी के प्रति प्रेम से भी अधिक प्रेम के साथ नमस्कार किया । अपनी माता के चरणयुग को सिर पर धारण किया और फिर निष्कलुष मन से सुमित्रा के चरणों को प्रणाम किया ।

हंसिनी (सीता) ने भी उन तीनों देवियों के मनोहर स्वर्ण-सदृश चरण-कमलों को अपने सिर का भूषण बनाया । उन देवियों ने उमंग भरे मन से कहा—यह (हमारे) कुमार का भव्य आभरण बनी रहेंगी और अविचल पातिव्रत्यवती अरुंधती भी इसे (आदर्श के रूप में) देखेंगी ।

फिर उन देवियों ने शंख-वलयों से भूषित, कोकिल-स्वरवाली जानकी को अंक

---

१. दक्षिण में विवाह के समय अग्नि-प्रदक्षिणा करने के पश्चात् वधू सिल पर अपना दाहिना पैर रखती है और वर उसके अँगूठे का स्पर्श कर एक मंत्र का उच्चारण करता है ।—अनु०

में भरकर कहा —रमणीय नयनवाले (राम) की पत्नी बनने योग्य इसके अतिरिक्त कोई दूसरी नारी कहाँ है ? सीता को देख-देखकर उनकी आँखें आनन्द से भर गईं और उनके मन उमंग से भर गये।

उन्होंने अपनी पुत्रवधू को आशीर्वाद दिया और कहा कि स्त्री-समुदाय के भूषण-जैसी तुमको असीम स्वर्ग, असंख्य अपूर्व आभरण, (दासियों के रूप में) असंख्य सुन्दरियाँ, विशाल भूप्रदेश और अमूल्य रेशमी वस्त्र आदि स्त्री-समुदाय के भूषण प्राप्त हों। यह कहकर उन्होंने कई आभरण आदि उन्हें दिये।

पवन से तरंगायित समुद्र-जैसे नील वर्णवाले करुणासमुद्र (राम), शास्त्र-समुद्र स्वरूप मुनियों का आदेश पाकर, आनन्द-समुद्र बने हुए मनवाली (सीता) के साथ अपने पुरातन पर्यंक क्षीर-समुद्र जैसे पर्यंक पर जा पहुँचे।

[इस पद्य में 'समावेशन' नामक विधान की ओर संकेत है, जिसमें दंपती ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए एक साथ रहकर चार रात्रि व्यतीत करते हैं।]

मीन मास (फाल्गुन) के उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र-युक्त दिन में सहस्र नामवाले सिंह-सदृश (राम) का विवाह सम्पन्न हुआ, और उसके योग्य मंगलप्रद होमाग्नि को वसिष्ठ मुनि ने समृद्ध किया।

अकलंक जयशाली (जनक) ने (दशरथ आदि) बन्धु-जनों से परामर्श करके निश्चय किया कि अपनी दूसरी पुत्री (ऊर्मिला) तथा अपने अनुज की दो पुत्रियाँ (मांडवी और श्रुतकीर्त्ति) इन तीनों लक्ष्मी-सदृश कन्याओं का विवाह राम के तीनों भाइयों के साथ कर दिया जाय।

पुष्पमालाधारी जनक और घृतसिक्त शूलधारी कुशध्वज नामक उनके अनुज, दोनों की तीन पुत्रियों के साथ, जो सभी योग्य गुणों से शोभित थीं, काजल लगी आँखोंवाली थीं, और सुन्दरियों के सदृश रमणीय थीं, और प्राप्तवय थीं, तीनों (लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न) ने विवाह कर लिया।

उन सब (भाइयों) का विवाह सम्पन्न होने के पश्चात् चक्रवर्त्ती (दशरथ) अनेक वर्षों से अर्जित अपने यशमात्र को छोड़कर, उसके अतिरिक्त अन्य सब प्रकार की सम्पत्ति का दान कर दिया और जिसने जो-जो और जितना भी माँगा, उसको वह सब दे दिया।

(इस प्रकार) दान करके चक्रवर्त्ती दशरथ विलक्षण तथा असीम आनन्द को प्राप्त हुए, फिर वेद-शास्त्रों के मर्मज्ञ तथा महातपस्वी मुनियों के साथ, उस (मिथिला) नगर में विश्राम करते रहे। इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए। उसके पश्चात् क्या घटित हुआ, वह (आगे) कहेंगे। (१—१०४)



अध्याय २२

परशुराम पटल

जनक-पुत्री के संग श्रीराम नानाविध भोगों का उचित प्रकार से अनुभव कर रहे थे। उस समय महातपस्वी कौशिक, वेद-विहित रीति से आशीर्वाद देकर, उत्तर दिशा में अत्युन्नत हिमालय की ओर चले।

एक दिन बलशाली चक्रवर्त्ती (दशरथ) ने आदेश दिया कि हमारी सेना अब हमारे साथ सुन्दर (अयोध्या) नगर के लिए प्रस्थान करे। हाथियों के जैसे नरेशों से वंदित होते हुए, वे एक अनुपम रथ पर आरूढ हुए।

सर्व प्रकार के बलों से युक्त दशरथ (अयोध्या के) मार्ग पर आ पहुँचे; उस समय, उनके पुत्र तथा पुत्रवधुएँ उनके चरण की वंदना करके उनके संग हो लिये। राजकुमार तथा अन्य लोग उनके पार्श्वों में चलने लगे। मिथिला नगर की प्राचीन जनता भी उनके वियोग से ऐसा दुःख अनुभव करने लगी, जैसा प्राणों के वियोग से शरीर को होता है।

दीर्घ किरीटधारी (दशरथ) यथाविधि आगे-आगे जा रहे थे और उस मनोहर महानगर मिथिला के निवासियों के मन उनके पीछे-पीछे चल रहे थे। उनके मध्य में, अपने ही सदृश (अपने) भाइयों के द्वारा अनुगत होते हुए, वीर (राम) मेघस्थ बिजली-सदृश कटिवाली (सीता) के साथ सुन्दर ढंग से चलने लगे।

वे जब इस प्रकार जा रहे थे, तब मयूर उनके दक्षिण की ओर आये (जो शुभ-शकुन था) और कौए आदि पक्षी बाईं ओर जाकर उनके मार्ग में बाधा उपस्थित करने लगे (जो अपशकुन था)। यह देखकर गजतुल्य (दशरथ) यह सोचकर कि 'मार्ग में कुछ बाधा उपस्थित होनेवाली है', अपने आकाशस्पर्शी रथ के साथ आगे न बढ़कर मार्ग के मध्य में ही रुक गये।

इस प्रकार रुककर उन्होंने एक शकुन-शास्त्रज्ञ को बुलाकर पूछा कि ये (शकुन) अच्छे हैं या कुछ विपदा आनेवाली है? तुम निष्पक्ष होकर सच-सच बताओ। तब पर्वत-तुल्य भुजावाले उन चक्रवर्त्ती के सम्मुख पक्षियों के संकेत को पहचाननेवाले उस व्यक्ति ने कहा—अब कुछ बाधा उपस्थित होनेवाली है, किन्तु फिर वह दूर हो जायगी।

शकुनज्ञ यह कह ही रहा था; इतने में (परशुराम), जिनकी जटाओं से आकाश के अन्धकार को दूर करनेवाली कांति चारों ओर बिखर रही थी, जिनके हाथ में फरसा था, जो चलनेवाले स्वर्ण-पर्वत के सदृश थे, जो अग्नि उगलते थे, जो अग्नि के समान भयंकर नेत्रवाले थे और जो वज्र-सदृश कठोर वचन-युक्त थे, वहाँ आ पहुँचे।

(उनको देखकर) उद्वेलित समुद्र में फँसी हुई नौका के जैसे लोग डगमगा उठे; महान् दिग्गज, जो स्तंभ के जैसे धरती को धारे खड़े थे, डिग उठे; समुद्र बौखलाकर उमड़ गये और स्थानांतरित होने लगे; स्वर्ग के निवासी भयभीत हो अपना-अपना स्थान छोड़ भागने लगे; रक्तस्वर्ण का एक धनुष झुकाकर, उसकी डोरी को चढ़ाकर टंकारित करते हुए तथा उसपर तीक्ष्ण बाण चुन-चुनकर रखते हुए (परशुराम) आये।

निकटस्थ लोग सोचने लगे—खुले हुए व्रण से प्रवाहित रक्त के जैसे (लाल) नेत्रों से अग्नि-ज्वाला प्रसारित करनेवाले (इन परशुराम) का यह कोप किसलिए उत्पन्न हुआ ? क्या स्वर्ग को धरती पर गिराने के लिए ? भूलोक को आकाश में उठाने के लिए ? या असंख्य प्राणियों को यम के मुख में डालने के लिए ? (किसलिए ये कोप कर रहे हैं ?)

युद्ध के मध्य तीव्र हो उठनेवाले परशु के अग्र भाग से अग्नि-शिखा प्रज्वलित हो उठी। जिससे रथारूढ होकर (मेरु) पर्वत की परिक्रमा करनेवाला सूर्य भी दिग्भ्रांत हो भटकने लगा। (उनके शरीर से) ऐसा प्रज्वलित तेज निकल पड़ा, मानों समुद्र में रहनेवाली वडवाग्नि ही आकाश तक उठकर प्रज्वलित होती हुई धरती पर चली आ रही हो।

उनकी वलिष्ठ भुजाएँ दिगन्तों में जा फैलीं। चारों ओर बिखरी हुई उनकी जटामय शिखा नभ को छू रही थी। श्वेत चन्द्र भी उनके अतिनिकट दिखाई देता था। वे समुद्र, जल, अग्नि, वायु, भूमि, आकाश सबके विनाशकारी, कल्पांत के समय में तांडव करनेवाले उमापति (रुद्र) की समता कर रहे थे।

(ऐसे वे परशुराम आ पहुँचे) जिनके पास अति तीक्ष्ण धारवाला ऐसा फरसा था, जिसका प्रयोग करके उन्होंने सैकत वेला-युक्त समुद्र से घिरे हुए समस्त भूलोक पर छा जानेवाली वलशाली सेना से विशिष्ट तथा पराक्रमी नरेशों से तिलकायमान (कार्त्तवीर्यार्जुन) रूपी सजीव महावृक्ष की एक सहस्र उन्नत भुजा-रूपी वज्रमय शाखाओं को काट दिया था।

क्षत्रिय-कुल पर एक कलंक (जमदग्नि की हत्या के कारण) लग गया था, जिससे परशुराम ने भूलोक के राजसमूह का समूल नाश करते हुए अपने परशु से इक्कीस पीढ़ियों तक उनके प्राण हरे थे, भूमि के पापों का उन्मूलन किया था और उमड़ते समुद्र-जैसे तरंगायित उनके रक्त-प्रवाह में डूबकर अकेले ही गोता लगाया था।

क्षमास्वरूप महान् तपस्या तथा जलानेवाली अग्नि-स्वरूप महान् कोप—ये जिसमें अत्यधिक मात्रा में थे, अस्त्र-प्रयोग की स्पर्धा में जिनके सम्मुख शिथिल पड़कर कार्त्तिकेय बीच में ही (स्पर्धा छोड़कर) चले गये थे और जिन्होंने क्रोध के साथ विलक्षण तीक्ष्ण बाणों का प्रयोग करके उच्च शिखरवाले (क्रौंच) पर्वत में ऐसा छेद कर दिया था, जो ऊँचे उड़नेवाले पक्षियों के लिए (आने-जाने का) एक सुन्दर मार्ग बन गया था।[1]

जो अनायास ही पर्वतों को (भूमि में) धँसा सकते थे, समुद्रों को बहा देने में समर्थ थे और जिन्होंने मेघस्पर्शी पर्वत को भेद दिया था, वे परशुधारी वहाँ आ

१. यह कथा प्रसिद्ध है कि सुब्रह्मण्य और परशुराम ने शिवजी से अस्त्र-विद्या प्राप्त की। अस्त्र-विद्या की परीक्षा के समय सुब्रह्मण्य बाणों से क्रौंच पर्वत को भेद नहीं सके ; किन्तु परशुराम ने अपने बाणों का प्रयोग कर उसमें छेद कर दिया। उसके पश्चात् सुब्रह्मण्य ने अपना भाला फेंककर उस पर्वत को तोड़ दिया। उस पर्वत के शिखर के गिरने से दक्षिण दिशा में सरोवर ध्वस्त हो गये। तब वहाँ के हंस परशुराम-कृत छेद के मार्ग से क्रौंच पर्वत के उत्तर में पहुँच गये और हिमालय के मानस में निवास करने लगे।—अनु०

पहुँचे। प्रभु (रामचन्द्र) के जन्म के कारण-भूत दशरथ चक्रवर्त्ती ने उन्हें देखा और उस कठोर व्यक्ति के आगमन से आशंकित होकर भारी वेदना से ग्रस्त हो गये।

उमंग से चलनेवाली सेना भयग्रस्त हो इधर-उधर भागने लगी ; उज्ज्वल भृकुटियों को परस्पर सम्मिलित कर (भौंहें सिकोड़कर), आँखों से चिनगारियाँ उगलते हुए, वज्र के सदृश, अत्यन्त क्रोध के साथ, वे (परशुराम) रथ पर आनेवाले सिंह के समान कुमार के सम्मुख आये ; मनोहर नयनवाले नृप-कुमार (राम) भी यह सोचने लगे कि यह महात्मा कौन हैं ? इतने में—

चक्रवर्त्ती (दशरथ) बीच में आ पहुँचे और अति सुन्दर सत्कार करके अपने सुवासित सिर को धरती पर लगाकर उनके चरणों को प्रणाम किया ; किन्तु (उनकी परवाह न करके) वे अपने कोप का पार न पाकर कल्पांत की अग्नि-ज्वाला फैलाते हुए वीर (राम) के सम्मुख आकर बोले—

जो धनुष टूट गया, उसकी शक्ति को मैं जानता हूँ। अब तुम्हारी स्वर्ण-भूषित भुजा के बल की परीक्षा करने की मेरी इच्छा है। युद्ध करके पुष्ट हुई मेरी भुजाओं में कुछ खुजलाहट भी हो रही है यहाँ मेरे आगमन का कारण यही है ; दूसरा कुछ नहीं।

जब वे (राम से) ये वचन कह रहे थे, तब चक्रवर्त्ती ने घबराकर उनसे निवेदन किया—आपने सारी भूमि को जीतकर एक मुनि (काश्यप) को दान कर दिया था। आप जैसे कृपालु के लिए शिव, विष्णु और ब्रह्मा भी कोई वस्तु नहीं हैं, (तो) ये क्षुद्र मनुष्य किस वित्ते के हैं ? अब यह (मेरा पुत्र) और मेरे प्राण आपकी शरणागत हैं।

(दशरथ ने आगे कहा—) आग उगलनेवाले परशु को धारण करनेवाले ! महान् पापों को इच्छा-पूर्वक करनेवाले ही तो मरण के पात्र होकर (आपके द्वारा) मृत्यु प्राप्त करते हैं ? क्या इस (राम) ने अहंकार के मद में बुद्धि-भ्रष्ट होकर कोई अपराध किया है ? युद्ध करने योग्य बलवानों के निकट न जाकर निर्बल व्यक्तियों के पास जाने से बलवानों के बल की क्या शोभा हो सकती है ?

हे अपार तपस्या-संपन्न ! आपने सप्तद्वीपमय पृथ्वी पर एकाधिकार प्राप्त करने के पश्चात् उसे (पृथ्वी को) 'लो, तुम इसे अपनाओ', कहकर (काश्यप को) दे दिया था। अब फिर ऐसा काम न कीजिए। विशाल शीतल समुद्र से आवृत भूमि पर स्थित नरपतियों पर कृपा कीजिए और अपना कोप शांत कीजिए। क्या आपका यह कोप उचित है ?—यों विविध प्रकार की बातें कहीं।

(दशरथ ने आगे कहा—) उस पराक्रम से भी क्या होता है, जो निष्पक्ष न हो, केवल बढ़ा हुआ हो और सब लोग जिसकी निन्दा करते हों। क्या उस पराक्रम से कोई धर्म-कर्म पूर्ण हो सकता है ? बल या पराक्रम वही तो (सार्थक) होता है, जो धर्म-मार्ग पर स्थित हों और श्रेष्ठ यश से संयुक्त हों। हे पराक्रमी ! (आप जो अब करने को उद्यत हो रहे हैं) क्या यह पराक्रम कहलाने योग्य है ?'

'मेरा पुत्र (आप से) वैर करनेवाला नहीं है। हे उपलस्तंभ-सदृश भुजावाले ! यदि यह (पुत्र) प्राणहीन हो जाये, तो मैं अपने बंधु-जन तथा प्रजा के साथ प्राण-त्याग

करूँगा और स्वर्ग प्राप्त करूँगा। हे महात्मन्! मैं आपका चरण-दास हूँ। मेरे कुल-सहित मुझे न मिटा दें। आप से मेरी यही विनती है।

यों प्रार्थना करनेवाले अपने पैरों पर पड़े हुए (चक्रवर्त्ती) को (परशुराम ने) कुछ वस्तु ही नहीं समझा, किन्तु प्रज्वलित दृष्टि से देखकर वे स्वर्ण रंग के वस्त्रधारी (राम) के सम्मुख आ पहुँचे; उनकी यह निष्ठुरता देखकर तथा अपना कोई उपाय फलीभूत होते न देखकर (दशरथ) विकल-प्राण हुए और बिजली को देखे हुए साँप के समान मूर्च्छित हो गये।

मानधन मुकुटधारी (चक्रवर्त्ती) की मूर्च्छा की कुछ परवाह न करनेवाले तथा स्वयं उनको (परशुराम को) भी वैसी ही दशा में पहुँचानेवाला जो कर्म-परिपाक उन्हें घेर रहा था, उसे दूर करने का उपाय न जाननेवाले उन्होंने (परशुराम ने) कहा—'डमरुधारी उमापति वह पुराना का धनुष शक्तिहीन हो गया था। उसका पुराना वृत्तान्त तुम सुनो—

भूलोकवासियों के लिए अप्राप्य शिल्प-निपुणता से युक्त विश्वकर्मा ने पुरातन काल में एक चक्रवाले रथ पर आरूढ (सूर्य) की भ्रांति उत्पन्न करनेवाले, अति प्रकाशमान, तोड़ने में दुष्कर तथा संचरणशील मेघों से आवृत उत्तर मेरु के वल से युक्त, दो अनुपम धनुष निर्मित किये।

उनमें से एक को उमापति ने ग्रहण किया, दूसरे धनुष को, विराट् रूप धारणकर सारे विश्व को नापनेवाले त्रिविक्रम (विष्णु) ने अपने सुन्दर कर में धारण किया। यह विषय जानकर देवताओं ने ब्रह्मा से पूछा कि उन दोनों धनुषों में अधिक बलवान् कौन है?

सुरभित कमल पर आसीन (ब्रह्मा) ने सोचा कि देवता लोग (दोनों धनुषों की परीक्षा लेने का) जो विचार कर रहे हैं, वह उचित ही है, और एक सफल उपाय के द्वारा उन शक्तिशाली धनुषों के व्याज से परब्रह्म के रूप में एक बनकर रहनेवाले उन दोनों देवों के मध्य घोर युद्ध उत्पन्न कर दिया।

दोनों (शिव और विष्णु) दोनों धनुषों पर डोरी चढ़ाकर युद्ध करने लगे, तो सातों लोक भय-विकंपित हो गये। दिशाएँ डगमगाने लगीं। दोनों कोपाग्नि उगलने लगे। तब त्रिपुर का दाह करनेवाले (शिव) का धनुष कुछ टूट गया, इस पर वे (शिव) अधिक क्रोध से भर गये।

(शिव) फिर युद्ध के लिए उद्यत हुए, तो देवों ने उन्हें युद्ध से हटा दिया। ललाटनेत्र (शिव) ने अपना धनुष देवाधिदेव (इन्द्र) के हाथ में दे दिया; उधर विजयशील नीलवर्णदेव (विष्णु) भी अपना धनुष महान् तपस्वी ऋचीक मुनि को देकर चले गये।

ऋचीक ने वह धनुष मेरे पिता को दिया और अपने पिता से मैंने यह धनुष प्राप्त किया। हे वत्स! यदि तुम इस मेरे धनुष को चढ़ा दोगे, तो तुम्हारी समता करनेवाला नृप अन्य कोई नहीं होगा। मैं तुम्हारे साथ युद्ध करने को जो विचार कर रहा हूँ, वह भी छोड़ दूँगा और सुनो—

सड़े हुए धनुष को तोड़नेवाला जो बल है, उस पर फूल उठना अच्छा नहीं है। हे मनुवंशज! और भी सुनो। (मेरा) तुम क्षत्रियों के साथ पुराना वैर है; प्राचीन काल में

एक दानव-समान राजा ने मेरे निर्दोष पिता को क्रोध-हीन (तपस्वी) जानकर भी मारा था, तो मैंने क्रुद्ध होकर—

इक्कीस बार, धरती के किरीटधारी राजाओं को उग्र परशु की धार से समूल उखाड़ फेंका। उनके शरीर से प्रवाहित रक्त-धारा में यथाविधि, अपने पिता के प्रति करणीय तर्पण-कृत्य पूरा किया। (उसके उपरान्त) अपने कोप को दबा दिया।

समस्त पृथ्वी को मुनिवर (काश्यप) को दान कर दिया; अपने बड़े-बड़े वैरियों को दबा दिया। बड़े तप में निरत होकर (महेन्द्र) नामक पर्वत पर निवास करता रहा। तुम्हारे शिवधनुष को तोड़ने की ध्वनि वहाँ पर सुनाई दी, तो कोप उत्पन्न हुआ और यहाँ आया हूँ। यदि तुम बलवान् हो, तो तुम्हारे साथ युद्ध करूँगा। पहले इस धनुष को चढ़ाओ—

(परशुराम के) इस प्रकार कहते ही, राम ने मुस्कराकर, प्रकाशमान वदन से कहा—नारायण ने अपने बल से जिस धनुष का अभ्यास किया था, वह मुझे दीजिए। परशुराम ने वह धनुष दिया। वीर (राम) ने उसे लिया और अपने भुजबल से उसे झुकाया, जिसे देख भारी घनी जटावाले (परशुराम) भी भयभीत हो गये। फिर (राम ने) कहा—

यद्यपि तुमने भूलोक के राजकुल का विनाश किया है, तो भी वेदज्ञ ऋषिवर के पुत्र हो, और तपस्वी का वेष धारण किया है, अतः तुम (मेरे लिए) अवध्य हो, किन्तु मेरा बाण भी व्यर्थ न होनेवाला है, अतः इसका लक्ष्य क्या हो—शीघ्र बताओ।

(राम के वचन सुनकर परशुराम ने कहा—) हे नीतिज्ञ ! कोप न करो ; तुम सबके (सारे विश्व के) आदि (कारण) हो, मैंने तुम्हें पहचान लिया ; हे तुलसीमालाधारी चक्रधारिन् ! श्वेत चन्द्र-कलाधारी (शिव) का धनुष टुकड़े-टुकड़े क्या हुआ, वह तो तुम्हारे पकड़ने के भी योग्य नहीं था।

स्वर्णमय वीर-कंकण तथा रमणीयता से युक्त चरणवाले ! तुम चक्रधारी (विष्णु) ही हो, यह सत्य है। अतः, अब (तुम्हारे रहते हुए) संसार पर क्या विपदा आ सकती है ? मैंने जो धनुष तुमको दिया है, वह भी तुम्हारे बल के लिए पर्याप्त नहीं है।

तुम्हारे द्वारा चढाया हुआ यह बाण व्यर्थ न हो, इसलिए वह मेरे किये गये सब तप को मिटा दे। परशुराम के यह कहते ही, (श्रीराम का) हाथ किंचित् ढीला पड़ गया। वह बाण भी जाकर उनकी सारी तपस्या को सँजोकर लौट आया।

तब, स्वच्छ नीलरत्न-वर्णवाले ! मनोहर तुलसीमाला धारण करनेवाले ! सब के प्राणभूत पुण्यस्वरूप ! तुम्हारे संकल्पित सब कार्य अनायास ही पूर्ण हो जायेंगे। अब मुझे आज्ञा दो।—यह कहकर परशुराम प्रणाम करके चले गये।

पुनः प्राप्त प्रज्ञावाले, विपदा से विमुक्त हो उल्लसित होनेवाले, मत्तगज की सेना-वाले (दशरथ) जो दुर्लंघ्य विपत्-सागर को पार कर चुके थे, अब आनन्द नामक वेलाहीन समुद्र में डूब गये।

लेश मात्र प्रेम से भी रहित उन (परशुराम) के हाथ के धनुष को लेकर (उसके बदले) उन्हें अनुपम अपयश देनेवाले उन महानुभाव (राम) को (दशरथ ने) अंक में भर लिया, सिर सँघा तथा अपने सुन्दर नेत्रों के आनन्दाश्रु-रूपी कलश-धार से अभिषिक्त किया।

दशरथ ने सोचा—इस छोटी अवस्था में ही इसने जो अपूर्व कार्य किया है और पराक्रम दिखाया है, वह तीनों लोकों के निवासियों के लिए भी असाध्य है। निश्चय ही यह कुमार कर्म करनेवालों को ऐहिक और पारलौकिक फल प्रदान करनेवाला 'परमतत्त्व' है।

तव राम ने पुष्पवर्षा करते हुए आगत देवताओं में सुन्दर शूलधारी वरुण को देखकर, यह कहकर कि—इस महिमा-मय कठोर धनुष को सुरक्षित रखो, उस विष्णु के धनुष को उसे सौंप दिया और आनन्द-घोष करनेवाली अपनी सेना को साथ लेकर प्रसिद्ध तथा जल-समृद्ध अयोध्या नगरी को जा पहुँचे।

सब लोग अयोध्या पहुँचकर आनन्द से रहने लगे। तब एक दिन, पराक्रमशाली तथा मार्जना से युक्त भेरी-वाद्यों से प्रतिध्वनित सेनावाले चक्रवर्त्ती ने, (भरत से) अति सुन्दर तथा मंगलप्रद वचन कहे —

तात ! तुम्हारे मातामह, प्रसिद्ध शासक केकयाधिप तुम्हें देखना चाहते हैं; अतः आभरणों से प्रकाशमान वक्षवाले ! सरोवरों में स्थित शंख (कीटों) से प्रतिध्वनित केकय देश को तुम जाओ।

(दशरथ के) आदेश देते ही भरत ने उन्हें नमस्कार किया, फिर राम के चरण-कमलों को अपने सिर पर धारण किया और राम के अनन्यप्राण भरत उन्हें छोड़कर इस प्रकार चले, जैसे प्राणों को छोड़कर शरीर चला जा रहा हो।

अयालयुक्त अश्वों तथा रथों से विशिष्ट एवं शंखों से प्रतिध्वनित सेनायुक्त 'युधाजित्' नामक राजा उनके साथ चले। भरत अपने अनुज (शत्रुघ्न) को साथ लेकर, सात दिनों में शीतल जल से समृद्ध केकय देश में जा पहुँचे।

भरत चले गये। चक्रवर्त्ती (दशरथ) त्रुटिहीन शासन करते रहे। देवों की तपस्या अभी शेष थी, जिससे आगे जो घटनाएँ घटित हुईं, अब उनका वर्णन करेंगे।

(१—५०)

●

कंब रामायण

अयोध्याकाण्ड

मंगलाचरण

कुब्जा (मंथरा) तथा क्षात्र धर्मवाली विमाता (कैकेयी) के क्रूरतापूर्ण कार्य के कारण राज्य त्याग कर, अरण्य एवं समुद्र को पारकर, रावण आदि के वध के द्वारा स्वर्ग-वासियों तथा पृथ्वीवासियों की विपदा को दूर करनेवाले चरणों से शोभायमान, हे प्रभो ! (हे राम !) ज्ञानी लोग कहते हैं कि तुम उन सब पदार्थों में, जो (पदार्थ) मूल प्रकृति से विवर्त्तित होकर अनंत रूप में फैले हुए पंच महाभूतों के कार्य-रूप हैं, अंतर और बाहर में इस प्रकार परिव्याप्त होकर रहते हो, जिस प्रकार शरीर और प्राण रहते हैं तथा प्राण और बुद्धि रहते हैं।



अध्याय १

मंत्रणा पटल

दशरथ के कर्णमूल में एक केश, अपने काले रंग को छोड़कर श्वेत रंग के साथ दिखाई पड़ा। वह ऐसा लगा, मानों उन (दशरथ) के कान में यह बात कहने के लिए आया हो कि हे राजन् ! अब तुम्हारी अवस्था इस योग्य हो गई है कि तुम अपना राज्य अपने पुत्र (राम) को देकर तपस्या में निरत हो जाओ।

मानों रावण के पाप ही (दशरथ के) पके केश-रूप में आये हों—यों भूमिपाल (दशरथ) ने अपना मुख आईने में देखते समय अपने पके हुए केश को देखा।

अलंकारों से भूषित, अधिक क्रोध से भरे, एवं हौदोंवाले बड़े-बड़े हाथियों से युक्त चक्रवर्त्ती (दशरथ), मेघों के समान नगाड़ों के गरजते तथा अपने चारों ओर अति सुन्दर चामरों के डुलते हुए मंत्रणा-गृह में आ पहुँचे।

वहाँ पहुँचकर चक्रवर्त्ती ने अपने साथ आये (सामन्तों) नरेशों, अनुपम बधुजनों तथा परिवार के अन्य लोगों को मृदुल वचनों से वहाँ से भेज दिया और एकांत में इस प्रकार बैठे रहे, जिस प्रकार चक्रपाणि (विष्णु) तटस्थ रहकर संसार की रक्षा करने के निमित्त एकांत में योग-निद्रा धारण करते हैं।

उन चक्रवर्त्ती ने, जो चंद्रोपम तथा गगनोन्नत श्वेत छत्र के साथ संसार की रक्षा करते थे, देवों के गुरु बृहस्पति के समान रहनेवाले अपने मंत्रियों को बुला भेजा।

उस समय वे वसिष्ठ मुनि मंत्रणागृह में जा पहुँचे, जो सुन्दर वीर-कंकण धारण करनेवाले चक्रवर्त्ती को पौरोहित्य-रूपी रक्षा देने तथा मार्ग-दर्शन कराने के कारण अत्यधिक आदरणीय थे, देवों तथा मुनियों के लिए देवतुल्य थे, एवं त्रिमूर्त्तियों के साथ चौथे देव के सदृश थे।

फिर वे मंत्री लोग आ पहुँचे, जो कुलक्रम से (इक्ष्वाकु-वंश के राजाओं के) मंत्री का कार्य करते आये थे, प्रभूत कला-संपन्न थे, बहुश्रुत थे, पुरुषार्थ-संपन्न थे, अपने हित की हानि होने की संभावना होने पर भी जो तटस्थता को नहीं त्यागनेवाले थे, क्रोध आदि दुर्गुणों को जिन्होंने मूल-सहित मिटा दिया था तथा अपूर्व धर्मों का आचरण करते थे।

जो वर्त्तमान व्यापारों से भावी परिणामों का अनुमान लगाने में समर्थ थे, जो बुद्धिबल से युक्त थे, भाग्य का परिणाम होने पर भी भावी को बदलने का उपाय करने में चतुर थे, जो उत्तम कुल के योग्य सदाचार से युक्त थे, जिन्होंने अनेक अपूर्व शास्त्रों का अध्ययन किया था, जो अभिमान में चमरी-मृग के समान थे।[1]

वे ऐसे शीलवान् थे कि उचित काल, स्थान, साधन आदि को शास्त्रानुकूल रीति से परखकर, दैव की अनुकूलता को भी देखकर, धर्म की उन्नति करनेवाले थे। यश देनेवाले कार्यों को जानकर उनके द्वारा राजा के पुरुषार्थों को बढ़ानेवाले थे।

चक्रवर्त्ती के क्रुद्ध होने पर भी वे मंत्री अपने प्राणों की रक्षा की चिन्ता नहीं करते थे, किन्तु राजा के क्रोध को सहकर भी अपने सिद्धान्त पर दृढ रहते थे और नीति का ही कथन करते थे। सन्मार्ग से कभी न डिगनेवाले थे। त्रिकाल के व्यापारों को जाननेवाले थे। (स्वयं विचार करके किये गये निर्णय को) एक ही बार प्रतिपादित करनेवाले थे।

चक्रवर्त्ती के लाभ और हानि का विवेचन करके अन्त में वैद्य के समान (उनके हित को ही) सोचनेवाले थे। अकस्मात् कोई विपदा उत्पन्न होने पर पूर्व जन्म के सुकृत के समान आकर सहायता करनेवाले थे।

संपत्ति से युक्त ऐसे मंत्री यद्यपि साठ सहस्र थे, तथापि चक्रवर्त्ती का हित करने के विषय में सबकी बुद्धि एक ही थी। वे अपूर्व मंत्रणा-शक्ति से संपन्न थे। ऐसे वे मंत्री वीचियों से भरे समुद्र के समान वहाँ आ पहुँचे।

वे मंत्री यथाक्रम आये। उन्होंने पहले महान् ज्ञानी वसिष्ठ को प्रणाम किया,

---

१. अभिमान में चमरी-मृग के समान थे—अर्थात्, जिस प्रकार अपने केश खोकर चमरी-मृग जीवित नहीं रहता, उसी प्रकार ये मंत्री अभिमान को खोकर जीवित रहनेवाले नहीं थे।—अनु०

फिर अपने राजा को प्रणाम किया और यथोचित स्थान पर आसीन हुए। वे उचित शब्द तथा अर्थ के ज्ञान से युक्त चक्रवर्त्ती की कृपा-दृष्टि के पात्र बने।

इस प्रकार, जब वे आसीन हो गये, तब चक्रवर्त्ती ने उनके मुखों की ओर क्रम से देखकर कहा, मेरी एक चिरकालिक इच्छा है, मेरी बुद्धि के अनुकूल रहनेवाले आप लोग ध्यान से सुनें—

मैं सूर्यकुल के उत्तम राजाओं की परंपरा में स्थिर रहकर, आप लोगों की सहायता से साठ सहस्र वर्ष से शासन करता रहा हूँ।

मैंने कन्याओं के लिए योग्य पातिव्रत्य रखनेवाली धरती का धर्मपूर्ण शासन किया है और अबतक संसार के प्राणियों का हित करता रहा हूँ। अब मैं अपने जीवन को सफल करना चाहता हूँ।

मैं तपस्या के योग्य वार्द्धक्य को प्राप्त कर चुका हूँ। अबतक मैं, फनवाले आदि-शेष, दिग्गज, प्रसिद्ध कुलशैल—इन सब के भार को कम करके इस पृथ्वी का भार वहन करता रहा। किन्तु, अब इस भार को वहन करने की किंचित् भी शक्ति मुझमें नहीं रही।

मेरे कुल में उत्पन्न मेरे पूर्वज, अपने पुत्रों को राज्य का भार देकर स्वयं अरण्य में चले जाते थे और क्रूर इंद्रिय-समुदाय को संयम में लाकर मोक्ष प्राप्त करते थे। ऐसे राजा (हमारे कुल में) असंख्य उत्पन्न हुए हैं।

समुद्र से आवृत धरती में, स्वर्ग में, पाताल में, सर्वत्र मैंने शत्रुओं को परास्त किया। अब क्या मैं काम आदि अंतश्शत्रुओं के वशीभूत रहकर भय के साथ जीवन व्यतीत करूँगा?

मैंने अलक्तक-रस (महावर) लगे हुए कोमल चरणवाली कैकेयी के सारथ्य करते हुए रथ पर आरूढ होकर, कठोर क्रोधवाले दस राक्षसों के रथ को विध्वस्त किया और उन राक्षसों को परास्त किया। ऐसे मेरे लिए, पंचेन्द्रिय-रूपी रथों को, जिन पर मन-रूपी भूत आरूढ रहता है, परास्त करना क्या कठिन कार्य है?

कोई (क्षत्रिय) जबतक वह शत्रुओं की सेना के साथ युद्ध करते हुए न मरे या उत्तम ज्ञान को प्राप्त न करे अथवा संपत्ति की नश्वरता को देखकर संसार की आसक्ति को न छोड़ दे, तबतक उसे मुक्ति नहीं प्राप्त होती।

इस संसार के लोगों के लिए इस सत्य को भूलने से बढ़कर हानिकारक विषय और कुछ नहीं है कि हमारी मृत्यु अवश्य होनेवाली है। यदि विरक्ति-रूपी नौका हमारी सहायता न करे, तो इस जीवन-रूपी समुद्र को हम कैसे पार कर सकते हैं?

यदि महिमा से पूर्ण वैराग्य तथा उस (वैराग्य) से उत्पन्न होनेवाला सत्यज्ञान—ये दोनों पंख हमारे पास हों, तो हम इस जीवन-रूपी कारागार से मुक्ति पा सकते हैं।

मेरा मन, सुख की परंपरा के जैसे (अर्थात्, सुख की भ्रांति उत्पन्न करते हुए) आनेवाले इन्द्रिय-रूपी शत्रुओं को मिटाकर मोक्ष नामक अनुपम साम्राज्य को पाना चाहता है। अब इस संसार के राज्य को वह (मेरा मन) नहीं चाहता।

आपलोगों को (मंत्रियों के रूप में) पाने के कारण मैं सारे संसार की

यथाविधि रक्षा करस का और पुण्य-कार्य किये। यों, इस संसार के जीवन में मेरी सहायता करनेवाले आपलोगों को, मेरे परलोक-जीवन के लिए भी कुछ सहायता करनी है।

जब हम अपने पूर्वकृत पापों को अपार करुणापूर्ण तपस्या से दूर कर सकते हैं, तब कौन ऐसा मनुष्य होगा, जो अनुपम अमृत को छोड़कर उसके विरोधी कठोर विषय का पान करेगा ?

आलान में बँधे हुए मत्तगज की पीठ पर के मयूरपंखों तथा श्वेत छत्र की सुखद छाया शाश्वत नहीं होती। अनेक दिनों से आस्वादित होकर जो जूठा हो गया है, उसके आस्वादन में अब क्या आनन्द आ सकता है ?

पुत्र न होने से मैं अनेक दिनों तक दुःखी रहा। मेरे उस दुःख को दूर करने के लिए राम उत्पन्न हुआ। अब मैं उसको प्रसन्न रखकर स्वयं इस संसार की बाधा से मुक्त होने का उपाय करूँगा।

'राम के पिता ने युद्ध-क्षेत्र में मृत्यु नहीं प्राप्त की। अधिक वृद्ध होने पर भी वह आसक्ति-हीन नहीं हुआ'—ऐसा अपयश उत्पन्न हो, तो मेरा जीवन ही व्यर्थ हो जायगा।

रामचन्द्र जैसा पुत्र मुझे हुआ है और सीता जैसी लक्ष्मी के साथ उसका विवाह होते हुए मैंने देखा है। अब मैं उस (राम) का विवाह क्षमा नामक गुणवाली भूदेवी के साथ होते हुए देखना चाहता हूँ।

भूमि नामक गौरवपूर्ण रमणी का तथा अरुण कमल पर आसीन लक्ष्मी का, अपने मनोनुकूल पति पाने का जो सौभाग्य होता है, उसके फलीभूत होने में विलम्ब करना उचित नहीं है।

अतः, मैं राम को राज्य देकर, अज्ञान-जन्य इस जन्म को दूर करने के उपाय-भूत महान् तपस्या करने के लिए, मैं अरण्य को जाऊँगा। इसके बारे में आपलोगों का विचार क्या है ?—यों दशरथ ने कहा।

पुष्ट कंधोंवाले दशरथ के यों कहने पर मंत्रियों के मन में आनन्द उमड़ उठा; किन्तु साथ ही, उस समय चक्रवर्त्ती के वियोग को सोचकर, उनकी वही दशा हुई, जो दो बछड़ों के प्रति अपने प्रेम से व्याकुल होनेवाली गाय की होती है।

दुःखी होने पर भी मंत्रियों ने सोचा कि चक्रवर्त्ती के लिए उस प्रकार करने के अतिरिक्त अन्य कोई हितकर कार्य नहीं है, तथा विशाल संसार में रहनेवाले प्राणियों को राम के समान प्रिय अन्य कोई नहीं है; इस प्रकार सोचकर एवं भावी प्रबल होने के कारण वे (मंत्री) उस विचार से सहमत हुए।

वेदों के अधिष्ठाता चतुर्मुख के पुत्र (वसिष्ठ मुनि) ने, मंत्रियों के विचारों को, अपने पुत्र पर अधिक अनुरक्त चक्रवर्त्ती के मन को तथा संसार के प्राणियों के हित को तटस्थता के साथ विचार कर ये वचन कहे—

हे चक्रवर्त्ती ! इसके पूर्व, तुम्हारे वंश में उत्पन्न प्रसिद्ध चक्रवर्त्तियों में किसने श्रीराम जैसा पुत्र पाया था ? तुम शास्त्रों के ज्ञाता हो; तुम्हारे लिए ऐसा कार्य उचित ही है; हे विवेकशील ! तुमने धर्म के अनुकूल ही सोचा है।

हे महाभाग ! तुमने पुण्यकारक अनेक यज्ञ किये हैं। अब तुम्हें अपूर्व तपस्या करना ही उचित है। तुम्हारा पुत्र वीर-कंकणधारी (राम) पृथ्वी का इस प्रकार शासन करेगा कि सुन्दर (समुद्र-रूपी) मेखला-भूषित भूमि तुम्हारे वियोग से नेत्रहीन न होगी।

'धर्म ही (राम के रूप में) अवतीर्ण हुआ है', इसके अतिरिक्त हम और क्या कह सकते हैं ? वह विजयी (राम), सारे पदार्थों की सृष्टि कर, उनकी रक्षा कर, फिर उनका विनाश करनेवाले त्रिदेवों के व्यापारों को भी सुधारेगा।

हे बुद्धि-बल से युक्त ! सौन्दर्य से सम्पन्न श्रीदेवी और भूदेवी, दोनों जिसको अपना प्राण-समान पति मानती हैं, वह केवल उनको तथा तुमको ही प्रिय नहीं है, अपितु वह संसार के सब प्राणियों को प्रिय है।

हे वीर ! उस (राम) के नाम का उच्चारण करने से ही प्रतिदिन के क्लेश दूर हो जाते हैं। इस कारण से, ब्राह्मण आदि तुम्हारे पुत्र को, उनके सुकृत के फलस्वरूप उत्पन्न मानते हैं। (राम के प्रति) अन्य लोगों के प्रेम के बारे में और क्या कहना है ?

महान् कीर्त्ति से युक्त जानकी, भूदेवी से भी उत्तम है। लक्ष्मी, सरस्वती तथा पार्वती से भी उत्तम है। रामचन्द्र उस (सीता) के नयनों से भी उत्तम है। साधारण लोग तथा पंडित, पिये जानेवाले जल और अपने प्राणों से भी बढ़कर उस (राम) को चाहते हैं।

हे चक्रवर्ती ! मानवों, देवों तथा अन्य (नागों) के एवं सर्वप्राणियों के दुःखों को दूर करके उनकी रक्षा करनेवाला, राम से बढ़कर और कोई नहीं है। अतः, विचार करने पर विदित होता है कि तुम्हारे लिए यही उचित है कि राम को राज्य देकर तपस्या करने के लिए जाओ।

वसिष्ठ के ये वचन सुनकर, दशरथ को जो आनन्द हुआ, वह रामचन्द्र के जन्म पर, शिव-धनुष के टूटने पर और परशुराम के परास्त होने पर जो आनन्द हुआ था, उनसे भी बढ़कर था।

दशरथ ने ऐसे आनन्द के साथ नयनों में अश्रु भरकर महिमामय गुरु वसिष्ठ के चरणों को नमस्कार किया और कहा—हे भगवन् ! आपने अच्छा कहा। आपकी कृपा से ही मैं अबतक भूमि का भार वहन कर सका। यह कार्य राम के लिए कुछ कठिन नहीं होगा।

हे पितृतुल्य ! आपके परामर्श से मेरे कुल के राजा लोग अनन्त यश के भागी बने और अनेक यज्ञ करके दोनों प्रकार के कर्मों से मुक्त हुए ; मुझे भी आपकी वही कृपा प्राप्त हुई है। —यों कहकर दशरथ आनन्दित हुए।

निष्कलंक तपस्या से संपन्न मुनिवर मौन हो रहे। तब सुमंत ने सब विषयों का विचार करनेवाले मंत्रियों के मुख से प्रकाशित उनके हृदय के भाव को जानकर, अपने कर जोड़कर राजा से यों निवेदन किया—

'राम राज्य प्राप्त करेंगे', इस समाचार से आनन्दित होनेवाले हृदयों को, तपस्या करने के लिए आपके जाने का समाचार जला रहा है। अपने कुल के पूर्वजों का धर्म त्यागना भी ठीक नहीं है। अतः, धर्म से बढ़कर निष्ठुर विषय अन्य कुछ नहीं है।

आलान में बाँधे जानेवाले मत्तगजों की सेना से युक्त राजाओं, नगर के लोगों, मंत्रियों तथा मुनियों के हृदय-रूपी नगाड़ों को ध्वनित करते हुए (अर्थात्, आनन्दित करते हुए) आप, नीलरत्न-सदृश देह-कांतिवाले अपने (राम) को राजा बनावें ; फिर परलोक के अनुकूल व्यापार संपन्न करें।

सुमंत्र के इस प्रकार कहने पर चक्रवर्त्ती ने कहा—तुमने ठीक कहा ; पहले राम को मुकुट पहनाकर फिर अन्य कर्त्तव्य करना है। तुम शीघ्र जाकर लक्ष्मी-सदृश (सीता) के पति को ले आओ।

दशरथ के मन-सदृश वह सुमंत्र, पुष्पमाला-भूषित चक्रवर्त्ती को प्रणाम करके, पर्वत-समान सौधों से युक्त राजवीथी में, त्वरित गति से, स्वर्णमय रथ को यों चलाता हुआ गया, मानों उसने सब लोकों को प्राप्त कर लिया हो और राम के प्रासाद में प्रविष्ट हुआ।

उस प्रासाद में रामचन्द्र, नारियों में अमृत-समान सीता के साथ सुखासीन थे और उनके एक ओर, उनसे पृथक् न होनेवाले लक्ष्मण भी धनुष धारण करके खड़े थे। उस मधुर दृश्य को देखकर सुमंत्र के नयन तथा मन भ्रमरों के समान संतृप्त हो गये।

रामचन्द्र को देखकर सुमंत्र ने हाथ जोड़कर निवेदन किया कि हे प्रभु ! इस संसार के स्वामी (दशरथ) ने आदेश दिया है कि एक मुख्य कार्य के लिए मैं आपको ले आऊँ। यह सुनते ही कमलनयन प्रभु (राम) झट उठे और सजल मेघ के समान चलकर ध्वजा से भूषित उस रथ पर आरूढ हो गये।

नगाड़े मेघ-पंक्ति के समान बज उठे ; सुन्दरियों की कलाइयों से फिसल पड़नेवाली शंख की चूड़ियाँ बज उठीं ; देवगण, यह विचारकर कि हमारा अभीष्ट पूर्ण होनेवाला है, आनन्द-ध्वनि कर उठे ; राम के शिर पर आवेष्टित पुष्पमालाओं पर के भ्रमर गुंजार कर उठे।

सर्वत्र वाद्य-घोष भर गया, संगीत-नाद भर गया, मन्मथ के बाण भर गये, प्रत्यंचा के घोष भर गये। (वहाँ की रमणियों के) मनोभाव-रूपी बाढ़, संयम के बाँध को तोड़कर उमड़ उठी और वे रमणियाँ हरिणियों के समान सर्वत्र फैल गईं।

दीर्घस्तंभों से युक्त द्वारों में कमल-पुष्प—(अर्थात्, रमणियों के मुख), कुंडलों एवं खुले हुए केश-पाशों के साथ, प्रासादों के ऊपर प्रफुल्लित हो रहे थे ; तथा गवाक्षों में भ्रमरों, करवालों, रक्त-सिक्त भालों तथा मीनों के साथ दिखाई पड़ रहे थे।

पूर्णचन्द्र सदृश वदनवाले, कालमेघ-सदृश, देवाधिदेव (राम) के पर्वत-समान (दृढ) वक्ष पर स्थित पुष्पमालाओं में, बिंब-सदृश अधरवाली सुन्दरियों के, संयम, लज्जा आदि गुणों से अनुसृत, मीन (तुल्य नयन) मधुरगान करनेवाले भ्रमरों के साथ उलझे पड़े रहे।

(जब रामचन्द्र वीथी में जा रहे थे, तब) मेघों के साथ चन्द्र नीचे की ओर झुक आया, जिनसे पुष्प बरस पड़े ; उत्पल-समान नयनों की कोरों से मुक्ताकण बरस पड़े, झुलसे पुष्पों से युक्त पुष्ट स्तन (फूलकर) हारों के मध्य समा गये ; विकसित कमल-पुष्पों

से संयुत चमकते हुए वस्त्र गगन से सरक पड़े—(अर्थात्, राम के सौंदर्य को देखकर नारियाँ मुग्ध हुईं, जिससे उसके शरीर में अनेक काम-विकार उत्पन्न हो गये। मेघ-से 'केश', चन्द्र-से 'वदन', मुक्ताकण-से 'अश्रु', कमल-से 'कर', और गगन-से 'कटि' का अर्थ लगाना चाहिए।)

चर्ममय कोशों को हटाकर चमकनेवाले करवालों के जैसे चन्द्र शोभायमान हो रहे थे, (अर्थात् पलकों को खोलकर नेत्र चमक रहे थे, जिनसे नारियों के वदन शोभायमान हो रहे थे)। उन चन्द्रों को ढोनेवाली और भार से लचकनेवाली लताओं में दो-दो नारिकेल लगे थे (अर्थात्, स्तन थे), जिन पर ओस की बूँदें फैल रही थीं (अर्थात्, स्वेद-कण फैल रहे थे); और जिन पर सोने के पत्र यत्र-यत्र अंकित थे (अर्थात्, सोने के रंग की चित्रियाँ पड़ी थीं)।

उधर ऐसी घटनाएँ हो रही थीं, इधर पुरुष लोग, अपनी माँ का स्मरण कर आनन्दित होनेवाले गाय के बछड़ों के समान (प्रसन्न) खड़े थे; यों रामचन्द्र, अपने पवित्र शीलवाले अपने भाई के साथ, सुमंत्र के द्वारा चलाये जानेवाले रथ पर सवार होकर, प्रसन्न मन से बैठे हुए चक्रवर्त्ती के निकट जा पहुँचे।

रामचन्द्र ने महातपस्वी (वसिष्ठ) को नमस्कार किया, फिर चक्रवर्त्ती के कमल-सदृश चरणों को प्रणाम किया। तब चक्रवर्त्ती ने उमड़ते प्रेम के साथ आँखों से आनन्दाश्रु बहाते हुए सीता के वल्लभ (राम) को राज्यलक्ष्मी के निवास-भूत अपने वक्ष से लगा लिया।

दशरथ ने मंगल के आवासभूत अपने पुत्र का आलिंगन क्या किया, वास्तव में उन्होंने समुद्र से आवृत पृथ्वी के भार को वहन करने की (रामचन्द्र की) शक्ति को आँकना चाहा और अपने वक्ष से उन (राम) के, लक्ष्मी तथा पुष्पमालाओं से विभूषित वक्ष को नापकर देखा।

फिर, दशरथ ने राम को अपने पार्श्व में बिठा लिया और आनन्द और उमड़ते प्रेम के साथ उन्हें देखकर कहा – परशुराम के महान् यश को छोटा करनेवाले उन्नत कंधों से युक्त (हे राम)! तुमको पुत्र के रूप में पाने से मुझे जो सबसे उत्तम फल प्राप्त होना है, उसके संपन्न होने का एक उपाय है। वह तुमसे ही पूर्ण हो सकता है।

हे तात! मैं बहुत थक गया हूँ; अवारणीय वार्द्धक्य भी मेरे शरीर में उत्पन्न हो गया है। तुम्हें मेरी ऐसी सहायता करनी चाहिए, जिससे मैं चिंताजनक भू-भार नामक कठोर कारागार से मुक्त होकर अनुपम निःश्रेयस् (मुक्ति) के मार्ग पर जाऊँ और उज्जीवन[1] प्राप्त कर सकूँ।

महापुरुषों का कथन है कि सत्पुत्र प्राप्त करना, अपार दुःख से मुक्त होने तथा उभय लोकों में आनन्द अनुभव करने का साधन है। तुम तो धर्म-स्वरूप ही हो। तुम्हें पुत्र के रूप में पाकर भी मैं चिन्तित रहूँ, यह उचित नहीं। अतः, मेरे प्रति तुम्हारा एक कर्त्तव्य है, उसे सुनो।

---

१. विशिष्टाद्वैत के अनुसार 'उज्जीवन' मुक्त आत्मा की स्थिति को कहते हैं।

हे पुत्र ! हमारे कुल के राजा लोग बुढ़ापा आने पर राज्य-भार अपने पुत्रों को सौंप देते थे और पंचेंद्रियों के कारण उत्पन्न तीन शत्रुओं (अर्थात् , काम, क्रोध और मोह) को समूल मिटाकर आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाते थे।

मैंने पूर्वजन्म के पुण्यों एवं इस जन्म के यज्ञ आदि सत्कार्यों के फल से तुमको प्राप्त किया है। यदि अब भी मैं इस शासन की चिंता में निमग्न रहूँ, तो तुम्हें प्राप्त करने का फल पूर्ण कैसे होगा ?

यह राज्य-भार मेरे लिए अत्यंत दुःखदायक हो गया है और मैं उस बृषभ के समान पीडित हो रहा हूँ, जो एक ओर लँगड़ा रहा हो और दूसरी ओर बड़ा भार ढो रहा हो। मैं चाहता हूँ कि ऐसे भार से मुक्त होकर मोक्ष-साम्राज्य का अनुभव करूँ। हे तात ! मेरी इस इच्छा को पूर्ण करो।

पूर्वकाल में (हमारे कुल के) एक पुरुष ने, अपने प्रपितामहों को सद्गति प्राप्त करने के उपाय से रहित देखकर, हमारे कुलनायक (अर्थात् , भगवान् नारायण) के चरण-कमल से उत्पन्न होनेवाली गंगा नदी को लाकर अपने प्रपितामहों को अपुनरावृत्ति[1] से युक्त (मोक्ष) लोक में पहुँचा दिया था।

अवार्य दुःख से मुक्ति पानेवाले इस पृथ्वी के राजा लोग नहीं हैं, देवलोग नहीं हैं ; उन देवों के राजा स्वर्णमय वीर-वलय-धारी इन्द्र भी नहीं हैं, महान् तपस्वी भी नहीं हैं, किंतु वे ही लोग (दुःख से मुक्त होनेवाले) हैं, जिन्होंने आज्ञा का उल्लंघन न करनेवाले पुत्र को प्राप्त किया है।

यही धर्म है। अतः, तुम यह विचार न करना कि राजा ने अपार दुःख के कारणभूत राज्य-भार को कपट से मुझ पर डाल दिया। गरिमामय किरीट को धारण करके राजधर्म का पालन करो, मैं तुम से यही चाहता हूँ।

पिता के इस प्रकार कहने पर पुंडरीकाक्ष (राम) राज्य पर आसक्त नहीं हुए। 'भूमि का भार वहन करना अपना कर्त्तव्य है'—यह भी वे जानते थे। फिर भी, आसक्ति और विरक्ति दोनों से रहित होकर उन्होंने केवल यही विचार किया कि चक्रवर्त्ती सोच-विचारकर जो आज्ञा देते हैं, उसे पूर्ण करना ही हमारा कर्त्तव्य है और वे अपने कर्त्तव्य पर दृढ रहे।

विजयसूचक श्वेतच्छत्र से शोभित चक्रवर्त्ती ने राम के हृद्गत विचार को जान लिया और यह कहते हुए कि (हे राम) 'मुझे यह वर दो', राम को अपने प्राणों के साथ लगाकर उनका आलिंगन कर लिया। फिर, वे वेद-सदृश मंत्रियों से घिरे हुए मेरु-जैसे उन्नत अपने प्रासाद में जा पहुँचे।

सुन्दर कंधोंवाले कुमार भी, उत्तम ब्राह्मणों, राजाओं और नगर के प्रिय नर-नारियों से अनुसृत होते हुए, जाकर सुमंत्र के रथ पर आसीन हुए और अपने विशाल सौध में पहुँच गये।

फिर चक्रवर्त्ती ने, स्वर्णमय पत्रों पर गरुड का चिह्न अंकित करके, सब राजाओं

१. अपुनरावृत्ति—जहाँ से लौटकर जीव फिर जन्म नहीं लेता है।

को यह पत्री भेजी कि (राम के राज्याभिषेक के लिए) सब लोग आवें और वसिष्ठ से कहा—हे भगवन् ! मनोहर वर्णयुक्त किरीट को राम के शिर पर रखने के लिए (अर्थात्, राज्यतिलक-उत्सव के लिए) आवश्यक प्रबंध करने की कृपा करें।

महान् तपस्वी वसिष्ठ राजा का कथन सुनकर प्रसन्न हुए और शीघ्र एक रथ पर सवार होकर ब्राह्मण-समुदाय के साथ चले। दशरथ ने (उत्सव के लिए आगत) राजाओं को देखकर कहा—हे राजाओ ! सुनो, हमारे कुल-धर्म के अनुसार राम को राज्य की संपत्ति सौंप देना मेरे लिए बहुत आनन्द का विषय है।

चक्रवर्त्ती के वचन-रूपी अमृत का पान करके सभी राजा आनन्द-सागर में डूबने-उतराने लगे और एक दशा में नहीं रह पाये। उनके मन का आनन्द उनके रोम-रोम से प्रकट होने लगा। वे ऐसे हो गये, मानों सशरीर स्वर्ग में पहुँच गये हों।

उन सबका चिंतन एक जैसा था। उन्हें ऐसा आनन्द हुआ, मानों राज्य उन्हीं को मिला हो। आनन्दित चित्त के साथ वे पंक्तियों में आकर मुक्तामय श्वेतच्छत्र को धारण करनेवाले चक्रवर्त्ती के चरणों पर नत हुए और हार्दिक प्रेम के साथ निवेदन किया कि हे प्रभो ! आपका विचार बहुत उत्तम है।

यह उचित ही है कि जिस वीर ने इक्कीस वार क्षत्रियों के वंश का नाश किया था, उसके पराक्रम को भी मिटानेवाले महावीर इस पृथ्वी का शासन-भार वहन करें।

सब राजा लोगों ने इसके अनुकूल ही वचन कहे। उन वचनों को सुनकर चक्रवर्त्ती का मन आनन्द से भर गया। फिर, चक्रवर्त्ती ने अपनी प्रसन्नता को मन में ही दबाकर उन (राजाओं) के मनोभाव को दृढ रूप से जानने के लिए यह प्रश्न किया।

हे नरेशो ! मैंने अपने पुत्र के प्रति प्रेम के कारण मुग्ध होकर यह वचन कहा, किंतु तुमने जो कहा है, वह क्या मेरे मन को प्रसन्न रखने के लिए ही कहा है या यथार्थ विचार से कहा है ? तुम लोगों ने किस कारण से राम को राज्य देना उचित समझा ?

जब चक्रवर्त्ती ने ऐसा प्रश्न किया, तब सभासदों ने राजा से कहा—हे राजन् ! आपके सद्गुण पुत्र के प्रति विविध देशों के लोग जो अपार प्रेम रखते हैं, उसके बारे में सुनिए।

हे मनुवंश के प्रभो ! दानशीलता, धर्मशीलता, सच्चरित्रता, उत्तम ज्ञान, महात्माओं की संगति करने की सदिच्छा आदि सब सद्गुण आपके पुत्र में स्थिर रूप से निवास करते हैं, मानों वे यह कह रहे हैं कि उसे (अर्थात्, आपके पुत्र को) अक्षय राज्य-संपत्ति प्राप्त होगी।

जब गाँव का जलाशय भर रहा हो, गाँव के मध्य स्थित फल-वृक्ष फलित हो रहे हों, मेघ वर्षा कर रहे हों, खेतों में नदी का जल बह रहा हो, तो इनको रोकने की इच्छा कौन करेगा ?

तालवृक्ष के समान दीर्घ शुंडोंवाले हाथियों की सेना से युक्त (हे राजन्) ! आपके प्रति बहुत प्रेम रखनेवाली प्रजा से रामचंद्र जितना प्रेम रखते हैं, उतना ही प्रेम, वह प्रजा भी राम के प्रति रखती है—इस प्रकार सभासदों ने कहा।

सभासदों के यह कहने पर चक्रवर्त्ती के मन में आनन्द उमड़ पड़ा और राम के

प्रति उनका प्रेम अत्यन्त बढ़ गया। उन (चक्रवर्त्ती) के मन से सब चिंताएँ दूर हो गईं और वे तृप्ति से भर गये उनके नयनों से (आनन्द के) अश्रु बहने लगे। फिर, सभासदों को देखकर चक्रवर्त्ती ने कहा—

निष्पक्षता, धर्मनिष्ठा, सच्चारित्र्य, दुष्कार्यों के प्रति घृणा इत्यादि सद्गुणों से भूषित हे सभासद नरेशो ! यह (राम) मेरा ही पुत्र नहीं, अपने आचारण से यह तुम सबके पुत्र के समान है। इसे अपनाकर तुम सब इसका हित करते रहो।

फिर, सभा को विसर्जित करके चक्रवर्त्ती (राम के राजतिलक के लिए) एक शुभ मुहूर्त्त निश्चित करने के विचार से ज्यौतिष-शास्त्र के पंडितों को साथ लेकर एक पर्वत-सदृश उन्नत मंडप में जा पहुँचे।

उस समय (राम के राज्य तिलक के) समाचार को सुनकर चार दासियाँ, बड़ी उमंग से (कौशल्या के आवास की ओर) दौड़ पड़ीं, तो उनके स्तनों के बंधन खुल गये, केश-पाश बिखर गये, वस्त्र खिसक गये, किन्तु उनकी सूक्ष्म कटियाँ किसी प्रकार नहीं टूटीं।

वे चारों सुन्दरियाँ नाच उठीं। अपनी पूर्व-दशा को भूलकर गाने लगीं। जिस किसी को देखती थीं, उसको हाथ जोड़कर नमस्कार करतीं। इसका ध्यान उन्हें नहीं रहा कि वे क्या कह रही हैं। यों वे (कौशल्या के) प्रासाद के निकट जा पहुँचीं।

घनश्याम की जननी कौशल्या ने, अपने पास आई हुई उन दासियों को प्रेम से देखा और पूछा—हे बिंबफल-समान ओंठोंवाली रमणियाँ ! तुमको देखने से विदित होता है कि तुम कोई शुभ समाचार लाई हो। शीघ्र कहो, वह क्या है।

तब दासियों ने निवेदन किया कि चक्रवर्त्ती तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र को, यह कहकर कि 'नरेशों द्वारा तुम्हारे वीर-वलय-भूषित चरणों के वन्दित होते हुए तुम चिरकाल तक पृथ्वी का शासन करो'—अपने प्राचीन मुकुट को उन्हें पहनानेवाले हैं।

इस समाचार के सुनते ही कौशल्या के मन में 'राम को राज्य-संपत्ति मिलनेवाली है।' इस विचार से जो आनन्द का सागर उमड़ा था, उसे, 'चक्रवर्त्ती राज्य त्याग कर (अरण्य में) जानेवाले है।' इस विचार-रूपी बड़वाग्नि ने सुखा दिया।

फिर भी, कौशल्या ने उन स्त्रियों को अपूर्व रत्नहार और धन दिये और अपने प्रेम के पात्र-भूत सुमित्रा को साथ लेकर चक्रधारी (भगवान् रंगनाथ) के मंदिर में जा पहुँचीं।

मंदिर में पहुँचकर, लक्ष्मी और भूदेवी-सहित उस भगवान् के, जो सब देवों के प्राण हैं, ज्ञान हैं तथा (सब के) आदि कारण हैं, चरण-कमलों को प्रणाम किया।

सब लोकों को अपने उदर में अन्तर्भूत करनेवाले नारायण को अपने गर्भ में रखनेवाली उस तपस्यामयी (कौशल्या) ने भगवान से प्रार्थना की कि तुमने मुझे जो पुत्र दिया है, उसपर अनुग्रह करना भी तुम्हारा ही कर्त्तव्य है।

यों प्रार्थना करके चारों वेदों में प्रतिपादित विधान से उस नारायण की विशेष पूजा करके, उन्होंने (कौशल्या ने) उत्तम तपस्या से सम्पन्न लोगों को वत्स-युक्त धेनुएँ दान कीं।

उन्होंने ब्राह्मणों को स्वर्ण, उत्तम रत्न, चंदन-रस, भूमि, कन्याएँ इत्यादि सब प्रकार की वस्तुएँ दान कीं। उन्हें अन्न और उत्तम वस्त्र भी दान किये।

इस प्रकार दान करके, भगवान् रंगनाथ के सद्यःप्रसूत कमल-जैसे चरणों को नमस्कार करके, (भगवान् की) प्रार्थना करके तथा मंदिर की परिक्रमा करके कौशल्या अपने दोषहीन संपत्ति से भरे प्रासाद में आईं और व्रत आदि अनुष्ठान करने लगीं ।

(१—९८)

●

अध्याय २

मंथरा-षड्यंत्र पटल

उधर सुगन्धित पुष्पमालाधारी चक्रवर्त्ती ने गणितज्ञों (मुहूर्त्त का विचार करनेवाले) को देखकर, उनकी स्तुति करके फिर कहा, तीक्ष्ण परशुधारी (परशुराम) को परास्त करनेवाले राम को मुकुट पहनाने के लिए सुयोग्य शुभ दिन बतलाइए ।

ज्यौतिष के सब विद्वानों ने उत्तर दिया, आपके पुत्र के लिए योग्य दिन कल ही है। यह आनन्ददायक वचन सुनकर वीर-वलय से भूषित, मत्तगज-सदृश चक्रवर्त्ती ने आज्ञा दी कि निष्कलंक तपस्यावान् तथा अमृत-समान उत्तम वसिष्ठ को ले आओ। मुनिवर आ पहुँचे।

दशरथ ने उन मुनिवरों से कर जोड़कर निवेदन किया, शुभ मुहुर्त्त कल ही है ; अतः कोदण्डधारी राम से आज ही आवश्यक व्रत करावें तथा उसे हितकारी उपदेश भी दें ।

मुनिवर भी अपनी उमंग के साथ होड़ करते हुए आगे बढ़ चले और मनु-कुल के प्रभु (राम) के प्रासाद में जा पहुँचे । मुनिवर का आगमन सुनकर पुष्पमाला-भूषित (राम) उनके सम्मुख आये और उनको अपने भवन के भीतर ले गये ।

अशिथिल तपोव्रत से सम्पन्न मुनिवर ने शास्त्रों के ज्ञाता उस उदार पुरुष (राम) से कहा—हे युद्धचतुर ! तुम पर अपार प्रेम रखनेवाले चक्रवर्त्ती तुम को कल ही राज्य देना चाहते हैं।

यह कहकर वे फिर राम की ओर देखकर बोले—मुझे कुछ हितकारी वचन तुमसे कहने हैं। उन वचनों को सावधान होकर सुनो और उन पर दृढ रहो, फिर घनी मालाओं से भूषित राम से कहने लगे ।

वेदज्ञ लोग, श्यामवर्ण विष्णु, ललाटनेत्र (शिव), कमलभव (ब्रह्मा), उत्पन्न पंचभूतों तथा सत्य से भी श्रेष्ठ होते हैं, अतः तुम सच्चे हृदय से उनका आदर करना ।

हे वत्स ! देवताओं में ऐसे लोगों की गिनती नहीं है, जो वेदज्ञों के क्रोध से पतन को प्राप्त हुए और जिन्होंने उनकी कृपा से शीघ्र उद्धार प्राप्त किया ।

हे वत्स ! वेदज्ञ ऐसे होते हैं ; अतः कठोर पापों से रहित इन ब्राह्मणों के चरणों को अपने मुकुट पर धारण किये हुए उनकी स्तुति करो और उनके बताये धर्म के मार्ग पर स्थिर रहो ।

विधि भी उन ब्राह्मणों की आज्ञा के अनुसार बनने और बिगड़ने को सन्नद्ध रहती है। अतः, इहलोक और परलोक में देव-समान वेदज्ञ विप्रों की प्रस्तुति करने के जैसा उत्तम कार्य और कोई नहीं है।

वर्त्तुलाकार चक्रायुध, उज्ज्वल परशु तथा भ्रांति-रहित बाणों को शस्त्र के रूप में धारण करनेवाले त्रिमूर्त्ति भी यदि सद्धर्म को, मन की स्वच्छता को तथा दया को छोड़ दें, तो इससे उनका कुछ हित नहीं हो सकता।

स्वभाव से ही न्याय पर दृढ रहनेवाले (हे कुमार)! जूआ आदि प्रसिद्ध दुर्व्यसन तुझमें नहीं हैं; फिर भी यह जान लो कि वे दुर्व्यसन सब दोषों की प्राप्ति के हेतु बनते हैं।

यदि हमारे मन में किसी के प्रति विरोध भाव नहीं रहे, तो युद्ध भी शान्त हो जायेंगे (अर्थात्, युद्ध नहीं होंगे), इस प्रकार (युद्ध नहीं करने से) यश की भी हानि नहीं होती, सेना की क्षति भी नहीं होती। जब इस प्रकार हित होना संभव हो, तब शत्रु के समूल नाश की कामना करने की आवश्यकता ही नहीं रह जायगी।

विषयों में प्रवृत्त होनेवाली पंचेंद्रियों को शान्त करके, संपत्ति को बढ़ाकर, निष्पक्षता तथा मन की दृढता के साथ किया जानेवाला शासन ही सच्चा शासन है। हे वत्स! वैसा शासन, तलवार की धार पर खड़े रहकर की जानेवाली तपस्या के सदृश होता है।

भले ही कोई शासक उमापति (शिव) की, गरुडवाहन (विष्णु) की और अनिमेष आठ आँखोंवाले (ब्रह्मा) की भुजाओं की शक्ति से युक्त हो, तथापि उसके लिए भी मंत्रियों के परामर्श के अनुसार कार्य करना ही हितकारक होता है।

अस्थि-चर्ममय शरीरवाले मनुष्यों तथा वैसे शरीर से रहित अन्य लोगों (अर्थात् देवों) को भी, अपने बलवान् शत्रु पंचेंद्रियों का दमन करने से क्या फल मिल सकता है? तीनों अनादि लोकों में प्रेम से बढ़कर अन्य कोई फलदायक गुण नहीं है।

राज्य के प्राण हैं प्रजा, उन प्राणों की रक्षा करनेवाला शरीर है राजा। यदि वह राजा धर्म के अनुकूल रहकर सच्ची करुणा पर निश्चित रूप से दृढ खड़ा रहे, तो उसके लिए अन्य यज्ञ करने की आवश्यकता ही क्या है?

यदि राजा मधुरभाषी हो, दाता हो, विवेकवान् हो, कर्मनिरत हो, पवित्र हो, ऋजु हो, विजयी हो, न्यायपरायण हो, सन्मार्ग से पृथक् न होनेवाला हो, तो उस (राजा) का कभी नाश नहीं होगा।

जो राजा, सदाचार के विरोधी कार्यों से दूर रहकर, सोने को तौलनेवाली तुला के समान निष्पक्ष भाव से रहता है, उसके लिए अच्छे स्वभाववाले मंत्रियों के द्वारा परीक्षा करके, कार्यविशेष के लिए, निर्धारित समय के अतिरिक्त अन्य कोई नेत्र नहीं हैं।

(कभी) परिवर्त्तित न होनेवाली नियति भी, आलोचना से परे सत्कार्यवाले मुनियों की वाणी के अनुसार चलती है, यह जानकर उन (मुनियों) पर दृढ श्रद्धा रखनी चाहिए। उससे उन (मुनियों का) प्रेम (श्रद्धा रखनेवालों की रक्षा के लिए) शस्त्र का काम देगा।

पृथ्वी पर धूमकेतु के जैसे उत्पन्न, मेखलाधारिणी, रमणियों की कामव्याधि नहीं हो, तो (किसी को) कोई बड़ी विपदा उत्पन्न नहीं होगी। नरक की यातना भी उत्पन्न नहीं होगी।

तत्त्वज्ञ मुनिवर (वसिष्ठ), सब लोकों को अपने उदर में समानेवाले (विष्णु के अवतार राम) को इस प्रकार के नीतिबोधक मधुर वचन कहकर, उनके ज्ञान को बढ़ाकर, उन (राम) के साथ सहस्र शिरवाले[1] भगवान् (विष्णु) के मंदिर में गये।

वसिष्ठ (राम को साथ लेकर) सर्पशय्या पर शयन करनेवाले भगवान् (रंगनाथ) के सम्मुख जा पहुँचे। उनकी पूजा की और चतुर्वेदों के मंत्रों से अभिमंत्रित पुण्य-जल से राम को स्नान कराया। फिर, राजाओं के लिए उचित, विद्वानों के द्वारा प्रतिपादित, सब आचार संपन्न किये और श्वेत दर्भों के आसन पर (राम को) आसीन कराया।

जब रामचन्द्र इस प्रकार आसीन हुए, तब यज्ञोपवीत से अलंकृत वक्षवाले (वसिष्ठ) ने शीघ्र जाकर प्रतापी राजा को (राम के व्रत आदि संपन्न करने का) समाचार दिया। चक्रवर्त्ती ने नगर को अलंकृत करने की आज्ञा दी।

'वल्लुवर' (ढिंढोरा पीटकर राजाज्ञा की घोषणा देनेवाली एक जाति) लोगों ने नगर की वीथियों में घूमते हुए ढिंढोरा पीट-पीटकर घोषणा की कि रामचन्द्र कल ही राजमुकुट धारण करनेवाले हैं। अतः, इस सुन्दर नगर को अलंकृत कीजिए। इस घोषणा से देवता भी आनन्दित हो उठे।

'काव्यों में प्रतिपादित यशवाले राम, कल ही रत्नमय राजकिरीट धारण करनेवाले हैं'—यह सूचना लोगों के कानों को आनन्द देनेवाली थी। इतना ही नहीं, यह (वचन) सब लोगों के लिए देवों के आहारभूत हविर्भाग तथा अमृत के समान तृप्तिकारक था।

नगर के लोग कोलाहल कर उठे। आनन्द में नाचने-गाने लगे। उनके शरीर स्वेद से भर गये। वे फूल उठे। उनकी देह पुलक से भर गई। वे चक्रवर्त्ती की स्तुति करने लगे। जो भी यह शुभ समाचार देता था, उसे वे अपार द्रव्य देते थे।

प्रेम से भरे उस नगर के लोगों ने उस सुन्दर नगर का इस प्रकार अलंकरण किया, जैसे पुंजीभूत किरणोंवाले सूर्य को ही सँवार रहे हों या शेषनाग पर सोनेवाले विष्णु के विशाल वक्ष पर स्थित कौस्तुभ मणि को सान पर रखकर उसे चमका रहे हों।

श्वेत, काले, रक्तवर्ण तथा अन्य रंगवाली ध्वजाओं की पंक्तियाँ ऐसी लगती थीं, मानों मधुस्रावी पुष्प-मालाओं से युक्त राम के वैभव को देखने के लिए सब प्रकार के विहग उस सुन्दर नगर में आ पहुँचे हों।

उस नगर में युवतियों की जाँघों के जैसे कदली-वृक्ष लगाये गये। उन (युवतियों) की ग्रीवाओं के जैसे क्रमुक-वृक्ष लगाये गये। उनके दाँतों की जैसी मुक्ता-पंक्तियाँ सजाई गई तथा उनके स्तनों के जैसे कनक-कलश श्रेणियों में रखे गये।

---

१. वेदों में प्रतिपादित 'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्' वाक्य के अनुसार ही यहाँ विष्णु को सहस्र शिरोंवाला कहा गया है।

गोपुरों के द्वारों में चंद्र को छूनेवाले अत्यन्त तथा नूतन तोरण बाँधे गये। उनसे ऐसी कांति बिखर रही थी, जैसे प्रभातकालीन बाल-सूर्य पहले से भी अधिक कांति से युक्त हो गया हो।

उत्तम माणिक्यमय स्तंभ श्वेत वस्त्रों से आवृत होकर ऐसे लगते थे, जैसे पार्वती देवी को अर्द्धाङ्ग में रखे हुए विभूति रमाये हुए शिव भगवान् हों। प्रवालमय स्तंभ (श्वेत-वस्त्रों से आवृत होकर) हिमावृत सूर्य के समान लगते थे।

उस नगर की वीथियाँ, मुक्ताओं से चंद्रिका के फैलने से, घनी रत्न-पंक्तियों से सूर्यातप के फैलने से, नील रत्नों के किरण-पुंजों से, अंधकार के फैलने से, ज्यौतिष शास्त्रज्ञों के द्वारा प्रकटित दिन के समान लगती थीं। (भाव यह है कि मानों ज्योतिषियों ने दिन के विविध रूपों को एक साथ उन वीथियों में प्रकट किया था।)

नाचनेवाले घोड़ों से युक्त रथ-समुदाय, पृथ्वी को देखने के लिए स्वर्ग से उतरे हुए देव-विमानों के जैसे लगते थे। मुख-पट्टों से भूषित विशाल मत्तगज सूर्य के साथ संचरण करनेवाले उदयाचल (पर्वत)-से लगते थे।

वैभव-पूर्ण उस नगर की स्फटिक शिलामय ऊँची दीवारों में जटित पद्मराग रत्न-श्रेणियाँ अपने प्रकाश से अंधकार को मिटा रही थीं। अतः, चक्रवाक के जोड़े कभी वियुक्त न होकर शान्तचित्त रहते थे।

सौधों से भरी वीथियों में पुष्पों की वर्षा, जल की वर्षा, नवीन सुगंध-चूर्णों की वर्षा, उज्ज्वल मुक्ताओं की वर्षा, आभरणों के रगड़ खाने से उत्पन्न स्वर्ण-धूलि की वर्षा—ये सब वर्षाएँ मेघ की वर्षा केसमान हो रही थीं।

मेघ जैसे मदस्रावी गज, कवच से आवृत तथा वीर-वलयधारी योद्धाओं के समान जा रहे थे। किंकिणी-भूषित करिणियाँ, लटकती मेखलाओंवाली नितंबवती रमणियों के समान जा रही थीं।

उत्तरोत्तर बढ़नेवाला ऐश्वर्य, सौन्दर्य तथा सुख की उस नगरी में कुछ कमी नहीं थी। राम के राज्याभिषेक को देखने के लिए उस नगर में आये हुए देवलोग, इस भाँति से कि अभी हम स्वर्ग में ही हैं, अयोध्या में नहीं पहुँचे हैं, सोच में पड़ जाते थे।

देवलोक के समान शोभायमान उस नगर का शृङ्गार होने का वह कोलाहल सुन-कर क्रूरकर्मा रावण के पापों के समान स्थित तथा अन्य दुर्लभ कठोरता से युक्त मनवाली मंथरा वहाँ प्रकट हुई।

उस मंथरा का मन तड़प उठा। उसमें क्रोध उमड़ पड़ा। उसमें पीडा उत्पन्न हुई। उसकी आँखों से अग्नि बरसने लगी। वह अव्यवस्थित रूप से कुछ बड़बड़ाती हुई, त्रिभुवन को कुछ दुःख देने के लिए आगे बढ़ी।

पूर्वकाल में राम ने मिट्टी के ढेलों को अपने हाथ के धनुष पर रखकर उस (मंथरा) के कूबड़ पर मारा था, इस घटना को उसने स्मरण किया। क्रोध से वह अपने ओंठ चबाने लगी और बिंब-समान अधरवाली कैकेयी के प्रासाद में गई।

चारों समुद्रों के रत्नों से युक्त होकर कमलों से पूर्ण एक अनुपम क्षीर-सागर की

लहर पर कोई प्रवाल लता फैली हो—इसी प्रकार कैकेयी, अपनी आँखों के कोरों से करुणा की वर्षा करती हुई एक उज्ज्वल पर्यंक पर शयन कर रही थी। उसके निकट मंथरा शीघ्र जा पहुँची।

उसने उत्पात की सूचना देनेवाले किसी दुष्ट ग्रह के समान वहाँ पहुँचकर कैकेयी के उन स्वर्ण आभरण-भूषित छोटे पैरों को अपने हाथों से छुआ, जो पैर दलों से विकसित होनेवाले कमल पुष्पों की तपस्या के फल से उन (कमलों) के योग्य उपमान बनकर उत्पन्न हुए थे।

मंथरा ने (जब उसके पैर) छुए, तब कैकेयी जग पड़ी, फिर भी दिव्य पातिव्रत्य से युक्त उस देवी के दीर्घ नेत्रों से निद्रा पूर्ण रूप से हटी नहीं; तब मंथरा घोर निंदा-जनक पाप की प्रेरणा पाकर ये गढ़ी हुई बातें कहने लगी—

दुःखदायक करवाल-सदृश और विषपूर्ण (राहुनामक) सर्प के अपने निकट आने तक जिस प्रकार शीतल तथा रजत वर्ण चन्द्रमा अपनी उज्ज्वल किरणें फेंकता रहता है, उसी प्रकार तुम भी, जबतक तुम्हें बहुत बड़ी विपदा प्राप्त न हो, तबतक उस (विपदा) की चिन्ता नहीं करती हुई सुख से सोती रहती हो।

क्रूर विष-सदृश मंथरा के वचन सुनकर भाले जैसे नयनवाली कैकेयी ने कहा—शत्रुओं को परास्त करनेवाले धनुषों को धारण करनेवाले मेरे पुत्र सुखी हैं। वे अपने कार्यों में कभी धर्म से विमुख नहीं होते। फिर मुझे कौन-सी विपदा हो सकती है ?

यशस्वी पुत्र को प्राप्त करने से कोई भी (व्यक्ति) दुःखमुक्त होकर सुखी हो जाता है। पंचभूतों के मिश्रण से उत्पन्न पृथ्वी पर, वेद-स्वरूप होकर जो राम अवतीर्ण हुआ है, उसे (पुत्र के रूप में) प्राप्त करने से अब मुझे कोई विपदा प्राप्त नहीं होगी।

अत्यधिक प्रेम के समुद्र में डूबी हुई कैकेयी ने ज्योंही ये वचन कहे, त्योंही पाप-समान उस वक्र मंथरा ने कहा—तुम्हारा हित नष्ट हो गया। तुम्हारा वैभव भी मिट गया। कौशल्या अपनी बुद्धि के बल से (ऐश्वर्य-युक्त जीवन) जीती है।

उसके यह कहने पर, उत्तम आभरणधारिणी कैकेयी ने कहा—राजाधिराज मेरे पति हैं, अवर्णनीय यशवाला भरत मेरा पुत्र है, इससे बढ़कर इस पृथ्वी पर वह (कौशल्या) देवी और क्या पा सकेंगी ?

तब मंथरा ने कहा—वीरों के द्वारा उपहसित होते हुए और पौरुष को कुंठित करते हुए जिस (राम) ने ताडका नामक स्त्री को मारने के लिए अपना धनुष झुकाया था, वह कल राज-मुकुट धारण करनेवाला है; यही उसका (अर्थात्, कौशल्या का) आनन्द-मय जीवन है।

मंथरा का यह प्रतिवचन सुनते ही, कैकेयी का मन, जो गरिमामय कौशल्या के मन के समान ही था, विरोध भाव से नहीं, किन्तु आनन्द से भर गया। इसका कारण कदाचित् यही है कि राम के पिता उसके मन में निवास करते थे।

उस निष्कलंक (कैकेयी) देवी का प्रेम-रूपी समुद्र उमड़ उठा। उसका अक्षीण चन्द्र-जैसा मुख और भी प्रकाशमान हुआ। उसका आनन्द वेला को पारकर बढ़ गया।

उसने तीन ज्योतियों (सूर्य, चन्द्र और अग्नि) के जैसे (अति उज्ज्वल) रत्नहार उसे भेंट किया।

वह निष्ठुर और क्रूर (मंथरा) चिल्लाई। धमकी देने लगी। उसने अपनी छोटी आँखों से आग उगलते हुए उसकी ओर देखा। कैकेयी की निंदा की। उष्ण निःश्वास भरा। रोई। अपने रूप को विकृत किया और (कैकेयी के द्वारा दिये गये) उस स्वर्णमय रत्नहार से धरती को गड्ढा बना दिया (अर्थात्, उस हार को धरती पर फेंक दिया।)

पीड़ा उत्पन्न करनेवाली उस कूबरी ने क्रोध से घूरकर कहा—तुम मंदबुद्धि हो। भेद-भाव न होने से तुम अपने पुत्र-समेत बड़ा दुःख पाओगी। किन्तु, मैं दीर्घकाल तक तुम्हारी सौत (कौशल्या) की सेवा करना सहन नहीं कर सकूँगी।

अरुण अधरवाली सीता और नीलवर्ण राम सिंहासन पर आसीन रहें और तुम्हारा पुत्र धरती पर खड़ा रहे—जब ऐसी दशा उत्पन्न हुई है, तब इससे तुम कैसे आनन्दित होती हो? तुमने अपने मन में कैसी दृढता पाई है?

कौशल्या अपना हित भूली नहीं। अतः, उसका पुत्र राज्य-संपत्ति पाकर उन्नति प्राप्त करेगा; भरत ऐश्वर्य से वंचित होगा; वह (भरत) न मरा, न जीवित ही रहा; वह किस प्रकार से अपना दुःख दूर कर सकेगा? तुम्हारा पुत्र बनकर जन्म लेने से उसका जीवन व्यर्थ हो गया।

यदि इस सारी पृथ्वी का शासन यह वरद (राम) ही अपने भाई (लक्ष्मण) के साथ अनन्त काल तक करता रहे, तो भरत और उसके भाई शत्रुघ्न को देश से दूर रहकर (अरण्य में) व्रतयुक्त तपस्या करने के लिए भेज देना ही उचित होगा।

मत्तगजों की सेना से युक्त, भूदेवी के प्यारे, सुन्दर तथा बजाये जानेवाले नगाड़ों से युक्त रहकर धरती का राज्य करनेवाले राजाओं की श्रेणी में भरत उत्पन्न नहीं हुआ है।

स्वर्णवीर-कंकणधारी चक्रवर्त्ती ने उस दिन क्यों अभागे भरत को शालवृत्तों से आवृत ऊँचे पर्वतों से युक्त दूरस्थ (कैकय) देश में सत्वर भेज दिया, इसका कारण मुझे अब ज्ञात हो रहा है।

मंथरा आगे और भी कुछ वंचना-पूर्ण उक्तियाँ कहती हुई भरत के प्रति बोली—तुम्हारे प्रति भेदभाव रखकर (राम को) राज्य देनेवाले तुम्हारे पिता निष्ठुर हैं। (यह समाचार सुनकर हर्ष करनेवाली) तुम्हारी माता भी निष्ठुर है। हे मेरे तात! भरत, अब तुम क्या करनेवाले हो?

फिर उसने कैकेयी के प्रति कहा—तुम राजकुल में उत्पन्न हुई। राजवंश में ही बढ़ी और राजकुल की वधू बनी। यों राजमहिषी बनी हुई तुम बड़ी विपदा-रूपी समुद्र में गिरनेवाली हो, मेरी बात भी तुम नहीं सुनती हो। क्या तुम्हें कुछ ज्ञान भी है?

विद्या, यौवन, अपार पराक्रम, धनुर्विद्या की चातुरी, सौंदर्य, वीरता इत्यादि अनेक गुण भरत में स्थित हैं; किन्तु आज वे सब घास-भरी धरती पर गिरी मधु की बूँद जैसे हो गये हैं।

मंथरा ने मुँह कड़वा करके जो बातें कहीं, उनसे कैकेयी का क्रोध ऐसे बढ़ गया,

जैसे जलती आग में घी पड़ा हो। उसकी रेखाओं से युक्त आँखें अधिक लाल हो गईं। मंथरा को देखकर उसने कहा —

आतपयुक्त सूर्य प्रभृति महान् पुरुष, प्राण जाने पर भी न्याय-मार्ग को नहीं छोड़ते। हे क्षुद्र स्वभाववाली ! मेरे कैकयवंश तथा (वैवस्वत) मनु के वंश को कलंकित करनेवाली कैसी क्षुद्र बात तूने कही ?

तू मेरा हित करनेवाली नहीं है। मेरे सुत भरत का भी हित करनेवाली नहीं है। धर्म का विचार करने पर (ज्ञात होता है कि) तू अपना भी हित करनेवाली नहीं है। हे विवेकहीन ! पूर्वजन्म के पाप-संस्कार के कारण तू ने (अपने) मन को अच्छी लगनेवाली बातें कही हैं।

जन्म और मृत्यु के कारण जो वस्तु प्राप्त होती है या खोती है, वह एकमात्र यश ही है। अतः, शरीर चाहे गिर जाय, न्याय अपने विरुद्ध हो जाय, सन्मार्ग का रूप अपने प्रतिकूल हो जाय, तपस्या का रूप विरुद्ध हो जाय तथा निष्कलंक पराक्रम भी विरुद्ध हो जाय, तो भी अपने कुल-धर्म को छोड़ना उचित नहीं है ।

तू मेरे सामने से हट जा। क्षुद्र वचन कहनेवाली तेरी जीभ को मैंने काट नहीं लिया, पर तेरे इस अपराध को सह लिया, मेरे अतिरिक्त और कोई इस बात को सुन ले, तो तू अन्याय तथा अधर्म करने के अपराध का पात्र बन जायगी। अतः, हे बुद्धिहीन ! चुप रह ।

जिस प्रकार विष का उपचार करने पर भी वह विष न मिटकर पीडा ही उत्पन्न करे, उसी प्रकार मंथरा (कैकेयी के) वह वचन सुनकर भी भयभीत होकर हटी नहीं। किन्तु, यह कहती हुई कि हे मेरे अवलंब, मैं तुझे हितकारी वचन कहे बिना नहीं हटूँगी, उसके चरणों पर गिरकर फिर कहने लगी—

तुमने कहा—ज्येष्ठ के रहते हुए कनिष्ठ को राज्याधिकार नहीं होता। इस न्याय के अनुसार चक्रवर्त्ती के रहते हुए समुद्रवर्ण (राम) का राज्य पर कोई अधिकार नहीं है। जब चक्रवर्त्ती राम को राजमुकुट देने के लिए सन्नद्ध हुए हैं, तब वह सम्पत्ति भरत के लिए क्यों अप्राप्य हो सकती है ?

वैराग्यपूर्ण, करुणायुक्त तथा अपूर्व तपस्या से सम्पन्न मुनि भी क्यों न हों, दुर्लभ सम्पत्ति प्राप्त करने पर उनका विचार भी बदल जाता है। अतः, भले ही अबतक तुम्हारा कुछ अहित (कौशल्या और राम ने) नहीं किया हो, तथापि (सम्पत्ति पाने पर) वे अपने मन में निरन्तर तुम्हारे अहित का ही चिंतन करते रहेंगे।

दूसरों की उन्नति पर ईर्ष्या करनेवाली कौशल्या का पुत्र जब राज करेगा, तब सारी पृथ्वी उसका स्वत्व बन जायगी। तब तुम्हारे पुत्र का तथा तुम्हारा इस पृथ्वी में उस (कौशल्या) के दिये गये पदार्थों के अतिरिक्त और कुछ अधिकार नहीं रहेगा ।

याचक लोग निर्धनता और दुःख से प्रेरित होकर तुम्हारे निकट आकर द्रव्य माँगेंगे, तब क्या तुम (उन याचकों को देने के लिए) स्वयं उस कौशल्या के पास जाकर हाथ फैलाओगी ? या (कुछ देने का सामर्थ्य न होने से) लज्जित होकर रहोगी ? अथवा

(कुछ न दे सकने की) पीडा से भर जाओगी ? नहीं तो, क्या उन याचकों से 'मेरे पास नहीं है' कह दोगी ? तुम कैसा जीवन व्यतीत करोगी ?

तुम क्या करने की बात सोचकर हर्ष से मुग्ध हुई थी ? भविष्य में कभी तुम्हारे पिता, माता, कोई बन्धु या तुम्हारे कुल का कोई व्यक्ति अभाव-ग्रस्त होकर अपने अभाव को दूर करने के विचार से तुम्हारे पास आवेगा, तो क्या वह तुम्हारी सौत के ऐश्वर्य को देखकर चुप रह जायगा ? विचार करके देखो।

तुम पर प्रेम रखनेवाले तुम्हारे गरिमामय पति के डर से ही उस बिंबाधरा सीता का पिता तथा राम का ससुर, तुम्हारे पिता (केकय राजा) पर आक्रमण किये बिना रहता है। अब तुम्हारे पिता का जीवन समाप्त हो जायगा। हे अबोध! तुम्हारे समान निंदनीय जन्मवाला और कौन है ?

और सुनो, यदि तुम्हारे पिता के कठोर शत्रु जब तुम्हारे पिता से युद्ध करने के लिए आयेंगे, तब यदि कोशल देश की सेना उनकी सहायता न करेगी, तो उन्हें (तुम्हारे पिता को) विजय नामक वस्तु किस प्रकार मिलेगी ? यह बताओ। अहो, तुमने अपने बंधुजनों का भी विनाश करनेवाले दुःख-समुद्र में डूबने का निश्चय कर लिया है ?

अपने उत्तम पुत्र को राज्य पाने से रोककर तुमने उसे मिटा दिया। उज्ज्वल समुद्र-रूपी वस्त्र से भूषित पृथ्वी को चक्रवर्त्ती ने अपने एक पुत्र को दिया, जो उसके प्रिय भाई का स्वत्व होगा। अन्य कौन उसपर अधिकार रख सकेगा ?—इस प्रकार मन्थरा ने कहा।

क्रूर मंथरा के इन वचनों को सुनकर देवों की माया के कारण उन (देवों) के द्वारा प्राप्त वर के प्रभाव के कारण तथा मुनियों के तपःप्रभाव के कारण कैकेयी का सरल तथा निष्कलंक मन भी बदल गया।

राक्षसों के द्वारा कृत पापों तथा देवों के किये पुण्यों से प्रेरित होकर कैकेयी ने अपनी करुणा को त्याग दिया स्वच्छ वचनवाली तथा हरिणी-तुल्य कैकेयी की वह निष्ठुरता ही तो आज भी इस संसार के लोगों के, राम के अपार यशोमृत का पान करने का कारण बनी है ?

इस प्रकार (प्रभावित) होकर कैकेयी ने, पापकर्मों से पूर्ण कूबरी को प्रेम से देखकर कहा—तुम मुझपर प्रेम रखनेवाली और मेरे पुत्र का हित करनेवाली हो। मेरा पुत्र अलंकृत राज-किरीट को किस प्रकार प्राप्त करे, अब यह बताओ।

आम के टिकोरे के जैसे सुन्दर नयनोंवाली (कैकेयी) की बात सुनकर मंथरा बोली—मेरी सखी चतुर है, मेरी साथिन चतुर है। फिर (कैकेयी के) चरणों को नमस्कार करके कहा—अब तुम्हारी अवनति नहीं होगी। यदि तुम मेरी बात मानकर उसके अनुसार काम करोगी, तो मैं सप्त लोकों के राज्य पर भी तुम्हारे अनुपम पुत्र का स्वत्व बना दूँगी।

उस मंथरा ने जिसका मन भी (उसके शरीर के जैसे ही) टेढ़ा था, कहा—हे उज्ज्वल रत्न-समान देवी! मैं भली भाँति विचार कर तुम्हें एक बात बताती हूँ। पूर्वकाल

में जब घनी विजयमाला से भूषित शंबरासुर मारा गया था, उस युद्ध में विजयी चक्रवर्ती ने तुम्हें दो वर दिये थे ; उनको तुम उनसे अब माँग लो ।

उन दो वरों में से, एक से राज्य को तुम अपना बना लो और दूसरे से, चौदह वर्ष के लिए राम को देश छोड़कर अरण्य में भेजने का उपाय करो। इससे सारी समृद्ध पृथ्वी तुम्हारे पुत्र के अनुकूल हो जायगी ।

इस प्रकार कहनेवाली मंथरा का कैकेयी ने हर्ष से गाढालिंगन किया और नवरत्नों का एक हार तथा अपार द्रव्य उसे दिया। फिर कहा—मेरे अनुपम पुत्र को गरजते समुद्र से आवृत पृथ्वी का राज तुमने दिया। पृथ्वी के पति भरत की माता तुम्हीं हो।

तुमने अच्छा उपाय बताया। भरत को गरिमामय मुकुट पहनाना और राम को घने अरण्य में भेजना, ये दोनों कार्य यदि आज पूर्ण नहीं होंगे, तो चक्रवर्ती के सामने ही मैं अपने प्राण त्याग दूँगी। अब तुम जाओ।—इस प्रकार कैकेयी ने मंथरा से कहा ।

कूबरी के जाने के पश्चात् कैकेयी उत्तम पुष्पों के पर्यंक से उतर गई। अपने वर्षाकालिक मेघ के जैसे केशपाश में गुँथी पुष्पमाला के (उन पुष्पों के) मधु पर आसक्त भ्रमर-कुल को व्याकुल करते हुए, इस प्रकार निकाल फेंका, मानों आकाश के बादलों में छिपे चन्द्रमा को ही पकड़कर फेंक रही हो ।

उसने अपनी प्रकाशमय मेखला को दूर फेंक दिया, जैसे अपने बढ़नेवाले यशरूपी लता को ही उखाड़ रही हो। मंजीर, कंकण आदि को भी दूर फेंक दिया। यों उसने अपने ललाट पर केशपाश के समीप में स्थित अपूर्व तिलक को पोंछ डाला, जैसे चन्द्रमा के कलंक को पोंछ रही हो ।

फिर, उत्तम रत्न-जटित आभरणों को एक-एक करके उठाकर फेंक दिया। कस्तूरी-गंध से युक्त अपने केशपाश को ऐसे खोल दिया कि वे लटककर धरती को छूने लगे; अंजनयुक्त नीलोत्पल-जैसे नयनों के अंजन को पिघलाते हुए वह अश्रु बहाने लगी एवं पुष्पहीन लता के समान धरती पर लोट गई ।

केकय की पुत्री इस प्रकार (धरती पर) पड़ी रही, जैसे पीडा की अधिकता से कोई हरिणी पड़ी हो। नाचनेवाला कलापी थककर पड़ा हो, अथवा 'कमलवासिनी (लक्ष्मी) सीता, अयोध्या छोड़कर जानेवाली है', यह विचार करके उस लक्ष्मी की बड़ी बहन ज्येष्ठा देवी[1] आकर वहाँ पड़ी हो। (१-८८)

१. जिस प्रकार लक्ष्मी को मंगल देनेवाली देवी मानते हैं, उसी प्रकार ज्येष्ठा को अमंगल की देवी मानते हैं ज्येष्ठा लक्ष्मी की बड़ी बहन मानी गई है। —अनु०

अध्याय ३

कैकेयी-(दुष्कार्य) पटल

रात्रि का अर्धभाग व्यतीत हो गया। तब दीर्घ भुजाओंवाले सिंह-सदृश चक्रवर्त्ती (दशरथ), उनकी जय-जयकार करनेवाले राजाओं से घिरे हुए चले और वीणा-नाद को परास्त करनेवाली मधुर बोली से युक्त कैकेयी के प्रासाद में पहुँचे।

राजा लोग (दशरथ को) प्रणाम करके सौध-द्वार पर रुक गये। दासियाँ दौड़कर आईं और उन (दशरथ) का स्वागत करके उन्हें भीतर ले गईं। यों चलकर चक्रवर्त्ती पर्यंक से अलग पड़ी हुई, बरछे-जैसे विशाल नयनों तथा मृदुल कंधोंवाली सुन्दरी (कैकेयी) के निकट गये।

चक्रवर्त्ती ने वहाँ जाकर (कैकेयी की दशा) देखी यह सोचते हुए कि न जाने इसे कौन-सा दुःख प्राप्त हुआ है, व्याकुलचित्त हुए। फिर, जैसे हाथी, हरिणी को उठा रहा हो, वैसे ही अपनी विशाल भुजाओं में उसको आलिंगन-बद्ध करके उठाने लगे।

सुगंधित पुष्पमालाधारी चक्रवर्त्ती के प्राण-तुल्य उस (कैकेयी) ने उसका आलिंगन करनेवाले (चक्रवर्त्ती के) विशाल हाथों को झटककर हटा दिया और विद्युत् के समान तड़पकर धरती पर गिर पड़ी। फिर, कुछ कहे बिना दीर्घ श्वास भरती हुई पड़ी रही।

पुष्पमाला-भूषित चक्रवर्त्ती ने पृथ्वी पर गिरकर निःश्वास भरती हुई उसको देखा और भयभीत हुए। फिर, उससे कहा—क्या हुआ है? इन सप्त लोकों के रहनेवालों में से जिसने तुम्हारा अपमान किया हो, वह अपने प्राण खो बैठेगा। सारा वृत्तांत मुझे कह सुनाओ। फिर देखो कि मैं क्या करता हूँ। सब बातें मुझे बताओ।

भ्रमरों से गुंजरित पुष्पमालाधारी चक्रवर्त्ती के वचन सुनकर कैकेयी ने सजल मेघ-जैसे अपने विशाल नयनों से अपने स्तनों पर अश्रु गिराती हुई कहा—क्या आपको मुझ पर दया है? यदि है तो अपने पूर्व में जो वर मुझे दिये थे, उन्हें अब पूर्ण कीजिए।

मधुवर्षी (पुष्पों से अलंकृत) केशोंवाली कैकेयी का मनोभाव नहीं जानते हुए चक्रवर्त्ती ने अति उज्ज्वल बिजली के समान हँसकर कहा—तुम्हारा मनोरथ पूरा करूँगा। किंचित् भी कमी नहीं करूँगा। तुम्हारे पुत्र उदार राम की शपथ खाकर कहता हूँ।

यह वचन कहते ही हंसिनी-तुल्य कैकेयी ने कहा—यदि आपको मेरी बड़ी पीड़ा दूर करने का विचार है, तो हे राजन्! देवता आपकी शपथ के साक्षी हों। आपने उस दिन जो दो वर मुझे दिये थे, उन्हें अब पूरा कीजिए।

उस निष्ठुर हृदयवाली की वंचना को नहीं जानते हुए चक्रवर्त्ती ने कहा—लो, अपना वर लो। तुम्हें इतना व्याकुल तथा दुःखी होने की आवश्यकता नहीं है। अभी तुम्हारे वर देकर मैं अपना भार दूर कर लूँगा। कहो (तुम्हारी क्या इच्छा है)।

सब कठोर वस्तुओं से भी अधिक कठोर उस क्रूर (कैकेयी) ने कहा—आपके दिये दो वरों में से एक से मेरे पुत्र को इस समस्त राज्य का अधिपति बनाइए और दूसरे से रामचन्द्र को (चौदह वर्षों के लिए) अरण्यवास के लिए भेजिए—यह कहकर वह (दृढ) पड़ी रही।

सर्पिणी के समान क्रूर उस कैकेयी की जिह्वा से उत्पन्न अत्यन्त पीडाजनक विष ने ज्यों ही चक्रवर्त्ती को छुआ, त्यों ही वे काँप उठे। उनकी सारी देह जलकर शिथिल हो गई। सर्प-दष्ट होकर निश्शक्त हुए मत्तगज के समान वे पृथ्वी पर गिर पड़े।

पृथ्वी पर लोटते हुए चक्रवर्त्ती की उस गंभीर पीडा का वर्णन करने का सामर्थ्य किसमें है? उनकी पीडा के अधिकाधिक बढ़ जाने से उनका मन बहुत ही शोक-उद्विग्न हुआ। उन्होंने लुहार की भट्ठी की भाथी के जैसे उष्ण निःश्वास भरे।

उनकी जिह्वा सूख गई। प्राण निकलने लगे। मन शिथिल हो गया। नयनों से रक्त बह चला। मन की चिन्ता बढ़ गई। उनके शरीर की पाँचों इन्द्रियाँ अपना व्यापार भूलकर अत्यन्त चंचल हो गईं।

प्राण-पीडा से विह्वल चक्रवर्त्ती उठकर पृथ्वी पर खड़े होते, रो पड़ते, गिरते, श्वास-हीन हो चित्र के जैसे निष्क्रिय पड़े रहते, पाप-कर्मवाली कैकेयी के सम्मुख जाकर उसे पकड़कर धरती पर पटक देने का विचार करते।

दृढ बरछा दारुण क्षत में घुसेड़ा जाय, तो उससे उत्पन्न पीडा से जिस प्रकार कोई मत्तगज तड़प उठता है, वैसी ही दशा को प्राप्त हुए चक्रवर्त्ती (कैकेयी को मारने का विचार करते, फिर) यह सोचकर कि स्त्री है, (उसे मारने पर) अपयश होगा, इस विचार से लज्जित होते। वे मन की वेदना से आहें भरकर तड़प उठते। फिर, इस प्रकार शिथिल हो पड़े रहते, जैसे उनकी आँखें छिन गई हों।

आलान-स्तंभ में बँधे हुए मत्तगज के समान चक्रवर्त्ती को शोक-पीड़ित होकर रोते, कलपते देखकर देवता भी भय से काँप उठे। वह समय ऐसा लगता था, जैसे प्रलय-काल आ गया हो। किन्तु, बाण-समान नयनोंवाली कैकेयी का मन यथापूर्व (कठोर ही बना) रहा।

'पति की व्यथा को देखकर भी वह (कैकेयी) कातर नहीं हुई। उसका मन पिघला नहीं, वह लज्जित भी नहीं हुई।'—ऐसा कहने में (कहनेवाले को ही) लज्जा होती है। महान् लोग प्राचीन काल से ही यह सोचकर कि छल-कपट ही नारी का वेष लिये रहते हैं, नारियों को कभी अपना अवलंब नहीं मानते।

इस दशा में खड़ी हुई कैकेयी की ओर देखकर तैलसिक्त तीक्ष्ण धारवाला बरछा धारण करनेवाले चक्रवर्त्ती ने कहा—क्या तुम भ्रम में पड़ी हो? या किसी वंचक ने तुम्हें दुर्बुद्धि सिखाई है? तुम्हें मेरी सौगंध है, क्या हुआ? कहो।

यह सुनकर कैकेयी ने कहा—रासवाले घोड़े पर सवार होनेवाले (हे चक्रवर्त्ती)! मैं भ्रम में नहीं हूँ, किसी कपटी ने मुझे कुछ सिखलाया भी नहीं है। यदि आप पूर्व में दिये हुए अपने वरों को अब देंगे, तो लूँगी। यदि नहीं देंगे, तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगी, जिससे आपको स्थायी अपयश उत्पन्न होगा।

अपने पुत्र (राम) के अतिरिक्त जिनके अन्य कोई प्राण नहीं हैं, वैसे चक्रवर्त्ती कैकेयी के यह कठोर वचन कहने के पूर्व ही इस प्रकार व्याकुल हुए, जैसे जले हुए घाव में बरछा घुसेड़ दिया गया हो। स्तब्ध खड़े रहे। फिर, मूर्च्छित हो गिर पड़े।

विशाल स्वर्ग, पाताल तथा धरती को जीतनेवाले करवालधारी चक्रवर्त्ती, कभी, (अहो, क्रूर नारी!) कहकर आह भरते; 'हाय! धर्म कितना कठोर है!,' कहते; 'मेरे शरीर का अंत हो जाय' कहकर उठते; फिर लड़खड़ाकर पृथ्वी पर गिर पड़ते।

वीरों के पराक्रम को कुंठित करनेवाले भाले को धारण करनेवाले चक्रवर्त्ती उमड़ते हुए क्रोध से कहते—'मैं अपने तीक्ष्ण करवाल से नारियों को निहत करके संसार को स्त्री-रहित कर दूँगा और मैं भी पतित होकर नीच जनों में गिना जाऊँगा।'

वे चक्रवर्त्ती, जिनका सत्य आचरण संसार-भर में प्रसिद्ध था, हाथ पर हाथ मारते, ओंठ चबाते, मन में यह सोचकर दुःखी होते कि सत्य-वचन भी हानिकारक है। जैसे घी में आग की गरमी लगी हो, वैसे ही उनका मन पिघल उठता।

सत्यवादी चक्रवर्त्ती ने सोचा—यदि सत्य की रक्षा न करूँ और इस (कैकेयी) को दंडित करूँ तो वह बुरा होगा। यदि इसके माँगे वर दूँ, तो भी बुरा होगा। फिर, यह विचार करके उठे कि अपने हठ पर दृढ रहनेवाली इससे याचना करना ही अच्छा है।

आलान-स्तंभ को भी तोड़ देनेवाले मद से भरे गज-जैसे राजा लोग अहमहमिका से आकर जिन (दशरथ) के चरणों को प्रणाम करते थे, वे (दशरथ), यह सोचकर कि जिस प्रकार अपराधों को दूर करने के लिए वेत्र-दंड को धारण करना उचित होता है, उसी प्रकार भावी हित को सोचकर क्षमा धारण करना भी उचित है—उस (कैकेयी) के चरणों पर गिर पड़े।

फिर, उन्होंने कैकेयी से कहा—तुम्हारा बेटा (भरत) यह राज्य (देने पर भी) नहीं लेगा। यदि वह स्वीकार भी करे, तो भी संसार के लोग वह कार्य पसन्द नहीं करेंगे। अतः, तुम्हें संसार में शाश्वत रहनेवाला यश नहीं प्राप्त होगा। अपयश पाने से तुमको क्या लाभ होगा?

(भरत का राजा होना और राम का अरण्य-वास करना) देवता लोग भी स्वीकार नहीं करेंगे। संसार के लोग भी (राम को छोड़कर) जीवित रहना नहीं चाहेंगे। तब पातालवासियों के बारे में क्या कहा जाय? तुम किनको रखकर यह राज्य करोगी? राम मेरे कहने से ही (राज्य लेने को) सहमत हुआ है। वह स्वयं ही तुम्हारे पुत्र को पृथ्वी दे देगा—इस प्रकार चक्रवर्त्ती ने कहा।

हे नारी! उदार केकयराज की पुत्री! यदि तुम मेरी आँखें माँगो, तो देने को प्रस्तुत हूँ। मेरे प्राणों को चाहो, तो ये प्राण अभी तुम्हारे अधीन ही हैं। अगर तुम चाहती हो, तो पृथ्वी (का राज्य भी) ले लो। किंतु दूसरे वर की बात (अर्थात्, राम का वन-गमन) भूल जाओ।

मैंने वचन दे दिया कि वर दिये हैं। मैं स्वयं उस वचन को नहीं बदलूँगा। तुम मुझे पीडा देनेवाली बात मत कहो। अग्नि के जैसी जलनेवाली आँखों से युक्त भूत भी, अगर कोई उससे कुछ याचना करे, तो माता के समान (दयावान्) होकर दे देता है। यदि तुम मुझे यह दे दो (अर्थात्, राम के वन-गमन की इच्छा न करो) तो क्या कुछ अनुचित होगा?

विजयी चक्रवर्त्ती ने इस प्रकार के वचन कहकर (कैकेयी से) याचना की। फिर भी अपना उपमान न रखनेवाली अति कठोर कैकेयी का मन नहीं बदला। उसने कहा— हे चक्रवर्त्ती! आपने पहले ये वर मुझे दे दिये। अब उन्हें पूरा न करके क्रोध करें तो मैं क्या करूँ? अब संसार में सत्यवादी कौन रह जायगा?

वे सत्यवादी चक्रवर्त्ती, जिन्होंने कभी असत्य वचन सुना भी नहीं, (कैकेयी की) वह बात सुनकर अत्यंत शिथिलमन हुए। किंतु, बड़ी सहन-शक्ति के साथ यह सोचते हुए कि यह स्त्री विष और अग्नि का रूप है, लज्जित होकर मूर्च्छित-से पड़े रहे। पुनः याचना के स्वर में कहने लगे—

तुम्हारा पुत्र (भरत) राज करेगा। तुम सुख से शासन करती रहो। सारी पृथ्वी तुम्हारे अधिकार में होगी। मैंने दे दिया। मैं अपने वचन वापस नहीं लूँगा। किंतु, मेरे पुत्र, मेरे नेत्र, मेरे प्राण, सब प्राणियों के लिए पुत्र के समान (हितकारी) मेरे राम को इस देश को छोड़कर (अरण्य में) जाने न दो। मेरी इस याचना को तुम स्वीकार करो।

मैं यह देखकर कि सत्य ही मेरी जड़ खोद रहा है, अत्यंत दुःखी हो रहा हूँ। मेरी जीभ सूख रही है। ऐसी दशा में यदि कमलपाणि राम मेरे सम्मुख से हट जायगा, तो मेरे प्राण नहीं बचेंगे। अतः, हे नारि! मेरे प्राण तुम्हारी शरण में हैं।

इस प्रकार विनती करनेवाले चक्रवर्त्ती के मधुर वचनों को नहीं माननेवाली कैकेयी का क्रोध कुछ भी कम नहीं हुआ। उसका हृदय काठ के जैसा था। उसे लज्जा नहीं हुई। उसने अपने अपयश की परवाह नहीं की, और कहा—हे अनेक बाणों को रखनेवाले! आपका यह कथन कि आपके पूर्व दिये वर को मैं स्वीकार न करके छोड़ दूँ, अधर्म ही तो है? आप ही कहिए।

उस क्रूर नारी ने जब यों कहा, तब वे उत्तम कुल के क्षत्रिय (दशरथ), यह कहकर कि यदि मेरा ज्येष्ठ पुत्र किरीट धारण न करके कठोर कंकड़ों से भरे अरण्य में जायगा, तो उसके वियोग में निश्चय ही मेरे प्राण भी मुझ से वियुक्त हो जायेंगे—वज्राहत पर्वत के समान धरती पर गिर पड़े।

चक्रवर्त्ती पृथ्वी पर गिरे। गिरकर दारुण दुःख के समुद्र में डूबे। डूबकर (उन्होंने) उस समुद्र का कोई किनारा नहीं पाया। कोई किनारा न पाकर, क्रूर वचनवाली, अपनी वाणी से हृदय को तोड़नेवाली कैकेयी के क्षुद्र स्वभाव को देखकर अत्यंत शोक से (पृथ्वी पर) लोट गये।

'कांतिमय कंकण-धारिणी नारियों ने अपने प्राण-पतियों के मरने के पूर्व ही अपने प्राण त्याग दिये'—ऐसे यश की भागिनी बनने का अबतक प्रयत्न करती रहीं। किंतु, उनमें से किसी ने अपने पति की हत्या नहीं की थी। हे क्रूर स्वभाववाली! क्या तुम अब अपने पति की हत्या करना चाहती हो?

तुमने अपराध होने की चिन्ता नहीं की। सत्कुल-जात स्त्रियों के धर्म का विचार नहीं किया। (मेरे प्रति दया रखकर) मुँह से आह तक नहीं निकालती। तुम्हारे हृदय में करुणा नहीं है। अपने वचन-बाण से तुमने मेरे प्राण पी लिये। अब तुम पाप की चिन्ता किये बिना संसार के निवासियों के प्राण हरण करनेवाली हो।

वे ही स्त्रियाँ उत्तम होती हैं, जिनमें लज्जा, सरलता, संकोच आदि महत्त्व को बढ़ानेवाले गुण रहते हैं। किंतु, यश के कारणभूत इन गुणों को न रखनेवाली नारियों की गिनती स्त्री-जाति में नहीं होती। वे पुरुष-जाति में ही गिनी जाती हैं। रूप के कारण ही उनकी गणना स्त्रियों में होती है।

मैंने पृथ्वी पर राज्य करनेवाले, बल तथा विवेक में उत्तम बड़े राजाओं को जीता, देवलोक के निवासियों को भी पराजित किया। किन्तु, ऐसा होकर भी मैं अपने घर में रहनेवाली एक स्त्री से परास्त हो गया। इससे मेरी कैसी हानि हुई, क्या मेरी ऐसी दशा होनी चाहिए!

वे चक्रवर्त्ती, जिनके कंधे ऐसे थे, जैसे एक स्वर्णमय पर्वत दूसरे (स्वर्णमय) पर्वत से आ मिला हो, इस प्रकार अनेक विधि से विचार करते, विविध वचन कहकर आह भरते, दुःख के समुद्र में डूबते, एक से असमान दूसरी पीडा को पाते (परस्पर असमान अनेकविध पीडाएँ पाते), मूर्च्छित होकर यों गिरते कि यह संशय उत्पन्न होता कि इनके प्राण हैं या निकल गये। वे यों भग्नहृदय हो रहे।

पहियोंवाले स्वर्णमय रथयुक्त चक्रवर्त्ती इस प्रकार शिथिल हो पड़े रहे। धरती पर यों लोटते रहे कि उनके सुन्दर कंधों पर धूल लग गई। ऐसे समय में करुणाहीन उस कैकेयी ने कहा—हे सुन्दर विजयमालाधारी राजन्! यदि मैं अपने वर यथाविध नहीं प्राप्त करूँगी, तो अपने प्राण त्याग दूँगी।

जलकर भी तृप्त न होने तथा चारों ओर फैलकर प्राणों को जलानेवाली अग्नि के समान स्थित उस कैकेयी ने कहा—हे दृढ धनुषधारी! पूर्वकाल में एक राजा[1] ने सत्य की रक्षा के लिए अपना ही मांस काटकर दिया था। उसके वंश में उत्पन्न होकर आप यदि वर देकर भी उनको पूर्ण करने के लिए दुःखी हों, तो इससे बढ़कर और क्या होगा?

तब बलवान् चक्रवर्त्ती ने यह सोचकर कि कहीं यह पापिन अपने प्राण-त्याग न कर दे, कहा—मैंने वर दे दिये, दे दिये। मेरा बेटा अरण्य में शासन करेगा और मैं मरकर स्वर्ग में राज्य करूँगा। तुम चिरकाल तक अपने पुत्र के सहित अपयश-रूपी समुद्र का पार न पाकर उसीमें डूबती रहोगी, डूबती रहोगी।

अपना यह वचन पूरा करने के पूर्व ही, वे काटनेवाले तीक्ष्ण करवाल जैसी पीडा के अपने मन में प्रविष्ट हो जाने से अत्यन्त व्याकुल हुए। सँभल न सके और निष्क्रिय पड़े रहे। कैकेयी अपनी इच्छा पूर्ण होने से संतुष्ट होती हुई निद्रालीन हो गई।

रात्रि-रूपी स्त्री यह देखकर कि चंद्रकला के सदृश मनोहर मंदहासवाली यह सुन्दरी (कैकेयी) चिरकाल से अपने पति के साथ एकप्राण-सी रही, अब अपने पति को अत्यन्त दारुण दुःख में डूबते हुए देखकर भी किंचिन्मात्र दुःखी न होकर सो रही है, वह (रात्रि-रूपी स्त्री) मानों पुरुषों के सम्मुख खड़ी रहने को स्वयं लज्जित होती हुई, वहाँ से हट चली।

---

१. इसमें उल्लिखित राजा 'शिबि' है, जिसने बाज से एक कबूतर को बचाकर उस कबूतर के बदले अपने शरीर का मांस काटकर बाज को दिया था।

रात्रि के अन्तिम याम में कुक्कुट बोलने लगे। वे ऐसे लगते थे कि भ्रमरों से गुंजरित पुष्पमालाओं को धारण करनेवाले चक्रवर्त्ती ने कैकेयी के कारण दुःखी होकर जो वचन कहे थे, उनको सुनकर मानों वे (कुक्कुट) अत्यन्त व्याकुल हो रहे हों और अपने पंख-रूपी हाथों से छाती पीटते हुए रुदन कर रहे हों।

जलाशयों तथा वृक्षों पर अपने मृदुल पंखों को फड़फड़ाकर कूदनेवाले और आकाश में उड़नेवाले पक्षी, सूक्ष्म कटिवाली सुन्दरियों के नूपुरों के समान ध्वनि करने लगे, मानों वे केकय-राजा की पुत्री होकर उत्पन्न उस विष (-समान कैकेयी) को कोस रहे हों, जिसने क्षुद्रता के साथ दारुण उत्पात उत्पन्न किया था।

हाथी, जो अबतक (हथसारों में) मधुर निद्रा ले रहे थे, अब मानों यह सोचकर कि प्रसिद्ध नामवाले प्रभु सुन्दर मेखलाधारी अपनी पत्नी-सहित अरण्य को जायेंगे, अपने मन में काँप उठे और यह कहते हुए कि हम भी इस पृथ्वी को छोड़ देंगे, झट उठकर चल दिये।

विकसित कमल जैसे अरुण नेत्रोंवाले राम के गज-शुंड जैसे हाथ में मंगल-सूत्र बाँधने के पूर्व जो शामियाना शीतल किरणोंवाले मोतियों से अलंकृत करके तथा सारी पृथ्वी को आवृत करके डाला गया था, वह अब खोला जा रहा हो—यों आकाश में चमकनेवाले नक्षत्र अदृश्य होने लगे।

नगाड़े यह सूचना देते हुए बज उठे कि भयंकर कोदंडधारी राम को प्रणाम करने का शुभ समय आ पहुँचा और रात्रिकाल, जब मन्मथ अपने इक्षु-धनुष का पराक्रम दिखाता था, व्यतीत हो गया, (नगाड़ों की) वह ध्वनि पर्वतों के शिखरों पर के मेघ-गर्जन के समान थी। उस ध्वनि को सुनकर (अयोध्या की) नारियाँ मयूरों के झुण्डों के समान विकसित वदनों के साथ निद्रा छोड़कर उठने लगीं।

विविध पुष्प-समुदाय खिल गये। उनकी सुगन्धि को लेकर मंद-मारुत बह चला। कुछ युवतियाँ उस (मंदानिल) के स्पर्श से व्याकुल हुईं और उनके वस्त्र तथा मेखलाभरण ढीले हो खिसक गये। कुछ स्त्रियाँ, जो स्वप्नों में अपने-अपने प्रियतमों का गाढ़ा आलिंगन करके दुःखमुक्त हो उठी थीं, उन ऐन्द्रजालिक स्वप्नों में बाधा पड़ने से स्तब्ध रह गईं।

कुमुदपुष्प इस प्रकार मुकुलित हो गये, जैसे उत्तम गुणवाली स्त्रियों ने, चिरकाल तक रहनेवाले अपयश को उत्पन्न करके अपनी अपूर्व कीर्त्ति को मिटानेवाली कठोरहृदया कैकेयी के पापकर्म को देखकर और उससे स्त्री जाति के गौरव के मिटने से दुःखी होकर, अपना मुँह बंद कर लिया हो।

जो स्त्रियाँ अत्यन्त अनुराग से भरी थीं, प्रज्ज्वलित अग्नि से भी अधिक तीव्र कामना से पूर्ण थीं तथा मन्मथ के तीक्ष्ण शरों, नभ की चन्द्रिका एवं दीर्घ मंदमारुत के उनके शरीर को काटने से जो अत्यन्त व्याकुल थीं, उन विरहिणी युवतियों के कानों को मधुर राग-पूर्ण गान ऐसे लगे, जैसे फनवाले सर्प (उन कानों में) प्रविष्ट हो रहे हों।

मेघ के समान (दानशील) भुजावाले पुरुष, अपनी शय्याओं से यह विचार करते हुए उठे कि चक्रधारी (राम) के राजतिलक के शुभ दिन के पूर्व की यह रात्रि एक युग से

भी बड़ी लगती है तथा आज का समय ऐसा है, जब कमलनिवासिनी (लक्ष्मी); सप्त लोकों के निवासी एवं हमलोगों के पुण्यवान् नयन तथा हृदय जीवन का लाभ प्राप्त करेंगे ।

जो रमणियाँ, तैल-सिक्त उज्ज्वल तथा तीक्ष्ण बरछे-जैसे अपने नयनों को बंद करके मन में राम के राजतिलक का ही ध्यान लिये, झूठी निद्रा ले रही थीं, वे (स्त्रियाँ) आश्चर्य-जनक शरीर-कांति से युक्त राम की सुन्दरता को देखने की अधिकाधिक बढ़नेवाली इच्छा से, पुष्पों की सेज को ऐसे छोड़कर उठ गईं कि (उन पुष्पों का रस लेनेवाले) भ्रमर गुंजार भरते हुए उड़ चले ।

मनोहर पुष्प-मालाधारिणी जो सुन्दरियाँ मन की दृढता के साथ (अपने पतियों से) मान किये बैठी थीं, वे अब प्रभात-वाद्यों को बजते हुए सुनकर घबरा उठीं और अपने दुःख-व्याकुल पतियों को प्राण-दान-सी करती हुई स्वर्णाभरणों के दबते हुए, लता-तुल्य कटि के भय-विकंपित होते हुए तथा दलयुक्त पुष्पमाला के अंकित होते हुए समागम का सुख न प्राप्त कर सकीं ।

सर्वत्र मयूर-पंख चमक उठे । भ्रमर शब्दायमान हो उठे । पुष्प-मालाएँ चमक उठीं । भेरियाँ शब्दायमान हो उठीं । स्थान-स्थान पर स्थित मुक्ता-पंक्तियाँ चमकती हुई शब्दायमान हो उठीं । आभरण शब्दायमान हो उठे । पक्षी शब्दायमान हो उठे । वीणा-वाद्य शब्दायमान हो उठे । मन से भी अधिक वेग से दौड़नेवाले अश्व, मेघों के समान शब्दायमान हो उठे ।[1]

दीपक उसी प्रकार मन्द पड़ गये, जिस प्रकार चतुर्दश भुवनों को अपने प्राणों-सहित दान देनेवाले, वीरों के वीर, अपने ज्येष्ठ पुत्र पर अधिक प्रेम रखने के कारण अत्यन्त विह्वल तथा पंचेंद्रियों के निष्क्रिय हो जाने से कंपित हो पड़े हुए चक्रवर्त्ती (दशरथ) की दिव्य-देह की कांति मंद पड़ गई थी ।

अनेक वेणुवाद्य शब्द कर उठे । स्वस्ति-वाचन सुनाई पड़ने लगे । संगीत-ध्वनि गगन-भर में व्याप्त हो गई । अनेक प्रकार के वाद्य बज उठे । (सुन्दरियों के) नूपुरों के साथ शंख भी शब्द कर उठे तथा शृंगीवाद्य साम-गान कर उठे ।

सूर्य, धूप के समान बढ़े हुए अन्धकार-रूपी शत्रु को भगाता हुआ और प्रासादों के भीतर के दीपों की कांति को मन्द करता हुआ उदय पर्वत पर उदित हुआ । वह लाल होकर दिखाई पड़ रहा था, मानों पापिन कैकेयी के वैर से अपने कुल के श्रेष्ठ पुत्र चक्रवर्त्ती के प्राणों को व्याकुल होते देखकर वह (सूर्य) अत्यन्त क्रुद्ध हो गया हो ।

पंकज-समूह इस प्रकार सत्वर प्रफुल्ल हो उठे, जैसे वे उन रमणियों के वदन हों, जो (रमणियाँ) उन रामचन्द्र के मुकुट-धारण की शोभा को देखने की इच्छा से भरी थीं, जो (रामचन्द्र) त्रिमूर्त्ति बननेवाले त्रिदेवों के भी आदि कारण थे। स्वयं सारी सृष्टि बनकर रहते थे तथा इन्द्रादि देवों के प्रभु शिव के धनुष को तोड़नेवाले महावीर थे ।

ऐसे समय, उस विशाल अयोध्या की प्रजा, इस विचार से कि आज चक्रवर्त्ती के कुमार सिंहासनारूढ होंगे, बड़े हर्ष के साथ ऐसे कोलाहल कर उठी, जैसे सातों समुद्र एक

---

१. मूल में चमकना और शब्दायमान होना इन दोनों अर्थों को देनेवाली एक ही क्रिया 'ओलित्तन' का बार-बार प्रयोग हुआ है, जिससे शब्दगत सुन्दरता बढ़ गई है। —अनु०

साथ गरज उठे हों। उस दृश्य का वर्णन करने का विचार तक करना मुझ जैसे लोगों के लिए असम्भव है, फिर भी किंचिन्मात्र हम उसका वर्णन करेंगे।

कुंजर-जैसे वीर युवकों के मन को मुग्ध करनेवाली युवतियाँ (अपने शरीर में) महावर लगातीं, दूध-जैसे उज्ज्वल शंख-वलयों को चुन-चुनकर पहनतीं, करवाल तथा बाण-समान तीक्ष्ण नयनों में काजल लगातीं, जैसे उनमें विष ही रख रही हों तथा नव पुष्पों को धारण करतीं।

वहाँ के युवक, जो अत्यन्त आनन्द से अश्रु बहानेवाले कमल-सदृश नयनोंवाले थे, दोष-हीन वदनवाले थे, जिनकी पुष्ट भुजाओं पर मीन समान तथा मद्य-पान से उत्पन्न वर्ण जैसे लाल रंग से भरे नयनोंवाली सुन्दरियों के स्तनों पर के चंदन-लेप का चिह्न अभी नहीं मिटा था, रामचन्द्र के मुकुट-धारण की बात सोचकर उन (राम) के भाइयों के जैसे ही (अत्यन्त आनंदित) हो उठे।

उस नगर में रहनेवाले सद्गुणों के आगार सब पुरुष दशरथ के जैसे थे। ब्राह्मण सब वसिष्ठ के जैसे थे। सच्चरित्र स्त्रियाँ कौशल्या की जैसी थीं तथा अन्य युवतियाँ सीता के समान थीं और वह (सीता) देवी लक्ष्मी के समान थीं।

सीता के पति के मुकुट-धारणोत्सव को देखने की उमड़ती हुई इच्छा से प्रेरित होकर राजाओं का समूह अमृत का पान करने के लिए आये हुए देवों के जैसे आकर वहाँ एकत्र हुआ, जिससे शब्दायमान समुद्र से आवृत पृथ्वी का सारा प्रदेश खाली हो गया।

उस सुन्दर नगर में सर्वत्र, शर्करा के-से माधुर्य एवं प्रवाल के जैसे रक्त अधरोंवाली, पीन स्तनोंवाली तथा विशाल जघन-तटवाली सुन्दरियों के झुण्ड थे और उनके साथ पुरुषों के झुण्ड भी थे। सब एक दूसरे को ढकेलते हुए कह रहे थे कि चलो-चलो, किन्तु आगे जाने के लिए स्थान न होने से वे अपने-अपने स्थानों पर ही स्थिर खड़े रहने के अतिरिक्त न तो आगे बढ़ सकते थे, न उस विचार को (अर्थात्, आगे बढ़ने के विचार को) छोड़ ही सकते थे।

उस जन-समुदाय को देखकर कुछ कहते थे कि राजा लोग ही अधिक हैं, कुछ कहते थे कि सैनिक वीर ही अधिक हैं, कुछ कहते थे कि पुरुष अधिक हैं, कुछ कहते थे कि स्त्रियाँ अधिक है, कुछ कहते थे कि आगत प्रजा ही अधिक है, कुछ कहते थे कि अभी आनेवाली प्रजा अधिक है, जो जैसा समझता था, वह वही कहता था। किन्तु, कोई भी सम्पूर्ण रूप से (उस भीड़ को) नहीं देख पाता था।

नीलोत्पल का लावण्य और भाले की क्रूरता, दोनों को एक साथ मिलाकर तथा उस पर मृदुल अंजन नामक विष को लगाकर जैसे धवल चन्द्रमा पर रखा गया हो वैसे विशाल नयनों से युक्त सुन्दर तथा लचकती हुई सूक्ष्म कटिवाली युवतियाँ नाचनेवाले मयूरों के झुण्ड के समान एकत्र हो आईं।

सुगन्धित तुलसी-माला से भूषित (राम) के भू-देवी के साथ शुभ विवाह को (अर्थात् राज-तिलक को) देखने के लिए जो नहीं आये, वे थे लंका के निवासी राक्षस, सप्त द्वीपों के कुल पर्वत तथा अष्ट दिशाओं में स्थित मदस्रावी गज।

विशाल राज्यों के शासक इन्द्र की समता करनेवाले नरेश ऐसे मुक्तामय धवल छत्रों को लिये हुए जैसे करोड़ों चन्द्र आकाश में भर गये हों तथा ऐसे श्वेत चामरों को लिये हुए जैसे अन्तरिक्ष में अनेक हंस उड़ रहे हों, अभिषेक के मण्डप में आ पहुँचे।

तपस्या के द्वारा पुण्य-फलों को प्राप्त करनेवाले उत्तम वेदज्ञ ब्राह्मण ऐसे आनन्द के साथ कि अपने पुत्र के विवाह को ही देखनेवाले हों, राज्य-लक्ष्मी के साथ रामचन्द्र का विवाह देखने के लिए आ पहुँचे।

देवता गगन-तल को भरने लगे; समुद्र-रूपी वस्त्र से युक्त भूमि पर रहनेवाले लोग सब दिशाओं को भरने लगे; मंगल-सूचक शंखों की ध्वनि तथा विशाल भेरियों की ध्वनि श्रोताओं के कानों में भरने लगी; अपरिमेय स्वर्ण के साथ (दान करते हुए) बहाई हुई जल की धारा, वीचियों से पूर्ण सातों समुद्रों को भरने लगीं।

दीप की कांति को मन्द करनेवाली देह की कांति से युक्त राजाओं के विद्युत्-जैसे चमकनेवाले असंख्य किरीटों की रह-रहकर चमकनेवाली जगमगाहट, गगनगामी सूर्य को भी आवृत कर फैल गई; समुद्र से उत्पन्न मुक्ता जैसे दाँतोंवाली मंदहास-युक्त युवतियों के आभरणों की कांति, स्वर्ण को भी आवृत करके देवताओं की आँखों को भी चौंधियाने लगी।

उस समय, प्रभु (राम) के राज्याभिषेक के लिए आवश्यक समस्त सामग्री को लेकर वेदज्ञ ब्राह्मण चारों वेदों का वाचन करते हुए आये। उस पुरातन नगर के द्वार पर एकत्र हुई भीड़ उनके लिए मार्ग छोड़कर हट गई; इस प्रकार (ब्राह्मणों को अपने साथ लेकर) महान् तपस्वी वसिष्ठ आ पहुँचे।

वसिष्ठ मुनि ने गंगा से कन्याकुमारी-पर्यंत सब तीर्थों के पवित्र जल तथा चारों दिशाओं के जल को मँगवाया। होम के लिए आवश्यक वस्तुओं का प्रबन्ध किया और वीर सिंहासन भी प्रस्तुत करके रखा तथा सब आचार सम्पन्न किये।

ज्यौतिषज्ञों ने कहा कि मुहूर्त्त निकट आ गया है। कर्म-बन्धन को तोड़नेवाले तप का आचरण करनेवाले महर्षि (वसिष्ठ) ने सुमंत्र को आदेश दिया कि शीघ्र जाकर रत्न किरीट-धारी चक्रवर्त्ती को ले आओ। वह आज्ञा शिरोधार्य करके सुमंत्र बड़े प्रेम के साथ गया।

गगनोन्नत राज-प्रासाद में चक्रवर्त्ती को न पाकर सुमंत्र ने वहाँ के परिजनों से पूछा। उन लोगों से यह जानकर कि चक्रवर्त्ती कैकेयी के साथ हैं, वहाँ पहुँचकर सुमंत्र ने दासियों के द्वारा अपने आगमन का समाचार भीतर भेजा। तब स्त्रियों में यमतुल्य कैकेयी ने सुमंत्र को यह आज्ञा दी कि वह जाकर राम को यहाँ ले आये।

कैकेयी का आदेश पाकर सुमंत्र बड़ी उमंग के साथ स्वर्णमय सौधों से युक्त वीथियों को शीघ्र पार कर गया और अपने मन में अपना ही ध्यान करते रहनेवाले (अर्थात्, नारायण के अवतारभूत तथा भगवान् के ध्यान में निरत रहनेवाले) पर्वत-तुल्य कंधोंवाले राम को नमस्कार करके मुँह पर हाथ रखकर[1] यों निवेदन किया।

---

१. बड़े लोगों के साथ बात करते समय मुँह के सामने हाथ रखकर बोलना विनम्रता का चिह्न होता है।—अनु०

राजा, ऋषि तथा भूतल के लोग तुम्हारे पिता के समान ही बड़े प्रेम के साथ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। तुम्हारी छोटी माता (कैकेयी) ने आदेश दिया है कि मैं तुमको वहाँ ले आऊँ। अतः, स्वर्णमय उन्नत मुकुट को धारण करने के लिए शीघ्र चलो।

प्रभु (राम) वह वचन सुनकर, सहस्र शिरोंवाले (नारायण) को नमस्कार करके समुद्र-जैसे राज-समुदाय से घिरे हुए, पुष्पालंकृत रथ पर सवार होकर चले। उस समय देवता लोग दिव्य संगीत का गान करते हुए आनन्द से उन्हें आशीर्वाद दे रहे थे एवं सुन्दरियाँ बड़े कोलाहल के साथ उन्हें देख रही थी।

'वीर (राम), मनोहर रत्न-मुकुट धारण करने के लिए जा रहे हैं,' इस उमंग से प्रेरित होकर वे सुन्दरियाँ एक से एक आगे बढ़कर मार्ग के दोनों पार्श्वों में बड़ा कोलाहल करती हुई आ खड़ी हुईं। वे इस प्रकार हो गईं, मानों उन सबका एक ही प्राण हो और वह प्राण बाहर होकर एक अनुपम रथ पर आरूढ होकर जा रहा हो।

वे उदार (रामचन्द्र) कठोर वचनवाली (कैकेयी) की आज्ञा से उज्ज्वल किरीट को छोड़कर, पवित्र पृथ्वी-रूपी पत्नी से वियुक्त होकर, अरण्य के लिए प्रयाण करने के पूर्व ही, संगीत की मधुर कंठध्वनि करनेवाली उन रमणियों की भुजा-रूपी बाँसों तथा नेत्र-रूपी बरछों के घने अरण्य में प्रविष्ट हो गये।

वे स्त्रियाँ, सुगन्ध-चूर्ण, पुष्प, चन्दन, स्वर्ण आदि बिखेरने के लिए वहाँ आकर अपनी सुन्दर मेखलाओं को, कँगनों को तथा लज्जा को बिखेर रही थीं। वे मन्मथ के बाणों से आहत होकर, क्षतों से पूर्ण अपने परस्पर सटे हुए मृदु स्तनों को, काम-पीडा के कारण नयनों से बरसनेवाले अच्छे अश्रुजल से धो रही थीं।

'यह सुन्दर नयनोंवाला (राम) क्या पृथ्वी की रक्षा करने के योग्य है? हम, अबलाओं के प्रति किंचित् भी प्रेम से यह हीन है', यों सोचकर वे व्याकुलता से काँप उठतीं और यह कहती कि अरुण नयनों तथा श्यामल देह से युक्त यह राम सब स्थानों में दिखाई दे रहा है, किन्तु न जाने कितने राम हैं।

स्त्रियाँ इस प्रकार (प्रेममग्न) होकर, झुण्ड बाँधकर कोलाहल करती हुई आईं। मुनियों तथा उस प्राचीन नगर के वृद्धों एवं बालकों ने राम के रूप को देखा, किन्तु (उनके प्रति) अपने प्रेम की सीमा को नहीं देखा। अब हम उनके मन के भावों एवं उनके वचनों का वर्णन करेंगे।

उन लोगों में से कोई कहता, यह संसार तर गया। कोई कहता, युगांत काल को यहीं से तुम देख लो (अर्थात् , वे राम को यह आशीर्वाद देते हैं कि युगांत काल तक तुम जीवित रहो), कोई कहता, हमारी आयु भी तुम ले लो, कोई कहता, पंचेंद्रियों पर दमन करके हमने जो कठोर तपस्या की है, उसका फल तुम्हारा ही हो और कोई कहते, हे हरित तुलसी की माला धारण करनेवाले! तुमको समस्त पुण्यफल प्राप्त हों।

कोई कहते, इस (राम) के अत्यन्त करुणा से पूर्ण उज्ज्वल नयनों की समता करते हैं कमल और इसकी देह-छवि को प्राप्त किया है मेघों ने। न जाने, उन्होंने कैसा पुण्य किया है। और, कुछ कहते, चक्रवर्ती दशरथ ने अपूर्व तपस्या करके इस महानुभाव को

पुत्र के रूप में प्राप्त करके इस संसार को दिया है, उनका हम क्या प्रत्युपकार कर सकते हैं ?

कोई कहते, इस महानुभाव की कृपा, गजेंद्र की पुकार को सुनकर मकर के प्राणों का अन्त करनेवाले चक्रधारी नारायण की कृपा-जैसी है। कोई प्रभु के निकट आकर, उनके दर्शन कर, कुछ कारण के विना ही अपने मनोहर नेत्रों से अश्रु बहाने लगते।

कोई कहते—प्रभु की गंभीरता और बुद्धि महान् श्याम घन के समान है ; उनका जैसा शील और किसमें हो सकता है ? चिरकाल तक गणना करने योग्य सबसे बड़ी संख्याओं के भी परे जो रहता है, उस अनादि तथा अनंत, अविनाशी मूर्त्ति (नारायण) का यह अवतार है। यह देवों में अंतर्भत नहीं है।

कोई कहते—समुद्र खोदनेवालों की (अर्थात् सगर-पुत्रों की), धरती पर गंगा नदी को लानेवालों की (अर्थात् भगीरथ की), देवों की सहायता करने के लिए असुरों के साथ युद्ध करके उन्हें परास्त करनेवालों की (अर्थात् इक्ष्वाकु, ककुत्स्थ आदि दशरथ-पर्यंत अनेक सूर्यवंशी राजाओं की) जो अति प्रवृद्ध कीर्त्ति स्थिर है, वह इस प्रभु (राम) की विजयमाला-भूषित भुजाओं की कीर्त्ति के कारण ही अमर बनी है।

हे वीर राम ! लो, यह चंदन है ; ये उत्तम रत्न-हार हैं। यहाँ तिलक एवं सर्व आभरणों से भूषित मत्तगजों की श्रेणियाँ हैं। ये अश्व-पंक्तियाँ हैं। ये पीत-स्वर्ण की निधियाँ हैं ; निर्धन लोगों को इनका दान दो—यों कहकर कोई उन वस्तुओं की पंक्तियाँ लगाते थे।

विद्युत्-समान रथ पर सवार होकर जब रामचन्द्र आ रहे थे, ऐसे द्रवितचित्त हो खड़े थे, जैसे कोई गाय अपने बछड़े को अकेले छलाँग मारकर आते हुए देखकर प्रेम से द्रवितमन होती है।

कुछ सद्गुण-सम्पन्न यह कहते कि श्वेतच्छत्र की छाया किये, बड़ी सेना रखे, विविध शस्त्र धारण किये जो राजा भूमि का शासन करते हैं, उनका अब (राम जैसे व्यक्ति के उत्पन्न होने के पश्चात्) पुत्रों को जनना व्यर्थ है, और चित्र-लिखित मूर्त्ति-जैसे स्तब्ध खड़े रहते।

विद्युत्-से शोभायमान श्याम घन जैसे वक्ष पर यज्ञोपवीत से शोभायमान राम, क्या रथ पर शीघ्रता से मार्ग पार करता हुआ जायगा ? (राम के) रथ की गति को मंद करने के लिए अनेक स्वर्णराशियों और विविध रत्नों से मार्ग को भर दीजिए—यों कहते हुए कुछ लोग मार्ग पर (स्वर्ण, रत्न आदि) बिखेर रहे थे।

कुछ लोग कहते—यह अपनी माता की गोद में नहीं पला, किन्तु पूर्वजन्म के पुण्य से इसका पालन करनेवाली है कैकेयी, अतएव वह (कैकेयी) समस्त पृथ्वी का शासन इसे देकर आनंदित हो रही है। ऐसा करनेवाली उस (कैकेयी) का आनन्द किस प्रकार का है ! हम क्या कहें ?

कुछ कहते—अब पाप और दुःख समूल मिट जायेंगे। कुछ कहते—भूमंडल पर अब एक व्यक्ति का स्वत्व नहीं रहा, वह सब लोगों का हो गया। कुछ कहते—यह देवताओं के शत्रु राक्षसों को मिटा देगा और कुछ कहते—इसकी आज्ञा का पालन करनेवाले राजाओं का भाग्य कितना महान् है !

जब नगरनिवासी इस दशा में थे, तब विजयी प्रभु (राम) अनुपम रथ पर आरूढ होकर, दीर्घ ध्वजाओं से शोभित प्रासादों की पंक्तियों से युक्त वीथियों को पार कर गये और महान् यश से भूषित चक्रवर्ती के प्रासाद में जा पहुँचे।

पुष्प-भूषित कुंतलोंवाली सुन्दरियों के द्वारा चामर डुलाये जाते हुए, नूतन हर्ष से उल्लसित मन से, राम वहाँ आये, किन्तु वहाँ अपने अगाध स्नेह को प्रकट करते हुए, उन्नत किरीट धारण किये हुए, सुन्दर कमल-पीठ पर आनन्द के साथ आसीन हुए दशरथ को नहीं देखा।

वे राम, जो वेदों तथा अन्य शास्त्रों के जाननेवालों के मन में प्रकाशित (भगवान् के) रूप के साथ एकरूप थे, उस स्वर्णमय सभा-मंडप में नहीं गये, जहाँ ऋषियों और नरेशों के संघ बड़े आनन्द के साथ यथार्थ प्रशस्तियों का गान कर रहे थे, किन्तु अपनी छोटी माता (कैकेयी) के आवास में गये।

राम को यों जाते हुए देखकर राजाओं तथा ऋषियों ने सोचा—राम ने उचित ही सोचा है। वह पहले अपने पिता के चरणों को नमस्कार करके, फिर सब दिशाओं में उज्ज्वल भासमान किरणोंवाले सूर्य से प्राप्त अत्युत्तम मुकुट को यथाविधि धारण करनेवाला है। यह बिलकुल ठीक ही है।

जब ऐसा हो रहा था, तब रामचन्द्र मन में किंचित् शिथिल होकर फिर स्वस्थ हुए और पवित्र दशरथ के रहने के स्थान को ढूँढते हुए आ पहुँचे। यह देखकर, अनुपम क्रूरता से युक्त कैकेयी, यह सोचती हुई कि मेरा पति अपने मुँह से (वरदान की बात) नहीं कहेगा, अतः मैं स्वयं इससे कहूँगी—उसको (कैकेयी को) अपनी माता मानकर उसके निकट आये हुए राम के सम्मुख यम के समान वह प्रकट हुई।

गोधूलि-वेला में अपनी माँ को देखनेवाले वत्स के सदृश राम ने अपने सम्मुख आई हुई माता को, धरती पर सिर रख नमस्कार किया। सिंदूर तथा प्रवाल-समान सुगंधयुक्त अपने मुँह को एक अरुण कर से आवृत करके और दूसरे कर से अपने वस्त्रों को सँभाले हुए बड़ी विनम्रता के साथ खड़े रहे।

इस प्रकार खड़े हुए राम को देखकर, लौह-हृदय से युक्त होकर, 'प्राणियों का संहार करनेवाला यम'—केवल इस नाम से रहित होकर, कठोर कृत्य करनेवाली उस (कैकेयी) ने कहा—हे तात! तुम्हारे पिता तुमसे एक बात कहना चाहते हैं। यदि उनके अभिप्राय को कहना मुझे उचित हो, तो मैं उसे कहूँगी।

आज्ञा देनेवाले मेरे पिता हैं। कहनेवाली आप स्वयं हैं। यह संभव हो तो—(अर्थात्, यदि आप स्वयं उस बात को मुझसे कहें तो) मेरा उद्धार हुआ। मेरे सदृश जन्म लेनेवाला और कौन है? मेरे भाग्य से ऐसा अच्छा फल मुझे मिला है, इससे बढ़कर और क्या अच्छा फल हो सकता है? आप मेरे माता और पिता दोनों हैं। आपका वचन मेरे लिए शिरोधार्य हैं। (अतः) आप आज्ञा दें।

तब कैकेयी ने राम से कहा—चक्रवर्ती ने यह आज्ञा दी है कि समुद्र से आवृत पृथ्वी का शासन भरत करे और तुम जटाधारी होकर तपस्वी के वेष में घने अरण्य में जाकर

रहो। वहाँ पवित्र नदियों में स्नान करते हुए चौदह वर्ष व्यतीत करो और उसके पश्चात् लौट आओ।

किसी के लिए अवर्णनीय गुणोंवाले रामचन्द्र के सुन्दर मुख-मंडल की उस समय जो शोभा थी, उसका कथन करना हम जैसे लोगों के लिए सुलभ नहीं है। उस मुख-शोभा ने, जो सदा कमल की सुषमा की जैसी रहती थी, कैकेयी के यह वचन सुनकर सद्योविकसित अरुण कमल को भी परास्त कर दिया (अर्थात् , कमल की शोभा से भी अधिक राम के वदन की शोभा बढ़ गई।)

रामचन्द्र पहले विशुद्ध ज्ञानवाले चक्रवर्त्ती की आज्ञा का उल्लंघन होने से डरकर ही इस अंधकारमय संसार के राज्य के दुःख को स्वीकार करने के लिए सन्नद्ध हुए थे। अब वे उस भार से मुक्त होकर ऐसे लगे, जैसे कोई वृषभ, जो चक्रवाले शकट में स्वामी के द्वारा जोता गया हो, पर किसी करुणामय व्यक्ति के द्वारा बंधन से छुड़ा दिया गया हो।

यदि यह चक्रवर्त्ती की आज्ञा न भी हो, फिर भी क्या आपकी आज्ञा मेरे लिए पालनीय नहीं है? मेरे भाई ने ऐश्वर्य पाया, तो मैंने भी तो उसे पा लिया। अतः, इससे बढ़कर मेरा हित और क्या हो सकता है? इस आज्ञा को मैंने शिरोधार्य किया। मैं अभी बिजली की जैसी धूप से युक्त अरण्य में जाऊँगा। आपसे विदा भी ले रहा हूँ।

(१–११०)



अध्याय ४

नगर-निष्क्रमण पटल

पर्वत से भी ऊँचे कंधोंवाले राम ने ऐसे वचन कहकर कैकेयी के चरणों को पुनः नमस्कार किया। पिता दशरथ जिस स्थान में रहते थे, उस दिशा की ओर मुख करके नमस्कार किया और स्वर्ण-कमल पर आसीन लक्ष्मी तथा भू-देवी के रोते हुए, वे कौशल्या के आवास में पहुँचे।

कौशल्या देवी जब यह सोचती हुई बैठी थी कि मेघों के आवासभूत पर्वत-जैसा मेरा राम, किरीट धारण करके आयेगा, तब राम डुलनेवाले चामर और श्वेतच्छत्र के बिना ही, विधि के अपने आगे-आगे जाते हुए और धर्मदेव के अपने पीछे-पीछे आते हुए, अकेले ही, कौशल्या के सम्मुख जा पहुँचे।

'इसने किरीट नहीं पहना है, इसके केश तीर्थों के पवित्र जल से भीगे नहीं हैं; इसका कारण क्या हो सकता है?'—इस प्रकार आशंकित होनेवाली उस (कौशल्या) के चरणों को स्वर्णमय वीर-वलयधारी राम ने प्रणाम किया। उस देवी ने चिंतित मन के साथ उन्हें आशीर्वाद देकर पूछा—सोचा हुआ कार्य क्या हुआ? क्या राजतिलक में कोई विघ्न उत्पन्न हुआ?

कौशल्या के यह पूछने पर राम ने अपने अरुण कर जोड़कर कहा—आप के प्रेम का पात्र, उत्तम गुणवाला मेरा भाई भरत ही उन्नत किरीट को धारण करनेवाला है।

तब उस (कौशल्या) देवी ने, जो राम आदि चारों पुत्रों पर निष्कलंक प्रेम रखती थीं और भेदभाव से रहित थीं, कहा—(ज्येष्ठ को रहते हुए, कनिष्ठ को राज्य का अधिकार नहीं है, इस) परिपाटी के अनुसार यह (भरत का राजतिलक) नहीं हो सकता। बस इतना ही ; नहीं तो वह (भरत) सब से अधिक गुणवान् है, उसमें कोई कमी नहीं है।

कौशल्या ने राम से पुनः कहा—हे पुत्र ! चक्रवर्ती की आज्ञा का निषेध करना तुम्हारा धर्म नहीं है। इस आज्ञा को अपने लिए हितकर समझकर तुम अपने भाई भरत को राज्य दे दो और उसके साथ एक होकर चिरकाल तक जियो।

माता का कथन सुनकर पवित्र, हर्ष-भरे हृदयवाले तथा दोषहीन गुणवाले राम ने कहा—चक्रवर्ती ने मुझे सन्मार्ग पर चलने के लिए एक आज्ञा दी है।

कौशल्या ने पूछा—वह आज्ञा क्या है ? तब राम ने कहा—चक्रवर्ती ने आज्ञा दी है कि मैं चौदह वर्ष-पर्यंत महान् अरण्य में ऋषियों के साथ निवास करके फिर लौट आऊँ।

वह वचन-रूपी अग्नि कर्णाभरण से भूषित (कौशल्या के) कानों में प्रविष्ट होवे, इसके पूर्व ही वह दुःखी हुई, कृशगात्र हुई, भ्रांतचित्त हुई, रोई, मूर्च्छित हुई और गिर गई।

उसने (राम से) कहा—हे पुत्र ! चक्रवर्ती ने तुम्हारे प्रति पहले जो कहा था कि तुम इस विशाल धरती का अवलंब बनकर इसकी रक्षा करो, वह क्या धोखा था या वह विष ही था ? मेरे पाँचों प्राण भयभीत हो रहे हैं।

कौशल्या (अत्यन्त पीडा के कारण) कभी एक हाथ से दूसरे को मलती, कभी अपने प्यारे पुत्र के अधिष्ठान बने हुए, वटपत्र की समता करनेवाले अपने उदर को, कंकणधारी पल्लव-सदृश करों से दबाती, कभी अग्नि से जैसे धुआँ उठता हो, वैसा निःश्वास भरती। पुनः उस निःश्वास को निगल जाती। इस प्रकार वह दुःखी हो रही थी।

'चक्रवर्ती की दया भी भली है !'—कहकर हँसती। सामने खड़े पुत्र को देखकर यह कहकर कि तुम्हारा वन-गमन कब होगा ?—उठती। कौशल्या यों दुःखी हुई जैसे उसके शरीर से प्राण ही निकल रहे हों।

वह यह कहकर कि हे पुत्र ! तुम्हारे प्रति अपने मन में अत्यधिक प्रेम रखनेवाले चक्रवर्ती के प्रति तुमने क्या अपराध किया ? वह यों रोती, जैसे पूर्वजन्म के पाप के कारण दरिद्रता अनुभव करनेवाला कोई व्यक्ति सम्पत्ति पाकर भी उसे खो बैठा हो और रो रहा हो।

वह कहती—क्या धर्म मेरा सहायक नहीं हैं ? कभी कहती, हे देवताओ ! मैंने कौन-सा पाप किया कि इस प्रकार मुझे विकल-प्राण होना पड़ रहा है ? वह, बछड़े से अलग की गई गाय के समान व्याकुल हुई। इसके अतिरिक्त और क्या कहा जाय ?

इस प्रकार व्याकुल होनेवाली माता को राम ने अपने हाथों से उठाया और यह कहकर सांत्वना देने लगे कि हे अपूर्व पातिव्रत्यवाली माता ! सत्य की गरिमा से युक्त हमारे चक्रवर्ती को क्या आप असत्य-युक्त करेंगी ? कहिए तो।

शिला-सदृश दृढता से युक्त पातिव्रत्यवाली कौशल्या को सांत्वना देने के लिए राम ने उसके मन में बैठनेवाले, सुन्दर, सारगर्भित और कहने योग्य ये वचन कहे —

मुझे ऐसा भाग्य प्राप्त हुआ है कि मेरा उत्तम भाई राज्य पा रहा है। मेरे पिता ऐसे सत्यवादी हैं कि भूलकर भी असत्य नहीं कहते। मैं अरण्य में निवास करके फिर वापस आऊँगा। जन्म पाने से, इससे बढ़कर और क्या भाग्य प्राप्त हो सकता है ?

आकाश, धरती, समुद्र तथा अन्य भूत भले ही मिट जावें, तो भी चक्रवर्त्ती की आज्ञा मेरे लिए अनुल्लंघनीय है। आप दुःखी न हों।

राम के वचन सुनकर कौशल्या ने कहा—हे तात ! तो मैं भी यह नहीं कह सकती कि चक्रवर्त्ती की आज्ञा के अनुसार तुम (अरण्य में) मत जाओ। तुमको छोड़कर मेरे प्राण रह नहीं सकते। अतः, तुम अपने साथ मुझे भी वन में ले चलो।

तब राम ने कहा—हे माता ! मुझसे वियुक्त हो चक्रवर्त्ती दुःख-सागर में डूबे हैं। ऐसी दशा में उन्हें सांत्वना दिये बिना मेरे साथ वन में जाने का आपका निश्चय करना उचित नहीं है। कदाचित्, आपने धर्म का ठीक-ठीक विचार नहीं किया।

दृढ धनुर्धारी भाई भरत को राज्य सौंपकर जब चक्रवर्त्ती राज्य की सम्पत्ति से पृथक् हो तपस्या में निरत होंगे, तब उनके साथ रहकर आप भी अपूर्व व्रतों का आचरण करेंगी।

आप क्यों इस प्रकार व्याकुल हो रही हैं ? देवता भी महान् तपस्या के आचरण से ही तो उन्नत हुए हैं। (मेरे वनवास के) ये जितने वर्ष हैं, वे देवों के चौदह दिन[1] ही तो हैं।

पहले कौशिक मुनि की कृपा से मैंने जो विद्याएँ प्राप्त कीं और उन्हें प्राप्त करने के पश्चात् जो कार्य करके मैं भाग्यवान् हुआ, वे व्यर्थ नहीं हुए। अब भी ऐसे मुनियों की आज्ञा का पालन करना मेरे लिए उत्तम ही है।

मैं महान् तपस्वियों की सेवा करके, अलंघ्य ज्ञान प्राप्त करके, दोषहीन अनुपम विद्याएँ सीखकर एवं देवों का प्रेम भी पाकर इस नगर में लौट आऊँगा, आप देखेंगी।

मगरमच्छों से पूर्ण समुद्र से आवृत पृथ्वी को खोदनेवाले, भ्रमरों से गुंजरित पुष्पमालाएँ धारण करनेवाले सगर-पुत्रों ने अपने पिता की आज्ञा का पालन करके अपने प्राणों को त्याग दिया और उस कार्य से प्रभूत कीर्त्ति के पात्र बने।

हरिण को धारण करनेवाले शिवजी के हाथ के परशु के जैसे शस्त्र को रखनेवाले परशुराम ने अपने पिता जमदग्नि की आज्ञा का उल्लंघन न करके अपनी माता का सिर काट दिया था। अतः, मेरे लिए पिता की आज्ञा उपेक्षणीय है—यह सोचना भी उचित नहीं है।

राम ने इस प्रकार के अनेक वचन कहे। उनको सुनकर सत्यरूपी उज्ज्वल आभरण से युक्त कौशल्या सोचने लगी कि राम कोशल देश को अवश्य छोड़कर जानेवाला है।

फिर, कौशल्या यह विचार कर कि भरत पृथ्वी का राज्य करे, किन्तु मैं चक्रवर्त्ती से

---

१. इस पृथ्वी में सूर्य का जो उत्तरायण और दक्षिणायन है, वे देवों के लिए दिन और रात हैं। अतः, मनुष्यों का एक वर्ष देवों का एक दिवस माना गया है।

ऐसी प्रार्थना करूँगी, जिससे राम को देश छोड़ वन में जाकर तपस्वी का जीवन व्यतीत करना न पड़े, (दशरथ के पास) जाने लगी।

यों जानेवाली कौशल्या को नमस्कार करके और यह विचार करके कि चक्रवर्ती को तथा माता को सांत्वना देने की सामर्थ्य रखनेवाली सुमित्रा देवी ही है, राम उसके मेघ-स्पर्शी प्रासाद में जा पहुँचे।

उधर कौशल्या पैदल चलकर कैकेयी के आवास में पहुँची; वहाँ अपने पति को पृथ्वी पर गिरे हुए देखकर मूर्च्छित होकर ऐसे गिरी, जैसे प्राण निकलने पर देह गिर जाती है।

फिर, प्रज्ञा पाकर कौशल्या कभी कहती--वियोग के अयोग्य व्यक्तियों से क्यों ऐसा वियोग होता है? कभी कहती—हे गरिमामय! यह क्या तुम्हारे लिए योग्य है? कभी कहती—क्या यह न्याय है? कभी कहती—हम दासों की दशा को आपने क्यों नहीं सोचा? कभी कहती—आप निर्धनों के लिए उनके अभीष्ट धन बननेवाले है। कभी कहती—मुझ दीन एकाकिनी के आप ही अवलंब हैं। कभी कहती--क्या यह कार्य आपके विवेक के योग्य है? कभी 'हे राजन्! हे राजन्'! रटती।

कभी कहती—हे चक्रवर्ती! अंधकार को मिटानेवाले सूर्य के समान अनुपम रूप में अपने आज्ञा-चक्र को प्रवर्त्तित करके, निर्विघ्न रूप से दंडनीति प्रवर्त्तित करके, अब क्या इस संसार का, समस्त वस्तुओं के साथ विनाश करनेवाला प्रलय उत्पन्न करने के लिए आप यह कार्य कर रहे हैं?

कभी कहती—हे वीचि-भरे समुद्र से आवृत पृथ्वी के निवासियों के तप-समान! वेद-प्रतिपादित तत्त्वों के सार-सदृश! हे करुणालय! द्रवित मन होकर मैं रो रही हूँ, किंतु आप मेरी कुछ नहीं सुनते हैं। क्या यह उचित है? हे सप्त लोकों के प्रभु!

कभी कहती—हे पुत्र! तुम्हारे पिता किसी अचिंतनीय दारुण पीडा से यों मूर्च्छित हो पड़े हैं कि विद्यत् समान उनकी देह प्राण हीन-सी हो पड़ी है। वे कुछ बोलते नहीं हैं। अहो! इसका कारण क्या हो सकता है? आओ, चक्रवर्ती की यह दशा देखो!

इस प्रकार रोनेवाली कौशल्या की कंठध्वनि (सभा-मंडप में जाकर) प्रतिध्वनित होने के पूर्व ही उज्ज्वल करवालधारी राजा तथा ऋषिगण परस्पर—'यह उचित नहीं है।' कहते हुए वसिष्ठ को देखकर कह उठे कि आप जाकर इसका कारण ज्ञात करें। तब वसिष्ठ मुनि चक्रवर्ती के निकट आये। आकर उन्होंने तीक्ष्ण करवालधारी चक्रवर्ती की वह दशा देखी। उनके मन में आशंका हुई कि न जाने इसका परिणाम क्या होगा?

वसिष्ठ विचार करने लगे— (चक्रवर्ती) मृत नहीं हैं। बिना मरे जीवित भी नहीं हैं। प्रज्ञाहीन हो पड़े हैं। यह कैकेयी अव्याकुल खड़ी है। यह कौशल्या वेदना से घुल रही है। संसार में उत्पन्न मनुष्यों का स्वभाव विविध है। अन्य (सामान्य) व्यक्ति उसे समझ नहीं सकते।

फिर, मुनिवर ने यह सोचकर कि दुःख से उद्विग्नमना कौशल्या, दुःख का कारण नहीं बतलायगी। तब अपने सम्मुख अंजलि बाँधकर खड़ी हुई कैकेयी से पूछा— हे माता!

चक्रवर्त्ती मूर्च्छित हैं। इसका कारण क्या है, कहो। तब कैकेयी ने अपने कारण निष्पन्न वृत्तांत को स्वयं कह सुनाया।

उसके सारा वृत्तांत कह सुनाने के पूर्व ही वसिष्ठ ने, चमकते करवाल को धारण करनेवाले चक्रवर्त्ती को अपने सुन्दर कमल-सदृश करों से धूलि-भरी पृथ्वी से उठाया और यह कहते हुए कि—'हे शास्त्रज्ञ! चिंतित मत होओ; कैकेयी स्वयं तुम्हारे पुत्र राम को राज्य दे देगी। तुम यह क्या कर रहे हो? तुम अपना दुःख दूर करो', बार-बार प्रार्थना करते हुए खड़े रहे।

फिर, मुनिवर वसिष्ठ ने (दशरथ पर) शीतल जल छिड़का, पंखा डुलाकर हवा की और धीरे-धीरे उन्हें प्रज्ञा में लाकर मधुर वचन कहे। तब उन (मुनि) ने, शीतल समुद्र से उत्पन्न विष-समान कैकेयी के हलाहल-समान वचन के कुछ शांत होने पर, अपने प्यारे पुत्र का नाम-स्मरण करनेवाले चक्रवर्त्ती को होश में आते देखा।

चक्रवर्त्ती के प्राण लौटते देखकर वसिष्ठ ने कहा—हे नायक! अब तुम अपनी गंभीर वेदना को दूर करो। अब पुरुषोत्तम (राम) ही राज्य करेंगे। उसमें कोई विघ्न नहीं होगा! गरिमाहीन वचनवाली कैकेयी स्वयं उनको राज्य देगी। यदि घनश्याम राम राज्याभिषिक्त न होकर वन में जायेंगे, तो क्या हम यहीं रहेंगे?—(अर्थात्, हम भी देश छोड़कर चले जायेंगे), तुम दुःखी मत होओ।

यों विचार कर कहनेवाले मुनि के वचन सुनकर दशरथ बोले—इस दशा में रहनेवाले मेरे प्राणों के निकलने के पूर्व ही आप राम को सुन्दर राजमुकुट पहना दें और वन जाने से उसे रोक दें तथा मेरे वचन को भी असत्य होने से बचावें। हे प्रभु! आप यह कार्य करें।

तब मुनिवर ने गर्हित कार्य करनेवाली कैकेयी को देखकर कहा—हे लक्ष्मी-सदृश देवी! अब तुम अपने पुत्र (राम) को राज्य, अन्य लोगों को उनके प्यारे प्राण तथा (वैवस्वत) मनु के वंश में उत्पन्न अपने पति को प्राण देकर निष्कलंक कीर्त्ति प्राप्त करो।

बड़ी महिमावाले कर्मों को समूल नाश करके शक्तिशाली बने हुए वसिष्ठ के इस प्रकार कहने के पूर्व ही कैकेयी सिसक-सिसककर रोती हुई कह उठी—यदि चक्रवर्त्ती अपने वचन से विचलित हो जायेंगे, तो मैं इस विशाल धरती में अपने प्राणों के साथ नहीं रहूँगी। अपनी बात सच्ची करने के लिए अभी मर जाऊँगी।

तब मुनिवर ने कहा—तुम यह नहीं सोचती कि तुम्हारा पति मर जायगा, तुम्हारा अपयश दिन-दिन बढ़ता रहेगा, और इससे पाप उत्पन्न होगा। तुम अपना हठ छोड़ती नहीं। तुम कुछ नहीं समझती हो। इससे अधिक मैं और क्या कह सकता हूँ? यह कहकर पुनः कैकेयी को वे समझाने लगे।

किंचित् भी करुणा से हीन, त्वरित गति से निकलनेवाले चक्रवर्त्ती के प्राणों का भी विचार न करनेवाली, क्षत में घुसनेवाला अग्निकण है या विष, ऐसा भ्रम उत्पन्न करनेवाले वचन को कहनेवाली, हे नारी! तुम मानव-स्त्री हो या अग्नि या मायाविनी पिशाचिनी हो? हे निष्ठुरे! अब दशरथ का तुमसे और इस मिट्टी से (अर्थात्, पृथ्वी से) क्या संबंध है? तुम्हें प्राप्त होनेवाला अपयश बहुत बलवान है।

चक्रवर्त्ती अपने मुँह से रामचन्द्र को वन जाने को कहें, इसके पूर्व ही तुमने (राम को वन जाने को) कह दिया। वह वन के दुस्तर मार्ग में गये विना नहीं रहेगा। तुम वह कठोर अग्नि हो, जो कीर्त्ति तथा अपने पति के प्राणों को जला रही हो। तुम्हारे सदृश कठोर और कौन होगा ? इससे बढ़कर क्रूर कार्य और क्या हो सकता है ?

निष्कलंक मुनि के ये वचन सुनकर व्याकुल होनेवाले चक्रवर्त्ती ने जिह्वा में विष रखनेवाली उस स्त्री को देखकर कहा—हे पापिन ! क्या 'कठोर वन में जाओ', कहकर मेरे प्राण (-सदृश राम) को तुमने भेज दिया ? क्या वह चला भी गया ?

हे पापिन ! तुम्हारे मनोभाव को अब मैंने स्पष्ट जान लिया। तुम्हारे बिंबाधर के विष को अनेक दिनों तक मैंने पिया है। अतः, तुमने मेरे प्राणों को समूल खा लिया। मैंने अग्नि समझ तुमको पत्नी के रूप में नहीं अपनाया। किंतु अपने जीवन का अंत करने के लिए एक यम को ही खोजकर अपनाया था।

मेरे नयन-समान राम को तुमने छल से वन में भेज दिया। उससे मुझे तुम निहत कर रही हो। तुम अपयश से लज्जित नहीं होती हो। अब अनेक वचन कहने से क्या लाभ ? हे अधम क्रूरे ! तुम्हारे कंठ का मंगल-सूत्र[1] ही तुम्हारे पुत्र भरत का रक्षा-बंधन होगा।

इस प्रकार अनेक वचन कहने पर भी कैकेयी का मन पिघला न देखकर चक्रवर्त्ती मुनि से बोले—हे मुनिवर ! मैं अभी कहे देता हूँ, यह (कैकेयी) मेरी पत्नी नहीं है। इसे मैंने त्याग दिया। राजा बननेवाले उस भरत को भी मैं अपना पुत्र नहीं मानता। वह पुत्रोचित कार्य (अर्थात् , पिता का मृत्यु-संस्कार) करने की योग्यता नहीं रखता।

अत्यन्त वेदना से पीड़ित चक्रवर्त्ती ने उत्तम कौशल्या को देखकर पूछा—क्या राम (वन जाने के पूर्व) जैसे मुझसे नहीं मिला, वैसे तुमसे भी मिले विना ही चला गया ? तब कौशल्या, राम के विरह में चक्रवर्त्ती की उस पीड़ा को देखकर अपने पूर्व विचार को (अर्थात् , दशरथ से यह प्रार्थना करनी है कि राम को वन में न भेजें) छोड़कर स्वयं व्याकुल हो उठी।

अब कौशल्या को भी यह ज्ञात हो गया कि यह सब सपत्नी का कार्य है; चक्रवर्त्ती पहले वर देकर फिर पश्चात्ताप से मूर्च्छित हुए। यद्यपि वह (कौशल्या) अपने पति को सांत्वना देने के लिए यह कहती रहीं कि हे राम ! तुम वन में न जाओ, किंतु यह सोचकर मन में चिंतित हुई कि यदि दशरथ के वचन सत्य न हो, तो संसार में उन्हें अपयश उत्पन्न होगा।

अपने पति के दुःख से दुःखी होनेवाली कौशल्या ने (चक्रवर्त्ती से) कहा—हे बलवान् ! दृढ सत्य को अपनाकर, उस पर स्थिर रहकर, फिर यदि आप अपने अभिन्न

---

१. अंतिम वाक्य का यह भाव है कि 'मंगल-सूत्र' सुहाग का चिह्न है। कैकेयी का सुहाग अब अधिक काल तक नहीं रहेगा। उसके मिटने से भरत की रक्षा भी समाप्त होगी। अर्थात् , दशरथ के मर जाने पर भरत अनाथ हो जायगा और उसे दुःखी होना पड़ेगा।—अनु०

प्रेमवाले पुत्र पर प्रेम से व्याकुल हों और आपका अनिंदनीय गौरव निंदास्पद हो जाय, तो संसार के लोग उस सत्य को स्वीकार नहीं करेंगे।[1]

उत्तम कौशल्या-रूपी हंसिनी ने सोचा कि मेरा पुत्र वन को गये विना नहीं रहेगा। वह वार-वार यह आशंका करती हुई कि पुत्र-विरह में चक्रवर्त्ती जीवित नहीं रहेंगे, अत्यन्त शोक-मग्न हुई। वह फिर सोचती कि यदि पुत्र पिता की प्राण-रक्षा के लिए देश में ही रहेगा, तो उससे पति का यश मिट जायगा। यह विचार कर चिंतित होती। अतः, वह अपने पुत्र से भी यह नहीं कह सकी कि तुम वन में मत जाओ। अहो! अहो! कौशल्या कैसे शोक से संतप्त हुई थी!

पुष्पमालालंकृत दशरथ ने उस (कौशल्या) के वचनों से जान लिया कि उत्तम कीर्त्तिवाला राम नगर में नहीं रहेगा। अवश्य वन में जायगा। उससे वे शोकोद्विग्न हुए और वोले—हे मुझ पापी के अवलंव! आओ। हे पुत्र! मेरे सम्मुख आओ।

पुनः दशरथ अपने पुत्र के प्रति कहने लगे—हे पुत्र! मेरे नयनों से मेरे प्राण भी द्रवित होकर वह रहे हैं। मेरी मृत्यु अव निश्चित है। चतुर्वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण अग्नि के सम्मुख तुम्हारा अभिषेक करने के लिए जो तीर्थ-जल लाये हैं, उनको मेरे मुँह में डालकर (अर्थात्, मेरी मृत्यु के इस समय में मेरे मुँह में गंगाजल डालकर) फिर तुम विशाल वन में जाकर रहो।

हे पुत्र। वड़ी सेना के वल से संपन्न राजाओं को इक्कीस वार अपने फरसे से मारनेवाले, शक्ति में अपना उपमान स्वयं ही वने हुए (परशुराम) को भी तुमने धनुष से परास्त कर दिया था। किन्तु मैं (पापी) ने, 'कुलक्रम से प्राप्त मुकुट को धारण करो,' ऐसा कहकर तुरन्त हीं तुमको जटामय ऊँचा मुकुट दिया।

हे श्याम! हे स्वच्छ मन! हे अरुण नयनों तथा करों से शोभायमान! हे क्षमा-गुण से पूर्ण! त्रिपुर-दाह के समय शिव के उपयोग में आनेवाले धनुष को तोड़नेवाले! मैं एकाकी हो गया हूँ। इस बुढ़ापे की अवस्था में तुम मुझे छोड़ चले। अव मैं जीवित रहना नहीं चाहता।

स्वर्ण से भी अधिक उज्ज्वल स्वर्ण! यश के भी यश! विजली से भी अधिक कांतिपूर्ण धनुष को धारण करनेवाले! सत्य के सत्य! मैं इतना क्षुद्र नहीं हूँ कि अपनी आँखों के सामने ही तुमको वन जाने दूँ। तुम्हारे वन जाने के पूर्व ही मैं स्वर्गलोक को चला जाऊँगा।

मेरा मन प्रेम से पिघलनेवाला है। मेरा शरीर प्रेम के कारण प्राण छोड़नेवाला है। मैं तुम्हारे समान (कठोरहृदय) नहीं हूँ। मैंने अपनी जिन आँखों से तुमको जानकी का पाणि-ग्रहण करके अयोध्या में प्रवेश करते हुए देखा था, उनसे अव तुमको नगर छोड़कर जाते हुए नहीं देख सकता।

---

१. भाव यह है—जिस सत्य को आपने स्वीकार किया है, उसके परिणामों को दृढता के साथ सहने में ही गौरव है। उसके परिणामभूत दुःख को देखकर व्याकुल होने में अगौरव ही है। —अनु०

तुम्हारे विरह को नगर के लोग भले ही सह लें, देवतालोग भले ही दुःखी न हों, तो भी हे स्वर्णमय रथवाले ! हे मेरे यशस्कारक ! हे मेरे प्राण ! तुमको जन्म देनेवाला, मैं तुम्हारे महत्त्व को जानता हूँ। अब अपनी दशा के बारे में मैं क्या कहूँ ? मैं नहीं जिऊँगा। मैं नहीं जिऊँगा।

मृदु सिकता से पूर्ण गंभीर समुद्र से घिरी हुई विशाल पृथ्वी को, इस राज्य को, अक्षय संपत्ति को और अन्य सब वस्तुओं को छलनामयी कैकेयी को ही देकर यश पानेवाला मेरा उदार मन अब मेरे प्राण मिटा देगा, मेरे प्राण मिटा देगा।

शब्दायमान समुद्र से आवृत इस पृथ्वी के निवासियों में, देवताओं में तथा पाताल के निवासियों में तुम्हारे सदृश सद्गुणों से भूषित कौन है ? हे स्वर्णतुल्य ! जब परशुराम यह कहता हुआ आया था कि मेरे सामने खड़े रह सकनेवाला वीर कौन है ? तब दृढ चित्त के साथ तुमने उसका सामना करके उसे परास्त किया था। ऐसे तुमको छोड़कर मैं कैसे रह सकता हूँ ?

तुम वन को जानेवाले हो, यह सुनकर भी मैं जीवित रहा। फिर भी, यदि अब मैं उत्तम स्वर्गलोक को नहीं जाऊँ, तो कठोरहृदय कहला सकता हूँ ? हे पुत्र ! यदि तुम वन में निवास करोगे और मैं इस कैकेयी को देखता हुआ इस नगर में रहूँगा, तो मेरा स्वभाव नीच ही तो कहा जायगा।

लक्ष्मी तथा भू-देवी बड़ी तपस्या करके ही तुम्हारे बलवान् वक्ष का आलिंगन कर सकीं। तुम से वियुक्त होकर वे नहीं रहेंगी, नहीं रहेंगी। मैं पापी, तुम से वियुक्त होकर मर जाऊँगा। हे वत्स ! तुम्हारे विरह में भी यदि मैं जीवित रहा, तो क्या मैं भी कैकेयी के समान नहीं हो जाऊँगा ?

तुमको उत्तम आभरणों, किरीट, स्वर्ण-आसन, श्वेतच्छत्र तथा विशाल वक्ष पर आसीन जयलक्ष्मी के साथ शोभायमान होते हुए देखना चाहता था, किन्तु इसके विपरीत वल्कल, कृष्णाजिन आदि से युक्त रहते हुए तुमको कैसे देख सकता हूँ ? ऐसी अवस्था में प्राण छोड़ देना ही मेरे लिए अच्छा है।

इस प्रकार विविध वचन कहते हुए चक्रवर्त्ती यों व्याकुल हुए, जैसे उनके जीवन का अंत आ पहुँचा हो। तब मृदुल कृष्णाजिनधारी मुनिवर (वसिष्ठ) ने उनसे कहा—हे राजन्। चिंतित मत होओ। मैं उस राम को आज वन जाने से रोक लूँगा।

मुनिवर के वचन सुनकर मनुष्य-रूप में स्थित (वैवस्वत) मनु-सदृश चक्रवर्त्ती, ऐसे लगते थे, जैसे तुरत प्राण छोड़नेवाले हों, यह विचार कर कि यदि ये परिशुद्ध स्वभाववाले मुनिवर कहेंगे; तो राम वन-गमन न करेगा, किंचित् स्वस्थ हुए और एकाकी हो अत्यन्त विकल होनेवाले अपने प्राणों को रोके रहे।

चक्रवर्त्ती को व्याकुलप्राण तथा प्रज्ञाहीन देखकर तथा यह सोचकर कि उनकी मृत्यु हो गई है, कौशल्या अत्यन्त व्याकुल हुई और कहा—हे पुत्र ! इस नगर के साथ हमको भी तुमने छोड़ दिया। फिर कहा—हे प्रभो ! क्या गृहस्थ-जीवन में आप इसी

प्रकार मेरा साथ देनेवाले हैं ? —(अर्थात्, आप गृहस्थ-जीवन में मेरा सहारा देनेवाले हैं ; अब वैसा न करके मुझे छोड़कर चले जा रहे हैं—यह क्या धर्म है ?)

कौशल्या ने फिर कहा—हे सत्यस्वरूप ! हे संसार के राजाओं के राजाधिराज ! यदि आप अपने प्राणों को इस प्रकार पीडित करेंगे, तो सारा संसार इससे दुःखी होगा। मुनिवर के साथ कदाचित् हमारा पुत्र लौट आयगा। इसलिए, हे राजन् ! आप चिंतित न हों।

इस प्रकार के विविध वचन कहकर कौशल्या, चक्रवर्त्ती के शरीर पर, पैरों पर और मुँह पर अपने अरुण करों को फेरती हुई राजा को सांत्वना देने लगी। तब चक्रवर्त्ती धीरे-धीरे प्रज्ञावान् होकर बोले—क्या दृढ धनुर्धारी मेरा पुत्र लौट आयगा ? लौट आयगा ?

चक्रवर्त्ती बोले—क्रूर तथा छलनामयी कैकेयी ने कुबड़ी की बातों को सुनकर मेरे पूर्व दिये वरों के द्वारा मेरे प्राण लेने का निश्चय कर लिया। अपने महिमा-पूर्ण सुत तथा स्वयं (अपने लिए) पृथ्वी का राज्य पाने के अतिरिक्त हाय ! मेरे ज्येष्ठ पुत्र को वन में जाने को कहा—वन में जाने को कहा !

फिर चक्रवर्त्ती ने कौशल्या से कहा—हे कौशल्ये ! स्वर्ण अंगद-धारी राम वन-गमन से नहीं रुकेगा, मेरे प्यारे प्राण भी गये बिना नहीं रहेंगे। इसका एक और कारण भी है सुनो, पूर्व में एक मुनि ने मुझे एक शाप दिया था। यों कहकर पूर्व घटित सारा वृत्तांत सुनाने लगे।

चक्रवर्त्ती ने कहा—पूर्वकाल में एक दिन मैं आखेट की उमंग में बड़े वन में गया था और हाथियों और सिंहों को ढूँढ़ रहा था। फिर, एक सुन्दर नदी-तट पर जा पहुँचा, जहाँ हाथी संचरण करते थे। वहाँ हाथ में धनुष-बाण लिये हुए छिपकर खड़ा रहा।

उसी वन में एक अंधा तपस्वी, अपनी अंधी पत्नी-सहित रहता था। उनका प्रिय पुत्र ही उन मुनि-दंपति का एकमात्र सहारा था। वह मुनि-पुत्र नदी में जल भरने के लिए आया। यह न जानकर, बल्कि कोई आगत आखेट समझकर मैंने शर-संधान किया। तब वह मुनिकुमार आहत होकर धरती पर लोट गया और विलाप करने लगा।

मैंने उस मुनिकुमार द्वारा नदी में जल भरने के शब्द को सुन, यह समझकर शर छोड़ा था कि कोई हाथी जल पी रहा है। मैंने आँखों से देखकर शर-संधान नहीं किया। किंतु, हाथी की ध्वनि के बदले नर की ध्वनि सुनकर आशंकित होकर मैं उस स्थान पर जा पहुँचा।

वहाँ मैंने उस कुमार को शर से विद्ध होकर छटपटाते हुए देखा। उसके हाथ से कमंडलु लुढ़क गया था। तब मेरे शरीर, मन तथा धनुष शिथिल हो गये। उस मुनि-बालक पर गिरकर मैंने दुःख के साथ पूछा—हे वत्स ! हाय ! तू कौन है ? कह। किंचित् भी असत्य से परिचय न रखनेवाले उस (अबोध) बालक ने कहा—

मत्स्यावतार लेनेवाले (वेदों को चुरानेवाले राक्षस को मारकर वेदों की रक्षा करनेवाले) भगवान् के नाभिकमल से उत्पन्न चतुर्मुख ने वेदोक्त प्रकार से जिन अनेक प्राणियों की सृष्टि की, उनमें मनुष्यों के चातुर्वर्णों में से प्रथम वर्ण में मेरा जन्म हुआ।

चतुर्मुख की वंश-परंपरा में उत्पन्न काश्यप का पुत्र था विद्युत्-समान यज्ञोपवीत

से शोभित वक्षवाला वृतेश, उसका पुत्र था चतुर्वेदज्ञ शलभोशन (चलभोजन ?), उसी का मैं पुत्र हूँ। मेरा नाम सुरेचन है।

इस समय, अपने नेत्रहीन माता-पिता के लिए जल लेने यहाँ आया था, यहाँ यह विपदा उत्पन्न हुई। हे पर्वत-समान कंधोंवाले ! तुमने (मनुष्य) न जानकर हाथी के भ्रम से बाण प्रयुक्त किया। यह नियति का कार्य है। अतः, तुम दुःखी मत होओ।

तीव्र पिपासा से मेरे माता-पिता दुःखी हो रहे हैं। हे अनुपम ! तुम जल ले जाकर मेरे माता-पिता को दो और मेरी मृत्यु का समाचार देकर उनसे कहो कि स्वर्गलोक को जाते हुए तुम्हारे पुत्र ने तुमको प्रणाम किया है। यह कहकर वह मुनि-कुमार स्वर्गलोक में देवों के स्वागत का पात्र बनकर चला गया।

अपने पुत्र की प्रतीक्षा में ही बैठे हुए उन वृद्ध तपस्वी-दंपतियों के निकट मैं जब उनके पुत्र को और जल को लेकर पहुँचा। तब वे बोले—हे वत्स। तू इतना विलंब करके लौटा है। हम यह सोचकर दुःखी हो रहे थे कि तुझ पर कोई विपदा तो नहीं आई। हे चंदन-गंध से युक्त भुजावाले ! आओ, हम तेरा आलिंगन करेंगे।

तब मैंने कहा—हे स्वामिन् ! मैं अयोध्या का रहनेवाला एक राजा हूँ। मैं शिकार की खोज में अँधेरे में बैठा हुआ था। उसी समय आपका सत्यभाषी पुत्र कमंडलु में जल भरने लगा। तब आँखों से देखे बिना, केवल शब्द को सुनकर मैंने बाण चलाया।

शर के लगने पर (आपके पुत्र ने) जब शब्द किया, तब यह जानकर कि यह हाथी नहीं, किन्तु कोई मनुष्य है, दौड़कर वहाँ गया और उससे पूछा कि तुम कौन हो ? सब वृत्तांत कहकर वह शान्त हो गया और देवों के द्वारा स्वागत पाकर स्वर्गलोक में जा पहुँचा।

मैंने बाण से (आपके पुत्र को) मारा, इससे आप मुझपर क्रोध न करें। उस निरपराध के जल भरने से उत्पन्न शब्द को सुनकर मैंने उस दिशा में शर छोड़ा, किंतु आँखों से उसे नहीं देखा। मेरे इस अपराध को क्षमा करें। यह कहकर मैंने उनके चरणों को अपने सिर पर रख लिया।

(पुत्र की मृत्यु का समाचार सुनकर) वे मुनि-दंपति गिर पड़े, मूर्च्छित हुए, लोटने लगे। फिर कहने लगे—आज सचमुच हमारे नयन फूट गये। वे शोक-समुद्र में डूब गये। हे तात ! हे तात ! कहकर चिल्ला उठे। कह उठे कि तुमने हमारे हृदय के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। फिर बोले—(हे पुत्र) तुम स्वर्गलोक में चले गये। अब हम यहाँ रह नहीं सकते। हम भी आ गये, आ गये।

इस प्रकार शोक-मग्न मुनि-दंपति के चरणों को प्रणाम करके मैंने कहा—आज से मैं ही आपका पुत्र हूँ। आपकी आज्ञा का पालन करता हुआ, मैं आपकी सेवा में निरत रहूँगा। आप किंचित् भी शिथिलमन न हों। शोक को दूर कर दें। मेरा कथन सुनकर उन्होंने कहा—हे दृढ धनुर्धारिन् ! सुनो, फिर वे यों बोले—

आँख का तारा जैसे पुत्र को खोकर भी प्राणों पर लालसा रखकर यदि हम भोजन करने बैठे रहेंगे, तो संसार के लोग हमारी निंदा करेंगे। हम भी स्वर्ग में जायेंगे।

हे अलंकृत अश्ववाले ! तुम भी हमारे जैसे ही अपने पुत्र के विरह में (संसार का जीवन समाप्त करके) स्वर्ग में जाओगे।

हे निरंतर अमंद प्रकाश से शोभित श्वेतच्छत्रवाले ! तुमने प्रार्थना की है कि मैं आपकी शरण में हूँ। आप मेरी रक्षा करें। अतः, हम तुमको भयंकर शाप नहीं दे रहे हैं। आज अपने प्यारे पुत्र से, जो आज्ञा दिये विना ही, इंगित-मात्र से सब कुछ जानकर हमारी इच्छा पूरी करता था, वियुक्त होकर जिस प्रकार हम स्वर्ग जा रहे हैं, उसी प्रकार तुम भी विशाल स्वर्गलोक में जाओगे। यह कहकर वे स्वर्गलोक को सिधार गये।

मैं अपने मन में किंचित् भी व्याकुल न हुआ, किन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात्, उनके इस वचन से कि मेरे मधुर वचनवाला पुत्र होनेवाला है, आनन्दित होता हुआ नगर को लौटा। उस मुनि के कथन के अनुसार अब राम का वन-गमन और मेरा प्राण-त्याग दोनों अवश्य संघटित होनेवाले हैं। इसमें किंचित् भी परिवर्त्तन नहीं होगा, चक्रवर्त्ती ने यों कहा।

चक्रवर्त्ती इस अत्यन्त दुःखदायक कथा को कहकर व्याकुल हो पड़े रहे। तब कौशल्या शोकोद्विग्न होकर मूर्च्छित हो गई। मुनिवर (वसिष्ठ) विधि के परिणाम से उत्पन्न होनेवाली दुःख-परंपरा को देखकर व्याकुल हुए और शीघ्र चलकर—

प्रभूत कीर्त्तिमान्, पुण्यवान् तथा पर्वत-सदृश उन्नत मत्तगजों से युक्त चक्रवर्त्ती के मनोहर प्रासाद के सम्मुख, उत्तम सभा में जा पहुँचे, जहाँ नगाड़े बज रहे थे और राजा लोग राम के अभिषेक के लिए एकत्र थे।

शस्त्रधारी राजाओं ने आये हुए मुनिवर को देखकर पूछा— हे पिता ! क्या कोई विघ्न उपस्थित हुआ है ? अपार पीडा से रोने की यह ध्वनि कैसी सुनाई पड़ रही है ? यह हमें बताकर हमारे मन को शान्त करें।

मुनि ने उन राजाओं से कहा—कैकेयी ने चक्रवर्त्ती से दो वर प्राप्त किये थे। अप्रतिहत दंडनीतिवाले राजा ने भी वे वर उसे दिये थे। कैकेयी ने उन वरों में से एक से राम को वन-गमन की आज्ञा देने के लिए (राजा को) सहमत किया है, यही घटित हुआ है।

चक्रवर्त्ती की आज्ञा से कैकेयी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र (भरत) आदिशेष पर स्थित पृथ्वी की रक्षा करेगा। ऊँचे कंधोंवाला, सीता का पति, राम वन में जाकर रहेगा।

अभिन्नसत्यस्वभाववाले मुनिवर के वचन अपने कानों में पड़ने के पूर्व ही, अघट प्रेम से युक्त राजा लोग, मुनिगण, अन्य लोग एवं कंचुक-बद्ध स्तनोंवाली स्त्रियाँ, सब दशरथ के समान ही (मूर्च्छित हो) गिर पड़े।

सबके शरीर, जैसे घाव पर आग रख दी गई हो, ऐसे ही पीडित होकर जलने लगे। वे निःश्वास भरते हुए और गद्गद वचन कहते हुए धरती पर गिरकर लोटने लगे। उनकी आँखों से बहनेवाला जल समुद्र के समान था। उस समय सब दिशाओं से जो बड़ी रोदन-ध्वनि निकली, वह स्वर्ग तक गूँज उठी।

प्रभंजन के चलने से कंपित होनेवाली पुष्पलता के समान स्त्रियाँ अत्यंत दुःख से

धरती पर गिर पड़ीं, तो उनके आभरण और मंगल-सूत्र बिखर पड़े। उनके केशपाश खुल गये और उनकी यम-सदृश आँखें लाल हो गईं।

राजा लोग कहते—हाय! हाय! चक्रवर्त्ती करुणा-हीन हो गये। हम धर्म की रक्षा नहीं करके उसे छोड़ देंगे और वे आँधी से गिराये गये बड़े वृक्ष के समान पृथ्वी पर गिरकर रोने लगे।

'उदार (राम) वन को जानेवाले हैं'—इस वचन मात्र से शुक और सारिकाएँ भी रो पड़ीं। ऊँचे प्रासादों में निवास करनेवाले मार्जार भी रो पड़े। रूप को पहचानने में असमर्थ शिशु भी रो पड़े। तो, अब बड़े लोगों के बारे में क्या कहा जाय?

रक्त कुवलय तथा बिंबफल की समता करनेवाले मुँह में, कुंद पुष्पों के जैसे दाँतों को प्रकट करती हुई तथा परस्पर सटे हुए (पीन) स्तनों पर जैसे मुक्ता-माला टूटकर गिरी हो, ऐसे ही अश्रुधारा बहाती हुई, जिह्वा पर ठीक-ठीक अंचित नहीं होनेवाली बोली से युक्त स्त्रियाँ रोईं।

चक्रवर्त्ती के समान ही गायें रोइ। उन गायों के बछड़े रोये। सभी विकसित पुष्प रोये। जलचर पक्षी रोये। मधु बहानेवाले उपवन रोये। गज रोये और रथों में जुते हुए बलवान् अश्व भी रोये।

यह न सोचकर कि राम से वियुक्त होकर ज्ञानी लोग भी जीवित नहीं रहेंगे, जिस कैकेयी ने अपने पति से राम को 'वनवास दो' यह वचन कहा था, वह (कैकेयी) तथा क्रूर कुबरी—इन दोनों के अतिरिक्त और कौन ऐसे कठोर हृदयवाले थे, जो इस समय रोये नहीं हों? सब लोग (दुःख की अधिकता से) जल के समान पिघल गये।

जो प्रज्ञाहीन (बेहोश) हो गये, उन लोगों की गिनती ही नहीं रही। रथों के आवागमन से जो वीथियाँ धूलि से भर गई थीं, उनमें अश्रुधाराएँ बह चलीं। हाँ, एक कमी रह गई, वह यह कि उनके मन जो अरूप थे, छिन्न होकर नहीं बिखर पाये।

अयोध्या के निवासियों में कोई कहते—यह भू-देवी के पाप का फल है। कोई कहते—कमल पर आसीन लक्ष्मी देवी का पाप उससे भी बड़ा है। कोई कहते—विधि ने सब हृदयों को विक्षत कर दिया और कोई कहते—संसार के लोगों के नेत्रों ने जो पाप किया है, वह समुद्र से भी बड़ा है।

कोई कहते—भरत राज्य नहीं करेगा। कोई कहते—प्रभु (राम) अब (नगर को) नहीं लौटेंगे। कोई कहते—यह राज्याभिषेक भी क्या आया, यह हमारे लिए काल बन गया। और कोई कहते—हम अभी तक जीवित हैं, हमसे अधिक निष्ठुर और कौन हो सकते हैं?

कोई कहते—चक्रवर्त्ती ने कैकेयी पर अधिक प्रेम के कारण विवेकहीन होकर वर दिये और कोई कहते—सीता और राम के साथ हम भी घोर वन में जायेंगे, अथवा अग्नि में प्रवेश कर मरेंगे।

कोई धरती पर हाथ फेरते हुए, अपने अश्रुजल को लीप रहे थे। कोई 'कौशल्या देवी अब जीवित नहीं रहेंगी,' कहते हुए निरन्तर निःश्वास भर रहे थे। कोई, 'हे कनिष्ठ कुमार (लक्ष्मण)! क्या तुम यह सह सकोगे?'—कहते थे। इस प्रकार उस विशाल नगर के लोग अग्नि में गिरे घृत के समान हो रहे थे।

कुछ लोग कहते—कैकेयी ने अपने पुत्र के लिए राज्य तो माँगा, किन्तु राम को देश से निष्कासित क्यों कर रही है ? इसका कारण इतना ही है कि इसने ऐसा पाप-कार्य करने का निश्चय कर लिया है। और, कोई यह कहकर व्याकुल होते कि यह कैकेयी रक्त अधरवाली गणिका-तुल्य है, क्योंकि इसके हृदय में पति के प्रति गाढानुरक्ति नहीं है।

कुछ लोग कहते थे—क्या चक्रवर्त्ती ने घोर तपस्या करके अपने प्राणों को छोड़ने का निश्चय किया है ? नहीं तो, क्या इस संसार के रहनेवाले सब लोगों को मारकर इसे समूल विनष्ट करने का यह उपाय है ? अहो ! कैकेयी को दशरथ का यह वर देना भी भला है ! भला है !

रामचन्द्र, जिन्होंने प्राप्त राज्य को उस (कैकेयी) को दे दिया है, स्वयं ज्येष्ठ होकर जन्म पाने के कारण त्रिलोक के राज्य के अधिकारी हैं। हम सब उनसे पृथक् न होकर वन में जाकर उनके साथ निवास करेंगे। वैसा करने से झाड़ तथा वृक्षों से भरा हुआ कानन भी कुछ दिनों में नगर बन जायगा।

दशरथ का यह कार्य भी कैसा विचित्र है ? अपने उपमा-रहित ज्येष्ठ पुत्र को पहले राज्य देकर फिर न्याय-भ्रष्ट होकर उनके अनुज को वह राज्य दे रहे हैं। क्या यह सत्य के विरुद्ध नहीं है ?

नगर के लोग कहते—विजयमाला-भूषित धनुष को धारण करनेवाले राम को जो पृथ्वी प्राप्त हुई है, उसे दूसरा कोई कैसे अपना सकता है ? सीता देवी इस नगर को छोड़कर जायेंगी, तो क्या राज्यलक्ष्मी भी (उसी प्रकार वन में न जाकर) छलनामयी कैकेयी के पुत्र को अपनायगी ?

बिना बत्ती को बढ़ाये और बिना तेल डाले ही जलनेवाले और पवन के झोंके से भी विकृत न होनेवाले दीप के सदृश (शरीर-कांतिवाली) स्त्रियाँ, क्या अब काँपती हुई, अरुण कमल-समान विशाल नयनवाले प्रभु की कृपा-दृष्टि प्राप्त किये बिना, जीवित रह सकेंगी ? हाय ! यह कैसा दुर्भाग्य है।

जब इधर ऐसा हो रहा था, तब कनिष्ठ कुमार (लक्ष्मण) ने यह सुना कि स्वभावतः तीक्ष्ण रहनेवाले भाले की समता करनेवाली आँखों से युक्त विमाता ने क्रूरता सहित, अपने वर से पृथ्वी (के राज्य) को माँग लिया है और ज्येष्ठ भ्राता को वन दे दिया है। यह सुनते ही वह, किसी के द्वारा प्रज्वलित न होनेवाली प्रलय-काल की अग्नि के समान, क्रोध से उमड़ उठा।

(लक्ष्मण के) नयनों की कोरों से आग बरस पड़ी। भौंहों के रोम ललाट पर चढ़ गये। उनकी उग्रता से गगन का सूर्य भी अस्त-व्यस्त होने लगा। उनकी देह से स्वेद बह चला। उनके अन्तर की प्राणवायु बाहर प्रकट हुई। यों अति ऊँचे आकारवाले लक्ष्मण अपने आदिरूप (अर्थात् आदिशेष [1]) की ही समता करने लगे।

यह कैकेयी सिंह-शावक के लिए रखे हुए स्वाद-भरे मांस को, विकृत नयनों से

---

१. लक्ष्मण आदिशेष के अवतार हैं।

युक्त क्षुद्र श्वान को देना चाहती है। अहो! इस नारी की बुद्धि भी अच्छी है! इस प्रकार कहकर गंगा के अधिपति[1] (लक्ष्मण) हाथ-पर-हाथ मारकर हँस पड़े।

लक्ष्मण ने चारों ओर रत्नों से जटित करवाल को अपने पार्श्व में बाँध लिया; धनुष को उठा लिया। शीतल मेरु पर्वत पर स्थित बाँबी के समान तूणीर को पीठ पर बाँध लिया और रक्त स्वर्ण से निर्मित कवच से अपने उन्नत कंधों तथा वक्ष को आवृत कर लिया।

उनके पैरों के वीर-कंकण ऐसी ध्वनि कर रहे थे कि उनसे समुद्र भी लज्जित होते थे। धरती को छूनेवाली (उनके धनुष की) डोरी की बड़ी ध्वनि युगान्त काल में सप्त समुद्रों के जल को पीकर गरजनेवाले मेघ की ध्वनि से भी तिगुनी अधिक थी।

स्वयं (अर्थात् लक्ष्मण) और उनके ज्येष्ठ भ्राता (राम) इन दोनों को छोड़कर, अन्य सब त्रिलोकवासी प्राणी 'ऐसा सोचकर कि विशाल आकाश, धरती, इत्यादि पाँचों अपार भूत ऊपर से नीचे की ओर गिर रहे हैं,' भय से काँपने लगे। ऐसा उस लक्ष्मण का वीर-वेष था।

लक्ष्मण गरजकर बोले—युद्ध में आये सब वीरों को मिटाकर मैं भूमि का भार कम करूँगा। उनकी देहों से धरती को पाट दूँगा। मेरे प्रभु (राम) को आज ही मैं विजयप्रद मुकुट पहनाऊँगा। जो मुझे रोकनेवाले हों, आवें, रोकें।

देव, मर्त्य, विद्याधर, नाग तथा अन्य सब स्थानों के निवासी पड़े रहें। भूमि की सृष्टि, रक्षा तथा प्रलय करनेवाले स्वयं त्रिदेव भी क्यों न मेरा सामना करने आवें, तो भी मैं नारी की इच्छा (अर्थात्, कैकेयी की इच्छा) पूर्ण नहीं होने दूँगा।

चक्रवर्त्ती-कुमार लक्ष्मण आकाश के मध्य-स्थित सूर्य के समान उग्रता दिखा रहे थे। उस नगर में वे इस प्रकार घूम रहे थे, जैसे सुन्दर शिखरों से युक्त मंदर-पर्वत पूर्वकाल में क्षीरसमुद्र के मध्य घूमा था।

उस समय राम, विरोधकारी क्रूरता से पूर्ण कैकेयी के द्वारा उत्पादित उत्पात से व्याकुल होकर, सांत्वना देने पर भी शान्ति न पानेवाली सुमित्रा के पास थे। उन्होंने अपने सहचर बलवान् अनुज (लक्ष्मण) के धनुष-रूपी मेघ से उत्पन्न, ब्रह्मांड को भेदनेवाले टंकार-रूपी गर्जन को सुना।

तुरंत वे, अन्यत्रदुर्लभ शोभा से युक्त आभरणों की कांति को चारों ओर बिखेरते हुए, वक्ष पर उज्ज्वल मुक्तामाला से शोभित होते हुए, किसी से शांत न होनेवाली

---

१. लक्ष्मण को गंगा का अधिपति कहा गया है। इसकी विविध प्रकार से व्याख्या की गई है:

(क) कोशल देश की सीमा में गंगा बहती है, अतः कोशल के राजा गंगापति माने जाते हैं।

(ख) सरयू नदी का एक नाम है 'रामगंगा'। कोशल देश में उस नदी के बहने से वहाँ के राजा गंगापति हुए।

(ग) सब नदियों के लिए गंगा शब्द का व्यवहार साधारण है; अतः यहाँ गंगा का अर्थ सरयू है और उस देश का राजा लक्ष्मण गंगापति है।

(घ) गंगा को स्वर्ग से धरती पर लानेवाले थे भगीरथ; उनके वंश में उत्पन्न होनेवाले लोग गंगापति कहे गये हैं। —अनु०

प्रलयकालीन अग्नि को भी शांत करनेवाले कालमेघ के समान, अनुपम और मृदुल वचन-रूपी वर्षा की बूँदें बरसाते हुए आये।

उज्ज्वल स्वर्ण-समान देह तथा मेघ-समान विशाल हाथों से शोभायमान लक्ष्मण को विद्युत्-समान क्रोधाग्नि प्रकट करते हुए देखकर रामचन्द्र ने कहा—हे मेरे वत्स! कभी क्रोध न करनेवाले तुम अब युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गये हो। यों धनुष उठाने का क्या कारण है?

तब लक्ष्मण ने उत्तर दिया—सत्य को मिटाकर, तुम्हारे असाधारण राज्य को तुम से छीननेवाली और काले मनवाली उस (कैकेयी) की आँखों के सामने ही तुमको राज-मुकुट पहना दूँगा। इसमें विघ्न डालने के लिए स्वयं देवता भी क्यों न आवें, उनको मैं तूल को जलानेवाली अग्नि के समान जला दूँगा।

जबतक यह दृढ धनुष मेरे हाथ में रहेगा, तबतक वे देवता भी कुछ विघ्न उत्पन्न करने का साहस नहीं कर सकते। यदि वे विघ्न उत्पन्न भी करें, तो भी मैं अपने शर का लक्ष्य बनाकर उन्हें जला दूँगा और चतुर्दश भुवन की रक्षा का भार अभी आप को सौंप दूँगा। आप उसे स्वीकार करें—यों लक्ष्मण ने कहा।

अपने अनुज की बातें सुनकर राम ने कहा—तुम्हारी बुद्धि सदा शास्त्र-विहित न्याय के अनुकूल मार्ग में चलती है। किन्तु, आज नीति के विरुद्ध, अविनश्वर धर्म को भी मिटाता हुआ, यह क्रोध तुम्हारे मन में कैसे उत्पन्न हुआ?

ज्येष्ठ भ्राता के यह कहने पर, लक्ष्मण अपने दाँतों को प्रकट करते हुए हँस पड़े और कहा—आपके पिता ने कहा कि यह विशाल पृथ्वी तुम्हारी है, तो इस पृथ्वी को स्वीकार करके, पुनः उसे खोकर आप वन को जा रहे हैं। ऐसे समय में मुझे क्रोध उत्पन्न न होकर और किस समय उत्पन्न होगा?

मेरी आँखों के सामने ही आपको राज्य देकर, फिर 'नहीं' कह देनेवाले तथा क्रूर नेत्रवाले चक्रवर्त्ती के समान ही प्रेमहीन माता (कैकेयी) तुम को अरण्य भेज रही है; ऐसे समय में क्या मैं दुःखदायक इंद्रियों से युक्त इस देह का धारण करके अपने प्राणों की रक्षा करता रहूँगा?

यही मेरे क्रोध का कारण है। इस प्रकार, लक्ष्मण के अपना कथन समाप्त करने के पूर्व ही, अपने बछड़े पर प्रेम रखनेवाली गाय के समान, विविध योनियों में उत्पन्न प्राणियों की रक्षा करनेवाले, अपने करों में आज्ञाचक्र तथा दृढ कोदंड धारण करनेवाले, मनु नामक उन्नत स्कंधोंवाले वीर के वंश में उत्पन्न श्रीराम ये वचन कहने लगे।

विद्युत् को अपनी कांति से परास्त करनेवाले तथा सूर्य-किरण एवं अग्नि से निर्मित भाला को धारण करनेवाले (हे लक्ष्मण)! मुकुटधारी चक्रवर्त्ती ने जब राज्य का भार मुझे देने की बात कही, तब यह विचार किये बिना ही कि यह राज्य पीछे अनेक कष्ट उत्पन्न करेगा, मैं इसे स्वीकार करने को राजी हो गया। यह मेरा ही अपराध है। इसमें चक्रवर्त्ती का क्या दोष है?

स्वच्छ जल के सूख जाने में नदी का कोई दोष नहीं होता। इसी प्रकार (मुझे

वन जाने की आज्ञा देने में मुझ पर अधिक प्रेम रखनेवाले) चक्रवर्ती का कोई दोष नहीं है। जन्म देकर अब मुझे वन में जाने की आज्ञा देने में, अबतक हम पर वात्सल्य रखनेवाली माता (कैकेयी) का भी दोष नहीं है। इसमें (कैकेयी) के पुत्र भरत का भी दोष नहीं है ! हे वत्स ! यह विधि का ही दोष है। इसके लिए तुम क्यों क्रोध करते हो ?—यों श्रीराम ने कहा।

तब लक्ष्मण ने लुहार की विशाल भट्ठी की अग्नि के समान, निःश्वास भरकर उत्तर दिया—ताप से भरे अपने इस हृदय को मैं कैसे शान्त करूँ ? मेरा यह धनुष उत्पात उत्पन्न करनेवाली (कैकेयी) के मन में सन्मति उत्पन्न करेगा और त्रिदेवों के वश में भी न रहनेवाली बहुत ही बलवान् नियति के लिए भी नियति बनेगा। आप देखेंगे।

लक्ष्मण के यों कहने पर राम ने उससे कहा—हे तात ! वेदों के तत्त्व को जाननेवाले तुम, अपने मुँह में जो कुछ बात आती है, उसे कह रहे हो। तुमने जो कहा, वह धर्म का अनुसरण करनेवाले लोगों में नहीं देखा जाता। (तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कार्य करनेवाले) जब तुम्हारे माता-पिता ही हैं, तब उनपर क्रोध कैसे कर सकते हो ?

चन्द्रकला को शिर पर धारण करनेवाले रुद्र के समान रोष से भरे हुए लक्ष्मण ने कहा—दूसरों को अपना स्वत्व दान करने की सीख पाये हुए हे उदार ! मेरे उत्तम पिता आप हैं। स्वामी आप हैं। जननी आप हैं। मेरे अन्य कोई नहीं हैं। आज आप मेरे धनुष के प्रभाव को देखें। और, उसने आगे का कार्य करने के लिए अपना हाथ उठाया।

तब वरद (राम) उससे कहने लगे—माता (कैकेयी) ही, जिसने वर प्राप्त किया है, वास्तव में इस राज्य को पाने का अधिकार रखती हैं। उसके और मेरे पिता की आज्ञा से भरत इस राज्य का अधिकार प्राप्त करेगा। अब मैं जो ऐश्वर्य प्राप्त करनेवाला हूँ, वह है तपस्या। वह इस राज्य से भी अधिक सुखदायक है। उससे बढ़कर वस्तु और क्या हो सकती है ?

राम आगे बोले—हे भाई ! तुम्हारा यह कोप कैसे शांत होगा ? क्या इस संसार की माया से पृथक् रहकर पवित्र सन्मार्ग पर जीवन व्यतीत करनेवाले भाई (भरत) को युद्ध में मारकर, या महापुरुषों के द्वारा प्रशंसित अनुपम कार्य करनेवाले पिता (दशरथ) को पीडा देकर, अथवा जननी को परास्त करके ?—कहो, कैसे शांत होगा ?

मन को प्रभावित करनेवाले वचन कहने में समर्थ (राम) के वचनों के उत्तर में लक्ष्मण ने कहा—शत्रुओं के द्वारा भी प्रशंसा पानेवाला मैं, बढ़े हुए दो पर्वतों के समान दो भुजाओं का भार व्यर्थ ही वहन कर रहा हूँ। तूणीर एवं दृढ धनुष को भी ढोने के लिए मैं उत्पन्न हुआ हूँ। अब (मेरे) क्रोध करने से क्या लाभ ?

तब दक्षिण की भाषा (-रूपी समुद्र) के पारंगत तथा संस्कृत-भाषा के शास्त्र तथा विज्ञान की सीमा तक पहुँचे हुए राम ने लक्ष्मण से कहा—अबतक जिन पिता ने मुझे मधुर वचन कहकर तथा पाल-पोसकर बड़ा किया, उनके वचन का उल्लंघन करके तुम यदि कुछ करोगे, तो उससे तुम्हारी क्या हानि होगी ?[1]

---

१. अन्तिम वाक्य में लक्ष्मण की आलोचना अंतर्निहित है।—अनु०

कभी पीछे न हटनेवाले प्रभु (राम) की आज्ञा से लक्ष्मण ने अपना क्रोध शांत किया और प्रभु के सम्मुख खड़े होकर चार वेदों के समान ही अपने विवेक से कुछ वचन कहना छोड़ दिया। अपनी वेला का अतिक्रमण न करनेवाले समुद्र के समान लक्ष्मण अपने में उपशांत हो गया।

(भाव यह है—वेद भी जिस भगवान् के सम्मुख मौन हो जाते हैं, उसी प्रकार लक्ष्मण भी उसके सम्मुख हारकर निरुत्तर खड़े रहे।)

तब प्रभु ने लक्ष्मण का ऐसे आलिंगन किया, जैसे वे (राम) स्वयं जिसका आदि और अन्त नहीं पहचान सकते, वे उन्हीं (राम) के स्वरूप (अर्थात् विष्णु), स्वर्णवर्ण मृगचर्म को पहननेवाले शिवजी का आलिंगन कर रहे हों। फिर, मधुर वचनों से युक्त सुमित्रा देवी के प्रासाद में (लक्ष्मण के साथ) जा पहुँचे।

सुमित्रा ने, अपने दो नेत्रों-जैसे उन दोनों (राम और लक्ष्मण) को देखा, जो दंडकारण्य में जाने का निश्चय करके आये थे, तो उसका हृदय विदीर्ण हो गया। वह शोक-समुद्र का पार न देखती हुई धरती पर गिर पड़ी और विलाप करने लगी।

तब रामचंद्र दुःखी सुमित्रा के, उसके काटनेवाले दुःख-रूपी करवाल से उसको बचाने के लिए, उसके चरणों को नमस्कार करके मन को सांत्वना देनेवाले वचन बोले—युद्ध में निपुण शस्त्रधारी चक्रवर्त्ती को मैं असत्यवादी नहीं बनाऊँगा। काले मेघों से युक्त विशाल वन को थोड़ा देखकर मैं यहाँ लौट आऊँगा।

मैं वन में जाऊँ, समुद्र में जाऊँ, कोलाहल से भरे देवलोक में जाऊँ, मेरे लिए कोई भी स्थान महिमामय अयोध्या के समान ही होगा। मुझे दुःख देनेवाला कौन है? अतः आप व्याकुलप्राण और कृशगात्र होकर मूर्च्छित न हों।

जब वे (राम-लक्ष्मण) सुमित्रा के दुःख को ऐसे शांत कर रहे थे, जैसे वे अग्नि को बुझा रहे हों, तब रोग की पीडा को न सहनेवाले जीव के जैसे लचीली कटिवाली कुछ स्त्रियाँ अमिट अपयशवाली कैकयी के द्वारा दिये गये वल्कल लेकर उनके निकट आईं।

(कैकेयी की दासियाँ) कालमेघ-सदृश राम को ज्यों-ज्यों देखती थीं, त्यों-त्यों उनकी आँखों से भी अधिक उनका मन पिघलकर पानी हो रहा था। उन्होंने राम से कहा—विपदा में पड़े हुए अन्य लोगों को पीडित देखकर भी अपने निश्चय से न डिगने-वाली कठोरहृदया (कैकेयी) के भेजने से हम ये वल्कल (आपके लिए) लाई हैं।

तब अनुज (लक्ष्मण) ने उज्ज्वल मुक्तातुल्य दाँतोंवाली उन दासियों को देखकर कहा—नवीन तथा वैभवमय राज्य को जिन कैकेयी ने (राम से) छीन लिया है, उनके दिये हुए सब प्रसाधनों को पहनने के लिए उत्पन्न ये मेरे भाई खड़े हैं। हाथ में युद्ध के योग्य धनुष को रखे हुए मैं भी निष्क्रिय होकर यह सब देखने के लिए उत्पन्न हुआ हूँ। उन प्रसाधनों को दिखाओ।

फिर, राम ने उन दासियों के दिये वल्कलों को आदर के साथ लेकर पवित्र सुमित्रा देवी के स्वर्ण-आभरणों से भूषित चरणों को यह कहकर प्रणाम किया कि हे हमारी स्वामिनी, यदि आप हमें यह आज्ञा दें कि पीडाजनक कष्टों से मुक्त होकर तुम (वनवास

के लिए) अविलंब जाओ, तो आपकी वही (आज्ञा) हमारी सहायता करनेवाली होगी।

तब सुमित्रा ने लक्ष्मण के प्रति ये वचन कहे—वन तुम्हारे जाने के लिए अयोग्य नहीं है। वह वन ही तुम्हारे लिए अयोध्यानगर होगा। तुम पर गाढ अनुराग रखनेवाले ये राम ही तुम्हारे लिए दशरथ हैं। पुष्पालंकृत केशोंवाली सीता ही तुम्हारे लिए वे माताएँ हैं, जिन्होंने राम के राज्य त्याग कर वन जाने पर भी अपने प्राण नहीं त्यागे। इस प्रकार का विचार रखकर तुम राम के संग वन में जाओ। अब तुम्हारा यहाँ रहना अपराध होगा।

पुनः सुमित्रा ने उससे कहा—हे पुत्र! इन (राम) के पीछे-पीछे जाओ। उनका भाई होकर नहीं, किन्तु उनका दास होकर जाओ। उनकी सेवा करना। यदि ये राम नगर को लौट आयेंगे, तो तुम भी लौटकर आना; यदि नहीं आयेंगे तो तुम उनसे पूर्व अपने प्राण त्याग देना। यह कहकर वह देवी (सुमित्रा) आँखों से अश्रु बहाती हुई खड़ी रही।

फिर, दोनों ने सुमित्रा को नमस्कार किया। सुमित्रा, अपने दो बछड़ों से वियुक्त होकर पीडित होनेवाली गाय के समान व्याकुल हो रो पड़ी। उपमाहीन कुमार भी अपनी सुन्दर कटि के रेशमी वस्त्रों को हटाकर वल्कल पहनकर बाहर निकले।

भ्रमरों से गुंजरित पुष्पमाला धारण करनेवाले राम ने लक्ष्मण को अपने जैसे ही वल्कल पहने हुए देखकर कहा—हे स्वर्ग को अलंकृत करनेवाली कीर्त्ति से शोभित! मेरी इस बात को सुनो और उसका निरादर मत करो।

हमारी सब माताएँ तथा चक्रवर्त्ती पूर्व दशा में नहीं हैं। वे दारुण दुःख में निमग्न हैं। मुझसे वियुक्त हैं। अतः, तुम मेरे लिए यहाँ रहकर उनकी विपदा दूर करो।

पौरुषवान् राम के यह बात कहने पर भक्तिपूर्ण लक्ष्मण ऐसे भयभीत हुए कि उनके स्तंभ-समान पुष्ट कंधे काँप उठे। उनके जो प्राण (राम के संग वन जाने की उमंग में) लौट आये थे, वे बीच में ही व्याकुल हो उठे। यों रोते हुए लक्ष्मण ने (राम से) कहा—आपके प्रति कौन-सा अपराध मैंने किया है?

हे ज्या-युक्त कोदंड धारण करनेवाले! विचार करके देखने पर विदित होगा कि जहाँ जल है, वहीं मीन हैं और नील उत्पल होते हैं। यह पृथ्वी है, इसीलिए तो सब प्राणिजात हैं। उसी प्रकार आपके न रहने पर मैं तथा आपकी देवी कैसे रह सकते हैं? आप ही बतावें?

स्वर्णकंकणधारिणी एक (पत्नी) के कहने से, रक्षा करनेवाले चक्रवर्त्ती, भूमि देवी के कातर होकर व्याकुल होते हुए, आपको यह आदेश देकर कि वन को जाओ, स्वयं जीवित हैं। क्या उन चक्रवर्त्ती का मुझे पुत्र मानकर ही आप यह वचन कह रहे हैं?

हे मेरे स्वामिन्! अपके वन-गमन के कारण मेरे मन में जो क्रोध उत्पन्न हुआ, उसे मैंने शान्त कर लिया। अब मुझसे आप जो कह रहे हैं, उससे अधिक पीडाजनक मेरे लिए और क्या हो सकता है?

तेल से सिक्त शत्रु-नारियों की आँखों के काजल को पोंछनेवाले तथा शत्रुहीन

होने से कोश में रखे हुए भाले से युक्त हे प्रभो ! आप पूर्वजों से प्राप्त अपना समस्त स्वत्व खोकर जा रहे हैं, तो क्या हमें भी छोड़ जाना चाहते हैं ?

लक्ष्मण के यह कहने पर रामचन्द्र कुछ नहीं कह सके और पर्वत-सदृश कंधोंवाले लक्ष्मण का वदन देखते रहे। लक्ष्मण के मन की पीडा को जानकर अपने सुगंधित विशाल कमल जैसे नयनों से अश्रुधार बहाते हुए खड़े रहे।

उसी समय प्रेम-भरे तथा पवित्र तप से संपन्न मुनिवर (वसिष्ठ) राजसभा से वहाँ आये। दोनों मनोहर राजकुमारों ने उनके प्रति सिर झुकाया। (उन्हें देखकर) मुनिवर दुःखनामक महासमुद्र में डूब गये।

सत्यज्ञान से संपन्न मुनिवर ने उन (राम-लक्ष्मण) के वदन को तथा उनके मन को भी देखा। उनकी कटि में बंधे वल्कल की शोभा को देखा। फिर क्या कहना है ! उस समय उत्पन्न मनोवेदना के कारण मुनिवर अपने को भी भूल गये।

जो दिन (रामचन्द्र के) राजतिलक के उत्सव के लिए निश्चित हुआ था, उस सुखदायक दिन में राम ने, दुःखदायक विधि के प्रभाव से, वल्कल धारण किया। स्वयं चतुर्मुख ही नियति को बदलने का प्रयत्न क्यों न करे, तो भी नियति का विधान आकर घेर ही लेता है। ऐसी नियति को कौन मिटा सकता है ?

यह उत्पात, केवल कठोर कैकेयी के कारण ही उत्पन्न नहीं हुआ है। यह पुण्य-स्वरूप (राम) ऐसा दुःख पाने के योग्य भी नहीं है, तो किस कारण से यह सब संघटित हुआ ? यह किसका षड्यन्त्र है ? यह सब भविष्य में प्रकट होगा। इस प्रकार वसिष्ठ ने सोचा।

कोदण्ड तथा विशाल कमल-सदृश नयनों से शोभित वीर (राम) के समीप आकर वसिष्ठ ने कहा—हे वत्स ! तुम यहाँ से जाकर उन्नत पर्वतों से युक्त वन को देखोगे। किन्तु, अति विशाल सेना से युक्त चक्रवर्त्ती को जीवित नहीं पाओगे।

तब आदिशेष के पर्यंक से हटकर पृथ्वी पर अवतीर्ण (श्रीराम) ने वसिष्ठ से कहा—चक्रवर्त्ती की आज्ञा को शिर पर धारण कर उसका पालन करना मेरा कर्त्तव्य है। उनके शोक को दूर करना आपका कर्त्तव्य है। यही न्याय है।

तब वसिष्ठ ने कहा—चक्रवर्त्ती ने यह आज्ञा नहीं दी है कि तुम कंटकपूर्ण अरण्य में जाओ। हाँ, शत्रुओं के शर के समान वचन कहनेवाली क्रूर कैकेयी की ओर से पैनाये गये भाले को धारण करनेवाले चक्रवर्त्ती ने उसको वर दिये हैं।

उज्ज्वल धर्म की रक्षा के लिए उत्पन्न राम ने कहा—मेरे पिता ने मेरी माता को वर दिये। मेरी माता ने मुझे (वन जाने की) आज्ञा दी। मैंने वह आज्ञा शिरोधार्य की। सबके साक्षी बने हुए आप क्या हमको रोकने का विचार कर रहे हैं ?

तब वसिष्ठ अवाक् होकर, धरती पर अश्रु बहाते हुए खड़े रहे। पर्वताकार कंधों-वाले राम, मुनिवर को प्रणाम करके चक्रवर्त्ती के स्वर्णमय प्राचीरों से युक्त प्रासाद के द्वार पर जा पहुँचे।

वल्कल से शोभायमान, लक्ष्मण से अनुसृत, प्रभूत आनन्द से भरित और कमल से

भी अधिक सुन्दर वदन से युक्त राम के निश्चय को जानकर उस नगर के लोगों को जो दुःख हुआ, अब हम उसका वर्णन किसी प्रकार से करेंगे ।

ब्राह्मणों, अपूर्व तपस्या से युक्त मुनियों, राजाओं तथा उस देश के निवासियों के हृदय की दशा के बारे में हम क्या कहें ? (इस घटना से) देवता लोग भी इतने दुःखी हुए कि उन्होंने भविष्य में उत्पन्न होनेवाले सुख को भी त्याग दिया ।

देव-रमणियों की समता करनेवाली नारियाँ (वल्कलधारी) राम को देखकर अपने करों से अपनी मदभरी आँखों पर इस प्रकार प्रहार करने लगीं, जैसे कमलपुष्प पर मँडरानेवाले मत्त भ्रमरों को घने पल्लवों से उड़ा रही हों ।

कुछ लोग (राम के प्रति) अक्षीण अनुराग के कारण राम के पिता के पूर्व ही स्वर्ग में जा पहुँचे। क्या इसका कारण उनका द्विविध कर्म-बन्धन को तोड़ देना था ? या उनके व्याकुल प्राणों का लौटकर नहीं आना था ?

कुछ गिर पड़े। कुछ सिसक-सिसककर रो उठे। कुछ अपनी आँखों से बहनेवाले अश्रुओं से ढक गये ! कुछ इस प्रकार कातर हो उठे, मानों उनके केशों में आग लग गई हो ।

कुछ लोग, जो इस प्रकार दुःखी थे, जैसे प्रभूत संपत्ति को खो बैठे हों और जो इक्षुरस-समान (मधुर) वचनवाले थे, आँखों से आँसू न बहाते हुए लौह-सदृश हृदयों के साथ स्तब्ध हो खड़े रहे। कदाचित् अपार दुःख से उनकी बुद्धि भ्रांत हो गई थी ।

कुछ लोगों के शरीर से निकले हुए प्राण एक दशा में स्थिर नहीं रहे और ऐसे हो गये कि अभी चले, अभी चले। कुछ के प्राण बाहर निकलकर पुनः शरीर में लौट आये। कुछ लोगों की आँखों से, अश्रुओं के सूख जाने से, रक्त ऐसे बहने लगा, जैसे घाव से बहता है ।

दो सूँड़ोंवाले हाथी-जैसे (भुजाओंवाले) अनेक वीरों ने अपने बड़े करवाल से अपने शिर को काट डाला और एक हाथ में (अपना शिर) रखकर उसे उछालने लगे और कुछ वीरों ने अपने कमल-नेत्रों को कटार से भोंककर निकाल दिया ।

उनके (स्त्रियों के) आभरण बिखर पड़े। आभरणों के रत्न बिखर पड़े। पुष्पहार-जैसी मेखलाएँ बिखर गईं। रमणियों के उज्ज्वल मंदहास अदृश्य हो गये। उनके सुन्दर वदन (जो पहले कभी चन्द्रमा से परास्त नहीं होते थे, अब) चन्द्रमा से परास्त हो गये ।

चक्रवर्त्ती की पवित्र पातिव्रत्यवाली साठ सहस्र पत्नियाँ अश्रु बहाती हुई राम के पीछे-पीछे चलीं और अपने मुँह खोलकर वीची-भरे समुद्र के समान शब्द करती हुई रो पड़ीं।

वे स्त्रियाँ, जिनके राम के अतिरिक्त अन्य कोई पुत्र नहीं था, इस प्रकार (भूमि पर) गिरकर रोती थीं, जैसे मयूर, कोकिल और हंस पंखों से हीन होकर धरती पर आ गिरे हों ।

उन स्त्रियों की अमृत से भी अधिक मधुर वाणी, अविराम रूप में निःश्वास भरते हुए रोते रहने के कारण, वंशी तथा तंत्री से युक्त मधुर नादवाले याक्-वाद्य से हार गई ।

अहो ! क्या (राम के) जाने योग्य स्थान अरण्य है ! कहकर वे स्त्रियाँ विलाप कर रही थीं। उनके वदनों से विशाल चहार-दिवारी से युक्त प्रासाद एक

ऐसे सरोवर के समान लगता था, जिसमें रक्त कुवलय दिन में ही विकसित हो रहे हों।

उनके नेत्रों से उत्पन्न अश्रु की नदियाँ, उनके वक्ष पर के प्रभूत कुंकुम-लेप और चंदनरस-रूपी कीचड़ से मिलकर मुक्ताहार को बहाती हुई, घने स्तन-रूपी पर्वतों को पार कर गईं और मेखला-युक्त कटि-तट रूपी समुद्र में जा पहुँचीं।

उद्यानों से पूर्ण कोशल देश के प्रभु (दशरथ) की पत्नियों को, उनके कमल-सदृश उज्ज्वल मुखों को आज सूर्य ने भी देखा। स्वर्ग में रहनेवाला देवेंद्र ही क्यों न हो, जब विपदा उत्पन्न होती है, तब उसे क्या नहीं भोगना पड़ता है?—(अर्थात्, असूर्यम्पश्या कही जानेवाली स्त्रियाँ भी राम के वन-गमन का समाचार सुनकर बाहर निकल आईं।)

माताएँ, बंधुजन, आश्रित जन, दूर की रहनेवाली, समीप की रहनेवाली, सब प्रकार की स्त्रियाँ प्रज्वलित अग्नि में गिरी-सी तड़प उठीं और घरों के आँगनों में और बाहर भर गईं।

सब लोग चिल्ला उठे। (अयोध्या की जनता) सब दिशाओं में उमड़े हुए समुद्र के समान बड़ी ध्वनि करती हुई राम को घेरकर चल पड़ी। पर्वत-समान कंधोंवाले राम, उनको क्या कहना चाहिए—यह नहीं जानते हुए और उनको लौटाने का कोई उपाय भी नहीं देखते हुए अपने प्रासाद की ओर बढ़ चले।

जो राम उन्नत किरीट को धारण करने के लिए, उत्तम रत्नों से जटित रथ पर सवार होकर गये थे, वही अब वल्कल पहनकर पुनः उसी सुन्दर तथा विशाल वीथी में (पैदल) चल रहे थे।

उनको देखकर कुछ लोग कह रहे थे—अंजन-वर्ण इस प्रभु पर जो विपदा आ पड़ी है, उसे देखकर भी जो प्राण शरीर को छोड़कर नहीं जा रहे हैं, उन प्राणों तथा उन हृदयों से बढ़कर कठोर वस्तु का हम अनुमान तक नहीं कर सकते। सचमुच मनुष्य का स्वार्थ विष से भी अधिक क्रूर होता है।

कुछ लोग कह रहे थे—हम इस प्रतीक्षा में वीथी में खड़े थे कि रामचन्द्र राज-तिलक धारण करके इस मार्ग से लौटेंगे; किन्तु अब हम उन्हें धूप से भरी धरती पर यों चलते हुए देख रहे हैं। इस देश में, जहाँ एक स्त्री इस प्रकार का क्रूर कार्य करती है, नेत्रवान् होकर जन्म लेना ही पाप है।

कुछ लोग कह रहे थे—क्या यह उचित है कि सारे संसार को अपना बनाने की शक्ति रखनेवाला, ज्येष्ठ पुत्र होकर उत्पन्न होनेवाला, यह राम, व्याघ्रों के निवासभूत अरण्य में निवास करने के लिए जायें और यों उसे जाते हुए देखकर भी हम चुप रहें? अहो! हमारा प्रेम भी अद्भुत सुन्दर है!

कुछ लोग कह रहे थे—क्षत्रिय-कुल को मिटानेवाले परशुराम के बल को भंग करनेवाले इस घनश्याम राम ने शक्तिहीन तथा विवेक-भ्रष्ट हुए चक्रवर्त्ती को देखकर यह नहीं कहा कि आप हित को छोड़कर धर्म का नाश क्यों करना चाहते हैं? अतः, यह राम भी इस पृथ्वी के शासन से हटानेवाली उस कैकेयी के ही समान है।

कुछ लोग कह रहे थे—अपनी सुन्दर कटि में वल्कल पहने, बड़े दुःख से अभिभूत

होकर राम के पीछे-पीछे चलनेवाला दो पुत्रों की जननी (सुमित्रा) का यह पुत्र (लक्ष्मण) ही इस नगर-भर में राम का अनन्य बन्धु है ।

कुछ लोग यह कहते हुए कि पत्थर से भी अधिक कठोर अपने हृदयों को हम फरसे से काट देंगे—दौड़ जाते थे और मार्ग-मध्य अपने अश्रुओं के कारण उत्पन्न कीचड़ में फिसलकर गिर पड़ते थे।

कुछ लोग अपने शरीर पर से रत्नाभरणों को उतारकर फेंक देते थे। विद्युत्-समान कांति से युक्त अपने शरीर पर से रंग-विरंगे वस्त्रों को फाड़कर फेंक देते थे और छोटे फटे वस्त्र पहन लेते थे।

कुछ लोग कह रहे थे—संसार में कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो अनेक पुत्रों के होने पर भी, यदि उनका कोई एक पुत्र किसी अवयव से हीन होकर उत्पन्न होता है, तो अपने प्राण छोड़ देते हैं। किन्तु इन चक्रवर्त्ती का, जो अपने ज्येष्ठ पुत्र को अरण्य में भेजकर अपने वचन की रक्षा कर रहे हैं, उनका मन लोहे से भी अधिक कठोर है।

कुछ लोग कह रहे थे—यह रामचन्द्र मेघ के अतिरिक्त अन्य किसी उपमान से हीन श्रेष्ठ करुणा की मूर्त्ति है, इसके अतिरिक्त इसमें दूसरी कोई कमी नहीं है। यदि नगर की सारी प्रजा इसके साथ ही अरण्य में जा बसे, तब भी क्या कैकेयी अपने प्रिय पुत्र के साथ इस पृथ्वी का शासन करती रहेगी ?

कुछ-कुछ झुकी हुई सूक्ष्म कटि को दुखानेवाले स्तन-भार से युक्त स्त्रियाँ रोदन की ध्वनि के साथ, घने 'कान्दल' पुष्प-सदृश अपने अरुण करों को सिर पर रखे हुए, लताओं के समान एक ओर खड़ी रहीं।

चन्द्र को छूनेवाले शिखरों से युक्त प्रासादों की ऊपरी मंजिलों में खड़ी हुई स्त्रियों की आँखों से निरंतर बहनेवाले आँसू उनके स्तनों को भिगो रहे थे। वे स्त्रियाँ पर्वत-शिखरों पर स्थित मयूरों के समान दुःखी हो रही थीं।

मेघ-सदृश अगरु-धूम से भरे सौधों के विशाल वातायनों से (राम को) देखनेवाली गद्गद स्वरवाली स्त्रियों की अंजन-लगी आँखों से अश्रुजल निर्झर के समान बह रहा था। वे स्त्रियाँ पिंजरस्थ शुक के समान रो रही थीं।

सौधों की ऊपरी मंजिलों से देखनेवाले लोगों की आँखों से बड़ी-बड़ी अश्रुधाराएँ निकलकर सौधों के बाहर बह रही थीं। अतः, ऐसा लगता था, मानों वे सौध भी चक्रवर्त्ती-कुमार (राम) के प्रति दुःखी होकर रो रहे हैं।

स्त्रियाँ अपने शिशुओं को भूल गईं। पुत्र अपनी माता को भूल गये। इस प्रकार, उस नगर के लोग व्याकुल होकर बड़ी पीडा से प्रजा-रहित-से होकर बड़े शब्द के साथ रो रहे थे।

'कामर' (नामक) राग के समान मृदु स्वरवाली सब सुन्दरियाँ वीथी में एक हो गईं, जिससे धवल प्रासाद, सुन्दर दृश्य तथा सुगंधित केशोंवाली लक्ष्मी से विहीन कमल के समान लगते थे।

शर-विद्ध हरिणियाँ विकल हो रही हों—इस प्रकार का दृश्य उपस्थित करती

हुई उत्तम कर्णाभरणों से युक्त सुंदरियाँ घन-पटल के समान केशपाशों को धरती पर फैलाये अपने आभरण बिखेरते हुए झुण्डों में जा रही थीं।

पर्वत-समान सौधों की पताकाएँ संकुचित हो गईं। उत्तम भेरियों के शब्द थम गये। विविध वाद्यों के नाद दब गये। प्रासादों के प्राचीरों से बाहर की वीथियों की धूल धरती में चारों ओर बहनेवाली अश्रुधारा से दब गई।

रसोईघर धूम-हीन हो गये। ऊँचे सौध अगरु-धूम से विहीन हो गये। शुकों के पात्र दूध से विहीन हो गये और उत्तम रत्न-जटित पालने और उनमें सोनेवाले शिशु, स्त्रियों के आगमन से विहीन हो गये—(अर्थात्, पालनों में स्थित बच्चों के रोने पर भी माताएँ नहीं आती थीं।)

सबके मुख प्राण-हीन जैसे कांति-रहित हो गये। मेघ-समूह वर्षा-रहित हो गये। घोड़े, स्वच्छ जल से युक्त अश्व-शालाओं को छोड़कर चले गये। मत्तगज, पुष्पों के मधु को पीनेवाले भ्रमरों के जैसे, अपने आनन्द को छोड़कर चले गये।

छत्र छाया नहीं कर रहे थे। दीर्घ नयनोंवाली रमणियों के केश पुष्पों से शोभित नहीं हो रहे थे। पुरुषों के पाद-युगल वीर-वलयों से युक्त नहीं थे। क्रोधी मन्मथ के बाण भी उष्णता-विहीन हो गये। हंस अपनी हंसिनी को छोड़कर चल पड़े।

वीथियाँ, अश्वों की किंकिणियों की ध्वनि, भेरियों के चर्म-आवरण की ध्वनि और मेघ-समान शब्द करनेवाले रथों की ध्वनि से रहित होकर स्वच्छ बीचियों से युक्त जल की ध्वनि से विहीन समुद्र के समान लगने लगीं।

राजवीथियों में रोदन की ध्वनियों को छोड़कर वाद्यों की ध्वनियाँ नहीं होती थीं। वीणा-तंत्रियों के क्रमबद्ध स्वरों की ध्वनि नहीं होती थी। अनिमेष नयनोंवाले देवों के उत्सवों से उत्पन्न होनेवाली ध्वनि भी नहीं हो रही थी।

स्पष्ट शब्दवाले नूपुरों से प्रतिध्वनित सौध, अब शब्द-रहित थे। मेखलाओं के संबंध में भी यही बात थी। जलचर पत्ती नहीं बोल रहे थे। उद्यान में भी ऐसी ही बात थी। पुष्पों में भ्रमर शब्द नहीं कर रहे थे। हाथी भी ऐसे ही हो गये।

खेत, जल को भूल गये—(अर्थात्, किसान खेतों को सींचने की बात भूल गये।) लाल अधरवाली सुन्दरियों के कर, नवजात शिशुओं को भूल गये। प्रज्वलित होमाग्नियाँ, घृत को भूल गईं—(अर्थात्, ब्राह्मण उनमें घृत का होम करना भूल गये।) आत्मज्ञानी आत्मतत्त्व को भूल गये। वेद, शब्द को भूल गये—(अर्थात्, वेदों का वाचन बन्द हो गया)।

झुण्डों में नृत्य करनेवाले अब रो पड़े। अमृत-समान मधुर सप्त स्वरों में गान करनेवाले अब रो पड़े। अपने प्रियतमों के साथ प्रणय-कलह में कुपित तथा पुष्पमालाओं से रहित सुन्दरियाँ अब रो पड़ीं। अपने प्रियतमों से मिलकर (आनंदित) रहनेवाली सुन्दरियाँ भी अब रो पड़ीं।

हाथी जलाशयों के पास जाकर अपनी सूँड़, जल पीने के लिए नहीं बढ़ते थे। घोड़े मुँह में घास नहीं लेते थे। पत्ती अपने बच्चों के लिए आहार नहीं लाते थे। गायें अपने बछड़ों को दूध नहीं पिलाती थीं और उनके वत्स व्याकुलता से द्रवित हो रहे थे।

पुरुषों के वक्ष पर युवतियों के स्तन-रूपी नारिकेल अंचित नहीं हो रहे थे—(अर्थात्, वे आलिंगन नहीं कर रहे थे)। पुष्प-समुदाय, चंदन-लेप करनेवाले पुरुषों के केशों को तथा उनकी युवतियों के केशों को अलंकृत नहीं कर रहे थे।

बड़े गज, मुखपट्ट और उत्तम आभरणों से घृणा करते थे। सौध-समुदाय, शिखरों में पहनने योग्य सुन्दर अलंकारों से घृणा करते थे। ध्वजाएँ, आकर्षक सौंदर्य से रहित हो गईं थीं। स्वर्णमय मनोहर प्राचीर, मृदुगतिवाले कबूतरों तथा कबूतरियों की सुन्दरता से रहित हो गये।

सुख-दुःख को समान रूप से देखनेवाले योगी भी अधिक पीडा से दुःखी हुए। फिर, उन साधारण संसारी व्यक्तियों के बारे में क्या कहा जाय, जो दुःख के समय, अपने पाप का फल मानकर व्याकुल होते हैं और सुख प्राप्त होने पर पुण्य का फल मानकर आनंदित होते हैं।

वह अयोध्यानगर, (प्राणियों के) शरीरों से निःश्वास के साथ बाहर न निकलनेवाले प्राणों के व्याकुल होने से, मनोहर शोभा के मिट जाने से, अत्यधिक पीडा कारक दुःख के बढ़ने से तथा न मिटनेवाली पंचेंद्रियों के अस्त-व्यस्त होने से, उन (दशरथ) के समान ही लगते थे, जो (राम के विरह में) अपने प्राण छोड़ रहे थे।

इस प्रकार, जब उस नगर के लोग अत्यन्त कातर होकर पीडित हो रहे थे, कहीं झुण्ड बाँधकर खड़े थे और कहीं बुद्धिभ्रष्ट हो रोते हुए पीछे-पीछे चल रहे थे, तब राम, जो संचरणमान विविध प्राणियों की एक आत्मा के समान थे, उज्ज्वल आभरण-भूषित स्तनवती जानकी के आवास में जा पहुँचे।

ज्यों ही सीता ने वल्कलधारी राम को एवं उनके पार्श्वों में माताओं, मुनियों, ब्राह्मणों और राजाओं को रोते हुए तथा धूलि-भरे शरीरों के साथ आते हुए देखा, त्यों ही वह चित्र-प्रतिमा जैसी सुन्दरी, स्तब्ध होकर उठ खड़ी हो गई।

इस प्रकार उठकर खड़ी होनेवाली उन सीता का आलिंगन करके उनकी सासों ने उन्हें अंजन-अंचित नयनों के नूतन नीर में नहलाया। तब जानकी, जो उस परिस्थिति का कारण नहीं जानती थी, व्याकुल चित्त के साथ अपनी विशाल आँखों से राम को देखकर अश्रु-धारा बहाती हुई—

और विद्युत् के समान काँपती हुई बोली—हे स्वर्णवीर-वलयधारी! इस दुःख का कारण क्या है? क्या कीर्त्तिमान् चक्रवर्त्ती को कुछ विपदा हुई है? क्या हुआ? बताइए।

राम ने सीता से कहा—मेरा उपमा-रहित भाई (भरत) राज्य करेगा। अपने आश्रयभूत गुरुजनों की आज्ञा से, मैं मेघों से भरित घने वन में जाऊँगा और उस वन को देखकर फिर लौट आऊँगा। तुम दुःखी मत होओ।

'पति राज्य के अधिकार से वंचित हो गये और वन-गमन करनेवाले हैं'—इस विचार से सीता दुःखी नहीं हुई। किन्तु 'तुम दुःखी मत होओ, मैं जा रहा हूँ'—राम का यह कठोर वचन ही (सीता को) अत्यन्त पीडित कर रहा था।

जब विष्णु भगवान् 'धर्म मिट जायगा, उसकी रक्षा करनी है।'—इस विचार से क्षीरसागर में अपने पर्यंक को छोड़कर अयोध्या में अवतीर्ण हुए थे, तब लक्ष्मी देवी भी

(सीता के रूप में) अवतीर्ण होकर उनसे वियुक्त रहने लगी थीं ; ऐसी वह (सीता) क्या इस वचन को सह सकती कि राम उसको छोड़कर चले जायेंगे ?

राम की उक्ति को सोच-सोचकर सीता ऐसी व्याकुल खड़ी रहीं, जैसे उसके प्राण ही निकल रहे हों। फिर, वह बोलीं कि माता-पिता की आज्ञा का पालन करने का निश्चय अत्यन्त उचित ही है, किन्तु मुझे किस कारण से (अयोध्या में ही) रहने को कह रहे हैं ?

तब राम ने कहा—शीतल अलक्तक-रस से अलंकृत तुम्हारे मृदुल चरण इस योग्य नहीं हैं कि राक्षस जैसे लगनेवाले पर्वतों में, पिघली हुई लाख जैसे उष्ण पत्थरों पर तुम चलो।

यह सुनकर सीता ने उत्तर दिया—आप मेरे प्रति कृपाहीन और प्रेमहीन होकर मुझे छोड़कर जाने की बात कह रहे हैं, (आप के विरह में उत्पन्न होनेवाले) इस ताप के सामने प्रलयकालीन सूर्य का ताप भी कुछ नहीं होगा। वह विशाल अरण्य क्या आपके विरह से भी अधिक तापजनक है ?

प्रभु ने सीता के वचनों को सुना और साथ ही उन (सीता) के मन को भी पहचाना ; वे यह भी नहीं चाहते थे कि सीता अपने नेत्रों से अश्रु-समुद्र को प्रवाहित करती रहे। इसलिए, वे सोचते खड़े रहे कि अब मेरा कर्त्तव्य क्या है।

उस समय, सीता अपने विशाल प्रासाद के भीतर गईं। अपने योग्य वल्कल-वसन धारण करके विचार-मग्न प्रभु के निकट आकर उनके तालवृक्ष जैसे दीर्घ कर को पकड़कर खड़ी हो गईं।

सीता का वह कार्य देखकर सब लोग धरती पर गिर पड़े। फिर भी मर नहीं गये। जब आयु के दिन अभी शेष थे, तब वे कैसे मर जाते ? जिनकी आयु समाप्त नहीं होती, वे युगान्त के समय में भी जीवित ही रहते हैं।

सीता को देखकर, माताएँ, बहिनें, साथिनें, सखियाँ—सब जैसे अग्नि की ज्वाला में गिर पड़ीं। तब कमलनयन रामचंद्र सीता के प्रति कहने लगे—

कुंद और मुक्ता को परास्त करनेवाले उज्ज्वल दाँतों से युक्त, हे देवि ! वन-गमन से होनेवाले कष्टों को तुम नहीं जानती हो। मेरे साथ चलने को सन्नद्ध हो गई हो, अतः तुम मेरे लिए अपार दुःख उत्पन्न कर रही हो।

क्षत्रिय-वंश के श्रेष्ठ राम के यह कहने पर कोकिल को परास्त करनेवाली मधुर वाणी से युक्त सीता, कोप के साथ बोलीं—आपको मेरे कारण ही संकट उत्पन्न होता है ; कदाचित् मुझे छोड़कर जाने में आपको सुख ही सुख है।

तब उदार गुणवाले राम कुछ उत्तर नहीं दे सके और सीता को साथ लेकर उस वीथी में, जहाँ नर-नारी, अश्रु-प्रवाह के कारण खेत के जैसे कीचड़ से भरी धरती पर पड़े थे, चलकर बड़ी कठिनाई से आगे बढ़े।

राम आगे-आगे जा रहे थे, उनके साथ सीता वल्कल पहने पीछे-पीछे जा रही थीं और उनके पीछे दृढ धनुर्धारी लक्ष्मण जा रहे थे। उस दृश्य को देखकर, उस नगर के लोगों को जो दुःख हुआ, उसका वर्णन करना संभव नहीं है।

उस समय कोई भी अमंगल उत्पन्न करने के कारण रोये नहीं। सब व्याकुल चित्त

के साथ यह सोचकर कि राम के पहले ही हम वन में पहुँच जायेंगे, कोलाहल-ध्वनि बढ़ाते हुए, आगे बढ़ चले।

विजयमाला से भूषित भाले को धारण करनेवाले रामचंद्र अपने पिता के सौध-द्वार पर पहुँचे। वहाँ अपनी माताओं के प्रति कर जोड़कर विनती की कि आप लोग यहीं रहकर चक्रवर्त्ती को सांत्वना दें। यह सुनकर माताएँ मूर्च्छित होकर गिर गईं।

संज्ञा लौटने पर उन्होंने गद्‌गद कंठ से पुत्र (राम) को आशीष दिये। पुत्र-वधू की प्रशंसा की। कनिष्ठ कुमार (लक्ष्मण) की प्रस्तुति की और देवताओं से प्रार्थना की कि हे कुल-देवताओ ! इनकी रक्षा करना।

उन माताओं के बड़ी कठिनाई से हटने पर, राम ने मुनिवर वसिष्ठ को प्रणाम किया। फिर, स्वयं अपने प्राण-समान भाई और सीता के साथ एक रथ पर आरूढ होकर चल पड़े। (१—२४०)



अध्याय ५

तैल-निमज्जन पटल

विशाल सेना से युक्त चक्रवर्त्ती से कभी वियुक्त न होनेवाली उनकी पत्नियाँ, (राम के साथ न जाकर) रुक गईं। उस दिव्य नगर में स्थित चित्र भी प्राणहीन होने के कारण (जाने से) रह गये। इनको छोड़कर, पिता की आज्ञा से (वन) जानेवाले राम के साथ न जानेवाला वहाँ कोई नहीं रहा।

वह स्वर्णमय रथ, उसके चारों ओर उष्ण अश्रु-जल के प्रवाहित होने से, धीरे-धीरे चल रहा था और उस दिव्य मत्स्य (विष्णु के मत्स्यावतार) के समान लगता था, जिसने सप्त लोकों को एक करनेवाले महान् समुद्र के जल में संचरण करके संसार के प्राणियों का उद्धार किया था।

सूर्य मानों राम को वन जाते हुए नहीं देखना चाहता हो, (इसलिए) वह पर्वत के मध्य जा छिपने के लिए त्वरित गति से बढ़ चला। तब गायें और भैंसे अपने गोष्ठों में आकर प्रविष्ट हुईं। धूप मिट गई और नक्षत्र चमकने लगे।

कमलभव ब्रह्मा के द्वारा चन्द्र के खंडों को लेकर निर्मित उज्ज्वल ललाटवाली सुन्दरियों के वदन के समान कमल-पुष्पों के समूह, अश्रुजल-रूपी मद्य के प्रवाहित होने से शोभाहीन होकर मुँह झुकाये खड़े रहे।

संध्याकाल में सूर्य के अस्तंगत होने से आकाश-प्रदेश, मंथरा के वचन-रूपी विष से विकृत हुए कैकेयी के मन के समान ही, अपनी अरुणिमा को (प्रकाश को) छोड़कर अन्धकार से भर गया।

सर्वत्र नक्षत्रों से प्रकाशमान नील वर्ण आकाश, इन्द्र की देह के समान लगता था, (देह) मुनिवर (गौतम) के द्वारा दुःख के साथ दिये गये शाप के प्रभाव से अनेक अनिमेष नयनों से युक्त हो गई थी।

राम उस अयोध्यानगर को छोड़कर शीघ्र गति से दो योजन दूर पारकर गये और सुगन्ध-भरे एक उद्यान में पहुँचे। वहाँ उतरकर अपने मित्र-समान अनेक मुनियों के साथ विश्राम करने लगे ; तब—

राम का विरह न सहकर उनके साथ आई हुई जनता एक योजन-पर्यंत प्रदेश को घेरकर पक्षियों से भरे उस उपवन के बाहर इस प्रकार फैली पड़ी रही कि तिल रखने के लिए भी वहाँ स्थान नहीं रहा।

वे लोग मुँह में रखकर न कुछ खा रहे थे, न सो रहे थे, पर मन में कुढ़कर सिसक-सिसककर रो रहे थे। उत्तम रत्न जहाँ बिखरे पड़े थे, ऐसे नदी-तट पर सैकत-राशियों और हरियाली पर वे (विकल होकर) लोट रहे थे।

जलाशय में विकसित कमल-पुष्प के मध्य जैसे सुगंध-भरे सद्योविकसित नील उत्पल खिले हों, वैसे नेत्रों से तथा कस्तूरी-गंध से युक्त केशों से शोभायमान सुन्दरियाँ, धूम से आवृत दूध के फेन-जैसे वस्त्रों को ही शय्या बनाकर सो गईं।

कमल-कोरक-समान स्तनों, तीक्ष्ण शर-समान नेत्रों तथा इक्षु रस-समान मधुर वाणी से युक्त कन्याएँ, दिन-भर की बड़ी थकावट के कारण, नारिकेल-फल के जैसे स्तनों से युक्त अपनी धाइयों की गोद में ही पड़ी-पड़ी सो गईं।

(कभी) मांस से रहित न होनेवाले (अर्थात्, सदा शत्रुओं के मांस से युक्त) 'कुंत' नामक शस्त्र धारण करनेवाले वीर युवक, सिकता-राशियों से भरे प्रदेश में, आम के टिकोरे के समान नेत्रोंवाली अपनी यौवनवती पत्नियों के साथ, हथसार में बँधे हुए छोटी आँखोंवाले मत्तगज के समान सोये पड़े थे।

कुछ युवतियाँ जो सद्गुणों तथा (पातिव्रत्य के) तप से संपन्न थीं और अपने पति के मुखों के दर्शन तथा उनकी करुणा से तृप्त रहती थीं, अब अत्यधिक दुःख के कारण, जैसे नृत्यशील मयूर निष्प्राण हो पड़े हों, उसी प्रकार सो रही थीं और उनके शिशु उनके स्तन-चूचुकों पर अपने करों को फेरते हुए दुग्ध-पान कर रहे थे।

कुछ स्त्रियाँ माधवीलता के कुंजों में, नक्षत्र-भरे आकाश के समान उज्ज्वल, नील-रत्नमय सैकत वेदी पर, मयूरों के विशाल झुण्ड के समान सोई पड़ी थीं। कुछ स्त्रियाँ क्रमुक-वन के मध्य स्थित जलाशय के निकटस्थ सैकत प्रदेश पर हंसिनियों की श्रेणी के समान पड़ी थीं।

कुछ स्त्रियाँ चंपक-पुष्पों के सुगन्धित उद्यानों में इस प्रकार शिथिल पड़ी थीं, जैसे तरुण लताएँ छिन्न होकर मुरझाई पड़ी हों और कुछ स्त्रियाँ कंचुकों में बँधे स्तनों के साथ सिकता-राशियों पर फैली हुई प्रवाल-लताओं के समान प्रज्ञाहीन हो सो रही थीं।

कुछ स्त्रियाँ इस प्रकार सो रही थीं कि उनके पीन स्तनों पर धूल लग गई थी, जैसे कुंकुम-पुष्पों से भरे पर्वत पर ओस छाई हुई हो। कुछ स्त्रियाँ अपने हाथ का सिरहाना

बनाकर यों सो रही थीं कि उनके वदन कांतिहीन होकर, कुम्हलाकर, मुकुलित हुए कमल के समान लगते थे।

कुछ, पथ-गमन के श्रम से चूर होकर, फैले हुए पत्थरों पर पड़ी सो रहीं थीं। कुछ नीचे पड़े पत्तों की राशि पर बेसुध पड़ी सो रही थीं। कुछ, अपने वस्त्र का एकभाग मात्र पहनकर शेष भाग को बिछाकर उस पर सो रहीं थीं। कुछ पल्लवों को बिछाकर उनपर शिथिल हो पड़ी थीं।

जब सब लोग इस प्रकार पड़े सो रहे थे, तब (वैवस्वत) मनु के वंश में उत्पन्न राम ने सुमंत्र को अपने निकट बुलाया और उससे कहा—तुम दोषहीन हो और सब गुणों के आगार हो। तुम्हें एक काम करना है। सुनो—

मुझपर गाढ प्रेम रखनेवालों को लौटाकर भेजना कठिन है। इनको यहाँ से भेजे बिना मेरा यहाँ से चला जाना भी उचित नहीं है। अतः, हे पितृ-तुल्य ! तुम अभी इस रथ को लौटाकर ले चलो। रथ के चिह्न को देखकर सब लोग यह समझेंगे कि मैं अयोध्या को लौट गया हूँ। इससे सारी जनता नगर को वापस चली जायगी। तुमसे यही मेरी प्रार्थना है।

सद्गुणों से पूर्ण राम के यों कहने पर रथ चलाने में चतुर सुमंत्र ने कहा—इस स्थान में तुम्हें छोड़कर और अपने प्यारे प्राणों को रखकर मुझे उस अयोध्यानगर में, वहाँ की दुःखपूर्ण दशा को देखने के लिए जाना है। मैं उस क्रूर माता और कठोर नृपति से भी अधिक कठोर हूँ।

लोहे के समान हृदयवाला मैं, वहाँ जाकर क्या कहूँगा ? क्या यह कहूँगा कि राम को, अनकी पत्नी तथा भाई के साथ पुष्पों से भरे उद्यान में जाने के लिए छोड़ आया हूँ ? या यह कहूँगा कि राम को साथ लेकर अयोध्या को लौट आया हूँ ?

क्या यह कहूँगा कि पुराना मित्र तथा दोषहीन आचरणवाला मैं, माला के योग्य कोमल पुष्पों पर भी चलने में अशक्त (अर्थात्, अति सुकुमार), कंचुक से बँधे स्तनोंवाली सीता के साथ दोनों बलवान् कुमारों को कठोर धरती पर चलने के लिए उतारकर, स्वयं रथ पर लौटकर चला आया हूँ ?

क्या कठोर इन्द्रियों तथा शिला-जैसे मनवाला वंचक मैं, टूटे हृदय तथा शिथिल गात्र से पीडित होनेवाले चक्रवर्त्ती के निकट दक्षिण दिशा के अधिपति यम के दूत के समान जाऊँ ? क्या मैं तुमसे यह निवेदन कर सकता हूँ कि तुम अपनी सद्बुद्धि से कोई योग्य वचन मुझे बताओ (जिसे मैं अयोध्या में चक्रवर्त्ती को सुना सकूँ)।

हे प्रभु ! 'चारों दिशाओं के निवासी तथा नगर की प्रजा राम को समझा-बुझाकर अयोध्या लौटा ले आयेंगे'—यों कहकर चिंतित चक्रवर्त्ती को स्वस्थ किया गया था। अब क्या मैं कठोर यम-सदृश वचन से उनके प्राणों का हरण करूँगा ?

क्या मैं उनको यह सुनाऊँगा कि अग्नि में यज्ञ करके, बड़ी कठिनाई से प्राप्त किये गये आपके सिंह-सदृश पुत्र, अरण्य में चले गये हैं ? ठीक विचार करने पर जान पड़ता है कि चक्रवर्त्ती को इस कठोर वचन को सुनानेवाले मेरे जैसे व्यक्ति से तो वह कैकय-राजपुत्री ही अच्छी है।

इस प्रकार अंतिम प्रार्थना करने पर भी सुमंत्र को वज्र का घोष ही (अर्थात्, मैं नहीं लौटूँगा) सुनाई पड़ा, जिससे अत्यंत व्याकुल होकर तड़पनेवाले सर्प के समान व्याकुल होकर सुमंत्र राम के चरणों को पकड़कर धरती पर लोट गया और विविध वचन कहकर रोने लगा।

तब उन राम ने, जो निग्रह करने योग्य इन्द्रियों तथा मन के लिए अगोचर, पर परिशुद्ध बुद्धि के लिए गोचर है, अपने विशाल हाथों से उठाकर उस सुमंत्र को गले लगा लिया और उसके अश्रुओं को पोंछकर पृथक् ले जाकर उससे कहा—

इस संसार में हमारा जन्म हुआ है। उस (जन्म) के साथ घटित होनेवाली सब बातों को, उचित बुद्धि से, सोचकर समझने की शक्ति तुम रखते हो। यह सोचकर कि विपदा उत्पन्न हुई है, क्या तुम असाधारण रूप से उत्पन्न होनेवाले अपयश को एवं धर्म के तत्त्व को भूल जाओगे ?

श्रेष्ठ धर्म सब कार्यों से आगे रहकर यश को स्थिर बनाता है और मृत्यु के पश्चात् भी शाश्वत फल प्रदान करता है। ऐसे धर्म का आचरण करते समय, क्या यदि सुख हो, तो हम उसका आचरण करेंगे, पर यदि कष्ट हो, तो क्या उस (धर्म) को छोड़ देना उचित होगा ?

शत्रुओं के उज्ज्वल शस्त्रों को वीरता के साथ अपने वक्ष पर सहन करना शूरता नहीं है। मृत्यु का भी सामना होने पर, अथवा सारी संपत्ति को खोने की आवश्यकता पड़ने पर भी, धर्म का परित्याग न करना ही शूरता है।

(शत्रुओं के) शरीर को भेदकर उसमें स्थित प्राणों के अपहारक भाले को धारण करनेवाले हे राम ! यदि मैं वन-गमन से होनेवाले कष्टों का विचार करके नगर को लौट जाऊँगा, तो क्या वैवस्वत मनु का यह कुल, जिसकी कीर्त्ति स्वर्ग तक फैली हुई है, धर्मच्युत नहीं कहलायगा ?

'आचरण के लिए दुस्साध्य सत्य का अनुसरण करनेवाले चक्रवर्त्ती (दशरथ) ने अपने प्यारे पुत्र को वन में भेज दिया—ऐसी'— प्रख्याति उन चक्रवर्त्ती के लिए एक तपस्या ही होगी और उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करके वन जाना मेरे लिए भी तपस्या ही है। अतः, हे मेरे पितृ-तुल्य ! तुम इससे दुःखी मत होओ।

(नगर में लौटकर) तुम पहले मुनिवर (वसिष्ठ) को नमस्कार करना और मेरे प्रणाम एवं मेरे वचनों को उन्हें सुनाना। उन मुनिवर से यह निवेदन करना कि वे स्वयं चक्रवर्त्ती के पास जाकर मेरा मनोभाव उनसे प्रकट करें।

मुनिवर के द्वारा ही मेरे भाई (भरत) को यह सन्देशा देना कि वह नीति-मार्ग पर दृढ रहकर वेदज्ञ ब्राह्मणों तथा स्वर्गलोकवासियों के लिए हितकारी कार्य करे तथा अपने आचरण से, मेरे वियोग से उत्पन्न सब लोगों के दुःख को दूर करे। फिर, रामचन्द्र ने सुमंत्र से कहा—

तुम (वसिष्ठ मुनिवर से) यह कहना कि इस समय मेरे मन को यह बात किंचित् भी पीडा नहीं दे रही है कि मेरी छोटी माता के कारण एक बड़ा दुःख मुझे उत्पन्न हुआ है।

अतः, मेरे प्रति उनकी जैसी कृपा है, वैसी ही कृपा उस (कैकेयी अथवा भरत) पर भी रखें।

तुम यहाँ से लौटकर महान् तपस्वी (वसिष्ठ) के साथ राजप्रासाद में जाओ और मेरे पिता के अपार दुःख को शांत करने का उपाय करो। उन चक्रवर्ती की कृपा मेरे उस भाई (भरत) पर भी बनी रहे, ऐसा उपाय करो—यही मेरी प्रार्थना है।

मुखपट्ट से भूषित, मदस्रावी हाथियों की सेना से युक्त चक्रवर्ती को वसिष्ठ के द्वारा मेरा यह सन्देश पहुँचा देना कि चौदह वर्ष व्यतीत होने के पश्चात् मैं नगर को लौट आऊँगा और उनके चरणों को प्रणाम करूँगा। वे दुःखी न हों।

मेरी तीनों माताओं को क्रम के अनुसार मेरा प्रणाम पहुँचाना। फिर, चक्रवर्ती के दुःख को शांत करते हुए उनके निकट रहना—इस प्रकार राम ने, जो वेदों के लिए भी अज्ञेय हैं और अब वन में जाकर रहते हैं, सुमंत्र से कहा।

अनुपम महान् रथ को चलाने में समर्थ सुमंत्र ने, यह विचार कर कि दासता से विमुख होना एक सेवक का कर्त्तव्य नहीं है, राम के चरणों पर नत हुआ। फिर, यह सोचकर कि पूर्व कर्मों के कारण हमें दुःख भोगना पड़ता है, भाले-जैसे नेत्रवाली जानकी को नमस्कार करके उनकी ओर देखा।

तब सीता ने (सुमंत्र से) कहा—चक्रवर्ती को तथा सासों को मेरा नमस्कार कहना। फिर, मेरी प्यारी बहनों से कहना कि सोने के रंगवाली मेरी सारिका को और तोते को सावधानी से पालें।

सीता के वचन सुनकर, सारथि (वनवास से) अधीर न होनेवाली उन (सीता) के दुःख का विचार करके व्यथित हुआ, और यह कहता हुआ कि 'विपदा उत्पन्न होने पर उसे दूर करने में कौन समर्थ होता है और प्राण छोड़ना भी सुगम नहीं है'—पहले भीतर-ही-भीतर व्याकुल हुआ, फिर ऐसा रो पड़ा कि महावीर राम के समझाने पर भी वह शान्त नहीं हुआ।

सदा स्थिर रहनेवाले प्रेम से युक्त सुमंत्र, अपने दुःख से किंचित् शान्त-सा होकर राम को पुनः-पुनः नमस्कार करके उनसे विदा हुआ। फिर लक्ष्मण से उसने पूछा कि आपका क्या सन्देश है।

तब लक्ष्मण ने उत्तर दिया—जिन सत्यसंध ने, पहले मेरे भाई को राज्य देने का वचन देकर पुनः सारी संपत्ति को सुगन्धित केशोंवाली एक नारी को दे दिया, उनको चक्रवर्ती मानकर क्या अब भी कोई संदेश देना उचित होगा?

फिर भी, उन असत्यहीन चक्रवर्ती से, जो अपने ज्येष्ठ पुत्र के वन में जाकर कंद-मूल खाते रहते समय, स्वयं राजोचित भोजन करते रहते हैं, यह कहना कि उनके शरीर में स्थित प्राण इस संसार को छोड़कर अभी तक स्वर्ग नहीं गये, अतएव मैं उनकी दृढ़ता की प्रशंसा करता हूँ।

उज्ज्वल करवालधारी राजा भरत से कहना—मैं, राजा होने के अधिकारी मेरे-प्रभु (राम) का भाई (होने योग्य) नहीं हूँ (क्योंकि मैं अपने पिता से लड़कर उन्हें राज्य नहीं दिलवा सका)। राज्य का शासन करनेवाले उस भरत का भी भाई नहीं हूँ

तथा उस शत्रुघ्न को भी अपना अनुज नहीं मानता हूँ। मैं केवल एकाकी ही जन्मा हूँ। मेरा बल किंचित् भी कम नहीं है।

इस समय आर्य (राम) ने अपने भाई को देखकर कहा—हे तात! ऐसे अशोभनीय वचन कहना उचित नहीं। तब सारथि अपने मन में व्यथित होकर धरती पर गिरकर उनको प्रणाम करके रथ की ओर बढ़ा।

सुमंत्र ने रथ-रूपी यंत्र को ठीक किया। उसमें घोड़े जोते। सबकी दृष्टि में साफ सिखाई देनेवाले मार्ग से अपने रथ को लौटाकर ले चला। उसने निपुणता से रथ को ऐसे चलाया कि कोई भी व्यक्ति निद्रा से नहीं जग सका।

उस अर्धरात्रि में, प्रभु (राम) भी देवी का पातिव्रत्य, अपनी उदारता, कलंक-हीन कृपा, विवेक, सत्य, कार्य में निपुण अपने धनुष तथा अनुज (लक्ष्मण), इन सबको साथ लेकर चल पड़े।

तब दिव्य प्रकाश से युक्त चंद्रमा ऐसे उदित हुआ, मानों मायावी जीवन व्यतीत करनेवाले राक्षसों का साथी बनकर उनके क्रूर कार्यों में सहायता देनेवाले तथा राम-लक्ष्मण के (वन-गमन में) विघ्न-सा बने हुए, अंजन सदृश अंधकार को भगाने के लिए आकाश ने अपने हाथ में दीपक ले लिया हो।

वह अनुपम शीतल चंद्रमा इस प्रकार प्रकाशित हुआ, जैसे उस धर्मदेवता का प्रसन्न मुख हो, जो उसके प्राणों का विनाश करनेवाले पाप को मिटाने में समर्थ, वज्र-सदृश धनुष से युक्त राम-लक्ष्मण को वन-गमन के लिए सहमत करनेवाले सुकृत का विचार करके बड़ी प्रसन्नता से उन (राम-लक्ष्मण) के दर्शनार्थ वहाँ आया हो।

ऊँचे बढ़े हुए बाँसों से युक्त उस वन में पैदल चलनेवाले राम की दुःख-दशा को देखकर, दुःखी होकर ही मानों रक्त-कमल मुकुलित हुए थे। कुवलय-पुष्प भी सर्प के सिर का रूप धारण कर पीडित हो झुके थे। अब दूसरे पुष्पों के बारे में कहने की आवश्यकता ही क्या है?

चंद्रमा अपनी चंद्रिका फैला रहा था, मानों इस विचार से कि धनुष जैसी भौंहों-वाली (सीता) के मृदुल चरणों को चलने में क्लेश न हो। उसने कानन में सफेद रूई बिछा दी हो। उस प्रकाश में अंजनपर्वत-सदृश सुन्दर पुरुष (राम) तथा वह कनिष्ठ भ्राता—जो ऐसा था, मानों प्रभु (राम) को उत्तम स्वर्ण के आवरण से आवृत कर रखा हो—धीरे-धीरे पग बढ़ाते हुए चले।

क्षीण कटि से पीन स्तनों का भार वहन करनेवाली, लक्ष्मी कहलानेवाली तथा घने केश-भार से युक्त सीता, जल के बुद्बुदों से भी अधिक मृदुल अपने छोटे चरणों को रखती हुई रामचन्द्र के पीछे-पीछे चली। क्या कलंक-रहित प्रेम से भी बढ़कर दृढ कोई वस्तु हो सकती है?

सूर्य के उदयाचल पर आने के पूर्व, लक्ष्मी के पति (राम) दक्षिण दिशा में दो योजन दूर चले गये। अब उस सुमंत्र के संबंध में कहेंगे, जो निर्झर-जैसे बहते नयन, आहत मन तथा अकेलापन साथ लिये तीव्रगामी अश्व-जुते रथ पर चला था।

पाँच घड़ी के अन्दर वह (सुमंत्र) प्राचीरों से सुरक्षित अयोध्यानगर में आ पहुँचा और जाकर कुलगुरु (वसिष्ठ) के चरणों पर नत हुआ। वे मुनिवर भी सब वृत्तांत सुनकर व्यथित-चित्त हुए और भविष्य को जानकर बोले—हाय! चक्रवर्त्ती के प्राण अब गये।

मुनिवर यह कहते हुए कि उदारगुण दशरथ स्थायी रहनेवाले अपवाद के डर से (राम को) रोक नहीं सके। धर्म की रक्षा करनेवाले राम ने मेरे कथन को भी माना नहीं। नियति को कौन जीत सकता है? इस प्रकार रोते हुए वे सुमंत्र के साथ राजप्रासाद में गये।

मंत्रिगण यह सोचकर कि राम रथ पर लौट आये हैं—चंद्र के चारों ओर परिवेषण के समान दशरथ को घेरकर आये। किन्तु, वहाँ राम को न देखकर और अजस्र अश्रु धारा बहानेवाले सुमंत्र की दशा को देखकर अपने आनन्द को भूल गये।

'रथ आ गया'—यों वहाँ के सब लोग बोल उठे। उसे सुनकर और यह सोचकर कि राम आ गये, दशरथ मूर्च्छा से उठे। कमल-समान अपने नेत्र खोलकर देखा। फिर अपने सम्मुख महान् तपस्वी (वसिष्ठ) को देखकर उनसे पूछा—क्या महावीर (राम) लौट आया?

मुनिवर, 'नहीं आये' कह सकने में असमर्थ हो अत्यंत विकल होकर चुपचाप रहे। सद्गुणों से पूर्ण मुनिवर का मुख सूचित कर रहा था कि राम नहीं लौटे। तब दशरथ फिर मूर्च्छित हो गये। मुनिवर दुःखी होकर यह कहते हुए कि मैं चक्रवर्त्ती की पीडा को नहीं देख सकता, वहाँ से दूर हट गये।

तब चक्रवर्त्ती ने अपने सारथि को देखकर पूछा—मेरा वत्स (राम) दूर है या समीप में है? उत्तर में सुमंत्र ने ज्योंही यह कहा कि वे उनके अनुज तथा मिथिला में उत्पन्न लक्ष्मी-सदृश देवी तीनों सीधे बढ़े हुए बाँसों से भरे वन में गये, त्योंही दशरथ के प्राण भी शरीर को छोड़कर निकल गये।

उस समय, उस स्थान पर, इन्द्र आदि सब देवता आकर एकत्र हुए और यह सोचकर आनन्दित हुए कि हमारे पिता (विष्णु) के पिता हमारे निकट आनेवाले हैं। उन्होंने चंद्र समान एक अनुपम विमान में उन (दशरथ) को बिठाकर, नारायण के नाभिकमल में उत्पन्न ब्रह्मा के लोक से भी ऊपर स्थित उस (वैकुंठ) लोक में पहुँचाया, जहाँ से पुनरावृत्ति नहीं होती।

उत्तम कुलजात मयूर-सदृश कौशल्या, दशरथ की दशा को देखकर आशंकित हुई और उनकी देह का स्पर्श करके देखा। तब यह जानकर कि इनके प्राण निकल गये, देह स्पंदन-हीन हो गई है, अत्यन्त व्याकुल होकर धरती पर गिर पड़ी और यों तड़प उठी, जैसे कोई अस्थिहीन कीड़ा, कड़ी धूप में पड़कर तड़प उठा हो।

वह कौशल्या, जिन्होंने ब्रह्मा प्रभृति सारी सृष्टि के कारणभूत विष्णु को पुत्र के रूप में प्राप्त करने का बड़ा सुकृत किया था, अब पति के वियोग से इस प्रकार विकल होकर विलाप करने लगी, जैसे चन्द्रमा ने अमृत को खो दिया हो, जैसे कोई नाग अपने माणिक्य को खोकर मूर्च्छित हुआ हो और जैसे क्रौंची अपने साथी को खोकर रो पड़ी हो।

जिनको कुछ कमी नहीं थी, ऐसे दशरथ हम पर कृपाहीन होकर अब हमें छोड़कर चले गये। मृत्यु के कारणभूत किसी व्याधि के बिना ही मर गये। यों कहकर वे (कौशल्या) इस प्रकार तड़पकर गिरीं, जैसे आकाश से वर्षा के न गिरने से किसी सूखनेवाले जलाशय में रहनेवाली मछली तड़पती हो।

जो पुत्रवान् होते हैं, उनको एक ही सुख नहीं, अनेक सुख मिलते हैं। वे अपने पितरों को नरक से मुक्त करते हैं। इस लोक में अपने माता-पिता के जीवन की रक्षा करते हैं। जो पुत्र पाकर जीवन व्यतीत करते हैं, उनको कोई विपदा उत्पन्न नहीं होती; किन्तु मेरा पुत्र (राम) तो यहाँ आकर यह नहीं कह रहा है कि तुम डरो नहीं, (इसके विपरीत) वह अपने पिता की मृत्यु का कारण बन रहा है। यों कहती हुई कौशल्या कातर होकर बिलखने लगीं।

हाय! दशरथ को, किसी व्याधि से या युद्ध में भाले, करवाल आदि शस्त्र से मृत्यु नहीं मिली। किन्तु अपने जाये पुत्र से ही मृत्यु प्राप्त हुई (अर्थात्, अपना प्यारा पुत्र ही मृत्यु का कारण बना)। अहो, केकंडा, मोती की सीप, फल देनेवाले केले का पेड़ और बाँस के जैसे दशरथ भी (अपने जाये पुत्र के कारण ही) मृत्यु-ग्रस्त हो गये। यों कहकर वह मूर्च्छित हो गिरीं।

मेघ के मध्य कौंधनेवाली बिजली के समान दशरथ के वक्ष पर गिरकर बिलखनेवाली कौशल्या कहने लगीं, मनोहर दीर्घ केशों से युक्त कैकेयी! बुद्धि की चातुरी से तुमने राज्य प्राप्त किया। अपरिवर्त्तनीय वचन तुमने प्राप्त किये। तुमने एक साथ अपने सारे मनोरथ पूर्ण कर लिये, अहो![1]

अनुपम गजराज से वियुक्त होकर, गहरे प्रेम के कारण विकल होनेवाली हथिनी के समान कौशल्या कहने लगीं—हे राजन्! तुमने पूर्वकाल में एक अपूर्व रथ में बैठकर शंबरासुर के युद्ध में उसे निहत किया था। तुम्हारी कृपा से देवता लोग सुखी हुए थे। आज तुम स्वयं उन (देवों) के अतिथि बन गये।

वह कौशल्या, जिन्होंने राम को जन्म दिया था, जिससे देवता लोग भी श्रुति (अर्थात्, वेद) के सारभूत परमपुरुष के दर्शन कर सके, कहने लगी—हे राजन्! तुम क्या अपने पूर्व अनुष्ठित यज्ञों के फल भोगने के लिए गये हो? या सत्य का व्रत लेने से उत्पन्न निःश्रेयस् का अनुभव करने के लिए गये हो? या श्रेष्ठ मनु द्वारा प्रतिपादित धर्म-मार्ग पर चलने से प्राप्त परमसुख का अनुभव करने के लिए गये हो?

जब चक्रवर्त्ती की पत्नियों में पट्टमहिषी कौशल्या इस प्रकार के वचन कह-कहकर विलाप कर रही थी, उसी समय, उनकी सहेली जैसी सुमित्रा भी विकलता से रोती हुई बेसुध पड़ी रही। सारे अन्तःपुर में ऐसी दशा थी, जैसे युगान्त आ गया हो। आम के टिकोरे-जैसे नयनोंवाली (दशरथ की) अन्य देवियाँ भी आकर एकत्र हो गईं और बड़ा कातर शब्द करके रो पड़ीं।

१. अन्तिम पंक्तियों में यह भाव ध्वनित हुआ है कि अपने पति को मारने की तुम्हारी इच्छा भी पूरी हो गई।

उन्होंने अपने प्राणों के साथी को मृत पड़े हुए देखा, तो वे भय के कारण विष-पान किये हुए व्यक्ति के जैसे कंपित हो उठीं। उन्होंने अपने मन में ठान लिया कि निष्कलंक गुणवाले दशरथ का अनुसरण करके देवलोक में जाना ही उत्तम है। इसलिए, भय और व्याकुलता के उत्तरोत्तर बढ़ते रहने पर भी वे मूर्च्छित हो नहीं गिरीं (अर्थात्, दशरथ का सहगमन करने का दृढ निश्चय करके धीरता के साथ खड़ी रहीं) अहो! क्या प्रेम से भी बढ़कर कठोर वस्तु कुछ है?

कलंकहीन चन्द्र-जैसे मुखवाली वे देवियाँ ऐसी खड़ी थीं कि समुद्र से आवृत धरती में, देव-लोक में, उससे परे स्थित अन्य लोकों में भी पातिव्रत्य से युक्त स्त्रियों में इन देवियों से बढ़कर कोई नहीं थीं। अरण्य की किसी नदी की धारा से पर्वत के घिर जाने पर, उसके शिखर के अंचल पर एकत्र होनेवाले मयूरों के समूह के समान उन देवियों का समूह स्थिर खड़ा था।

अपने पुत्र से वियुक्त होकर तथा अत्यन्त पीडाजनक कड़वे वचनों से अपने प्राण त्यागकर भी अन्त तक सत्य पर दृढ रहनेवाले चक्रवर्त्ती की देह को वे स्त्रियाँ पकड़े हुए रो रही थीं। वे ऐसी थीं, मानों मोहजनक माया-रूपी मकरों से भरे जीवन-रूपी समुद्र के पार (एक व्यक्ति को) पहुँचाकर लौटी हुई नौका में स्वयं भी जाने का प्रयत्न कर रही हों?

इस प्रकार जब साठ सहस्र देवियाँ रो रही थीं तथा निष्कलंक गुणवाली कौशल्या तथा सुमित्रा विकल हो मूर्च्छित पड़ी थीं, तब रत्नमय रथ का सारथ्य करनेवाले सुमंत्र ने जाकर मुनिवर (वसिष्ठ) को दशरथ की दशा का समाचार दिया। वे वेदज्ञ मुनि तुरन्त आये और विधि के विधान के बारे में सोचते हुए दुःख-मग्न हो रहे।

मुनिवर यह सोचकर कि हमारे चक्रवर्त्ती वर देकर पुत्र से वियुक्त होने के दुःख से अब मुक्त हो गये, चिन्तित हुए। तरंगों से क्षुब्ध सागर में किसी नौका के टूट जाने और उस नौका के नायक के मर जाने पर किंकर्त्तव्यविमूढ हो रहनेवाले पतवार चलानेवाले व्यक्ति के समान वे (किंकर्त्तव्यविमूढ) हो रहे।

संस्कारादि क्रियाएँ सम्पन्न करने के लिए यहाँ कोई पुत्र नहीं है। जो घटित होना है, वह अवश्य घटित होगा ही। अब क्या किया जाय? यों विचार करके फिर यह निश्चय किया कि भ्रांति में पड़ी क्रूर कैकेयी के पुत्र (भरत) के आने पर सब अंतिम क्रियाएँ पूर्ण करेंगे और स्त्रियों के समुद्र-मध्य पड़े दशरथ के शरीर को तेल के समुद्र में निमज्जित करके रखा।

राजा की पत्नियों को देखकर वसिष्ठ ने कहा—जिस दिन इन (चक्रवर्त्ती) के अंतिम संस्कार किये जायेंगे, उस दिन इनकी देह का आलिंगन करके रक्तवर्ण अग्नि-ज्वाला में अपने प्राण छोड़ना। यों उनको वहाँ से हटाकर दोनों पट्टमहिषियों (कौशल्या और सुमित्रा) को कलंकहीन प्रासाद में भेजा। फिर, संदेशवाहकों को यह कहकर कि 'शीतल पुष्पमालाओं से भूषित भरत को जाकर ले आओ', और यह लिखकर कि 'यह चक्रवर्त्ती की आज्ञा है'—भेज दिया।

वे दूत केकय-महाराज के सुन्दर नगर की ओर चल पड़े। अपूर्वज्ञान तथा तपस्या से संपन्न वसिष्ठ ने सेनापतियों में एक चतुर व्यक्ति को देखकर कहा कि तुम आवश्यक राज्य-कार्य पूर्ण करो। फिर, अपने कुल-धर्म के अनुष्ठान के योग्य स्थान में जा पहुँचे। अब हम उस प्रजा की दशा के संबंध में कहेंगे, जो राम के साथ (अरण्य में) जाकर निद्रामग्न हुई थी।

सहस्र उज्ज्वल किरणों से युक्त सूर्य, मानों यह कहता हुआ कि 'उत्तम गुणवान् पुत्र दशरथ स्वर्ग में पहुँच गया, उनके (चारों) पुत्र नगर से बाहर कहीं रहते हैं, उन पुत्रों (भरत और शत्रुघ्न) के आने तक मैं ही इस नगर की रक्षा करूँगा'—प्रकाशमय रथ पर आरूढ होकर उज्ज्वल कर-रूपी करवाल लिये हुए प्रकट हुआ। तब मत्स्यों से पूर्ण समुद्र ने नगाड़े बजाये। देवताओं ने स्तुति-पाठ किया ; संसार के लोगों ने वन्दना की।

राम के पीछे-पीछे आये हुए लोग, जो इस प्रकार दुःखी थे कि उतना दुःखी अन्य कोई नहीं हुआ था, बेसुध होकर निद्रा में डूबे थे और यह सोचकर कि उदारगुण (राम) वहाँ रहते हैं, उसी स्थान में ठहरे हुए थे, सब इस समय जग पड़े। फिर, करुणा से पूर्ण विशाल कमल-सदृश नयनोंवाले घनश्याम राम को कहीं न देखकर विकल हुए और यह कहकर कि कभी न बंद होनेवाले हमारे नेत्रों ने आज बंद होकर हमें धोखा दिया, दुःखी होकर धरती पर लोट गये।

वे लोग राम का अन्वेषण करने के लिए आठों दिशाओं में दौड़ते, किन्तु मार्ग-मध्य गिर पड़ते। यह कहते कि अहो ! हमारे प्रभु हमें दुःख के समुद्र में निमज्जित करके चले गये। उन्होंने कितना क्रूर कार्य किया है। वह घना दंडकारण्य इसी धरती पर है, अपनी बुद्धि से हम उसे ढूँढकर पहचानेंगे। हम यों चुप पड़े नहीं रह सकते। हम उस वन की ओर गये हुए रथ के चक्रों के चिह्नों को पकड़कर आगे चलेंगे।

रथ के चक्रों के चिह्न को खोजते हुए जानेवाले लोगों ने रथ के चिह्नों को अयोध्यानगर की ओर लौटते हुए देखा। उससे उनके प्राण स्वस्थ हुए। वे सोचने लगे कि डरने की आवश्यकता नहीं। प्रभु अयोध्या पहुँच गये हैं। इस पर आनंदित होकर वे यों घोष कर उठे, जैसे वज्रयुक्त आकाश और समुद्र एकत्र होकर शब्द कर उठे हों।

उन नगरवासियों ने विचार किया—वसन्त के साथी मन्मथ के रूप-गर्व को मिटानेवाले राम अयोध्या को लौट गये हैं। उनकी दशा इस प्रकार हुई, जैसे फुफकार करनेवाले सर्प के भयंकर वक्र दंत के दंश से (उनके शरीर में) बहे हुए विष को दूर करने का अपूर्व औषध, 'अमृत' उन्हें मिल गया हो और उससे उनके प्राण स्वस्थ हो गये हों।

ज्यों-ज्यों वे मार्ग में बढ़ते जाते थे, त्यों-त्यों उस रथ के चक्रों का ही चिह्न देखते थे। नगर से इतर अन्य किसी दिशा में उन चिह्नों को न देखकर वे उत्तरोत्तर बढ़नेवाले आनंद से भरकर अपने अयोध्यानगर में उसी प्रकार पुनः आ पहुँचे, जिस प्रकार समुद्र प्रलय-काल में अपनी सीमा को पारकर संसार-भर में बह चलता है और पुनः अपनी सीमा के अन्दर आ पहुँचता है।

नगर में पहुँचने पर उन लोगों ने सुना कि चक्रवर्त्ती स्वर्ग सिधार गये। यह समाचार भी सुना कि दशरथ के स्वर्गवास करने का कारण राम का वन-गमन ही है। तब

उनके हृदय टुकड़े-टुकड़े हो गये और वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े। उनके महान् शोक का वर्णन करना हमारी शक्ति के परे है। प्रत्येक व्यक्ति के प्राणों के निर्गमन के लिए एक समय निश्चित होता है। अतः, वैसा गंभीर दुःख होने पर भी उनके प्राण शरीर को छोड़कर कैसे निकल सकते थे ?

वे चक्रवर्त्ती की कुछ सेवा नहीं कर सके। वन को गये हुए राम के साथ रहकर उनकी कुछ सेवा नहीं कर सके। दुस्सह दुःख-रूपी कारागार में बंदी होकर वे तड़प रहे थे; तब अपूर्व तपस्या से संपन्न वसिष्ठ मुनिवर ने उनको, यह कहकर कि मैं भी तो अपवाद से डरकर इन प्राणों को रखे हुए हूँ और इस शोक का अनुभव कर रहा हूँ, और कई प्रकार से समझाकर उन्हें शांत किया।

मुनिवर की आज्ञा से जलमध्य-स्थित वड़वाग्नि से डरकर वेला को न लाँघनेवाले-समुद्र क समान, नगर के लोग दुःख-सागर में निमग्न हो रहे। अब हम, उदारगुण पिता की आज्ञा, 'देवों के सुकृत' से, अर्धरात्रि में वन-मार्ग पर चलनेवाले दृढ धनुर्धारी राम के कार्यों का वर्णन करेंगे। (१—८७)

●

अध्याय ६

गंगा पटल

'इनके शरीर का रंग अंजन-सा है, या मरकत-समान है, अथवा तरंगों से पूर्ण समुद्र-जैसा है, या वर्षाकालिक मेघ-समान है ?' ऐसा सन्देह उत्पन्न करनेवाले अनुपम तथा अनश्वर सौंदर्य से युक्त रामचन्द्र, 'नहीं है' ऐसा कहने योग्य कटि से युक्त अपनी पत्नी तथा अपने अनुज के साथ इस प्रकार चले कि सूर्य की कांति उनके शरीर से फूटनेवाली किरणों में अदृश्य होने लगी।

भ्रमरकुल-समान और अनुपम काली मिट्टी के समान घने केशोंवाली, क्षीरसागर में उत्पन्न अमृत-जैसी मृदु-मधुर बोलीवाली, पूर्ण तपस्या के समान व्यापारों से युक्त, आकाश (शून्य)-जैसी कटिवाली सीता के साथ, वृषभ-जैसी गतिवाले रामचन्द्र ने मस्त हंसों तथा हंसिनियों के विहार को देखा।

(मन्मथ के) पंच बाणों तथा राम के तीक्ष्ण बाण को भी परास्त करनेवाले तथा विष को जीतनेवाले नयनों से युक्त सीता ने देखा कि रामचन्द्र के चरण, रेखावाले मत्त भ्रमरों की गुंजार से भरे कमलपुष्पों का उपहास कर रहे हैं।

अत्यन्त सुगंध और मकरंद से भरे अलकों से युक्त चन्द्रखंड-सदृश ललाटवाली (सीता) के साथ प्रवाल-समान अधरवाले रामचन्द्र इस प्रकार चले, जैसे उज्ज्वल आभरणों से भूपित कोई मेघ, बिजली के साथ आ रहा हो या कोई मत्तगज, करिणी के साथ आ रहा हो।

छेदवाले वंशी की ध्वनि के समान, तंत्रियों से युक्त वीणा के नाद के समान, पीले मधु के समान और इक्षु-रस के खंड के समान माधुर्य से युक्त तोते की-सी बोलीवाली सीता के नयनों के जैसे लगनेवाले और खेतों को निरानेवाले किसानों के द्वारा खेतों से उखाड़कर फेंके गये कुवलय पुष्पों के पुंज को राम ने देखा।

'इसके द्वारा ढोये जानेवाले ये कुड्मलों से युक्त दो स्वर्ण-कलश हैं, अथवा मद-भरे गज के दंत-युगल हैं,' ऐसा संदेह उत्पन्न करनेवाले स्तन-युगल से युक्त, मेघ-समान केशोंवाली सीता, पर्वताकार कंधोंवाले राम के संग बड़े आनन्द से, दुःख का लेशमात्र भी अनुभव नहीं करती हुई और मार्ग में, ईख पेरनेवाले कोल्हुओं (इक्षु-यंत्र) आदि को देखती हुई चलीं।

विविध शंखों से उत्पन्न मणियों से भरे, फैली हुई कमल-लताओं से शोभायमान जलाशयों से भरे एवं हंसों के विश्राम-स्थान बने हुए शीतल उद्यानों को, दोनों पार्श्वों में शंखकीटों से युक्त सैकत श्रेणियों को, विविध पुष्पों को बिखेरनेवाले वृक्षों से भरे वनों को तथा स्वर्ण को बहा लानेवाली नदियों को देखकर वे मन में आनन्दित होते हुए चले।

वहाँ के जलाशयों में, जहाँ बड़ी-बड़ी भैंसे धान की बालियों को चबाते हुए ऐसी खड़ी रहती थीं कि (उन बालियों का) रस उनके मुँह से बहकर उनकी टाँगों पर से होकर नीचे की ओर बहता रहता था, जहाँ (जलाशयों में) 'शेल' और 'कयल' (नामक) मछलियाँ इस प्रकार ऊपर उछल पड़ती थीं कि मधु-पूर्ण कमल पुष्पों में रहनेवाले भ्रमर (भयभीत होकर) झट ऊपर उड़ जाते थे, जहाँ युवतियाँ लाल टाँगोंवाले मत्त राजहंसों के समान स्नान करती थीं; ऐसे सुन्दर दृश्यों से युक्त उस कौशल देश को पार करके वे तीनों आगे चले।

सूर्य के समान उज्ज्वल आभरणों से युक्त वे तीनों खेतों और वृक्षों से पूर्ण 'मरुदम प्रदेश' (उपजाऊ भूमि) पारकर, विशाल वीचियों से युक्त उस गंगा नदी पर जा पहुँचे, जहाँ वेदों को जाननेवाले पाप-रहित मुनि रहते थे।

गंगा नामक उस दिव्य नदी पर रहनेवाले सब तपोधन मुनि आनन्द से यह कहते हुए कि 'हमारी शरण तथा लक्ष्य-भूत परमतत्त्व अब हमारे सम्मुख प्रकट हुआ है', सुन्दर नयनोंवाले रामचन्द्र के दर्शन के लिए जा पहुँचे।

वे मुनि चिन्तन करके कहने के लिए असाध्य माधुर्य से परिपूर्ण तथा स्वर-रूप वेदों के द्वारा प्रतिपादित अमृत-स्वरूपी (राम) को अपने चर्म-चक्षुओं से देखकर इस प्रकार प्रसन्नचित्त हुए, जिस प्रकार उन (मुनियों) से भिन्न लोग (अर्थात्, सांसारिक व्यक्ति) स्त्रियों के पास इन्द्रिय-सुख पाकर प्रसन्नचित्त होते हैं।

बाँस के दण्डों को धारण करनेवाले उन मुनियों ने उज्ज्वल कमल-समान नेत्रोंवाले राम को, अपने नयन-पुटों से, समुद्र में उत्पन्न दिव्य माधुर्य से युक्त अमृत जैसे पिया। आगे जाकर उनका स्वागत करके एवं मधुर गानों से उनकी स्तुति करके आनन्दित हुए।

घर से भागे हुए अपने पुत्र को ढूँढ-ढूँढकर भी कहीं न पाकर दिन-भर दुःखी रहनेवाले माता-पिता अपने सम्मुख उस पुत्र के आ जाने पर जिस प्रकार आनन्दित

होते हैं, उसी प्रकार वे मुनि (राम के दर्शन से) आनन्दित हुए और बड़े आदर के साथ अपनी तपस्या के योग्य आश्रमों में ले गये।

राम आदि के पथ-श्रम को मिटाने के लिए उन मुनियों ने अश्रु के नवीन जल से उन्हें स्नान कराया, अपने मधुर वचन-रूपी घनी पुष्प-मालाएँ पहनाईं तथा अक्षय प्रेम-रूपी भोजन कराया।

वे मुनि, अरण्य के स्वच्छ शाक, कंद और फल ढूँढकर ले आये और राम आदि से प्रार्थना की, हे उत्तम! समीपस्थ गंगा में स्नान करके, अग्निहोत्र[1] करके इन फलों का आहार करो।

राम ने स्त्री-कुल के लिए दीपक समान (सीता) देवी को अपने अरुण कर से पकड़े हुए, देवों के द्वारा प्रशंसित होते हुए, उस गंगा नदी में स्नान किया, जो (गंगा) पूर्वकाल में ब्रह्मदेव के द्वारा अपने कर में उत्पन्न जल से उन (राम) के (अर्थात्, विष्णु के एक अवतार त्रिविक्रम के) चरण के धोने से वह चली थी।

कभी विनष्ट न होनेवाली (गंगा) नदी ने, कर जोड़कर (राम से) कहा—संसार के लोग मुझमें स्नान करके अपने पाप दूर करते हैं; आज मैं, मुझे उत्पन्न करनेवाले तुम से (स्पर्श पाकर) सब पापों से मुक्त हो गई।

कठोर नयनोंवाले हाथी की सूँड़-जैसी भुजावाले, जटा से बहनेवाले श्वेत गंगाजल से युक्त, पातिव्रत्य से पूर्ण देवी (सीता) के देखते हुए स्नान करनेवाले वे (राम), विषधर सर्प को हाथ में (आभरण बनाकर) धारण करनेवाले, पातिव्रत्य से पूर्ण देवी (पार्वती) के देखते हुए नृत्य करनेवाले, श्वेत गंगाधारा से युक्त जटावाले तथा चन्द्रकला को शिर पर धारण करनेवाले शिव के समान लगते थे।

हिलनेवाले जल से भरी गंगा नदी की तरंगों के मध्य वे (राम) ऐसे लगते थे, जैसे रजत-समान श्वेत वर्णवाले (विष्णु) क्षीर-सागर में, लता-जैसी कटिवाली कमलवासिनी (लक्ष्मी) के संग, शयन से उठकर खड़े हुए हों।

अलक्तक (महावर) रस से अलंकृत मृदु चरणोंवाली, चित्र-समान सुन्दरी सीता ने स्नान (के लिए जल में प्रवेश) किया, तो उनकी कटि की सुन्दरता से परास्त होकर 'वंजि' नामक लता, लज्जा से जल में अपना मुँह छिपाने लगी। (उनकी) मंद गति से हारकर राजहंस दूर हट गये। उनके चरण-जैसे लगनेवाले कमल जल में अदृश्य हो गये। मीन वहाँ से हट गये।

महादेव के जटाजूट में रहकर भी जो गंगा नदी 'आक', 'पुन्नाग' आदि विविध पुष्पों की गंध से युक्त नहीं हुई थी, वह सुन्दर केशोंवाली सीता देवी के कुंतल में स्थित कस्तूरी-गंध तथा सद्योविकसित पुष्पों की गंध से भर गई।

लहरों पर फेन के उठ-उठकर हिलते रहने से, श्वेत केशोंवाली स्त्री के समान लगनेवाली गंगा, (पातिव्रत्य धर्म में) प्रसिद्ध सीता को एकाकी देखकर स्वयं, धाई के समान अपने करों (अर्थात्, लहरों) को बढ़ाकर उसे स्नान कराने लगी।

१. औपासन-होम करना गृहस्थ का नित्य कार्य कहा गया है।

सीता के दीर्घ केशपाश-रूपी मेघ-समुदाय खुलकर जल में इस प्रकार विस्पंदित हो रहे थे, जैसे गंगानदी के मध्य काले रंगवाली यमुना नदी की धारा हो और उसमें अनेक भँवर दिखाई दे रही हों।

भँवरों से युक्त, अनेक लहरों से भरी, शब्दायमान गंगा नदी की उस श्वेतधारा में, जहाँ उन (सीता) की आँखों के जैसे मीन उछल रहे थे, स्नान करके सीता देवी जब जल से बाहर निकलीं, तब वे क्षीर-सागर में तत्काल (मंथन-काल में) प्रकट हुई लक्ष्मी-सी लगती थीं।

पूर्वकाल में गंगा नदी, विष्णु के अरुण कमल-समान चरण का स्पर्श करने से, सब लोगों के पापों को दूर करने की शक्ति से युक्त होकर प्रकट हुई थीं। अब प्रभु के सारे शरीर का स्पर्श करने से क्या यह संसार कभी नरक में जायगा ? (भाव यह है, गंगा नदी में, राम के स्नान करने से ऐसी पवित्रता उत्पन्न हो गई कि अब संसार का कोई भी प्राणी नरक में नहीं जायगा।)

राम, उस पवित्र जल में स्नान करके मुनियों के आवास में पहुँचे। फिर, ज्ञानियों के ध्यान के विषयभूत परब्रह्म को नमस्कार करके प्रज्ज्वलित अग्नि में होम किया। फिर, उन मुनियों के प्रेम के योग्य अतिथि बनकर भोजन स्वीकार किया।

जिस विष्णु भगवान् ने बहुत कष्ट उठाकर अमृत उत्पन्न किया था और स्वयं उसे न पीकर देवों को दे दिया था, उसके अवतार राम ने, अब मुनियों के द्वारा दिये गये शाक-कंद का भोजन स्वीकार किया। अहो ! जिनका मन अत्यन्त शुद्ध है, उनके कार्य कभी त्रुटि-पूर्ण नहीं होते।

उस समय सहस्र नौकाओं का अधिपति, दीर्घकाल से पवित्र गंगा में नौका चलाते रहनेवाला, शत्रुध्वंसक धनुष को धारण करनेवाला, पर्वत के जैसे पुष्ट कंधोंवाला, गुह नामक निषाद,——

पटह वाद्य से युक्त, श्वानों को पालनेवाला, अपने बड़े-बड़े पैरों में चमड़े के जूते पहननेवाला, घनीभूत अंधकार जैसे साकार हो गया हो——ऐसे रूपवाला, अपनी सेना के साथ इस प्रकार आया, जैसे जल-भरा मेघ ही समूल उठकर चला आया हो।

उसकी सेना के लोग छोटे डंडे से दुंदुभी को बजा रहे थे। 'पंबै' नामक पटह-वाद्य बजा रहे थे। वह पल्लव-समान लाल रंगवाले शरों को धारण करनेवाला था। अनेक नौकाओं का स्वामी था। मदस्रावी गंडभागों से युक्त गज-यूथ के समान परिवार से घिरा था।

कटि से जाँघों तक जाँघिया पहने हुआ था। गंगा की गहराई को जानने की महिमा से युक्त था। उसकी कटि से लाल रंग का चर्म लटक रहा था। वह कटि में लपेटी हुई व्याघ्र की पूँछ से शोभायमान था।

दाँतों की माला-जैसी लगनेवाली छोटे-छोटे उपलों की माला पहने था। उसके पैर ऐसे थे, जैसे पत्थरों के बने हों। उसके केश ऐसे थे, जैसे अंधकार को बाँधकर रखा गया हो। उसकी ऊपर की ओर कुंचित भौहों पर धान से भरी थाली रखी हुई थी।

उसके हाथों पर, ताड़ के पेड़ों से लटकनेवाले मोटे रेशों के जैसे बड़े, घने और

सुन्दर केश बढ़े थे। उसका वक्ष विशाल शिला के समान था। उसका रंग तैल लगाये गये अंधकार के समान था।

उसकी कटि में, रक्त के चिह्नों से युक्त कटार थी। उसकी दृष्टि ऐसी भयंकर थी कि विषैला सर्प भी उसके आगे काँप जाय। वह उन्मत्त के जैसे असंबद्ध वचन बोलता था। उसकी कटि इन्द्र के वज्र के समान अत्यन्त दृढ थी।

शरीर को पुष्ट करनेवाले मांस और मछली खाने से उसके मुँह में दुर्गन्ध आ रही थी। उस (मुँह) पर हँसी नहीं थी। विना क्रोध के भी उसके देखने पर (उसकी आँखों से) चिनगारियाँ निकलती थीं। उसकी कण्ठ-ध्वनि यम को भी डरानेवाली थी।

तरंगों से भरे गंगा नदी के तट पर स्थित शृंगवेर नामक गाँव में उसका निवास था। ऐसा वह (गुह), आश्रम में ठहरे हुए उदार पुरुष (राम) के दर्शन करने के लिए मधु, मछली आदि उपहार लेकर आया।

अपने परिवार के लोगों को दूर पर खड़ा करके, खूब तपाये गये बाण से युक्त अपने धनुष को भी दूर रखकर, कटि में बँधे कतार को भी उतारकर, निष्कलंक तथा प्रेमपूर्ण चित्त के साथ, वह राम के आवास-भूत उस आश्रम के द्वार पर पहुँचा।

वह निषादों का राजा; प्रेम से द्रवित हो वहीं खड़ा रहा। फिर पुकारकर कहा—हे स्वामी! मैं, श्वान के समान क्षुद्र, आप का दास, आप की सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।

गुह के यों कहने पर लक्ष्मण उसके निकट आये और उससे पूछा—तुम कौन हो? किस कार्य से आये हो? तब गुह ने प्रेम के साथ उन्हें नमस्कार करके कहा—हे देव! मैं श्वान-समान दास नाव चलानेवाला हूँ। आप के चरणों का दर्शन करने के लिए आया हूँ।

तब लक्ष्मण गुह से वहीं ठहरने को कहकर अपने ज्येष्ठ भाई के पास पहुँचे और निवेदन किया—हे विजयशील! पवित्र चित्तवाला, माता से भी अधिक प्रेम से युक्त, वीची-भरे गंगा में नाव चलानेवाला निषाद-पति गुह, अपने बड़े परिवार के साथ आपके दर्शनार्थ आया है।

उदार (राम) ने आदेश दिया—उसे मेरे पास ले आओ। सद्‌गुणवाले लक्ष्मण ने जाकर गुह को वह आदेश सुनाया, तो गुह प्रेमाधिक्य से तुरन्त भीतर प्रविष्ट हुआ और सुन्दर नेत्रोंवाले राम के दर्शन कर नेत्र-लाभ पाया; फिर काले केशों से युक्त अपने शिर पर कर जोड़कर, शरीर झुकाकर, नमस्कार करके, कर से अपना मुँह बंद किये खड़ा रहा।

राम ने गुह से कहा—बैठो। किन्तु गुह बैठा नहीं। असीम प्रेम से युक्त होकर उसने कहा—हे देव! आपके भोजन के लिए अत्युत्तम मधु और मछली लाया हूँ। आपका चित्त कैसा है? यह सुनकर वीर (राम) वृद्ध तपस्वियों की ओर देखकर मुस्कुराये[1] और फिर बोले—

---

१. कंब ने मांसाहार की काफी निन्दा की है। रामचन्द्र भी, इस रचना में, मांसाहारी नहीं हैं। यही कारण है कि गुह के लाये भोजन को, उसके प्रेम को और उसके भोलेपन को देखकर राम मुस्कराये।

ये वस्तुएँ मन में स्थित प्रेम के आधिक्य को प्रकट करनेवाली हैं और बड़े आदर के साथ लाई गई हैं। अतः दुर्लभ अमृत से भी ये अधिक उत्तम हैं। प्रेम से लाये जाने के कारण ये पवित्र हैं; अतः मुझ जैसों के लिए ये योग्य ही हैं। अब जैसे मैंने इन वस्तुओं को स्वीकार कर लिया है (तुम इनको स्वयं स्वीकार कर लौटाकर ले जा सकते हो)।

सिंह-सदृश वीर राम ने पुनः कहा—आज यहाँ रहकर हम कल गंगा पार करेंगे। अतः, तुम अपने परिवार के लोगों के साथ अपने नगर में जाकर सुख से वास करो और प्रभात के समय नौका लेकर गंगा-तट पर आ जाओ।

मेघ के जैसे काले रंगवाले राम के यह कहने पर प्रेम-भरे गुह ने निवेदन किया—हे सारे संसार के स्वामी! आपको इस वेष में देखकर भी अभी तक मैं, चोर ने, अपनी इन आँखों को नोचकर फेंक नहीं दिया! अब आप को छोड़कर मैं अपने आवास में नहीं लौट सकता। हे प्रभु! अपनी शक्ति-भर मैं आपकी सेवा करता रहूँगा।

विजयमाला से भूषित कोदंड-धारी पुरुषोत्तम ने गुह की बात सुनकर अपने भाई और देवी सीता की ओर दृष्टि फेरी और कहा—यह अपार भक्तियुक्त है। और फिर, करुणा-पूर्ण मन से कहा—सबसे उत्तम स्नेह-गुण से संपन्न हे मित्र! तुम यहीं रहो।

तब गुह ने राम के चरणों को प्रणाम किया और उमड़नेवाले आनन्द के साथ, पटह-वाद्यों से युक्त समुद्र के समान अपनी सेना को बुलाकर रामचन्द्र के आवास के चारों ओर रहकर उसकी रक्षा करने की आज्ञा दी और वह स्वयं हाथ में धनुष लेकर और उसपर शर को भी चढ़ाकर, कटार को अपनी कटि के वस्त्र में खोंसकर, गरजते मेघ के समान (ध्वनि के साथ) राम के चरणों की स्तुति करता हुआ खड़ा रहा।

गुह ने लक्ष्मण से प्रश्न किया—हे मनुकुल में उत्पन्न! सुन्दर अयोध्या नगर को छोड़कर यहाँ आने का कारण बताओ। तब राम के वनवास से दुःखी लक्ष्मण ने सब वृत्तांत कह सुनाया। (राम की) भक्ति से पूर्ण गुह ने अत्यंत दुःखी होकर कहा—विशाल भूदेवी ने, तपस्या से संपन्न होकर भी, (तप के) फल को प्राप्त नहीं किया। यह कैसा अनर्थ है? और अपनी आँखों से अश्रु बहाता हुआ खड़ा रहा।

जिन्होंने अंधकार के जैसे सर्वत्र फैले हुए शत्रुओं को पराजित करके भगाया, सब दिशाओं में अपना अधिकार स्थापित किया, अत्युन्नत स्थान में रहकर अनुपम आज्ञा-चक्र चलाया, श्रेष्ठ कीर्त्ति को स्थापित किया, अपने शासन-काल में इस विशाल संसार के सब[1] लोगों के मन में रहकर सब पर कृपा की, और अब जो मृत हो गये हैं, ऐसे युद्ध-वीर दशरथ के समान ही अरुण किरणवाला सूर्य भी अस्त हो गया।

संध्याकालीन नित्य कृत्यों को यथाविधि समाप्त करके वीर (रामचन्द्र) और क्षीर-समुद्र में उत्पन्न अमृत समान (सीता) देवी ने धरती पर बिछाई गई 'नाणल' घास की बनी चटाई पर विश्राम किया; कनिष्ठ (लक्ष्मण) दृढ धनुष हाथ में लिये, प्रभात होने तक अपलक खड़े रहकर पहरा देते रहे।

---

१. इस पद में प्रयुक्त 'सब' विशेषण दशरथ और सूर्य—दोनों के लिए समान हैं।

जिन (लक्ष्मण) की देह-कांति सूर्य की किरणों से आवृत मेरु की स्वर्णमय आभा को मात करनेवाली थी, जो जगमगाते हीरकों के आभरण पहनने योग्य थे, और जो सिंह के सदृश (बलवान्) थे, ऐसे लक्ष्मण ने, निद्रा नामक सुन्दरी के उनके सम्मुख प्रकट होने पर उससे कहा—जब हम सुन्दर प्राचीरों से घिरी अयोध्या में लौटकर जायेंगे तब तुम मेरे पास आना। (तबतक तुम मेरे पास मत आना)।

वीरता के आगार, करवाल-धारी लक्ष्मण की आज्ञा का उल्लंघन न कर सकने के कारण निद्रा-देवी लक्ष्मण के चरणों को प्रणाम करके और यह कहकर कि जब तुम प्राचीरों से घिरी स्वर्ग लोक-जैसी अयोध्या में आओगे, तब मैं तुम्हारे चरणों के आश्रय में आऊँगी, वहाँ से चली गई।

निद्रादेवी के यों प्रणाम करके चले जाने के पश्चात् लक्ष्मण, अपने प्रभु को निरंतर उत्तम कमल के आसन पर रहनेवाली लक्ष्मी (के अवतार सीता) के साथ उस प्रकार (भूमि पर) शयन करते हुए देखकर, उनकी दुःखद दशा पर अत्यन्त शोकाकुल हुए। उनका मन टूट-सा गया। उनकी आँखों से अश्रुओं के निर्झर बह चले। वे दुःख से भरी प्रतिमा-सदृश एक शिला पर निष्पंद हो खड़े रहे।

पिछले दिन जन्म-रहित सूर्य मानों यह सूचित करते हुए अस्त हुआ था कि 'असंख्य जन्म लेते रहनेवाले ये जीव, पवित्र दिखाई पड़नेवाले स्वर्ग आदि (विनश्वर) लोकों को भूल जायें और (मोक्ष के एक मार्ग को) सोचकर जान लें और उस पर चलें; क्योंकि उनके मर जाने का यही ढंग है।' वही सूर्य मानों यह सूचित करते हुए अब उदित हुआ कि ये जीव ऐसे ही जन्म लेते हैं।

कीचड़ में उत्पन्न होनेवाले अति सुन्दर कमल-पुष्प, रथारूढ होकर प्रकट हुए उष्ण किरणधन सूर्य के मंडल के दर्शन से प्रफुल्ल हुए। विलक्षण अंजन-वर्ण सूर्य-जैसे प्रभु (राम) को देखकर सुन्दर 'वंजि' लता जैसी सीता का मनोहर मुख-कमल प्रफुल्ल हुआ।

राम, प्रभातकालीन नित्य-कृत्य समाप्त करके शत्रुओं के लिए भयंकर अपने कन्धे पर धनुष को रखे हुए, वेदज्ञ मुनियों से अनुसृत होते हुए (आश्रम से) चल पड़े और प्रथम दर्शन में ही भक्ति से दास्य स्वीकार करनेवाले गुह को देखकर कहा—हे तात! हमको पार उतारने के लिए एक अच्छी नौका शीघ्र लाओ।

आज्ञा के यह वचन सुनकर गुह के नेत्रों से अश्रु बह चले, उसके प्राण व्याकुल हो गये, राम के चरणों से वियुक्त होने की इच्छा न होने से वह, सीता देवी के साथ शोभित होनेवाले नील कुवलय, अतसी पुष्प, समुद्र और सजल मेघ—इनकी समता करनेवाले राम के चरणों को नमस्कार करके यों कहने लगा—

हम कभी असत्य मार्ग पर चलनेवाले नहीं हैं। हमारा निवासस्थान वन ही है। हम अक्षुण्ण बल से युक्त हैं। आपकी आज्ञाओं का हम यथाविधि पालन करते रहेंगे। इसलिए सुन्दर पुष्पमालाधारी हे प्रभु! हम, दासों को आप अपने बन्धुजन समझें और हमारे ग्राम में चलकर चिरकाल तक सुख से रहें।

हमारे यहाँ मधु प्रभूत मात्रा में होता है, धान बहुत होता है, देवों के भी आहार

के योग्य मांस है। हम श्वान के जैसे आपके सेवक हैं। हमारे प्राण आपकी सेवा में निरत हैं। आपके विहार के लिए वन हैं। स्नान के लिए गंगा भी है। अतः, जबतक मैं यहाँ रहूँगा, तबतक आप भी आनन्द से हमारे संग रहें हमारे यहाँ पधारें।

पहनने के लिए रेशमी जैसे चर्म-वस्त्र हैं, विविध रस के भोज्य पदार्थ हैं। शृङ्खलाओं में लटकाये गये निद्रा करने के योग्य पर्यंक के जैसे तख्ते हैं। निवास के योग्य छोटे-छोटे कुटीर हैं। शीघ्रगामी (हमारे) चरण हैं और (विघ्न डालनेवालों को मारने-वाले) धनुर्धारी हमारे कर हैं। आप यदि शब्दधर्मा आकाश में स्थित किसी वस्तु को भी चाहेंगे, तो हम शीघ्र उसे ला देंगे।

आपकी आज्ञा का पालन करनेवाले पाँच सौ निषाद हैं। वे देवों से भी अधिक शक्तिशाली हैं। यदि आप एक दिन भी हमारे झोंपड़े में ठहरेंगे, तो उससे हम तर जायेंगे। उससे उत्तम कोई दूसरा जीवन हमारे लिए नहीं होगा—यों गुह ने निवेदन किया।

तब गुह की प्रार्थना सुनकर महिमामय प्रभु ने अपने मन को कृपा से भरकर, उज्ज्वल मंदहास करके कहा—हे वीर ! हम गंगा में स्नान करके, वन में रहनेवाले महात्माओं की सेवा में रहकर कुछ ही दिनों में पुनः तुम्हारे आवास में आनन्द के साथ आ पहुँचेंगे।

इंगित को जाननेवाला गुह, शीघ्र जाकर एग दीर्घ नौका ले आया। कमल-समान नयनोंवाले राम ने निकट-स्थित वेदज्ञ ब्राह्मणों को देखकर कहा—मुझे आज्ञा दें। फिर, अर्धचन्द्र-सदृश ललाटवाली (सीता) एवं अपने अनुज के साथ उस नौका पर आरूढ हुए।

शरीर के प्राण जैसे (राम) ने आज्ञा दी—नदी में नौका को शीघ्रता से चलाओ। दीर्घ वीचियों से पूर्ण नदी में वह दीर्घ नौका बाल-हंस की गति से शीघ्र चलने लगी। तब तट पर स्थित वेदज्ञ मुनि अग्नि में पड़े मोम के जैसे पिघल उठे।

दुग्ध-सदृश मीठी बोलीवाली सीता और सूर्य-समान रामचन्द्र, 'शैल' (नामक) मछलियों से पूर्ण गंगा के अति पवित्र जल को उछाल-उछालकर खेल रहे थे। दीर्घ डाँड़ों से खेई जानेवाली वह नौका अनेक टाँगोंवाले एक बड़े केंकड़े के समान शीघ्रता से चली जा रही थी।

चंदन (वृक्षों) से युक्त सैकत श्रेणी-रूपी विशाल स्तनोंवाली गंगा-नदी ने, उज्ज्वल रत्न-समुदाय से युक्त और सुगंधित कमलपुष्पों की अरुण आभा से शोभायमान, स्वच्छ तरंग-रूपी अपने हाथों से, अकेले ही उस नौका को उठाकर मंद-मंद (गति से) दूसरे तट पर पहुँचा दिया।

उस किनारे पर पहुँचकर प्रभु ने अपने मित्र (गुह) से पूछा—चित्रकूट को जाने का मार्ग कौन-सा है, बताओ। तब भक्ति से अपने प्राण भी देने के लिए सन्नद्ध उस गुह ने (राम के) चरणों पर नत होकर कहा—हे उत्तम ! श्वान-तुल्य इस दास का एक निवेदन है।

श्वान-तुल्य मैं, यदि आपके संग चलने का भाग्य प्राप्त करूँ, तो वन में आपके चलने के लिए मार्ग बनाऊँगा। अति उत्तम फल और मधु ढूँढकर ला दूँगा। आपके

निवास के योग्य स्थान बनाऊँगा। एक क्षण भी आप को छोड़कर पृथक् नहीं रहूँगा।

(आपके आश्रम के) चारों ओर क्रूर व्याघ्रों को ढूँढ़-ढूँढ़कर मिटा दूँगा और अति पवित्र प्राणियों के आवासभूत वन को ढूँढ़कर वहाँ आप को पहुँचा दूँगा। आपकी इच्छित वस्तुएँ ढूँढ़कर ला दूँगा। मैं आपकी किसी भी आज्ञा को पूर्ण करने की शक्ति रखता हूँ। मैं रात्रि-काल में भी मार्ग में चल सकता हूँ।

मैं 'कवलै' आदि कंदों को पर्वतों पर से खोदकर ला दूँगा। प्राणों के आधारभूत स्वच्छ जल, चाहे कितनी भी दूर हो, वहाँ जाकर ला दूँगा। धनुष आदि अनेक शस्त्र मेरे पास हैं। मैं किसी से डरता नहीं हूँ। हे मल्लयुद्ध में चतुर कंधोंवाले! आपके कमल-तुल्य चरणों से मैं कभी अलग नहीं होऊँगा।

हे अनुपम सुन्दर वक्षवाले! यदि आप स्वीकार करेंगे, तो मैं अपनी सेना के साथ आपके साथ रहूँगा और कभी आप से पृथक् नहीं होऊँगा। यदि मेरे लिए असाध्य कोई शत्रु होगा, तो पहले मैं उसके साथ युद्ध करके अपने प्राण त्याग दूँगा और (अपने ऊपर) अपवाद नहीं आने दूँगा; आप आज्ञा दें कि मैं भी आपके साथ चलूँ।

गुह के वचन सुनकर निर्मल-रूप प्रभु ने उत्तर दिया—तुम मेरे प्राण-तुल्य हो। मेरा अनुज तुम्हारा अनुज है। सुन्दर ललाटवाली यह (सीता) तुम्हारी भाभी है। शीतल समुद्र से घिरी सारी धरती तुम्हारी संपत्ति है; मैं तुम्हारी सेवा के अधिकार (स्वत्व) में बँधा हुआ हूँ।

जब दुःख हो, तभी सुख होता है। अतः, यह सोचकर कि 'मैं (गुह), तुमको (राम को) कभी भविष्य में देखूँगा, किन्तु इस बीच दारुण वियोग-दुःख को भोगना पड़ेगा' दुःखी मत होओ। (तुमसे मिलने के) पहले हम चार भाई थे। अब, अंतहीन प्रेम से युक्त हम पाँच भाई हो गये हैं।

हे उज्ज्वल तीक्ष्ण भाले को धारण करनेवाले! जबतक मैं वन में निवास करूँगा, तबतक तुम्हारा भाई यह लक्ष्मण मेरे कष्टों का भार वहन करने के लिए मेरे साथ रहेगा। मुझे दुःख देनेवाले शत्रु कहाँ हैं? तुम जाओ और मेरे जैसे ही (अपने आश्रित जनों की) रक्षा में निरत रहो। जब मैं उत्तर की ओर लौटकर आऊँगा, तब तुम्हारे आवास में आकर ठहरूँगा। अपने दिये वचन से मैं कभी विमुख नहीं होऊँगा।

तुम्हारा भाई भरत, अयोध्या की प्रजा की रक्षा करने के योग्य गुणों से सम्पन्न है। यहाँ के बंधुओं की रक्षा करनेवाला (तुम्हारे सिवा) कौन है? इसलिए तुम जाओ, तुम्हारे बन्धु मेरे बन्धु हैं, वे लोग दुःखी होंगे। मेरी आज्ञा से यहाँ के मेरे बन्धुओं की रक्षा करते हुए तुम यहाँ रहो। इस प्रकार राम ने कहा।

तब गुह, राम की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकने तथा (राम से) वियोग के दुःख को भी दूर नहीं कर पाने के कारण व्याधि-ग्रस्त-सा दिखाई पड़ा और विदा हुआ। प्रभु, अपने अनुज एवं आभरण-भूषित देवी के साथ घने वृक्षों से भरे वन में दूर तक जानेवाले मार्ग पर चल पड़े। (१–७७)

अध्याय ७

वन-प्रवेश पटल

जिन वारनारियों की संगति को क्षुद्र जन प्राप्त करना चाहते हैं, उनके मन के जैसे ही, 'यह आर्द्र है या नहीं' ऐसा निश्चय करने के लिए असाध्य वसन्त ऋतु, रामचन्द्र के वन में आते ही, आकाश में सर्वत्र जल-भरे मेघों को दिखाने लगी।

सूर्य अपनी किरण, चन्द्रिका के जैसे (शीतल) बनाकर फैला रहा था। वहाँ के घने वृक्ष छाया दे रहे थे। आकाश के बादल ओसकण-जैसी बूँदों की वर्षा कर रहे थे। मंद अनिल पुष्पों की गंध लेकर मृदु गति से बह रहा था। ऐसे समय में वे तीनों, मोरों के नृत्य को देखते हुए वन-मार्ग में प्रसन्नता के साथ चले।

तब रामचन्द्र सीता को वन के विविध दृश्य दिखाने लगे। हे सुगंधित पुष्पमाला धारण करनेवाली ! कलापी-तुल्य ! यौवनपूर्ण हरिण के समान दृष्टि से शोभायमान ! (देखो) मधुर निद्रा करनेवाले इन्द्रगोप सर्वत्र फैले हुए हैं और कनैल के स्वर्णवर्ण पुष्पों की राशियाँ पड़ी हैं। इन सबका दृश्य ऐसा ही है, जैसे अनेक रत्नजटित स्वर्णहार पड़े हों।

भ्रमरों के गान और मेघ-रूपी मर्दल-वाद्य के साथ अपने पंख फैलाकर मनोहर नृत्य दिखानेवाले, लजीले-से ये मयूर, जैसे तुम्हारे सौंदर्य को अनेक नेत्रों से देखकर आनन्दित हो रहे हैं।

सुन्दर आम्र-पल्लव के समान शरीर-कांति से युक्त, हे सुन्दरी ! मनोहर आभा से युक्त रक्तवर्ण मुख और हरित देह-कांति से शोभायमान शुक, लावण्यपूर्ण 'कांदल' पुष्प पर बैठे हुए ऐसे लगते हैं, जैसे तुम्हारे हाथ पर बैठे हों, ऐसे शुकों को देखो।

तैल-लगे दीर्घ बरछे के जैसे तथा हथेली के विस्तार से भी बड़े नयनों से शोभायमान, हे देवी ! अनेक मयूर और यौवन से युक्त हरिण, तुम्हारी देह की सुषमा को देखकर और अपने ही कुल का व्यक्ति समझकर तुम्हारे निकट आते हैं, देखो।

सुन्दर 'कुरा' पुष्पों एवं उनके आस-पास फैले हुए 'पिड़बु' वृक्ष के पुष्पों की राशियों में सोकर उठनेवाले एक मयूर की देह-गंध को पाकर उसकी मयूरी, यह सोचकर कि उसने अन्य किसी मयूरी की संगति की है, उससे रूठ गई है, यह दृश्य भी देखो।

हे अरुंधती के समान (पतिव्रते)! अमृत से भी अधिक मनोहर ! अशोक पुष्पों पर 'शेरुन्दि' के स्वर्ण के रंगवाले पुष्प पड़े हैं और उनपर भ्रमर-कुल मत्त हो रहते हैं। यह दृश्य ऐसा लगता है, जैसे सोने के टुकड़ों पर कोयले डालकर (नाली से) हवा फूँकी जा रही हो और उससे अग्नि की ज्वाला ऊपर उठ रही हो, यह दृश्य भी देखो।

हे उभरे हुए स्तनोंवाली ! चित्र के लिए असाध्य सौंदर्यवाली ! देखो, एक मयूर 'कांदल' पुष्प की कली को ध्यान से देखकर उसे कोई सर्प समझ लेता है और उसे अपनी चोंच से उठा लेता है; यह दृश्य देखकर मधु-पूर्ण कुंदपुष्प हँस पड़ते हैं।

पर्वत पर निवास करनेवाला व्याघ्र-शावक, घने अंधकार-जैसे हाथी के बच्चे और गाय के बछड़े, अपना सहज वैर छोड़कर एक साथ खेल रहे हैं, यह दृश्य देखो।

हे अगरु के धूम से सुवासित केशोंवाली ! जलाशयों के तट पर अलंकार के योग्य आभरण-जैसे पुष्पों से लदे हुए पौधे (हवा के झोंके से) श्वेत रेशमी वस्त्र जैसे जल में निमग्न होते हुए ऐसा दृश्य उपस्थित करते हैं, जैसे मृदु स्तनोंवाली युवतियाँ ही स्नान कर रही हों।

हे धनुष समान सुन्दर भृकुटिवाली ! भ्रमर-बालक, बढ़े हुए पुष्पों में छेद करके उनके भीतर जाने का प्रयत्न न करते हुए 'कोंगु' वृक्ष के चारों ओर स्थित पुष्पों पर चढ़कर सो रहे हों ; वे ऐसे लगते हैं, जैसे स्वर्ण के फलकों पर जड़े नील रत्न हों, यह दृश्य भी देखो।

अपने मुँह में अधिक मधु को भर लेने के कारण आँख खोलकर नहीं देख सकने से, शीघ्र जाने का मार्ग नहीं देख पाते हुए, अंधे के जैसे हिलते-डुलते हुए जानेवाले बड़े भ्रमर, आगे-आगे जानेवाली भ्रमरियों को ही अपना नेत्र बनाकर जा रहे हैं।

हे हंस-तुल्य मृदु गतिवाली ! स्वर्णमय पुष्पों से लदी 'वेंगे' वृक्ष की अनेक शाखाएँ, कन्याओं के शृंगार करने की रीति का अभ्यास-सी करती हुई, तुम्हारे अलक से शोभायमान ललाट के ऊपर अपने नव मृदुल पुष्पों को लगा रही हैं, मानों वे (अपने पुष्पों को) बरसा रही हों।

हे अप्सराओं से भी अधिक सुन्दरी ! सुगंधित मंद मारुत के बहने से पुष्प-पुंजों का मकरंद पत्थरों से भरे कानन में इस प्रकार बिखरा पड़ा है, जिस प्रकार तुम्हारे मुक्ताहार से शोभित स्तन-तटों पर दाग[1] फैले रहते हैं।

इन घने वृक्षों ने, मानों यह सोचकर कि तुम्हारे मृदुल चरण पत्थरों पर चलने के अभ्यस्त नहीं हैं, मार्ग-भर में पुष्पों को बिखेर रहा है, देखो। हे कोकिल-समान मधुर-भाषिणी ! अपनी शाखाओं में सुगंधित पुष्पों से भरी हुई लताएँ तुम्हारी डमरू-सदृश कटि की समता नहीं कर सकतीं।

हे करवाल-सदृश नयनोंवाली ! तुम्हारे कमल-सदृश चरणों तथा तुम्हारे चरण-तुल्य पल्लवों पर मँडरानेवाले इन भ्रमरों को देखो। सर्वत्र अंधकार फैलानेवाले तुम्हारे सुगंधित केशों के समान इन मेघों को देखो। तुम्हारे कंधों के समान इन कोमल बाँसों को देखो।

हरिणों, मयूरों तथा कोकिलों के संचरण से युक्त वह वन, विविध पुष्पों से भरी शाखाओं से पूर्ण है। यत्र-तत्र पक्षिगण हैं। विविध लताएँ सुन्दर ढंग से फैली हैं। अग्नि के वर्ण (के पल्लवों) से युक्त हैं। अतः, यह वन विविध चित्रकारी से युक्त यवनिका के समान दिखाई पड़ता है।

स्वर्ण-आभरणों से भूषित पुष्ट कंधोंवाले राम, यौवन से परिपूर्ण सीता से ये वचन कहते हुए, मधुर विहार-से करते हुए वन-मार्ग पर चले जा रहे थे। तब सूर्य पश्चिम दिशा में जा पहुँचा। तब दूर से चित्रकूट पर्वत को देखकर राम कह उठे, दोनों कर्म को जीतने-वाले मुनियों का निवासभूत पर्वत यही है।

---

१. यौवनवती नारियों के स्तनों पर कुछ दाग-से फैले रहते हैं, जिनको तमिल में 'तेमल' कहते हैं। तमिल के प्राचीन साहित्य में यत्र-तत्र इसका वर्णन हुआ है।—अनु०

उस समय, प्रेम की उमंग से युक्त भरद्वाज मुनि यह समझकर कि चिरकाल से की गई अपनी तपस्या आज फलीभूत हो रही है, जन्म-व्याधि के लिए औषध-समान राम का स्वागत करने के लिए सम्मुख आये।

वे (भरद्वाज मुनि) छत्रधारी थे। दीर्घ दंडधारी थे। कमंडलु से युक्त थे। अधिक जटा से शोभायमान थे। मनोहर वल्कल वस्त्र पहने थे। मार्ग पर इस प्रकार चलते थे कि उनके कारण अन्य प्राणियों को कुछ कष्ट न हो। उनकी जिह्वा पर चारों वेद नर्त्तन करते थे।

प्रतिदिन रक्तवर्ण अग्नि को प्रज्ज्वलित करनेवाले थे। चतुर्मुख के द्वारा सृष्ट सब प्राणियों को अपने प्राणों के समान सुरक्षित करनेवाली शीतल करुणा से परिपूर्ण थे। वे ऐसी महिमा से संपन्न थे कि विष्णु के नाभि-कमल से उत्पन्न न होने पर भी सप्त लोकों की सृष्टि कर सकते थे।

उस महर्षि के आने पर अनघ (रामचन्द्र) ने पुष्पों का अर्घ्य देकर तीन बार उनको प्रणाम किया। उन उत्तम महर्षि ने राम को गले से लगाकर कहा—हाय! तुमको यह (मुनि का) वेष धारण करना पड़ा और मन में पीडित होकर नेत्रों से आँसू बहाने लगे।

फिर मुनिवर ने राम से पूछा—शत्रुओं के विनाशक हे वीर! इस अवस्था में ही तुम सारे संसार का शासन करने की क्षमता रखते हो। ऐसे कार्य को छोड़कर हम जैसे मुनियों के आवासभूत वन में अपने लिए अनुपयुक्त वेष धारण करके, अनुज-सहित आये हो। इसका क्या कारण है?

फिर, राम के द्वारा सारा वृत्तान्त कहे जाने पर उन उत्तम तपस्वी ने अत्यन्त दुःखी होकर कहा—अहो! इस अवस्था में ऐसा घटित हुआ यह विधि का दुष्कृत्य है। इस विशाल धरती का दुर्भाग्य है (कि तुम राजा नहीं बने)।

मेरे मित्र (दशरथ) ने पहले यह कहकर कि अरुण मुखवाली तथा मधुरभाषिणी सीता के साथ तुम जल-पूर्ण समुद्र से आवृत इस धरती का शासन करो, पुनः किस प्रकार तुम्हारे जैसे अपने अनुपम पुत्र को अरण्य में जाने को आज्ञा दी और यों आज्ञा देकर वे कैसे जीवित रह सके?

'सुख और दुःख दोनों परिवर्त्तनशील होते रहते हैं'—यह नियति है। इनके कारण हमारे पूर्वजन्मकृत पुण्य-पाप होते हैं। अतः, अब मेरे दुःखी होने से कुछ लाभ नहीं है।—यों विचार कर वे (भरद्वाज महर्षि) शांत हुए और पुनः राम का आलिंगन कर उन्हें अपने आवास में ले चले।

उन पवित्र मुनिवर ने अपने आश्रम में जाकर उनका यथोचित सत्कार किया। उत्तम फल और कंद भोजन के लिए दिये और मधुर वचन कहे। यों अपने प्राण-सदृश पुत्र-जैसे उन (राम, लक्ष्मण और सीता) के प्रति प्रेम दिखाया, जिससे वे तीनों बहुत आनंदित हुए।

वे तीनों उस आश्रम में सुख से रहे। तब भरद्वाज महर्षि ने यह सोचकर कि इन रामचन्द्र के संग रहने से मैं तर जाऊँगा, सब प्रकार से सत्कार करके फिर प्रभु के मुख

की ओर देखकर कहा—हे उत्तम पुष्प-माला से भूषित वक्षवाले ! मुझे एक बात कहनी है—

यह स्थान जल, पुष्प, कंद और फल से समृद्ध है। यहाँ रहने से पूर्वकृत पाप भी कट जाते हैं और पुण्य बढ़ता है। अतः, हम लोगों के साथ तुमलोग भी यहीं रहो। श्रेष्ठ तपस्या करनेवालों के लिए इस स्थान से बढ़कर अन्य कोई उत्तम स्थान नहीं है।

यहाँ गंगा नदी के साथ काली (यमुना) नदी और सरस्वती का संगम है। अतएव, मैं इस स्थान को छोड़कर और कहीं नहीं जाता हूँ। कमल-तुल्य नयनोंवाले (हे राम)! यह ब्रह्मा के लिए भी दुर्लभ तीर्थस्थान है। हम जैसे लोगों के लिए यह सुलभतया प्राप्त होनेवाला नहीं है। ऐसे स्थान पर तुम रहो।

महान् तपस्या से संपन्न भरद्वाज ने प्रेम से इस प्रकार कहा। तब राम ने उत्तर दिया—हे उदारचित्त ! यह स्थान जल-संपन्न कोशल देश से बहुत दूर नहीं है। यदि मैं इस स्थान में रहूँगा, तो कोशल देश के लोग यहाँ आयेंगे।

तब भरद्वाज महर्षि ने कहा—हे तात ! तुम्हारा कथन सत्य ही है। यहाँ से एक खात (खात=दस मील) दूर चलने पर देवताओं के लिए भी वन्य चित्रकूट पर्वत है। वह स्वर्ग से भी अधिक सुखदायक है। वहाँ जाकर तुम सुख से निवास करो।

राम आदि तीनों व्यक्ति, प्रेमपूर्वक इस प्रकार कहनेवाले भरद्वाज के चरणों को नमस्कार करके, 'कौन्रै' (वृक्षविशेष) के बाजे तथा बाँसुरी बजानेवाले ग्वालों के निवास-भूत 'मुल्ले' प्रदेश (अरण्य-प्रदेश) को पार करके चले और जब अरुण किरण (सूर्य) उदयाचल से चलकर आकाश के मध्य में पहुँचा, तब उस यमुना नदी के निकट जा पहुँचे, जहाँ हरिण-शावक जल पिया करते थे।

धूलि से धूसर शरीरवाले वे तीनों उस (यमुना) नदी को देखकर प्रसन्नचित्त हुए और उसको नमस्कार करके उसमें स्नान करने का कर्त्तव्य पूरा किया। फिर, मधुर स्वादवाले कंद और फल का आहार किया और उस नदी का जल पिया। तब राम ने कहा—इस नदी के पार हम कैसे जायँ ? तब लक्ष्मण ने—

झुकनेवाले बाँसों को काटकर 'मणे' (नामक एक) लता से उनको बाँधकर एक नाव बनाई। उस पर पर्वत समान पुष्ट कंधोंवाले राम अपनी देवी-सहित आसीन हुए। लक्ष्मण दोनों हाथों से उस नाव को ढकेलते हुई तैरकर उस बड़ी नदी के पार पहुँचे।

जहाँ गन्ने के कोल्हुओं से इक्षु-रस का प्रवाह बहकर खेतों को सींचता रहता है, उक्त अयोध्या के प्रभु राम के अनुज ने अपनी मंदरपर्वत-समान, पुष्प-भूषित दोनों भुजाओं से, बारी-बारी से यमुना-जल को ढकेलना आरंभ किया। तब जल आगे बढ़कर उदयाचल के निकटस्थ पूर्वी समुद्र को भी पार कर चला और पीछे की ओर बढ़ा हुआ जल पश्चिमी समुद्र में जा पहुँचा।

सुन्दर वल्कल धारण किये हुए वे तीनों उस यमुना-धारा को पार कर दूसरे तट पर पहुँचे और कुछ दूर चलकर एक ऐसे उजड़े हुए मरु-प्रदेश के निकट पहुँचे, जहाँ वृक्षों की शाखा, कंद और मूल, झुलस गये थे। जहाँ की धरती अग्नि के समान जल रही थी और जो उसका स्मरण करनेवाले के मन को भी झुलसा देती थी।

प्रभु ने सोचा—जानकी में इस मरुप्रदेश को पार करने का सामर्थ्य नहीं है। तुरंत ही सूर्य, चन्द्र के समान शीतल किरणें फैलने लगा। उष्णता से झुलसे हुए वृक्ष पल्लवों से भर गये। दारुण अग्नि से पूर्ण प्रदेश में कमल-वन छा गये।

भूने हुए बीज जैसे उपल-खंड, बिखेरे गये पुष्पों के समान मृदु और शीतल हो गये। छिन्न तथा जली हुई लताएँ कोमल पल्लव निकालने लगीं। वहाँ के फुफकार करनेवाले विषधर सर्प, उनके विष-दंतों में अमृत प्रकट हो जाने से, अत्यन्त आनन्दित हो उठे।

मेघ उमड़-घुमड़कर गरज उठे और शीतल जल-बिन्दु बरसाने लगे। तीक्ष्ण शर लिये हुए व्याध लोग भी प्राणियों पर मुनियों के समान ही दया दिखाने लगे। बाघिनें भूख से हीन हो गई और सम्मुख आनेवाले प्राणियों का आलिंगन करने लगीं। हरिण-शावक उनके थनों से दूध पीने लगे।

शिलाओं के बिलों में रहनेवाले दारुण विषधर सर्प अब पीडा-मुक्त होकर ऐसे शान्त हो रहे, जैसे वे तरंगायित शीतल जल में पड़े हों; वहाँ के वनों के बाँस जो पहले जल उठते थे, अब मुक्ता-समान दाँतोंवाली नवयुवतियों के कंधों के जैसे ही सुन्दर दिखाई देने लगे।

हरित कंबल के समान हरियाली बिछ गई। स्थान-स्थान पर मयूर पंख फैलाकर युवतियों के समान नृत्य-भंगियाँ दिखाने लगे। उनके पार्श्वों में भ्रमर गवैयों के समान नृत्य के अनुकूल संगीत गाने लगे।

अकाल में भी पेड़ों में फल लग गये। बिना मूलवाले पौधों में भी कंद उत्पन्न हो गये। सर्वत्र पुष्पलताएँ आभरण-भूषित युवतियों के समान दिखाई देने लगीं। उत्तम शील से बढ़कर अन्य कौन-सी तपस्या आचरणीय है? (अर्थात्, शील ही सबसे बड़ी तपस्या है।)

व्याधों के निवास ऋषियों के आश्रम जैसे हो गये; माणिक्य-कांतिवाले इन्द्र-गोप (कीट) स्थान-स्थान पर फैल गये। कोकिल घने वृक्षों में बैठी विरह-पीडित कोकिल-बालाओं को गा-गाकर शांत करने लगे। करीर के वृक्ष भी हरे-भरे होकर कोमल पल्लवों से भर गये।

वह वन पहले इस प्रकार झुलसा हुआ था, जिस प्रकार एक निश्चित अवधि देकर युद्ध करने के लिए जानेवाले वीरों को गाढ आलिंगन करके भेज देने के पश्चात् उनकी विरहिणी पत्नियों का मन झुलस जाता है। अब वह इस प्रकार लहलहा उठा, जिस प्रकार उन योद्धाओं के लौट आने पर उन युवतियों का मन लहलहा उठता है।

उस मरु-प्रदेश को उन तीनों ने धीरे-धीरे पार किया; फिर वे उस चित्रकूट पर्वत पर जा पहुँचे, जहाँ मत्तगज, आकाश में प्रकाशमान चन्द्र के बादलों के मध्य छिप जाने पर, मेघ को देखकर हथिनी समझ लेते हैं और ताड़ (वृक्ष)-जैसी अपनी विशाल सूँड़ को पसारकर उस (मेघ) को छूने की चेष्टा करते हैं। (१–४७)

●

अध्याय ८

चित्रकूट पटल

हमारे लिए पूज्य देवताओं तथा हम जैसे मनुष्यों के लिए जो एक समान ही अविज्ञेय हैं, वैसे अनघ, सुन्दर नयनोंवाले तथा सहस्र नामवाले अमल विष्णु (के अवतार राम), यौवन से परिपूर्ण कलापी-तुल्य जानकी को चन्दन-वृक्षों से भरे, स्वर्ण से पूर्ण उस (चित्रकूट) पर्वत की प्राकृतिक शोभा दिखाने लगे।

करवाल तथा बरछा—दोनों एक साथ रखे गये हों, ऐसे लगनेवाले नयनों से युक्त (हे सीता)! इस पर्वत के पाद-प्रदेश में एला की लताएँ तथा तमाल फैले हैं। इस पर्वत की सानुओं पर सोनेवाले दीर्घ तथा जल से भरे मेघों एवं हाथियों में कोई भेद ज्ञात नहीं होता।

हे रक्त लगे करवाल-जैसे लाल रेखाओं से युक्त नयनोंवाली ! इस उन्नत पर्वत पर उछल-कूद करनेवाला पहाड़ी बकरा, (विष्णु के प्रतिपादक) वेदों[1] के समान शोभायमान मरकत रत्नों के कांति-पुंज से आवृत होकर सूर्यदेव के हरितवर्ण अश्व के समान दिखाई पड़ता है।

रत्नहार से भूषित स्तनोंवाली हे कलापी ! मत्तगजों को निगलनेवाले विशाल उदरवाले अजगरों की केंचुलियाँ बाँसों के झुरमुटों में लगी हुई हिल रही हैं। वे (केंचुलियाँ) उद्यानों से घिरी अयोध्या के सौधों पर फहरानेवाली श्वेतपट-युक्त ध्वजाओं-सी लगती हैं।

लवण-समुद्र से उत्पन्न न होकर क्षीर-समुद्र में से उत्पन्न अमृत-समान हे सुन्दरी ! (पर्वतों के) प्रवालमय सानुओं में यत्र-तत्र कवरीमृगों के बाल हिलते हुए ऐसे दिखाई पड़ते हैं, जैसे निर्झर बह रहे हों। उनको देखो।

क्रोध से भरे सिंह से आहत होकर मत्तगज के गिरने पर उसके रक्त के साथ उसके सिर से जो गजमुक्ता बिखर पड़ती हैं, वे प्रणय-कलह में मानिनी स्त्रियों के द्वारा फेंके गये रक्त-चंदन लगे मोती-जैसे लगते हैं।

इस पर्वत के शिखर पर जब चंद्रमा दिखाई पड़ता है, तब इस पर्वत के पद्मराग रत्नों की कांति जटाजूट का दृश्य उपस्थित करती है। इसके उज्ज्वल निर्झर गंगा की समता करते हैं। इस प्रकार, यह पर्वत वृषभ पर आरूढ होनेवाले भगवान् (शिव) के समान लगता है।

हाथियों को निगलनेवाले अजगर (उन हाथियों के मद-जल प्रवाह को न सहकर) उनको अपने उज्ज्वल माणिक्यों के साथ ही छोड़कर चले जाते हैं। तब शिलाओं पर 'वेंगै' (नामक वृक्ष के सुनहले) पुष्पों के साथ पड़े हुए वे माणिक्य उन हाथियों के मुखपट्ट का दृश्य उपस्थित करते हैं।

---

१. विष्णु का रंग श्यामल है, अतः उनका वर्णन करनेवाले वेदों का रंग भी श्यामल माना गया है।

'एक सूत्रयुगल रत्नजटित कलशों को ढो रहा हो।'—यों सूक्ष्म कटि तथा पुष्ट स्तनों से युक्त हे पुष्पलते! इस पर्वत पर के चंदन-वृक्ष मानों आकाश-मार्ग को ही रोक रहे हैं और चंद्रमा, जैसे इन वृक्षों के बीच में से होकर जा रहा है, यह सुन्दर दृश्य देखो।

चंद्रकला-जैसे (आकारवाले) दाँतों से शोभायमान हे देवी! हाथी, वृक्ष की शाखाओं पर लगे मधु के छत्ते पर की मक्खियों को उड़ाकर उसमें स्थित सुगंधित अरुण वर्ण मधु को उठाकर अत्यधिक प्रेम के साथ पूर्ण गर्भ से युक्त अपनी हथिनी के मुँह में डाल देता है, यह दृश्य देखो।

सृष्टि की रक्षा करनेवाले भगवान् (विष्णु) यद्यपि माया में छिपे रहते हैं, तथापि इंद्रियों का दमन करनेवाले योगियों के लिए अदृश्य नहीं रहते। उसी प्रकार, इस पर्वत पर रहनेवाले दिव्य हयग्रीव (घोड़े के जैसे मुखवाले) मानव छिप जाने पर भी यहाँ की स्फटिक शिलाओं में (प्रतिबिंबित होकर) प्रकट दीख पड़ते हैं, यह देखो।

नर्त्तनशील कलापी से भी सुन्दर और कोकिल के जैसे स्वरवाली हे सीते! यहाँ के उन किन्नरमिथुनों को देखो, जो इस प्रकार गा रहे हैं कि अपने प्रियतमों से मान करती हुई पर्वतवासी स्त्रियाँ (उन गानों को सुनकर) द्रवितचित्त होकर स्वयं अपने प्रियतमों को खोजने लगती हैं।

किसी धनुर्वीर के धनुष के समान शोभायमान ललाटवाली! हे कुलदीपिके! अरण्य-निवासी, लंबी जड़वाले 'कवलै' (नामक) कंद को खोदकर ले जाते हैं। उनके खोदने से जो गड्ढे पड़ जाते हैं, उनको लंबे बाँसों के टकराने से झरनेवाले मधु के छत्ते (अपने मधु से) भर देते हैं।

नारीत्व-रूपी शरीर के लिए प्राणतुल्य हे सुन्दरी! देखो, जलाशय में उसके साथ आनन्द से डुबकी लगानेवाली वानरी जब वानर पर पानी उछालती है, तब वह (वानर) पर्वत के दूसरे पार्श्व में जाकर वहाँ के एक मेघ को पकड़कर हिलाने लगता है—(जिससे वर्षा की बूँदें बिखर पड़ती हैं।

बत्ती के बिना ही अमृत में जलनेवाले उत्तम दीपक-सदृश हे देवी! उन माणिक्य-मय शिलाओं को देखो, जो अपनी कांति से अंधकार को चीर डालती है और अपने स्थान से कभी न हटते हुए मंडलाकार सूर्य के समान लगती हैं।

अरुंधती (जैसी पतिव्रता) को भी सच्चे शील का आदर्श दिखानेवाली लक्ष्मी-तुल्य, हे सुन्दरी! जब कालवर्ण भ्रमरों के झुण्ड 'वेंगे' वृक्ष की शाखा पर बैठते हैं तब वे शाखाएँ झुक जाती हैं। फिर, उन (भ्रमरों) के उड़ जाने पर वे ऊपर उठ जाती हैं; वे शाखाएँ ऐसी लगती हैं, जैसे अपने स्वर्णमय पुष्पों को बिखेरकर (हमारे) चरणों पर नमस्कार कर रही हों।

उज्ज्वल ललाट तथा शोभायमान आभरणों से युक्त हे देवी! हे पल्लवित शाखा-समान सुन्दरी! सूर्य को छूनेवाले इस पर्वत पर 'तिनै' (एक अनाज) की खेती की रखवाली करनेवाली तीक्ष्ण बरछे-जैसे नयनोंवाली स्त्रियाँ, फसलों पर आनेवाले पक्षियों पर

घुँघुचियाँ फेंकती हैं। वे घुँघुचियाँ आकाश में उड़ते हुए ऐसी लगती हैं, जैसे (आकाश से) नक्षत्र ही गिर रहे हों।

दृढ धनुष को धारण करनेवाले वीरों के फरसे से कटकर गिरी हुई अगरु की लकड़ियों को जलाने से उठनेवाला धूम-समूह, ब्राह्मणों के होम-कुंड के धूम के साथ मिलकर ऐसा फैल रहा में, जैसा कोई विशाल कालवर्ण पर्वत-शिखर हो।

नव-पुष्प, अगरु-धूम, आदि से सुगंधित होकर निरंतर वर्षा करनेवाले मेघ-सदृश काले तथा दीर्घ केशों के भार से कंपित होनेवाली सूक्ष्म कटि से युक्त हे मयूर-तुल्य सुन्दरी! गगन में नक्षत्रों को चमकते हुए देखकर सूखी हुई पर्वत-नदियाँ भी अपने रत्न-समुदाय को चमका रही हैं।

अपने प्रियतमों से रूठकर चलनेवाली विद्याधर-सुन्दरियों से मनोहर, अलक्तक से अंचित छोटे-छोटे पदों के चिह्न, मेघों को छूनेवाली माणिक्यमय शिलाओं में अदृश्य हो जाते हैं और मरकतमय शिलाओं पर रक्त वर्ण दिखाई पड़ते हैं, देखो।

रक्त स्वर्णमय गंभीर नाभि से शोभायमान हे मेरी सहधर्मिणी! निर्झरों में स्नान करने के लिए आनेवाली देवस्त्रियों के द्वारा अपने काली मिट्टी-जैसे केशों से उतारकर फेंके गये कल्पवृक्ष के पुष्प, प्रभूत रत्न-राशियों सहित झरनेवाले निर्झरों के साथ गिर रहे हैं, देखो।

देखो, मुखरित वीर-कंकण और धनुष से युक्त किसी व्याघ्र के द्वारा, खेती की रक्षा के लिए (बजाने के उद्देश्य से) रखे हुए पटह (नामक चमड़े के बाजे) को एक वानर खड़ा होकर बजा रहा है, देखो। एक व्याघ्र-स्त्री चन्द्र को पकड़कर प्रेम से उसके कलंक को पोंछ देने की चेष्टा कर रही है।

देखो, घने माधवीलता-कुंजों में पल्लव की शय्याएँ पड़ी हैं, जिनपर देवस्त्रियाँ विश्राम करती थीं और अब उनके चिरकालिक वियोग की सूचना देती हुई-सी झुलसकर काली पड़ी हुई हैं।

स्मरण-मात्र से अत्यधिक आनन्द प्रदान करनेवाली अमृत-समान आभरण से विभूषित सुन्दरी! देखो, मधु से भरे 'वेंगे' वृक्षों में तथा 'कोंगे' वृक्षों में स्थान-स्थान पर लगे हुए हिलनेवाले झूलों पर बैठकर पहाड़ी स्त्रियाँ जब पर्वतीय रागों का आलाप करती हैं, तो उनसे आकृष्ट होकर अशुण (नामक) हरिण[1] उनके समीप आ जाते हैं।

महुए के पुष्प तथा इन्द्रगोप के समान अधर से युक्त हे सुन्दरी! इस पर्वत पर के निर्झरों से उठनेवाले तुषार-बिन्दुओं के समुदाय, अप्सराओं के नृत्य के समय बिखरे हुए चन्दन आदि सुगन्धित लेप, कस्तूरी-कुंकुम आदि का लेप एवं कल्पपुष्पों के मकरंद से संयुक्त हैं।

जैसे कोई लता, इंगुलिक के पत्रलेखों से चित्रित उत्तम स्वर्णमय कलशों से शोभायमान हो, यों शोभित होनेवाली हे सुन्दरी! मध्याह्न काल में असंख्य किरणोंवाला

१. यह प्रसिद्ध है कि 'अशुण'-मृग संगीत सुनकर मुग्ध हो खड़ा रहता है और संगीत समाप्त होने पर व्याकुल होकर झट अपने प्राण छोड़ देता है।

सूर्य जब इस स्वर्णमय उन्नत पर्वत पर पहुँचता है, तब यह पर्वत ऐसा लगता है, जैसे यह स्वर्ण-मुकुट धारण कर रहा हो ।

नारियों के तिलक-समान हे सुन्दरी ! बाँसों से बिखरे हुए मुक्ता-माणिक्यमय शिलाओं पर इस प्रकार पड़े हैं, जिस प्रकार लालिमा से युक्त आकाश पर तारे चमक रहे हों ।

सूक्ष्म रंध्रों से युक्त बाँसुरी की ध्वनि और शीतल तथा मधुर स्वरवाली वीणा की ध्वनि से भी अधिक मधुर वचनों से युक्त, हे शुक-समान सुन्दरी ! सर्वत्र लाल पुष्पों से भरे हुए पलाश-वृक्षों का वन ऐसा लगता है, जैसे (सारा वन) अग्नि की ज्वाला में जल रहा हो ।

'कांदल' पुष्प को कंकण पहनाया गया हो, यों अति सुन्दर करों से शोभायमान हे सुन्दरी ! बड़े हाथियों के बच्चे अपूर्व तपस्या से सम्पन्न ऋषियों के लिए अपनी सूँड़ों में दूर-दूर के निर्झरों से पानी भरकर लाते हैं और उन ऋषियों के कमंडलुओं में भर देते हैं ।

आम की फाँक-जैसे सुन्दर नयनोंवाली कलापी-तुल्य हे सुन्दरी ! लम्बी तथा झुकी हुई पूँछवाले तथा द्रवित चित्तवाले वानर, वार्द्धक्य से पीडित तथा मन्द दृष्टिवाले व्याकुल मुनियों को जाने का मार्ग दिखाकर उनकी सेवा करते हैं । अहो !

साँप के फन एवं रथ का उपहास करनेवाले विशाल जघन से युक्त, हे सुन्दरी ! देखो, बड़े पंखोंवाले मयूर यज्ञोपवीत से शोभायमान वक्षवाले ब्राह्मणों के होम-कुंडों की अग्नि को अपने दीर्घ पंखों से प्रज्वलित कर रहे हैं ।

दीर्घ केशों से शोभायमान सुन्दर मयूर-तुल्य स्त्री-कुल का भूषण, हे देवी ! आम्र-वृक्षों पर फलों को खानेवाले वानर, लोकहित में निरत वेदज्ञ ब्राह्मणों के वक्ष पर धारण किये जानेवाले यज्ञोपवीत के लिए रेशम के कीड़ों के घोंसलों एवं कपास के पौधों से आवश्यक रेशे ला देते हैं ।

नारियों की सृष्टि के लिए आदर्श बनी हुई, हे लक्ष्मी-तुल्य सुन्दरी ! वानर, आम्र, पनस और कदली-वृक्षों से बड़े-बड़े पके हुए अति मधुर फल चुन-चुनकर (मुनियों को) ला देते हैं और जंगली सूअर कंदों को उखाड़कर ला देते हैं ।

तुम्हारे कर में रखने योग्य, लाल मुखवाले तोते, पर्वत के 'तिनै' धान्य, ज्वार, सेम आदि की बीजों एवं झुकनेवाले बाँस में उत्पन्न होनेवाले चावल को, असत्यरहित ऋषियों के आश्रमों में जाकर दे आते हैं ।

बड़े-बड़े अजगर, जो चिंघाड़नेवाले और दाँतों से युक्त बड़े हाथियों को भी निगलने की शक्ति रखते हैं, ज्ञानियों के समान इंद्रिय-दमन करके यहाँ रहते हैं और जटाधारी मुनियों के मार्ग में सीढ़ियाँ बनकर पड़े रहते हैं ।

देखो, सूर्य के किरणों को ढकनेवाले अनेक स्वर्णमय विमान[1] यहाँ आते जाते रहते हैं, मानों वे (विमान) जल के सोतों से युक्त पर्वत पर अपूर्व तपस्या करनेवाले तथा (भगवान् के ध्यान में) अपने दोनों नयनों से यों आनन्दाश्रु बहानेवाले, जैसे जल का घड़ा ही उड़ेल रहे हों, ऋषियों को मोक्ष-लोक में ले जाने के लिए ही यहाँ आते हों ।

---

१. ये विमान चित्रकूट पर्वत पर संचरण करनेवाले देवों के हैं, जो ऐसे लगते हैं, मानों मुनियों को मोक्ष-लोक में ले जाने के लिए आये हुए हों ।

अग्नि में तप्त, तैल से अर्चित अति तीक्ष्ण बरछे-जैसे अंजनांचित एवं यम को भी व्याकुल करनेवाले नयनों से शोभायमान, हे सुन्दरी ! देखो, (बच्चे देने की) पीड़ा से युक्त हथिनियों को हाथी अपनी सूँड़ों का सहारा दे रहे हैं।

विष-स्वभाववाले नयनों से युक्त हे देवी ! तुम्हारी कटि को देखकर उसे बिजली समझकर, फनवाले सर्प डर जाते हैं और तड़पकर बिल में घुस जाते हैं। मदपूर्ण घटवाले हाथी, मेघ-गर्जन को सुनकर सिंह-गर्जन समझकर डर जाते हैं और अस्त-व्यस्त हो भागने लगते हैं।

गृहस्थी में रहकर ही सत व्रतों का पालन करनेवाले चक्रवर्ती के पुत्र (राम) ने, आभरणों से भूषित (सीता) देवी को इस प्रकार के अनेक दृश्य, उनका वर्णन करके दिखाये। फिर, उनका स्वागत करने के लिए सम्मुख आये हुए मुनियों को नमस्कार करके उन पाप-रहित मुनियों के अतिथि बने।

महिमामय सुन्दर तुलसी-मालाधारी भगवान् (विष्णु) ने वैर से युक्त अंधकार-सदृश राक्षस-कुल के विनाश की कामना करके कालनेमि[1] नामक राक्षस पर ही अपना चक्र चलाया है, इस प्रकार (का दृश्य उपस्थित करते हुए) सूर्य अस्ताचल पर जा पहुँचा।

जब विष्णु का चक्र असुर (कालनेमि) के शरीर में जाकर लगा था, तब उसके शरीर से निकले हुए अत्यधिक रक्त प्रवाह के समान ही आकश में सर्वत्र लाली फैल गई और उस राक्षस के मुँह से गिरे हुए वक्र दंत के समान ही चंद्रकला प्रकाशमान हो गई।

सूर्य के अस्त होने पर, कमलपुष्प, स्त्रियों को वदन की शोभा प्रदान करके मुकुलित हो गये। आकाश-रूपी जलाशय में सर्वत्र श्वेतवर्ण कुमुद-रूपी नक्षत्र चमक उठे।

उस समय वानर और वानरियाँ वृक्षों की ओर बढ़े, हाथी और हथिनियाँ जलाशयों की ओर बढ़े, सुन्दर पक्षी घोंसलों की ओर बढ़े और तत्त्वज्ञान से संपन्न प्रभु (राम) संध्याकालीन कार्यों की ओर बढ़े (अर्थात्, सायंकालीन कृत्यों को करने गये)।

घने दलोंवाले सुगंधित पुष्पों में से कुछ बंद हुए। निर्दोष तथा सुगंध से भरे पुष्पों में से कुछ विकसित हुए; प्रभु के साथ, अनुज (लक्ष्मण) तथा अमृत-समान (सीता) देवी के कर एवं नेत्र भी कमलपुष्पों के समान ही बंद हुए (अर्थात्, वे तीनों हाथ जोड़कर और नयन बंद करके भगवान् का ध्यान करने लगे)।

संध्याकाल व्यतीत होने पर (रात्रि के आगमन पर) उत्तम स्वभाववाले लक्ष्मण ने, अनघ राम तथा उनकी सूक्ष्म कटिवाली देवी के निवास के लिए विचार करके वहाँ किस प्रकार से एक पर्णशाला बनाई, हम उसका वर्णन करेंगे।

लक्ष्मण ने छोटे-छोटे बाँस के टुकड़ों को लेकर खड़ा किया और फिर वक्रता से हीन सीधे तथा लंबे बाँसों को उनपर आड़े रखा; फिर उनपर शहतीरों की तरह बाँसों को रखकर ठाट बनाई और उनपर पत्ते बिछाये।

---

१. कालनेमि हिरण्यकशिपु का एक पुत्र था। उसके एक सौ सिर और एक सौ हाथ थे। विष्णु के द्वारा अपने पिता के मारे जाने पर वह अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और देवों को परास्त करके अपना पराक्रम दिखाने लगा। तब विष्णु भगवान् ने चक्र प्रयोग करके उसके शिर और हाथों को काट डाला।

छप्पर पर शालवृक्ष के पत्ते बिछाये और उन्हें मूँज से बाँध दिया। नीचे खड़े किये बाँसों के टुकड़ों के बीच में मिट्टी भरकर दीवारें खड़ी कीं और उनपर जल छिड़ककर (दीवारों को) समतल बनाया।

पर्णशाला के भीतर शास्त्रोक्त रीति से राम और सीता के (सोने के) लिए अलग-अलग आसन बनाये; लाल कुंकुम की मिट्टी से उन्हें लीपा और दीवारों में भीतर की ओर नदी में उत्पन्न रत्न और मोती चिपकाये।

(पर्णकुटीर के भीतर) मयूर-पंखों का एक वितान लगाया। अपनी छुरी से काट-काटकर लटकनेवाले तोरन बनाकर लगाये और नदी-तट के बाँसों को काटकर उस पर्णशाला के चारों ओर एक प्राचीर (बाड़) भी बनाया।

वह प्रभु, जो चतुर्मुख के हृदय में एवं हम जैसे अज्ञ लोगों के हृदयों में एक समान ही रहता है, स्वर्णमय देह कांति से युक्त लक्ष्मी-समान सीता देवी के साथ अपने अनुज के द्वारा इस प्रकार निर्मित पर्णकुटीर में प्रविष्ट हुए।

ज्ञानियों का अविद्या-रहित हृदय है, महिमामय वेद है, या पवित्र क्षीर-सागर है, या वैकुंठधाम ही है—यों कहने योग्य उस पर्णकुटीर में अगाध प्रेम से प्राप्त होनेवाले प्रभु (राम), प्रेम-पूर्ण मन में आनंदित होकर निवास करने लगे।

सीता देवी के, पुष्प से भी कोमल, चरण काँटों और कंकड़ों से भरे अरण्य में चले, मेरे दोषहीन भाई के करों ने यह पर्णशाला बना दी। अहो! जिन्हें कोई सहायक नहीं होता, उन्हें भी कौन-सी वस्तु अप्राप्य होती है? (भाव यह है—निस्सहाय व्यक्ति के लिए उसके समीपस्थ पदार्थ ही सब आवश्यकताएँ पूर्ण करते हैं।)

यह विचार करके फिर राम ने अपने अनुज से कहा—दो पर्वतों के समान पुष्ट कंधोंवाले! तुमने ऐसी सुन्दर पर्णशाला बनाना कब सीखा? उस समय उनके कमल-समान विशाल नयनों से अश्रु-बिंदु बरस पड़े।

अपार संपत्ति को प्रदान करनेवाले (दशरथ) की आज्ञा से वन में आकर उत्तम धर्म का पालन करते हुए मैंने सूर्य के समान उज्ज्वल सत्य-रूपी यश को प्राप्त किया, ऐसा कहने में क्या तथ्य है? मैं तो अनेक दिनों से तुमको कष्ट ही देता आ रहा हूँ। इस प्रकार, राम ने बड़ी मनोवेदना के साथ कहा।

प्रभु के यह कहने पर लक्ष्मण ने चिंतित होकर उनकी ओर देखा और कहा—हे मेरे पितृ-तुल्य! (हमारे) कष्टों का अंकुर तो पहले ही (अर्थात्, जब कैकेयी को दशरथ ने वर दिये) फूट निकला था। (भाव यह है, हमारे इन कष्टों का कारण आप नहीं हैं। इनका कारण कैकेयी का वर ही है, अतः आप चिंतित न हों।)

फिर, रामचन्द्र ने मन में सोचा—जो हो, अब मुझे और कुछ नहीं करना है। अब (लक्ष्मण के कष्टों को देखकर) मैं धर्म के मार्ग को छोड़कर नहीं जा सकता। फिर, अपने ज्येष्ठ भ्राता की सेवा में आनन्द पानेवाले लक्ष्मण की इस मानसिक ताप को (कि मेरे बड़े भाई वनवास का कष्ट भोग रहे हैं) जानकर राम सोचने लगे—इस (लक्ष्मण) के मानसिक कष्ट को दूर करना असंभव है।

फिर अग्रज (राम) ने अपने छोटे भाई को देखकर कहा—संसार में प्राप्त होनेवाली संपत्ति सीमाबद्ध होती है। किन्तु, भविष्य में अपार आनन्द उत्पन्न करनेवाले हमारे इस वनवास-रूपी सुख के बारे में विचार कर देखो। इसमें क्या कमी है ?

दृढ धनुर्धारी रामचन्द्र अपने अनुज को सांत्वना देकर, देवों की स्तुति प्राप्त करते हुए, अपने व्रत का पालन करते रहे। उधर महान् तपस्वी (वसिष्ठ) की आज्ञा से (केकय देश को) गये दूतों का क्या हुआ—अब हम उसका वर्णन करेंगे। (१—५८)

●

अध्याय ९

चिता-शयन पटल

असत्य-रहित अनुपम दूत, जो अयोध्या से चले थे, रात-दिन वेग से चलकर (केकय देश में) भरत के भवन में पहुँचे। वहाँ पहुँचकर द्वार-रक्षकों से कहा—द्वाररक्षको ! राजा भरत को हमारे आगमन का समाचार दो।

'आपके पिता का समाचार लेकर दूत आये हैं।'—यह वचन सुनकर भरत अत्यन्त आनंदित हुआ और प्रेमाधिक्य से उन दूतों को अपने निकट लाने की आज्ञा दी। जब वे दूत निकट जाकर नमस्कार करके खड़े हुए, तब भरत ने कहा—मुकुटधारी चक्रवर्त्ती, किंचित् भी कष्ट के बिना सुखी हैं न ?

दूतों ने कहा—'चक्रवर्त्ती शक्तिशाली हैं।' यह सुनकर आनन्दित हो फिर भरत ने प्रश्न किया—मेरे प्रभु (राम) के साथ आभरण-भूषित अनुज (लक्ष्मण) अक्षुण्ण वैभव से युक्त हैं न ? दूतों ने 'हाँ' कहा। तब भरत ने राम को उद्दिष्ट करके अपने शिर पर हाथ जोड़े।

फिर, यथाक्रम सब बंधुओं के समाचार सुनकर भरत आनन्दित हुए। तब दूतों ने भरत से यह कहकर कि चित्रित करने के लिए असाध्य रूप से संपन्न हे भरत ! चक्रवर्त्ती का यह श्रीमुख (अर्थात्, चिट्ठी) है, पत्र दिया।

उनके यह कहने पर भरत ने उस पत्र के प्रति नमस्कार किया और उठकर अपने स्वर्ण-आभरण से भूषित दीर्घ कर में उसे लिया और द्रवित-चित्त होकर सद्योविकसित पुष्पों से भूषित अपने शिर पर उसे रख लिया।

यों शिर पर रखने के पश्चात् भरत ने, ऊपर से चंदन से लिप्त मिट्टी लगाकर बंद किये गये उस पत्र के चोंगे को खोलकर देखा। उसका समाचार पढ़कर उन दूतों को कोटि से भी अधिक धन दिया।

तब भरत इस उमंग में कि वे अपने ज्येष्ठ भ्राता के दर्शन करनेवाले हैं, उज्ज्वल कांति फैलानेवाली हँसी से युक्त हुए, पुलकित हुए और उस पत्र पर सद्यः तोड़कर लाये गये पुष्प डाले।

तुरंत भरत ने अपनी सेना को सन्नद्ध होने की आज्ञा दी और यह भी न विचार कर कि वह मुहूर्त्त यात्रा के लिए अच्छा है या नहीं, कैकेयराज को प्रणाम करके, उनकी आज्ञा लेकर, अपने भाई (शत्रुघ्न) के साथ घोड़े जुते हुए रथ पर आसीन होकर चल पड़े।

उस समय हाथी (भरत को) घेरकर चल पड़े। रथ कोलाहल करते हुए साथ चल पड़े। बड़े महिमापूर्ण राजा लोग घेरकर चल पड़े। करवालधारी पदाति-सेना चल पड़ी। शंख बज उठे। नगाड़े, मत्स्यों के निवास समुद्र के समान गरज उठे।

ध्वजाएँ एकत्र होकर निकलीं। निशान निकले। आम के टिकोरे-जैसे नयनों-वाली युवतियों के आरूढ होने योग्य हथिनियाँ चलीं। मेघों के गरजते समय कौंधनेवाली बिजली के समान सर्वत्र आभरण चमक उठे।

अनेक रथों पर रखे गये विविध वाद्य बड़ी ध्वनि करने लगे। नारियों की पुष्प-मालाओं के भ्रमर झंकार भरने लगे। शर के समान वेगगामी अश्व मार्ग पर चलने लगे।

अपनी नासिका से साँस छोड़ते हुए बाँसुरी की-सी ध्वनि करनेवाले, मुख पर आभरणों से भूषित, गगन पर भी उड़ जानेवाले, निश्चित समय में कितनी भी दूर चले जानेवाले, झुकी हुई गरदनवाले अश्व चल पड़े।

धनुर्विद्या में निपुण, करवाल-युद्ध में चतुर, खड्ग-युद्ध में कुशल, मल्ल-युद्ध में प्रवीण, बरछे, भाले आदि शस्त्रों के अभ्यासी योद्धा तथा पुराने हाथीवान भी घेरकर चले।

परस्पर टकरानेवाले भैंसे, बकरे, रक्त का चिह्न देखकर लड़ने को झपटनेवाले कुक्कुट, बाज, 'करुंपूल्' (नामक लड़नेवाला पक्षी-विशेष), 'कौदारी' (नामक लड़नेवाले पक्षी-विशेष) आदि को पालनेवाले जो कभी उत्तम मार्ग पर न चलनेवाले थे, ऐसे मनुष्य भी घेरकर चले।

भरत कहीं त्वरित गति से आगे न निकल जायँ, इस आशंका से आतुर होकर विद्या, ज्ञान आदि से भरे हुए व्यक्ति आगे-आगे चलने लगे। इस प्रकार चलते हुए वे ऐसे लगते थे, जैसे शापवश इस धरती पर जन्म लिये हुए देवता सद्ज्ञान पाकर पुनः स्वर्ग को जा रहे हों।

वंदी-मागधों के मधुर गीत गगन को भरने लगे। जैसे प्राण शरीर में व्याप्त रहता है, उसी प्रकार मर्दल-ध्वनि सब गीतों में व्याप्त हो गई।

बजनेवाले नगाड़ों की ध्वनि से भी बढ़कर वेदज्ञ ब्राह्मणों के अशीर्वादों की ध्वनि थी। वृषभ-समान मल्ल-वीरों के गर्जन से भी बढ़कर वंदी-मागधों के स्तुति-पाठ की ध्वनि थी।

भरत सात दिन चलकर नदियों, काननों और विशाल पर्वतों को पारकर उस कौशल देश में जा पहुँचे, जहाँ गन्ने के कोल्हुओं से निकला हुआ रस नालों में, बाँध तोड़ता हुआ, बह चलता है और अंकुरों से भरे खेतों को भर देता है।

खेत हलों से शून्य थे। युवकों की भुजाएँ पुष्पमालाओं से शून्य थीं। शीतल धान के खेत पानी से शून्य थे। कमल में वास करनेवाली संपत्ति की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी उस देश को छोड़कर चली गई थीं।

मधुर फलों के रस विशाल जलाशयों में भर रहे थे और चारों ओर बहकर व्यर्थ हो रहे थे। मनोहर पुष्पों के समूह तोड़े न जाकर पौधों पर ही विकसित होकर, फिर कुम्हलाकर झर रहे थे।

फसल को काटने का उचित समय को जाननेवाले किसानों के अभाव से शालि-धान के पौधे, आम्र-रस की धारा के बहने के कारण, सिर झुकाये टूटकर खड़े थे और धान धरती पर झरकर अंकुरित हो रहे थे।

तिलपुष्प-जैसी नासिकावाली तथा उन खेतों में जहाँ पक्षी आनन्द से संचरण करते थे, काम करनेवाली अंत्यज-नारियाँ काम छोड़कर दुःखी पड़ी थीं, मानों वे अपने प्रियतमों से मान करके निराने का काम छोड़ बैठी हों।

शुक मौन हो बैठे थे। सुन्दर केशोंवाली स्त्रियाँ अपनी सखियों का दौत्य करती हुई उन (सखियों) के प्रियतमों के निकट नहीं जा रही थीं। नगाड़े नहीं बज रहे थे। स्वर्ण से अलंकृत वीथियों में विवाह आदि के जुलूस नहीं निकल रहे थे।

संगीत-शास्त्रों में कथित विधान के अनुसार बनाई गई मधुर नादवाली बाँसुरी अब नहीं बज रही थी। नृत्यशालाओं तथा जलाशयों में नृत्य तथा जल-क्रीडा नहीं हो रही थीं। (लोगों के) शिर पुष्पालंकार से विहीन थे। विद्युत्-निवारक यंत्रों से युक्त प्रासाद धान कूटनेवाली स्त्रियों के गीतों से विहीन थे।

(लोगों के) प्रकाशमान मुख हास-हीन थे। सौध सुगन्धित अगरु-धूम से विहीन थे। दीप पुष्ट ज्वाला से विहीन हो मंद पड़े थे। नारियों के केश मधुपूर्ण पुष्पों से विहीन थे।

भली भाँति बढ़े हुए तथा लहलहाते हुए सस्य के पौधे, विशाल नालों के निकट रहने पर भी किसी के द्वारा उन नालों से पानी को मोड़कर न बहाने के कारण उसी प्रकार शुष्क खड़े थे, जिस प्रकार निष्ठुर लोभी के द्वार पर, दान पाने की इच्छा से आया हुआ व्यक्ति हो।

वर्णन करने को भी असाध्य, अपार संपत्ति से समृद्ध वह कौशल देश, पुष्पहीन हो, पुष्प पर आसीन लक्ष्मी से विहीन हो एवं सारी शोभा से रहित होकर प्राण-विहीन देह के समान लगता था।

इस प्रकार के कौशल देश को देखकर भरत बहुत दुःखी हुए, किन्तु वहाँ घटित किसी वृत्तान्त को न जानने से यह सोचते हुए कि शायद हम अब कोई शोक-समाचार सुनने जा रहे हैं, वे रह-रहकर आह भर रहे थे।

सत्य नामक उत्तम आभरण से भूषित चक्रवर्त्ती के पुत्र भरत ने कुछ दूर आगे जाकर वेगवान् अश्वों से खींचे जानेवाले रथ से भी आगे जानेवाले अपने मन में (भावी के सम्बन्ध में) विचार करते हुए, अयोध्या के विशाल द्वार को देखा।

भरत ने उस नगर में उन दीर्घ ध्वजाओं को नहीं देखा, जो (ऐसी लगती थीं) मानों वे सहस्रकिरण (सूर्य) के पीछे-पीछे चलकर उनसे यह कहती थीं कि तुम सारे ब्रह्मांड में घूमते-घूमते थक गये हो, (यहाँ किंचित् समय ठहरकर) विश्राम कर लो, तब जाओ, और उन (सूर्य) की गति को रोक लेती थीं।

(भरत ने उस नगर में) उन नगाड़ों का शब्द नहीं सुना, जो (नगाड़े) मानों विशाल जनता को यह सूचना देते बजते रहते थे कि राजा को यथेष्ट यश देते हुए यहाँ की समस्त सम्पत्ति को ले जाओ।

भ्रमरों से पिये जानेवाले मधु से युक्त पुष्पमाला को धारण किये हुए भरत ने मंगल-गीत गानेवालों को तथा स्तुति-पाठ करनेवालों को प्रचुर मात्रा में उत्तम हाथी, हथिनी, अन्य सम्पत्ति आदि पुरस्कार के रूप में ले जाते हुए नहीं देखा।

लोक-रक्षक चक्रवर्त्ती के पुत्र (भरत) ने भूसुरों (अर्थात् ब्राह्मणों) को दान के रूप में गाय, गज, सुन्दर सम्पत्ति आदि को जाते हुए नहीं देखा।

मँडरानेवाले भ्रमरों एवं वीणा आदि से सप्त स्वर-युक्त संगीत न गाये जाने के कारण वे (अर्थात, भ्रमर और वीणा आदि वाद्य) आम के टिकोरे-जैसे नयनोंवाली (मूक) नारियों के केशों की समता कर रहे थे।

उस नगर की वीथियों में रथ, घोड़े, हाथी, शिविका, शकट आदि नहीं दिखाई देते थे। अतः, वे (वीथियाँ) जल के सूखने पर सिकतामय दिखनेवाली नदियों के समान शोभा-विहीन लगती थीं।

सज्जनों के द्वारा प्रशंसित सद्गुणों से पूर्ण भरत ने नगर के भीतरी प्रदेश को अपनी पूर्व दशा से विहीन देखकर अपने भाई (शत्रुघ्न) से कहा—हे अनुज! चक्रवर्त्ती के निवासभूत इस राजधानी की ऐसी दशा क्यों हुई?

शत्रुओं को वीर-स्वर्ग पहुँचानेवाले तथा सजल मेघ-जैसे कंधोंवाले हे भाई! यह नगर मीन-समान नयनोंवाली लक्ष्मी से विहीन विशाल क्षीर-सागर के जैसा लग रहा है, देखो।

तब उत्तम रत्न-खचित आभरणों से भूषित सिंह-समान अनुज (शत्रुघ्न) ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—ऐसा लगता है कि इस नगर में कोई अति दारुण शोकप्रद घटना हुई है, जो साधारण नहीं है। लक्ष्मी भी युगान्त तक अविनाशी रहनेवाले इस नगर को छोड़कर चली गई हैं।

इतने में, कुछ अधिक सोचने के पूर्व ही चक्रवर्त्ती-कुमार विशाल तोरण से भूषित अत्युन्नत राजप्रासाद के द्वार पर आ पहुँचे और तुरन्त अपने पिता के विश्राम-स्थान में गये।

पर्वतों को लज्जित करनेवाले ऊँचे कंधों से शोभायमान भरत ने जाकर देखा, किन्तु कहीं भी अपने पराक्रमशाली पिता को नहीं देखा। तब उनके मन में आशंका उत्पन्न हुई कि अब पिता के न देखने का कारण कुछ साधारण नहीं है।

उस समय, अपने पिता को ढूँढ़नेवाले और अपने पवित्र करों से उनके चरणों को छूने की इच्छा रखनेवाले भरत से, बाँस-जैसे कंधोंवाली एक दासी ने कहा—माता आपका स्मरण कर रही हैं। आप इधर आइए।

भरत ने आकर अपनी माता (कैकेयी) के चरणों का नमस्कार किया। माता ने मन-भर उनका आलिंगन किया और पूछा—मेरे पिता, मेरे भाई आदि सब कुशल हैं न? अपार गुणाकर भरत ने कहा—हाँ वे सब कुशल हैं।

तब भरत ने कहा—मैं उमड़नेवाले प्रेम से पूर्ण चक्रवर्त्ती के कमल-समान चरणों

को नमस्कार करने के लिए आया हूँ। पिता के दर्शन करने के लिए मेरा मन आतुर हो रहा है, पौरुष से पूर्ण तथा दीर्घ मुकुटधारी चक्रवर्त्ती कहाँ हैं, बताओ। यह कहकर भरत हाथ जोड़कर खड़ा रहा।

भरत के यह पूछने पर अव्याकुल चित्तवाली कैकेयी ने कहा—दानवों का विनाश करनेवाली सेना से युक्त तथा भ्रमरों से अंचित पुष्पमाला धारण करनेवाले चक्रवर्त्ती, देवताओं के नमस्कार का पात्र बनते हुए स्वर्ग को सिधार गये हैं, तुम चिन्ता न करो।

आहत करनेवाले वह वचन ज्योंही भरत के कानों में पड़े, त्योंही घुँघराले केशों से शोभायमान वह निःसंज्ञ होकर गिर पड़े। विलंब तक ऐसे मूर्च्छित पड़े रहे, जैसे कोई बड़ा वृक्ष वज्र से आहत होकर गिरा हो।

फिर, किंचित् प्रज्ञा प्राप्त कर भरत ने मंद पड़ी हुई अपनी मुखकांति के साथ एवं प्रफुल्ल कमल-जैसे नेत्रों में अश्रु भरकर माता को देखकर कहा—कानों में जैसे किसी ने अग्नि-ज्वाला रख दी हो—ऐसे कठोर वचन कहने का विचार तक करनेवाला तुम्हारे अतिरिक्त और कौन हो सकता है?

सुब्रह्मण्य (शिव के पुत्र कार्त्तिकेय) से भी अधिक सुन्दर वह कुमार (भरत), बड़ी वेदना के साथ उठे। पुनः धरती पर गिर पड़े। उष्ण निःश्वास भरे। रोये। फिर, ये वचन कहने लगे—

हे पिता! तुमने धर्म को विस्मृत कर दिया। दया को मिटा दिया। अत्युत्तम करुणा-रूपी संपत्ति को मिटाकर इस संसार को छोड़ चले। हाय! तुमने न्याय को भी भुला दिया। इससे बढ़कर दोष और क्या हो सकता है?

तुमने क्रोध-रूपी दुर्गुण को मिटा दिया था। काम-रूपी अग्नि को बुझा दिया था तथा लोभ आदि के समूह को भी विध्वस्त किया था। सब लोगों के मन के अनुकूल चलने-वाले, हे उदारगुण! अब दूसरों को भूलकर केवल अपने मन के अनुसार कार्य करना (अर्थात्, हम सबकी इच्छा के विरुद्ध इस संसार को छोड़ जाना) क्या उचित है?

हे प्रभु! इस कुल के महान् पूर्व-पुरुष, सूर्य आदि के वीर चारित्र्य को तुमने पुनः नवीन कर दिखाया था। ललाट-नेत्र (शिव) के दृढ धनुष को तोड़नेवाले अपने पुत्र (राम) को छोड़कर तुम कैसे चले गये?

हे तात! न्याय-मार्ग से आज्ञा-चक्र प्रवर्त्तित करनेवाले राजन्! इस संसार में किसी भी वंश के हों, सब लोग तुम्हारे सम्मुख याचक ही थे। इसलिए (यहाँ अपने समान मित्रों को न पाकर) क्या उत्तम मित्रों को पाने की इच्छा से तुम स्वर्ग गये हो?

मल्ल युद्ध में चतुर विशाल कंधोंवाले! चिरकाल से छाया देते रहनेवाले तुम्हारे श्वेतच्छत्र की विशाल छाया में विकास प्राप्त करनेवाले सब प्राणियों को व्याकुल ही छोड़कर क्या तुमने स्वयं (स्वर्ग में) कल्प-वृक्ष की छाया में सुखपूर्वक निवासकरने की इच्छा की है?

हे तात! क्या शबर के समान असुर अब भी आकाश में रहते हैं? क्या देवता लोग असुरों से हारकर अपने स्वर्ग को भी खोकर रक्षा की प्रार्थना करते हुए तुम्हारी शरण में आये थे?

तुम वेदों में प्रतिपादित अश्वमेध यज्ञ करते थे और वाद्यों के शब्द से युक्त सेना के साथ जाकर अन्य राजाओं के द्वारा समर्थित राजस्व को ब्राह्मणों को दक्षिणा के रूप में दान कर देते थे। इस प्रकार, गार्हपत्य अग्नि को प्रज्ज्वलित करते रहते थे। यह सब कार्य छोड़कर क्या तुम स्वर्ग में निष्क्रिय बैठ सकते हो?

सात हाथ ऊँचे तथा मद बहानेवाले हाथियों के स्वामी! क्या यह सोचकर कि श्यामल (राम) (शासन चक्र धारण किये बिना) खाली हाथ रहता है, उन (राम) को शासन का भार देने के लिए तुम इस संसार को छोड़कर चले गये?

तुमको तप में आसक्ति नहीं थी। अतएव, पहले की हुई बड़ी तपस्या के फलस्वरूप प्राप्त रामचन्द्र को, राज्य मिलने पर होनेवाले अभिषेक के उत्सव की शोभा भी, अपने विशाल नयनों से देखने का भाग्य तुम्हें नहीं मिला।

पिता की मृत्यु से उत्पन्न दुःख का सहन न करते हुए भरत ने इस प्रकार के वचन कहे और वे इस प्रकार पिघल उठे कि उनके नेत्रों से नदी-प्रवाह के समान अश्रुधारा बह चली। फिर, वह यम-सदृश धनुर्धारी भरत स्वयं ही अपने आपको सांत्वना देकर किंचित् स्वस्थ हो बोले—

मेरे पिता, मेरी माता, मेरे भगवान्, मेरा भाई, सब कुछ वे अपार सद्गुणाकर राम ही हैं। अतः, जबतक उनके वीर-वलय-भूषित चरणों को नमस्कार न करूँगा, तबतक मेरे मन की पीडा दूर नहीं होगी।

वह वचन सुनते ही घोर वज्र-तुल्य वचनवाली कैकेयी पुनः बोल उठी—हे शत्रु-नाशक धनुर्धारी! वह (राम) अपनी देवी तथा भाई-सहित वनवास को गया है।

(राम) वनवास के लिए गया है!—कैकेयी के कहे इस वाक्य को सोचकर भरत ऐसे हुए, जैसे उन्होंने आग निगली हो। वे आशंकित होकर बोले—अहो! मेरे पापकर्म कितने भयंकर हैं? न जाने, मुझे अभी और क्या-क्या समाचार सुनने हैं।

पीडा से मौन रहनेवाले उस पुरुष-श्रेष्ठ (भरत) ने पूछा—वीरवलय-धारी उन राम का अरण्य में जाना क्या किसी बुरे कार्य के परिणामस्वरूप हुआ? या यह दैवी कोप का परिणाम है? अथवा अति बलवान् नियति का विधान है? किस कारण से यह हुआ?

यदि राम स्वयं कोई बुरा कार्य भी करें, तो वह (कार्य) इस संसार के सब प्राणियों के लिए माता के कार्य (जैसे अपने बच्चे के हाथ-पैर दबाकर उसके मुँह में औषध आदि डालने के) जैसे ही हितकारी होगा। राम का वन-गमन क्या पिता के स्वर्ग सिधारने के पश्चात् हुआ या उससे पूर्व हुआ? कृपया बताओ।

तब कैकेयी ने उत्तर दिया—राम का वन-गमन गुरुजनों के प्रति कोई अपराध करने के कारण नहीं हुआ। गर्व के कारण भी उसे वन नहीं जाना पड़ा। दैवी प्रकोप से भी यह नहीं हुआ। सूर्य-समान राजवंश में उत्पन्न चक्रवर्ती (दशरथ) के जीवित रहते समय ही वह वन को चला गया।

तब भरत ने प्रश्न किया—राम का अपना किया हुआ कोई अपराध नहीं, शत्रुओं की दी हुई पराजय नहीं, दैवी प्रकोप भी नहीं है। तो भी पिता के जीवित रहते हुए

उनको अरण्य जाना पड़ा—इसका क्या कारण है? उन चक्रवर्त्ती के प्राण छोड़ने का क्या कारण हुआ?

तब कैकेयी ने कहा—चक्रवर्त्ती ने मुझे दो वर दिये थे। उनके दिये वरों में से एक से मैंने राम को वन भेजा, दूसरे से तुम्हारे लिए राज्य प्राप्त किया। चक्रवर्त्ती इसको नहीं सह सके, अतः उन्होंने अपने प्राण छोड़ दिये।

भरत के कर जो अबतक उनके सिर पर जुड़े हुए थे, कैकेयी के यह वचन समाप्त होने के पूर्व ही, उनके कानों पर आ लगे (अर्थात्, उन्होंने अपने कान बंद कर लिये)। उनकी भौंहें टेढ़ी होकर काँपने लगीं। उनके निःश्वासों से चिनगारियाँ निकलने लगीं तथा उनकी आँखों से रक्त-बिंदु चू पड़े।

उनके कपोल फड़क उठे। रोंगटों के चारों ओर अग्निकण छा गये। धूम भी (उनके शरीर से) निकलकर चारों ओर छा गया। ओंठ दब गये। मेघ-समान उदार गुण से युक्त उनके दीर्घ हाथ वज्र को भी भीत करते हुए परस्पर आघात कर उठे।

भरत अपने पैरों को बारी-बारी से धरती पर पटकते थे, उससे मेरु पर्वत-सहित यह धरती इस प्रकार दोलायमान हो उठी, जैसे हाथी को लादकर चलनेवाली लंबे मस्तूल से युक्त कोई नौका, आँधी के चलने पर समुद्र के मध्य ऊब-डूब हो उठती है।

(भरत का क्रोध देखकर) देवता डर गये। असुर बड़े भय से मरने लगे। दिग्गजों ने अपने मदस्रावी रंध्रों को बंद कर लिया। सूर्य अस्त हो गया। कठोर क्रोध-वाले यम ने भी अपनी आँखें बंद कर लीं।

घोर क्रोध से भरे सिंह-सदृश भरत ने क्रूर कार्य करनेवाली उस कैकेयी को अपनी माता नहीं समझा। फिर, उसको इसलिए नहीं मारा कि उससे रामचंद्र क्रोध करेंगे। यों चुप रहकर फिर उसे देखकर वज्रघोष से ये वचन कहे—

तुम्हारी क्रूरता के कारण मेरे पिता मर गये। मेरे भाई तपोव्रत धारण कर वन में चले गये। मैं, जो (इस प्रकार के वर माँगनेवाले तुम्हारे) मुँह को चीरे बिना (तुम्हारे वर माँगने की) वह सुनता हुआ खड़ा हूँ, बड़ी इच्छा से राज्य का शासन करनेवाला हूँ!

(मेरे पिता और मेरे भ्राता को दूर करनेवाली) तुम अभी यहीं हो। (तुम्हारे वचन सुनता हुआ) मैं भी यहीं हूँ। क्षण-मात्र में ही तुम्हें मारकर नहीं गिरा देता। मैं इसी विचार से डरता हूँ कि जगत् की माता के समान वे मेरे भाई क्रोध करेंगे। अन्यथा, तुम्हारा माता का पद (तुम्हारी हत्या करने से) मुझे कभी रोक नहीं सकता था।

एक चक्रवर्त्ती ऐसा है, जो कठोर वचन सुनकर प्राण छोड़ देता है। एक वीर भी ऐसा है, जो अपना राज्य त्यागकर चला जाता है और एक भरत भी ऐसा है, जो अपनी माता के द्वारा प्राप्त राज्य का शासन करनेवाला है। ऐसा हो, तो धर्म का मार्ग ही प्रतिकूल है और वह हमारे लिए चाहने योग्य नहीं है।

यदि भविष्य में ऐसा अपवाद उत्पन्न हो कि—'भरत ने वंचनाशील माता के क्रूर षड्यन्त्र के कारण आदिकाल से आये हुए अपने कुल-महत्त्व को मिटा दिया और उस (कुल)

को अनुपम अपवाद का पात्र बना दिया—तो इससे बढ़कर प्रतिकूल कार्य और क्या हो सकता है ?

तुमने पातिव्रत्य नामक धर्म की सीमा को मिटा दिया। तुमको अपने गृह में आश्रय देनेवाले, तीक्ष्ण भाला धारण करनेवाले चक्रवर्त्ती का तुमने समूल विनाश कर दिया और इस प्रकार के वर माँगे। तुम लोगों को काटनेवाली नागिन हो ! अब और तुम किसको काटना चाहती हो ?

तुमने अपने पति के प्राण पी डाले। तुम कोई व्याधि नहीं हो, किन्तु कोई पिशाचिनी हो। (भाव है, अगर व्याधि होती, तो वह शरीर में उत्पन्न होकर शरीर के मिटने के साथ मिट जाती है। पिशाचिनी शरीर के मिटाने के बाद भी जीवित रहती है। अतः, कैकेयी पिशाचिनी-तुल्य है)। क्या तुम अब भी जीवित रहने योग्य हो ? तुम्हारी मृत्यु हो जाय। तुमने (पहले) मुझे अपना स्तन पिलाकर बड़ा किया। (अब) अमिट अपयश दिया। मेरी माँ बनी हुई तुम न जाने मुझे और क्या देनेवाली हो।

कभी असत्य न बोलनेवाले चक्रवर्त्ती को तुमने वचन से मार डाला। अमिट अपवाद पाकर भी तुमने राज्य प्राप्त करके सुखी जीवन व्यतीत करने का प्रयत्न किया है। तुमने राम को अरण्य भेजकर गाय और उसके बछड़ों को पृथक् कर दिया (अर्थात्, राम को नगर के लोगों से पृथक् किया)। ऐसा करते हुए तुम्हारा मन किंचित् भी दुःखी नहीं हुआ !

चक्रवर्त्ती, अपने दिये हुए वरों को न टालकर स्वयं मर गये। उनके पुत्र राम अपने पिता की आज्ञा को ही धर्म मानकर वन चले गये। किंतु उन (राम) का भाई होकर मैंने माता के षड्यन्त्र से संसार का राज्य प्राप्त किया, ऐसा अपयश पाना क्या ठीक है ?

जिनको राज्य करने का अधिकार है, वे राम—यह न सोचकर कि उनके चले जाने से पिता प्राण त्याग देंगे और यह मानकर कि अपयश का पात्र करनेवाली कैकेयी का यह प्रतिकूल विचार मेरे ही (अर्थात्, भरत के ही) कारण उत्पन्न हुआ है तथा मैं (सचमुच) राज्य करनेवाला हूँ—स्वयं वन को चले गये। यदि वे (राम) ऐसा नहीं मानते, तो वे कदापि वन जाने का विचार नहीं करते।

प्रसिद्ध पुरातन कुल में उत्पन्न चक्रवर्त्ती का विचार जैसा भी रहा हो, किन्तु वे (राम) यदि यह सोचें कि मेरी सेवा में निरत रहनेवाला भरत (मेरे प्रति) क्रूर विचार रखता है, तो इसके लिए मेरी माता का राज्य माँगना ही पर्याप्त कारण है।

मेरे ज्येष्ठ भ्राता, वन में अपनी अंजलि-रूपी पात्र में शाक आदि भोजन करें और मैं क्रूर बनकर, अपना जीवन रखे हुए, उत्तम (स्वर्ण के) पात्र में श्रेष्ठ धान के धवल अन्न को अमृत समान घृत से सिक्त करके भोजन करता रहूँ ? अहो ! संसार के लोग इसपर क्या-क्या नहीं सोचेंगे ?

धनुर्भूषित कंधवाले राम वन को चले गये—यह समाचार सुनकर सद्गुण चक्रवर्त्ती ने अपने प्राण छोड़ दिये। किंतु विष-समान इस नारी को मारे विना तथा स्वयं मरे विना जीवित रहनेवाली मैं ऐसे रो रहा हूँ, जैसे रामचन्द्र पर मुझे बहुत प्रेम हो। अहो, मैं कितने घोर अपयश का पात्र बन गया हूँ ?

मेरा राज्य करना लोग स्वीकार नहीं करेंगे। मैं भी जैसे जीवन की इच्छा करके अपयश को स्वीकार नहीं करूँगा। इससे उत्पन्न होनेवाला अपयश किसी भी उपाय से नहीं मिटेगा। अधर्म से युक्त इस नगर में लक्ष्मी निवास नहीं करेगी। अहो! तुमने (यह सब उत्पात करने के लिए) किसके साथ मंत्रणा की? तुम्हें परामर्श देनेवाले कौन हैं? धर्म का समूल नाश करके तुम्हें क्या मिला?

तुम्हारे क्रूर वचन के द्वारा मैंने अपने पिता को मारा (अर्थात्, पिता की मृत्यु का निमित्तकारण मैं बना)। ज्येष्ठ भ्राता को अरण्य में भेज दिया। अब संसार का राज्य करने के लिए आ उपस्थित हुआ हूँ। तुम पर क्या दोष डालें? तुम्हारा क्या अपयश होगा? पर क्या किसी दिन मेरा अपयश भी मिट सकेगा?

अब लोग देखें कि मैं क्या करने जा रहा हूँ। जबतक लोग (मेरे स्वभाव को) नहीं देखेंगे, तबतक मेरी निन्दा करेंगे। किन्तु हे माता! तुमने व्यर्थ अपवाद प्राप्त किया (जो किसी भी रूप में नहीं मिटनेवाला है)। मेरा यह विचार है कि विष, बिना उसे खाये, किसी को नहीं मारता, इसलिए अबतक मैं जीवित हूँ। अन्यथा मैं प्राण नहीं रखता (भाव यह है कि जिस प्रकार विष खाने पर ही मारता है, उसी प्रकार जब मैं राज्य स्वीकार करूँ, तभी मेरा अपवाद होगा, अन्यथा नहीं)।

मैं तुम्हारे पाप-पूर्ण नरक-तुल्य उदर में रहा—इससे जो पाप मुझे लगा है, उसे मिटाना है। इसलिए, सद्धर्म के देवता को साक्षी बनाकर, त्रिलोक के निवासियों के देखते हुए, मैं घोर तपस्या करूँगा।

ज्ञानी लोगों के वचन को ही मैं सुनता हूँ। यदि तुम अपने न मिटनेवाले प्राणों को त्याग दोगी, तो तुम्हारे कार्य बुद्धिपूर्वक किये गये ही माने जायेंगे। उससे तुम पुनः शुद्ध बन जाओगी। संसार में जन्म लेने का लाभ तुम्हें मिलेगा। इसके अतिरिक्त तुम्हारे निस्तार का अन्य कोई उपाय नहीं है।

राम के अनुज (भरत) ने फिर यह कहकर कि मैं अब अकथनीय क्रूरता से युक्त इस पापिन के निकट नहीं रहूँगा, अपनी अपूर्व मनोपीडा को मिटाने के लिए पवित्र स्वभाववाली कौशल्या के उत्तम चरणों को नमस्कार करूँगा, उठकर चले गये।

पौरुष से युक्त भरत कौशल्या के निकट जा पहुँचे। वहाँ जाकर धड़ाम से ऐसे गिरे, जैसे धरती फट गई हो और अपने उज्ज्वल करों से कौशल्या के कमल-जैसे चरणों को पकड़कर रोने लगे।

उस समय भरत ये वचन कहकर अश्रु बहाने लगे, जिसे देखकर स्वर्ग के निवासी भी रो उठें—मेरे पिता किस लोक में गये हैं? मेरे ज्येष्ठ भाई कहाँ गये हैं? क्या यह सारा उत्पात देखने के लिए अकेला मैं ही आया हूँ? हाय! मेरे हृदय की इस वेदना को आप ही मिटायें।

भरत इस प्रकार लोट गये कि उनके कंधे धूलि से भर गये। वे बोले—मैं अपने प्रभु (राम) के चरणों के दर्शन नहीं पा सका। क्या उन राम को जो इस पृथ्वी के स्वामी हैं, इस देश को छोड़कर जाना चाहिए था? क्या आपने उनको वन जाने से रोका नहीं? (आपने) यह भूल की।

(राम के प्रति ऐसा) क्रूर कृत्य करनेवाले सब लोग अभीतक मिटे नहीं हैं। इस सम्बन्ध में हम क्या कहें ? क्रूरा (कैकेयी) के गर्भ में उत्पन्न मैं प्राण त्याग करूँगा और अपने मन की पीडा को दूर करूँगा। भरत ने पीडित होकर यों कहा।

मरकतमय पर्वत के जैसे बढ़े हुए कंधोंवाले भरत ने फिर कहा— रथ पर आरूढ होकर संसार के अंधकार को दूर करनेवाले उस सूर्य से लेकर उज्ज्वल प्रकाश-युक्त इस पुरातन राजवंश में भरत नामक एक अपयशकारी कलंक भी उत्पन्न हुआ।

जानु तक लंबमान दीर्घ भुजाओंवाले धर्म-स्वरूपी भरत ने पुनः आगे कहा— करवालधारी दशरथ स्वर्ग सिधारे। उनके अनुपम ज्येष्ठ कुमार वन को सिधारे। ऐसे अवलंबों से रहित होकर यह कौशल देश घोर दुःख से पीडित होनेवाला है।

कुलीनता, क्षमा, पातिव्रत्य, इन गुणों से पूर्ण कौशल्या ने रोनेवाले पुरुषवर भरत को देखा और यह जानकर कि भरत में राज्य पाने की इच्छा नहीं है, उसका मन कलंक-रहित है, इसलिए उनका (भरत पर संदेह के कारण उत्पन्न) क्रोध दूर हो गया। फिर वे अधीर होकर बोलीं—

उन कौशल्या ने यह जाना कि भरत का निष्कलंक मन अपराध-जन्य पीडा से मुक्त है। अतः, उन (भरत) से बोलीं कि हे तात ! कदाचित् तुमको कैकेयी का छल विदित नहीं था।

कौशल्या के चरणों पर गिरे हुए भरत, उनके वह वचन सुनते ही, पकड़े गये सिंह के समान घबराकर उठे और रोते हुए ऐसी शपथें खाने लगे कि नित्य प्रवर्त्तमान धर्म-देवता भी उनकी बात सुनकर काँप उठा।

धर्म का विनाश करनेवाला, किंचित् भी दया से रहित, दूसरों के द्वार पर (उसकी नारी का अपहरण करने के लिए) खड़ा रहनेवाला, दूसरों पर क्रोध करनेवाला क्रूरता के साथ संसार के प्राणियों को मारकर जीवित रहनेवाला, विरागी महातपस्वियों के प्रति क्रूर कार्य करनेवाला,

'कुरा' आदि पुष्पों से भूषित केशोंवाली युवती को करवाल से मारनेवाला, राजा का साथी बनकर युद्ध-क्षेत्र में जाकर फिर भय से शत्रुओं को पीठ दिखाकर भागनेवाला, भिक्षा में स्वल्प धन माँगकर हाथ में रखनेवाले से उस धन को छीननेवाला,

पुष्ट तथा शीतल तुलसी की माला से भूषित भगवान् (विष्णु) के बारे में 'वह भगवान् परम तत्त्व नहीं है'—ऐसा वचन कहनेवाला, धर्म-मार्ग से न हटनेवाले ब्राह्मणों के प्रति अपराध करनेवाला तथा अपौरुषेय एवं त्रुटिहीन वेदों के संबंध में यह कहनेवाला कि 'कई व्यक्तियों की कल्पना-प्रसूत रचना ही वेद है',

अपनी माता के भूखी रहते हुए, स्वयं अपने पापिष्ठ उदर-कुहर को अन्न से भरनेवाला, अपने स्वामी को युद्ध-भूमि में छोड़कर भागनेवाला, ये सब लोग जिस नरक की आग में गिरते हैं, (यदि कैकेयी के षड्यन्त्र में मेरा भाग रहा हो, तो) मैं भी उसी नरक में गिरूँ।

अपने प्राणों के भय के कारण शरण में आये हुए की रक्षा न करनेवाला सदा धर्म को विस्मृत करके आचरण करनेवाला, जो नरक पाते हैं, उसी में मैं भी गिरूँ।

न्यायालय में झूठी साक्षी देनेवाला, युद्ध से डरकर भागनेवाले व्यक्ति के हाथ की वस्तुओं को स्वयं छिपकर छीन लेनेवाला, विपदा में पड़कर पीडित हुए व्यक्ति को और अधिक पीडा देनेवाला—ये लोग जिस नरक को पाते हैं, उसी में मैं भी गिरूँ।

ब्राह्मणों के निवास को आग से जलानेवाला, बालकों की हत्या करनेवाला, न्यायालय में (न्यायाधीश के पद से) दोषपूर्ण न्याय करनेवाला, देवताओं की निन्दा करनेवाला—ये लोग जो नरक पाते हैं, उसी में मैं भी पड़ूँ।

बछड़े को दूध पीने न देकर, उसको भूखा ही रखकर गाय का सब दूध दुहकर स्वयं पीनेवाला, भीड़ में दूसरों की वस्तुओं को चुरानेवाला, दूसरों के किये हुए उपकार को भूलकर उनकी निंदा करनेवाला, न्यायहीन जिह्वा से युक्त व्यक्ति—ये जो नरक पाते हैं, (अगर कैकेयी के षड्यंत्र में मेरा भाग रहा हो, तो) मुझे भी वही नरक मिले।

यात्रा में अपने साथ आनेवाली मधुरभाषिणी नारी के दूसरों के द्वारा सताये जाने पर स्वयं अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए उसे छोड़कर भाग जानेवाला, अपने पास रहनेवाले भूखे व्यक्तियों की भूख मिटाये बिना स्वयं भोजन करनेवाला—ये सब जिस दुर्गति को प्राप्त होते हैं, वही दुर्गति मेरी भी हो।

(यदि मेरे कहने से मेरी माँ ने राम को वन भेजा हो, तो) शस्त्रों से सुसज्जित होकर युद्ध करने के लिए युद्धक्षेत्र में जाकर अपने प्राणों के मोह में पड़कर शत्रुओं के सम्मुख युद्ध न करके शिर झुका देनेवाला तथा धर्म की सीमा लाँघकर (प्रजा से) धन संग्रह करनेवाला राजा—जो नरक पाते हैं, वही नरक मुझे भी मिले।

(यदि कैकेयी के षड्यंत्र में मेरा भी हाथ रहा हो, तो) उत्तम राज्य को पाकर मनमाना आचरण करते हुए नीच कार्य करनेवाले राजा के समान ही मैं भी परंपरा से प्राप्त धर्म का त्याग कर अपयशकारक अधर्म-मार्ग में चलनेवाला हो जाऊँ।

जो राजा, अपनी रक्षा में रहनेवाली प्रजा के व्याकुल होकर अस्त-व्यस्त होते हुए, 'वंजि' पुष्पों की विजयसूचक माला पहने हुए, शत्रु के सम्मुख 'वाहे' पुष्पों की माला[1] पहनकर खड़ा हो, उसकी जो दुर्गति होती है, वही दुर्गति मेरी हो।

(यदि कैकेयी के षड्यंत्र में मेरा भाग रहा हो, तो) कन्या का मान-भंग करने का प्रयत्न करनेवाला, गुरु-पत्नी की ओर कामुक दृष्टि डालनेवाला, मद्यपान करनेवाला, क्षुद्र चौर्य-कर्म से स्वर्ण प्राप्त करनेवाला (अर्थात्, सोना चुरानेवाला)—ये लोग जैसी दुर्गति पाते हैं, मैं भी वैसी ही दुर्गति पाऊँ।

उत्तम भोजन पदार्थ को कुत्ते-जैसे (अर्थात्, दूसरों से छिपाकर अकेले ही) खानेवाला, 'यह पुरुष नहीं, स्त्री भी नहीं है, यह शक्तिहीन नपुंसक है'—ऐसे अपयश का भाजन बनकर निर्लज्ज हो क्षुद्र कार्य करता हुआ जीवन व्यतीत करनेवाला, महात्माओं का कथन भूलकर सदा पापकर्म में रत रहनेवाला तथा सर्वदा दूसरों की निन्दा करते रहनेवाला—ये सब जो नरक पाते हैं, वही मुझे भी मिले।

---

१. 'वंजि' पुष्पों की माला विजय-सूचक और 'वाहे' पुष्पों की माला पराजय-सूचक मानी गई है।—अनु०

(यदि कैकेयी के षड्यंत्र में मेरा हाथ हो, तो) दोषहीन प्राचीन वंशों को कलंकित कहकर उनकी निंदा करनेवाला, अकाल के समय में दरिद्र लोगों के कमाये अन्न को बिखेर देनेवाला, सुगंधित भोजन पदार्थों को, समीपस्थ व्यक्तियों को दिये बिना, उनके मुँह में लार टपकाते हुए, स्वयं खानेवाला—जो गति पाते हैं, वही गति मुझे भी मिले।

जो व्यक्ति, धनुष से और करवाल से प्रकट किये जानेवाले पराक्रम को व्यर्थ करके, इस नश्वर शरीर को कुछ समय तक सुरक्षित रखने की लालसा से विरोधियों के घर में उनके द्वारा क्रोध के साथ दिये जानेवाले अन्न को अपने हाथ पसारकर माँगता हुआ रहता है, उसकी जो दुर्गति होती है, वही मेरी भी हो।

कोई व्यक्ति याचक से, उसकी माँगी हुई वस्तु 'मेरे पास है'—कहकर भी उसे न दे और यह भी न कहे कि 'मेरे पास वह वस्तु नहीं है'—ऐसे मूर्ख व्यक्ति को जो नरक मिलता है, वही नरक मुझे भी मिले।

(यदि राम को वन भेजने में मेरा हाथ रहा हो, तो) जो व्यक्ति शत्रु-भयंकर करवाल को अपने दीर्घ हाथ में लेकर युद्धक्षेत्र में जाय और फिर व्याधियों के आवास, दुर्गंध से युक्त इस क्षुद्र देह को बचाने की इच्छा से, मोती-समान दाँतोंवाली युवती के देखते हुए, शत्रुओं के सम्मुख सिर झुका दे—उस व्यक्ति की जो दुर्गति होती है, वही मेरी भी हो।

विशाल गन्ने के खेतों तथा लाल धान के खेतों से युक्त जल-समृद्ध देश को, शत्रु के द्वारा हरण किये जाते देखकर भी जो व्यक्ति अपने प्राणों को बचाने के लिए बेड़ी में बँधे अपने चरणों के साथ शत्रु के सम्मुख खड़ा रहे, उसकी जो दुर्गति होती है, मेरी भी वही दुर्गति हो।

क्रूर कैकेयी के किये कार्य को यदि मैं जानता ही हूँ, तो मैं भी उन लोगों की दुर्गति को प्राप्त करूँ, जो धर्म से न हटनेवाले अपने पूर्वजों को दुःख देते हुए पाप-कर्म करते रहते हैं।

इस प्रकार अपने मन की निष्कलंकता को प्रकट करनेवाले भरत को देखकर कौशल्या यों आनंदित हुईं, जैसे राज्य त्यागकर वन को गये हुए राम को ही लौट आये हुए देख रही हों। उन्होंने आँसू बहानेवाले भरत को अपने गले से लगा लिया।

कपटहीन उत्तम स्वभाववाले भरत के कार्य को, तथा उनकी माता (कैकेयी) के पाप-स्वभाव को, पहचानकर दुःख की अधिकता से कौशल्या यों रोईं कि उनके पीन स्तनों से दूध टपकने लगा और उनका मुख सूज गया।

कौशल्या बोलीं—हे राजाधिराज (भरत)! तुम्हारे कुल के मनु आदि अति पुरातन पूर्व पुरुषों में भी तुम्हारी समता करनेवाले कौन थे? यों कहकर उन्होंने आशीर्वाद दिया। भरत बार-बार उनके वचन (अर्थात्, उनका भरत को राजाधिराज कहना) को स्मरण करके द्रवितचित्त होकर रो पड़े।

भरत के अनुज (शत्रुघ्न) ने भी, भरत के सद्गुणों को सोचकर प्रेम से पिघलनेवाली माता (कौशल्या) के चरणों पर नत हुआ और यथाविधि नमस्कार करके व्याकुल मन से खड़ा रहा। इसी समय वसिष्ठ मुनिवर वहाँ जा पहुँचे।

तब भरत उन महातपस्वी के चरणों पर गिरकर बोला—मेरे पिता कहाँ हैं? बताइए। तब वसिष्ठ दुःख की अधिकता के कारण कुछ उत्तर न दे सके और व्याकुल हो आँखों से अश्रु बहाते हुए भरत को गले से लगा लिया।

वसिष्ठ ने कहा—हे दोष-रहित कुमार! उदारगुणवाले तुम्हारे पिता के प्राण छोड़े, आज सात दिन हो गये। तुम पुत्रों के द्वारा किये जानेवाले कार्य (अंतिम क्रिया) करो। तब कौशल्या ने उनको (उस स्थान पर, जहाँ दशरथ की देह रखी थी) जाने की आज्ञा दी।

पिता की देह को देखने की अनुमति देनेवाली माता (कौशल्या) के चरणों को नमस्कार करके भरत, सुन्दर दीर्घ जटाओंवाले पवित्र वसिष्ठ मुनि के साथ चले और अपने प्राण देकर धर्म की रक्षा करनेवाले चक्रवर्ती दशरथ के अति प्रशंसित साकार धर्म-जैसे शरीर को देखा।

भरत दहाड़ मारकर रो पड़े और धरती पर गिर पड़े और महिमामय आज्ञाचक्र को प्रवर्तित करनेवाले (दशरथ) के तैल-पात्र में रखे हुए सोने के रंग के शरीर को अश्रुओं से धो दिया।

चारों वेदों के ज्ञाता ब्राह्मणों ने आदर के साथ दशरथ के शरीर को उस स्थान से अपने हाथ से उठाया और स्वर्ण से निर्मित एक विमान में रखा। तब राजा के योग्य नगाड़े बजने लगे।

नगर के लोग, वेला में बँधे समुद्र के समान रुदन से उत्पन्न ध्वनि करते हुए व्याकुलप्राण हो रहे। राजाओं का समूह चारों ओर हाथ जोड़कर खड़ा रहा। ऐसे समय में, गले में रस्सी से युक्त एक हाथी पर उस देह को रखकर लोग ले चले।

सुन्दर तथा विशाल रथ को चलानेवाले सुमंत्र के साथ, मंत्रणा करने में निपुण मंत्री तथा अनुपम सेनापति, मित्रवर्ग तथा अन्य लोग व्याकुल हो चारों ओर से रो रहे थे।

शंख, पटल, शृङ्गी आदि वाद्य सब दिशाओं में उसी प्रकार बज उठे, जिस प्रकार मेघों के आश्रय बननेवाले ऊँचे प्रासादों से युक्त उस नगर की स्त्रियाँ, अपने उमड़ते नेत्रों पर हाथ से मारती हुई रो रही थीं।

घोड़े, हाथी, उज्ज्वल रथ, राजा, चारों वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण, उस देह को लेकर, दशरथ की रानियों के साथ, स्वच्छ वीचियों से पूर्ण जल से समृद्ध सरयू नदी पर जा पहुँचे।

शास्त्रज्ञ पुरोहितों ने यथाविधि सब कर्म कराके चिता सजाई। उस पर दशरथ की देह को रखा। फिर भरत से कहा—हे वीर! शास्त्रोक्त विधान के अनुसार तुम अपने पिता का अंतिम संस्कार पूर्ण करो।

यों कहने पर भरत पिता का अंतिम संस्कार करने के लिए प्रस्तुत हुए। उस समय उनको देखकर वसिष्ठ ने कहा—तुम्हारी माता के दुर्गुण के कारण चक्रवर्ती (दशरथ) अत्यंत पीडित होकर, तुमको भी त्याग कर (अर्थात्, तुम्हारे पुत्रत्व-संबंध को तोड़कर) चल बसे।

हे उत्तम कुमार ! मानों यह दिखाने के लिए ही कि तुम्हारे जन्म से परंपरा से आगत धर्म परिवर्त्तित हो गया है, तुमको त्यागकर वे मृत हुए। यह वचन सुनकर भरत मृत-से हो गये। ऐसा लगा कि वहाँ जो खड़े थे, असली भरत नहीं थे, कोई और थे।

महान् तपस्वी यों कहकर निःश्वास भरते खड़े रहे। तब, पर्वताकार कंधोंवाले भरत, 'अच्छा है, अच्छा है !'—कहकर मुस्करा उठे।

जैसे काला सर्प घोर वज्र-घोष से भीत होकर काँप उठा हो, उसी प्रकार भरत काँपकर धरती पर गिर पड़े। उनका मन बड़ी व्याकुलता से तड़प उठा। उनके हृदय का दुःख रोकने पर भी न रुकता था। वे आँसू बहाते हुए कहने लगे—

मृतक-संस्कार करने का अधिकार मुझे नहीं था। ऐसा मैं क्या राज्य का शासन करने की योग्यता रखता हूँ ? सूर्यकुल में उत्पन्न मेरे पिता से पूर्व उत्पन्न राजाओं में मुझ से बढ़कर कीर्त्तिमान् कौन हुए ?

हे कमलभव (ब्रह्मा) के पुत्र (वसिष्ठ) ! मेरे पूर्वज दोषरहित, धर्म के अप्रतिकूल मार्ग पर चलकर स्वर्ग में गये। पर मैं तो अपने बालकपन में ही व्यर्थ जीवन धारण करने-वाला हो गया हूँ ! हाय !

मैं घने पत्तों से युक्त प्रसिद्ध केतकी-पुष्पों के मध्य स्थित रहकर निस्सार तथा गंधहीन वस्तु के समान हो गया हूँ। मुझे जन्म देनेवाली मेरी जननी ने मेरा जो उपकार किया है, वह (उपकार) भी कैसा है !

चारों वेदों में प्रतिपादित विधान के अनुसार सब कार्य कराने में समर्थ वसिष्ठ उपर्युक्त प्रकार से कहकर दुःखी हो खड़े रहनेवाले, पुष्पमाला-भूषित भरत के अनुज (शत्रुघ्न) के द्वारा उस समय यथाविधि प्रेत-संस्कार कराया।[1]

उत्तम पुष्पलता-सदृश राजपत्नियाँ अपने हार, आभरण तथा लचकनेवाली कटि के चमकते हुए, इस प्रकार चिता की अग्नि में प्रविष्ट हुई, जिस प्रकार पर्वत-कंदरा में निवास करनेवाले कलापियों का समुदाय पत्रहीन कमल पुष्पों से भरे जलाशय में प्रविष्ट हुआ हो। (भाव है, प्रधान महिषी कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा इनके अतिरिक्त अन्य सब पत्नियों ने सहगमन किया)।

उन स्त्रियों के वदन कमल-पुष्प तथा चंद्र के समान शोभायमान हो रहे थे। चिता की अग्नि, उनके पति (दशरथ) का देह-स्पर्श करके अत्यंत शीतल लग रही थी। वे राज-पत्नियाँ मन की पीडा से रहित होकर, पति के साथ सहगमन करनेवाली नारियों की सद्गति को प्राप्त हुई।

इसके पश्चात् भरत ने शत्रुघ्न के द्वारा पिता के सब संस्कार कराये। फिर, माता के क्रूर कृत्य के कारण क्षत्रियोचित जीवन से वंचित होकर उपमाहीन शोक-रूपी समुद्र के साथ अपने निवास में जा पहुँचे।

---

१. राजा दशरथ ने कहा था कि कैकेयी को मैं त्याग देता हूँ, भरत को भी मैं अपना पुत्र नहीं मानता। इसी कारण से वसिष्ठ मुनि ने शत्रुघ्न से दशरथ का अग्नि-संस्कार कराया।—अनु०

चक्रवर्त्ती के कुमार ने दस दिन तक किये जानेवाले पितृकर्म को, एक-एक दिन को एक-एक युग के समान व्यतीत करते हुए तथा अत्यन्त वेदना के साथ, शास्त्रोक्त विधान से पूर्ण किया।

सब पितृ-संस्कार पूर्ण कराके, अपने कार्य-भार से मुक्त होकर महान् तपस्वी वसिष्ठ त्रिसूत्रयुक्त यज्ञोपवीत से शोभायमान ब्राह्मणों के द्वारा अनुसृत होते हुए, विजयी भाले को धारण करनेवाले भरत के निकट पहुँचे।

कुल-क्रमागत मंत्री यह विचार कर कि विना राजा के राज्य का रहना उचित नहीं है, भरत को राजा बनाने का दृढ निश्चय करके, उस राज्य के बड़े ज्ञानवान् लोगों को साथ लेकर आये। (१—१४५)



अध्याय १०

वन-प्रस्थान पटल

मंत्रणा-कुशल मंत्री (भरत के प्रति) प्रेम से भरे हृदय के साथ यह सोचते हुए कि परम्परा से प्राप्त वेदों को अधिगत करनेवाले तथा तपस्या के सब तत्त्वों को जाननेवाले वसिष्ठ उस राजसभा में उपस्थित हैं, शीघ्र सभा में आ पहुँचे और भरत को नमस्कार किया।

तपस्या के प्रभाव से गगन में भी संचरण करने की शक्ति रखनेवाले मुनियों के साथ मंत्री, नगर के लोग, सेनापति, राजा तथा सब बुद्धिमान् एवं विवेकी पुरुष, सुन्दर वीर (भरत) को यथाक्रम घेरकर बैठ गये।

जब सब लोग इस प्रकार बैठे हुए थे, तब ज्ञानी तथा रथ चलाने में दक्ष सुमंत्र ने विजयी चक्रवर्त्ती के कुमार (भरत) को अपने मन के विचार सूचित करने के उद्देश्य से सर्वज्ञ मुनिवर (वसिष्ठ) के मुख की ओर देखा।

तपस्वी वसिष्ठ ने सुमंत्र के अपनी ओर देखने से, वचनों के विना ही, उसके मन के आशय को जान लिया। फिर चक्रवर्त्ती के कुमार से बोले—राज्य की रक्षा करो। यही तुम्हारा कर्त्तव्य है।

(वसिष्ठ ने भरत से कहा—) हे दोष-रहित ! गुणवान्, वेदज्ञ, अपूर्व तपस्या-संपन्न, वृद्ध, नरेश आदि जो तुम्हारे पास आये हैं, इनके आगमन का प्रयोजन यही है कि नीति तथा धर्म को स्थिर बनायें (और उसके लिए तुम्हें राजा बनायें)। तुम इस बात को अपने मन में समझ लो।

धर्म नामक अनुपम वस्तु का सबसे आचरण कराना तथा उसको स्थापित करना कठिन कार्य है। हे तात ! तुम इस विषय को भली भाँति समझ लो। यह धर्म इहलोक और परलोक—दोनों को प्रदान करनेवाला है। स्वच्छ चित्तवाले ही इसका पालन कर सकते हैं।

विचार करने पर विदित होता है कि कटि में दृढ करवाल धारण करनेवाले राजा के अभाव में यह संसार सब की इच्छा के पात्र सूर्य से विहीन दिन-जैसा होता है, नक्षत्रों से घिरे हुए चंद्र से विहीन रात्रि-जैसी होती है तथा अपने अंतर में प्राणों से विहीन शरीर-जैसा होता है।

देवलोक में अत्याचार करनेवाले बलवान् असुरों के देश में, तथा लोक कहलानेवाले सब प्रदेशों में, रक्षा करनेवाले राजा के बिना कोई कार्य नहीं होता है। यह हम देखते हैं।

उचित रीति से विचार करने पर विदित होता है कि ब्रह्मा के द्वारा बनाये गये धरती तथा स्वर्ग में निवास करनेवाले जंगम तथा स्थावर पदार्थ कभी शासक बिना नहीं रहते।

कमलभव ब्रह्मा से लेकर सब पुण्य पुरुषों ने जिस वंश की प्रशंसा की है, ऐसे (तुम्हारे) वंश के लोगों ने अबतक इस संसार की रक्षा की है। अब ऐसे रक्षक के अभाव में यह संसार, उज्ज्वल समुद्र में टूटी हुई नौका के समान हो गया है।

हे तात ! तुम्हारे पिता स्वर्ग सिधारे। तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता राज्य छोड़कर चले गये। अनन्त वैभव से युक्त यह विशाल राज्य तुम्हारी माता के वर से तुम्हें मिला है ; इस राज्य पर तुम शासन करो। यही हमारी सलाह है—यों वसिष्ठ ने कहा।

ज्यों ही मुनिवर वसिष्ठ ने कहा कि इस राज्य पर तुम शासन करो, त्यों ही भरत अपने नेत्रों से निर्झर के समान अश्रुधारा बहाते हुए, 'विष खाओ' कहने से भयभीत होकर काँपनेवाले से भी अधिक भीत होकर काँप उठे।

(वसिष्ठ के वचन सुनकर) भरत का मन काँप उठा। कंठ गद्गद हो उठा। नयन मुकुलित हो गये। स्त्रियों के जैसे ही उनका हृदय द्रवित हो उठा। उनके प्राण व्याकुल हुए। कुछ काल यों मूर्च्छित रहने के बाद जब उनमें प्रज्ञा आई, तब वे उस सभा में स्थित लोगों से अपने विचार कहने लगे—

तीनों लोकों के आदिकारण बने हुए, मेरे ज्येष्ठ भ्राता बनकर उत्पन्न हुए (श्रीराम) के रहते हुए मैं राज्य करूँ। अहो ! यह श्रेष्ठ पुरुषों का धर्मोपदेश हो गया। फिर तो अब मेरी जननी के कार्य में भी कोई दोष नहीं रहा।

क्रूरता से युक्त मेरी जननी ने जो कार्य किया, उसके बारे में, सदाचार में निरत आपलोग कहते हैं कि यह उचित है। क्या इस समय, कृतयुग के पश्चात् आनेवाले दोनों युग (द्वापर और त्रेता युग) व्यतीत होकर अंतिम युग (कलियुग) ही आ गया है ?

कमलभव ब्रह्मा के सब लोकों में क्या कहीं भी बड़े भाई के रहते हुए छोटा भाई यथाविधि राज्य का शासन करता है ?—राजसभा में रहनेवाले आपलोग ही बतायें।

कदाचित् आपलोग इस कार्य को न्याय-संगत भी प्रमाणित कर दें, तो भी मैं इस संसार के प्राणियों के शासन-भार को वहन करता हुआ जीवित नहीं रहूँगा। किन्तु, मैं उनको (अर्थात्, राम को) ले आऊँगा और पुष्पमाला-भूषित किरीट, आदि काल से आगत नीति के अनुसार, उन्हीं को पहनाऊँगा। यह आप देखेंगे।

यदि मैं उन (राम) को नहीं ले आ सकूँगा, तो दुर्गम अरण्य में रहकर यथाविधि कठोर तपस्या करूँगा। यदि और कोई बात कहकर आपलोग मुझे विवश करने का प्रयत्न करेंगे, तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगा—इस प्रकार भरत ने कहा।

महिमा में श्रेष्ठ चक्रवर्त्ती (दशरथ) जीवित रहते समय भी प्रभु (राम) ने रत्नमय किरीट को धारण करना स्वीकार किया। किन्तु, हे उत्तमशील भरत! तुम तो, पिता के स्वर्ग-गमन के कारण प्राप्त हुए राज्य को भी अस्वीकार कर रहे हो। राजकुल के पुत्रों में तुम्हारे समान (त्यागी) कौन है ?

आज्ञा-चक्र प्रवर्त्तित करना (अर्थात्, न्याय-पूर्ण शासन करना), धर्म की रक्षा करना, यज्ञ करना—इनके द्वारा तुम्हें अपना यश बढ़ाना आवश्यक नहीं है। चतुर्दश भुवन मिट जाने पर भी तुम्हारा बड़ा यश शाश्वत रहेगा—इस प्रकार कहकर उन सभासदों ने भरत को आशीर्वाद दिये।

भरत ने अपने अनुज (शत्रुघ्न) को बुलाकर कहा—मेघ-गर्जन के समान नगाड़े की ध्वनि करके, यह घोषणा कराओ कि इस राज्य के धार्मिक प्रभु (राम) को हम लौटा ले आनेवाले हैं और सारी सेना को यात्रा के लिए तैयार करो।

सद्गुण भरत की आज्ञा से शत्रुघ्न ने वैसी घोषणा करा दी, तब दुःख में डूबे हुए उस विशाल नगर के लोग यों आनन्द-घोष कर उठे कि मानों उनके प्राणहीन शरीरों पर वचनरूपी अमृत छिड़क दिया गया हो।

'रामचन्द्र स्वर्णमुकुट धारण करनेवाले हैं'—यह घोषणा होते ही पंचेन्द्रियों का दमन करनेवाले मुनियों से लेकर सभी लोग महान् आनन्द से भर गये। (रामचन्द्र को लौटा लाने की) वह समाचार कानों के लिए दिव्य अमृत ही था।

'भरत अपने ज्येष्ठ भ्राता को ध्वजाओं से अलंकृत नगर में ले आनेवाले हैं; उनको ले आने के लिए सेनाएँ भी जायेंगी'—नगाड़े बजा-बजाकर इस प्रकार की जो घोषणा की जा रही थी, वह उस वैभवपूर्ण अयोध्या नामक महा-समुद्र में चंद्र के उदय होने के समान थी।

वह बड़ी सेना युगान्त में उमड़नेवाले सप्त समुद्रों के समान उमड़ उठी और घोर शब्द करती हुई आगे बढ़ चली। उससे कैकेयी की कामना समूल विनष्ट हो गई। नगर के लोग भी प्रेम से उमड़ उठे और उनका (रामचंद्र के वियोग से उत्पन्न) दुःख मिट गया।

अलंकारों से सजे हुए घोड़े, हाथी और रथ, धरती को ढककर छा गये। सेना की अत्युन्नत ध्वजाएँ आकाश-तल को ढककर छा गईं। ऊपर उठी हुई धूल कमलभव ब्रह्मा के भी नयनों को ढककर उन्हें अंधा बनाने लगी।

इन्द्रदेव जिस समय इस सृष्टि का अंत करता है, उस समय उठनेवाली ध्वनि से भी अधिक (भयंकर) ध्वनि उत्पन्न हुई। अकलंक रामचन्द्र के दर्शन करने के लिए उठनेवाली उमंग से भी अधिक उल्लसित होकर वह विशाल सेना उमड़ने लगी।

उस सेना का एक अति विशाल सूँड़वाला हाथी अपनी हथिनी के साथ इस प्रकार जा रहा था, मानों राज्य के जैसे ही उस नगर का त्याग कर विविध वृक्षों से

पूर्ण अरण्य की ओर सीता नामक लता को साथ लिये हुए रामचन्द्र-रूपी मेघ ही जा रहा हो।

कीचड़ में उत्पन्न होनेवाले कमल-पुष्प भी जिनके सामने शोभाहीन हो जायें, जैसे मृदु चरणों से युक्त कन्याओं के साथ छोटी हथिनियाँ स्पर्धा करने लगीं थीं, किन्तु कदाचित् उन सुकुमारियों की मृदुगति से हारकर ही मानों वे (हथिनियाँ) उन सुन्दरियों को ढोये हुए जा रही थीं।

वे दीर्घ ध्वजाएँ, जो मेघों के जल-बिंदुओं से इस प्रकार सिंचित हो रही कि पीडादायक सूर्य-किरण भी उन (ध्वजाओं) से शीतल हो जाती थी, विजयमाला-भूषित धनुर्धारी राम के राज्याभिषेक का दर्शन न पाने से दुःखी हुई स्त्रियों के समान काँप रही थीं।

असंख्य राजा लोग हाथियों पर आरूढ होकर इस प्रकार जा रहे थे, जैसे महिमामय उष्ण किरणों से युक्त सूर्य, असंख्य रूप लेकर, अपने ऊपर धवल चन्द्रमा को (छत्र के रूप में) धारण किये, मेघों पर आरूढ होकर, धरती पर उतरा हो और एक दिशा में जा रहा हो।

एक समुद्र रथों पर जा रहा था। दूसरा समुद्र लाल चित्तियों से युक्त मुखवाले, मेघ-समान हाथियों पर जा रहा था। अन्य एक काला समुद्र सुन्दर घोड़ों पर जा रहा था और पदाति सेना-रूपी समुद्र धरती पर सर्वत्र छा गया था।

'तारे' (एक वाद्य), ताल, शंख, शृङ्गी, चर्म से आवृत 'पवे' (नामक एक वाद्य), डमरू, भेरी तथा अन्य वाद्य भी उसी प्रकार मौन होकर जा रहे थे, जैसे मूर्खों के समुदाय में ज्ञानी पुरुष (मौन) रहते हैं।

चिरस्थायी लज्जा के अतिरिक्त शरीर से अन्य आभरणों को भी दूर किये हुए तथा अप्सराओं की भ्रांति उत्पन्न करनेवाली अति सुन्दरी स्त्रियाँ ऐसी लगती थीं, जैसी, पुष्पों के झड़ जाने पर, लताएँ हों।

उस सेना में, गरजते समुद्र से घिरी सारी पृथ्वी का शासन करनेवाले (चक्रवर्त्ती दशरथ) का परंपरा-प्राप्त श्वेतच्छत्र नहीं था। इसलिए वह सेना, अनेक छोटे-छोटे श्वेतच्छत्र-रूपी नक्षत्रों से युक्त होकर भी कलाओं से पूर्ण चन्द्रमा से रहित रात्रि के समान लगती थी।

वह सेना अपने विस्तार से दिशाओं को बहुत छोटी बना रही थी, ऐसी सेना को जब वह पृथ्वी वहन कर रही थी, तब गरजते समुद्र से आवृत इस भूमि को एक 'स्त्री' कहना क्या सत्य कथन हो सकता है?

उन नारियों के, शीतल चन्दन, अगरु आदि से शून्य, कुंकुम-लेप से रहित तथा मुक्ता-मालाओं से हीन, (प्रतिक्षण) बढ़नेवाले मृदुल स्तन किसी भी प्रसाधन से रहित होकर नारिकेल वृक्ष पर लगे हुए कोमल नारिकेल फलों के समान लगते थे।

यौवन से पूर्ण अपनी पत्नियों के स्तनों पर के चंदन-लेप (के चिह्न) एवं सुगंधित पुष्प-मालाओं से शून्य (पुरुषों के) उन्नत कंधे, घने लता-कुंजों तथा झाड़ों से शून्य पर्वतों के समान लगते थे।

सुगंध के संस्कार से शून्य केशोंवाली नारियों की, नित्य के शृङ्गार अब न किये

जाने के कारण, अंजन से अनलंकृत आँखें, युद्ध की समाप्ति पर रक्त को धो देने के पश्चात् यम के करवाल जैसी लग रही थीं।

नारियों के जघन-तट, मेखला की मणियों की झनझनाहट से शून्य होकर, घंटियों से रहित रथों के समान लगते थे। भ्रमरों से शून्य कमल-पुष्पों के समान ही उन नारियों के अरुण पद भी नूपुर की ध्वनि से शून्य थे।

नारियों की लचकनेवाली कटियाँ, पहनने योग्य मुक्ताहार आदि के न पहनने से, अब एक प्रकार (बोझ ढोने के काम) से विश्राम पाकर रहती थीं, मानों कैकेयी को जो वर दिये गये थे, वे इन नारियों की कटि के लिए ही फलीभूत हुए हों।

रामचन्द्र के वन चले जाने से शोभाहीन होकर कमल में निवास करनेवाली लक्ष्मी भी तपस्या करने लगी हो तथा मन्मथ भी अपार दुःख-सागर में डूब गया हो— इसी प्रकार वह सेना भी शोभाहीन और विनोद एवं हर्ष से रहित थी।[1]

'वह सेना-भूमि, आकाश, प्रकाशमान दिशाएँ, इन सबको निगलने के लिए उमड़े हुए प्रलयकालिक समुद्र के समान थी'—ऐसा कहना क्या पर्याप्त होगा? उसकी संख्या का विचार करें, तो यह ज्ञात होगा कि वह सृष्टिकर्त्ता की दृष्टि तथा मन से भी अधिक विशाल थी।

वीचियों से भरे समस्त विशाल नदियों का जल, वह (सेना) पी सकती थी। वीचियों से भरे समुद्र के सारे जल को वह (सेना) पी सकती थी। वह धरती का संतुलन बनाये रखती थी। ऊँचे उठे हुए पर्वतों को भी अपने पद-भार से धरती में दबा सकती थी। अतः, वह सेना द्रविड-महर्षि (अर्थात्, अगस्त्य) की समता करती थी।

वह अयोध्या नगर आबालवृद्ध सब लोगों के तथा समस्त सेना के निकल जाने के कारण, अगस्त्य मुनि के द्वारा समस्त जल के पिये जाने पर समुद्र जैसा लगता था, वैसा ही शून्यता से भराहुआ पड़ा था।

वह सेना, बड़ी वीचियों से भरी नदियों, खेतों, मनोहर वृक्षों, पर्वतों तथा सैकत श्रेणियों को देखती हुई, मार्ग पर जा रही थी। उस समय वह मार्ग अयोध्या की उस वीथी के समान लगता था, जिसकी सफाई नहीं की गई हो।

मेघ के समान अति क्रोधी मत्त गजों के मदजल की गंध के अतिरिक्त, उस सेना में, पुष्प, चन्दन या अन्य कुंकुम-लेप आदि, किसी प्रकार की गंध नहीं थी।

जिस विशाल समुद्र को लोग बड़ी-बड़ी नौकाओं से पार करते हैं, उस (समुद्र) से भी विशाल उस सेना-रूपी समुद्र में, उज्ज्वल ललाटवाली सुन्दरियों की कटि के अतिरिक्त, कंधे तक लटकनेवाले कुंडल या अन्य कोई आभरण प्रकाशमान विद्युत् के समान नहीं चमक रहा था।

सुन्दर मर्दल आदि वाद्यों की ध्वनि से हीन होकर चलनेवाली वह सेना विशाल भित्ति पर अंकित सेना के चित्र के समान लगती थी।

---

१. वैभव की देवी लक्ष्मी है, और स्त्री-पुरुषों की क्रीडाओं का कारण मन्मथ का प्रभाव है। अब लक्ष्मी और मन्मथ के अपने-अपने कार्यों से विरत हो जाने से, उस सेना में न पुराना वैभव था, न स्त्री-पुरुषों की विनोद-क्रीडाएँ ही थीं।—अनु०

विष्णु (के अवतारभूत राम) का वन-गमन भी क्या था ?—अयोध्या के युवकों के लिए, प्रफुल्ल पुष्पों की माला से विभूषित सुन्दरियों के कटाक्ष-रूपी बाण उन (पुरुषों) के हृदयों को छेदकर उनके प्राणों को पी न डालें—इसके लिए अपूर्व कवच बन गया था।

मन्मथ के पाँच बाणों से पीडित होनेवाले पुरुषों के हृदय अब पहले की तरह युवतियों के स्तनों पर आसक्त नहीं होते थे। स्वर्णमय कर्णाभरण से भूषित कैकेयी के प्रति उन (पुरुषों) के मन में जो क्रोधाग्नि उत्पन्न हुई थी, वह (दृष्टि के द्वारा प्रकट होकर) युवतियों के स्तनों को कहीं जला न डालें, मानों यह सोचकर ही, उन पुरुषों की दृष्टि उनपर से हट गई थी।

इस प्रकार वह विशाल सेना जा रही थी। महिमा से पूर्ण भरत भी, अपनी सुन्दर कटि में वल्कल पहनकर, अपने अनुज (शत्रुघ्न) से अनुसृत होते हुए, एक सुन्दर रथ पर बड़ी व्यथा के साथ बैठकर जाने लगे।

माताओं, तपस्वियों, पितृ-समान गौरव के योग्य वृद्ध मंत्रिगण, असंख्य बंधुगण, पवित्र स्वभाववाले ब्राह्मण-वर्ग—इन सब से अनुसृत होते हुए भरत अयोध्या-नगर के बहिर्द्वार पर जा पहुँचे।

उस समय, मन्थरा नामक उस यम (रूपिणी दासी) को भी चलनेवाले लोगों के मध्य धक्काधुक्की करते हुए जाते देखकर शत्रुघ्न का क्रोध भड़क उठा और उन्होंने वेग से दौड़कर, गरजते हुए उसे पकड़कर झकझोरा। तब मनोहर कंधोंवाले भरत ने अपने अनुज को रोककर कहा—

कुल-परम्परा को तोड़कर अपनी कामना को पूर्ण करनेवाली माता को मैं टुकड़े-टुकड़े करके अपना क्रोध शांत कर सकता था। किंतु हे तात! वैसा करने पर मुझे मेरे प्रभु (राम) त्याग देंगे—इसी विचार से चुप रह गया। मैंने उसे अपनी माता नहीं समझा।

अतः, हे दोषहीन सद्-अर्थों के प्रतिपादक शास्त्रों के ज्ञाता! यद्यपि हम इस कुबड़ी से रुष्ट हैं, तो भी प्रभु हमारा यह कार्य पसन्द नहीं करेंगे। अतः, इसे छोड़कर हम आगे बढ़ें। यों कहकर कठिनाई से शत्रुघ्न को समझाते हुए उन्हें अपने साथ लेकर वे आगे बढ़े।

समुद्र-जैसी उमड़ती हुई गज आदि की सेना तथा पदाति-सेना के साथ भरत, उसी उपवन में जाकर ठहरे, जिसमें पहले (वन-गमन के समय) प्रभु (राम) अपनी पत्नी तथा सिंह-समान भाई के साथ ठहरे थे।

भरत उस रात्रि को, अपने नेत्रों से अश्रुजल का प्रवाह करते हुए ठहरे और पर्वत में उत्पन्न कंद-फल आदि का आहार किया। धनुर्धारी रामचन्द्र ने जिस स्थान में विश्राम किया था, वहीं धूल पर घास बिछाकर भरत भी पड़े रहे।

पौरुषवान् रामचन्द्र उस स्थान से पैदल ही मार्ग तय करते हुए गये थे। इस कारण से भरत भी वहाँ से पैदल ही चले और रथों, अश्वों तथा गजों की सेना उनके पीछे-पीछे चली (१–५६)

अध्याय ११

गुह पटल

मनोहर, स्वर्ण-निर्मित वीर-कंकण से भूषित तथा अनुपम सेना-वाहिनी से युक्त भरत, कावेरी नदी से सिंचित चोल देश की समता करनेवाले और उपजाऊ खेतों से भरे कोशल देश को छोड़कर गंगा नदी के तीर पर ऐसे दुःख के साथ आ पहुँचे कि उनको देखकर स्थावर और जंगम—सब वस्तुएँ द्रवित हो उठीं।

उनकी सेवा में स्थित मत्त गजों का मद-जल अपार जल से पूर्ण गंगा में सर्वत्र बह चला, जिस कारण से वह गंगा-प्रवाह, असंख्य भ्रमरों के अतिरिक्त अन्य प्राणियों के पीने या स्नान करने के अनुपयुक्त हो गया।

उनकी सेना में स्थित अश्वों के खुरों से उठी हुई धूल उड़कर देवताओं के शिरों पर किस प्रकार छा गई, यह हम समझ नहीं सके। वे (अश्व) पानी पीते समय दीर्घकाल तक पानी पीते रहते और फिर लंबी श्वास छोड़ते, जल में उतरकर तैरते और धूल पर लोट जाते थे।

(पहले) गंगा का प्रवाह दूध के रंग से युक्त होकर गरजते हुए समुद्र में जा मिलता था, किन्तु अब वह पहले जैसे वेग से नहीं बह रहा था; क्योंकि पुष्पमाला से भूषित दीर्घ किरीटधारी भरत की सेना-रूपी समुद्र ने उस (गंगा के जल) को पी लिया था।

वन को गये हुए वीर (राम) का अनुसरण करके जानेवाले भरत के पीछे-पीछे जो सेना उस समय जा रही थी, वह साठ सहस्र अक्षौहिणी परिमाण की थी।

जब वह सेना गंगा के (उत्तरी) किनारे पर पहुँची, तब गुह उसे देखकर और यह सोचकर कि यह विशाल समुद्र के जल से भरे मेघ-समान प्रभु (राम) से युद्ध करने के लिए ही जा रही है, अत्यन्त क्रोध से भर गया।

गुह नामक यम-सदृश उस पराक्रमी व्यक्ति ने आकाश तक उड़नेवाली धूल से उस सेना की संख्या का अनुमान कर लिया। तब उस (गुह) की आँखों से चिनगारियाँ निकलीं। नासिका से धुआँ उठा। वह अट्टहास कर उठा। उसकी भौहें ऐसे झुक गईं, जैसे युद्ध के उपयुक्त धनुष हों।

पाप करनेवाले सब प्राणियों के प्राणों का अंत करनेवाले, अपने कर में त्रिशूल धारण करनेवाले यम ने ही मानों पाँच लाख वीरों के रूप धारण किये हों—इस प्रकार के थे उस (गुह) की सेना के वीर। वह (गुह) धनुर्विद्या में निपुण था।

उस (गुह) ने अपनी कटि में कटार बाँध रखी थी। अपने ओंठ चबा रहा था। कठोर शब्द कह रहा था, उसकी घूरनेवाली आँखों से अग्नि-कण निकल रहे थे। उसकी सेना में डमरू बज रहे थे, शृङ्गी बज रहे थे और उसकी भुजाएँ यह सोचकर कि अब मुझे युद्ध करने का मौका मिला है (हर्ष से) फूल उठी थीं।

उस (गुह) ने यह कहते हुए कि 'यह सेना चूहों का झुंड है और मैं उनके लिए

विषधर सर्प हूँ'—बड़े कोलाहल से भरी अपनी सेना को पुकारा। वह सेना ऐसी थी, मानो तीक्ष्ण नखोंवाले समस्त घोर व्याघ्रों को एकत्र कर दिया गया हो।

बड़े कोलाहल से भरे और प्रलय-काल में गरजनेवाले मेघ तथा काले समुद्र ही उमड़ आये हों—इस प्रकार उमड़कर आनेवाली अपनी सेना को लेकर वह (गुह), समीप-स्थित (गंगा के) दक्षिणी तट पर आ पहुँचा।

अपने सैनिकों को देखकर गुह ने कहा—मैंने इस षड्यंत्रकारी सेना को वीर-स्वर्ग पहुँचाने तथा अपने प्यारे मित्र (राम) को महिमामय महान् राज्य देने का निश्चय किया है। तुम सब सहमत हो न?

गुह ने फिर आज्ञा दी--पटहों को बजाओ। रास्तों तथा घाटों को सर्वत्र मिटा दो। एक भी नाव न चलाओ। सुगंध से पूर्ण गंगा-तट पर आनेवाले इन (भरत के) सैनिकों को पकड़ लो और काट डालो।

गुह ने आगे कहा—मेरे प्राणों के नायक, अंजनवर्ण प्रभु (राम) को राज्य से वंचित करके स्वयं (राज्य) लेनेवाले ये राजा यहाँ भी आ पहुँचे; हमारे अग्नि बरसानेवाले तीक्ष्ण बाण क्या इन लोगों पर नहीं चलेंगे? यदि ये मुझसे बचकर चले जायेंगे, तो क्या संसार मुझे कुत्ता नहीं कहेगा?

क्या ये (भरत आदि), गंभीर विशाल और वीचियों से भरी इस (गंगा) नदी को पार करके जा सकेंगे? क्या मैं ऐसा धनुर्वीर हूँ कि इनकी बड़ी गज-सेना को देखकर (डर से) भाग जाऊँगा? उन (राम) ने मुझ से मित्रता की जो बात कही थी, वह भी तो एक बात थी—(अर्थात्, राम का वह वचन आदरणीय है और मुझे मित्रधर्म का पालन करना है। यदि मित्रधर्म का पालन न करूँ, तो) क्या लोग मेरी निंदा यह कहकर नहीं करेंगे कि यह क्षुद्र निषाद मरा क्यों नहीं?

आह! इस (भरत) ने यह नहीं सोचा कि वे (राम) हमारे ज्येष्ठ भ्राता हैं। यह भी नहीं सोचा कि उनके साथ अति बलिष्ठ व्याघ्र-समान उसका भाई भी है। यदि उन्होंने ये बातें न सोची हों, तो न सही, किन्तु इसने मेरी उपेक्षा कैसे की? जो हो, इसका पराक्रम इस सीमा को पार करने पर ही तो ज्ञात होगा। क्या निषादों के द्वारा प्रयुक्त बाण राजाओं के वक्ष में नहीं लगते?

क्या धरती पर राज्य करनेवाले ये क्षत्रिय, पाप, स्थिर रहनेवाला अपयश, शत्रु, मित्र, (दूसरों को) दुःख देनेवाले कार्य—इनके बारे में विचार नहीं करते? जो हो, सो हो, मेरे अपूर्व प्राण-तुल्य मित्र (राम) पर इनका आक्रमण तभी तो हो सकता है, जब ये अपनी सेना तथा अपने प्राणों को (हम से बचाकर) अपने साथ ले जा सकें।

जब मेरे प्रिय मित्र (राम) अपूर्व तपस्या कर रहे हों, तब क्या यह (भरत) पृथ्वी का राज्य कर सकता है? (हमारे लिए) अपने प्राण कुछ अमर तो नहीं हैं? (भरत से युद्ध करके यदि मरना भी पड़े, तो) बड़ा यश पाकर मरूँगा। मेरे प्रति गंभीर प्रेम रखनेवाले प्रभु के साथ मैं जो वन में नहीं गया और यहीं रह गया, वह भी अच्छा ही हुआ। अब मैं अपना कर्त्तव्य पूरा करूँगा।

हाथियों और घोड़ों से भरी सेना से युक्त तथा सुगंधित पुष्पमाला से भूषित इन (भरत) का शस्त्र-पराक्रम तो गंगा को पार करने के पश्चात् ही काम आयगा न ? तुम सब उग्र व्याघ्र यहाँ रहते हो। गंगा के घाटों पर नाव चलाना छोड़ दो। (यदि आज हमें मरना भी पड़े, तो) हमारे प्रभु (राम) से पहले ही (युद्ध में) अपने प्राण छोड़ देना उचित ही तो होगा ?

हमारे साथ आई हुई सेना के साथ एक बार युद्ध के लिए भी यह (भरत की) सेना पर्याप्त नहीं है, यह कहना अनावश्यक है। यदि देवताओं की सेना भी (हमारे विरुद्ध) आवें, तो भी हम अपने धनुष-रूपी काल-मेघों से शरों की वर्षा करके उनकी (चिर स्थिर) आँखों (पलकों) को हिला देंगे और करवाल से सारी गज-सेना को विध्वस्त कर देंगे। इस प्रकार, सबको अस्त-व्यस्त करके हरा देंगे।

उस दिन (जब राम के राज्याभिषेक का निश्चय हुआ था) उदार, दानशील तथा मेरे प्रेम के पात्र प्रभु के पहनने के लिए जिस क्रूर कैकेयी ने वल्कल दिये थे, उसके इस पुत्र (भरत) की सेना को अपने शरीर से निहत करूँगा। चर्बी से भरे शवों की राशि को यह गंगा नदी बहा ले जायगी और लहरों से भरी विशाल समुद्र में डालकर उस समुद्र को पाट देगी।

'निषादों ने फहरानेवाली पताकाओं से युक्त (भरत की) सेना को विध्वस्त करके धर्मरूपी राम को ही शासन करने के लिए राज्य दे दिया'—ऐसा यश क्या हम नहीं पायेंगे। जिन प्रभु (राम) ने अपना राज्य तक भरत को दे दिया था, वही भरत आज हमारे निवास-भूत इस अरण्य को भी देना नहीं चाहता और देखो, यहाँ भी चढ़ाई करने आया है।

'महान् तपस्वियों के बंधु होकर अरण्य में निवास करनेवाले प्रभु (राम) क्रोध करेंगे'—यह विचार न करके यदि हम युद्ध-क्षेत्र में इस (भरत) पर शर प्रयुक्त करेंगे, तो चाहे यह सेना सप्त समुद्रों के समान ही क्यों न हो, तो भी हम इसे उसी प्रकार मिटा देंगे, जिस प्रकार गाय अपने सामने की छोटी और कोमल घास को चबा डालती है।

दृढ तथा बड़े धनुष से युक्त, मल्ल-युद्ध में निपुण भुजाओं से युक्त तथा युद्ध में प्रवीण प्रभु (राम) के प्रति भक्ति से पूर्ण गुह ने लोहे के जैसे शरीरवाले अपने साथियों के प्रति ये वचन कहे। उसको वहाँ खड़े देखकर, दृढ रथ को चलानेवाले सुमंत्र ने सिंह-समान बली भरत के निकट आकर कहा—

यह गंगा के दोनों तटों का नायक है। असंख्य नावों का स्वामी है। तुम्हारे वंश में उत्पन्न अनुपम पुरुष राम का प्राणप्रिय मित्र है। उन्नत भुजाओंवाला (वीर) है, मल्ल-गज-तुल्य है। धनुर्धारी सेना-युक्त है। मधुस्रावी प्रफुल्ल पुष्पों की माला से भूषित है। इसका नाम गुह है।

हे बल की सीमा को देखनेवाली मनोहर तथा दीर्घ भुजाओं से युक्त ! हे नील-मेघ-सदृश नीलवर्ण ! यह पर्वत के जैसे दृढता से पूर्ण है। (राम के प्रति) असीम प्रेम से पूर्ण है। देखने में, रात्रि की जैसी सुन्दर देह-कांति से पूर्ण है। ऐसा यह हमारे मार्ग में सम्मुख आकर खड़ा हुआ है। तुम्हें देखने की इच्छा रखकर आया है, यों सुमंत्र ने कहा।

अपने पिता के मित्र सुमंत्र के द्वारा दूर पर अपने सामने खड़े गुह के विषय में सुनकर, कलंक-रहित भरत के मन में बड़ी उमंग उत्पन्न हुई। फिर, वे यह कहकर आगे बढ़े कि यदि यह प्रभु के आलिंगन का पात्र, प्रिय मित्र है, तो उसके यहाँ आने के पहले ही मैं स्वयं उसके पास जाकर (उससे) मिलूँगा।

यह कहकर वे उठे और अपने अनुज तथा उमड़ते हुए प्रेम के साथ गंगा के किनारे पर ऐसे जा पहुँचे, जैसे कोई पर्वत चला हो। किनारे पर आये हुए भरत को घने तथा काले केशोंवाले गुह ने देखा और उनकी दशा को पहचानकर वह चौंका।

गुह ने, वल्कल पहने हुए, धूल-भरी शरीरवाले, सुन्दर कलाहीन चंद्र-जैसे मंदहास की कांति से हीन वदनवाले तथा ऐसे शोक से पूर्ण कि जिसको देखकर पत्थर भी पिघल जाये, भरत को देखा। देखते ही उसके हाथ से धनुष खिसककर नीचे गिर पड़ा। वह व्याकुल हो उठा। स्तब्ध हो गया।

गुह ने सोचा, यह उत्तम पुरुष (भरत) मेरे प्रभु (राम) के जैसा ही लगता है। उसके पार्श्व में खड़ा हुआ कुमार (शत्रुघ्न) भी प्रभु के अनुज (लक्ष्मण) के जैसा ही है। इस (भरत) ने मुनि-वेष धारण किया है। इसके शोक की कुछ सीमा नहीं है। राम की दिशा में देखकर नमस्कार कर रहा है। अहो ! क्या मेरे प्रभु के भाई कुछ दोष करनेवाले हो सकते हैं ? (अर्थात् , नहीं होंगे)।

फिर गुह ने यह कहा—यह (भरत) गंभीर शोक से पीडित है। अचंचल प्रेम रखनेवाला है। (राम के) धारण किये मुनि-व्रत को स्वयं भी अपनाया है। मैं वहाँ जाकर इसके मनोभावों को समझकर लौट आता हूँ। तबतक तुम लोग घाटों की रक्षा करते हुए यहीं रहो और शीतल गंगा के घाट पर एकाकी ही एक नाव में बैठकर (भरत के निकट) आया।

सम्मुख (राम की दिशा में) खड़े रहकर प्रणाम करते हुए (भरत) के चरणों पर गुह नत हुआ। तब, उत्तम स्वभाववाले, सज्जनों के मन एवं शिर पर धारण किये जाने-वाले, पवित्र यशवाले तथा कमल-पुष्प पर आसीन ब्रह्मा के लिए भी वंदनीय उन (भरत) ने अपने चरणों पर पड़े (गुह) को उठाकर, (पुत्र से मिलनेवाले) पिता से भी अधिक आनंद के साथ उसका आलिंगन किया।

(भरत के द्वारा इस प्रकार) आलिंगित निषाद-पति ने, कमल-समान सुन्दर नयनोंवाले (भरत) से पूछा—हे प्रस्तर-स्तंभ-तुल्य भुजाओंवाले ! किस प्रयोजन से तुम (यहाँ) आये हो ? भरत ने उत्तर दिया—पृथ्वी की रक्षा करनेवाले मेरे पिता ने कुल-परंपरा के नियम का उल्लंघन किया। उस (अनियम) को दूर करने के लिए रामचन्द्र को लौटा ले जाने के उद्देश्य से मैं आया हूँ।

असत्य-रहित चित्तवाले किरातपति ने (यह वचन) सुना। सुनते ही उसने दीर्घ निःश्वास भरा। उसके मन में हर्ष उत्पन्न हुआ। उसकी देह फूल उठी। फिर, वह धरती पर गिर पड़ा और चित्र में अंकित करने के लिए दुस्साध्य रूपवाले भरत के चरण-कमलों को अपने करों से बाँधकर यह कहने लगा—

हे यशस्विन्! (तुम्हारी) माता के वचन मानकर (तुम्हारे) पिता ने जो राज्य (तुमको) दिया, उसे पाप-कृत्य के समान मानकर तुमने (उसे) त्याग दिया और अपने मन में चिन्ता रखकर इस प्रकार यहाँ आये हो। तुम्हारे, इस समय का यह भाव देखने पर, क्या सहस्र रामचन्द्र भी तुम्हारी समता कर सकते हैं?

हे उत्तम गुणशील तथा बलिष्ठ भुजाओंवाले! मैं अज्ञ किरात तुम्हारी क्या प्रशंसा करूँ? जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों के पुंज से अन्य ज्योतियों को मंद कर देता है, उसी प्रकार क्षत्रिय-समुदाय के द्वारा प्रशंसित तुम्हारे कुल के सब पूर्वजों की कीर्त्ति को भी तुमने अपनी कीर्त्ति में अंतर्भूत कर लिया।

वीर-कंकण तथा मांस-गंध से युक्त शूल को धारण करनेवाले किरातपति ने इस प्रकार के उचित वचन कहकर भरत के प्रति अपना अनुपम प्रेम दिखाया। उन भरत के प्रति प्रेम न रखनेवाले भी क्या कोई हो सकते हैं? (रामचन्द्र के) अचिंतनीय सद्‌गुणों के कारण ही तो गुह उन (राम) का भक्त बना था।

करुणा के समुद्र-जैसे, सन्मार्ग पर चलनेवाले मन से युक्त भरत ने उस समय रामचन्द्र की दिशा की ओर देखकर नमस्कार किया और गुह से पूछा—हमारे ज्येष्ठ (राम) ने किस स्थान पर विश्राम किया था? तब किरातपति ने कहा—हे वीर! मैं (वह स्थान) तुम्हें दिखाऊंगा, चलो इस ओर।

तब भरत मेघ के समान चलकर अतिशीघ्र वहाँ गये और पथरीली भूमि पर उस घास की शय्या को देखा, जिसपर रामचन्द्र ने विश्राम किया था। उसे देखते ही भरत तड़पकर गिर पड़े और अपने अश्रुजल से धरती का मंगल-स्नान कराया और शोक-समुद्र में डूब गये।

(भरत कह उठे—) जब मैंने यह सुना कि 'मेरे कारण तुमको यह वनवास का दुःख प्राप्त हुआ है,' तब मैंने अपने प्राण नहीं छोड़े। 'कंद और फलों को ही अमृत मानकर तुमने उनका भोजन किया'—यह सुनकर भी मैंने अपने प्राण नहीं छोड़े। 'दुःख देनेवाली घास की सेज पर तुम सोये'—यह जानकर भी मैंने प्राण नहीं छोड़े। अतः, उज्ज्वल रत्न-जटित मुकुट धारण करने के लिए भी कदाचित् मैं प्रस्तुत हो जाऊँ, तो इसमें आश्चर्य ही क्या होगा?

स्तंभ-समान दृढ भुजाओंवाले भरत ने आगे कहा—यदि उन (राम) के विश्राम करने का स्थान यह था, तो कहो कि उनपर अत्यन्त भक्ति रखकर उनके साथ आये हुए अनुज (लक्ष्मण) ने कहाँ विश्राम किया? तब किरातपति ने उत्तर दिया—

हे पर्वत-समान ऊँचे कंधोंवाले! रात्रि के समान मनोहर वर्णवाले वे प्रभु तथा वह देवी यहाँ विश्राम करते रहे और वह वीर (लक्ष्मण) कर में धनुष लेकर निःश्वास भरते हुए और आँखों से अश्रु बहाते हुए रात्रि के व्यतीत होने तक, एक पलक भी मारे बिना, (पहरे पर) खड़े रहे।

यह सुनकर भरत ने कहा—राम के अनुज बनकर एक समान उत्पन्न हुए हम-लोगों में से एक मैं हूँ, जो (राम के लिए) अपार कष्ट का कारण बना। और, एक वह

(लक्ष्मण) भी है, जो मेरे उत्पादित कष्टों को दूर करने के लिए सहायक बना। अहो ! प्रेम की भी कोई सीमा हो सकती है ? मेरा दासत्व भी खूब रहा।[1]

फिर, भरत उस रात को वहीं धूल पर लेटे रहे। प्रातःकाल होने पर उन्होंने गुह से कहा—शत्रु-भयंकर नाद से युक्त वीर-वलय धारण करनेवाले हे वीर ! यदि तुम इस समय हमलोगों को गंगा के उस किनारे पर पहुँचा दोगे, तो तुम हमें दुःख के समुद्र से निकालकर प्रभु (राम) के पास पहुँचानेवाले हो जाओगे।

गुह भी 'अच्छा' कहकर अपने सैनिकों के निकट गया और कहा कि तुमलोग शीघ्र जाकर नौकाएँ ले आओ। तब नौकाएँ इस प्रकार आईं, मानों शिवजी का कैलास, उनके द्वारा (धनुष के रूप में) झुकाया गया स्वर्ण-पर्वत मेरु एवं कुबेर का पुष्पक विमान—ये तीनों एकाकी ही रहने से लज्जित होकर अब अनेक रूप धारण करके आ गये हों।

उस किनारे से इस किनारे पर तथा इस किनारे से उस किनारे पर लोगों को ले जाने और ले आने के कारण वे नौकाएँ (पुण्य-पाप-रूपी), कर्म-युगल से समान थीं, जो जीवों को इस लोक से स्वर्गलोक में तथा स्वर्गलोक से इस लोक में लाते-पहुँचाते रहते हैं। युवतियों की गति एवं हंसों (की गति) को लजाती हुई चलनेवाली वे नौकाएँ गंगा नदी में सर्वत्र फैल गईं।

तब शृङ्गवेरपुराधीश (गुह) ने भरत से कहा—हे दृढ धनुर्धारी वीर ! असंख्य नौकाएँ आ गई हैं। अब आप क्या करना चाहते हैं ? तब सुन्दर धनुर्धारी भरत ने सुमंत्र से कहा—इस सारी सेना को शीघ्र इन नौकाओं पर चढ़ाकर उस पार ले चलो।

भरत की आज्ञा से, अश्व-जुते बड़े रथ को चलाने में चतुर सुमंत्र ने, क्रम को तोड़े विना, पृथक्-पृथक् वर्गों में, गजों, अश्वों, रथों तथा पदाति-सेना को उस पार पहुँचाया। वह सेनावाहिनी, उज्ज्वल रत्नों को अपनी वीचियों से विखेरनेवाली गंगा नदी के दूसरे किनारे पर जा पहुँची।

प्रलय-काल में मानों मेघों के झुंड गरजते हुए समुद्र के सारे जल को भरने के लिए उमड़ आये हों, अथवा जल-नौकाएँ ऊँची ध्वजा और मस्तूल के साथ (जल में) जा रही हों—इसी प्रकार दीर्घ शुंडवाले मत्तगज, अपनी सूँड़ को ऊपर उठाये हुए जल में उतर-कर तैरते हुए नदी को पार कर गये।

अति विशाल हाथियों के द्वारा ढकेला जाकर गंगा का जल, शंख, मकर, मीन, मुक्ता तथा अन्य रत्नों को विखेरता हुआ तट को लाँघकर दक्षिण की दिशा में उमड़ चला, जिससे (दक्षिण का) समुद्र उसके मार्ग में निकट आ गया, मानों वह गंगा-प्रवाह भी रामचन्द्र के दर्शन करने की इच्छा से ही चल रहा हो।

---

१. अंतिम वाक्य का यह भाव है कि प्रेम का क्रियात्मक रूप ही दासत्व है। यह वैष्णवों का सिद्धांत है। वात्सल्य, दांपत्य, सख्य आदि का प्रेम भी क्रिया-रूप में दास्य ही है। अतः, भरत यह कहते हैं कि मैं राम के प्रति प्रेम रखकर भी उनका कुछ दास्य नहीं कर सका, जब कि लक्ष्मण दासोचित कार्य कर रहा है। —अनु०

(गंगा के प्रवाह में जब हाथी तैर रहे थे, तब) अत्यन्त मदजल बहानेवाले मत्त-गजों के उन्नत कुंभ-मात्र ऊपर दिखाई दे रहे थे। गजों के शरीर के छिपे रहने से, तथा सुन्दर उत्तरीय-जैसी ही वीचियों के, उन कुंभों पर फहराने से, वे कुंभ ऐसे लगते थे, मानों गंगानदी-रूपी युवती के स्तन ही हों।

रथों के चक्र, धुरी, छत, ध्वजाएँ, पीठ आदि उनके सब भाग पृथक्-पृथक् कर दिये गये। अश्व, तथा रथों के भाग, पृथक्-पृथक् नावों पर चढ़ाये गये तथा दूसरे पार पहुँचाये गये। पुनः रथों के सब अंग जोड़े गये। वह ऐसा था, जैसे मनुष्य के शरीर के अंगों को अलग-अलग करके पुनः उन्हें जोड़नेवाली किसी विद्या के प्रभाव से उन्हें जोड़ दिया गया हो।

जैसे दूध हो, वैसे (उज्ज्वल) शरीरवाले, जैसे भय ही घनीभूत हो गया हो, वैसे हृदयवाले—(अर्थात्, छोटी-सी ध्वनि से भी भड़ककर दौड़नेवाले), जैसे वायु ही घनीभूत हो गई हो, वैसी टाँगोंवाले (अति वेगगामी) एवं लगाम लगे हुए आठ करोड़ घोड़े, मीन जैसी नावों पर चढ़कर उस पार जा पहुँचे।

कंकणों से भूषित पल्लव-समान करोंवाली युवतियाँ, नावों में परस्पर सटकर और आमने सामने होकर, इस प्रकार बैठी थीं कि उनके उभरे हुए स्तन परस्पर यों टकराने लगे, जैसे दीर्घ दंतोंवाले मनोहर मत्तगजों के झुंड में उनके दाँत टकरा उठे हों।

जब वेग से चलती हुई नावें एक दूसरे से टकराकर हिल उठती थीं, तब स्वर्ण-कर्णाभरणों से भूषित युवतियाँ भय से व्याकुल होकर दोनों ओर अपनी दृष्टि फेंकती थीं। वह दृश्य ऐसा था, मानों चंचल जल-तरंगों से फेंके जाकर मीन घबराकर दोनों ओर उछल रहे हों।

वेगगामी नावों के दोनों ओर खेवैयों के द्वारा चलाये जानेवाले डाँड़ों से जल-बिन्दु उड़-उड़कर युवतियों के पतले वस्त्रों को भिगो देते थे और उनके विस्तृत जघनों के आकार को प्रकट कर देते थे। वह दृश्य थके-माँदे वीरों की थकावट को मिटा देता था।

कोलाहल भरी सेना को, इस किनारे से लेकर उस किनारे पर उतारकर खाली लौटनेवाली नावें उन बड़े-बड़े मेघों-जैसी लगती थीं, जो (मेघ) समुद्र के जल को भरकर लाये हों और उसे बरसाने के पश्चात् खाली होकर समुद्र की ओर लौट रहे हों।

अगरु-धूम के समान चुने हुए मयूर-पंखों से भूषित दंड, मस्तूलों-जैसे लगते थे। मोती की लड़ी से सजी हुई ध्वजाएँ, पाल-जैसी लगती थीं। यों वे नावें विशाल जल-नौकाओं की समता करती थीं।

विशाल गंगा नदी आकाश के समान थी। उससे बिखरनेवाले मोती नक्षत्रों के समान थे। कमल-सदृश वदन, अमृत, मधुर रक्त-अधर तथा (पुष्पों के) मधु से सिक्त केशोंवाली विद्युत्-जैसी सुन्दरियों को ढोकर चलनेवाली नावें उन विमानों के समान थीं, जो जल-विहार करके लौटनेवाली देव-स्त्रियों को लेकर चलते हैं।

जल-बिन्दुओं को उड़ानेवाले डाँड़-समान अपने पैरों के साथ वे नावें, जो शीतल जलयुक्त गंगा नदी में चल रही थीं, ऐसी लगती थीं, मानो हर्ष-भरी, मोर-समान,

घने केशोंवाली तथा मीनाक्षी युवतियों के उज्ज्वल पद-कमलों के स्पर्श से प्राणवान् हो उठी हों।

मुनि, निम्न जाति के लोगों के द्वारा चलाई जानेवाली नावों को न छूकर, संकल्पमात्र से सिद्ध होनेवाले गगन-संचार (गगन-मार्ग) से देवों के जैसे गये। स्वर्ग, भूमि और अन्य किसी भी लोक में सत्य-युक्त तपस्या से बढ़कर और क्या हो सकता है ?

साठ सहस्र अक्षौहिणी संख्यावाली वह सारी सेना तथा नगर की सारी प्रजा, वीचियों से पूर्ण गंगा नदी को पीछे छोड़कर आगे बढ़ चली।

जब सारी सेना भौंरों से भरी नदी को पार कर गई, तब कपट पूर्ण धन-लिप्सा से रहित होकर अपने त्याग के द्वारा पृथ्वी के पुराने बड़े राजाओं को भी नीचा दिखानेवाले भरत, नाव पर आरूढ हुए।

उनका अनुपम अनुज (शत्रुघ्न), तीनों माताएँ, उत्तम गुणवाला सुमंत्र तथा पवित्र मित्र गुह—ये सब जब आसीन हो गये, तब वह नाव भी डाँड़-रूपी अपने पैरों को बढ़ाकर चल पड़ी।

तब गुह ने, बंधुजनों तथा देवों के द्वारा भी आवृत होनेवाली अति गंभीर कौशल्या देवी को देखकर भरत से पूछा—हे विजयमालाधारी ! ये कौन हैं ? भरत ने उत्तर दिया—जिन चक्रवर्त्ती के द्वार पर बड़े-बड़े राजा लोग भी खड़े रहते थे, उनकी ये पट्टमहिषी हैं। जिन्होंने त्रिभुवन के सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा को भी उत्पन्न करनेवाले को (अर्थात् , विष्णु के अवतार को) अपनी अपूर्व संपत्ति के रूप में पाकर भी मेरे जन्म लेने के कारण खो दिया है।

भरत के यह कहते ही गुह उनके चरणों पर दंडवत् हो गिर पड़ा और रोने लगा। बछड़े से बिछुड़ी हुई गाय के समान दुःख से युक्त कौशल्या ने भरत से पूछा—यह कौन हैं ? वीर कंकणधारी कुमार (भरत) ने उत्तर दिया—यह पुरुष रामचन्द्र का प्रिय मित्र है। लक्ष्मण, उनके अनुज (शत्रुघ्न) तथा मैं, हम तीनों का बड़ा भाई है। पर्वत-समान कंधोंवाला इस पुरुष का नाम गुह है।

यह वचन सुनकर कौशल्या ने यह कहकर आशीर्वाद दिया—हे पुत्रो ! अब तुम लोग दुःखी मत होओ। पराक्रमी राम-लक्ष्मण का नगर छोड़कर वन जाना भी तो अच्छा ही हुआ। तुम पाँचों पर्वत-समान कंधों तथा सूँड़वाले हाथी के जैसे वीर इस गुह के साथ मिलकर एकता से चिरकाल तक इस पृथ्वी की रक्षा करते रहो।

फिर साकार धर्म-जैसी सुमित्रा के बारे में गुह ने भरत से प्रश्न किया—हे तात ! ये करुणामयी देवी कौन हैं ? भरत ने उत्तर दिया—सत्य को स्थिर रखकर, उन्मार्ग पर चलकर, अपने प्राण त्यागनेवाले चक्रवर्त्ती की ये छोटी पत्नी हैं। सबके लिए वंदनीय प्रभु (राम) का अनुज, जो सदा उनका अनुवर्त्ती रहता है, उस (लक्ष्मण) की जननी हैं।

फिर, उस कैकेयी को, जिसने अपने पति को श्मशान में, पुत्र (भरत) को दुःख-सागर में, करुणा-समुद्र राम को घोर कानन में भेजकर, वीर-कंकणधारी त्रिविक्रम

(त्रिष्णु) के द्वारा पूर्वकाल में नापी गई सारी पृथ्वी को अपने मन के षड्यन्त्र से नापा था, देखकर गुह ने भरत से पूछा—ये कौन हैं ?

तब भरत ने कहा—सब विपदाओं को उत्पन्न करनेवाली, लोकनिंदा (रूपी) संतान को पालनेवाली माता, उसके पापी पेट में चिरकाल तक वास करनेवाले मुझ पुत्र के प्राणों को भार बनानेवाली तथा इस लोक में, जहाँ के सब प्राणी प्राणहीन शरीर-जैसे लगते हैं—(अर्थात् , राम-वियोग में दुःखी हैं), पीडा के लक्षणों से रहित होकर रहनेवाली वह एकमात्र व्यक्ति है, ऐसी इस स्त्री को क्या तुमने नहीं पहचाना ? यहाँ खड़ी हुई यही मेरी जननी है।

भरत के वचन सुनकर गुह ने उस दयाहीन स्त्री को भी अपने कर जोड़कर नमस्कार किया। उस समय वह नाव भी पंख-रहित होकर तैरनेवाली हंसिनी के समान किनारे पर आ लगी।

नाव से उतरकर माताएँ पालकियों पर आसीन होकर चलीं। भरत ने अश्रु-प्रवाह बहानेवाली आँखों के साथ पैदल ही चलकर दीर्घ मार्ग पार किया। गुह भी उनसे पृथक् न होकर उनके साथ चला।

फिर, भरत कर्म-भार से मुक्त भरद्वाज नामक, महान् तपस्वी के आश्रम में आदर के साथ जा पहुँचे। उस समय वे महर्षि, वृद्ध तपस्वियों के साथ, उनके सम्मुख आये।

(१–७३)

●

अध्याय १२

पादुका-पट्टाभिषेक पटल

भरत ने अपने सम्मुख आये (भरद्वाज) मुनि को, पिता-समान मानकर बड़ी विनम्रता से प्रणाम किया। चन्द्रशेखर (शिव)-सदृश उन मुनिवर ने प्रेम से उन्हें अनेक शुभ आशीर्वाद दिये।

फिर भरद्वाज मुनि ने भरत को देखकर कहा—हे तात ! तुमको जो राज्य प्राप्त हुआ है, किरीट धारणकर उसका शासन किये बिना क्यों इस प्रकार जटा धारण करके यहाँ आये हो ?

यह वचन सुनते ही भरत घोर क्रोधाग्नि से भड़क उठे। किन्तु क्रोध को दबाकर उन महान् तपस्वी को देखकर कहा—हे ज्ञानी ! आपने यह समझकर कि मैंने अपना कर्त्तव्य पूरा नहीं किया, अब यह जो प्रश्न किया है, यह क्या आपके लिए उचित है ?

वेदों के प्रभु (विष्णु) के अवतार राम के योग्य भाई भरत ने पुनः कहा—कुल-परंपरा से आगत धर्म का त्याग कर मैं राज्य नहीं करना चाहता। यदि रामचन्द्र उस

(राज्य) को नहीं स्वीकार करेंगे, तो वनवास की अवधि तक मैं भी उनके साथ वन में ही रहूँगा।

राम के प्रति अत्यन्त प्रेम से पूर्ण उन महान् तपस्वियों ने, ज्योंही यह वचन सुना, त्योंही उनके फूले हुए शरीर और मन में ऐसी शीतलता व्याप्त हुई, जैसे किसी ने चन्दन लगा दिया हो।

भरद्वाज महर्षि प्रेम के साथ भरत को अपने पवित्र आश्रम में ले गये और उनके साथ आई हुई सेना का आतिथ्य करने के विचार से अपने अरुण करों से अग्नि में कुछ अहुतियाँ दी।

विरागी तपस्वी (भरद्वाज) के स्मरण करने मात्र से स्वर्गलोक शीघ्र वहाँ आ पहुँचा। सेना के लोग मानों पुनर्जन्म प्राप्त कर दूसरे लोक में जा पहुँचे हों—इस प्रकार अपनी पूर्वदिशा को भूलकर बड़े आनन्द में निमग्न हो रहे।

स्वर्ग की अप्सराओं ने यह मानकर कि ये लोग शाश्वत धर्म के आश्रय हैं, उस सेना में स्थित लोगों का प्रेम से स्वागत किया और चन्द्र-मंडल के समान स्थित प्रासाद में उन्हें ले गईं।

उन (अप्सराओं) ने उस सेना के लोगों को स्नान के उपयुक्त सुगंध-चूर्णों का लेप कराकर स्वर्ग-गंगा के दुर्लभ तथा अपूर्व जल में स्नान कराया। सुरभिमय बड़े कल्प-वृक्षों के दिये हुए पुष्प-सदृश मृदु वस्त्र पहनाये।

पुष्पित शाखा के समान लचकती देहवाली उन अप्सराओं ने रक्तस्वर्ण के बने मनोहर आभरण पहनकर बड़े प्रेम से उन लोगों को अमृत-समान भोजन कराया।

फिर, भरत की सेना में स्थित पुरुषों ने अलक्तक-लगे, नूपुरों से भूषित एवं पल्लव-समान चरणों से युक्त तथा विष-समान नयनों से शोभायमान उन अप्सराओं के साथ पंच लक्षणों से युक्त उत्तम शय्या पर सुखनिद्रा की।[1]

राजाओं से लेकर पालकी ढोने से सूजे हुए कंधोंवाले लोगों तक, सबका उन सुन्दर केशोंवाली अप्सराओं ने यथाक्रम ऐसा ही सत्कार किया, जैसा देवताओं का करती हैं।

भरत की सेना में आई हुई स्त्रियाँ, बिंबफल-समान रक्त अधरोंवाली तथा निर्दोष वैभव से पूर्ण उन अप्सराओं के सखियों तथा दासियों के समान सेवा करते रहने से, देव-योग्य भोग अनुभव करती रहीं।

उपवनों में स्थित सब विकसित पुष्पों से भरे कल्पवृक्षों से मंद मारुत, संध्या के हाथ का सहारा लिये हुए, अंधे व्यक्ति के समान, धीरे-धीरे आया।

मधु-धारा से सिक्त अन्न-पिंडों तथा लाल धान के पत्तों की राशि को कल्पवृक्षों ने दिया, तो उनको खाकर मत्तगज तृप्त हुए और उनके मद-जल से भ्रमर भी तृप्त हुए।

नरक से मुक्ति देनेवाले पवित्र आकाश-गंगा के जल को मत्तगजों ने अपने आगे के

१. शय्या के पाँच लक्षण हैं—मार्दव, सुगंध, धावल्य, शीतलता एवं अलंकृत होना। अथवा हंस के पंख, सेमल की रूई, मयूर-पंख, लाल कपास और सफेद कपास—इन पाँचों से भरा रहना। —अनु०

पैरों को पसारकर, लंबी सँड़ों से भरकर पिया। अश्व-समूह ने मरकत-समान कांति से युक्त घास को खाया।

सब लोग इस प्रकार देव-योग्य भोगों का अनुभव कर रहे थे। किन्तु, भरत ने कंद-मूल और फल खाकर ही, अपनी स्वर्णमय देह को धूल पर डालकर, किसी प्रकार उस रात को व्यतीत किया।

नीलवर्ण अंधकार के हटने से जिस प्रकार स्वप्न भी मिट जाता है, उसी प्रकार उनके स्वर्गिक भोगों के मिटने का कारण बनकर सूर्य इस प्रकार उदित हुआ, जैसे पुण्यानुभव करनेवालों के पुण्य का ही अंत हो गया हो।

संयम के साथ जो धर्म का आचरण नहीं करते, उनके जीवन के समान ही उन सैनिकों का भोग भी मिट गया, मानों उन्हें दूसरा जन्म ही प्राप्त हो गया हो। यों (स्वर्ग-भोग के खो जाने से) चिंता न करते हुए वे पूर्व दशा में पहुँच गये।

उस दिन प्रातः ही निद्रा से उठकर वह सेना उपवनों तथा पर्वतों को धूल बनाकर उड़ाती हुई चल पड़ी और एक मरुभूमि में जा पहुँची, जिसे देखकर देवता भी यह संदेह करने लगे कि यह समुद्र है कि सेना है।

ऊपर उठी हुई धूल से आवृत होकर सूर्य, ताप-रहित हो शीतल पड़ गया। गजों के मद-प्रवाह, धूल-भरे उस मरु-प्रदेश में यों बहे कि आगे चलना कठिन हो गया।

तीक्ष्ण भालेवाले राजाओं के श्वेतच्छत्र, वृक्षों की-सी घनी छाया दे रहे थे, जिससे अग्नि के समान उष्ण एवं कंकड़ों से भरा वह मरु-प्रदेश इस प्रकार शीतल हो गया, मानों उसके ऊपर घनी लताओं से युक्त कोई वितान ही छा दिया गया हो।

'यह विशाल राज्य तुम स्वीकार करो'—यों कहनेवाली माता के प्रति उत्पन्न क्रोध से जिनका मुख लाल हो गया था, ऐसे नीलवर्ण भरत को देखकर सूखे हुए वृक्ष भी प्रेम के कारण द्रवित होकर पल्लवित हो गये।

अपने प्राणों से भी सद्धर्म को ही अधिक श्रेष्ठ मानकर प्राण त्यागनेवाले, शासन में चतुर दशरथ की वह सेना, दुःखदायक मरु-प्रदेश को ऐसे पार कर गई, जैसे शीतल वृक्षों से भरे (मरुद नामक) भू-प्रदेश को ही पार कर रही हो और इस प्रकार चित्रकूट पर्वत के निकट जा पहुँची।

धूलि का समूह, अश्वों, रथों तथा मत्तगजों का शब्द एवं पैदल सेना का कोलाहल—यह सब सूचना दे रहे थे कि एक विशाल सेना आ रही है, जिसे सुनकर—

लक्ष्मण उठे और एक ऐसे पर्वत पर चढ़ गये, जो पृथ्वी के सूज उठने से उभरा-सा लगता था और वीचि-पूर्ण सागर को छोटा बना देनेवाली तथा दृढ धनुर्धारी उस विशाल सेना को देखा।

तब लक्ष्मण, यह सोचकर कि सारी पृथ्वी का राज्य करने की अदम्य इच्छा से प्रेरित होकर ही भरत इस सेना को लेकर व्रतधारी (रामचन्द्र) पर आक्रमण करने आया है—यह सत्य है।—अत्यन्त क्रोध से भर गये।

वे दौड़कर, उस पर्वत को चूर-चूर करते हुए, भूमि पर कूद पड़े और शीघ्र

रामचन्द्र के निकट जा पहुँचे और बोले—भरत आपका आदर किये बिना प्राचीरों से आवृत अयोध्या की सेना को लेकर आप पर आक्रमण करने को आ रहा है।

यों कहकर लक्ष्मण ने (कटि में) कटार और (पैरों में) वीर-वलय धारण किये। अनेक बाणों से भरा तूणीर लिया। युद्ध-कवच पहना। हाथ में धनुष लिया। और प्रभु के चरणों को प्रणाम करके ये वचन कहे—

इह और पर-लोक दोनों के फलों को खो देनेवाले उस भरत के ऊँचे कंधों के बल को, उसकी सेना के महत्त्व को एवं अपने इस अनुज (अर्थात्, लक्ष्मण) के अनुपम पराक्रम को देखकर आप आनन्दित होंगे।

बड़ी पीडा से मरनेवाले हाथियों के ढेरों को लुढ़कानेवाले, रथों को बहानेवाले, (हाथी, अश्व आदि की) आँतों को बिखेरकर ले चलनेवाले तथा अरण्य में फैलनेवाले रक्त-प्रवाह को आप अभी देखेंगे।

मेरे बाण (शत्रुओं के) हथियार, हाथ, कवच से आवृत वक्ष तथा प्राण सबको छिन्न करके उनके शरीर के भीतर प्रविष्ट होंगे। (मेरे बाण), उनके रक्त से भी सिक्त न होकर बड़े वेग से सब दिशाओं में जाकर, दिग्गजों को भी भयभीत करेंगे। हे वीर! आप देखेंगे।

अति वेग से फाँदनेवाले अश्वों के मर जाने पर, रथों की स्वर्णमय पीठों पर, टूट-कर गिरे हुए ढालों को अपने हाथ में लेकर भूतों को संगीत के साथ नृत्य करते हुए देखेंगे।

(लक्ष्मण ने राम से कहा—) अलंकारों से युक्त हाथियों से पूर्ण भरत की सेना को मैं एक क्षण में निर्मूल कर दूँगा, जिससे वीर-स्वर्ग भी भार से अपनी पीठ झुकाने लगेगा तथा समुद्र-रूपी वस्त्र से युक्त पृथ्वी भार-मुक्त होकर विश्राम करेगी। हे उदारगुण! यह आप देखेंगे।

उमड़कर चलनेवाले रक्त-प्रवाह में तैरने के कारण लाल हुए भूत और उनके साथ छोटी आँखवाले पिशाच तथा शिर-रहित कवंध, देवों के जैसे ही यह कहते हुए कि 'सारी पृथ्वी आपके अधीन हो गई है', नाचेंगे।

मुख-पट्टों से भूषित मत्तगजों, अश्वों, भारी भुजाओं से युक्त पैदल सेना के वीरों आदि के मरने पर उनके समुद्र-सदृश रक्त से सप्त समुद्रों को उथलकर गरजते हुए आप सुनेंगे।

आप देखेंगे कि मेरे शरों से कैसे पैदल सेना छिन्न-भिन्न होती है। रथ विध्वस्त होते हैं। वीरों के करवाल टूट जाते हैं। दृढ धनुष टूट जाते हैं। बड़े गजों और अश्वों के पैर, शिर आदि टूट जाते हैं और उनपर आरूढ वीरों के पैर और हाथ कट जाते हैं।

बड़े पंखवाले तथा स्वर्णिम कांति को बिखेरनेवाले मेरे बाणों को, उन दोनों—(अर्थात्, भरत और शत्रुघ्न) के वक्षों को छेदकर, उनका मांस निकालकर, गगन-मार्ग में उड़ते हुए और (मांसभक्षी) पक्षियों को बुलाते हुए, आप देखेंगे।

हे चक्रधारी! एक स्त्री के मोह से संसार-भर को दुःख देनेवाले चक्रवर्त्ती (दशरथ) की आज्ञा से जिस भरत ने राज्य पाया है, उसे अब मेरी आज्ञा से यह राज्य

त्यागकर, पुनरावृत्ति से रहित (अर्थात्, जहाँ से लौट आना असंभव है), नरक-लोक प्राप्त करते हुए देखेंगे।

यह देखकर कि आपको राज्य छोड़कर वन में निवास करने का दुःख प्राप्त हुआ है, जब आपकी जननी रो रही थीं, तब उसे देखकर जो कैकेयी आनन्दित हुई थी, उसे अब (पुत्र के शोक में) पृथ्वी पर गिरकर रोते हुए देखेंगे।

सान पर चढ़ाकर तीक्ष्ण किये गये, अग्नि के समान भयंकर और विजयमाला से भूषित बरछा धारण करनेवाले ! मैं एक क्षण में एक तीक्ष्ण तथा विध्वंसक बाण से इस सेना-समुद्र को त्रिपुर-दाह करनेवाले शिवजी के समान सुखा दूँगा—इस प्रकार लक्ष्मण ने कहा।

तब रामचन्द्र ने उससे कहा—हे लक्ष्मण ! यदि तुम चतुर्दश लोकों को हिला देना चाहो, तो तुम्हारे इस निश्चय को कोई रोक नहीं सकता। उसके बारे में कुछ कहने की क्या आवश्यकता है ? (पर मैं तुम से) एक उचित वचन कहना चाहता हूँ। उसे सुनो।

उज्ज्वल प्रस्तर-स्तंभ के प्रतिरूप बने कंधोंवाले ! हमारे कुल में जो निष्कलंक गुणवाले राजा उत्पन्न हुए, उनकी गणना नहीं हो सकती। हमारे कुल में कौन ऐसा हुआ, जो अपने कुल-धर्म से हटा हो ?

ताल-वृक्ष जैसी सूँड़ोंवाले हाथियों की सेना से युक्त भरत ने जो कार्य किया है, वह वेद-प्रतिपादित धर्म के अंतर्भूत ही है। तुम जैसा कहते हो, वैसा नहीं है (अर्थात्, अधर्म-कार्य नहीं है)। इस सत्य को तुमने मेरे प्रति प्रेमाधिक्य के कारण सोचा नहीं।

भरत, मुझ अपने ज्येष्ठ भ्राता पर प्रेम के कारण ही यहाँ आयगा और राज्य मुझे सौंप देगा—यों सोचने के बदले क्या यह सोचना बुद्धिमत्ता है कि वह (भरत) सेना के साथ आकर मुझसे युद्ध करेगा ?

हे विद्युत् के समान चमकते हुए बरछे को धारण करनेवाले ! वीर-वलयधारी भरत यहाँ आकर विशाल सेना को, राज्य-संपत्ति के साथ, मुझे सौंपेगा—इसके विपरीत यह कहना भी अनुचित है कि वह मेरे साथ युद्ध करेगा।

हे आभरण-योग्य कंधोंवाले ! उत्तम धर्म के देवता के समान एवं सच्चारित्र्य की धुरी बने हुए उस (भरत) के संबंध में इस प्रकार सोचना क्या उचित है ? उसका यहाँ आना, मुझे देखने के लिए ही है। इसे तुम अभी समझोगे।

प्रभु ने अनुज (लक्ष्मण) से यों कहा—उस समय, भरत अपनी सेना को पीछे छोड़कर, अपने से कभी पृथक् न होनेवाले प्रेमयुक्त भाई शत्रुघ्न को साथ लेकर, आगे बढ़कर (राम के निकट) आया।

नमस्कार की मुद्रा में हाथों को उठाये हुए, शिथिल देहवाले, अश्रुपूर्ण नेत्रोंवाले तथा साकार दुःख बने हुए चित्र-जैसे आनेवाले भरत को सर्वज्ञ प्रभु ने पूर्ण रूप से देखा—(अर्थात्, शिर से पैर तक दृष्टि फेरकर देखा)।

फिर, काले मेघ-जैसे आकारवाले प्रभु ने लक्ष्मण से कहा—शब्दायमान दृढ धनुष से युक्त हे अनुज ! हे तात ! देखो, रथ आदि की सेना को लेकर यह भरत बड़े क्रोध के साथ युद्ध करने के लिए कैसा युद्धोचित वेष धारण कर यहाँ आ रहा है !

यह सुनकर लक्ष्मण-तपोवेष में, निर्बल हुई भुजाओं से युक्त भरत के संबंध में अपने कहे हुए कठोर वचन भूल गये। उनका क्रोध तथा ज्ञान भी शिथिल हो गये और कांति-हीन वदन के साथ यों खड़े रहे कि उनका धनुष तथा अश्रु दोनों धरती पर गिर पड़े।

उस समय, भरत अपने दोनों हाथों को जोड़कर इस प्रकार राम के सम्मुख आये, मानों रामचन्द्र को, अपने पति के रूप में पाने के लिए तपस्या करके उन्हें प्राप्त करने के समय अकस्मात् उनसे वियुक्त हुई राज्यलक्ष्मी का (राम के पास) भेजा हुआ कोई दूत हो।

भरत आये और जैसे अपने पिता के ही दर्शन कर रहे हों—यह वचन कहते हुए राम के चरणों पर गिर पड़े कि आपने धर्म का विचार नहीं किया। करुणा को त्याग दिया और परंपरागत नीति को छोड़ दिया।

उसमें प्राण हैं या नहीं, ऐसा संदेह उत्पन्न करनेवाले, अत्यन्त कृशगात्र हुए, भरत को प्रभु ने देखा। देखते ही उनके नयन-रूपी कमलों से (अश्रु) जल प्रवाहित होकर (भरत के) जटा-मंडल पर गिरकर उसे भरकर फिर उमड़कर बह चला।

दयामय परमात्मा ने धर्म-देवता का आलिंगन किया हो, इस प्रकार (का भ्रम उत्पन्न करते हुए) समस्त नीति के एकमात्र आश्रयभूत रामचन्द्र ने निःश्वास भरते हुए तथा वक्ष पर आँसुओं को बहाते हुए द्रवितचित्त होकर भरत का आलिंगन किया।

भरत को गले लगाकर रामचन्द्र ने उनके वेष को बार-बार ध्यान से देखा और विविध भाँति के विचार किये। फिर पूछा—हे तात! तुम दुःख-समुद्र में डूबे हो। संसार का शासन करनेवाले, मल्लयुद्ध में चतुर भुजाओंवाले, हमारे पिता सुखी हैं न?

ज्ञानी (प्रभु) का वचन सुनकर भरत ने कहा—हे प्रभु! आपके विरह-रूपी व्याधि से एवं मेरी जननी के वर-रूपी यम से पीडित होकर हमारे पिता इस संसार में सत्य को स्थिर करके परलोक में जा पहुँचे हैं।

'(पिता) स्वर्गलोक को गये'—यह तीक्ष्ण वचन घाव में बरछे के समान उनके कानों में घुसने के पूर्व ही परमपद के निवासी प्रभु (विष्णु के अवतार राम) के नयन और मन चरखी के जैसे घूम उठे और वे मूर्च्छित हो भूमि पर गिर पड़े।

प्रभु विशाल धरती पर गिरे। उनके प्राण अप्रकट हो रहे। बिजली से पीडित सर्प के समान वे मूर्च्छित हो रहे। फिर, बड़ी कठिनाई से उनके प्राण लौटे। तब वे निःश्वास भरते हुए बड़ी व्याकुलता के साथ विविध वचन कहकर विलाप करने लगे।

अमंद दीप-सदृश हे शासक! संसार के निवासियों के लिए पितृ-तुल्य! अनुपम धर्म के लिए माता बननेवाले! दया-निलय! मेरे पिता! शत्रुरूपी हाथियों के लिए सिंह बननेवाले! तुम मृत हो गये। अब सत्य का यथार्थ आश्रय और कौन बनेगा?

हे शत्रुओं के लिए भयंकर, विध्वंसक तथा विजयमाला से भूषित तीक्ष्णमाला धारण करनेवाले! प्रसिद्ध तपस्वी ऋष्यशृंग की कृपा से उत्तम यज्ञ संपन्न करके तुमने मुझे पुत्र के रूप में पाया। क्या उसका फल तुम्हारा इस प्रकार से प्राण त्याग करके जाना ही है?

स्वर्णरंग की धूलि बिखेरनेवाले पुष्पों से भूषित, तीक्ष्ण सूर्य-किरण की-सी उज्ज्वल कांति बिखेरनेवाली धवल माला धारण करनेवाले ! प्रजा का हित करनेवाले शासन का भार मेरे द्वारा लिये जाने पर विश्राम पाने का तुम्हारा ढंग क्या यही है ? मैं तुम्हारे प्राणों के लिए यम बनकर उत्पन्न हुआ। क्या मैं सचमुच संसार का राज्य करने की योग्यता रखता हूँ ?

शंबरासुर को मिटाकर देवेन्द्र को स्वर्ग का शाश्वत राज्य प्रदान करनेवाले हे चक्रधारी ! राज्य का भार मुझे सौंपकर पंचेन्द्रियों पर दमन करके तुम्हारी तपस्या करने की क्या यही रीति है ?

सबके स्पृहणीय राज्य को स्वीकार करके संसार के लिए दुःख उत्पन्न करनेवाला क्षुद्र हूँ मैं। अब यदि मैं अपने प्राण छोड़ने के बदले इस शरीर को रखकर राज्य करने लगूँ, तो वह किसकी तृप्ति के लिए होगा ?

पुष्ट देहवाले शत्रुओं के प्राण हरण करनेवाला भाला रखनेवाले, हे पिता ! मधुस्रावी पुष्पोद्यानों से पूर्ण कोशल देश को छोड़कर मैं वन में आया हूँ—यह बात सुनने मात्र से उसे न सहकर तुम स्वर्ग को चले गये। किन्तु, मैं अभी तक यह (संसार का) जीवन चाहता हुआ जीवित हूँ।

गरिमामय चन्द्र को भी शीतलता प्रदान करनेवाले अनुपम छत्र से युक्त हे चक्रवर्त्ती ! तुम दातृत्व, गौरव, स्वर्गवासियों के लिए भी अविनाशी पराक्रम, न्याय से विचलित न होनेवाली शासन-रीति, अपरिवर्त्तनीय सत्य तथा अन्य समस्त सद्गुणों को अपने साथ ही ले गये (अर्थात् , अब इस संसार में वे गुण नहीं रहे)।

इस प्रकार, विविध वचन कहकर विलाप करनेवाले, पुष्ट पर्वताकार दृढ कंधोंवाले, सिंहतुल्य राम को विशाल भुजाओंवाले भाइयों तथा वहाँ आये हुए नरेशों ने जाकर सँभाला। तब महान् तपस्वी वसिष्ठ उन्हें सांत्वना देनेवाले वचन कहने लगे।

उस समय, वर्णनातीत तपःप्रभाव से युक्त भरद्वाज आदि जटाधारी मुनि, सप्त द्वीपों के राजा तथा सभी मंत्री आ पहुँचे। सेनापति भी आ गये।

आने योग्य सब लोगों के आ जाने पर शोक में निमग्न विजयशील पुरुषोत्तम (राम) को देखकर कमलभव (ब्रह्मा) के पुत्र (वसिष्ठ) ने कहा—

संसार के प्राणियों के लिए, संन्यास अथवा (गृहस्थ-जीवन में रहकर) उत्तम धर्म-मार्ग पर चलना—इनके अतिरिक्त अन्य कोई साथी नहीं है। इन प्राणियों के लिए जन्म लेना और मरना स्वाभाविक है। वेदों के पारंगत तुमने क्या इस बात को भुला दिया ?

'प्राणियों के अनित्य जन्म असंख्य कोटि होते हैं, जो सुख और दुःख से भरे रहते हैं'—शास्त्रों में अनेक स्थानों में प्रतिपादित इस सत्य को जानने के पश्चात् भी क्या यह सोचना उचित है कि यम पक्षपात से काम करता है ?

हम देखते हैं कि कुछ प्राणी जन्म लेने के पूर्व ही मर जाते हैं। चक्रवर्त्ती उत्तम ज्ञान के साथ, साठ सहस्र वर्ष-पर्यंत सारी पृथ्वी का शासन करके स्वर्गवास करने गये हैं। इसके लिए रोना क्या ?

तपस्या, धर्म और सृष्टि एवं त्रिशूल, चक्र और सरस्वती, क्रमशः इनको धारण करनेवाले त्रिदेव (शिव, विष्णु और ब्रह्मा) भी काल के प्रभाव से मुक्त नहीं हैं।

नेत्र आदि इंद्रियों के कारणभूत, अपार विशालता से युक्त एवं सृष्टि के सब पदार्थों के उत्पत्ति-स्थान बने हुए पृथ्वी, जल आदि पंचभूत भी नश्वर हैं, तो अब एक प्राणी के लिए तुम क्यों शोक करते हो ?

हे उत्तम ! पुण्य-रूपी सुगंधपूर्ण तैल में अनुपम काल-रूपी वत्ती, विधि-रूपी ज्योति से दीप्त होकर जलती रहती है। जब तैल और वत्ती समाप्त होती है, तब दीप बुझ जाता है, इसमें कुछ संदेह नहीं।

ये विविध जन्म, इस लोक में दुःख भोगकर, परलोक में यातनाएँ भोगकर, फिर जन्मांतर में भी भाग्य का फल भोगने के स्थान हैं। इनकी गणना कैसे संभव है ?

सबके आदर-योग्य सद्गुणों से पूर्ण ! तुम्हारे पिता बनने के कारण दशरथ कमलभव ब्रह्मा के लिए भी दुर्गम विष्णुलोक में जा पहुँचे। इसके अतिरिक्त तुम अपने पिता का और क्या उपकार कर सकते हो ?

हे तात ! तुम किंचित् भी दुःखी मत होओ। उन दशरथ के लिए इससे बढ़कर उद्धार का मार्ग अन्य कोई नहीं है। अब तुम शास्त्रोक्त प्रकार से उत्तरकृत्य करो तथा अपने अरुण करों से तिलांजलि आदि दो।

मेघ से गिरे हुए जल में जैसे बुद्बुद हों, वैसे ही इस नश्वर शरीर के बारे में सोचकर दुःख करना अज्ञान है। आँखों से आँसू बहाने से हम कुछ नहीं पाते हैं। अतः, अब तुम जाओ और कमल-समान अपने करों से पापहारी तथा पवित्रता उत्पन्न करनेवाला जल-तर्पण करो—यों वसिष्ठ ने कहा।

वसिष्ठ के यह कहने पर रामचन्द्र उठे तथा स्वर्ण के रंगवाली जटा से युक्त और चार वेदों के ज्ञाता वसिष्ठ के साथ घनी लहरों से भरी गंगा पर जा पहुँचे। वसिष्ठ के कथनानुसार राम ने (अपना दुःख शान्त करके) कर्त्तव्य का विचार किया।

सब जीवात्माओं में एक ही समान अंतरात्मा के रूप में रहकर उनको ज्ञान देनेवाले विष्णु (के अवतार राम) ने, जल में उतरकर स्नान किया, वेदज्ञ वसिष्ठ के बताये ढंग से अपने कर से तीन बार जल लेकर छोड़ा।

जल-तर्पण करने के पश्चात् अन्य सब कृत्य पूर्ण करके राम, बड़े मंत्रियों, राजाओं, महान् तपस्वियों तथा अन्य लोगों के साथ उस पर्णशाला में जा पहुँचे, जहाँ सीता देवी थीं।

जब सब लोग पर्णशाला में पहुँचे, तब उत्तम भरत ने अकेली बैठी सीता देवी को देखा और उस पर्णकुटी को भी देखा। दुःख के आवेग से, अपनी कमल-जैसी आँखों को हाथों से आहत करते हुए वे सीता देवी के चरणों पर गिरकर रोने लगे।

महत्ता से युक्त भरत की लाल आँखें शोक के उद्वेग के कारण अत्यधिक अश्रुओं को निरंतर बहाती रहीं, जिससे ऐसा लगा, मानों इन्द्रियों में भी वीचियों से पूर्ण समुद्र रहता हो।

उस प्रकार बड़े शोक से आहत वीर भरत को राम ने अपने दीर्घ करों से सँभाला

और मनोहर केशोंवाली सीता को देखकर कहा—हमारे पिता (दशरथ) मेरे चिरकाल के वियोग के कारण उत्पन्न शोक से मर गये।

यह सुनते ही सीता चौंककर काँपने लगीं। उनकी दोनों विशाल आँखें समुद्र के समान जल बहाने लगीं। भूमि नामक अपनी धाई के ऊपर हाथ रखे, संगीत-मधुर अपने कंठ-स्वर से अनेक वचन कहती हुई विलाप करने लगीं।

पर्वत के समान पुष्ट भुजाओंवाले राम के पीछे-पीछे चलनेवाली सीता को अरण्य भी नगर के समान ही लगता था। अब यह सुनने से कि चक्रवर्त्ती मर गये, हंसिनी-जैसी वह सीता भी शोक-समुद्र में निमग्न हो गईं।

उस समय दोष-रहित मुनियों की पत्नियों ने माताओं के समान होकर (प्रेम से) सीता को अपने हाथों से उठाकर सँभाला। गंगा के पवित्र जल में स्नान कराया और उनके शोक को कम करके प्रभु (राम) के पास पहुँचाया।

तब सुमंत्र पुष्पमालाधारी चार उत्तम गुणवाले कुमारों को जन्म देनेवाली तीनों माताओं तथा जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों के तत्त्व को जाननेवाले गुरुजनों को साथ लिये, सदा धर्म का ही विचार करते रहनेवाले प्रभु (राम) के निकट हाथ जोड़े हुए आया।

सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा के भी आदिकारणभूत राम, यह कहते हुए कि 'मेरे पिता कहाँ हैं, बताइए'—वहाँ आई हुई उन माताओं के उज्ज्वल चरणों पर अपने अरुण नयनों से अश्रु बहाने लगे।

तब वे माताएँ राम को गले लगा-लगाकर रोने लगीं। वहाँ एकत्र सेना के वीर एवं अप्सरा-समान स्त्रियाँ भी आग में पड़े मोम के जैसे पिघल उठीं।

फिर, राम आदि उन वीरों को जन्म देनेवाली वे माताएँ जनक की पुत्री का गाढ आलिंगन करके शोक-समुद्र में निमग्न हो गईं।

सेना के वीर, नगर के लोग, प्रेम से पीडित पुरुष, अन्य (स्त्री) जन, राजा लोग—सब दुःख से व्याकुल चित्त के साथ प्रभु (राम) के निकट आ पहुँचे।

शेष-शय्या पर शयन करनेवाले विष्णु ने जिस वंश को अपने अवतार का स्थान बनाया, उसके कुलपुरुष होने के कारण सूर्य भी, मानों अब (दशरथ की मृत्यु पर) स्वयं जल में स्नान करके तिलांजलि आदि देने का कर्त्तव्य पूर्ण करने जा रहा हो—यों सूर्य पश्चिमी समुद्र में निमग्न हुआ।

वह दिन बीत गया। दूसरे दिन जब राजा लोग, घनी जटा धारण किये मुनि लोग, बंधुजन, अनुज-वर्ग (भरत आदि) सब एकत्र हुए, तब राम ने कहा—

हे भरत ! सबके अभीष्ट पूर्ण करनेवाले चक्रवर्त्ती मर गये। उनकी आज्ञा से सारी पृथ्वी तुम्हारी हुई है। तो तुमने किस कारण से मुकुट धारण किये बिना मुनि का वेष स्वीकार किया है ? कहो।

राम के यह कहने पर भरत, विकल मन के साथ उठे और हाथ जोड़कर खड़े हो गये। अनेक क्षण तक प्रभु को देखकर फिर बोले—आपके अतिरिक्त धर्म-मार्ग पर स्थिर रहनेवाले और कौन हो सकते हैं ? ऐसे आप भी क्या धर्म से हट जाना चाहते हैं ?

अनिष्ट उत्पन्न करनेवाले वरों को माँगकर जिस (कैकेयी) ने आपको, आपके लिए योग्य न होनेवाले इस अरण्य-वास में भेज दिया और चक्रवर्त्ती के लिए मृत्यु उत्पन्न की, उसी का तो पुत्र हूँ मैं। अतः, विचार करने पर, क्या यह तपस्वी-वेष मुझ-जैसे (पापी) के लिए उचित लगता है ?

संसार को दुःख देनेवाली पापिन का पुत्र होकर मैं उत्पन्न हुआ हूँ। मैंने अपने प्राण-त्याग देने का साहस नहीं किया। तपस्या करने योग्य भी नहीं रहा। अब इस अपयश से किस प्रकार से मैं मुक्त हो सकूँगा ?

पातिव्रत्य से स्खलित स्त्रियों का शील, क्षमा-गुण से फिसले हुए तपस्वी का तप, करुणा से हीन हुआ धर्म—ये सब परंपरागत नीति से फिसले राजा के शासन से भी क्या गये-बीते हो सकते हैं ? नहीं (अर्थात्, इन सबसे अधिक कठोर है नीति-रहित राजा का शासन)।

(चक्रवर्त्ती का ज्येष्ठ पुत्र होकर) संसार में उत्पन्न होकर भी आपने न त्यागने योग्य राजपद का त्यागकर बड़ा व्रत अपनाया है। तो क्या मैं भूल से भी, नीति से च्युत होकर, धर्म को करवाल से काटकर खाने के समान, वह राज्य स्वीकार करूँगा ?

(आपके प्रति) अपार प्रेम के कारण पिता मृत हुए। आप अति भयंकर धूम से पूर्ण वन में प्रविष्ट हुए। तो क्या मैं ऐसा शत्रु हूँ, जो षड्यंत्र करता हुआ, राज्य-हरण करने के लिए घात लगाये बैठा रहूँगा ?

हे हमारे प्रभु ! आपके पिता ने जो हानि की है तथा संसार को अति कठोर दुःख देनेवाली माता ने जो हानि की है—इन दोनों हानियों को दूर करते हुए आप अयोध्या वापस चलकर राज्य करें—यों भरत ने अपने मन के विचार प्रकट किये।

भरत के वचनों से उनके मन का निर्णय सुनकर रामचन्द्र ने सोचा—अहो ! इसका विचार कैसा है ! फिर बोले—हे विजयी वीर ! मेरा कथन सुनो और भली भाँति विचार करके ये वचन कहे—

हे तात ! सदाचार, सत्य, सबके लिए अनुसरणीय न्याय, उत्तम धर्म इत्यादि वेदों तथा शास्त्रों के अनुकूल चलनेवाले राजा के सुशासन से ही तो उत्पन्न होते हैं।

हे दृढ धनुर्धारी ! प्रशंसा के भाजन शास्त्रों का अध्ययन, दोषहीन ज्ञान, सच्चारित्र्य, उत्तम आचरण, ये सब वंदनीय गुरुजन ही हैं (अर्थात्, गुरुओं के कारण ही ये सब दृढ रहते हैं)।

हे प्यारे ! ये उत्तम गुरु कौन हैं ? यदि परिशुद्ध मन से विचार करके देखा जाय, तो (विदित होगा कि) माता और पिता के अतिरिक्त अन्य (गुरु) कोई नहीं हैं।

शास्त्रों के ज्ञान से युक्त हे भाई ! माता ने वर माँगा। पिता ने भी आज्ञा दी। अपने उत्तम कुल की नीति के उपयुक्त कार्य ही मैंने किया। अब तुम्हारी प्रार्थना से इस कार्य को छोड़ना क्या उचित होगा ?

हे तात ! पुत्रों का कर्त्तव्य अपने कार्य से माता-पिता की कीर्त्ति को बढ़ाना होता है, या कभी न मिटनेवाला अपयश उत्पन्न करना होता है ?

क्या मेरे लिए यह उचित है कि पिता के वचन को भुलाकर वैभव तथा ऐश्वर्य-पूर्ण राजभोग का अनुभव करता हुआ शासन करूँ और उससे इस लोक में पिता को असत्य-वादी तथा परलोक में कठोर नरक-भोगी बना दूँ ?

'पिता के दिये वर के अनुसार पृथ्वी का राज्य तुम्हारा है। तुम (उस राज्य का निर्वाह करने योग्य) शक्ति तथा सामर्थ्य से युक्त भी हो। अतः, राज्य तुम्हारा ही स्वत्व है, तुम राज्य करो'—राम ने जब यों कहा, तब भरत ने कहा—

यह पृथ्वी, जिसपर त्रिभुवन में भी अपनी समता न रखनेवाले आप मेरे ज्येष्ठ भ्राता बनकर अवतीर्ण हैं, यदि मेरी है, तो अब इसे मैंने आपको दिया। हे राजन्! आप लौटकर मुकुट धारण करें।

जब सारा संसार व्याकुल हो रहा है, तब स्तंभ-तुल्य भुजाओं से युक्त आपको क्या यह उचित है कि आप अपने मन के अनुसार कार्य करें ? अतः, संसार की व्याकुलता को शांत करते हुए लौट चलिए और (संसार की) रक्षा कीजिए, यों कहकर भरत ने रामचन्द्र के मनोहर चरणों को पकड़ लिया।

तब राम ने भरत से कहा—मुझपर प्रेम होने के कारण यदि तुम संसार को मुझे सौंप दोगे, तो क्या वह न्याय-संगत होगा ? अपयश से डरकर पिता ने जो वर दिया, उसको मानकर जिस वनवास के लिए मैं आया हूँ, क्या (अब राज्य स्वीकार करने से) उस (वनवास) की अवधि पूरी हो जायगी ?

संसार में क्या सत्य के अतिरिक्त अन्य कोई पवित्र गुण है ? उस सत्य से दुर्गुण भी मिट जाते हैं, किन्तु सत्य से कुछ हानि नहीं होती है। तुम ठीक विचार कर देखो।

पिता की आज्ञा के अनुसार मैं चौदह वर्ष वन में निवास करूँगा। तुम मेरी आज्ञा से इन चौदह वर्षों तक, सत्य से विचलित न होते हुए, पिता से दिये गये राज्य का पालन करो।

चक्रवर्त्ती के जीवित रहते हुए भी यदि रत्नमय मुकुट को धारण करने के लिए मैं सहमत हुआ, तो वह पिता की आज्ञा का उल्लंघन न करने के लिए ही था। (राज्य करने की इच्छा मुझे नहीं थी।) मेरा उस प्रकार सहमत होने की बात जानकर भी तुम क्यों मेरी आज्ञा का पालन नहीं करना चाहते हो ? हे भ्राता! दुःख को दूर करो। मेरे कथनानुसार कार्य करो। यों राम ने भरत से कहा।

जब शोभा से पूर्ण रामचन्द्र ने ये वचन कहे, तब कुछ उत्तर देने के लिए उद्यत, समुद्र के समान गंभीर भरत को रोककर वसिष्ठ (राम से) बोले—हे उदारगुण! तुम्हारे वंश में उत्पन्न कुछ प्राचीन राजाओं के आचरण के संबंध में तुम्हें सुनाता हूँ। उन्हें ध्यान से सुनो—

विष्णु ने पूर्वकाल में अनुपम वराह-रूप धारण करके, उमड़ते हुए समुद्र से अपने एकदंत के मध्य रखकर भूमि को यों उठाया कि वह बढ़ती हुई चंद्रकला के मध्य कलंक-जैसा दृश्य उपस्थित करने लगा।

पूर्व कल्प के अंत में, जब पंचमहाभूत अपने-अपने तत्त्वों में लीन हो गये, तब विष्णु, विस्तीर्ण जल को उत्पन्न करके उसपर ज्योति-रूप में निद्रित होने लगे।

इस प्रकार (क्षीरसागर में) शयन करते रहनेवाले, देवों को अमृत प्रदान करनेवाले समुद्र-जैसे नीलवर्ण विष्णु भगवान् की नाभि से एक शतदल (कमल) उत्पन्न हुआ, जिसमें से सारी सृष्टि करनेवाला ब्रह्मा उत्पन्न हुआ।

ब्रह्मा के द्वारा सृष्ट संसार की रक्षा के लिए तुम्हारे कुल का आदि पुरुष सूर्य उत्पन्न हुआ। उस सूर्य-कुल में अबतक कोई ऐसा राजा नहीं हुआ, जो न्याय से हटा हो। एक बात और सुनो।

हे मत्तगज-सदृश ! हित करनेवाले पाँच प्रकार के गुरुओं में (अर्थात् माता, पिता, अध्यापक, राजा और ज्येष्ठ भ्राता इनमें) वही उत्तम गुरु होता है, जो इह और परलोक दोनों में सुख उत्पन्न करनेवाली शिक्षा प्रदान करता है (अर्थात् , आचार्य ही सर्वोत्तम गुरु हैं)।

(शास्त्रों में) इसी प्रकार कहा गया है। मैंने तुम्हें विविध विद्याएँ सिखाई हैं। अतः, हे तात ! इस समय मेरी आज्ञा का उल्लंघन मत करो। लौटकर राज्य का सुशासन करो—यों (वसिष्ठ ने) कहा।

यों कहनेवाले वसिष्ठ को अरुणनेत्र राम ने मुकुलित कमलों को शोभाहीन कर देनेवाली अपनी अंजलि से नमस्कार किया और कहा—हे मन पर दमन रखनेवाले ! हे ज्ञानी ! आपसे एक निवेदन है—

मधु बहानेवाले कमल पर आसीन ब्रह्मा के पुत्र ! चाहे कोई बड़े हों, गुरु हों। माता आदि हों, सत्य-परायण पुत्र हों, चाहे कोई भी हों, किसी के लिए भी मैं यह कार्य करूँगा—यों प्रतिज्ञा कर लेने पर उस प्रतिज्ञा को तोड़ना उचित नहीं है।

माता की आज्ञा को तथा पिता के द्वारा अनुमत कार्य को जो पुत्र पूर्ण नहीं करता है, उसके जैसा पापी बनकर रहने की अपेक्षा कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के ज्ञान से हीन श्वान बनकर सर्वत्र भटकते रहना अच्छा है।

पहले से ही माता-पिता की आज्ञा को मैंने अपने शिर पर धारण कर लिया है। उसके पश्चात् अब आप दूसरी आज्ञा दे रहे हैं। हे महात्मन् ! अब मेरा कर्त्तव्य क्या है ? आप ही बतायें—यों राम ने वसिष्ठ से पूछा।

तब वसिष्ठ राम की प्रतिज्ञा के विरुद्ध कुछ नहीं कह सकने के कारण मौन हो रहे। उस समय भरत ने कहा—यदि ऐसी बात है, तो जो चाहे राज्य करे। मैं तो अपने ज्येष्ठ भाई के साथ ही इस भयंकर वन में रहूँगा।

उस समय देवता लोग आकाश-पथ में एकत्र होकर यह सोचने लगे कि यदि अब भरत रामचन्द्र को अयोध्या लौटा ले जायगा, तो हमारा कार्य पूर्ण नहीं होगा और फिर बोल उठे—

प्रशंसा के योग्य उत्तम गुणों से युक्त राम , पिता का वचन सुरक्षित करते हुए इस वन में रहें और भरत का कर्त्तव्य है कि वे चौदह वर्ष-पर्यंत, राज्य की रक्षा करें।

देवताओं के यों कहने पर राम ने भरत से कहा—यह वचन उपेक्षा करने योग्य नहीं है। मेरा भी तुम से यही आग्रह है। अब मेरी आज्ञा से तुम सुचारु रूप से पृथ्वी का

राज्य करो—यों कहकर राम ने भरत के विशाल कमल-जैसे करों को अपने हाथों में ले लिया।

तब भरत ने कहा—यदि ऐसा हो, तो हे प्रभु ! चौदह वर्ष व्यतीत होते ही यदि आप भयंकर परिखा से घिरे अयोध्या-नगर में आकर पृथ्वी का शासन नहीं सँभालेंगे, तो मैं प्रज्वलित अग्नि में प्रविष्ट होकर अपने प्राण त्याग दूँगा।

इस प्रकार कहकर भरत चिंता से विमुक्त हुए। अपने यश से भी महान् स्वभाव-वाले राम ने उन (भरत) की मानसिक दृढता को देखकर प्रेम से द्रवित होते हुए चित्त के साथ कहा—'वैसा ही करूँगा।'

भरत अब और कुछ न कह सके। रामचन्द्र से वियुक्त होकर जाना उनके लिए कठिन था। उन्होंने व्याकुल होकर राम से प्रार्थना की कि आप कृपा करके अपनी पादुकाएँ मुझे दें। प्रभु ने भी समस्त सुखों को प्रदान करनेवाली अपनी पादुकाएँ भरत को दीं।

अश्रु बहानेवाले नेत्रों तथा धरती की धूलि से धूसर शरीर से युक्त भरत ने (प्रभु की) दोनों पादुकाओं को किरीट मानकर अपने शिर पर रख लिया। फिर, धरती पर गिरकर रामचन्द्र के प्रति साष्टांग प्रणाम करके लौट चले।

माताएँ, असंख्य बंधुजन, बड़े लोग, मुनिगण, विशाल सेना तथा अन्य सब लोग भरत के साथ चले और यज्ञोपवीत से शोभायमान कंधेवाले वसिष्ठ महर्षि भी चले।

प्राचीन शास्त्रों के ज्ञाता भरद्वाज महर्षि लौट चले। परिखा से आवृत अयोध्या के निवासी लौट चले। आकाश-पथ में एकत्र हुए सभी देवता लौट गये। मेघ-सदृश राम की आज्ञा लेकर गुह भी लौट चला।

भरत (प्रभु की) पादुकाओं को शिर पर रखे, शीतल जल से युक्त गंगा को पार करके, पुष्पों की सुरभि से भरी अयोध्या में न जाकर रात्रिकाल में भी निद्रा से विहीन हो—

नंदिग्राम नामक स्थान में ऐसे रहने लगे, मानों प्रभु की पादुकाएँ ही शासन करती रही हों। भरत, रात-दिन अश्रु-विहीन न होनेवाली आँखों के साथ, मन से पंचेन्द्रियों का दमन करके वहाँ रहने लगे।

उधर रामचन्द्र, यह विचार कर कि अयोध्या के निवासी, उनके चित्रकूट पर्वत पर रहने से प्रेम के कारण, बार-बार वहाँ आयेंगे, इसलिए अपने साथी अनुज लक्ष्मण तथा अपनी देवी के साथ (चित्रकूट को छोड़कर) दक्षिण दिशा में चल पड़े। (१-१४१)



कंब रामायण

अरण्यकाण्ड

मंगलाचरण

आदि ब्रह्म भेद-रहित है तथा उत्पत्ति तथा विकारों से युक्त नाना प्रकार के रूपों (वस्तुओं) में अनन्य होकर मिला रहता है। वह, उन वेदों के लिए, जो पुनः-पुनः उनका अध्ययन करते रहने से ज्ञान के यथार्थ स्वरूप को स्पष्ट करते हैं, एवं उन वेदों के ज्ञाता ब्राह्मणों और ब्रह्मादि देवताओं के लिए भी अज्ञेय है, वही परब्रह्म (अब रामचन्द्र के रूप में) हमारे ज्ञान का विषय हो गया है।



अध्याय १

विराध-वध पटल

मनोहर वक्र धनुष को धारण करनेवाले वे राजकुमार (राम-लक्ष्मण), उन सीता देवी के साथ, जिनके दंत ऐसे थे, मानों चुनी हुई मुक्ताएँ पंक्तियों में जड़कर रखी गई हों, अपूर्व तपस्या से संपन्न अत्रि महामुनि के, पत्र-फल से परिपूर्ण घने वृक्षोंवाले वन में जा पहुँचे।

दिशाओं में महान् भार का वहन किये हुए रहनेवाले, पीन और मनोहर सूँड़ोंवाले तथा छोटी आँखोंवाले पर्वत-सदृश गजों की समता करनेवाले वे (राम-लक्ष्मण), उस वन में प्रविष्ट हुए और काम आदि तीन दुर्गुणों को दूर करके तपस्या करनेवाले अतिपवित्र अत्रि मुनि को प्रणाम किया।

वे मुनिवर ऐसे प्रसन्न हुए, जैसे अपने बंधु ही आ गये हों और बोले—हे राजकुमारो! तुम स्वयं यहाँ आकर हमें दर्शन दे रहे हो, ऐसे सौभाग्य सदा सुलभ नहीं होता। यह तो ऐसा है, मानों सब देवता तथा सभी लोक ही यहाँ आ गये हों। न जाने हम में से किसकी तपस्या का यह फल है।

वे (राम-लक्ष्मण) उस दिन वहीं उस मुनि के साथ आश्रम में रहे। फिर, उन जानकी को, जिन्होंने उन मुनिवर की पतिव्रता तथा अत्युत्तम पत्नी अनसूया की आज्ञा से सुन्दर आभूषणों, वस्त्रों एवं चन्दन को धारण किया था, साथ लेकर चले और महान् दंडकारण्य में प्रविष्ट हुए।

तब उनके सम्मुख एक राक्षस आया, जो सोलह मत्तगजों, उनसे दुगुने सिंहों, गोलाकार एवं कठोर नयनोंवाले पर्वतवासी सोलह शरभों को, अति तीक्ष्ण घोर त्रिशूल में घने रूप में पिरोकर एक हाथ में लिये हुए था।

उसके सिर पर रक्त वर्णवाले घुँघराले घने बाल थे, मानों विष ही घोर रूप धारण करके वन-मार्ग से आ रहे हों। वह इस प्रकार शीघ्रगति से आया कि घने बादलों से घिरे पर्वत भी उसके पैरों के नीचे दबकर तूल के समान हो गये।

ताजे घाव के समान (लाल) दिखाई पड़नेवाली उसकी आँखों से अग्निकण निकल रहे थे। उससे मेघों से घिरा आकाश भी काँप उठता था, पर्वत हिल जाते थे, उष्णकिरण (सूर्य) मंद पड़ जाता था। विशाल समुद्र से घिरी धरती ऊपर नीचे हो उठती थी। अति बलवान् यम भी मन में (डर से) शिथिल हो उठता था।

उज्ज्वल सिंह, उसके कानों में (उन्हें पर्वत की कंदरा समझकर) प्रवेश करके गरज रहे थे। चारों ओर कांति विखेरनेवाले मेरु-शिखर उसके कुंडल बने हुए थे। उसके साथ युद्ध में मरे हुए वीरों के रक्त-रूपी रक्तचन्दन से लिप्त होकर वह रक्त-आकाश की समता करता था।

उसने आयुधधारी वीरों, शीघ्रगामी अश्वों, अति विशाल गजों, रथों, गतिशील सिंहों, प्राणहारी व्याधों तथा मार्ग में प्राप्त अनेक वस्तुओं को उठाकर, अजगर साँपों में उन्हें गूँथकर अनेक प्रकार की मालाएँ बना ली थीं और वे (मालाएँ) उनकी भुजाओं से लटक रही थीं।

उसकी उँगलियों के मध्य पंक्तियों में रखे हुए पर्वतों के समान क्रोध से गर्जन करनेवाले गज दबे पड़े थे, जिन्हें वह अपने विशाल कर से उठा-उठाकर अति विशाल बिल-सदृश अपने मुँह में भर लेता था और (मुँह के) एक ओर से उन्हें चबा रहा था, तो भी उसकी भूख बढ़ती ही रहती थी।

उत्तम सर्पों के फनों से रत्नों को निकालकर जिस प्रकार माला बनाते हैं, उसी प्रकार अजगरों की देह में, देवताओं के विमानों, उज्ज्वल नवग्रहों एवं नक्षत्रों को बीच-बीच में जड़कर उसने विजय-मालाएँ बनाई थीं और उन्हें अपने वक्ष पर धारण कर लिया था।

उसके पार्श्वों में रक्ताकाश की समता करनेवाले केश शोभ रहे थे। उसके कुंभ-सदृश माथे पर इन्द्र का ऐरावत बँधा हुआ था, जिसका मुखपट्ट तथा दंतों के वलय चमक रहे थे।

(उसमें) अत्यन्त घनी कालिमा संयुक्त थी। तीक्ष्ण अत्याचार उमड़ रहा था। अति निष्ठुर पाप, विष, अग्नि—ये सब भयंकर रूप से बढ़ रहे थे। अतः, वह ऐसा लगता था, मानों अंधकार से लिप्त कलिकाल ही साकार होकर आ रहा हो।

मारे हुए कठोर व्याघ्रों के चर्म को ऐंठकर उसे (उत्तरीय के रूप में) पहन लिया था। हाथियों के चर्मों को कटि में बाँध लिया था। विजयी दिग्गजों के रत्न-समुदाय को अजगर-रूपी रस्सी में पिरोकर कटि-बंध के जैसे बाँध लिया था।

रक्त नयनों एवं दीर्घ देहवाले अनुपम सर्पों की मणियों को जड़कर अनेक वलय उसने अपने शरीर में पहन लिये थे। उसके करों में 'चलंचल' नामक शब्दायमान शंखों के वलय चमक रहे थे।

उसके पैर ऐसे थे कि वह उन पैरों से कैलास और मेरु पर्वत को गेंद के समान उछालकर उन्हें परस्पर टकरा सकता था। ऐसे पैरों से गंभीर गति में वह चल रहा था। यद्यपि वह भूलोक में संचरण कर रहा था, तथापि देवलोक के निवासियों के मन में भी उसके बल का प्रभाव पड़ता था।

उसका आकार ऐसा था, मानों सब प्राणी एक रूप बनकर और नवीन आकृति धारण करके आ गये हों। उसकी कंठध्वनि वज्रघोष के समान थी। (उसकी तपस्या से) प्रसन्न हुए ब्रह्मा के द्वारा दिये गये वर के प्रभाव से वह सवा लाख हाथियों के बल से युक्त था।

महावज्र-सदृश कार्य करनेवाला विराध नामक वह राक्षस जब आ रहा था, तब (उसकी गति के वेग से) उसके दोनों पार्श्वों में वृक्ष उखड़-उखड़कर धराशायी हो रहे थे। बड़े पर्वत ढह जाते थे। यों वह उन धनुर्धारियों के सम्मुख आ पहुँचा, जिनको अपनी वीरता के योग्य युद्ध अभी तक प्राप्त नहीं हुआ था।

मांस चबानेवाले लंबे दाँतों, बलिष्ठ खड्ग-दंतों से चमकनेवाले अपने कंदरा-सदृश मुँह को खोलकर 'ठहरो, ठहरो', चिल्लाता हुआ वह आया और घने दलवाले कमल पर आसीन रहनेवाली लक्ष्मी रूपी (राम की) देवी को, एक शब्द का उच्चारण करने के समय में ही, झट उठाकर आकाश-मार्ग से जाने लगा।

वृषभ-सदृश वे दोनों वीर उसकी आकृति को देखकर क्रोध से उग्र हो उठे और कंधे पर के धनुष को वाम हस्त में लेकर, उज्ज्वल तथा तीक्ष्ण नोंकवाले बाण को दक्षिण कर में लेकर उस राक्षस का पीछा करते हुए बोले—अरे, इस प्रकार धोखा देकर कहाँ जा रहा है? तब उस विराध ने (कहा—)

ब्रह्मा के द्वारा दिये गये वर के प्रभाव से मैं मृत्यु-रहित हूँ। समस्त लोकों के निवासी भी यदि मेरा सामना करने आयें तो, मैं किसी आयुध के बिना ही उन सब को जीत सकता हूँ। अरे! मैंने तुम्हारे प्राण छोड़ दिये हैं। इस स्त्री को छोड़कर सुख से चले जाओ, यों विराध ने कहा। तब—

वीर (राम) ने अपने रजत मंदहास-रूपी ज्योत्स्ना को प्रकट करते हुए कहा—इस (राक्षस) ने युद्ध क्या है—यह जाना नहीं है। अब इसके प्रताप और बल सब मिट जायेंगे—फिर, मन में विचार करके अपने भारी धनुष का टंकार किया।

वर्षाकालिक मेघ-सदृश रामचन्द्र ने, जो वज्र-सम बरछे एवं अपार पराक्रम से युक्त थे, अपने कोदंड की लंबी डोरी से जो घोर टंकार उत्पन्न किया, वह तरंगायमान समुद्रों से

आवृत तथा भूधरों से भरित पृथ्वी में, पाताल में, स्वर्गलोक में तथा अन्य सब लोकों में वज्र-घोष के समान प्रतिध्वनित हो उठी।

तब वह राक्षस, वंचक तथा अत्याचारी मार्जार के मुँह में फँसे हुए तोते के समान चिल्लानेवाली सीता को छोड़कर किंचित् विकल-चित्त-सा खड़ा सोचता रहा। फिर, विक्षुब्ध होकर अंजनपर्वत-सदृश राम के सम्मुख आ खड़ा हुआ।

फिर, उसने अपने त्रिशूल को, जो शत्रुओं के रक्त में डूब-डूबकर पिशाचों की भूख को मिटाता रहता था और जो अपने तीनों नोंकों से वडवाग्नि के सदृश ज्वालाएँ उगलता था, घुमाकर (रामचन्द्र पर) फेंका।

वह त्रिशूल हालाहल विष के समान उज्ज्वल हो अतिवेग से आने लगा, जिसे देखकर अष्ट दिशाएँ, दिक्पाल; दिग्गज तथा सर्वलोक काँप उठे। तब राम ने महामेरु और सप्त कुलपर्वत-समान अति दृढ दीर्घ कोदंड में एक अपूर्व बाण रखकर प्रयुक्त किया।

आज से राक्षस-समूह का नाश हो गया—ऐसी सूचना देते हुए, दिन में ही मानों गगन से नक्षत्र गिर रहे हों—ऐसा दृश्य उपस्थित करते हुए चारों ओर प्रकाश फैलानेवाला वह शूल दो टुकड़े हो गया और दिशाओं के अंत में जा गिरा।

देवताओं का भी दमन करनेवाले उस शूल को टूटकर गिरते हुए देखकर भी उस राक्षस ने युद्ध करना छोड़ा नहीं। किन्तु, अधिक उत्साह दिखाता हुआ धरती को कँपा देनेवाले अपने हाथों से अनेक पर्वतों को जड़ से उखाड़कर त्वरित गति से वह (राम पर) फेंकने लगा।

रामचन्द्र ने अति दृढ तथा अति तीक्ष्ण बाणों को उन (पर्वतों) पर छोड़ा; जिससे घेरकर आनेवाले वे पर्वत टूटकर नीचे गिर गये। वह राक्षस एक-एक करके जो पर्वत फेंकता था, वे लौटकर उसी की देह पर गिरते थे, जिससे उसके शरीर में अनेक घाव हो गये।

तब उसने एक बड़ा वृक्ष उखाड़ लिया और उसको लेकर उस राम पर आक्रमण करने के लिए आया, जिनके नामों को ज्ञानी पुरुष जपते रहते हैं, जो धर्म को स्थापित करने के लिए सर्पशय्या को छोड़कर इस धरती पर अवतीर्ण हुए हैं। तब—

उत्तम वीर (राम) ने चार बाणों से उस बड़े वृक्ष के टुकड़े-टुकड़े कर दिये और (राक्षस के) कंधों और वक्ष में बारी-बारी से अत्यन्त वेग से अनेक अति तीक्ष्ण बाण मारे; तब वह राक्षस—

अपने शरीर में अति पैने बाणों के छिद जाने से बहुत पीडित हुआ और त्वरित गति से अपने शरीर को झटकाकर उन बाणों को छितराने लगा, जैसे कोई बहुत बड़ा साही अपनी देह पर के काँटों को फुलाकर खड़ा हो।

तब राम ने और भी अग्नि-समान तीक्ष्ण बाणों को प्रयुक्त किया, जो कहीं भी रुके बिना (उसके शरीर को) भेद देते थे। फिर भी, उस (राक्षस) का चित्त पापमुक्त नहीं हुआ। पर्वत से गिरनेवाले निर्झर के समान उसके शरीर से रक्त बहने लगा। जिससे वह दुर्बल तथा मूर्च्छित होकर गिर पड़ा।

वे दोनों (राम-लक्ष्मण), जो विना थके हुए मल्लयुद्ध करने में कुशल थे, यह सोचकर कि इस राक्षस को सत्य ही वर प्राप्त हुए हैं, जिससे यह शस्त्रों के प्रयोग से मर नहीं सकेगा, अत्यन्त क्रोध से करवाल निकालकर उसकी भुजाओं को काटने के विचार से उसके कंधों पर चढ़ गये।

वहनेवाले रक्त-प्रवाह से युक्त वह (विराध) पुनः संज्ञा पाकर उठा। जब उसको यह मालूम हुआ (कि राम-लक्ष्मण उसके कंधों पर चढ़ गये हैं) तव वह तुरन्त दंड-सदृश अपनी भुजाओं से उन दोनों को दवाकर अपनी पूर्व गति से भी दसगुने वेग से चल पड़ा।

तव वे दोनों मेरु की परिक्रमा करनेवाले सूर्य-चन्द्र के समान शोभायमान हो उठे। उस राक्षस का सिर गगन-तल से टकरा रहा था। वह अतिवेग से घूमने लगे और उसके शरीर से रक्त-प्रवाह वह चला।

स्वर्णवर्णवाले (लक्ष्मण) के साथ कृष्ण वर्णवाले (राम) को अपने कंधों पर लिये आकाश तक उठकर वह राक्षस चल पड़ा। तव वह उस पक्षिराज गरुड की समता करता था, जो धर्म-रूपी अपने पंखों पर वलराम और कृष्ण को उठाये वेग से जा रहा हो।

उत्तम कुल में उत्पन्न सीता, अति कृपालु अपने पति को वंचक राक्षस के द्वारा दूर उठा लिये जाते हुए देखकर अत्यन्त व्याकुल हुई और उस हंसिनी के समान हो गईं, जिसका जोड़ा (हंस) किसी के द्वारा वंदी वना लिया गया हो। वह मुरझाई हुई लता के समान अपने केशों को फैलाये धूल में गिर पड़ीं।

फिर वह उठीं। उनको सँभालनेवाला व्यक्ति भी वहाँ कोई नहीं था। उन्हें सांत्वना का कोई शब्द भी नहीं मिला। वह शीघ्रता से (राक्षस का) पीछा करती हुई दौड़ीं, जिससे उनकी विद्युत्-समान कटि काँप उठी। फिर, उस (राक्षस) से कहा—इन मातृ-समान करुणावाले धर्म-स्वरूप कुमारों को छोड़ दो और मुझको खा डालो।

वह रोईं। उनका स्वर गद्गद हुआ। उनके प्राण विकल हुए। बड़ी वेदना से वह चित्र-लिखित प्रतिमा के समान स्तब्ध पड़ी रहीं। उनकी उस दशा को देखकर कनिष्ठ प्रभु (लक्ष्मण) ने कर जोड़कर (राम से) निवेदन किया—देवी अत्यन्त पीडित हो रही हैं; उनको इस दशा में छोड़कर यों विनोद करना ठीक नहीं है। इससे अहित हो सकता है। तव सृष्टि के आदिभूत (भगवान् के अवतार राम) कहने लगे—

हे उपमाहीन ! मैंने सोचा, इस प्रकार ही सही, हम अपने गंतव्य स्थान को शीघ्र पहुँच जायेंगे। अव इसको मारना कोई बड़ा काम नहीं—यों कहकर मंदहास करते हुए अपने वलिष्ठ पैर से उस राक्षस को धकेला। तव भी वह नीचे गिरा नहीं।

तव वलिष्ठ भुजावाले (राम-लक्ष्मण) ने क्रुद्ध होकर तीक्ष्ण करवालों से उसकी दोनों भुजाओं को काट डाला और धरती पर कूद पड़े। तव वह राक्षस उन दोनों के निकट इस प्रकार झुक गया, जैसे रक्त नयनोंवाला सर्प (राहु) भौंहों-रूपी भुजाओं को झुकाये, दोनों ज्योति-पिंडों (अर्थात्, सूर्य-चन्द्र) को ग्रसने के लिए आया हो।

उस (राक्षस) के घावों से अधिकाधिक रक्त वह रहा था। तो भी उसके प्राण

परलोक को नहीं जा रहे थे। उस दशा को देखकर सर्वान्तर्यामी (राम) ने विचारकर कहा—भाई! इसे शीघ्र भूमि में गाड़ देना ही ठीक है।

मत्तगज-सदृश लक्ष्मण ने जो गढा खोदा, दोषहीन रामचन्द्र ने अपने उस रक्त चरण से विराध के शरीर को उसमें ढकेल दिया, जो (चरण) नर्मदा नदी में निमग्न हुआ था, जो पवित्र यज्ञों की आहुतियों को प्राप्त कर संसार के भक्तों को उनके अभीष्ट प्रदान करता था।

वह राक्षस, उस रामचन्द्र के प्रभाव से, जो ब्रह्मांड की सृष्टि करके स्वयं उस ब्रह्मांड में अवतीर्ण हुए थे, पूर्व-शाप से उत्पन्न दुःखदायक राक्षस-शरीर से मुक्त हो गया और गगन-तल में पूर्वज्ञान से युक्त होकर दिव्य देह धारण करके शोभायमान हुआ।

अब उस (दिव्य देहधारी) की बुद्धि, पंचेन्द्रियों के अधीन नहीं रह गई थी और वासनाओं से मुक्त हो सन्मार्ग पर स्थिर हो गई थी। उस (विराध) में पहले से ही अनन्य भक्ति विद्यमान थी। अतः, अब उसको तत्त्वज्ञान प्राप्त हो गया, जिससे प्रभु (राम) को पहचानकर वह उनकी स्तुति करने लगा।

सब वेदों के द्वारा स्तुत्य तुम्हारे चरण ही यदि सब लोकों में व्याप्त हैं, तो तुम्हारे अन्य अंग कैसे और कहाँ रहते होंगे। (कौन जाने ?) तुम शीतलता से युक्त समुद्र के निवासी हो, यदि तुम परस्पर असदृश पाँचों भूतों में निवास करने लगे, तो क्या वे (भूत) तुम्हें धारण करने में समर्थ हो सकेंगे ? (अर्थात् , नहीं होंगे)।

क्रुद्ध मगर से ग्रस्त होने पर एक गज ने अत्यन्त आर्त्त हो शिथिल शरीर से, अपनी सूँड़ को ऊपर उठाकर सर्व दिशाओं में फैलनेवाली अपनी ऊँची ध्वनि से तुम्हें पुकारा था कि हे महिमापूर्ण, अनुपम, आदिकारण-भूत, हे परमतत्त्व आओ, मेरी रक्षा करो। उसी क्षण तुम 'क्या हुआ ?' कहते हुए दौड़कर वहाँ आ गये थे (और उस गज की रक्षा की थी)।

हे मेरे प्रभु! तुम अपने (अर्थात् , परम पद में स्थित नित्य तथा मुक्त जीवात्मा) तथा बाह्य (अर्थात् , लोकों में वर्त्तमान भक्त आदि जीव)—इन दोनों को देखनेवाले हो, पक्षपातहीन हो, कृपा से कभी रहित न होनेवाले हो। हे कमल-सदृश नेत्रवाले! तुम धर्म की रक्षा के लिए, अन्य किसी की सहायता के बिना, एकाकी चक्र के समान घूमते रहते हो ; यह तुम्हारा ही कार्य तो है।

जन्म और मरण इन दोनों खेलों को बड़ी उमंग के साथ करते रहनेवाले हे प्रभु! तुम्हारी कृपा से सब प्रकार के जीवों को मुक्ति-पद प्राप्त करना कठिन नहीं है। विरक्ति को सर्वात्मना अपनाये हुए मुनि लोग यदि दूसरा जन्म ग्रहण भी करते हैं, तब भी वे अपने आत्मस्वरूप को नहीं भूलते। इतना ही नहीं, अन्य लोगों के समान (अर्थात् , जो विरक्त नहीं है, पुनः-पुनः जन्म भी नहीं पाते (अर्थात् , वे शीघ्र मुक्त हो जाते हैं)।

भयंकर जन्म-सागर के पार पहुँचने के लिए तरणि के समान रहनेवाले जितने धर्म हैं, उन सब धर्मों के अनुयायी जिस परमात्मा की प्रशंसा अनुपम और अवाङ्मनसगोचर कहकर करते हैं, तुम उसी परमात्मा के अवतार हो। अब तुम्हारे सम्मुख अन्य देवों की क्या गिनती है ?

हे धर्म के अनुपम स्वरूप ! सृष्टिकर्त्ता कमलभव से लेकर सब देवों तथा उनसे इतर प्राणिवर्ग के लिए माता और पिता दोनों तुम्हीं हो।

आदि परब्रह्म तुम हो, सब लोक तुम्हारे अधीन हैं। विवेचन से परे अनेक धर्म तुम्हारे चरणों के ही आश्रित हैं। फिर, तुम वंचक के सदृश क्यों छिपे रहते हो ? यदि तुम प्रकट हो जाओ, तो क्या हानि है ? क्या तुम्हारी यह अनन्त मायामय क्रीडा आवश्यक है ?

हे प्रभु ! तुम अज्ञेय होते हुए भी (अपने दासों के लिए) सुलभ-ज्ञेय भी हो। संसार में ऐसा कोई बछड़ा नहीं होगा, जो अपनी माता को नहीं पहचानता हो। ऐसी माता भी नहीं होगी, जो अपने बछड़े को नहीं पहचानती हो। अखिल सृष्टि की माता बने हुए तुम सबको पहचानते हो। किन्तु, वे सब तुम्हें यथार्थ रूप में नहीं पहचानते। यह भी तुम्हारी कैसी माया है ?

संसार के लोग अनेक देवताओं की स्तुति करते हैं। किंतु महात्मा पुरुष तुम्हारे अतिरिक्त अन्य किसी को श्रेष्ठ नहीं मानते। सदाचार में स्थिर रहनेवाले वे लोग क्या यह नहीं जानते कि ब्रह्मा आदि वेदज्ञों के द्वारा आराध्य देव तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं है ?

हे लक्ष्मी से अधिष्ठित सुन्दर वक्षवाले ! हे सदा जागरित रहनेवाले ! अनेक धर्मों के द्वारा आराध्य देवता भी कर्म के बंधनों में पड़े हुए लोगों के समान ही कठोर तपस्या करते रहते हैं। किंतु, तुम्हारे लिए करने योग्य कोई तपस्या नहीं है। अतएव कर्म-बंधनों से मुक्त आत्माओं के सदृश तुम योगनिद्रा में मग्न रहते हो।[1]

तुम स्वयं आदिशेष का रूप धारण करके सुन्दर भूमिदेवी का वहन करते हो। (वराह के रूप में) अपने दाँत पर (इस भूमि को) धारण करते हो। (प्रलय-काल में) एक ही बार (एक ही कौर में) इस सृष्टि को निगल जाते हो। एक ही पग में इस सारी पृथ्वी को ढक लेते हो। उस भूमि के प्रति तुम्हारे प्रेम को यदि सुगंधित तुलसी-हारों से अलंकृत तुम्हारे मनोहर वक्ष पर आसीन (लक्ष्मी) देवी जान लेंगी, तो क्या वह तुम से रूठ नहीं जायेंगी ?

हे प्रभु ! तुम्हारे द्वारा सृष्ट प्राणी यदि परम तत्त्व को किंचित् भी पहचान लेंगे और मुक्त हो जायेंगे, तो इससे तुम्हारी क्या हानि होगी ? स्वर्ग एवं इस धरती के निवासियों में ऐसे लोग भी तो हैं, जो पूर्वकाल में, तुमने शिवजी को जो भिक्षा दी थी, उस घटना को जानकर, संदेह से (अर्थात्, कौन परम-तत्त्व है, इस शंका से) मुक्त हो गये हैं।[2]

---

१. भाव यह है कि भगवान् विष्णु, कर्म-बंधन में पड़े प्राणियों के समान निद्रित नहीं हैं, वह सजग हैं। किंतु, ऐसी योग-निद्रा में निरत हैं, जिससे अखिल विश्व की रक्षा होती है।

२. भाव यह है कि शिवजी ने एक बार ब्रह्मा के पाँच शिरों में एक को काट दिया, तो वह कपाल शिवजी के हाथ में सट गया। बहुत कोशिश करने पर भी वह कपाल उनके हाथ से नहीं छूटा। तब आकाशवाणी हुई कि उसमें भीख माँगते रहो। जब वह कपाल भीख से भर जायगा, तब वह छूट जायगा। शिवजी सर्वत्र भीख माँगते रहे, किंतु कपाल भरा नहीं। अंत में विष्णु भगवान् के पास पहुँचे। जब उन्होंने भीख दी, तब कपाल एकदम भर गया और हाथ से छूट गया। इस घटना से यह सिद्ध होता है कि विष्णु शिवजी की भी रक्षा करनेवाले हैं। —अनु०

हे वराह-रूप में पृथ्वी को उबारनेवाले ! तुमने हंस का आकार धारण करके अपूर्व शब्दों का उपदेश (ब्रह्मा को) दिया था। पहले तुम्हें उन वेदों को सिखानेवाले कौन थे ? वे सब क्या अब समाप्त हो गये हैं ? तुम (चर और अचर पदार्थों से) परे होकर अकेले रहते हो और सबके अंतर्यामी हो। तुम्हारी यह स्थिति क्या इन पदार्थों से भिन्न हो रहने से संभव होती है या अभिन्न होकर रहने से ? यह कैसी माया है ?

हे उपमान-रहित ! हे एकनायक ! तुम अपने पूर्व विश्राम-स्थान क्षीरसागर को छोड़कर मेरे सुकृत से ही यहाँ आये हो। मैं इस जीवन के सागर को पार कर गया। मैं जन्म-हीन हो गया। तुमने अपने प्रवाल-समान चरण-युगल से मेरे कर्मद्वय को पोंछ दिया।

विराध इस प्रकार के वचन कहकर देवरूप धारण कर खड़ा हुआ। तब विजयशील (राम) ने कहा—तुम अपना वृत्तांत कहो।

तब विराध ने सारा वृत्तांत यों कह सुनाया—असत्य जीवन से मुक्ति देनेवाले, ज्ञान को प्रदान करनेवाले चरणों से युक्त, हे प्रभु ! तुम्हारी जय हो।

कठोर धनुष को हाथ में धारण करनेवाले हे देव ! मेरा नाम तुबुर है। मैं कुवेर के लोक का निवासी हूँ। अब मैं इस धरती पर जन्म पाने का वृत्तांत कहता हूँ।

नर्त्तकी रंभा एक बार विशाल नृत्य-शाला में गायन और नृत्य कर रही थी। (उसपर अनुरक्त रहने के कारण) मैं उसके ऊपर कुपित हुआ और (उसके डराने के लिए) राक्षस का रूप धारण कर लिया।

मेरी काम-वेदना मुझे भ्रांत करती हुई बढ़ने लगी। उस अपराध से (कुवेर ने) मुझे शाप दिया, जिससे मैं राक्षस ही बना रहा।

हे आदि भगवन् ! उस यक्षराज (कुवेर) ने मुझे दुःख से मुक्ति पाने का वर देते हुए, मुझ दुःखी के प्रति कहा—जब मैं तुम्हारे चरण का स्पर्श प्राप्त करूँगा, तब यह शाप मिट जायगा।

मैं, भयंकर शूलधारी और विजयी किलिंज नामक राक्षस का पुत्र होकर उत्पन्न हुआ तथा इस विशाल लोक के सब प्राणियों को खानेवाला बना।

हे आदिब्रह्म ! अब मैं, उस दिन से आजतक, भले-बुरे का विचार किये बिना (सब प्राणियों को) खाता हुआ पाप-कर्म करता रहा।

ज्ञान के प्रबोधक, अनादि वेदों के द्वारा प्रशंसित तुम्हारे स्वर्ण-वलय-भूषित चरण के स्पर्श से मैं आज शाप-मुक्त हुआ।

हे सृष्टि के आदिकारण ! तुमने, प्राणियों की हत्या करने के कारण मेरे (संचित) पापों को मिटा दिया। ज्ञानहीन हो, मैंने तुम्हारे प्रति जो अपराध किया, उसे क्षमा करो—यों प्रार्थना करके वह (विराध) वहाँ से चला गया।

देवों को सतानेवाला राक्षस मिट गया !—यों सोचकर आनन्दित हो, धनुर्विद्या में निपुण राम-लक्ष्मण भी, कमलासना (लक्ष्मी के अवतार सीता) को साथ लिये हुए वहाँ से आगे बढ़े।

अपने करों में यम-सदृश धनुष को धारण करनेवाले वे वीर, सत्यमय वेद-स्वरूप मुनियों के निवास-स्थानभूत एक घने उद्यान में गये और दिन-भर वहीं रहे। (१–७२)

●

अध्याय २

शरभंग-देहत्याग पटल

जब रात्रि के आगमन का समय हुआ, तब 'कुरवक' तथा 'कोंगु' नामक पुष्पों से युक्त लता के सदृश सीता के साथ (राम-लक्ष्मण) उस स्थान से चलकर उस सुरभित स्थान में जा पहुँचे, जहाँ शरभंग मुनि तपस्या करते थे और जहाँ कुंकुमवृक्ष और कोंगु (नामक) वृक्ष लहलहाते थे।

मनोहर शूल से युक्त वे वीर जब उस आश्रम में पहुँचे, तब देवेन्द्र वहाँ आया, जो रात्रि में भी मुकुलित न होनेवाले कमल-सदृश पृथक्-पृथक् शोभायमान सहस्र नयनों से युक्त था।

उस (देवेन्द्र) की देह-कांति ऐसी थी, जैसे उसको घेरकर रहनेवाली लक्ष्मी-सदृश सुन्दर अप्सराओं के आभरणों की कांति तथा उस (कांति) पर फैली हुई विद्युत् की ज्वाला, दोनों मिलकर चमक रही हों।

उसके काले वर्ण के शरीर पर के नेत्र-रूपी भ्रमर, दिव्य स्त्रियों के नयन-रूपी पुष्पित उद्यान में मत्त हो मँडरा रहे थे। उसके कर्ण-रूपी भ्रमर श्रीनारद की वीणा के नाद-रूपी मधु का पान कर रहे थे।

उसने, शास्त्रों में प्रतिपादित अनेक कर्मों के समूह से युक्त एक सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे। उसके पैरों के वीर-वलयों पर, त्रिमूर्त्तियों के अतिरिक्त अन्य सब देवताओं के किरीट आकर लगते थे।

वह इन्द्र विशाल रक्तकमल पर आसीन लक्ष्मी के समान रहनेवाली अपनी देवी (शची) के साथ, त्रिविध मदजलों से युक्त, आगे-आगे पैर उठा-उठाकर चलनेवाले, अति उष्ण श्वेत ऐरावत गज पर आरूढ होता था। वह उज्ज्वल रजतगिरि पर (पार्वती के संग) आसीन शिवजी की समता करता था।

ऊपर का लोक (स्वर्ग) स्वयं श्वेत छत्र का रूप धारण कर उस (इन्द्र) के ऊपर यों छाया हुआ था कि उसे देखकर सर्वत्र फैलनेवाली कांति से युक्त शीतकिरण (चंद्रमा), यह सोचकर कि यदि अब मैं चमकता रहूँ तो उससे कुछ प्रयोजन नहीं है, मन्द हो रहा था।

उसके (दोनों पार्श्वों में) चामर उज्ज्वल कांति बिखेर रहे थे, जो (चामर) ऐसे थे, मानों असुरों की प्रभूत कीर्त्ति ही; दिग्गजों के स्वच्छ मदजलों का स्पर्श कर तथा उन गजों से अनेक युद्धों में टक्कर लेकर और उनसे परास्त हो घनीभूत बनकर वहाँ आ गये हों।

उसका किरीट ऐसा था, मानों निरन्तर संचरण करती रहनेवाली किरणों से युक्त सूर्य ही परिवेष-सहित आ गया हो। युद्ध में अत्यन्त निपुण उस इन्द्र का रत्नहार इस प्रकार उज्ज्वल था, जिस प्रकार चक्रधारी विष्णु के विशाल वक्ष पर लक्ष्मी शोभित हो रही हो।

उसका कंचुक, उसमें जड़े हुए सूर्य के समान उज्ज्वल रक्तवर्ण रत्नों के कांतिपुंज से शोभित था। वह विजयलक्ष्मी के शीतल तथा उज्ज्वल मन्दहास के समान चारों ओर कांति बिखेरनेवाले बाहु-वलयों से विभूषित था।

अनेक सहस्र जगमगाते हुए अति प्राचीन रत्नमय आभरणों की कांति एक साथ चमक उठने के कारण उसकी देह इस प्रकार लग रही थी, जैसे उसके धनुष (अर्थात् , इन्द्र-धनुष) से युक्त मेघ ही हो।

वह ऐसे मधुस्रावी, मनोहर पुष्पहारों से अलंकृत था, जिनकी सुगंध नाना लोकों में फैलती थी। उसपर देव-स्त्रियों के, मीन-सदृश तथा श्रेष्ठ विजय से युक्त नयन-रूपी करवाल आघात करते थे।

उसके पास ऐसा वज्रायुध था, जिसकी धार, सूर्य-समान कांति से युक्त विजयमाला धारण करनेवाले रावण पर विजय पाने की आकांक्षा से प्रयुक्त करने पर भी धान की नोक के बराबर भी (रत्ती-भर भी) कुंठित नहीं हुई थी।

इस प्रकार का इन्द्र शरभंग के आश्रम में आ पहुँचा। मुनिवर ने सम्मुख जाकर उसका स्वागत किया और उत्तम रीति से सत्कार किया। फिर प्रश्न किया—आपके आगमन का प्रयोजन क्या है? अविनश्वर स्वर्ण-वलयोंवाले इन्द्र ने कहा –

हे स्वर्ण-सदृश जटा से युक्त महान् तपस्वी! ब्रह्मदेव ने, यह विचार कर कि तुम्हारा अति दीर्घ तप उसके लिए भी अवर्णनीय है, तुम्हें आज्ञा दी है कि तुम उनके लोक में आ जाओ। अतः, अब यहाँ से चलो।

हे महामुने! हे अकुंठित तपस्या से संपन्न! सब लोकों की और सब चराचर प्राणियों की सृष्टि करनेवाले उस ब्रह्मा ने तुम्हें अपने लोक का वास दिया है। यदि तुम उनके लोक में जाओगे, तो वे सम्मुख आकर तुम्हारा स्वागत करेंगे।

हे निर्दोष तपस्या-संपन्न! मेरे कहने की आवश्यकता नहीं है, तुम स्वयं जानते हो कि वह (ब्रह्मलोक) सब लोकों में श्रेष्ठ है। अतः, तुम तुरंत वहाँ चले आओ। इन्द्र का यह कथन सुनकर तत्त्वज्ञ मुनि ने अपनी अस्वीकृति प्रकट करते हुए कहा—

हे अति प्रख्यात कीर्त्तिवाले! क्या नश्वर चित्रों के सदृश रहनेवाले लोकों को मैं प्राप्त करना चाहूँगा? मैं ऐसे तुच्छ पदों का विचार तक अपने मन में नहीं लाता हूँ। मेरी तपस्या अनेक कल्पों की है। यह तुम जानते हो न?

हे वीर-कंकणधारी! ऐसा वचन कहना उचित नहीं है। ब्रह्मलोक प्राप्त करना या न प्राप्त करना मेरे लिए दोनों समान हैं। अधिक कहने से क्या प्रयोजन? मैंने यहाँ रहकर अपनी तपस्या पूर्ण की है।

हे देवाधिदेव! ये पंचमहाभूत जो चिरकालिक हैं, सदा स्थिर हैं, संकोच

और विकास से हीन हैं तथा जिनके गुणों में परिवर्त्तन नहीं होता, भले ही वे विनष्ट हो जायँ, तो भी मैं अविनश्वर पद की प्राप्ति का उपाय करना नहीं छोड़ूँगा।

इस प्रकार, जब (शरभंग) कह रहे थे, तभी सुदृढ तथा गठीले धनुष को धारण करनेवाले वीर उस आश्रम के निकट आ पहुँचे और वहाँ होनेवाले कोलाहल को सुनकर, उसका कारण क्या है—यह सोचते हुए खड़े रहे।

तब उन्होंने देखा कि उज्ज्वल कांतिवाले हीरक-जटित वलयों से भूषित, परस्पर समान चार दाँतों से युक्त, आलान में बाँधे जानेवाला (अति महान्) गज वहाँ खड़ा है। उससे उन्होंने जान लिया कि उस महातपस्वी के पास देवेन्द्र आया है।

हरिणी-सदृश नयनोंवाली देवी के साथ लक्ष्मण को उस पुष्पोद्यान के बाहर छोड़कर रामचन्द्र (अकेले) उस विशाल वन में वृषभ और सिंह के जैसे गये। तब—

देवताओं के स्वामी ने उस स्थान में दर्शन-दुर्लभ, चतुर्वेदों के फल को (अर्थात्, भगवान् के अवतार राम को) अपने सहस्र नेत्रों से इस प्रकार देखा, मानों कमलसम नयनवाला एक नीलवर्ण सूर्य को ही देख रहा हो।

इन्द्र उन्हें देखकर मन-ही-मन दुःखी हुआ (क्योंकि उन देवों की रक्षा के लिए ही रामचन्द्र को वन का दुःख भोगना पड़ रहा है)। फिर, उसने मुनियों के नायक उस पुरुषोत्तम को, नित्य प्रणाम करनेवाले अपने शिर से तथा स्तंभ-समान अपनी भुजाओं से नमस्कार किया।

उस (नारायण के अवतारभूत राम) को—जो ध्वजाओं से भरे हुए युद्धों में शत्रुओं का (असुरों का) विनाश करके, विशाल समुद्र-समान वेदों के पदों के अर्थ को समझाकर, नित्य धर्म के सन्मार्ग पर (लोकों को) चलाकर, संपत्ति और मोक्ष-पद देकर, (प्राणियों की) रक्षा करनेवाला अविनश्वर कवच बनकर, उनके प्राण बनकर, तपस्या बनकर, नेत्र बनकर एवं अन्तहीन ज्ञान बनकर (सब लोकों की) रक्षा करता है—देखकर वह इन्द्र अपने को भूल गया, द्रवितचित्त हुआ, एक ओर खड़ा रहा और उस (राम) की महिमा का एक साधारण व्यक्ति के समान ही गान करने लगा।

तुम ऐसी ज्योति हो ,जो सब पदार्थों में (अंतर्यामी के रूप में) मिली रहती है, तथापि निर्लिप्त रहती है। तुम आसक्ति-हीन (विरक्त) व्यक्तियों के बंधु हो। अपार करुणा का आवास हो। वेदोक्त मार्ग से विवेचन करने से उत्पन्न होनेवाले तत्त्वज्ञान के विषय हो। हे हमारी माता एवं पिता! हम, तुम्हारे दासों ने जब शत्रुओं से पीडित होकर तुम्हारी प्रार्थना की, तब यथाप्रदत्त वरदान के अनुसार तुम हमारी सहायता करने के लिए (इस रूप में) अवतीर्ण हुए हो। अन्यथा, क्या तुम्हारे चरण-कमलयुगल इस विशाल धरती के योग्य हैं?

(तुम्हारी देह की कांति की छाया से) नीलवर्ण बने (क्षीर-) सागर में शयन करनेवाले हे देव! (तुम्हारे) शत्रु नहीं हैं। मित्र भी नहीं हैं। (तुम्हारे लिए) प्रकाश नहीं, अंधकार भी नहीं है। यौवन भी नहीं, बुढ़ापा भी नहीं है। आदि, मध्य और अंत भी नहीं हैं। तुम्हारी ऐसी दशा हो रही है। किंतु, यदि तुम यों हाथ में धनुष लिये हुए, अपने

अरुण चरणों को दुखाकर पैर रखते हुए हमारी रक्षा करने को न आते, तो उससे तुम्हारा क्या अपयश होता ? (जिससे बचने के लिए तुम आये हो) या (हमसे कुछ प्रतिफल की कामना रखते हो, पर) कौन-सा प्रतिफल देना हमारे लिए संभव है ?

हे उत्तम ! तुम्हारे नाभि-कमल से उत्पन्न चतुर्मुख भी, दोषहीन सब लोकों को गणना-चिह्न मानकर, गिनने लगे, तो उसका एक अंश भी नहीं गिन सकता है। पूर्वकाल में धरती को पात्र, क्षीर सागर को दही और उन्नत (मंदर) पर्वत को मथानी बनाकर अपने कमल-तुल्य करों को दुखाते हुए तुमने मथा था और अमृत निकालकर केवल हम देवों को दिया था। तब असुर लोग भी तुम्हारे दास हो गये थे न ?

आदि में तुम एक ही थे। फिर, अनेक रूप हुए और सबके प्राण और प्रज्ञा भी हुए। महाप्रलय के समय तुम विनाश का रूप लेते हो और (सृष्टि के आरंभ में) नाना लोकों का रूप धारण करते हो। हे स्वच्छ ज्ञान का विषय बने हुए भगवान् ! हमारे अभीष्टों को पूर्ण करनेवाले प्रभु ! तुम पवित्र आत्माओं की रक्षा करते हो तथा पापियों को दंड देते हो। वह विनश्वर पाप भी तो तुम्हारी ही सृष्टि है।

हे मेरे पिता ! पूर्वकाल में अपार माया के प्रभाव से जब हम इस शंका में पड़कर कि तुम परम तत्त्व हो या नहीं, विश्रान्त और दिङ्मूढ हो गये थे, तब हमारे सुकृत के परिणाम से सप्तर्षिगण हमारे सामने प्रकट हुए और शिवजी के पास पहुँचकर, हमने यह निर्णय किया कि समस्त लोक तुम (विष्णु) से ही उत्पन्न होकर बढ़ते हैं। यों हमारी शंका को दूर करने का साधन भी तुम्हीं बने थे।[1]

स्वर्णमय दीर्घ मुकुटवाले इन्द्र ने मन में विचार कर इस प्रकार के अनेक वचन कहकर उनकी प्रशंसा की। फिर, यह सोचकर कि (रामचन्द्र के वहाँ आगमन का) कोई विशेष कारण है, अपना उपमान न रखनेवाले मुनिवर से आज्ञा माँगी और देवलोक को जा पहुँचा।

शरभंग ने इस प्रकार जानेवाले देवेन्द्र का मनोगत भाव जान लिया। फिर, देवाधिदेव (राम) के सम्मुख जाकर स्वागत कर उन्हें ले आये। उस समय राम ने उन मुनि के चरणों को प्रणाम किया, तब वह मुनि जो निःश्रेयस पद पाने की इच्छा से कठिन साधना कर रहे थे, प्रेम के आधिक्य से रो पड़े।

मुनि ने राम से कहा—'सुखी हो और जीते रहो। अपनी पत्नी और अनुज को भी यहाँ आने दो।' तब रामचन्द्र उनको भी ले आये। अनेक युगों से तप करनेवाले

---

१. एक बार मुनियों और देवों में यह विवाद छिड़ा कि कौन परमात्मा है। तब सप्तर्षियों में प्रधान भृगु, क्रमशः कैलास और सत्यलोक में गये। किंतु, वहाँ शिव और ब्रह्मा को अपनी-अपनी देवी के साथ संलाप में निरत देखा। वहाँ से निरादृत होने पर वे वैकुंठ में गये। वहाँ लक्ष्मी के संग सर्प-शय्या पर आसीन विष्णु को देखा, पर विष्णु की निगाह भृगु पर न पड़ी। इसपर क्रुद्ध होकर भृगु ने विष्णु के वक्ष पर पदाघात किया। तब विष्णु यह कहते हुए कि ऐसा करने से महर्षि का पैर दुख गया होगा, उनके चरण को पकड़कर दबाने लगे। इस पर भृगु ने पहचाना कि विष्णु ही सात्त्विक देव हैं और अन्य मूर्त्तियों से श्रेष्ठ हैं। इसी कथा की ओर इस पद्य में संकेत किया गया है।—अनु०

उस मुनि के आश्रम में आकर वे यों आनन्दित हुए, जैसे क्षीरसागर में (शेष) शयन पर ही विश्राम कर रहे हों।

उस स्थान में, तत्त्वज्ञ मुनि के धर्ममय उपदेश सुनते हुए रामचन्द्र ने हरिणी-समान नयनोंवाली देवी के साथ वह अंधकार-भरी रात्रि व्यतीत की।

तब सूर्य, संसार को आवृत करनेवाले घने अंधकार-रूपी चादर को अपने सब दिशाओं में परिव्याप्त अपरिमेय उज्ज्वल करों के आतप-रूपी धारवाले करवाल से हटाने लगा।

उस समय, तत्त्वज्ञ मुनि ने उन (राम) के सम्मुख ही अग्नि को प्रज्वलित करके उसमें प्रवेश करने का विचार किया और शास्त्रोक्त विधि से सत्वर अग्नि प्रज्वलित करके रामचन्द्र से प्रार्थना की कि अब मुझे आज्ञा दीजिए।

दृढ धनुष्य (धनुष के प्रयोग में निपुण) राम ने वेदों में निपुण (शरभंग) को देखकर कहा—आप क्या करना चाहते हैं, बताइए। तब मुनि ने कहा—हे लक्ष्मी-नायक ! मैं मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा से अग्नि में प्रवेश करना चाहता हूँ, आप आज्ञा देने की कृपा कीजिए।

रामचन्द्र ने उनसे प्रश्न किया—अजिन (मृगचर्म) से शोभायमान वक्षवाले, हे मुनिवर ! मेरे आगमन के समय आप यह क्या कर रहे हैं ? तब मन्मथ की विजय को कुंठित करनेवाली मानसिक दृढता से युक्त उस मुनिवर ने अपना शरीर त्याग करने के उमंग में यों उत्तर दिया—

हे विजयशील ! विविध प्रकार की तपस्यायों में निरत रहनेवाला मैं—तुम अवश्य यहाँ आओगे, यह निश्चय करके तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था। अब मेरे दोनों प्रकार के कर्मों का बंधन टूट गया। जैसे घटित होना था, वैसे ही हुआ और तुम आये। अब मेरे लिए यहाँ और कोई कार्य नहीं रह गया है।

हे शक्तिशाली ! इन्द्र ने आकर कहा था कि कमलभव ब्रह्मा ने तुम्हें सत्यलोक का निवास प्रदान किया है। प्रलय-काल तक तुम वहीं रह सकते हो। किन्तु, शाश्वत परमपद की प्राप्ति की कामना करनेवाले मैंने उस सत्यलोक को पाना नहीं चाहा।

अपौरुषेय वेदों के लिए भी अज्ञेय परमतत्त्व को जाननेवाले (शरभंग) ने कहा कि तुम ऐसी कृपा करो कि मैं परमपद प्राप्त करूँ। फिर, अपनी प्रिय पत्नी के साथ उग्र अग्नि में प्रवेश करके अनुपम अपवर्ग-पद में जा पहुँचे।

भावी को जाननेवाले, महिमामय सुगंधित कमल में उत्पन्न ब्रह्मा आदि देव, मुनिगण तथा अन्य लोग भी, दोनों कर्मों के बंधन से मुक्त होकर जिस पद को प्राप्त करने की कामना करते हैं, उस पद में वे मुनिवर जा पहुँचे।

अखिल ब्रह्मांड को अज्ञेय रूप में निगलनेवाले (भगवान् राम) के एक नाम को जो जानते हैं, उनके पुण्य-फल भी विचार से परे होते हैं। फिर, जो अपने अंतिम समय में उस भगवान् के दर्शन करते हैं, उनको कौन-सा बड़ा पद प्राप्त होगा, इसको कौन जान सकता है। (१—४४)

अध्याय ३

अगस्त्य पटल

आनन्द उत्पन्न करनेवाले, वक्र धनुष को धारण किये हुए वे कुमार (राम-लक्ष्मण), उस शरभंग की मृत्यु का दृश्य देखकर मन में बहुत दुःखी हुए। फिर, (सीता) देवी के साथ उस पवित्र (मुनि) के आश्रम से धीरे-धीरे चले।

पर्वत, वृक्ष, सुन्दर काली शिलाएँ, तरंगों से भरी नदियाँ, झरनों से युक्त पर्वत-शिखर, घने उद्यान, सुहावने स्थान एवं गंभीर जलाशय सबको धीरे-धीरे पार करते हुए वे आगे बढ़े।

पुरातन ब्रह्मदेव के पुत्र, मुड़े हुए शिखावाले वालखिल्य आदि दंडकारण्य के निवासी मुनि उनके सम्मुख आये और उनके दर्शन करके आनन्दित हुए।

अत्यधिक बढ़नेवाले क्रोध से युक्त राक्षसों के अत्याचारों से (बचने का) कोई उपाय न देखकर पीडित होनेवाले वे मुनिगण जलते वन के उन सूखे वृक्षों की समता करते थे, जो अमृत-समान जल-धारा से सिंचित होकर जीवित हो उठे हों।

अधिकाधिक बढ़ते हुए बलवाले राक्षसों का नाम लेते हुए भी उनका कंठ-स्वर विकृत हो उठता था। ऐसे संकट से अब मुक्त हुए उन मुनियों की दशा उस बछड़े की-सी थी, जो दावानल से जलनेवाले वन में फँस गया हो और फिर अपनी माँ को अपनी ओर दौड़कर आते हुए देखकर आनन्दित हो उठा हो।

किसी के द्वारा प्रतिकार करने को दुस्साध्य, क्रूर कृत्यवाले राक्षसों के साथ युद्ध करके उन्हें मिटाने का कोई उपाय न देखकर वे मुनि मन-ही-मन कुढ़ते रहते थे। अब ऐसे निश्चिन्त हुए, जैसे राक्षस नामक समुद्र के मध्य डूबनेवालों को एक नौका ही मिल गई हो।

उन मुनियों ने (रामचन्द्र को) भली भाँति देखा और ऐसे प्रसन्न हुए, जैसे अपने महान् तप की महिमा से ज्ञान पाकर, जन्म-रूपी कठोर बंधन से मुक्त हो गये हों और मोक्ष-पद प्राप्त कर लिया हो।

यद्यपि वे (मुनि) ऐसी सत्य तपस्या से संपन्न थे, जो साधकों के सब अभीष्टों को पूर्ण करनेवाली होती थी, तथापि उन्होंने क्षमा-शक्ति के कारण उत्तरोत्तर बढ़नेवाले अपने क्रोध को समूल विनष्ट कर दिया था। इसलिए, उस वन के राक्षसों से पीडित होते रहते थे।

वे मुनि उठकर आये। काले मेघ-सदृश स्थित उन राम के निकट उमड़ते प्रेम के साथ आ पहुँचे। ज्यों-ज्यों वे राम उन्हें नमस्कार करते थे, त्यों-त्यों वे मुनि आशीः देते रहे।

वे मुनि उन (रामचन्द्र) को एक सुन्दर पर्ण-शाला में ले गये और यह कहकर कि यहाँ तुम सुख से निवास करो, अनेक सत्कार किये ; फिर वे स्वयं अन्यत्र जाकर ठहरे। फिर (उचित समय पर) राक्षसों के अत्याचार को कहने के लिए (राम के पास) आये।

प्रभु ने आये हुए मुनियों को प्रणाम करके उनकी प्रस्तुति की और आसीन होने

पर प्रश्न किया कि क्या आज्ञा है ? तब उन्होंने उत्तर दिया—हे संसार के रक्षक (दशरथ) के पुत्र ! अब जो अत्याचार यहाँ हो रहे हैं, उन्हें सुनो।

दया नामक गुण का लेश भी जिनके हृदय में नहीं है, ऐसे धर्म-रहित कुछ लोग हैं, जिन्हें राक्षस कहते हैं। वे (राक्षस) हमें अनुचित तथा अधर्म के मार्ग पर चलने के लिए विवश करते हैं, जिससे हम धर्म और तपस्या के सन्मार्ग से भटक जाते हैं।

हे धनुष से युक्त भुजावाले! अनेक व्याघ्र जहाँ संचरण करते हैं, ऐसे वन में रहनेवाले हरिणों के समान, हम रात-दिन व्यथितमन रहते हैं। हमसे अब अधिक सहा नहीं जायगा। प्रख्यात धर्म-पंथ से भी हम स्खलित हो रहे हैं। क्या हमें इन दुःखों से मुक्ति मिलेगी ?

महिमामय तपोमार्ग में हम नहीं चल पाते। अब वेदों का अध्ययन भी नहीं कर पाते। अध्ययन करनेवालों की सहायता भी नहीं कर सकते। पुरातन यज्ञाग्नि को भी हम प्रज्वलित नहीं कर पाते। सदाचरण से भी भ्रष्ट हो गये हैं। अतः, हम ब्राह्मण कहलाने योग्य भी नहीं रहे।

इन्द्र के बारे में पूछो, तो वह राक्षसों के आदेशों को, अपने शिर आँखों पर धारण कर उनका पालन करता रहता है। हे हमारे प्रभु ! तुम्हारे अतिरिक्त हमारे दुःखों को दूर करनेवाला और कौन है ? हमारे सुकृत से ही तुम यहाँ आये हो।

संसार-भर में प्रचलित अपने शासन-चक्र से संसार की रक्षा करनेवाले चक्रवर्त्ती के हे पुत्र ! हमारे दिन अवार्य अंधकार से भरे हैं। अब तुम सूर्य के समान उदित हुए हो। हे कृपालु वीर ! हम तुम्हारी शरण में हैं—यों मुनियों ने निवेदन किया।

सूर्यकुल में उत्पन्न वीर (राम) ने कहा—यदि वे (राक्षस) मेरी शरण में आकर क्षमा नहीं माँगेंगे, तो भले ही वे इस ब्रह्मांड को छोड़कर बाहर भी क्यों न भाग जायँ, मेरे बाण खाकर नीचे गिरेंगे। अब आप लोग इस अनुचित पीडा से मुक्त हो जाइए।

मेरी माता का वर माँगना, मेरे पिता की मृत्यु होना, मेरे गौरव-पूर्ण भाई (भरत) का दुःखी होना; मेरे नगर के लोगों का अत्यंत वेदना से दुःखित होना—इन सबके होते हुए भी मेरा वन-गमन मेरे पुण्यों का ही फल है।

यदि मैं उन राक्षसों की शक्ति का समूल नाश न करूँ, जो धर्म से कभी स्खलित न होनेवाले मुनियों के महत्त्व को भूलकर, नीच बनकर उन्हें सताते हैं, तो मेरे लिए यही उचित होगा कि मैं (उनके हाथ) मर जाऊँ। अन्यथा, मनुष्य-जन्म पाने से मुझे क्या सुकृत मिलेगा ?

उत्तम वेदों के ज्ञाता आपलोग भी उन राक्षसों के कबंधों को नाचते हुए सहर्ष देखें। तभी दृढ धनुष तथा अवार्य बाणों से पूर्ण तूणीरों का वहन करनेवाली मेरी भुजाओं की पीडा दूर होगी।

गो-ब्राह्मणों तथा अन्य लोगों की रक्षा के लिए जो अपने प्राणों का त्याग करते हैं, वे ही उत्तम स्वर्ग के निवासी देवताओं के लिए भी पूज्य देवता बनते हैं।

शूरपद्म (नामक असुर) को मारनेवाले (सुब्रह्मण्य), उज्ज्वल चक्रायुध को धारण करनेवाले (विष्णु) या त्रिपुरों को मिटानेवाले (शिव) भी, उन राक्षसों की रक्षा

करने आयें, तो भी मैं उन अधर्मी (राक्षसों) का समूल विनाश करूँगा। आपलोग डरें नहीं।

(राम के द्वारा) कथित ये वचन सुनकर वे आनंदित हुए। उनका प्रेम उमड़ उठा, उनकी पीडा दूर हुई। वे अपने दंड उछालने लगे। मधुर वेद-वाचन करने लगे। नाचने लगे। फिर यों बोले—

हे सृष्टि के नायक! यदि तुम क्रोध करो, तो इन तीनों लोकों के जैसे तीस कोटि लोक भी यदि तुम्हारा सामना करने आयें, तो वे भी तुम्हारे लिए कुछ नहीं होंगे। सब वेद, (हमारी) तपस्या और ज्ञान इसके साक्षी हैं।

अतः, तुम (बनवास के) दिनों हमारी रक्षा करते हुए, यहीं इस आश्रम में आराम से रहो—यों मुनियों ने कहा। तब राम ने उन महान् तपस्वियों के चरणों को नमस्कार करके वहीं निवास किया।

वे कुमार (राम-लक्ष्मण) उस स्थान में बिना किसी कष्ट के दस वर्ष-पर्यंत रहे। फिर, उन तपस्वियों ने विचार करके इनसे कहा कि तुम अगस्त्य के पास जाओ। तब वे अर्धचंद्र-सम ललाटवाली सीता देवी के साथ वहाँ से चल पड़े।

दरारों से भरी तथा उबड़-खाबड़ धरती को और बाँस आदि के झाड़ों से भरे स्थलों के संकीर्ण मार्गों को धीरे-धीरे पार करके वे उज्ज्वल शरीरवाले कर्म-बंधन से रहित सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में पहुँचे।

गर्व-रहित चित्तवाले उन कुमारों ने वहाँ पहुँचकर, सूर्य के समान तेजस्वी उन मुनिवर के अरुण चरणों को प्रणाम किया। तब मुनि ने उनका सत्कार करके कहा—तुम लोग यहीं विश्राम करो। तब वे वीर उस सुगंधित उद्यान में ठहरे।

जब वे वहाँ ठहरे हुए थे, तब उन मुनिवर ने उनका सब प्रकार से उपचार करके कहा—हे श्रीमन्! यह मेरे सुकृत हैं, जो तुमने यहाँ आने की कृपा की। प्रभु ने भी बड़ी भक्तिपूर्वक उन मुनिवर से कहा—

प्रख्यात चतुर्मुख के वंश में उत्पन्न मुनिश्रेष्ठों में तुम्हारे समान पूर्ण तपस्या से संपन्न अन्य कौन हैं? और, तुम्हारे-जैसे महान् तपस्वी की कृपा का पात्र मैं बना हूँ। इसलिए, मेरे समान (भाग्यशाली) गृहस्थ भी कौन है?

चिरकालिक तपस्या से संपन्न मुनिवर ने उपमान-रहित (राम) को उत्तर दिया—तुम आतिथ्य स्वीकार करके उसे सफल बनाओ। मैं अपनी समस्त तपस्या दक्षिणा के रूप में तुम्हें अर्पित करता हूँ।

वदान्य (राम) ने उस वेदज्ञ मुनि को उत्तर दिया—हे स्वामिन्! तुम्हारी यह करुणा ही किस तपस्या से कम है? फिर कहा—अब मुझे एक बात निवेदन करनी है। अगस्त्य महर्षि के दर्शन अभी मैंने किये नहीं। यही एक कमी रह गई है।

तब मुनि ने कहा—तुमने ठीक सोचा है। मैंने पहले ही यह कार्य निश्चित किया था। तुम उन मुनि के आश्रम में उनके निकट जाओ। वहाँ जाने पर तुम्हारे लिए कोई सुफल अलभ्य नहीं रह जायगा।

इतना ही नहीं। वे अबतक तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा करते हुए रहते होंगे।

अतः, हे समस्त कल्याणों से युक्त महानुभाव ! तुम उन मुनिवर के निकट जाओ। इससे देवों तथा अन्य सब का हित होगा।

फिर, मुनि ने (अगस्त्य के आश्रम को जाने का) मार्ग बताकर अनंत आशीर्वाद दिये। तब उस तपस्वी के कमल-समान चरणों को प्रणाम करके वे वीर वहाँ से चले और मधु की स्वच्छ धाराओं को बहानेवाले एक उद्यान में शीघ्र आ पहुँचे।

विशाल (या चिरंतन) तमिल भाषा से सारे लोक को चक्रपाणि (विष्णु) के जैसे नापनेवाले (अगस्त्य) मुनि ने जब यह सुना कि पौरुष से भरे कुमार (राम-लक्ष्मण) वहाँ आये हैं, तब उनके मन में जो आनन्द उमड़ा, वह समुद्र के-जैसे उमड़कर सत्यलोकों में भर गया। वे महिमावान् वरद (राम) की शरण में जाने के लिए आगे बढ़े।

वे अगस्त्य ऐसे हैं कि पूर्वकाल में जब देवताओं ने, समुद्र में असुरों के छिप जाने पर उनसे प्रार्थना की कि हे तपस्वी ! हम पर कृपा करो, तब उन्होंने सारे समुद्र को एक चुल्लू में भरकर पी लिया था और जब उन (देवों ने) प्रार्थना की कि समुद्र को उगलने की कृपा करें, तब उसे उगल दिया था।

उस वामनाकार मुनि ने स्वच्छ समुद्र के जल को पीकर उसे उगल दिया था और मायावी राक्षस (वातापि) को खाकर उसके कठोर शरीर को पचा लिया था, एवं संसार के दुःख को दूर किया था।

जब विंध्याचल ने बढ़कर अंतरिक्ष को भर दिया था, उस समय योगमार्ग में स्थिर रहनेवाले मुनियों ने (अगस्त्य) से प्रार्थना की कि आप हमारे जाने का कोई बाधा-रहित मार्ग बताइए। तब अगस्त्य ने मेघों की पंक्तियों में उठे हुए गगनोन्नत विंध्याचल पर अपना पद रखा और हाथी के जैसे उसपर बैठकर उसे ऐसा दबाया कि वह पाताल में धँस गया।

पूर्वकाल में एक बार उत्तर दिशा नीचे झुक गई और दक्षिण दिशा ऊपर उठ गई। तब सर्पों को धारण करनेवाले शिवजी ने अगस्त्य को आज्ञा दी कि हे निश्चल तथा निर्दोष तपस्यावाले ! तुम (दक्षिण दिशा में) जाओ। उस आदेश के अनुसार वे गगनोन्नत मलय पर्वत ('पोदियमलै' नामक पर्वत) पर आ पहुँचे और शिवजी के समान ही दक्षिण दिशा में रहकर भूमि के संतुलन को बनाये रखा।

कांतिमय परशु तथा सुन्दर ललाट में अग्नि-उगलनेवाले नेत्रों से शोभित, अग्नि-सदृश तेज-स्वरूप भगवान् (शिव) के द्वारा उपदिष्ट तमिल (व्याकरण) को उन्होंने लोक-परंपरा, काव्य-रूढि एवं अपनी बुद्धि के द्वारा यथाविधि सुसंस्कृत करके परिश्रम से अध्ययन किये जानेवाले चार वेदों से भी श्रेष्ठ बना दिया।[1]

---

१. यह कथा प्रसिद्ध है कि अगस्त्य शिवजी द्वारा प्राप्त व्याकरण को लेकर दक्षिण में 'पोदियमलै' पर आकर रहे थे। वहाँ पेरगत्तियम—(बृहद् अगस्तीयम्) और शिरुअगत्तियम—(लघु अगस्तीयम्) नामक दो ग्रन्थ रचकर अपने बारह शिष्यों को सिखाया, जिनमें तोलगाप्पियर मुख्य थे। इन्हीं तोलगाप्पियर ने आगे चलकर तमिल-भाषा का एक बृहद् व्याकरण लिखा, जो अब तमिल-साहित्य में उपलब्ध प्राचीनतम ग्रन्थ है। अगस्त्य का लिखा हुआ व्याकरण अब उपलब्ध नहीं है, किंतु उनके व्याकरण के उद्धरण अन्य ग्रन्थों में मिलते हैं। विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य बालकाण्ड (अनुवाद), पृ० ४५ की पादटिप्पणी। —अनु०

जिस परम तत्त्व के बारे में सब लोग यह सोचते रहते हैं कि वह स्वर्ग में है, भूलोक में है, अन्य किसी लोक में है, (योगियों के) हृदय में है, अथवा वेदों में है, उस तत्त्व को मैं अपनी आँखों से देख सकूँगा—यह सोचकर अगस्त्य आनन्दित हुए।

ब्रह्मा आदि भी, प्रसिद्ध वेदों तथा अन्य (दर्शन-ग्रन्थों) का सम्यक् अध्ययन करने से तीक्ष्ण बने हुए अपने ज्ञान की कसौटी पर अनेक युगों तक कस-कसकर भी जिस तत्त्व को ठीक-ठीक पहचान नहीं पाते, वही परम तत्त्व अब मेरे सम्मुख स्थित होकर मुझसे बोलनेवाला है—यों सोचकर अगस्त्य अत्यन्त आनन्दित हुए।

असाध्य तथा क्रूर बलवाले राक्षस-रूपी विष को, जड़ से उखाड़ देनेवाला वैद्य अब आ गया है। अब देवता लोग बच गये। तपस्वियों के प्राण भी सुरक्षित हो गये। ब्राह्मण भी धर्म-मार्ग में स्थिर हुए—यों अगस्त्य ने विचार किया।

अब प्राणियों को (उनकी आयु के) मध्य में ही चबाकर खा जानेवाले राक्षसों के वज्र को भी जलानेवाले क्रोध-रूपी अग्नि को शीघ्र मिटाकर संसार की रक्षा करने के लिए गगन के मेघ के समान ये (रामचन्द्र) आये हैं—इस प्रकार सोचकर उमंग-भरे हृदय से अगस्त्य आगे बढ़े।

उस मुनि ने, जो अपने कमंडलु में भरकर अनुपम कावेरी को लाये थे और उसके द्वारा अष्ट दिशाओं, सप्त लोकों तथा सब प्राणियों को सद्‌गति प्रदान की थी, राम को आते हुए देखा, तब प्रेमाधिक्य से कमल-समान कांतिवाले उनके नयनों से आनन्दाश्रु बह चले।

वहाँ स्थित मुनि को श्रीराम ने आकर प्रणाम किया। तब शाश्वत रहनेवाली मधुर तमिल-भाषा (के व्याकरण) को प्रचलित कर यशस्वी बने मुनि ने प्रेम से उनका आलिंगन किया और आनन्दाश्रु बहाये। फिर 'तुम्हारा स्वागत है।' कहकर अनेक मधुर वचन कहे।

महान् तपस्वी तथा ब्राह्मणजन घिरकर वहाँ आये, वेद-पाठ किया तथा कमंडलु-जल का प्रोक्षण कर पुष्प बरसाये। फिर अगस्त्य, पुष्पों की सुरभि से पूर्ण शीतल उद्यान में (राम, लक्ष्मण और सीता को) ले गये।

अमल (राम) ने हर्ष के साथ उस सुन्दर उद्यान में प्रवेश किया। मुनि ने उनका आतिथ्य किया। फिर कहा—हे करुणामय ! यह मेरे बड़े सुकृत का फल है, जो तुम मेरी कुटी में आये। तुमने मेरी अपूर्व तपस्या को सफल बना दिया।

यों कहने पर रामचन्द्र ने अगस्त्य से कहा—देवता और महान् तपस्वी मुनि भी आपकी कृपा को (सुलभता से) नहीं प्राप्त कर सकते। मैं आपकी कृपा का पात्र बना, अतः मैं समस्त लोकों का विजयी हो गया हूँ। अब मुझे प्राप्त करने को क्या शेष रह गया ?

तब अपने उत्तम शिर पर चन्द्रकला को धारण करनेवाले (शिव) की समता करनेवाले उन मुनि ने कहा—हे प्रशंसनीय गुणों से विभूषित ! मैंने सुना था कि तुम

दंडकारण्य में आये हो। इस पर मैं यह सोचकर आनन्दित हुआ कि तुम इस स्थान पर भी अवश्य आओगे। फिर आगे कहा—

हे प्रभु! अब तुम यहीं निवास करो, यहाँ रहने से आवश्यक तथा स्पृहणीय महान् तपस्या को पूर्ण कर सकोगे। बढ़ते हुए क्रोध से युक्त क्रूर राक्षस जब आयेंगे, तब युद्ध में उन्हें निहत करके हमारे मन के क्लेश को दूर करना।

हे चक्रवर्त्ती-कुमार! (अब) वेद जीवित रहेंगे। मनु-विहित नीति जीवित रहेगी। धर्म जीवित रहेगा। हीन बने हुए देवता उन्नति प्राप्त करेंगे। असुर अवनति प्राप्त करेंगे। इसमें कुछ संदेह नहीं है। यह निश्चित है। सप्त लोक जीवित रहेंगे। तुम यहीं निवास करो—यों अगस्त्य ने कहा।

तब राम बोले—हे वेद-ज्ञान से युक्त मुनिवर! गर्वीले राक्षस, जो अत्याचार कर रहे हैं, उन्हें मिटाने एवं उनके गर्व को दूर करने के हेतु उनका शीघ्र हनन के लिए मैं सन्नद्ध हूँ। अतः, मैं सोचता हूँ कि वे जिस दिशा से आते हैं, उसी दक्षिण दिशा में मेरा आगे बढ़ जाना उचित है। आपकी क्या सम्मति है?

तब अगस्त्य ने यह कहकर कि, 'तुमने सुन्दर वचन कहे' आगे कहा—यह जो धनु मेरे यहाँ है, यह पूर्वकाल में विष्णु के पास था। त्रिलोकी के लोग तथा मैं इसकी पूजा करते रहे हैं। इस धनुष को तथा अक्षय बाणोंवाले इन (दो) तूणीरों को लो। यह कहकर धनुष एवं तूणीर राम को प्रदान किये।

अगस्त्य ने राम को एक ऐसा करवाल दिया, जो यदि त्रिभुवन को तराजू के एक पलड़े में रखकर और दूसरे में उस करवाल को रखकर तोलें, तो त्रिभुवन भी उसकी समता नहीं कर सकते। फिर, एक (वैष्णव नामक) शर दिया, जिसे अग्नि-रूपी हर ने महान् मेरु को धनुष बनाकर उस पर रखकर प्रयुक्त किया था और उससे त्रिपुरों को मिटाया था। उन दोनों शस्त्रों को देकर—

अगस्त्य ने कहा—हे तात! उन्नत वृक्षों, पर्वत शिखरों, सिकता-श्रेणियों तथा पुष्प-राशियों से शोभायमान, आसपास में शीतल उद्यानों से शोभित और तरंगायमान नदियों से घिरे हुए पर्वत में पंचवटी नामक एक स्थान है।

उस स्थान में फल देनेवाले बालकदली-वृक्ष, रक्त धान की बालियों से पूर्ण सस्य, मधुस्रावी पुष्प तथा दिव्य कावेरी के समान नदी का प्रवाह है। वहाँ इस देवी (सीता) के कौतुक के लिए सारस एवं हंस भी हैं।

अब तुम उसी स्थान में जाकर निवास करो—यों। (अगस्त्य ने) कहा। घनश्याम ने भी उन्हें प्रणाम किया, उनकी आज्ञा ली और आगे चले। उनके पीछे खाँड़ के रस के समान मीठी बोलीवाली (सीता) तथा उनके अनुज चले और उनका अनुसरण करता हुआ उन मुनिवर का मन चला। वे सत्वर आगे बढ़ चले। (१—५६)

अध्याय ४

जटायु-दर्शन पटल

वे (राम, सीता और लक्ष्मण) कई कोस चले और वहनेवाली अनेक नदियों, स्थिर रहनेवाले कई पर्वतों, क्रमशः स्थित घने वनों आदि को पार करके गये और एक स्थान पर गृद्धों के राजा (जटायु) को देखा।

वह जटायु इस प्रकार शोभायमान था, जैसे उदयगिरि पर स्थित पिघले स्वर्ण-सदृश बाल रवि हो, जो इस विशाल धरती की सब दिशाओं को प्रकाशित करनेवाली अपनी घनी किरणों-रूपी पंखों को फैलाये हुए बैठा हो।

वह (जटायु) एक ऊँचे पर्वत के शिखर-मध्य बैठा हुआ ऐसा था, मानों देवताओं ने अपार शब्दायमान क्षीरसागर के मध्य चंद्र की कांति से संयुत मंदर पर्वत को खड़ा कर दिया हो।

वह जटायु, विशाल प्रदेशवाले उस नीलवर्ण पर्वत पर (अपनी देह-कांति से) नीलवर्ण गगन की कांति को आवृत किये हुए, दीर्घ प्रवाल-लता के समान सुन्दर वर्ण से युक्त अपनी मनोहर टाँगों की अरुण कांति के साथ शोभायमान था।

वह पवित्र था। अपार शिक्षा तथा ज्ञान से युक्त था। सत्यपरायण था। दोषहीन था। सूक्ष्म बुद्धिवाला था। अपनी विवेचन-शक्ति से (बातों को) जाननेवालों के जैसे ही दूर की वस्तुओं को भी अपनी छोटी आँखों से देख सकता था।

वह क्रूर राक्षसों को मारकर यम को भोजन देकर तदनंतर बचे हुए मांस को स्वयं खानेवाला था, नित्य रगड़ खाने से उसकी चोंच इन्द्र के छोटी आँखवाले (ऐरावत) हाथी के अंकुश के समान चमक रही थी।

वह नवग्रहों और इनसे घिरे हुए ध्रुव नक्षत्र का-सा दृश्य उपस्थित करनेवाले रत्नहार से शोभित था। उसके शिर पर किरीट इस प्रकार शोभित हो रहा था, जिस प्रकार मेरु के शिखर पर उज्ज्वल रवि हो।

वह शब्दों की शक्ति को कुंठित करनेवाले (अर्थात्, शब्दों के द्वारा प्रकट करने में असंभव) महान् यश से उदित होनेवाले अरुणदेव का पुत्र था और उसने अनेक कल्पों को दिनों के समान व्यतीत होते हुए देखा था।

वह एक अत्युन्नत पर्वत पर खड़ा था। वह इतना बलवान् था कि उसके भार को न सँभाल सकने के कारण वह पर्वत धरती में धँसकर नीचा हो गया था। ऐसी वीरता से पूर्ण उस (जटायु) के निकट, वे (राम-लक्ष्मण) आशंका-युक्त मन के साथ जा पहुँचे।

बड़े वीर-कंकण को पहने हुए उन वीरों ने, यह सोचते हुए कि कोई ज्ञान-रहित राक्षस हमारी हानि करने के विचार से पक्षी का वेष धारण करके आया है, संदेह के साथ उसे देखा।

वह (जटायु) भी, वीर-कंकणों से भूषित तथा दृढ धनुष को धारण करनेवाले उन वीरों को देखकर संदेह करने लगा कि जटायुक्त शिरवाले ये (पुरुष), कर्म-बंधन से मुक्ति-प्राप्ति का साधन तप करनेवाले (तपस्वी) मात्र नहीं दिखते ; क्योंकि इनके हाथ में धनुष है। शायद ये स्वयं देव ही तो नहीं हैं ?

मैं तो इन्द्र आदि सब देवताओं को देखता हूँ। चक्रधारी (विष्णु), अभीष्ट वर देनेवाले (ब्रह्मा) और परशुधारी (शिव) भी मेरे लिए अदृश्य नहीं हैं। मैं उन्हें सदा देखता हूँ।

मन्मथ को भी मैंने अपनी आँखों से देखा है। वह, कमल-सदृश अरुण नयनों तथा विशाल हाथों से युक्त इन वीरों की चरण धूलि की भी समता नहीं कर सकता। फिर, ये वीर कौन हैं ?

इनके शरीर में तीनों लोकों को अपना स्वत्व बनानेवाले उत्तम पुरुष के लक्षण विद्यमान हैं। कमलभव देवी (लक्ष्मी) का उपमान कहने योग्य एक रमणी इनके साथ चल रही है। मैं नहीं जानता कि ये धनुर्धारी वीर कौन हैं।

ये नील तथा रक्तवर्ण पर्वतों के जैसे रूपवाले हैं। विजयलक्ष्मी से शोभित वक्ष-वाले हैं। अरुण नयनवाले हैं। ये दोनों वीर, मेरे सुहृद् अपूर्व सद्गुणों से पूर्ण चक्रवर्त्ती (दशरथ) के जैसे हैं।

वह (जटायु) मन में इस प्रकार अनेक तर्क-वितर्क कर रहा था। उसके मन में कठोर शस्त्रधारी उन वीरों के प्रति प्रेम उमड़ आया। उसने प्रश्न किया—उत्तम तथा दृढ धनुष को धारण करनेवाले, वृषभ-सदृश (बलवान्) आप कौन हैं ?

उसके यों प्रश्न करने पर, पुष्प-मालाओं से अलंकृत, सत्य के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार का वचन न बोलनेवाले इन वीरों ने उत्तर दिया—शब्दायमान विशाल सागर से आवृत धरती की रक्षा करनेवाले वीर-कंकणधारी चक्रवर्त्ती (दशरथ) के हम पुत्र हैं।

उनके यों कहने पर, उमड़ते हुए हर्ष-रूपी समुद्र में निमग्न होकर प्रेम से उनका आलिंगन करने के लिए वह (उस पर्वत पर से) नीचे उतर पड़ा और बोला—हे सुरभित हारों को धारण करनेवाले वीरो ! उस चक्रवर्त्ती की पर्वत-समान विशाल भुजाएँ बलशाली तो हैं न ?

ज्योंही (उन वीरों ने) यह कहा कि वे (चक्रवर्त्ती) अविस्मरणीय सत्य की रक्षा करते हुए स्वर्ग सिधार गये, त्योंही उनकी मृत्यु का हाल जानकर वह शोकोद्विग्न हो उठा और फिर मूर्च्छित हो गिर पड़ा।

तब उन दोनों ने अपने विशाल हाथों से उसे उठाया तथा अपने अश्रुओं से उसके मुख को धोया। अपने प्राण (संज्ञा) लौट आने पर जटायु शिथिलमन होकर रोने लगा।

हे राजाओं के राजा ! हे असत्य के शत्रु ! हे सत्य के आभरण ! हे यश के प्राण ! तुम्हारी अवर्णनीय दानशीलता, उज्ज्वल श्वेतच्छत्र तथा क्षमा के सम्मुख जो उडुपति (चंद्रमा), समुद्र से आवृत धरती तथा उदार कल्पवृक्ष अपनी गरिमा को खो बैठे थे, अब आनंद से जीवित रहेंगे। इस प्रकार तुम याचकों को, सद्धर्म को एवं मुझको यह शोक भोगने के लिए छोड़कर चले गये।

हे महाराज ! शोभा बढ़ानेवाले तथा लोकों को अमृत प्रदान करनेवाले श्वेतच्छत्र से युक्त ! समुद्र से आवृत इस धरती की रक्षा का भार त्याग कर क्या मेरे अस्थिर प्रेममय मित्र की परीक्षा करने के लिए ही तुम यों चले गये हो ? हे नायक ! हाय ! पापकर्मी मैं, मित्र-धर्म से स्खलित होकर अभी तक जीवित हूँ ।

हे दोष से रहित परिशुद्ध मनवाले ! दही को मथनेवाली मथानी के समान लोकों को दुःख देनेवाले शंबरासुर को जब तुमने परास्त किया था, तब तुमने सूक्ष्म मृत्तिका से भरी इस धरती के सब लोगों के सम्मुख अपने को देह और मुझे प्राण कहा था। तुम्हारे वचन अयथार्थ नहीं होते । विवेक-रहित यम प्राणों को छोड़कर शरीर को ही स्वर्ग ले गया है ।

मैं अब अपनी कीर्त्ति को बढ़ाते हुए प्रज्वलित अग्नि में गिरूँगा । अन्यथा, भीरु स्त्रियों के समान धरती पर गिरकर विलाप करना क्या मेरे लिए उचित होगा ? यों कहकर आत्मज्ञानी के जैसे वह उठा और उन (राम-लक्ष्मण) को देखकर बोला—सप्त लोकों को अपने अधीन बनानेवाले हे कुमारो ! सुनो—

दक्ष प्रजापति की पचास पुत्रियाँ थीं, जो पीन स्तनोंवाली सुन्दरियाँ थीं । उनमें तेरह पुत्रियों से काश्यप ने विवाह किया । उनमें से अदिति ने तैंतीस करोड़ सुरों को जन्म दिया औरकाजल-लगी आँखोंवाली दिति ने उन (सुरों) से दुगुने असुरों को जन्म दिया ।

दनु ने दानवों को जन्म दिया । मति ने मनुष्य जातियों को जन्म दिया । सुरभि ने गायों, अश्वों और अन्य जन्तुओं को जन्म दिया । क्रोधवशा ने गर्दभों, हरिणों और ऊँटों को जन्म दिया ।

मेघतुल्य केशोंवाली विनता ने घन की विद्युत् को, अरुण ने गरुड को पल्लव-तुल्य पंखवाले उलूक को तथा चील आदि पक्षियों को जन्म दिया । (स्त्रियों में) रत्न-तुल्य ताम्रा ने गोरैया, कौदारी, 'काडै' आदि (छोटे) पक्षियों को जन्म दिया । कला नामक लता-सदृश महिला ने लता-गुल्मों को जन्म दिया ।

कद्रू नामक विद्युल्लता-सदृश स्त्री ने अनेक भयंकर फनोंवाले सर्पों को जन्म दिया । सुधा ने एक शिरवाले नागों को जन्म दिया । अरिष्ठा ने गोह, गिरगिट, गिलहरी आदि जन्तुओं को जन्म दिया । इडा ने जलचरों को जन्म दिया ।

अदिति, दिति, दनु, अरिष्ठा, सुधा, कला, सुरभि, विनता, मति, इडा, कद्रू, क्रोधवशा, ताम्रा—इन्होंने भी क्रमशः इन सब को जन्म दिया । विनता के पुत्र अरुण के कोमल भुजाओं तथा बाल-चन्द्र तुल्य ललाटवाली रंभा से हम (अर्थात्, संपाति और जटायु) उत्पन्न हुए ।[1]

यौवन की शोभा से युक्त हे कुमारो ! मैं अरुण का पुत्र हूँ । जिन-जिन लोकों में वे (अरुण) व्याप्त होते हैं, उन-उन लोकों में जाने की शक्ति मैं रखता हूँ । उन दशरथ का, जिन्होंने (लोकों के) अंधकार को दूर करते हुए शासन-चक्र को चलाया था, मैं प्राण-प्रिय मित्र हूँ । जिस समय देव तथा अन्य जातियों का विभाजन हुआ था, उसी समय मैं उत्पन्न हुआ । मैं गृद्धराज संपाति का अनुज जटायु हूँ ।

१. ऊपर के पाँच पद प्रक्षिप्त जान पड़ते हैं । —अनु०

उस (जटायु) ने जब ये वचन कहे, तब पर्वत-सदृश कंधोंवाले उन (राम-लक्ष्मण) ने अपने कमल-करों को जोड़कर प्रणाम किया। उस समय प्रेम के कारण उत्पन्न अत्यधिक वेदना से अपने कमल-सदृश नयनों से अश्रु बहाते हुए इस प्रकार हुए, मानों धरती पर अपार यश को छोड़कर स्वर्ग में पहुँचे हुए अपने पिता (दशरथ) को ही पुनः लौटे हुए देख रहे हों।

सुन्दर गुणोंवाले उन वीरों को अपने दोनों पंखों से आलिंगन करके (जटायु ने) कहा—हे पुत्रो! अब तुम ही मुझ पापकर्मवाले की भी अंतिम क्रिया करके मेरा उपकार करो। हमारे दो शरीरों के लिए एक ही प्राण बने हुए वे (दशरथ) जब चल बसे, तब भी यह मेरा शरीर सुखपूर्वक अबतक जीवित है। यदि मैं इस शरीर का मोह छोड़कर अभी इसे अग्नि में न डाल दूँ, तो इस दुःख को मैं कभी भूल नहीं सकूँगा।

इस प्रकार कहनेवाले गृध्रराज को देखकर घनी पुष्प-मालाओं से विभूषित उन वीरों ने उसे प्रणाम किया और अपने नयनों से मोती-जैसे अश्रुओं को अधिकाधिक बहाते हुए ये वचन कहे—

जबतक चक्रवर्त्ती जीवित रहे, वे हमारी रक्षा करते थे। वे अपने सत्य की रक्षा के लिए, (अपने शरीर का) कुछ भी विचार न करके स्वर्ग सिधार गये। अब हे महाभाग! तुम भी यदि हमें छोड़कर चले जाओगे, तो हमारा अवलंब कौन रह जायगा?

हे धर्म का कभी त्याग न करनेवाले! जिनका वियोग असह्य होता है, ऐसे पिता, माता तथा सुखद नगर से बिछुड़कर भी तुम्हारे कारण हम वन में आने के दुःख से मुक्त हुए हैं। अब क्या तुम भी हमें छोड़कर जाना चाहते हो?

जब वे वीर इस प्रकार प्रार्थना करते हुए, दुःखी मन के साथ खड़े रहे, तब उन्हें देखकर जटायु ने कुछ विचार कर कहा—हे तात! यदि मेरा इस समय मर जाना तुम्हें स्वीकार नहीं हो, तो तुमलोग जब अयोध्या वापस पहुँचोगे, तब मैं उन चक्रवर्त्ती (दशरथ) के पास जाऊँगा।

यदि चक्रवर्त्ती स्वर्ग सिधार गये, तो तुम वीर राज्य का भार वहन किये बिना इस वन में क्यों आये हो? तुम्हारे इस कार्य से मेरी बुद्धि चकरा रही है। अतः, सारा वृत्तांत ठीक-ठीक कहो।

पत्राकार अति तीक्ष्ण मनोहर तथा रक्त के चिह्नों से युक्त शूल को धारण करने-वाले हे वीरो! बलवान् देव हो, दानव हो, नाग हो अथवा अन्य कोई भी हों, यदि वे तुम्हें कुछ कष्ट देंगे, तो मैं उनके प्राण हरूँगा और तुम्हें राज्य प्रदान करूँगा।

तात (जटायु) के यों कहने पर सीता-पति ने अपने अनुज की ओर देखा। तब उस (लक्ष्मण) ने अपनी विमाता के कारण उत्पन्न सारी घटना को संपूर्ण रूप से कह सुनाया।

तब जटायु ने राम से कहा—तुम अपने पिता के सत्य-वचन की रक्षा के लिए अपनी विमाता की आज्ञा को शिरोधार्य करके पृथ्वी (के राज्य) को अपने भाई (भरत) को सौंपकर यहाँ आये हो। हे वदान्य! मेरे तात! तुमने जो साहसपूर्ण कार्य किया है, इसे और कौन कर सकता है?

यों कहकर कमल-समान नयनोंवाले (राम) का प्रेम से आलिंगन करके उनका सिर सूँघा और आनन्दाश्रु बहाते हुए कहा—हे समर्थ कुमार ! तुमने उन चक्रवर्त्ती को तथा मुझको अपार यश दिया है।

फिर, उस महात्मा (जटायु) ने कंकणों से भूषित हंस-सदृश देवी (सीता) को देखकर (राम से) पूछा—हे चक्रवर्त्ती कुमार ! यह स्त्री कौन है ? कहो।

तब राम के अनुज ने पूर्वकाल में साकार अंधकार-सदृश ताडका के वध से लेकर शिव-धनु का भंग करने तक की सारी घटनाएँ तथा वन-गमन तक के अन्य प्रसंग भी कह सुनाये।

उज्ज्वल शिरवाले वयोवृद्ध (जटायु) ने सब सुनकर आनन्दित होकर कहा—पुष्प-मालाओं से भूषित हे कुमारो ! समृद्ध देश को त्यागकर आये हुए तुमलोग उज्ज्वल ललाटवाली (सीता) के साथ इसी वन में निवास करो। मैं तुमलोगों की रक्षा करूँगा।

तब सबके हृदयों में निवास करनेवाले (राम) ने (जटायु से) कहा—हे तात ! अगस्त्य महर्षि ने विचार करके, एक अति सुन्दर नदी के तट पर स्थित एक स्थान के बारे में कहा है।

तब जटायु ने कहा—वह महिमापूर्ण स्थान बहुत ही अच्छा है। तुमलोग वहाँ रहकर अपने धर्म का निर्वाह करो। आओ। मैं तुम्हें वह स्थान दिखाता हूँ—यों कहकर उनपर अपने विशाल पंखों की छाया करता हुआ वह गगन-मार्ग से उड़ने लगा।

परिशुद्ध चित्तवाले तथा दोषहीन गुणवाले उस जटायु ने उन्हें (पंचवटी नामक) उस स्थान को दिखाया और फिर चला गया। उन धनुर्धारी वीरों ने उस सुन्दर उद्यान में अपना निवास बनाया।

वहाँ के राक्षसों के बल को असंदिग्ध रूप से जाननेवाला जटायु उचित ढंग से विचार करके कंचुकाबद्ध स्तनोंवाली वधू (सीता) की एवं अपने पुत्र (सदृश राम-लक्ष्मण) की, घोंसले में रहनेवाले अपने बच्चों की तरह रक्षा करता रहा। (१-४८)

●

अध्याय ५

शूर्पणखा पटल

उन वीरों (राम और लक्ष्मण) ने उस गोदावरी नदी को देखा, जो धरती का आभरण थी, उत्तम पदार्थों को प्रदान करनेवाली थी, अनेक धाराओं में प्रवहमाण थी। उष्णता को शांत करनेवाले घाटों से शोभित थी ; एवं पंचविध भंगिमाओं से युक्त थी। (अर्थात्, १. पर्वत, २. अरण्य, ३. नगर, ४. समुद्र, एवं ५. मरु नामक पाँचों प्रदेशों में बहती थी तथा पूर्वोक्त पाँच प्रदेशों में होनेवाले मनुष्य के व्यापारों का वर्णन

करनेवाली थी)। बहुत स्वच्छ थी। शीतल गुणवाली थी। यों वह नदी उत्तम कवि की कविता के समान थी।[1]

वह दिव्य नदी भ्रमरों से गुंजित, कमलपुष्प-रूपी अपने वदन को विकसित किये, सुरभित नीलोत्पल-रूपी नयनों से एकटक देखती हुई, क्रमशः एक के पश्चात् एक करके आनेवाली लहरों के करों से उत्तम पुष्पों को बिखेर रही थी, मानों उन प्यारे कुमारों के चरणों की पूजा करके उनको प्रणाम कर रही हो।

चंचल जल से पूर्ण वह नदी, निरपराध तथा सत्य-युक्त उन कुमारों को वन-जीवन के कष्ट उठाते देखकर, उमड़ते हुए प्रेम से, सद्योविकसित नीलोत्पल-समुदाय-रूपी अपने मनोहर नेत्रों से अश्रु-बिंदु बहाती हुई, अत्यन्त द्रवित होकर मानों दहाड़ मारकर रो रही थी।

दीर्घ धनुर्धारी (राम), नाल-संयुक्त कमलपुष्प-रूपी शय्या पर युगल नयनों के जैसे विश्राम करनेवाले चक्रवाक-मिथुन को देखते और अपनी प्रियतमा (सीता) के वक्ष की ओर दृष्टि फेरते तथा उत्तम आभरणों से भूषित सीता महिमावान् प्रभु (राम) के कंधों में रमे हुए अपने मन के साथ उन्हीं (कंधों) के जैसे शोभित होनेवाले रत्नमय पुलिनों की ओर देखती।

उत्तम प्रभु (राम), हंसों को (उनके आने की आहट पाकर) वहाँ से हट जाते हुए देखकर अपने समीप में आनेवाली सीता की पदगति को निहारते हुए मंदहास करते। तब वहाँ पर आकर, जल पीकर लौट जानेवाले मत्तगजों को देखती हुई वह देवी भी एक नवीन मंद-मुस्कान से खिल उठतीं।

धनुष को अपने विशाल कर में धारण करनेवाले वीर (राम), जब जल से समृद्ध उस नदी में लताओं को हिलते हुए देखते और अपनी प्रियतमा की कटि को देखते, तब सीता अंधकार-सदृश कांतिवाले मनोहर कुवलय-पुष्पों के मध्य अरुण कमल को विकसित देखतीं और (उस दृश्य में) अपने प्रभु के सौंदर्य को देखतीं।

राम, इस प्रकार चलकर उस नदी के निकट, शीतल 'पंचवटी' नामक पुष्पभरे उद्यान में जा पहुँचे और वहाँ अनुज के द्वारा निर्मित एक सुन्दर पर्णकुटी में निवास करने लगे। फिर एक दिन—

(शूर्पणखा उस आश्रम में आ पहुँची) जो नीलरत्न-समान कांतिवाले राक्षस—

---

१. तमिल काव्य-लक्षणों के अनुसार कविता में 'तुरै' और 'तिणै' नामक दो लक्षण होने चाहिए। तुरै का अर्थ है 'अहम्' और 'पुरम्'। ये क्रमशः मनुष्य के आंतरिक भाव और बाह्य-व्यापार को व्यक्त करते हैं। पुरम् की अपेक्षा अहम् को व्यक्त करनेवाली कविता अधिक सुन्दर होती है। नवरसों में शृंगार को अहम् में और अन्य रसों को पुरम् में अंतर्भत किया जा सकता है। 'तुरै' शब्द में श्लेप से घाट का अर्थ भी है। तिणै का अर्थ है पाँच प्रकार के प्रदेश। इन्हीं पाँच प्रदेशों की भूमिका पर मनुष्य-जीवन की सुख-दुःखात्मक विभिन्न दशाओं का चित्रण करना प्राचीन तमिल कवियों की परिपाटी रही है। नदी और कविता—दोनों का संबंध इन पाँच प्रदेशों से दिखाया गया है। यह पद कंबन की कविता-कौशल का एक सुन्दर नमूना है। —ले०

राज (रावण) के समूल विनाश का कारण बननेवाली थी और किसी के जन्मकाल में ही उसके प्राणों के साथ उत्पन्न होकर, अपना प्रभाव दिखाने के लिए उचित समय की प्रतीक्षा करती हुई किसी व्याधि के सदृश थी ;

जो ताँबे के जैसे लाल और घने केशोंवाली थी। राहु को भी मंद कर देनेवाले शरीर से युक्त थी। स्वर्ग के देवों, तपस्वियों तथा समुद्र से आवृत धरती के लोगों का एक साथ विनाश करने की शक्तिवाली थी ;

किसी क्रूर कार्य के हेतु अकेले ही उस वन में निवास करनेवाली थी। वह ऐसी दक्ष थी कि इस सारे संसार में सर्वत्र अनायास ही घूम सकती थी। ऐसी वह (शूर्पणखा) राघव के निवासभूत उस आश्रम में आई।

अपने बंधुजनों का अंत खोजनेवाली उस शूर्पणखा ने, पूर्वकाल में पूजनीय देवताओं की इस प्रार्थना पर कि—'राक्षस लोग हमारा विरोध करते हैं, इसलिए आप उनका नाश करें', आदिशेष पर योगनिद्रा छोड़कर संसार में अवतीर्ण हुए प्रभु को देखा।

वह सोचने लगी—मन में रहनेवाले (मन्मथ) के आकार नहीं होता। देवेन्द्र के सहस्र नयन होते हैं। शिवजी के कमल-तुल्य नयन तीन होते हैं। अपनी नाभि से सारी सृष्टि की रचना करनेवाले (विष्णु) के चार भुजाएँ होती हैं। (अतः, यह उनमें से कोई नहीं हैं।)

वह फिर विचार करने लगी—तो क्या जटा-जूट से शोभित (शिव) के (ललाट) नेत्र से देखे जाने से जलकर अनंग बना हुआ वह (मन्मथ) ही, श्रेष्ठ तप करके अब पहले से भी अधिक सुन्दर रूप प्राप्त करके यहाँ आया है।

वह सोचने लगी—इसकी मनोहर बाहुएँ, उत्तम लक्षणों से पूर्ण हैं। (आजानु) लंबी होकर सुषमा का निवास-स्थान बनी हैं। वृक्ष भी इनकी समता नहीं कर सकते। पर्वत भी इनके सम्मुख क्षुद्र हैं। तो क्या ये बल से प्रभूत दिग्गजों की सूँड़ें ही हैं?

धनुर्युद्ध में निपुण इस व्यक्ति के वीरतापूर्ण कंधों की समता शिलामय पर्वत भी नहीं कर सकते। किसी अत्युन्नत इन्द्रनील रत्न के पर्वत को छोड़कर, प्रख्यात मेरु-पर्वत भी, स्वर्णमय होने से, इन (कंधों) की समता नहीं कर सकता।

नाल पर उठे हुए रक्तकमल के दलों की समता करनेवाले इसके नयनों तथा पर्वत के समान उन्नत आकार से शोभायमान इस पुरुष की, एक कंधे से दूसरे कंधे तक फैले हुए (वक्ष) प्रदेश को दृष्टि-पथ में लाने की चेष्टा करूँ, तो मेरे नेत्र इतने विशाल नहीं हैं कि इस विशाल वक्ष को पूर्णतया एक साथ देख सकें।

यह सुन्दर अति-उज्ज्वल वदन क्या प्रफुल्ल कमल के जैसा है? (नहीं, उससे भी अधिक सुन्दर है)। क्या किरणों से पूर्ण चन्द्र को (इसके वदन का) उपमान कहें? पर उस (चन्द्र) की कलाएँ तो क्षीण होती रहती हैं। वह जब पूर्ण रहता है, तब भी उस में कलंक रहता है (अतः, वह इसके वदन का उपमान नहीं हो सकता)।

ऐसे मनोज्ञ सौंदर्य से पूर्ण यह पुरुष किस प्रयोजन से, व्यर्थ ही अपने सुन्दर शरीर

को कष्ट देता हुआ यों व्रताचरण कर रहा है? न जाने तपस्या ने स्वयं कैसी तपस्या की है कि ऐसे नवीन कमल-तुल्य नयनों से युक्त यह पुरुष उस (तपस्या) को अपनाये हुए है?

समुद्र-रूपी वस्त्र से शोभित, सुन्दर रूपवाली, गज की गति से युक्त पृथ्वी का स्त्रीत्व भी कैसा (सार्थक) है? उसपर उगी हुई हरियाली ऐसी है, मानों इस पुरुष के पदतल के स्पर्श से वह (पृथ्वी) पुलक से भर गई हो।

कटि में बँधे हुए करवाल से शोभित इस पुरुष की उज्ज्वल कांति को दिनकर ने कदाचित् देखा ही नहीं है। इसीलिए, मन में लज्जा का अनुभव न करके, वह दूर तक अपनी किरणों को प्रसारित करता हुआ संचरण करता है।

दुर्लंघ्य महान् पर्वत को भी जीतनेवाले उन्नत कंधों से युक्त इस पुरुष के अधर का संसार में उचित उपमान क्या दूँ? हे मन! यदि प्रवाल से इसकी उपमा दूँ, तो तू मेरा धिक्कार करेगा (क्योंकि वह उपमान-योग्य नहीं है)। अब किस उत्तम पदार्थ को इसका उपमान बताऊँ?

सब कलाओं से पूर्ण चंद्रमा के समान शोभायमान इस सुन्दर की, सूर्य को भी (अपनी कांति से) विचलित करनेवाली कटि को प्राप्त करने के लिए, न जाने, इन वल्कलों ने कौन-सा तप किया था; दोषहीन पीतांबर ने कदाचित् वैसा तप नहीं किया।

लंबे, घुँघराले, झुकी हुई मेघ-पंक्तियों के समान दीखनेवाले, मध्य में टेढ़े एवं काले केश-पाश को, यदि इसने जटा बनाकर न पहन लिया होता, तो उसे देखकर सब युवतियों के प्राण निकल गये होते।

प्रकट प्रकाशवाले उत्तम आभरण भी यदि (इसके शरीर को) प्राप्त करें, तो क्या वे इसके सौंदर्य को बढ़ा सकेंगे? क्या अच्छे लक्षणों से युक्त अनुपम रत्न किसी दूसरे रत्न को धारण करके और अधिक प्रकाश से चमक उठेगा?

जो इन्द्र, वर प्राप्त करके भी इसके परस्पर तुल्य, चरणों की धूलि की भी समता नहीं कर सकता, वह सब लोकों पर शासन करता है। (किन्तु) इस (राम) में ब्रह्मा ने सब उत्तम लक्षणों को प्रकट किया है, फिर भी यह अरण्य में निवास करता है। इस कारण ब्रह्मा भी निन्दा का पात्र हो गया है।

उस (शूर्पणखा) के मन में ऐसी वासना उमड़ी कि नदी का प्रवाह और समुद्र भी उसके सम्मुख छोटे पड़ गये। उसकी बुद्धि (उस वासना-प्रवाह में) निमग्न हो गई, जिससे उसका शील इस प्रकार क्रमशः घटने लगा, जिस प्रकार धर्म-कार्य के लिए कुछ दान दिये बिना अपने धन को बचाकर रखनेवाले व्यक्ति का यश घटता है।

उस समय वह शूर्पणखा गगन पर अंकित चित्र-प्रतिमा के समान थी। उसका मन मलिन हुआ। उसमें वेदना उत्पन्न हुई। प्रभु की प्रकाशमान सुन्दर भुजाओं में अपनी दृष्टि गड़ाये, उस (दृष्टि) को फिर खींच लेने में असमर्थ होकर वह स्तब्ध खड़ी रही।

वह इसी प्रकार खड़ी रही। फिर, यह विचार कर कि इसके विशाल वक्ष का आलिंगन करूँगी, अन्यथा अमृत पीने पर भी मेरे प्राण नहीं बच सकेंगे। अब और कोई उपाय नहीं है—उन (राम) के सम्मुख जाने का उपाय सोचने लगी।

'खड्गदंतवाली. यह राक्षसी सब प्राणियों को अपने उदरस्थ करनेवाली (राक्षसी) है'—यों सोचकर कहीं वे मेरा तिरस्कार न कर दें, इसलिए उस (शूर्पणखा) ने कोकिल-तुल्य मधुर वाणीवाली तथा बिंब-समान रक्ताधर से शोभित कलापी-तुल्य सुन्दर रमणी का वेष धारण किया।

उसने रक्तकमल पर आसीन लक्ष्मी का अपने मन में ध्यान किया। अपने वश में स्थित किसी मंत्र का जप किया और चंद्र से भी अधिक सुन्दर वदनवाली सुन्दरी का रूप लेकर गगन-तल में अपनी कांति को बिखेरती हुई नीचे उतर आई।

रूई को एवं रुचिर पल्लव दल को भी दुखानेवाले अरुण मनोहर कमल-दल-से लगनेवाले उसके छोटे-छोटे पैर थे। वह मायाविनी (शूर्पणखा), मधुर बोलीवाली पिक-वयनी-सी, कलापी-सी, हंसिनी-सी, उज्ज्वल वंजि लता-सी एवं विष-सी बनकर वहाँ आई।

स्वर्ण-पराग से युक्त कमल में वास करनेवाली (लक्ष्मी) देवी के सौंदर्य को तथा शुक के सौंदर्य को भी परास्त कर देनेवाले उत्तम सौंदर्य से युक्त होकर, दो चमकते करवालों (अर्थात्, नयनों) से शोभायमान वदन के साथ, वह (गगन-तल से) यों उतर आई, मानों विद्युल्लता ही मेखला-भूषित विशाल तथा मनोहर रथ (अर्थात्, जघन-तट) से युक्त होकर, एक मुग्धा का रूप धारण करके उतर रही हो।

मानों अति सुरभित कल्पवृक्ष की कोई प्रकाशमान लता, एक सुन्दरी का वेष धारण करके, अधिकाधिक बढ़नेवाली कामुकता तथा मधु-सदृश मधुर बोली को पाकर, नेत्रों को आनन्द देनेवाले लावण्य से युक्त होकर, अनुपम हरिणी की चितवन प्राप्त करके कलापी के समान चली आई हो।

(उस शूर्पणखा के) नूपुर, मेखला, हार, काली सिकता के समान केशों में गुँथे हुए पुष्पों पर मँडरानेवाले भ्रमर—इन सबकी ध्वनि यह सूचना दे रही थी कि कोई युवती आ रही है। चक्रवर्त्ती कुमार (राम) ने उस ध्वनि की दिशा में दृष्टि डाली।

'स्वर्ग के द्वारा प्रदत्त कोई अनुपम मधुर अमृत हो'—ऐसी वह सुन्दरी, मनोज्ञ स्तनों के भार से कमर लचकाती हुई आ रही थी। अज्ञान को दूर करके उत्तरोत्तर बढ़नेवाले सत्य-ज्ञानरूपी नेत्र प्रदान करनेवाले भगवान् (के अवतार राम) ने अपने दोनों नयनों से उसे अपने सम्मुख देखा।

विशाल प्रदेशवाले नागलोक में, स्वर्गलोक में एवं भूलोक में भी अप्राप्य उस उपमा-रहित स्त्री-लावण्य को देखकर राम ने सोचा—यह कौन है? इसकी सुन्दरता की भी कोई सीमा है? आभरण-भूषित सुन्दरियों में इसका उपमान कौन हो सकता है?

उस समय, कामना से पूर्ण हृदयवाली उस (शूर्पणखा) ने (राम का) वदन देखा। अपने अरुण करों से उनके चरणों का स्पर्श किया। फिर अपने दीर्घ तथा तीक्ष्ण नेत्र-रूपी शूलों को उनपर फेंककर कटाक्ष-पात करती हुई, हरिणी के समान लज्जा-सी दिखाती हुई, एक ओर खड़ी रही।

वेदों के आदि (प्रकाशक) उन (राम) ने उससे प्रश्न किया—हे लक्ष्मी-समान देवी! गौरवर्ण सुन्दरी! तुम्हारा आगमन मंगलप्रद हो। यह हमारा पुण्य ही तो है कि

तुम्हारा आगमन हुआ है। तुम्हारा स्थान कौन-सा है? नाम क्या है? बंधु-जन कौन है? तब उस मुग्धा ने अपना वृत्तांत यों कहा—

कमलभव (ब्रह्मा) के पुत्र (पुलस्त्य) के कुमार (विश्रवसु) की मैं पुत्री हूँ। त्रिपुर-दाह करनेवाले वृषभ-वाहन (शिव) के मित्र रक्त करोंवाले (कुबेर) की भगिनी हूँ। दिग्गजों का बल चूर-चूर करके रजत-पर्वत को उठानेवाले, त्रिलोक का शासन करनेवाले रावण की कनिष्ठा (बहन) हूँ। मैं कामवल्ली कहलाती हूँ।

ये वचन सुनकर वीर (राम) ने संशय-भरे चित्त के साथ सोचा कि इसका कार्य कपट-रहित नहीं है। इससे और कुछ प्रश्न पूछकर इसका हाल जानना चाहिए। फिर, प्रश्न किया—यदि यह कथन सत्य है कि तुम रक्तनेत्रवाले, भयंकर आकारवाले (रावण) की बहन हो, तो तुम्हें यह मनोहर रूप कैसे मिला?

उन पवित्र पुरुष (राम) के यों पूछने के पूर्व ही, स्फूर्त्ति के साथ कह उठी—मायावी तथा क्रूर राक्षसों के साथ रहना अनुचित समझकर, विवेकशील होकर मैंने धर्म को अपनाया और उसी पर स्थिर रहने लगी। फिर ऐसा तप किया, जिससे मेरे पाप मिट गये और देवों का अनुग्रह प्राप्त हुआ।

तब राम ने प्रश्न किया—हे सुन्दरी! देवताओं का अधिपति भी जिसकी सेवा करता रहता है, ऐसे त्रिभुवन के शासक (रावण) की तुम बहन हो, तो समृद्धि-वैभव के साथ न आकर, किसी को साथ लिये बिना एकाकी यहाँ क्यों आई हो?

वीर के यह पूछने पर सत्यरहित (शूर्पणखा) ने कहा—हे विमल! हे प्रभु! मैं असज्जन (रावण आदि) लोगों के समीप नहीं जाती हूँ। देवताओं तथा उत्तम मुनियों के संग में रहती हूँ। यहाँ एक काम से तुम्हारे दर्शन करने आई हूँ।

उसके यह कहने पर प्रभु ने यह सोचकर कि सुन्दर ललाटवाली स्त्रियों का हृदय सुलभता से ज्ञात नहीं होता, इसका हृद्गत भाव पीछे प्रकट होगा, कहा—हे कंकन-भूषित हाथोंवाली! मुझसे तुम्हें क्या कार्य है? बताओ। यदि उचित होगा, तो वह कार्य पूर्ण करके तुम्हारा उपकार करूँगा।

कुलीन स्त्रियों के लिए यह संभव नहीं है कि वे अपने हृदय के काम-भाव को स्वयं ही प्रकट कर सकें। फिर भी, मैं ऐसी हूँ कि मेरा कोई नहीं है। पर मैं क्या करूँ? काम नामक एक (दुष्ट) के अत्याचार से तुम मेरी रक्षा करो।—यों उस स्त्री ने कहा।

दूर तक जाकर अवरुद्ध हो लौट आनेवाले, बिखरी हुई लाल-लाल रेखाओं से युक्त, नानाविध भंगिमाएँ दिखाते हुए, चमचमानेवाले काले रंगवाले तथा करवाल-सदृश नेत्रों एवं आभरण-भूषित स्तनों से शोभित उस (शूर्पणखा) के ये वचन कहने पर, प्रभु ने विचार किया—यह लज्जाहीन है। नीच स्वभाववाली है। मायाविनी है। इसमें किंचित् भी सद्गुण नहीं है।

मौन रहनेवाले उदार प्रभु के हृदय का भाव वह नहीं जान सकी। भ्रमर-समुदाय के गुंजारों से युक्त कुंतलोंवाली यह (शूर्पणखा) 'मेरे वचनों से मुझपर अनुरक्त हुआ है

अथवा मुझे 'नाहीं' कहनेवाला है ' यों संकल्प-विकल्प में दोलायमान चित्तवाली होकर आगे इस प्रकार कहने लगी—

चित्रित करने के लिए दुस्साध्य सौंदर्य से पूर्ण ! तुम्हारे यहाँ आगमन का समाचार नहीं जानने से मैं सर्वज्ञ मुनियों के आज्ञानुसार उनकी सेवा में ही निरत रह गई। मेरे कलंकहीन स्त्रीत्व एवं यौवन यों ही व्यर्थ व्यतीत हुए। यों ही एक-एक दिन एवं उसका प्रत्येक पल व्यर्थ ही चले गये।

यह सुनकर प्रभु ने मन में यह विचार कर कि यह नीच राक्षसी नीति-रहित है, अनैतिक कार्य करने का निश्चय करके यहाँ आई है, उससे कहा—हे सुन्दरी ! तुम्हारी इच्छा परंपरागत आचार के अनुकूल नहीं है। तुम ब्राह्मण जाति में उत्पन्न हो और मैं क्षत्रिय वंश का हूँ।

(तब शूर्पणखा ने कहा—) हे युद्ध के अलंकारभूत भाले को धारण करनेवाले ! मेरे पिता ब्राह्मण हैं, किंतु अरुंधती-सदृश पातिव्रत्यवाली मेरी माता धरती का राज्य करनेवाले 'सालकटंकट' के वंश में उत्पन्न है। यदि मुझे स्वीकार करने में यही (अर्थात्, मेरा ब्राह्मण-जन्म में उत्पन्न होना ही) कारण है, तो मेरे प्राण अब बच गये। भाव यह है कि मेरा पिता ब्राह्मण है, किंतु माता क्षत्रिय है, अतः मैं अनुलोम जाति में उत्पन्न हूँ और शास्त्र-विधान के अनुसार कोई क्षत्रिय मुझसे विवाह कर सकता है।

उस कामुकी (शूर्पणखा) के यह कहने पर, अंतर के मंदहास की उज्ज्वलता बाहर प्रकट करनेवाले नीलवर्ण मेघ-सदृश उन प्रभु ने विनोद-पूर्ण चित्त से कहा—हे स्त्रीरत्न ! दुःखहीन राक्षसों के साथ हम, दुःखी मनुष्य, विवाह करें यह उचित नहीं है। यह बुद्धिमानों का कथन है।

तब उसने कहा—अवर्णनीय प्रेमाधिक्य से युक्त मेरी भक्ति-भावना को न देखकर मुझे रावण की बहन कहना ही अनुचित है। आदिशेष पर लेटे हुए अमल (विष्णु) जैसे हे सुन्दर ! मैंने पहले ही कहा था कि उस गर्हणीय राक्षस-वंश से पृथक् होकर मैं देवताओं की स्तुति में लगी रहती हूँ।

वेदों के लिए भी अतीत उन भगवान् (के अवतार राम) ने तब उससे कहा—हे सुन्दरी ! यदि विचार करके देखें, तो तुम्हारा एक भाई त्रिभुवन का नायक है, दूसरा कुबेर है, यदि उनमें से कोई तुम्हें प्रदान करे, तो हम विवाह करेंगे। अन्यथा, एकाकी आई हुई तुम किसी दूसरे स्थान में जाओ। मुझे तो (तुमसे बात करने में भी) आशंका हो रही है।

तब उस (शूर्पणखा) ने कहा—हे पर्वत-समान सुन्दर कंधोंवाले ! जो पुरुष और स्त्री, अनुराग से एकीभूत हृदयवाले हो जाते हैं, उनके लिए वेद-विहित विवाह एक गांधर्व विवाह ही है न ? यह विवाह हो जाय, तो मेरे भ्राता भी इसे स्वीकार करेंगे और एक बात कहती हूँ—

मेरा भाई (रावण) पहले से ही मुनियों से गहरा वैर रखता है। वह (शत्रुओं का विनाश करने में) नीति का भी विचार नहीं करता। अतः, तुम एकाकी रहनेवाले का

उसके साथ मित्रता हो जाय, इसके लिए यही उपाय है (कि तुम मुझसे विवाह कर लो)। मेरे भाई तुमसे स्नेह करेंगे और चाहो, तो स्वर्ग का राज्य भी तुम्हें दे देंगे और स्वयं तुम्हारा आदेश पूरा करते रहेंगे।

राक्षसों की कृपा मुझे मिल गई। तुम्हारी संगति भी मिली। अब मैं तुम्हारे संग शाश्वत वैभवपूर्ण जीवन सदा व्यतीत करनेवाला हो गया। उत्तम अयोध्या को त्यागने के पश्चात् मेरे पूर्वकृत तप अनेक रूप में फलित हुए हैं। यों कहकर दृढ धनुष के प्रयोग में अभ्यस्त भुजावाले प्रभु अपने दाँतों के उज्ज्वल प्रकाश को दिखाते हुए हँस पड़े।

इसी समय, स्त्रियों की रानी, धरती का रत्न, 'वंजि' लता समान सुन्दरी देवी (सीता) सुगंधित पर्णशाला के भीतर से, देवताओं के सुकृत के फलस्वरूप, उस मूर्त्ति के पास आ खड़ी हुई, जो ऐसे प्रकाशमय रूपवान् है, जिसे देखने पर देवलोक, मनुष्यलोक एवं पाताल-लोक के निवासी तथा ब्रह्मा प्रभृति देवों की आँखें भी चौंधिया जाती हैं।

मांस को पकाकर खाने के लिए ललचानेवाले बिल-सदृश मुँह से युक्त उस (शूर्पणखा) ने दिव्य ज्योति के समान एक रूप को (राम और उसके) मध्य में आकर खड़े होते हुए देखा, मानों उसने नक्षत्रों से प्रकाशमान आकाश और धरती में फैले हुए वीर राक्षस-रूपी वन को जलाने के लिए उत्पन्न हुई पातिव्रत्य-रूपी अग्नि-ज्वाला को ही देखा हो।

तब वह (शूर्पणखा) यह सोचती हुई कि सुरभिपूर्ण केशोंवाली (अपनी पत्नी) को यह पुरुष वन में नहीं लाया होगा, इतनी सुन्दरता से पूर्ण कोई रमणी इस अरण्य में भी नहीं है, लक्ष्मी अरविंद का आवास छोड़कर क्या अपने चरण-युगल को धरती पर रखती हुई यहाँ आ सकती है ?

वह (शूर्पणखा) तन्मय होकर विलंब तक (सीता को) देखती खड़ी रही। वह यह सोचती रही— सृष्टिकर्त्ता की कुशलता की सीमा हो सकती है। किंतु मन से कभी न हटनेवाली (अर्थात्, मन में स्थिर रूप में अंकित रहनेवाली) सुन्दरता की कोई सीमा नहीं है। फिर सोचा—इसे देखने पर मुझ स्त्री-जन्म में उत्पन्न हुई की आँखें भी अन्य वस्तुओं पर नहीं जा रही हैं। जब मेरा ही मन ऐसा हो रहा है, तब अब दूसरों की (अर्थात्, इसे देखनेवाले पुरुषों की) क्या दशा होगी ?

फिर, उसने युद्ध में निपुण प्रभु को देखा और शुकी-तुल्य देवी को देखा और वैसी ही (स्तब्ध) खड़ी रह गई। फिर, यह सोचने लगी—अब अन्य कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। कमलभव ने स्वयं सारी सृष्टि का अवलोकन करके, त्रिभुवन के निवासियों में दोनों प्रकार के (अर्थात्, स्त्री और पुरुष) व्यक्तियों की सुन्दरता की पराकाष्ठा बनाकर इन दोनों को उत्पन्न किया है।

उसने विचार किया—स्वर्ण के जैसे प्रकाश फेंकनेवाले तथा अतसी-पुष्प के जैसे रंगवाले इस पुरुष का शरीर, इस विद्युत्-समान सूक्ष्म कटिवाली के साथ संयुत नहीं है (अर्थात्, यह पुरुष इस स्त्री का पति नहीं है)। अपनी समता न रखनेवाली, पल्लव-समान चरणोंवाली यह सुन्दरी, मेरे जैसे ही बीच में (इस पुरुष पर आसक्त होकर) आई हुई कोई स्त्री है। इसका तिरस्कार (इस पुरुष से) कराऊँगी।

तब उस (शूर्पणखा) ने (राम से) कहा—हे उत्तम ! हे वीर ! यह माया में चतुर है। यह वंचक राक्षसी है। इसका हृदय दुर्जय है। इसे सद्गुणवती समझना उचित नहीं है। इसका यह रूप सत्य नहीं है। यह मांस खाकर जीवित रहनेवाली है। इसे देखकर मैं डर रही हूँ। इसे मेरे निकट आने से रोको और मेरी रक्षा करो।

यह सुनकर वीर (राम) बोले—हे विद्युत्-समान स्त्री ! तुम्हारा ज्ञान खूब है। तुम्हें धोखा देने की शक्ति किसमें है ? यह ज्ञात हुआ कि तुम्हारी मति स्वच्छ है और तुम सद्गुणवाली हो। अहो ! यह (सीता) कदाचित् क्रूर राक्षसी ही है। इसे तुम भली भाँति देख लो और अपने उज्ज्वल दाँत-रूपी मोतियों को दिखाकर हँस पड़े।

उस समय, अमृत के जैसी आई हुई, अरुन्धती के सदृश पातिव्रत्यवाली, मधुर बोली एवं बाँस के जैसे सुन्दर कंधोंवाली देवी (सीता) वीर (राम) के निकट आ पहुँची। तब भड़कती अग्नि के सदृश वंचकगुण से पूर्ण चित्तवाली (शूर्पणखा) यह कहकर (सीता को) धमकाने लगी कि हे राक्षस-कुल में उत्पन्न स्त्री, तू क्यों बीच में आ पड़ी है ?

हंसिनी-तुल्य वह (सीता) भीत हुई। भीत होकर झट (राम की ओर) यों दौड़ी कि उसकी विद्युत्-समान सूक्ष्म कटि लचक गई और कोमल चरण दुखने लगे। यों दौड़कर वह कुंजर-समान वीर की पुष्ट भुजाओं से ऐसे लिपट गई, जैसे वर्षाकालिक जल से भरे बादल के मध्य कोई प्रवालमय लता कौंध गई हो।

तब वीर (राम) ने यह सोचकर कि वक्र खड्गदंतवाले राक्षसों के साथ विनोद करना भी बुरा ही होगा, उस (शूर्पणखा) से कहा—तुम कोई अहितकारी कार्य न करो। (मेरा) अनुज यदि तुम्हारा समाचार जान लेगा, तो वह अत्यन्त क्रुद्ध होगा। हे स्त्री ! तुम शीघ्र यहाँ से चली जाओ।

लावण्य से युक्त उस राक्षसी ने कहा—कमल में, जल में और कैलास में निवास करनेवाले करुणा-पूर्ण हृदयवाले देव (ब्रह्मा, विष्णु और शिव), अनंग तथा अन्य देवता भी मुझे प्राप्त करने के लिए तपस्या करते हैं। ऐसी हूँ मैं। मेरी उपेक्षा करके तुम क्षमाहीन इस मायाविनी को चाहते हो, यह कैसे उचित है ?

तब पवित्र चित्तवाले (राम), यह सोचकर कि यह शिलातुल्य कठोर चित्तवाली (राक्षसी), मेरे यह कहने पर भी कि मैं तुमसे संबंध रखना नहीं चाहता हूँ, हटती नहीं है, किन्तु कपट-वचन कह रही है—मिथिलापति की पुत्री के साथ विद्युत् के साथ चलनेवाले मेघ के जैसे उस सुन्दर उद्यान के बीच स्थित कुटी में चले गये।

उनके चले जाने के बाद, यह जानकर कि वे चले गये हैं, शूर्पणखा शरीर से निकले हुए प्राणों के साथ श्वासहीन हो गई। मन में अत्यंत विह्वल हुई। उसे कुछ अवलंबन नहीं मिला। मन में क्रुद्ध हुई और सोचने लगी—अंजन-समान काले केशोंवाली उस नारी पर यह पुरुष गहरा प्रेम रखता है।

इस प्रकार चिंतित होकर, वह वहाँ खड़ी नहीं रह सकी। वह उस पुरुषोत्तम की संगति प्राप्त करने का उपाय सोचती हुई वहाँ से चली गई। यह सोचकर कि यदि मैं इसके शरीर का आलिंगन नहीं करूँगी, तो अपने प्राण खो दूँगी, स्वर्ण-पराग से पूर्ण सुन्दर उद्यान

में स्थित अपने स्फटिकमय आवास में जा पहुँची। सूर्य भी पश्चिम दिशा में जा पहुँचा और लाली छा गई।

वह (शूर्पणखा) इस प्रकार प्रज्ञाहीन और शिथिल हो गई, मानों काल-सर्प के छेदवाले दंत से निकला हुआ विष उसकी देह में संचरण कर रहा हो। प्रख्यात कामाग्नि (उसके शरीर में) भड़क उठी।

युद्धकुशल मन्मथ के तीक्ष्ण वाण उसके वक्ष में ऐसे जा लगे, जैसे ताडका नामक क्रूर राक्षसी के विशाल वक्ष में पुरुषोत्तम (राम) का तीक्ष्ण शर लगा था; इससे उसके भीत प्राण काँप उठे।

वह (काम-वेदना से पीडित) राक्षसी यह विचार करके उठी कि कलाओं से पूर्ण चन्द्रमा को साग बनाकर दृढ धनुर्धारी मन्मथ को ही चवा डालूँ; किन्तु मलय पर्वत से आनेवाला पवन, जब यम के दीर्घ शूल के समान उसके वक्ष पर लगा और पीडा उत्पन्न करने लगा, तब वह निष्क्रिय होकर गिर पड़ी।

(तरंगायमान समुद्र जब अपने शब्द से उसे सताने लगा, तब) उसने तरंगपूर्ण उस समुद्र को पर्वतों से पाट देना चाहा; किन्तु स्थिर गगन में प्रकाशित होनेवाले पूर्णचंद्र की दीर्घ किरणें उसे भयभीत कर रही थीं, जिससे वह बलहीन होकर कुढ़ती हुई पड़ी रही।

(कभी) वह क्रुद्ध हो सोचती कि मैं इस धरती के सब उद्यानों को विध्वस्त कर, सब पुष्पों को चूर-चूर कर दूँगी; किन्तु अपने पति के संग रहनेवाली लाल मुकुटवाली क्रौंची की ध्वनि सुनकर वह अपने मन में काँप उठती।

(कभी) वह क्रोध के साथ सर्प (राहु) को लाने का विचार करती, जिससे वह अपने प्रतिकूल रहनेवाले चंद्र को निगल जाय; किन्तु उसके पीन स्तनों पर शीतल-मंद पवन के लगने से उसके प्राण तप्त हो उठते और वह व्याकुल हो पड़ी रहती।

(अपने ताप को शांत करने के लिए) वह अपने करों से अति शीतल हिम-खंडों को लेकर अपने पुष्ट स्तनो पर रख लेती, किन्तु (उसके स्तनों से) उत्पन्न होनेवाली अग्नि में, तप्त पत्थर पर रखे हुए मक्खन के समान वे (हिमखंड) पिघल जाते।

कभी वह कामाग्नि से पीडित होकर निःश्वास भरती हुई अपने शरीर को शीतल जल में निमग्न करती, किन्तु वह जल (उसके शरीर के ताप से) उष्ण हो उठता। वह चिंता करती, किन्तु गरजनेवाले समुद्र एवं क्रूर मन्मथ से वचकर रहने का स्थान कहाँ है ?

उसका शरीर इतना तप उठा कि शीतल चंद्रकांत की शिला भी उसके स्पर्श से पिघलने लगी। वह काले मेघ को देखती या उत्तम नील रत्नमय स्तंभ को देखती, तो (रम का स्मरण कर) उन्हें हाथ जोड़ देती।

वह कभी सोचती कि मैं किसी भयंकर, क्रूर दाँतोंवाले सर्प से सुरक्षित पर्वत की बड़ी गुहा में जाकर रहूँगी, जहाँ मनोहर पूर्णचंद्र, शीतल पवन और मदन मुझे पहचान नहीं सकें।

उस समय, उष्णता बढ़ानेवाला मंद पवन पहले से भी तिगुने वेग से बहकर

उसको तपाने लगा। उसके स्तन उत्तप्त हो उठे। वह क्या उपचार करना है—यह न जानती हुई स्वर्ण रंग के नवपल्लवों की शय्या पर करवटें लेने लगी।

वीर (राम) का आकार उस क्रूर स्त्री की दृष्टि में कालमेघ के समान दिखाई पड़ता। तब वह लज्जित हो उठती, शिथिल हो उठती, चौंक पड़ती, जैसे वह उनको अपने सम्मुख ही देख रही हो। जब वह आकार अदृश्य हो जाता, तब वह कठोर विरहाग्नि में फँस जाती।

अंजन-समान काले मेघ को प्रभु (राम) ही समझकर वह उसे पकड़कर अपने स्तनों से लगा लेती। किन्तु, उस मेघ को झुलसकर मिटते हुए देखकर रो पड़ती। क्षुद्र स्वभाववाली उस राक्षसी की काम-वेदना की कोई सीमा भी थी ?

वह यों तप रही थी, जैसे प्रलय-काल की भीषण अग्नि में फँस गई हो। फिर भी, वह मूढ़ स्त्री चक्रधारी (राम) को प्राप्त कर जीवित रहूँगी—इस आशा-रूपी ओषधि से अपने प्राणों को रोके रही।

कभी वह (राम से) प्रार्थना करने लगती—तुम क्रूर माया को अधिकाधिक बढ़ाने की शक्ति रखनेवाले मेरे विष-सदृश हृदय में आ जाओ और मेरी वेदना को दूर करो। कभी कहती—हे अंजन पर्वत ! मुझपर कृपा करो। वह इस प्रकार पीडित हुई, जैसे उसने विष पी लिया हो।

प्राण जाने पर भी कामना को न त्यागनेवाली वह (स्त्री) सोचती—(उस स्त्री के नयन) नीलोत्पल है ? या मीन है ?—ऐसा संदेह उत्पन्न करनेवाले नयन-युगल से युक्त वह स्त्री (सीता) लक्ष्मी से भी अधिक सुन्दर है। ऐसी दशा में वह (राम) क्या मुझ पापी की ओर दृष्टि भी फेरेगा ?

वह सोचती—इस पुरुष के पास रहनेवाली सुन्दरी उत्तम पातिव्रत्यवाली है। रक्त कमल में वास करनेवाली लक्ष्मी ही है; फिर सोचती—मैं उस (पुरुष) पर अनुरक्त होऊँ, तो भी वह इस वेदना से तप्त नहीं होता।

जब उसकी काम-वेदना इस प्रकार बढ़ रही थी, तब सूर्य इस प्रकार उदित हुआ, जैसे तीनों लोकों में भरे हुए राक्षस-रूपी गाढ अन्धकार को दूर करने के लिए राम ही उदित हुए हों।

उस क्रूर राक्षसी ने प्रभात को देखा और अपने प्राणों को भी सुरक्षित देखा। उसने विचार किया—जबतक वह अनुपम सुन्दरी उसके समीप रहेगी, तबतक वह पुरुष आँख उठाकर भी मुझे नहीं देखेगा, अतः मैं शीघ्र जाकर उस स्त्री को उठा ले आऊँगी और कहीं छिपा दूँगी। फिर, उस पुरुष के साथ सुखी जीवन व्यतीत करूँगी।

उसने (पर्णशाला में) आकर देखा—राम गोदावरी के सुन्दर घाट पर संध्योपासना में मग्न हैं; पर उसने यह न देखा कि समीपस्थ घनी छाया से पूर्ण सुरभित उद्यान में रहकर उनके अनुज, चंद्र-समान ललाटवाली देवी (सीता) की रक्षा कर रहे हैं।

उसने सोचा कि यह (सीता) अकेली है, मेरा उद्देश्य सफल हुआ, अब सोचते हुए विलम्ब करना उचित नहीं है। और, कलंकित चित्तवाली वह, कलापी (तुल्य सीता को)

पकड़ने के लिए उनका पीछा करती हुई गई। फल-भरे उद्यान में स्थित लक्ष्मण ने यह देख लिया।

उन्होंने क्रुद्ध होकर गरजते हुए कहा—अरी ! ठहर। फिर, झट उसके निकट आकर देखा—यह स्त्री है, हाथ में धनुष लिया नहीं है ; फिर उस (शूर्पणखा) के भड़कती आग-जैसे दीखनेवाले केशों को अपने अरुण कर से ऐंठकर पकड़ लिया। उसके पेट पर शीघ्रता से एक पदाघात किया और अपने कर में उज्ज्वल करवाल धारण किया।

तब वह उन (लक्ष्मण) को भी उठाकर आकाश-मार्ग से उड़ जाने का प्रयत्न करने लगी। इतने में (लक्ष्मण ने) उसे झट नीचे ढकेल दिया और 'अब-आगे कभी ऐसा कार्य न करना'—कहते हुए उसकी नाक, कान और कठोर स्तन के चूचुकों को एक-एक कर के काट दिया। फिर शांतकोप होकर उसके केशों को छोड़ दिया।

उस क्षण, वह (शूर्पणखा) अपना मुँह खोलकर चिल्ला उठी। वह ध्वनि सब दिशाओं में व्याप्त हो गई और देवताओं के कानों में भी जा पड़ी। अब उसकी दशा का क्या वर्णन करना है ? उसकी नाक के छेद से प्रवाहित रक्त से धरती गल गई।

उसकी हत्या न करके, लक्ष्मण ने अपने उज्ज्वल करवाल से उस क्रूर (राक्षसी) के नाक-कान काट दिये। वह कार्य ऐसा था, जैसे रावण के रत्नमय मुकुट-भूषित शिरों को काटने के लिए सुदिन का निर्णय करके, उसका प्रारंभ करते हुए पर्वत-शिखर को ही उन्होंने काट दिया हो।

वह धरती पर धड़ाम से गिर पड़ी और पैर उछालती हुई दहाड़ मारकर रोने लगी। वह ऐसी दिखाई पड़ती थी, मानों यम के समान कठोर शूल को धारण करनेवाले क्षुब्ध हो युद्ध करनेवाले खर प्रभृति राक्षसों के विनाश की सूचना देता हुआ कोई कालमेघ रक्त की वर्षा कर रहा हो।

दुःख स्वयं जिनसे डरकर दूर भागता था, ऐसे राक्षसों के कुल में उत्पन्न वह स्त्री, आकाश में उछलती, धरती पर गिरती, लोट जाती, शिथिल पड़ जाती, व्याकुल हो हाथ मलती, मूर्च्छित होती, मूर्च्छा से जग पड़ती, बार-बार कहती—मुझ स्त्री-जन्म पानेवाली का आज कैसा पराभव हुआ ?

हाथ से नाक दबाती, लुहार की भाँथी के जैसे निःश्वास भरती, धरती पर हाथ मारती, अपने युगल स्तनों पर हाथ रखती, उसकी देह स्वेद से भर जाती, अपने बलवान् पैरों को लिये चारों ओर दौड़ती, फिर रक्त बहाती हुई शिथिल पड़ जाती।

सोते से उमड़नेवाले जल के समान बहनेवाले लहू से जो कीचड़ बन गया, उसमें लोटती हुई वह राक्षसी पीड़ा को नहीं सह सकी और अपने कुल के लोगों के नाम पुकार-पुकारकर रोने लगी, जिससे यम भी भयभीत हो गया और देवता भय से भागने लगे।

अग्नि-ज्वाला को कर में धारण करनेवाले (शिव) के पर्वत (कैलास) को उखाड़कर उठानेवाले, हे पर्वत (सदृश रावण)! तुम्हारे धरती पर जीवित रहते हुए ये मुनिवेषधारी धनुष लेकर घूम रहे हैं। क्या यह तुम्हारे लिए अपमानजनक नहीं है ?

'देवता लोग आँख उठाकर भी तुम्हारी ओर नहीं देख सकते—क्या यह कहने मात्र से तुम्हारा काम हो गया ? आओ, यहाँ की दशा भी तो देखो।'

हे प्रलय-काल में भी न डिगनेवाले त्रिमूर्त्ति एवं देवों से भी अधिक बल से युक्त (रावण)! 'बाघिन के पीछे-पीछे जाते हुए उसके बच्चे कभी पीडित नहीं होते'—समुद्र से आवृत धरती के लोगों का यह कथन भी क्या असत्य है ? आओ, मेरी इस वेदना को भी तो देखो।

हे रावण ! जब देवेन्द्र ऐरावत पर आरूढ हो देवताओं की सेना के साथ गर्जन करता हुआ युद्ध करने के लिए सम्मुख आया था, तब तुमने उसे परास्त करके भगा दिया था। हे इन्द्र की पीठ को देखनेवाले ! आओ, मेरे अपमान को भी तो देखो।

हे शिव के द्वारा प्रदत्त बड़े करवाल को धारण करनेवाले ! तुम पवन, जल, अग्नि, कालांतक यम, स्वर्ग एवं ग्रहों से अपनी सेवा कराने में समर्थ हो। क्या अब इन दो नरों के बल से परास्त हो निर्बल होकर बैठे हो ?

चलते समय जिनके भारी पैरों के पद-तल से चिनगारियाँ निकलती हैं, ऐसे मद-भरे दिग्गजों के दाँतों को तोड़नेवाले तथा पर्वतों को फोड़नेवाले कंधों से युक्त, हे बलवान् ! रूप में मन्मथ के समान होने पर भी ये मनुष्य तुम्हारे जूते के नीचे की धूल के बराबर भी नहीं हैं; क्या इनपर तुम क्रोध न करोगे ?

हाय ! क्या मधुपूर्ण सुगन्धिक पुष्प-मालाधारी देवों को मिटाने की, रावण एवं उसके भाइयों की शक्ति अब नष्ट हो गई है ? क्या अब वह शक्ति मांसमय शरीरवाले, हमारे कुलवालों का आहार बननेवाले मनुष्यों के पास चली गई है ?

युद्ध में सम्मुख पड़नेवाले, जिसे देखकर यों संदेह कर उठते हैं कि यह हर है, विष्णु है अथवा ब्रह्मा है—हे ऐसे शक्ति से संपन्न खर ! घने वृक्षों से भरे विशाल वन में एकांतवास करनेवाले मुनिवेषधारी मनुष्यों की शक्ति से, अथवा पराक्रमी राक्षसों के निर्वीर्य हो जाने से मुझपर जो विपदा आ पड़ी है, उसे तू देख।

इंद्र, हर, ब्रह्मा तथा अन्य देव जब तुम्हारी सेवा में निरत रहते हैं, सप्तलोकों के निवासी तुम्हारी स्तुति करते रहते हैं, तब तुम्हारे पूर्णचन्द्र-सदृश श्वेतच्छत्र की छाया में आसीन रहते समय, तुम्हारी सभा के मध्य मैं निर्लज्ज-सी आकर किस प्रकार अपना मुख दिखा सकूँगी ?

शिव के आसन कैलास को उखाड़नेवाले हे मेरे भाई ! मेरे बल को चूर करते हुए, पदाघात से मुझे नीचे गिराकर जिस (मनुष्य) ने मेरी नाक काट दी, वह जीवित रहकर अपनी भुजा को (गर्व से) देखे और मैं नीचे गिरकर रोती रहूँ—क्या यह उचित है ? यह वन खर का है न ? तो भी क्या मुझे ये कष्ट भोगने पड़ेंगे ?

दिग्गजों के क्रोध को कम करते हुए, उनके साथ युद्ध करके उनके दाँतों को तोड़नेवाले और उससे प्राप्त यश से फूले हुए कंधोंवाले हे रावण ! कामना के वशीभूत होकर मैंने नाक खोई और निर्लज्जता से जिस अपमान का भागी हो गई हूँ, इससे क्या तुम्हारा यश कलंकित नहीं होगा ?

दानवों के कुल को मिटाकर, इन्द्र को बन्दी बनाकर, देवों को दास बनाकर उनसे सेवा करानेवाले हे मेरे भतीजे ! अरण्य में दो मनुष्यों ने मेरे कान और नाक काट दिये हैं। क्या, मैं पापिन इस अपमान से यहाँ यों ही मिट जाऊँ ?

पूर्वकाल में, हाथ में एक ही धनुष लेकर सप्तलोकों को जलानेवाले, अशमनीय क्रोध के साथ सब दिशाओं को परास्त करनेवाले तथा इन्द्र के दोनों चरणों में श्रृंखला डालनेवाले हे मेरे भतीजे ! क्या इन मनुष्यों का पराक्रम देखने के लिए नहीं आओगे ?

शिलाओं को भेदनेवाले शस्त्रों को धारण करनेवाले विशाल करों से युक्त, हे पराक्रमी खर-दूषण आदि ! हे अंधकार को मिटानेवाले प्रकाश से युक्त रत्नाभरणों को धारण करनेवाले राक्षसों के कुल में उत्पन्न लोगो ! लुहार के द्वारा पैनाये गये शस्त्रोंवाले कुंभकर्ण-जैसे ही क्या तुम लोग भी धरती में कहीं सोये पड़े हो ? मेरी पुकार तुमलोग सुन क्यों नहीं रहे हो ?

यों अनेक वचन कह-कहकर वह बलवान् राक्षसी शोक-मग्न हो रोती हुई वहाँ की मनोहर आश्रम-भूमि पर लोटती रही। उस समय, अपने कर में दृढ धनुष लिये, विशाल भुजावाले, मरकत पर्वत (सदृश राम), (गोदावरी) नदी पर संध्या आदि नित्यकर्म समाप्त करके वहाँ आये।

तब वह (शूर्पणखा), वहाँ आनेवाले (राम) को मार्ग के मध्य देखकर, अपनी छाती पीटती हुई, आँखों से अश्रु की वर्षा करती हुई, अपने शोणित के प्रवाह से वहाँ की सुन्दर भूमि को कीचड़ से भरती हुई, यह कहकर कि—'हे प्रभु ! हाय ! मैं तुम्हारे सुन्दर रूप पर आसक्त होने के अपराध में इस दुर्दशा को प्राप्त हुई हूँ। यह देखो।'—उन (राम) के सामने गिर पड़ी।

प्रभु ने अपने उपमाहीन मन से समझ लिया कि बिखरे केशोंवाली इस (राक्षसी)ने कोई क्रूर कार्य किया होगा। यह भी समझ लिया कि अनुज ने ही इसके दीर्घ कान-नाक काटे हैं। फिर उस (राक्षसी) से पूछा—तू कौन है ?

उस प्रश्न को सुनकर क्रूर राक्षसी ने उत्तर दिया—क्या तुम मुझे नहीं पहचानते ? वैर के नाम तक को धरती पर से मिटा देनेवाले क्रोध से युक्त, भयंकर पत्राकार भाले को धारण करनेवाले, त्रिभुवन के शासक रावण की मैं बहन हूँ।

तब (राम के) यह प्रश्न करने पर कि, पराक्रमी राक्षसों के स्थान को छोड़कर हमारे तप करने के इस स्थान में तू क्यों आई ? उसने उत्तर दिया कि, हे अग्निकण के समान तपानेवाली काम-वेदना के लिए उत्तम ओषधि-समान ! मैं कल भी आई थी न ?

(तब राम ने प्रश्न किया—) क्या रक्त-मीन के समान चंचल, काले वर्ण से युक्त दीर्घ नयनोंवाली, मधुपूर्ण कमल में निवास करनेवाली लक्ष्मी का भ्रम उत्पन्न करनेवाली, जो स्त्री कल आई थी, वह तुम्हीं हो ?—(राम के) यों प्रश्न करने पर उस राक्षसी ने उत्तर दिया—सुन्दर नेत्रोंवाले हे राजन् ! स्तन, ताटंक-भूषित कान और लतातुल्य नासिका को काट देने पर सुन्दरता कहाँ रह जाती है ?

यह सुनकर प्रभु, दाँतों को किंचित् खोलकर, मुस्कराये और अनुज का मुख

देखकर पूछा—हे वीर ! इसने क्या अपराध किया था कि तुमने झट इसके कान-नाक काट दिये ? तब शूर तथा उदार गुणवाले (लक्ष्मण) ने उनके चरणों पर नत होकर कहा—

अपने तीक्ष्ण दाँतों से (मांस) खाने के उद्देश्य से या क्रूरकर्मा राक्षसों के उभाड़ने से, न जाने किस कारण से, यह दुर्गुणवाली राक्षसी अपनी आँखों से चिनगारियाँ उगलती हुई अज्ञात रूप से आई और उत्तम गुणवाली देवी (सीता) की ओर क्रोध करके झपटी।

धनुर्धारी लक्ष्मण के अपना कथन समाप्त करने के पूर्व ही, वह क्रूर राक्षसी बोल उठी—हे ऐसे देश के अधिपति, जहाँ के जलाशयों में कीचड़ में स्थित शंखकीट को अपने पति के संग रहते देखकर गर्भिणी मंडूक-स्त्री (ईर्ष्या से) क्रुद्ध हो जल को हिलाने लगती है ! अपनी सौत को देखने पर किस स्त्री का मन क्रुद्ध नहीं होगा ?

(तब राम ने कहा—) भीरुता से (माया) युद्ध करनेवाले क्रूर राक्षसों के विशाल कुल को एक साथ मिटाने के लिए हम यहाँ उनके स्थान को खोजते हुए आ पहुँचे हैं। अब तू कुछ निंदा-वचन कहकर हमारे हाथ से अपने प्राण न गँवा। सत्य के आवासभूत इस वन को छोड़कर तू दूर भाग जा। राम के ये वचन सुनकर भी वह राक्षसी बोल उठी—

जिस बुढ़ापे में बाल पक जाते हैं और (शरीर में) झुर्रियाँ पड़ जाती हैं—ऐसे बुढ़ापे से रहित ब्रह्मा आदि सब देवता, रावण को कर देते हैं। अतः, तुमने जल्दी में जो यह काम कर दिया है, वह उचित नहीं किया। यदि तुम अपनी भलाई चाहते हो, तो सुनो, मैं एक बात कहती हूँ।

वह दशमुख इतना क्रोधी है कि जो कोई जाकर उससे यह कहे कि तुम्हारी बहन की नाक कट गई है, तो वह उस कहनेवाले की जीभ काट ले। अतः, मेरी नाक काटकर तुमलोगों ने अपने कुल की जड़ ही काट दी है। अब तुम्हारे प्राण नहीं बच सकते। हाय ! अपने इस सारे सौंदर्य को तुमने धूल में मिला दिया।

अब स्वर्ग के रक्षकों (देवताओं), पृथ्वी के रक्षकों (राजाओं) और नाग-लोक के रक्षकों में ऐसा कौन है, जो अपने शिरों की रक्षा करते हुए तुमलोगों की देह की भी रक्षा कर सके ? यदि तुम मेरे प्राणों की रक्षा करो (अर्थात्, विरह-पीडा से मेरी रक्षा करो) तो मैं तुम्हारी रक्षा करूँगी। अन्यथा वे रावण हैं (जो तुम्हारा विनाश करेंगे) —यों उस (शूर्पणखा) ने कहा।

उसने आगे कहा—चारित्र्य की रक्षा करनेवाले अचंचल पातिव्रत्य-धर्म से युक्त स्त्रियाँ, अपने महत्त्व को स्वयं नहीं कहती हैं। तो भी मैं, तुम पर अधिक प्रेम होने के कारण, यह कह रही हूँ। क्या तुम अपने इस अनुज को नहीं बतलाओगे कि मैं देवताओं से भी अधिक बलवान् (रावण) की बहन हूँ और संसार के सब प्राणियों से अधिक बलवान् हूँ।

बड़े युद्धों में भी मैं तुमलोगों की रक्षा कर सकती हूँ। तुम्हें उठाकर गगन-मार्ग से जा सकती हूँ। मांस-सदृश स्वादवाले अनेक फल लाकर तुम्हें दे सकती हूँ। तुम्हारे

मन में जो भी इच्छा उत्पन्न हो, उसे मैं पूरा करूँगी। जो रक्षा कर सकते हैं, उनसे द्वेष करने से क्या लाभ ? और, सुमन के जैसे कोमल स्वभाववाली इस नारी से ही क्या प्रयोजन है ? कहो तो सही।

उत्तम कुल, उत्तम स्वभाव, उद्दिष्ट वस्तुओं को लाने की शक्ति, बुद्धि, आकार, यौवन—सब विषयों में मेरी समता करनेवाली कोई स्त्री पृथ्वी के निवासियों में या स्वर्ग के निवासियों में भी कौन है ?—यदि तुम समर्थ हो तो कहो।

तुमने मेरी नाक काट दी। उससे क्या हानि है ? यदि तुम मुझे स्वीकार करो, तो मैं एक क्षण में उसे उत्पन्न कर लूँगी। मेरा सौंदर्य पूर्ण हो जायगा। यदि तुम्हारी कृपा प्राप्त करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हो गया, तो नासिका के लोप से क्या हानि होगी ? अत्युन्नत दीर्घ नासिका भी तो स्त्रियों के लिए (सौंदर्य का) लोप करनेवाली ही होती है न ?

मन न मिलने पर ही तो द्वेष उत्पन्न होता है ? यदि मन में प्रेम हो और मैं तुम्हें स्वीकृत हो जाऊँ, तो मेरे प्राण भी तुम्हारे अधीन हो जायेंगे। देखनेवाले सब लोग मुग्ध होकर प्रेम करने लगें, ऐसा सौंदर्य भी विष-समान ही तो होता है, विवाह करनेवाला पति जितना सौंदर्य चाहे, केवल उतना ही सौंदर्य हो, तो क्या (तुम) उसे स्वीकार नहीं करोगे ?

शिव, कमलभव चतुर्मुख, विष्णु, विनाशकारी वज्र को धारण करनेवाला इन्द्र सब मिलकर एक रूप धारण करके खड़े हों—ऐसे रूपवाले, हे सुन्दर ! सब लोकों के प्राणियों को अपने अनुपम बाणों से सतानेवाला मन्मथ भी क्या तुम्हारा भाई ही है ? वह (मन्मथ) भी तुम्हारे इस अनुज-जैसा ही करुणाहीन है।

हे स्वर्णमय वीर-कंकण से भूषित वीरो ! तुमने यही सोचकर कि यह (शूर्पणखा) सदा के लिए इस सुन्दर रूप में हमारे पास ही रहे, अन्य कहीं नहीं जा सके और कोई इसे देखकर मोहित न हो जाय—तुमने मेरे कान-नाक काट दिये। तुमने कुछ बुरा नहीं किया। अन्यथा, मेरी नाक काटकर बड़ा छेद कर देने में तुम्हारा अन्य क्या प्रयोजन हो सकता है ? तुम्हारा वह उद्देश्य जानकर ही अब मैं पहले से दुगुना प्रेम करने लगी हूँ। मैं क्या ऐसी निर्बुद्धि हूँ (जो इतना भी नहीं समझ सकूँ) ?

उग्र कोपवाले, शस्त्रधारी राक्षस, यह समाचार जानकर यदि लाल आँखें करेंगे, तो सारा संसार ही तुम्हारे कारण विनष्ट हो जायगा। उत्तम कुल में उत्पन्न व्यक्ति धर्म का विचार करके ऐसा विनाश नहीं होने देंगे। तुम यह विचारकर यह अपवाद दूर करो और मेरा उपकार कर मेरे संग रहो—यह कहकर वह विनय करती खड़ी रही।

तब रामचन्द्र ने कहा—हे क्रूर राक्षसी ! संसार के सब प्राणियों को दुःख देनेवाली क्रूर राक्षसी तुम्हारी माता की जननी ताडका के प्राण जिस शर ने हर लिये थे, वह अभी तक मेरे पास ही है। इतना ही नहीं, भुजबल से युक्त तथा पुष्प-मालाओं से भूषित क्रूर राक्षसों के कुल का विनाश करने के लिए ही मैं उत्पन्न हुआ हूँ। तू अपना क्षुद्र व्यवहार त्याग दे। यह कहकर रामचन्द्र ने आगे कहा—

हम, सारी पृथ्वी का शासन करनेवाले चक्रवर्त्ती दशरथ के पुत्र हैं और माता की आज्ञा से सुगंधित वन में आये हुए हैं। वेदज्ञों तथा तपस्वियों के कहने से हम, अपार सेना-समुद्र से युक्त राक्षसों के वंश का विनाश करेंगे और उसके पश्चात् ही पर्वत-सदृश सौधोंवाली अयोध्या नगरी में प्रवेश करेंगे—इसे ठीक समझ ले।

राक्षसों के सम्मुख सन्मार्ग पर चलनेवाले देवता लोग खड़े नहीं रह सके और पराजित हो भाग गये, तो यहाँ ये दो मनुष्य क्या कर सकेंगे?—ऐसा विचार मत कर। यदि तू शक्तिमान् है, तो जा, क्रोधी, तीक्ष्ण शस्त्रधारी राक्षसों में तथा बलवान् यक्षों में, जो अत्यन्त शक्तिमान् हैं, उन्हें ले आ। हम उन सबका विनाश कर देंगे।

तब उस राक्षसी ने कहा—हे धान आदि अनाजों को अधिकाधिक उत्पन्न करने-वाली जल-समृद्धि से पूर्ण देशवाले! सुनो, यदि तुम मुझे मुँह के ऊपर ओंठ से बाहर उभरे हुए दाँतोंवाली, विकृत रूपवाली कहकर मेरा तिरस्कार न करो और मुझसे प्रेम करो, तो उन राक्षसों को अवश्य मिटा सकोगे। (उनकी) माया को यथातथ रूप में जान सकोगे। उनको संपूर्ण रूप से परास्त कर सकोगे। उनके क्रूर कृत्यों से तुम बच सकोगे। फिर उसने कहा—

तुम इस बाँस-सदृश कंधोंवाली को न त्यागो, तो भी मैं क्या तुम्हारे लिए भार हो जाऊँगी? यदि तुम मायावी तथा सद्ज्ञान-हीन राक्षसों से युद्ध करने का विचार करते हो, तो पंचेंद्रियों के समान विविध माया करनेवाले, उनके यंत्रों को समझकर मैं उनसे तुम लोगों की रक्षा करूँगी। 'साँप के पैर साँप ही जानता है' वाली कहावत को जानते हो न?

यदि तुम यह सोचते हो कि हृदय से प्रेम करके ही इस (सीता) ने तुमसे विवाह किया है, तो अपने इस अनुज के साथ—जिसने इतना भी विचार न किया कि राक्षसों के साथ युद्ध करना पड़े, तो हम तीनों एक साथ मिलकर रक्त की नदियाँ बहा देंगे और राक्षसों पर विजय प्राप्त करेंगे (और मेरा अंग-भंग कर दिया)—मेरा विवाह करा दो। दो ग्रहों (सूर्य और चन्द्र) को बन्दी बनानेवाले रावण से मैं बल में कुछ कम नहीं हूँ।

जब तुम उत्सव के दृश्यों से युक्त अपने बड़े नगर में प्रवेश करोगे, तब मैं (अपनी मायाशक्ति से) मनचाहा रूप धारण करूँगी। तुम्हारा यह अनुज, शांतमन होकर भी यदि यह कहे कि इस नाककटी स्त्री के साथ कैसे रह सकता हूँ? तो हे प्रभु! तुम इसे समझाकर कहना कि चिरकाल से मैं कटिहीन[1] स्त्री के साथ रहता हूँ।

उस (शूर्पणखा) ने जब ये वचन कहे, तब अत्यन्त क्रुद्ध हुए अनुज लक्ष्मण ने पत्राकार बरछे की ओर दृष्टि करके (राम से) कहा—हे प्रभु! यदि इसे अभी न मार दें, तो यह बहुत पीडा उत्पन्न करेगी। कहिए, आपकी क्या आज्ञा है? प्रभु ने कहा—यदि अब भी यह हमें छोड़कर न जाये तो वैसा ही करेंगे। तब उस राक्षसी ने यह सोचकर कि ये मुझ-पर कुछ दया नहीं करेंगे और यहाँ रहूँगी, तो मेरे प्राणों की हानि होगी।

---

१. शूर्पणखा सीता को 'कटिहीन' कह रही है।—अनु०

फिर, यह कहकर कि—अपनी नाक, कानों और स्तनों को खोकर भी (तुम लोगों के साथ) मैं कैसे रह सकती हूँ ? तुम्हारे मन को समझने के लिए ही तो मैंने यह माया की थी ? अब मैं पवन से भी तेज अग्नि से भी क्रूर खर को बुला लाऊँगी, जो तुम लोगों के लिए यम बनेगा—अशमनीय वैर के साथ वहाँ से चली गई। (१–१४३)



अध्याय ६

खर-वध पटल

रक्त की धारा बहाती हुई, बिखरे केशोंवाली, नाली-जैसे छेद से युक्त नाकवाली और विशाल मुँहवाली वह (शूर्पणखा), जाकर (जनस्थान में) स्थित भयंकर खर के चरणों पर ऐसे गिरी, जैसे कोई लालिमा से युक्त बादल हो।

'(राक्षसों के) विनाश का यह दिन है'—इस बात की सूचना देते हुए, यम की आज्ञा से बजनेवाले नगाड़े के समान, अकेली चिल्लाती हुई वह (शूर्पणखा), इस प्रकार धरती पर लुढ़कती रही, जिस प्रकार गरजते मेघ से गिरे हुए वज्र की अग्नि से जलता हुआ कोई नाग हो।

उस खर ने उसे देखा, जिसके मुँह से कठोर वचनों के अनुकूल धुआँ निकल पड़ता था और पूछा—'निर्भय होकर इस प्रकार तुम्हारा रूप विकृत करनेवाले कौन हैं ?' तब नासिका-द्वार से बहनेवाले रक्त से रुँधी हुई आँखोंवाली उस (शूर्पणखा) ने कहा—

दो मनुष्य हैं, जो मुनिवेषधारी हैं, हाथों में दृढ धनुष एवं करवाल धारण करनेवाले हैं, मन्मथ के समान सुन्दर रूपवाले हैं, धर्मस्वभाववाले हैं, दशरथ के पुत्र हैं, राक्षसों के साथ युद्ध करने के विचार से उनको ढूँढते रहते हैं।

वे तुम्हारे बल की कुछ परवाह नहीं करनेवाले हैं। धर्म-मार्ग पर स्थिर रहकर उसकी रक्षा का विचार करनेवाले हैं, विजयशील भाले रखनेवाले राक्षसों का विनाश करने का दृढ़ निश्चय रखनेवाले हैं।

उनके साथ एक मुग्ध (स्त्री) है, जो इतनी महिलोचित सुन्दरता से पूर्ण है कि पृथ्वी में, दुर्लक्ष्य स्वर्ग-लोक में तथा अन्य (पाताल) लोक में, कहीं अन्वेषण करने पर भी उसकी समता करनेवाली स्त्री नहीं मिलेगी। मैंने अपनी आँखों से उसे देखा है। लेकिन, उसका वर्णन मैं नहीं कर सकती।

उसे देखकर मैंने सोचा—अन्यत्र दुर्लभ सुन्दरता से युक्त इस रमणी को मैं लंकाधीश के लिए ले जाऊँगी और उस पर झपटी। तब उन मनुष्यों ने क्रुद्ध होकर मेरी नाक काट डाली।—उसने यों कहा।

उस खर ने, जो अपने आकार से संसार को भय-विकंपित करनेवाला था और

जिसको सामने से देखनेवालों की आँखें झुलस जाती थीं; जिसने उस (शूर्पणखा) को पहले ठीक-ठीक नहीं देखा था, अब उसके वचन सुनते ही, यह कहकर उठा कि उन विनाश को प्राप्त होनेवाले मनुष्यों के द्वारा, ताल-फल के कोए के जैसे उखाड़ी गई अपनी नाक को मुझे दिखाओ।

वह उठकर खड़ा हुआ। उसका मन ऐसे क्रोध से बौखला उठा, जो सप्त लोकों को जलाकर भस्म कर सके, और बोला—'मनुष्य-मात्र मर गये, केवल इतना कह देने से ही हमारा यह अपमान नहीं मिटेगा।'[1]

तब ज्योंही उसने 'रथ लाओ' कहा, त्योंही उसके निकटस्थ रहनेवाले, एक ही हाथ से सारी धरती को उठाने की शक्ति रखनेवाले, दो हाथवाले ऊँचे पर्वतों के जैसे लगनेवाले, चौदह वीरों ने (खर से) निवेदन किया कि यह (युद्ध का) कार्य हमें सौंपो।

त्रिशूल, करवाल, तोमर, चक्र, कालपाश, गदा आदि शस्त्र हाथों में लेकर वे चले, तो उनके कोलाहल से समुद्र से आवृत धरती के सब प्राणी भयभीत हो उठे। उनके आकार ऐसे थे, मानों विष ही साकार बन गया हो।

जलती क्रोधाग्नि से युक्त, उन राक्षसों ने (खर से) कहा—हे वीर ! हमारी सेवा आज धन्य हुई। क्या तुम देवों से युद्ध करने जा रहे हो ? हमारे जीवित रहते यदि तुम मनुष्यों से युद्ध करने जाओगे, तो हमारा जीवन व्यर्थ होगा। यों कहकर उन्होंने उसे रोका।

तब खर ने कहा—ठीक है। अच्छा कहा, यदि मैं इन क्षुद्र मनुष्यों से युद्ध करने जाऊँ, तो देवता लोग हँसेंगे। तुम लोग जाओ। उनको मारकर उनका रक्त पियो और उस सुकुमारी को साथ लेकर आओ।

(खर के) यह आज्ञा देते ही, आनंदित होकर उन वीरों ने उसे प्रणाम किया और समाचार देनेवाली निर्लज्ज (शूर्पणखा)-रूपी यम के दूत को आगे करके, उसके पीछे-पीछे चलकर दशरथ के पुत्रों के निवास पर गये।

उस (शूर्पणखा) ने कोलाहल के साथ युद्ध के लिए आये हुए उन राक्षसों को, कमल-समान नेत्रवाले उन राम को अपनी उँगली उठाकर दिखाया, जो अकलंकसहस्रनाम-धारी चक्रपाणी (विष्णु) के ध्यान में मग्न थे।

कुछ राक्षस कह रहे थे कि (उन मनुष्यों को) पकड़कर ऊपर उछालेंगे। फिर, हाथों में लोक लेंगे। और, कुछ कहते थे कि इन्हें दीर्घ पाश से हम बाँधेंगे। यों सब राक्षसों ने, अपने नायक (खर) की आज्ञा के अनुसार कार्य को पूर्ण करने के विचार से, पहाड़ों के जैसे आकर उन (राम-लक्ष्मण) को घेर लिया।

प्रख्यात शक्तिवाले राम ने अपने अनुज को यह आदेश देकर कि देवी की रक्षा करो, उज्ज्वल कल्पवृक्ष के पुष्प-समान अपने अनुपम करों में डोरी से युक्त पर्वत-सदृश विनाश-कारी धनुष को उठा लिया।

कमल-सदृश नयनोंवाले प्रभु, यों (धनुष को) उठाये, करवाल के साथ बाणों से

[1]. भाव यह है कि संसार के सारे मनुष्यों को मार देने से भी हमारा यह अपमान न मिटेगा। —ले०

पूर्ण तूणीर को भी लिये, उस पर्णकुटी से बाहर निकले और 'अरे! इधर आओ।'—यों वीर-वाद कहते हुए भुजाओं को फुलाये युद्ध करने लगे।

परशु, करवाल, उज्ज्वल फलवाला त्रिशूल तथा भयंकर प्रलयकालाग्नि की समता करनेवाले उन राक्षसों के स्तंभ-सदृश हाथों को लक्ष्य-वेधक शरों से काट-काटकर उन्हें धरा-शायी कर दिया।

बड़े-बड़े शस्त्रों-सहित अपनी भुजाओं के, बड़े-बड़े वृक्षों के समान कटकर गिर जाने पर भी अपने बलिष्ठ वृक्षों को लिये हुए वे राक्षस युद्ध करने के लिए आगे बढ़े। तब बलवान् (राम) के द्वारा प्रयुक्त शर, वेग से उनसे आ लगे, जिससे उनके शिर कटकर गिर पड़े। (यह दृश्य देखकर) पापिनी (शूर्पणखा) वहाँ से भाग चली।

गरजनेवाले, क्रोधी तथा पराक्रमी सिंह के द्वारा सब हाथियों के मारे जाने पर जिस प्रकार हथिनी अपनी सूँड़ को उठाकर सिर पर रखे हुए चिल्लाती हुई भाग रही हो, उसी प्रकार वह (शूर्पणखा) भी भागकर खर के पास गई और उज्ज्वल शूलधारी खर को उसने सब वृत्तांत सुनाया।

वृषभवाहन (शिव) के लिए भी अजेय पराक्रम से युक्त क्रूर खर नामक वह (राक्षस), यह समाचार सुनकर कि सब राक्षस मारे गये, यों क्रुद्ध हो उठा कि उसकी आँखों में रक्त उमड़ पड़ा।

कन्दरा में रहनेवाले क्रूर सिंह भी जिससे डर जायँ, ऐसा गर्जन करते हुए खर ने यह आज्ञा दी—'हे सेवको ! मेरा रथ, मेरे चढ़ने के लिए अभी लाओ। मैं युद्ध करूँगा। क्षणमात्र में सेनाओं के निवास में जाओ और मेघ के जैसे बड़े नगाड़ों को हाथियों पर घुमा-कर बजवाओ।'

ज्योंही नगाड़ों की ध्वनि हुई, त्योंही रथारूढ राक्षसों की सेना एकत्र हो आई, मानों वर्षाकालिक बड़े-बड़े मेघ अपार रूप में घिर आये हों—यह देखकर स्वर्ग और नाग-लोक भी काँप उठे।

युद्ध की सूचना देनेवाले बड़े नगाड़ों की ध्वनि समुद्र-गर्जन के सदृश थी। (राक्षसों की) दीर्घ भुजाएँ समुद्र की वीचियों की जैसी थीं। महान् गर्जन और मेघ-सदृश काले वर्णवाला समुद्र, प्रलयकालिक पवन से प्रताडित होकर उमड़ पड़ा हो—यों वह (राक्षसों की) सेना बड़ा कोलाहल करती हुई उमड़ आई।

घना वन ही उड़कर गगन-तल को ढक रहा हो, (ऐसा दृश्य उपस्थित करते हुए) सर्वत्र उठी हुई ऊँची ध्वजाएँ यों नाच रही थीं, जैसे भूत ही 'हमारी भूख मिट जायगी', इस विचार से आनन्दित होकर—नाच रहे हों।

आलान से अभी छूटे हुए, किसी की परवाह न करनेवाले, बड़ी और लम्बी दो-दो सूँड़ोंवाले मत्त हाथियों के झुंड-सदृश वह राक्षस-सेना चल पड़ी। उनके घने शस्त्र एक दूसरे से टकरा उठते थे, तो उससे जो चिनगारियाँ निकल पड़ती थीं, उनसे सारे वन में आग लग जाती थी।

दोनों पार्श्वों में 'गुरुडु' (नामक वाद्य) बज रहे थे। उनकी ध्वनि, पहियों के

घूमने से आगे बढ़नेवाले रथों की ध्वनि में दब जाती थी। उस सेना ने, करुणा की मूर्त्ति के समान स्थित रामचन्द्र-रूपी सूर्य को, फैले हुए अन्धकार की तरह घेर लिया।

वह दृश्य ऐसा था, जैसे सप्त लोकों में ऊँचे बढ़े हुए सब पर्वत एक ही स्थान पर इकट्ठे हो गये हों, जिससे बड़े-बड़े सर्पों के द्वारा अपने शिरों पर धारण की हुई यह धरती डोल-डोलकर अपनी पीठ झुकाने लगी।

व्याघ्र-समूह है? घनघटा है? गरजते हाथियों का झुंड है? ऊँचे पर्वत हैं? नहीं तो सिंहों की सेना है?—यों संदेह उत्पन्न करते हुए शस्त्रधारी राक्षसों की सेना हजारों की संख्या में आ पहुँची।

(जब राक्षसों की उस सेना में ऐसे रथ थे, जिनमें) कुछ में शरभ जुते थे, कुछ में सिंह जुते थे, कुछ में बलवान् हाथी जुते थे, कुछ में बाघ जुते थे, कुछ में श्वान जुते थे, कुछ में शृगाल जुते थे, कुछ में भूत जुते थे, कुछ में घोड़े जुते थे।

कुछ में वृषभों के झुंड जुते थे, कुछ में शूकर जुते थे, कुछ में वायु-रूपी पिशाच जुते थे, कुछ में गर्दभ जुते थे, कुछ में बाज जाति के पक्षी जुते थे। वे (रथ) ऐसे थे कि क्षण-भर में ही सारे संसार में घूम आ सकते थे।

इस प्रकार के रथों के समुदाय घिर आये। छोटी आँखों और लाल मुखवाले हाथियों के झुंड घिर आये। अपने पैरों से वायु के जैसे अतिवेग से दौड़नेवाले घोड़े घिर आये। उस समय शंख बज उठे।

परशु, बरछे, करवाल, वक्रदंड, तोमर, भाले, भुशुंडि, जो (शत्रु के) शरीर-भर को आवृत करनेवाले थे, गदाएँ, त्रिशूल, मूसल, काल-पाश—

कुंतक, कुलिश, दंड, भिंदिपाल, असंख्य धनुष, शर, चक्र, 'वलै', उज्ज्वल शंखों के समुदाय, 'कप्पण' पाश—

इत्यादि शस्त्र ऐसे प्रकाशवाले थे कि सूर्य और अग्नि भी उन्हें देखकर मंद पड़ जाते थे, जिनमें (शत्रुओं का) मांस और रक्त लगे थे, जो देवों को पीडा देनेवाले थे, जो विजयसूचक पुष्प-माला से अलंकृत थे, घिर आये।

अनेक सहस्र हाथियों के बल से युक्त, विशाल पृथ्वी को निगल सकनेवाले मुँह से युक्त, और अग्नि उगलनेवाली आँखोंवाले चौदह राक्षस उस सेना के नायक थे।

विद्वानों का कथन है कि इस सेना-वाहिनी में एक-एक दल की संख्या साठ लाख थी और उसमें ऐसे चौदह दल थे।

वे सेना-नायक अपार बल से युक्त थे, वज्र-समान घोष करनेवाले मुँह से युक्त थे, सब शस्त्रों के प्रयोग में कुशल हाथोंवाले थे। वे इतने ऊँचे थे कि मेघ, पर्वत-शिखर की भ्रांति से, उनके शिर पर विश्राम करते थे। वे गर्वी थे और उत्साहित मनवाले थे।

उनके आकार अंतरिक्ष को मापते थे। उनके वक्ष नेत्रों की परिधि में नहीं आते थे। अपने पैरों से सारी धरती को नाप सकते थे। बड़े पराक्रमवाले थे। देवों के साथ असंख्य युद्धों में उन्होंने विजय प्राप्त की थी।

उनके कंधे इतने दृढ तथा बलवान् थे कि इन्द्र आदि के द्वारा फेंके गये बड़े शस्त्र उनपर लगकर चूर-चूर होकर छितरा जाते थे। उनकी कठोर आज्ञा ऐसी थी कि यम भी उनके चरणों पर गिरकर उनकी अधीनता स्वीकार करता था। वे ऐसे थे, मानों भयंकर अग्नि ही साकार हो गई हो।

वे शूल, पाश, घने लाल केश, क्रूर नेत्र और खड्ग दंतों से युक्त थे। वे इतने काले थे कि उनके सन्मुख विष भी सफेद जान पड़ता था। अपनी शक्ति से काल भी उन्हें अपना काल समझकर डरता रहता था। वे ऐसे रूपवाले थे।

वे वीर-कंकणधारी थे। पुष्पमालाधारी थे। कवच से आवृत वक्षवाले थे। उज्ज्वल आभरण-भूषित थे। कुंचित भृकुटिवाले थे। अग्नि-सदृश (लाल) केशवाले थे। उनके मन युद्ध की कामना से उसके लिए उमंग से भर जाते थे। अपने में वे लोग बड़ी एकता रखते थे।

अतिदृढ दंत और मद-स्रावी हाथीवाला इन्द्र भी उनके सम्मुख आ जाय, तो वह भी भयभीत होकर, पीठ दिखाकर, भाग खड़ा होगा। तीनों नश्वर भुवनों में युद्ध करने का मौका न पाकर उनके पर्वत-जैसे कंधे खुजलाते रहते थे।

हाथी, घोड़े, भूत, वानर, बलवान् सिंह, क्रोधी भालू, श्वान, व्याघ्र, शरभ— ये अग्नि-सदृश चमकते तथा भयजनक मुखवाले तथा क्षीर-समुद्र में उत्पन्न हलाहल के समान नयनवाले थे।

कोई आठ हाथोंवाले थे। कई सात हाथोंवाले थे। कई नेत्रों से अग्नि उगलनेवाले सात-आठ मुखोंवाले थे। बलिष्ठ टाँगोंवाले थे। प्राणियों को अपने दीर्घ करों से उठाकर मुँह में ठूँसकर चबा जानेवाले थे। विनाशहीन थे।

यक्षों से छीनकर लाये गये, असुरों से दिये गये, देवों को डराकर उनसे बलात् लिये गये, अश्रान्त गन्धर्वों को भगाकर उनसे छीनकर लाये गये, करुणालु सिद्धों को सताकर उनसे लिये गये—

मयूर-पंख, ध्वजा, छत्र, चामर, हाथियों पर रखने योग्य बड़ी पताकाएँ, वितान तथा अन्य अनेक राजचिह्न, बिना व्यवधान के, सर्वत्र शोभायमान थे और गगनतल में व्याप्त होकर संसार-भर में सूर्य का-सा प्रकाश फैला रहे थे।

वे चौदह सेनापति चौदहों भुवनों को जीतनेवाले थे। वे सैनिक परशुधारी थे, करवालधारी थे, उज्ज्वल त्रिशूलधारी थे और सिंह और व्याघ्र के समान हिंस्र क्रोधवाले थे।

वे धनुर्धारी थे। बड़े खड्गों से युक्त थे। ओठों पर रखे (ओठों को चबाते हुए) दाँतोंवाले थे। मेरु पर्वत को भी उखाड़ने की शक्ति रखते थे। अश्व-जुते रथोंवाले थे। अपने कहे अनुसार करने की धृति और इच्छा-शक्ति रखते थे। ऐसे सैनिक सब दिशाओं से आकर एकत्र हुए।

शत्रुओं के प्राणों को उनके शरीरों से पृथक् करनेवाले और विजयमाला से भूषित त्रिशूलों को धारण किये हुए, दृढता से युक्त दूषण, त्रिशिरा इत्यादि अनेक राक्षस-नायक कोलाहल से भरी, नगाड़े बजानेवाली सेनाओं को लेकर आ पहुँचे।

समृद्ध तथा शत्रुविनाशक सेना-रूपी विशाल समुद्र जब खर-रूपी गगनस्पर्शी मेरु को घेरकर चला और जब उस सेना के मध्य में रथारूढ होकर वह (खर) निकला, तब उस दृश्य को देखकर सब काँप उठे।

निर्झरों के सदृश मद-स्रावी हाथी, अश्व, स्वर्ण-कलशों से भूषित रथ, राक्षस—इन (चतुर्विध) सेनाओं के अभियान से जो धूलि आकाश में व्याप्त हुई, उससे सूर्य का स्वर्ण-रथ और हरित अश्व भी श्वेत वर्ण हो गये।

क्रोध-भरी, विशाल समुद्र के समान फैली हुई सेना के चलने से जो धूलि-समुदाय उठा, उससे सब कानन धूलिमय हो गये। पर्वतों पर एवं गगन में स्थित बादल भी धूसर हो गये। समुद्र पट गये। अब और क्या कहा जाय !

हत्या करने में, विष के समान उग्र मनवाले राक्षस, भूमि पर एवं आकाश में रिक्त स्थान न रहने से पर्वतों के शिखरों को ऐसे लाँघते चले आये, जैसे उन पर्वतों पर दूसरे पर्वत चल रहे हों।

माया-बंधन के कारण उत्पन्न कर्म-परिणाम को मिटा देनेवाले, आसक्तिहीन महा-पुरुषों के लिए भी अवार्य, शरीर के साथ उत्पन्न होकर उनके प्राणों को यम के हाथ सौंपने-वाली व्याधि के समान वह राक्षसी (शूर्पणखा) आगे-आगे आ रही थी। वह राक्षस-वाहिनी उदार महाप्रभु (राम) के निकट आ पहुँची।

उनके वाद्यों की ध्वनि से आकाश के बादल भी काँप उठते थे। दीर्घ धनुषों के टंकार से वज्र भी भय-विकंपित हो उठते थे। कोलाहल से समुद्र भी डर से उपशान्त हो जाता था। यों वह राक्षस-सेना उस वन में स्थित दोनों वीरों के आवास पर आ पहुँची।

(उस वन के) पक्षी तथा मृग (उस सेना को देखकर) भय से व्याकुल हुए। उनके मुँह सूख गये। उनके शरीर शिथिल पड़ गये। वे उसास भरने लगे। उनकी आँखों पर अँधेरा छा गया। यों वे कहीं भी रुके बिना भागते चले आये और वे क्रूर राक्षसों की सेना के आगमन की सूचना देनेवाले गुप्तचरों के समान लगते थे।

उस वन के शरभ, सिंह आदि ऐसे डरकर भाग रहे थे कि धूलि-पुंज उड़कर सर्वत्र छा गये। उनके पैरों-तले दबकर वृक्ष और झाड़ चड़चड़ाहट के साथ टूट गये। उन मृगों को देखकर पुष्ट भुजाओंवाले राम-लक्ष्मण ने सोचा कि राक्षस-सेना उनपर चढ़ाई करने आ रही है।

विद्युत् के जैसे प्रकाशमान धनुषवाले, अतिदृढ कवचवाले, कटि में बँधे करवाल-वाले, स्वर्णमय किनारे से युक्त तूणीरधारी और क्रोधाग्नि से जलते मनवाले लक्ष्मण, स्वयं पहले युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर राम के निकट आये और यह कहकर खड़े हो गये कि आप यहीं रहें और मेरे युद्ध-कौशल को देखें। तब अपने अनुज को देखकर प्रभु कहने लगे—

हे वीर ! सन्मार्गगामी महातपस्वियों को मैंने पहले वचन दिया है कि मैं राक्षसों के प्राण हरूँगा, उसको अयथार्थ न करने के लिए इस राक्षस-दल को मैं ही मारूँगा। सहज सुवासित तथा पुष्पालंकृत कुंतलोंवाली देवी सीता की रक्षा करते हुए तुम यहीं रहो। मैं यही चाहता हूँ—यों (राम ने) कहा।

जिस सेना के आगमन से वृक्षों से भरे कानन में बड़ा मार्ग हो गया था, उस (सेना) को खर की सेना समझकर, कालवर्ण कमल-सदृश नेत्रवाले प्रभु ने अशिथिल बल-युक्त अपने कंधे पर बाणों से पूर्ण तूणीर बाँध लिया। कर में चाप धारण किया। सुदृढ कवच को भी पहन लिया और खड्ग भी (कटि में) बाँध लिया।

फिर, लक्ष्मण ने राम से प्रार्थना की—हे सिंह-सदृश बलशाली ! यदि युद्ध में अजेय स्वर्गलोकवासी और इस लोक के सब प्राणी भी अधिकाधिक संख्या में युद्ध करने आयें, तो भी उन सबकी आयु (मेरे हाथों) समाप्त हो जायगी। यह बात अब मुझे आप से कहने की आवश्यकता नहीं है न ? यह युद्ध मेरे लिए छोड़ दें और मेरी भुजाओं को सतानेवाले आलस्य को दूर कर दें।

लक्ष्मण ने यह कहा। किंतु, राम इससे सहमत नहीं हुए। तब लक्ष्मण, जो राम की उन्नत पर्वत-सदृश भुजाओं के बल को पहचानता था और अपने भाई की आज्ञा को टाल नहीं सकता था, अपने सुन्दर करों को जोड़कर सीता देवी के निकट उनकी रक्षा के लिए खड़ा हो गया, जो अपनी आँखों से अश्रुधारा को धरती पर गिराती हुई खड़ी थीं।

वह सीता, जो उस लता के सदृश थी, जिसमें ताटंकों से शोभित एक चन्द्रमा पुष्पित हुआ था, व्याकुल हो खड़ी रहीं और अनुपम धनुर्धारी मेरु-जैसे रामचन्द्र, मेघों के समान गर्जन करनेवाले, खड्ग-दंतोंवाले राक्षसों के सामने पर्णकुटीर से यों निकल आये, जैसे कोई सिंह पर्वत की कंदरा से निकल पड़ा हो।

गगन तक बढ़े हुए बाँसों की झुरमुट में उत्पन्न होकर उसको जला देनेवाली अग्नि के समान अपने कुल का सर्वनाश करनेवाली वह राक्षसी (शूर्पणखा), पर्णशाला से निकले हुए राम की ओर संकेत करके बोली कि हमारा शत्रु यही राम है।

स्वर्णमय रथ पर, गगन को छूते हुए खड़े रहनेवाले, पर्वत-सम कंधोंवाले उस विजयी खर नामक राक्षस ने, जिसको देखकर सहस्रकिरण भी भय से हट जाता था, (राम को) देखा और अपने सैनिकों से कहा—मैं अकेला ही इनसे युद्ध करके, इस मनुष्य के बल को मिटाकर विजय-माला धारण करूँगा।

यह मनुष्य तो अकेला ही है और यहाँ पर आई हुई बलवान् राक्षस-सेना इतनी विशाल है कि इसके लिए वन में स्थान ही नहीं है। जब संसार के लोग इस दशा पर 'अहो !' कहेंगे (अर्थात्, आश्चर्य प्रकट करेंगे) तब मेरी विजय क्या रह जायगी ? अतः, तुम सब लोग यहीं देखते हुए खड़े रहो। मैं अकेले ही (हमारे लिए) भोज्य मांस से विशिष्ट इस मनुष्य के प्राणों को पी जाऊँगा।

तब अकंपन नामक विवेकवान् राक्षस, यह वचन सुनकर उसके निकट आया और कहने लगा—हे स्वामी ! हे वीरों में महावीर ! मेरा एक निवेदन है। युद्ध में अत्यन्त उग्र होना उचित ही है। तो भी इस समय अनेक दुःशकुन हो रहे हैं।

हे वीर ! मेघ, गरजकर रक्त की वर्षा कर रहे हैं। सूर्य के चारों ओर परिवेष-मंडल पड़ा है। कौए लड़ते और रोते हुए आपकी ध्वजा से टकरा रहे हैं और धरती पर गिर रहे हैं। इन बातों पर ध्यान दीजिए।

खड्गों की धार पर मक्खियाँ भनभना रही हैं। सेना के वीरों की वाम भुजाएँ और वाम नेत्र फड़क रहे हैं। बलिष्ठ भुजाओंवाले सेनापतियों के अश्व ऊँघते हुए गिर पड़ते हैं। श्वानों के साथ शृगाल-दल भी मिलकर आये हैं और रो रहे हैं।

हथिनियाँ मद-जल बहा रही हैं। विशाल गंडवाले हाथियों के दाँत टूटकर गिर रहे हैं। धरती काँप रही है। उन्नत आकाश से विजलियाँ गिर रही हैं। दिशाएँ अकस्मात् जल उठती हैं। सबके शिरों की पुष्प-मालाओं से मांस की दुर्गंधि निकल रही है।

ऐसे लक्षणों के उत्पन्न होने के कारण, इसे अकेला मनुष्य कहकर इसकी उपेक्षा न कीजिए। मेरा कथन सत्य है। यदि हमसब एक साथ युद्ध करने लगें, तो भी इसे परास्त नहीं कर सकते। हे विजयमालाधारी ! मेरे वचनों को क्षमा कर दो। यों अकंपन ने कहा।

यह वचन सुनते ही खर हँस पड़ा, जिससे सारा संसार काँप गया। फिर, वह बोला—मेरा दृढ पराक्रम पत्थर का वह सिल है, जिसपर देवता पिस चुके हैं। युद्ध की कामना से फूली हुई मेरी भुजाएँ क्या एक क्षुद्र मनुष्य के आगे नीची होकर रहेंगी ?

खर के इस प्रकार कहते ही क्रोधभरी राक्षस सेना ने दशरथ पुत्र को ऐसे घेर लिया, जैसे घुँघराले केसरों से शोभायमान सिंह को क्रुद्ध गज-समूह ने घेर लिया हो। उस समय उनके भयंकर शस्त्र एक दूसरे से टकराकर वज्र-सी ध्वनि कर उठे।

यों उस सेना के घेरते ही राम के हाथ में स्थित धनुष के सिर झुक गये। उस समय जो युद्ध हुआ और उसका जो परिणाम हुआ, इसका वर्णन हम करेंगे। राम के वेगवान् बाणों की नोक से दौड़नेवाले अश्व छिद गये और धरती पर लोट गये। लाल बिंदियों से भरे मुखवाले हाथी ऐसे गिरे, जैसे वज्र से आहत पर्वत हों।

(राक्षसों के) त्रिशूल छिन्न हुए। अग्नि-ज्वाला उगलनेवाले फरसे टूट गये। करवाल टुकड़े-टुकड़े हो गये। गदाएँ चूर-चूर हुईं। भिंदिपाल मिट गये। बाण विनष्ट हुए। शरीर को चीर देनेवाले भयंकर भाले तहस-नहस हुए। धनुष एवं बरछे भी चूर-चूर हो उड़ गये।

वीर-कंकण टूटे। हाथों के साथ तोमर भी टूटे। गजों के पैर टूटे। धुरियों के साथ रथ और उनपर की ध्वजाएँ टूटीं। अश्व टूटे, (शरभ आदि) जन्तुओं के दलों के शिर टूटे। मूसल जड़ से टूट गये।

रामचंद्र के बाण, जीनवाले अश्वों तथा काले वर्णवाले मदजल-स्रावी, दीर्घ सूँड़वाले, पर्वत-समान हाथियों को भेदकर पार कर जाते थे और सब दिशाओं में छितरा जाते थे। निरंतर बरसनेवाली वर्षा के जल के समान रक्त, धरती पर फैल गया। राक्षसों के शोभाहीन वक्ष खुल गये। उनके शिर कटकर (धड़ से) पृथक् हो गये।

राघव ने एक, दस, सौ, सहस्र, कोटि—यों गणना के लिए दुसाध्य कठोर शरों के सिलसिले को जारी रखा। उन बाणों ने राक्षसों को मारकर पर्वत-शिखरों एवं अनेक पर्वतों के समुदाय के समान शव-राशियों की पंक्तियाँ लगा दीं।

तड़पते हुए कवंधों की राशियाँ, बहती हुई रक्त-धारा के साथ, ऐसा दृश्य उपस्थित करती थीं, जैसे अरण्य के घने वृक्षों की शाखाएँ दावाग्नि में जल रही हों, गगन में उड़नेवाले राम-बाण ऐसे लगते थे, जैसे मृत (राक्षसों) के प्राणों का भी पीछा करते हुए जा रहे हों।

युवतियों के दीर्घ नयनों के समान ही राम के बाण, करवालों के साथ ही राक्षसों के करों के गिरने पर, उनके कंठों के कट जाने पर, कवच से आवृत देहों के छिद जाने पर, उनके शिरों को भी भीषण रूप में छितराते हुए जलकर दिगंतों को भी पारकर जाते थे।

वर्षा के सदृश राम-बाण, पर्वत-समान राक्षसों के विशाल शरीर-रूपी तटों के मध्य तालाब बना रहे थे, नदियाँ बना रहे थे, रण में रक्त-प्रवाह को भर रहे थे और यों उस स्थान में वन के दृश्य को मिटा रहे थे (अर्थात्, वहाँ के वन को रक्तमय जलाशयों में परिवर्तित कर रहे थे)।

उस समय, विशाल रक्त-समुद्र तरंगायमान हो उठे। राक्षसों के शिर उस (समुद्र) में उतराने लगे। उनकी दीर्घ मांस-पेशियां उतराने लगीं। दीर्घ सूँड़वाले पर्वत-जैसे हाथी उतराने लगे। झपटकर चलनेवाले घोड़े उतराने लगे। ध्वजाओं के साथ रथ भी उतराने लगे।

उस समय, अनेक बलवान् राक्षस, ज्वाला उगलनेवाली दृष्टि से देखकर, गरजकर, किसी विशाल अचल पर्वत को घेरकर, बरसनेवाले मेघ-जैसे, तीक्ष्ण बाण आदि उग्र शस्त्रों को (राम पर) बरसाने लगे।

राम ने अपने बाणों से बरसनेवाले शस्त्रों के टुकड़े-टुकड़े कर दिये, अनेक शस्त्रों को विभिन्न दिशाओं में छितरा दिये और बिखरे रक्त-केशोंवाले काले राक्षसों के शिरों को काट-काटकर यों गिरा दिया, जिससे भूमि (उन शिरों के भार से) अपनी पीठ को झुकाने लगी और वन (उन शिरों से) भर गया।

उस समय कवंध नाच उठे, हाथी लाल शोणित की धाराओं में गोते लगाने लगे, भयंकर भूत, वैर-भरे क्रोधवाले एवं क्रूर कार्य करनेवाले राक्षसों की चरबी को भर पेट खाकर आनन्द मनाने लगे, (मृत हो स्वर्ग में आये हुए वीर) प्राणियों के भार से देवलोक की भी देह झुक गई।

मायावी, दर्प तथा कपट से भरे, वक्र दंतोंवाले राक्षसों की उन आँखों की पुतलियों को, जिनको देखकर गरुड भी भयभीत हो जाता था, अब काक निकाल-निकालकर खाने लगे। अंधकार के समान वंचकों के मध्य विनाश अनायास ही पहुँच जाता है; क्योंकि कृपामय धर्म को छोड़कर अन्य कौन-सी वस्तु बलवान् हो सकती है?

तब (अनेक राक्षसों के) घने अंधकार को मिटाकर प्रकाशित होनेवाले सूर्य के जैसे धनुर्धारी (राम) को क्रोधी राक्षसों ने चमकते बरछे-जैसे अपने नेत्रों से देखा और काली तथा विशाल घनघटा-जैसे युगान्त में पत्थरों की वर्षा करे, वैसे ही सर्व प्रकार के शस्त्रों को उन (राम) पर बरसाकर युद्ध किया।

धनुर्धारी (राम) ने झुंड बाँधकर आये राक्षसों को, पृथक्-पृथक् आकर सामना करनेवाले (राक्षसों) को, अत्यंत क्रोध से झपटनेवाले (राक्षसों) को, पहले पराजित हो

भागकर दुबारा युद्ध करने के लिए आनेवाले (राक्षसों) को, अपने तीक्ष्ण बाणों से इस प्रकार काटकर गिरा दिया कि यह विदित नहीं होता था कि किसने भाला फेंका, किसने तीर छोड़ा, किसने प्रयुक्त करने के लिए शस्त्र उठाया, किसने कौशल से कार्य किया या किसने नहीं किया।

काकुत्स्थ (राम) ने बाणों से जो शिर काटे, उनमें से कुछ मेघ-मंडल में जा पहुँचे, कुछ समुद्र के किनारे के प्रदेशों में जा गिरे, कुछ चंद्र को घेरे हुए नक्षत्रों में जा पहुँचे, कुछ उज्ज्वल कुंडल-भूषित मिथुन नामक राशि में जा पहुँचे, कुछ भीषण अरण्यों में जा गिरे, कुछ पर्वतों पर जा गिरे और कुछ दिशाओं की सीमाओं पर स्थित दिग्गजों के निकट जा गिरे।

वे (राम के) बाण, जो राक्षसों के, मेरु का भी उपहास करनेवाले, अतिदृढ वक्षों को भेदकर आर-पार हो जाते थे और क्षतों से बहनेवाली रक्त-रूपी ऊँची तरङ्गों से पूर्ण नदियों को उमड़ा देते थे, कुछ मेघों पर जा लगते थे, कुछ चंद्र से युक्त गगन में जा लगते थे और कुछ समुद्रों के बाहर एवं भीतर जा लगते थे।

सुन्दर मालाधारी एवं अग्नि-ज्वालाओं को उगलती आँखोंवाले सब राक्षस, सुदृढ तथा तीक्ष्ण शस्त्रों को प्रयुक्त करके, (राम के) शर से आहत होकर अपने राक्षस-शरीर को समुद्र में छोड़ देते थे और अविनश्वर (देव) शरीर को पाकर देवों के साथ मिल जाते थे और यह कहकर कि राक्षस लोग मिट गये, आनन्द-ध्वनि करने लगते थे।

वहाँ विशाल तरंगों से भरे अनेक ऐसे रक्त-समुद्र उत्पन्न हो गये, जिनमें (राक्षसों के) यकृत्-रूपी कमल थे, रथ-रूपी पुलिन थे, बलवान् गज-रूपी मगरों के झुंड तैर रहे थे, भारी आँत-रूपी घने तथा हरे कमल-पत्र ऊपर की ओर फैले थे और जिनमें भूत स्नान करते थे।

प्राणहारी अग्रभागों से युक्त (रामचन्द्र के बाण-रूपी) बौछार के गिरने से कुछ (राक्षस) हाय-हाय कर उठे, कुछ मूर्च्छित हो गिर पड़े, कुछ मिट गये, कुछ उसास भरने लगे, कुछ लोट गये, कुछ लुढ़क गये, कुछ कीचड़-भरे एवं गहरी लहरों से युक्त रक्त-समुद्र में डूब गये, कुछ धरती पर पड़े रहे, कुछ टुकड़े-टुकड़े हो रहे।

तब विष के समान क्रूर चौदहों सेनापति ऐसे उठ आये, जिससे विशाल क्षीर-समुद्र को मथनेवाले (देव तथा असुर) भी भयभीत हो उठे। वे (सेनापति) निहत होकर गिरे हुए राक्षसों का उपहास करने लगे। दृढ पहियोंवाले रथों पर आरूढ होकर बरछे और करवाल लिये हुए तथा धनुष धारण करके अपार समुद्र-जैसी सेना-वाहिनी को लेकर एक साथ आ पहुँचे।

पूर्व समय में एक बार पर्वत को धनुष बनाकर आये हुए शिव को त्रिपुरासुरों ने जिस प्रकार घेर लिया था, उसी प्रकार प्रभु (राम) का आदर न करनेवाले वे राक्षस, मन की क्रोधाग्नि को आँखों से निकालते हुए आये और कालमेघ-सदृश धनुर्वीर (रामचंद्र) को घेरकर युद्ध करने लगे।

चन्द्रकला-समान खड्गदंतोंवाले राक्षसों में से कुछ ने बाण का प्रयोग किया, कुछ ने वक्र दंडों का प्रयोग किया। कुछ ने अनेक शस्त्रों से प्रहार किया। कुछ ने निन्दा-

वचन कहे। कुछ ने धमकियाँ दी। यों सबने पर्वतों के जैसे आकर (राम को) घेर लिया।

(रामचन्द्र के) धनुष पर चढ़कर निकले हुए बाणों से (उन राक्षसों के) रथों में जुते घोड़े सब धराशायी हो गये। सब मत्तगज बलि चढ़ गये। मंजीर-भूषित घोड़ों के सिर उनकी धड़ों से अलग हो गये। जिस प्रकार उष्णकिरण (सूर्य) को घेरनेवाला परिवेष-मंडल शीघ्र ही मिट जाता है, उसी प्रकार बचे-खुचे राक्षसों के पैर उखड़ गये और वे काँपते हुए भाग खड़े हुए।

मूर्च्छित हुए क्रूर राक्षसों के शरीरों में जहाँ-जहाँ शरों की बौछार लगने से छेद हो गये थे, वहाँ-वहाँ से रक्त के प्रवाह उमड़कर वह चले और उज्ज्वल धरती को आवृत करने लगे। विस्तृत गगन में स्थित देवताओं ने अपनी आँखों को (करों से) ढक लिया। यम के दूत, अतिवेग से आनेवाली हवा के समान आकर (उन राक्षसों के) प्राण हरने लगे।

भूतों के अधिक संख्या में आने का कारण बननेवाले उस घोर युद्ध के उन्माद से भरे उन (राक्षसों) के कंदराओं-जैसे मुँहों में श्वान आ घुसे। उनके शिरों पर शृगाल आ चढ़े। अग्नि के जैसे, बलिष्ठ सिंहों के जैसे और मेघ में उत्पन्न होनेवाले वज्र के जैसे जो राक्षस घेरकर आये थे, वे (राम के) अग्नि उगलनेवाले तीक्ष्ण मुखों से युक्त बाणों की सहायता से स्वर्ग में चढ़ गये।

उन (राक्षसों) के शिर बिखर गये। अग्निकण बिखेरनेवाली आँखें बिखर गईं। धरती पर पहाड़ों के समान हाथी बिखर गये। (राम के) मेघ-सदृश धनुष से विच्छिन्न बाण सब दिशाओं में बिखर गये और चिनगारियाँ बिखेरनेवाले पृथ्वी-जैसे राक्षसों के शरीरों से प्राण बिखर गये।

वे चौदह बड़े सेनापति, उनके रथ एवं उनके बड़े शस्त्र—इनके अतिरिक्त, बड़े कोप के साथ (राम के) सम्मुख आये हुए सब राक्षस उन वीर के बाणों से निहत होकर दुर्गंध-भरे भीषण रक्त- प्रवाह में डूब गये।

उन चौदहों सेनापतियों ने चारों ओर देखा। किंतु, अपने साथ आई सेना में एक भी ऐसे सैनिक को नहीं देखा, जिसका सिर उसकी धड़ से अलग न हुआ हो। इससे अत्यन्त क्रुद्ध होकर उन्होंने दाँतों को पीसते हुए अपने रथों को बड़े वेग के साथ चलाते हुए रामचन्द्र को घेर लिया।

तब राम ने एक क्षण में अपने बाणों से उनके चौदहों रथों को विध्वस्त कर दिया। तब वे विध्वस्त रथ, चक्र, घोड़े, सारथि, सब प्रलय-काल में प्रभंजन से फेंके गये पर्वतों के जैसे फैल गये।

उनके रथ जब नष्ट हो गये, तब वे चौदहों सेनापति पृथ्वी पर ऐसे कूद पड़े कि धरती धँसने लगी। वे अपने हाथों में दृढ धनुषों को लेकर, अपनी आँखों से सबको भस्म कर देनेवाली अग्नि-ज्वालाएँ उगलते हुए वज्र-जैसे शरों को लगातार बरसाने लगे।

राम ने अपने तीक्ष्ण बाणों से उनके विध्वंसकारी शरों को चूर-चूर कर दिया। उनके चौदहों धनुषों को तोड़कर उनकी युद्ध की उग्रता को शान्त कर दिया।

तब वे सब सेनापति धनुषों के खो जाने से अत्यन्त क्रुद्ध होकर, बड़ी शिलाओं को लेकर, आकाश में उड़ गये और सूर्य की कांति के समान ज्वाला उगलनेवाली शिलाओं को (राम पर) बरसाने लगे।

शास्त्र-रूपी समुद्र को पार करनेवाले ज्ञानवान् प्रभु ने, प्राणहारी धनुष के साथ अपनी भौंहों को भी झुकाकर उनपर पत्राकार चौदह भयंकर बाण छोड़े, जिससे वे पर्वत-खंड एवं उन सेनापतियों के शिर पृथ्वी पर आ गिरे।

इस प्रकार वे चौदहों सेनापति मरकर गिर पड़े। तब अन्य एक राक्षस-सेना, अनेक शस्त्रों को उछालती हुई तथा अपनी आँखों से अग्नि उगलती हुई रामचन्द्र के सम्मुख आ गई और पृथ्वी पर, गगन में एवं सब दिशाओं में फैल गई। यह देखकर देवता काँप उठे।

तब बड़े नगाड़े गर्जन कर उठे। बड़े हाथी गर्जन कर उठे। दृढ धनुषों की डोरियाँ गर्जन कर उठीं। शंखों के साथ अश्व भी गर्जन कर उठे। मेघ-गर्जन के समान राक्षसों की गर्जन-ध्वनि भी होने लगी।

राक्षसों के द्वारा फेंके गये, गगन-मार्ग से आनेवाले शस्त्र, वीर (राम) के बाणों से कटकर कहीं अपने ऊपर न आ गिरें, यह सोचकर देवता लोग भाग जाते थे। समस्त लोक काँप रहे थे। निष्कंप रहनेवाले दिग्गज भी आँखें बंद कर लेते थे।

उस उत्तम सेना का सेनापति तीन शिरोंवाला (त्रिशिर नामक) राक्षस था। जो अपार बल-संपन्न था स्वर्ण-मुकुटधारी था, अपने धनुष से तीक्ष्ण नोंकवाले बाणों की वर्षा करनेवाला था और त्रिनेत्र के हाथ में रहनेवाले त्रिशूल के जैसा आकारवाला था।

उस राक्षस-वीर के साथ, प्रलयकालिक महासमुद्र के समान सब दिशाओं से उमड़कर आई हुई उस राक्षस-सेना के बीच में धनुष को लिये, अपनी समता स्वयं करनेवाले वीर (रामचन्द्र) ऐसे लगते थे, जैसे घने अंधकार के मध्य दीप हो।

उज्ज्वल करवालधारी, वज्र-सदृश घोषवाले, भारी कवच से आवृत, तथा क्रूर नेत्र-वाले उस राक्षस (त्रिशिरा) की सेना पर राम अपनी शरवाहिनी चलाते हुए खड़े रहे।

तब उन राक्षसों के पैर, भुजाएँ, करवाल, परसे, उनकी कटि और उनके छत्र— सब-के-सब कटकर गिर गये।

जब ध्वजाएँ और कठोर क्रोधवाले अश्वों की पंक्तियाँ विध्वस्त हो गइ, तब बड़े-बड़े रथ धरती पर गिर गये और भारी तथा बलिष्ठ मत्तगज वज्रपात से टूटकर गिरनेवाले पर्वत-शिखरों के समान लुढ़क गये।

शिर कट जाने पर कुछ राक्षस यह न समझते हुए कि उनके शिर कट गये हैं, अपने विजयी धनुष से शर छोड़ते ही रहे। जिनके शिर अभी कटे नहीं थे, वे गगन में छाये मेघों के समान अपने शस्त्र चला रहे थे।

ढाल लिये हुए विशाल हाथों, पर्वत-समान भीम आकारवाले तथा स्वर्णमय कवच धारण करनेवाले महावीरों के शिरोहीन धड़ तड़पते, उछलते हुए ऐसे नाच उठे कि नूपुरों से भूषित अप्सराएँ भी वह नाच देखकर मुग्ध हो गईं।

चामर एवं श्वेतच्छत्र-रूपी फेनवाले, गज-रूपी ऊँची पीठवाले, डूबते-उतराते मीनों से युक्त भँवरवाले तथा शीतल घाटों में विविध रत्न-समुदाय को लाकर छितरानेवाली जीन, हौदा आदि नौकाओंवाले रक्त के प्रवाह में जा मिलते थे और उसे नया रूप (अर्थात्, रक्तवर्ण) दे देते थे।

दृढ वक्र दंतोंवाले कुछ राक्षस (राम के) अति तीक्ष्ण बाणों से मृत होकर देवता बन गये और भ्रमरों को आकृष्ट करनेवाली पुष्पमालाओं से शोभित केशोंवाली अप्सराओं के साथ रहकर अपने ही कबंधों का नाच देखने लगे।

कुछ राक्षस देवों के संघ में मिल गये और उत्तम कंकणों से भूषित अप्सराओं के साथ रहकर यह देख रहे थे कि उनकी ही मृत देह की छिन्न भुजाओं को किस प्रकार एक ओर से भूत पकड़कर खाने लगते हैं और दूसरी ओर श्वान उन्हीं टुकड़ों को पकड़कर खींच रहे हैं। यह देख-देखकर वे हँस पड़ते थे।

कुछ राक्षस, जिनके वक्ष, चुनकर प्रयुक्त किये गये रामचंद्र के बाणों के लगने से छिद गये थे और जो (राक्षस) कर्म-बंधन से मुक्त होकर देवता बन गये थे, यह सोचकर मन में भय करने लगे कि अहो! राक्षसों की सेना विशाल है और राम तो एकाकी हैं, अब क्या होगा?

शुंडधारी गज-सदृश वीर (राम) के वे बाण, जो कंटकों (राक्षसों) के शरीरों को छिन्न-भिन्न कर रहे थे, नीच तथा काले मनवाले, झूठी गवाही देनेवाले व्यक्ति के वचनों के जैसे थे।

जिस प्रकार मनोहर पंखवाला भ्रमर अपनी शरण में पड़े हुए कीड़ों को अपने रूप में परिवर्त्तित कर देता है, उसी प्रकार उदार प्रभु ने मायावी राक्षसों को घेरकर अपने उत्तम शरों के पवित्र प्रभाव से देवों में परिवर्त्तित कर दिया।

वहाँ की रक्त की नदियाँ, मानों यह विचार कर कि एक बलवान् मनुष्य ने अनेक राक्षसों को मार दिया है, यह समाचार विजय-माला से भूषित रावण को देना चाहिए—क्रोधी राक्षसों के शवों को बहाती हुई (समुद्र में गिरकर) लंका में जा पहुँची।

चारों ओर जुटी हुई राक्षस-सेना को (राम के) बाणों ने सर्वत्र छिन्न-भिन्न करके उनके प्राणों को पी लिया, जिससे वह (सेना) धरती पर लोट गई, यह देखकर त्रिशिर ने क्रुद्ध होकर भी विलंब किये बिना, रक्त-प्रवाह में निमग्न अपने रथ को गगन-मार्ग से चलाता हुआ गर्जन किया।

स्थिर रथवाले उस राक्षस ने, सबके लिए दृढ सत्य का साक्षी बनकर रहनेवाले, उस धर्म-स्वरूप चक्रवर्त्ती के कुमार (राम) के शरीर को, गगन की वर्षा की तरह अपने तीक्ष्ण बाणों की वर्षा से ढक दिया।

राम ने, (राक्षस के द्वारा) बरसाये गये उन सब बाणों को अपने बाणों से छिन्न-भिन्न कर दिया। फिर, चौदह बाणों से (उस राक्षस के) उज्ज्वल स्वर्णमय रथ को ध्वस्त कर दिया और उसके सारथी को भी निहत कर दिया।

इतना ही नहीं, उसी क्षण, देवों के कोलाहल-ध्वनि करते समय, (राम ने)

स्वर्ण के जैसे चमकते हुए तीक्ष्ण फलवाले अनुपम बाणों से क्रूर कार्य करनेवाले उस राक्षस के मुकुटधारी (तीन) शिरों में से, एक को छोड़कर, दो को काट गिराया।

तब वह राक्षस रथ-हीन हो गया और उसका त्रिशिर नाम भी निरर्थक हो गया। तो भी उसकी क्रूरता नहीं मिटी। जैसे गगन से काला मेघ उतरा हो, त्योंही उसने अपने वक्र धनुष से बाण-पुंज (राम पर) उतारे।

त्रिशिर, ललाट पर भौंहों को चढ़ाकर, प्रलय-काल की वर्षा की तरह शरों की घनी वर्षा करनेवाले धनुष को लेकर युद्ध करने लगा। तब जिस प्रकार प्रभंजन मेघ को बिखरा देता है, उसी प्रकार राम ने अपने अवार्य बाणों से उस (राक्षस) का धनुष काट दिया।

यद्यपि उस (राक्षस) ने अपना धनुष खो दिया, तथापि घूरनेवाले उसके चमकते मुख का प्रकाश कम नहीं हुआ। उसकी मेघ-गर्जन की-सी ध्वनि भी मंद नहीं पड़ी। उसका भुजबल मंद नहीं पड़ा। उसके द्वारा राम पर बरसाये जानेवाले पत्थर भी कम नहीं हुए और चाक के जैसे उसका परिभ्रमण भी मंद नहीं पड़ा।

गगन में स्वयं एकाकी रहकर भी उसने ऐसा माया-युद्ध किया, जैसे दो सौ व्यक्ति मिलकर युद्ध कर रहे हों। तब उसके दोनों पैरों को राम ने दो तीक्ष्ण बाणों से काट दिया और दो बाणों से उसकी भुजाओं को भी काट दिया।

भुजाओं और पैरों से हीन होकर वह (राक्षस) तीक्ष्ण दाँतों को बाहर किये, पर्वत-कंदरा समान एवं मांस-दुर्गंध से युक्त अपने मुख को खोले हुए, रामचन्द्र पर गिरकर उन्हें निगलने को आया। उसे देखकर राम ने किंचित् भी दया किये बिना, अपने दीर्घ विजयशील धनुष से एक बाण प्रयुक्त कर उसके एक शिर को भी काट दिया।

त्रिशिर पर्वत-शिखर की भाँति ज्यों ही भूमि पर गिरा, त्योंही, सूर्य के जैसे चमकते हुए करवाल धारण किये, अपने विशाल हाथों में ढालों को लिये हुए, बाकी बचे हुए राक्षस, दूषण नामक सेनापति के मना करने पर भी वहाँ रुके नहीं, किंतु भाग खड़े हुए। उनके दीर्घ पैर, विशाल रक्त प्रवाहों में आँतों के मध्य उलझ जाते थे।

यह दृश्य देखकर, आकाश में झुंड बाँधकर स्थित देवता ताली बजाकर कोलाहल कर उठे। कुछ राक्षस, आदिशेष के फन पर स्थित धरती को दबाते हुए भाग चले और वहाँ फैली हुई चरबी में फिसलकर उसमें डूब गये। कुछ राक्षस अपने सुरक्षित प्राणों के साथ भागे और शव के ढेरों से टकराकर लुढ़क गये।

कुछ राक्षस, भागते हुए, धरती पर पड़े बरछे और करवाल की धारों से उनके पैर कट जाने से ढीले हो पड़े। कुछ, मृत राक्षसों के रक्त-प्रवाह में पैर फिसल जाने से डूब गये। कुछ, भय के मारे रक्त-धाराओं में कूदकर तैरने लगे, किंतु वे कहीं स्थिर खड़े नहीं रह सके।

कुछ ऐसे भाग रहे थे कि उनके कटि के वस्त्र और खड्ग खिसककर गिर जाते थे और उनके पैरों से उलझकर उन्हें काटने लगते थे, तो भी वे उसपर ध्यान न देते थे। वे भय की मूर्त्ति-से बने हुए व्याकुलचित्त होकर जहाँ-जहाँ शवों के वक्ष पर लगे हुए उत्तम वीर (राम) के बाणों को देखते थे, वहाँ-वहाँ से बेतहाशा दौड़कर भाग निकलते थे।

अतिवेग से भागनेवाले कुछ राक्षस, बड़े हाथियों के पेट में पड़े क्षतों के द्वार-रूपी कंदराओं में अपने खड्ग-सहित घुस जाते थे और पास खड़े कबंध को देखकर यह कहकर सिर पर अपने हाथ जोड़ लेते थे कि—हे मेरे साथी, तुम यही कहना कि तुमने हमको नहीं देखा है।

इस प्रकार भागनेवाले राक्षसों को देखकर, अति वेगवान् अश्वों से जुते रथ पर आरूढ दूषण ने कहा—हमारे पराक्रम के योग्य युद्ध-कौशल से हीन इस मनुष्य को देखकर मत डरो। मैं जानता हूँ कि डर का कोई कारण नहीं है। मैं कुछ कहना चाहता हूँ, उसे सुनो।

जो लोग अपयश देनेवाले भय को मन में रखकर जीते हैं, उनसे सुन्दर कंगन पहननेवाली स्त्रियाँ भी नहीं डरती हैं। धैर्य-रूपी कवच ही वास्तव में रक्षा कर सकता है। भय प्राणों की रक्षा कभी नहीं कर सकता।

पूर्वकाल में, तीक्ष्ण भाले को धारण करनेवाले इन्द्र तथा अविनाशी त्रिदेवों के साथ हुए युद्ध में कौन राक्षस डरकर भागा था? कदाचित् तुम लोगों ने, तुमसे डरकर भागनेवाले देवों से अब यह (डरकर भागना) सीख लिया है, इसीलिए अब यों भ्रांत हो रहे हो।

तुम इतने बड़े वीर हो। फिर भी एक मनुष्य से हारकर, अपने हाथ में शस्त्र रखे, नगर में जाकर छिपने के लिए भाग रहे हो। तुम अपनी मदमाते नयनोंवाली पत्नियों के वक्ष से वक्ष मिलाकर आलिंगन का सुख भोगने जा रहे हो?

हे वीरो! (क्रोध से) ताम्रवर्ण रहनेवाली तुम्हारी आँखें अब दूध के समान श्वेत पड़ गई हैं। अहो! क्या तुम लोग अपनी स्त्रियों को, घने वन में भागते समय वृक्ष की शाखाओं के टकराने से अपनी पीठ पर लगे क्षतों को दिखाओगे, या अपने वक्ष पर लगे शरों के क्षत को दिखानेवाले हो।

'इस हमारे शत्रु, मनुष्य का युद्ध-पराक्रम उन देवों के लिए भी दुष्प्राप्य है'—(शत्रु की) ऐसी प्रशंसा का कारण बनकर, इस प्रकार पीठ दिखाकर तुम्हारा भागना—अजेय भुजबल से युक्त, तुम्हारे कुल के नायक (रावण) की बहन (शूर्पणखा) की नाक कटने की बात छोड़ भी दो, तो भी यह हमारे अपयश का कारण बन रहा है। अब इससे बढ़कर दयनीय दशा और क्या हो सकती है?

अद्भुत शस्त्र-प्रयोग में निपुण, धीरता-पूर्ण युद्ध-कार्य से जीविका-निर्वाह करनेवाले, शत्रुओं से छीनकर लिये गये करवालों को धारण करनेवाले, हे राक्षसो! अब क्या तुम लोग मोती आदि को बेचकर वणिक्-वृत्ति करनेवाले हो? या तीक्ष्ण बरछे, करवाल आदि से पृथ्वी को जीतकर कृषक-वृत्ति करनेवाले हो? बताओ तो सही।

यों कहकर उसने आगे कहा—तुम लोग कुछ समय तक खड़े रहकर मेरे दीर्घ धनुष का प्रभाव देखो। फिर, वह (दूषण) स्वयं अपनी तरंगायमान समुद्र-सदृश सेना को लेकर (राम के) सम्मुख जाकर आक्रमण करने लगा। वह दृश्य देखकर देवता लोग भी मूर्च्छित हो गये। तब राम ने भी उससे यह कहकर कि—'अपने को भली भाँति बचाओ'—आगे पग बढ़ा दिया।

तब (राम के बाणों से सैनिकों के) हाथ खड्गों-सहित कटकर गिर गये। हाथियों के ऊँचे बढ़े हुए दंत कटकर गिर गये। पवन-गति से जानेवाले रथ, ध्वजाओं-सहित, कटकर गिर गये। घोड़ों के शिर ऐसे कटकर गिरे, जैसे लाल धान की बालियाँ कटकर गिर रही हों।

(राम के द्वारा) प्रयुक्त शरों में से कुछ (राक्षसों के) मर्म-स्थानों को खोजते हुए चले। कुछ उनके कवच और वस्त्रों को उड़ाकर चले और कुछ शर उनके ढालों और शरीर को भी ऐसे भेद कर चले कि उनके शरीर से रक्त की नदियाँ, पर्वत-निर्झरों के जैसे, बह चलीं।

चुनकर प्रयोग किये गये कुछ कंकपत्र (बाण), शरीरों में प्रविष्ट होकर राक्षसों के मर्म-स्थानों में घुस गये। अर्धचन्द्राकार बाण, उनके मर्म-स्थानों में न घुसकर उनके शिरों को काटकर उड़ गये। कुछ अति तीक्ष्ण शर उनके कवचावृत वक्षों को भेदकर गये, और 'भल्ल' (नामक कुछ शर) मायावी राक्षसों के हृदय को भी छेदकर चले गये।

युद्ध की लीला रचनेवाले (श्रीराम) ने, दूषण के द्वारा प्रयुक्त सब बाणों को काटकर, उसके निकट स्थित राक्षसों के द्वारा प्रयुक्त अन्य शस्त्रों को भी ध्वस्त कर, अपरिमेय बल से युक्त उस राक्षस-सेना रूपी शब्दायमान समुद्र को कुछ क्षणों में ही सुखा दिया।

तब देवता लोग आनन्द-ध्वनि कर उठे। रक्त की बड़ी-बड़ी नदियाँ बड़े पर्वतों एवं वृक्षों को बहा ले चलीं। रामचन्द्र के द्वारा प्रयुक्त उग्र बाण दिग्दिगंतों में भी जाकर, उन दिशाओं को आवृत कर रहनेवाले क्रूर राक्षसों को आहत कर धरती पर लिटा दिया।

युद्ध करने की इच्छा से जो राक्षस रण-क्षेत्र में खड़े रहे, वे सब मर मिटे। यम, उन (राक्षसों) के शरीरों से निकलनेवाले प्राणों को ढोते-ढोते बहुत थक गया। अब उन भूतों के बारे में क्या कहा जाय, जो उन (राक्षसों) की चरबी को पेट-भर खाकर ऊँचे पर्वतों के जैसे लगते थे?

उस समय, दूषण अत्यन्त क्रुद्ध होकर, हाथियों, रथों, अश्वों, क्रोधी राक्षसों के मुकुट-भूषित शिरों, कबंधों, उज्ज्वल शस्त्रों से सुसज्जित शरीरों, उनकी श्वेतरंग की चरबी—इन सबके ढेरों के ऊपर से होकर कोलाहल-पूर्ण रथ को शीघ्र चलाता हुआ आया।

धर्महीन (राक्षसों) के शरीरों के ढेर की कोई संख्या नहीं थी। अतः, वह दूषण, यद्यपि चरखी के जैसा वेगवान् था, तथापि उसका रथ उन शव-राशियों पर चढ़ता-उतरता हुआ बड़ी कठिनाई से आगे बढ़ा। उस कठिनाई के बारे में हम क्या कहें?

सुसज्जित केसरोंवाले पचीस अश्व जुते तथा लुढ़कते चक्रोंवाले एक विलक्षण रथ पर वह (दूषण) आरूढ था। भूमि के अंधकार को मिटानेवाले चन्द्र के सदृश स्थित रामचन्द्र के उज्ज्वल शर-रूपी यम के सम्मुख मानों स्वयं उसके प्राण आ पड़े हों, ऐसी शीघ्रता से वह आया।

उस रथ को तथा उसपर धनुष को हाथ में लिये हुए पर्वत के जैसे खड़े दूषण को, देखकर अकलंक रामचन्द्र ने अपनी कृपा के कारण किंचित् उसकी प्रशंसा करते हुए कहा—'तुम्हारा साहस भी धन्य है।' उस समय उस क्रूर राक्षस ने तीन बाण प्रयुक्त किये।

अतिदीर्घ तथा वर्तुलाकार अष्ट दिशाओं तथा पृथक्-पृथक् उनका भार वहन करनेवाले अष्ट दिग्गजों को ढोते रहनेवाले दो में से एक (पादुका)[1] को, जिन (राम) ने (अयोध्या को) लौटा दिया था, उनके ललाट पर गज के मुख पर बँधे मुखपट्ट के समान पट्ट पर वे तीनों शर जा लगे, जिस दृश्य को देखकर सभी देवता भयभीत हो गये।

राम ने सोचा कि (दूषण के द्वारा) शर-प्रयोग की गति एवं उसका बल भी प्रशंसनीय है। फिर, मनोहर कांतिमय मंदहास से युक्त होकर तीक्ष्ण बाण चुन-चुनकर त्वरित गति से प्रयुक्त किये और उस (दूषण) के शीघ्रगामी अश्वों से युक्त रथ को विध्वस्त कर दिया। उसके धनुष को छिन्न कर दिया और उज्ज्वल कवच को भी नष्ट कर दिया।

तब देवता हर्ष-ध्वनि कर उठे। सभी दिशाओं से ऋषियों की आशीर्वाद-ध्वनि समुद्र-गर्जन के समान शब्दायमान हो उठी। फिर, राम ने यह कहकर कि—'यदि तुम वीर हो तो इससे अपने को बचा लो', एक बाण प्रयुक्त किया। उससे उस (दूषण) का खड्ग-दंतयुक्त बड़ा शिर कटकर गिर गया।

मुख पर दंतों से शोभायमान दिग्गजों की समता करनेवाला, अति-तीक्ष्ण तथा विविध प्रकार के शस्त्रों को धारण करनेवाला खर, यह जानकर कि दशरथ-पुत्र के बाणों ने राक्षस-सेना का विनाश कर दिया, अत्यन्त क्रुद्ध हुआ।

वह खर, राक्षसों के साथ हाथियों, अश्वों और रथों को सब दिशाओं में फैलाता हुआ यों चल पड़ा कि उसे देखकर यम भी भयभीत हो गया। उसकी सेना ने चन्द्र को आवृत करनेवाले मेघों के समान आकर दृढ धनुष को हाथ में धारण किये हुए मत्तगज (सदृश राम) को घेर लिया।

अदम्य क्रूर कृत्यवाले राक्षस, मदजल बहानेवाले बड़े-बड़े हाथियों को, रथों को और अश्वों को अत्यधिक संख्या में धरती पर ले आये, जिससे धरती को वहन करनेवाले आदिशेष का फण भी फटने लगा। फिर, वे भयंकर युद्ध करने लगे। महिमामय राम ने भी अति तीक्ष्ण बाणों को प्रयुक्त किया।

(रामचन्द्र के शरों से) मत्तगज तड़पकर गिरे। रथों में जुते अश्व तड़पकर गिरे। अंगद-भूषित भुजाएँ तड़पकर गिरीं। आँतें तड़पकर गिरीं। मांस से लगे चर्म के टुकड़े तड़पकर गिरे। पैर तड़पकर गिरे। और (उन राक्षसों की) वाम भुजाएँ भी तड़प उठीं (अर्थात्, फड़ककर विपदा की सूचना देने लगीं)।

करवालों के समूह, भालों के समूह, धनुषों के समूह, बलिष्ठ भुजाओं के समूह—इन सबसे संकुल होकर राक्षस-वीरों का समूह सम्मुख आया। जिसे (रामचन्द्र के) शर-समूह-रूपी विध्वंसक सेना ने छिन्न-भिन्न कर दिया।

धर्म-स्वरूपी (राम) से चुनकर प्रयुक्त किये जानेवाले बाण नक्षत्रों को भी भेदकर जा सकते थे। मेरु पर्वत को भी भेदकर निकल जा सकते थे। ऊँचाई पर स्थित ऊपर

१. धरती का भार वहन करनेवाली दो वस्तुएं हैं—आदिशेष और महाकूर्म। रामचन्द्र की पादुका, जिसे उन्होंने भरत को दिया था, आदिशेष का ही अवतार मानी गई है। —अनु०

के लोकों को भी पार कर जा सकते थे। धरती को भी भेदकर जा सकते थे। तो अब क्या यह भी कहने की आवश्यकता है कि वे (वाण) करवालों को उठाये, उपस्थित राक्षसों के शरीर को भी भेदकर जा सकते थे ?

उस समय, उनको घेरकर आनेवाले सब राक्षसों का एक साथ विनाश करने के लिए राम ने जो वाण चुन-चुनकर चलाये, उन्होंने उन राक्षसों को उसी प्रकार अति शीघ्र मिटा दिये, जिस प्रकार किसी बलवान् व्यक्ति के द्वारा किसी बलहीन को अत्याचार से मारकर चुराया गया धन (उस अत्याचारी बलवान् को) शीघ्र ही मिटा देता है।

सब राक्षस-वीरों के मिट जाने पर वीर-कंकणधारी, अतिक्रुद्ध क्रूर खर, उत्तरोत्तर बढ़ आनेवाली मज्जा और रक्त की धारा में ऐसे ही अकेले खड़ा रहा, जैसे विशाल समुद्र के मध्य मंदराचल खड़ा हो।

मन में क्रोधाग्नि से जलता हुआ वह (खर), अपनी लाल आँखों से चिनगारियाँ उगलता हुआ और अपने दृढ धनुष से वाणों को उगलता हुआ, बढ़ती हुई रक्त-धारा के मध्य से समुद्र-मध्य जानेवाली नौका के सदृश रथ पर आया। काक और गिद्ध भी उसको घेरकर आये।

युगांत में सारे संसार को जलानेवाली अग्नि के समान वैर एवं क्रूरता से युक्त, एकाकी रहनेवाले उस राक्षस के अपने निकट आने के पूर्व ही, नीलकंठ (शिव) के धनुष को तोड़नेवाले प्रभु, उत्तम बाणों को लिये हुए उसके सम्मुख बढ़ आये।

अग्नि के जैसे तीक्ष्ण रूपवाले, पवन के जैसे वेगवाले तथा अन्य सब लक्षणों से युक्त तीक्ष्णाग्र वाणों को उस राक्षस-पति ने छोड़ा। किंतु राम ने उन सबको वैसे ही सहस्रों उत्तम वाणों से छिन्न-भिन्न कर दिया।

सप्त लोकों के प्रभु राम ने प्रलयाग्नि से भी अधिक तीक्ष्ण, नौ वाणों को प्रयुक्त किया। किन्तु, चक्र के रूप में झुके हुए धनुषवाले खर ने अग्नि उगलनेवाले बाणों को चलाकर राम के वाणों को रोक दिया।

फिर, खर ने माया-युद्ध करते हुए, शरों की वर्षा उत्पन्न की और रामचन्द्र के शरीर को उन वाणों से ढक दिया। इससे देवता भयभीत होकर भागे, तब महावीर राम अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उनके उज्ज्वल दाँत और उन (दाँतों) को ढकनेवाले ओंठ दोनों व्यत्यस्त हो गये (अर्थात्, उनके दाँत ओंठों को चबाते हुए उन ओंठों को ढकने लगे।)

राम ने यह सोचकर कि अब एक तीक्ष्ण वाण से इस राक्षस को मिटा दूँगा, एक शर को धनुष पर चढ़ाकर उसे आकर्ण खींचा, तब उनके हाथ का धनुष, विशाल आकाश में उत्पन्न मेघ-गर्जन के सदृश घोष के साथ टूट गया।

(राम की) जय-जयकार करनेवाले देवताओं ने देखा कि राम का धनुष टूट गया है और उनके पास अन्य कोई दृढ धनुष नहीं है और यह सोचकर कि हमारी शक्ति अब नष्ट हो गई है, भय से काँप उठे और व्याकुल हो उठे।

इसी क्षण राजाधिराज के पुत्र (राम) ने अपने अकेलेपन की एवं अपने धनुष

के टूट जाने की किंचित् भी चिन्ता किये बिना ही प्राचीन संकेत[1] के अनुसार अपनी विशाल बाँह को पीछे की ओर पसारा।

वरुणदेव ने यह दृश्य देखा और उनके मन की बात जानकर परशुराम से पूर्व में प्राप्त विष्णु-धनुष को उस देवाधिदेव (राम) के हाथ में लाकर रख दिया।

वरुण के द्वारा लाये हुए उस धनुष को नीलमेघवर्ण प्रभु ने अपने हाथ में लिया और अपने बायें हाथ से उसे पकड़कर दायें हाथ से खींचकर झुकाया, तो धर्महीन राक्षसों के वाम नेत्र और वाम भुजाएँ फड़क उठीं।

यों एक पलक-भर में राम ने उस धनुष को लिया, और उसे ऐसा झुकाया कि यम भी भयभीत हो गया। उसके बाद डोरी चढ़ाई और सौ बाण प्रयुक्त किये, जिनसे खर का दृढ चक्रवाला रथ चूर-चूर हो गया।

खर दृढ चक्रवाला अपना रथ खो बैठा। तब वह बड़ा कोलाहल करता हुआ आकाश में उछल गया और सुन्दर तथा अनुपम धनुर्धारी राम की भुजा-रूपी मंदराचल पर बाणों की घोर वर्षा करने लगा।

राम ने उन बाणों को रोक लिया और अपने तूणीर से तीक्ष्ण बाणों को निकाल-निकालकर चढ़ानेवाले खर के दक्षिण हाथ को एक बाण से काटकर धरती पर गिरा दिया।

खर ने, अपने दाहिने हाथ के कट जाने पर, अपने बायें हाथ से एक भयंकर वज्र के समान मूसल को उठाकर, उसे राम पर फेंका। तब लक्ष्मण के अग्रज ने उसे एक ही बाण से दूर फेंक दिया।

जैसे कोई सर्प अपने विष-दंत के टूट जाने के पश्चात् फुफकार रहा हो, ऐसे ही वह खर एक बड़े वृक्ष को हाथ में लेकर झपटा। तब राम ने एक अनुपम बाण का उसपर प्रयोग किया।

यद्यपि उस खर ने अनेक वर प्राप्त किये थे, बड़ा मायावी था और बड़ा बलवान् था, तथापि राक्षसराज (रावण) के सप्त लोक के प्राणियों का विनाश करने के पाप के कारण, उसके दक्षिण हाथ के जैसे ही उसका कंठ भी कट गया।

उस समय, देवता हर्ष-ध्वनि कर उठे, नाचने और गाने लगे और पवित्र पुष्प बरसाने लगे। पवित्रमूर्त्ति (राम) भी सब दिशाओं में फैले कुहरे को मिटाकर निखरनेवाले सूर्य के समान ही चमकने लगे।

अनेक मुनि आये और राम का अभिनन्दन करने लगे, फिर पवित्र हृदयवाले (राम) उन सीताजी के समीप जा पहुँचे, जो अपने प्राणों (रामचंद्र) के राक्षस-सेना के साथ युद्ध करने के लिए चले जाने पर प्राणहीन शरीर बनकर पर्णशाला में रहती थीं।

लक्ष्मण और सीता ने रामचन्द्र के चरणों को अपने अश्रुजल से इस प्रकार धोया कि उन चरणों पर लगा हुआ, युद्ध में मृत राक्षसों का रक्त और धूल धुल गये।

---

१. प्राचीन संकेत यह है—पहले धनुर्भंग के समय परशुराम ने राम से पराजित होकर अपने पास का विष्णु-धनुष उन्हें दिया था। राम ने वह धनुष वरुण को सौंपा था और कहा था कि जब उन्हें उसकी आवश्यकता पड़ेगी, तब वह धनुष उन्हें मिल जाना चाहिए। —अनु०

एक मुहूर्त में मरे हुए राक्षसों का रक्त-प्रवाह सब दिशाओं में भर गया। इधर श्रीरामचन्द्र विश्राम करने लगे और देवता समुद्र से, पंक्तियों में उठनेवाली लहरों के समान, घोष करते हुए उनकी स्तुति करने लगे।

इधर जो वृत्तांत कहना शेष रह गया है, अब उसे कहेंगे। रावण की बहन, अपनी छाती पीटती हुई, अंधकार समान खर का आलिंगन करके, दूर तक फैले हुए उसके उष्ण रक्त-प्रवाह में लोटने लगी।

मैंने अपने मन में (राम को पाने की) जो इच्छा की थी, हाय! उस इच्छा को अपनी नासिका के साथ ही मैंने नहीं खोया। मैंने अपने वचनों के कारण तुम लोगों (खर-दूषण) के जीवन को भी मिटा दिया। मैं अत्यन्त क्रूर हूँ—यों रोती कलपती हुई वहाँ से चली गई।

विजयमालाधारी (लंका में रहनेवाले) राक्षस-समूह का भी नाश करने के विचार से, संसार के प्राणियों को भयभीत करनेवाली आँधी के समान, वह शीघ्र लंका में जा पहुँची। (१–१६२)

अध्याय ७

मारीच-वध पटल

शूर्पणखा, कोलाहल से पूर्ण समुद्र की जैसी राक्षस-सेना के विनष्ट होने की बात को भूल-सी गई। रामचन्द्र के पर्वत-सदृश कंधों के प्रति आकर्षण उसके मन को व्यथित करने लगा। उससे अत्यंत व्याकुल हो वह यह सोचकर चल पड़ी कि, तरंगों से भरे समुद्र-रूपी परिखा से आवृत विशाल लंका में शीघ्र जा पहुँचूँगी और (रावण से) सीता के सौंदर्य के बारे में कहूँगी। अब उस लंका में स्थित रावण का वर्णन करेंगे।

वह (रावण) एक ऐसे अति मनोहर अनुपम रत्न-मंडप में आसीन था, जो (मंडप) इस नश्वर संसार में स्थावर-जंगम पदार्थों की सृष्टि करनेवाले कमल-भव, चतुर्मुख (ब्रह्मा) के लिए भी विरचित करने को असंभव था और जो सूक्ष्म ज्ञान से उत्पन्न अनुपम दक्षता से युक्त तथा निष्कलंक धर्म के जैसे ही, संकल्प-मात्र से सब वस्तुओं का सर्जन करनेवाले (विश्वकर्मा नामक) देव-शिल्पी के द्वारा निर्मित होकर, उसके समस्त शिल्पशास्त्र-ज्ञान को प्रकट करता था।

भ्रमरों से गुंजित शिरवाले दिग्गजों के दाँतों को भी अपने कठोर आघात से तोड़ देनेवाले (उस रावण के) मनोहर कंधे, आकाश तक उन्नत होकर ऊँचे उदयाचल के समान शोभित हो रहे थे। उन कंधों पर (रावण के बीस) कुण्डल इस प्रकार प्रकाशमान थे, जैसे उज्ज्वल किरण-पुंज से युक्त द्वादश सूर्य-मंडल, मेरु पर्वत की परिक्रमा करते हुए, बीस मंडलवाले होकर चमक रहे हों।

देवताओं में व्याघ्र-चर्म धारण करनेवाले (शिव), स्वर्णमय वस्त्र धारण करनेवाले (विष्णु) और कमल से उत्पन्न (ब्रह्मा) भी उस रावण को कुछ पीड़ा नहीं दे सकते थे, तो अब इस संसार में दूसरों के संबंध में क्या कहा जाय। (अर्थात्, दूसरे कौन उससे युद्ध करने की शक्ति रखते हैं)? सूक्ष्म कटि, पीन स्तनों, कोमल बाँस-समान कंधों, रेखाओं से युक्त नेत्रों तथा सबको आकृष्ट करने की शक्ति से युक्त सुंदरियों के साथ दुस्सह प्रणय-कलह में भी न झुकनेवाले उसके किरीटों की पंक्ति अत्यन्त उज्ज्वल थी।

(उसके आभरणों के) उज्ज्वल तथा बड़े-बड़े रत्न प्रकाश-पुंज बिखेर रहे थे। (उसके) वज्रमय पर्वताकार कंधे, धरती का भार वहन करनेवाले विषमय सर्पराज के फनों के समान शोभित थे। (उसके वक्ष पर) के उज्ज्वल रत्नहार भयंकर समुद्र से घिरी लंका के मध्य स्थित उस कारागार का दृश्य उपस्थित करते थे, जिसमें (रावण) के द्वारा बंदी बनाकर लाये गये नवग्रह तथा उनके पार्श्वों में नक्षत्र रखे गये हों।

अरुण कांतिवाले, उत्तम रत्नों से खचित उसका वीर-वलय, उसके चरण में शब्दायमान हो रहा था और अवर्णनीय महाबल से युक्त राक्षस-नायकों के गौरवमय रत्न-किरीटों की रगड़ खा-खाकर नव कांति बिखेर रहा था।

सुरों तथा असुरों ने सब दिशाओं से ला-लाकर जो सुरभित पुष्प (रावण के चरणों पर) बरसाये, वे पुष्प त्रिभुवन के राजाओं के द्वारा निरन्तर ला-लाकर समर्पित धन-राशियों के समान भरे पड़े थे।

बिजली के जैसे चमकते हुए किरीटोंवाले विद्याधर-नरेश, यह न जानने से कि वह (रावण) किस समय, किस ओर अपनी दृष्टि डालेगा, सदा अपने शिर पर हाथों को जोड़े हुए सभा-मंडप में उसके समीप पंक्ति बाँधे खड़े रहते थे।

सिंह-सदृश बलशाली सिद्ध लोग, उस (रावण) के समीप शिर झुकाये, हाथ जोड़े और संकोच-से भरे मन के साथ विनम्र होकर खड़े रहते थे। यदि वह रावण किसी दासी को भी कोई आज्ञा देता, तो भी (ये सिद्ध लोग) यह समझकर कि वह उनको ही आज्ञा दे रहा है, झट उसे करने के लिए दौड़ पड़ते थे।

यदि वह रावण उस सभा-मंडप में मंत्रियों को देखकर कोई वचन कहता, तो भी किन्नर (यह सोचकर कि वह उन किन्नरों को कुछ दंड देने की ही बात कर रहा है), व्याकुल तथा भयभीत होकर शिर झुकाकर खड़े रहते थे।

नागलोग, रावण को देखकर, विशाल (दक्षिण) दिशा के प्रभु तथा भयंकर दंड-धारी यम को देखनेवाले नरक-वासियों के समान ही, गद्‌गदकंठ एवं भय-व्याकुल मन होकर घेरे खड़े रहते थे।

तुंबुरु नामक ऋषि अपनी संगीतमय वीणा के साथ रावण की उन भुजाओं का यशोगान कर रहे थे, जिन भुजाओं ने दिग्गजों के बल को कुंठित कर दिया था, कैलाश गिरि को उखाड़कर महादेव के लिए अपवाद उत्पन्न किया था और इन्द्र के साथ युद्ध करके सभी स्वर्ग-वासियों को भयभीत किया था।

नारद मुनि, स्वर्ग में प्रचलित संगीत-पद्धति से किंचित् भी स्खलित हुए बिना,

अपने करों से वीणा का नाद करते हुए, सरस्वती के समान ही, दोषहीन राग में मधुर वेद का गान करते थे और उसके कानों को तृप्त करते थे।

मकर-मीन से पूर्ण समुद्र का अधिपति वरुण, देव-तरुओं तथा विद्याधर-लोक के वृक्षों के पुष्पों से झरे हुए मधु को, स्वच्छ जल के साथ मिलाकर, मेघ नामक पिचकारी में भरकर, डरते-डरते उस रावण पर बूँदों में बरसा रहे थे कि कहीं (पिचकारी का जल) मयूर और हरिणी-सदृश रमणियों के वस्त्रों पर न पड़ जाये।

वासुदेव, सुगन्धित पुष्पों से झरनेवाले पराग और मधु को, एवं (उस सभा में स्थित) राजाओं के ऊँचे-ऊँचे किरीटों के (एक दूसरे से) रगड़ने से झरनेवाले रत्नों और मुक्ताओं के टुकड़ों को, धरती पर उनके गिरने के पूर्व ही, इधर से उधर और उधर से इधर दौड़-दौड़कर इस प्रकार बटोर लेता था; मानों वह उस स्थान पर झाड़ू-सा लगा रहा हो।

बृहस्पति और शुक्राचार्य—दोनों अपने हाथों में बिजली के जैसे चमकनेवाले दंड लिये हुए, सारे शरीर को ढकनेवाले दीर्घ कंचुक धारण किये हुए, अथक रूप से घूम-घूमकर (रावण के सभा-मंडप में) इन्द्र आदि देवताओं को यथोचित आसन दिखाने का कार्य कर रहे थे (अर्थात् , रावण की सेवकाई कर रहे थे)।

काल त्रिशूल आदि अपने शस्त्रों का त्याग कर, अपने शरीर के वस्त्र से अपना मुँह ढककर, जब-जब चर्म से आवृत भेरी-वाद्य बजने का समय होता था, तब-तब आकर, ठीक समय की सूचना देता था। (भाव यह है कि कालदेव रावण के सभा-मंडप में समय की सूचना देने का कार्य करता था)।

उज्ज्वल अग्निदेव, दीपों में सुगंधित घृत को भर-भरकर, उत्तम कर्पूर-वत्ती को तथा कपास की वत्ती को जलाकर, जलाशयों में स्थित रक्त-कमल के समान दीपों को प्रकाशित कर रहा था।

नवीन पुष्पों से पुष्पित कल्पवृक्ष, अमन्द कांति से पूर्ण (चिंतामणि आदि देव-लोक के) रत्न; दुधार (कामधेनु आदि) गायें तथा (शंख, पद्म आदि) निधियाँ, (रावण के) मन के कोमल भावों को पहचानकर क्रम-क्रम से अनेक वस्तुओं को लाकर उसके सामने रख देता था और उसे आश्चर्य में डाल देता था।

(रावण के पहने हुए) कुंडल आदि आभरण, अपनी घनी कांति को इस प्रकार फैला रहे थे कि ऐसा लगता था, मानों सप्त लोकों में रात्रि नामक पदार्थ ही कहीं नहीं रह गई है, न अष्ट दिशाओं में कहीं अँधेरा रह गया है।

गंगा आदि नदी देवियाँ, अपने स्तन-भार से लचकनेवाली लता-समान कटि के साथ, उस सभा-मंडप में आतीं और (रावण पर) अपने अरुण करों से अक्षत एवं पुष्प बिखेरतीं तथा बारी-बारी से प्रशस्तियाँ गातीं।

(नारायण मुनि के) उरु से उत्पन्न उर्वशी[1] नामक अप्सरा को आगे किये हुए

१. पुराणों में एक कथा प्रसिद्ध है—बदरिकाश्रम में विष्णु के अंशभूत नर और नारायण क्रमशः शिष्य और गुरु के रूप में तपस्या करते थे। उनकी तपस्या को भंग करने के लिए इन्द्र के द्वारा प्रेषित अप्सराओं को आया हुआ देखकर नारायण ने अपने उरु से उन अप्सराओं से भी अधिक सुन्दर स्त्री को उत्पन्न किया, जिसे देखकर वे सब अप्सराएँ लज्जित होकर चली गईं—उसका नाम उर्वशी पड़ा।

अनेक स्त्रियाँ, कलापी के समान चर्ममय वाद्यों (अर्थात् , मर्दल आदि) के ताल के अनुसार अत्युत्तम नृत्य करती थीं, जिसे वह (रावण) देखता रहता था।

वह रावण, जिसने अपूर्व तपस्या के प्रभाव से त्रिभुवन को भी अपने अपार बल के अधीन कर रखा था, अब (उस सभा-मंडप में) भ्रू-रूपी धनुष को धारण करनेवाली काले तथा विशाल नयनोंवाली रमणियों की दृष्टियों के प्रवाह में (तैर रहा) था।

उस समय, रावण की बहन (शूर्पणखा), अपने लाल हाथों को शिर पर रखे हुए, स्तनों से लाल रक्त बहाते हुए, नाक और कानों से रहित होकर, अपना मुँह खोलकर मेघ के जैसे गरजती हुई, दौड़ी आई।

वह (शूर्पणखा) अपने अत्यन्त दुर्गन्ध-पूर्ण मुँह से रोती गरजती हुई, युगांत-कालिक समुद्र-घोष के समान शब्द करती हुई, व्याकुल-चित्त होकर, पश्चिम दिशा में दीख पड़नेवाली संध्याकालीन लालिमा के जैसे केशों के साथ, (लंका के प्रासाद के) उत्तरी द्वार से होकर प्रकट हुई।

उसके इस प्रकार प्रकट होते ही, उस पुरातन (लंका) नगर की राक्षस-स्त्रियाँ उस (शूर्पणखा) के सम्मुख जाकर अपनी छाती पीट-पीटकर रोने लगीं। हाय! त्रिभुवन के शासक की बहन नककटी होकर, निस्सहाय इस प्रकार आवे, तो वे स्त्रियाँ कैसे उस दृश्य को सह सकती थीं?

राक्षस, (शूर्पणखा को) हठात् उस दशा में आती हुई देखकर स्तब्ध रह गये। उनके मुख से कुछ वचन नहीं निकला, फिर वज्र-घोष के जैसा गर्जन करके, एक हाथ से दूसरे हाथ को पीटते हुए, आँखों से चिनगारियाँ निकालते हुए और ओंठ चबाते हुए खड़े रहे।

कुछ राक्षस यह कहकर क्षुब्ध हो रहे कि क्या यह कार्य इन्द्र का है? नहीं तो सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा ने किया है? या चक्रधारी विष्णु का यह कार्य है? अथवा चंद्रशेखर का ही यह कार्य है?

कुछ राक्षसों ने कहा—(इस ब्रह्मांड में) कहने योग्य शत्रु कोई (रावण का) नहीं है। अतः, त्रिभुवन को अपने अन्तर में रखे हुए इस ब्रह्मांड में रहनेवाले) किसी भी व्यक्ति के द्वारा यह कार्य नहीं हुआ है, इसे करनेवाले इस ब्रह्मांड से परे रहनेवाला कोई होगा।

कुछ राक्षसों ने कहा—'अरे, यह रावण की बहन है!'—यह वचन सुनते ही सब लोग इसे 'हे माता!' कहकर इसके चरणों को नमस्कार करते हैं। कोई इसके अपमान की बात सोच भी नहीं सकता। अतः, इस (शूर्पणखा) ने स्वयं ही अपने कान-नाक काट लिये होंगे।

कुछ राक्षस कहते थे—देवेन्द्र युद्ध में पराजित होकर अब (रावण की) सेवकाई कर रहा है, तीक्ष्ण धारवाले चक्र को धारण करनेवाला विष्णु, शक्तिहीन होकर समुद्र में जाकर रहने लगा है। अग्नि को हाथ में धारण करनेवाला शिव (रावण से डरकर) पर्वत पर जाकर रहने लगा है, फिर ऐसा कार्य करनेवाला व्यक्ति कौन है?

यशस्वी कुल में उत्पन्न कोई भी व्यक्ति ऐसा कार्य करने का साहस नहीं कर

सकता, शायद खर ने ही, यह सोचकर कि यह (शूर्पणखा) उत्तमकुल की स्त्रियों के लिए उचित कार्य न करके चरित्र-भ्रष्ट हो गई है, इसे सौन्दर्य से हीन कर दिया है।

कुछ राक्षस कहते थे—शिथिल एवं व्याकुल चित्तवाले देवताओं में से किन्हीं बलवान् व्यक्तियों ने, पागलपन के साथ, जीवित रहने के लिए अनुपयोगी विचार से (अर्थात्, विनाशकारी विचार से), त्रिलोक का विनाश करने के लिए ही, इस प्रकार का कार्य किया है।

कुछ राक्षस कहते थे—दूसरा कल्प आने पर है, किन्तु इस कल्प में ऐसा कौन वीर-वलयधारी तथा शस्त्रधारी वीर है, जो इस प्रकार ऐसा कार्य करने की क्षमता रखता है? भयंकर अरण्य में, दोषहीन तप-कर्म में निरत ऋषियों के क्रोध का ही यह परिणाम है।

अपार संपत्ति से पूर्ण उस लंका-नगर में, काले नयनोंवाली राक्षस-स्त्रियाँ (शूर्पणखा की वह दशा) देखकर, वलय-पंक्तियों से भूषित अपने हाथों को मलती हुई, जामन डाले दूध के समान अस्तव्यस्त दशा में पड़ी हुई, गद्गद वचन कहती हुई, एक के आगे एक होती हुई, दौड़ी चली आईं।

उस नगर में, मर्दल, वीणा, मधुर नादवाले याक्-वाद्य, मनोमोहक वंशी, शंख, (तारै) (नामक वाद्य)—इनकी ध्वनि अब नहीं रही; किन्तु जैसी रुदन-ध्वनि इसके पहले कभी उत्पन्न नहीं हुई थी, वैसी रुदन-ध्वनि होने लगी।

समुद्र को भी लज्जित करनेवाले विशाल नयनों से शोभित राक्षस-स्त्रियाँ, मधु-पात्रों को, मत्त भ्रमरों को एवं अपने मनों को एक ओर ढकेलकर दौड़ी चली आईं, तब उनकी कटि लचकने-से लगी, जिससे वे एक दूसरे को सँभालती हुई आईं।

कुछ राक्षस-स्त्रियाँ, जो करवाल के धनी अपने पतियों को (प्रणय-कलह में हुए उनके अपराधों के लिए) दंड देने में निरत थीं और अपने उद्विग्न मन में क्रोध उमड़ने के कारण लालिमा से भरे अपने नेत्रों से अश्रु बहा रही थीं, रावण की उस बहन के चरणों पर जा गिरीं।

कुछ राक्षस-स्त्रियाँ, जो स्वर्णमय फलों से युक्त मरकत वर्णवाले क्रमुक-वृक्षों में बाँधी गई नवरत्नमय जंजीरों से लटकनेवाले झूलों में झूल रही थीं, वे झूलना छोड़कर, व्यथित चित्त के साथ, अपनी सूक्ष्म कटियों को दुखाती हुई, वीथियों में आ पहुँचीं।

और कुछ राक्षस-स्त्रियाँ, जो (अपने पतियों के) स्तंभ और पर्वत-तुल्य कंधों के आलिंगन में बँधी थीं, अपनी वलय-विभूषित बाँहों को शिथिल करके, अपने कमल-तुल्य वदन पर के दो मीनों-से मुक्ता की धारा बहाती हुई, सिसक-सिसककर रोने लगीं।

क्षीण-कटिवाली कुछ राक्षस-स्त्रियाँ, यह कहती हुई कि शत्रु विध्वंसक और (शत्रुओं के) रक्त में डूबे हुए शूल को धारण करनेवाला राजा (रावण) यदि इस बात को जान ले, तो उसकी क्या दशा होगी? अपनी अंजन-लगी आँखों से मेघ की वर्षा करती हुई, रोती-कलपती धरती पर लोटने लगीं।

निद्रा करनेवाली कुछ राक्षस-तरुणियाँ, मधुर स्वप्न के आनन्द को भूल गईं। मेघ की समता करनेवाले केशों को अस्त-व्यस्त किये हुए, शिथिल वस्त्रों तथा कंपित स्तनों के साथ घर से निकल पड़ीं और दुःख से रोने लगीं।

खुले केश-पाशवाली कुछ राक्षस-स्त्रियाँ, यह कहकर कि शिव के कैलास को अपने विशाल करों में उठानेवाले हमारे पराक्रमी प्रभु की बहन की यह दशा हो गई है! हाय! शोक से उद्विग्न हुईं, स्तनों पर अपने करों से आघात करने लगीं और उस स्त्री (शूर्पणखा) के पैरों पर आ गिरीं।

कुछ राक्षस-स्त्रियाँ, यह कहकर कि 'अपने हाथ में शूल को रखनेवाले हमारे प्रभु के रहने के कारण लंका के पशुओं ने भी कभी ऐसा दुःख नहीं भोगा, अब क्या हमारे सब सुकृत मिट गये हैं?' दुःखी हुईं और अपने अति सुन्दर नयनों से अश्रु की धारा बहाने लगीं।

जब लंका-नगर इस प्रकार दारुण दुःख में निमग्न हो रहा था, तब शूर्पणखा, पर्वत-सानु पर आकर झुकनेवाले मेघ के समान सभा-मंडप में प्रविष्ट होकर राक्षसराज (रावण) के स्वर्णमय विशाल वीर-कंकण से भूषित पैरों पर आ गिरीं। अकस्मात् उसको उस रूप में देखकर उस मंडप में बैठे हुए और खड़े हुए सब लोग भय से भाग निकलने का मार्ग देखने लगे।

तीनों लोकों में अंधकार छा गया। (धरती का भार वहन करनेवाला) शेषनाग भयभीत होकर अपने फनों को झुकाने लगा, कुलपर्वत हिल उठे, सूर्य कांतिहीन हो गया, दिग्गज अपना स्थान छोड़कर भागने लगे, देवता भय से यत्र-तत्र छिपने लगे।

उज्ज्वल-वलयभूषित (रावण की) भुजाएँ फूल उठीं, उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं, दाँतों से अग्नि-ज्वालाएँ फूट निकलीं, कुंचित भौंहें ललाट के मध्य जा पहुँचीं। (रावण का क्रोध देखकर) सब भुवन डाँवाडोल हो उठे, देवता किंकर्त्तव्य-विमूढ होकर खड़े रहे।

दक्षिण दिशा के शासक यम के साथ सब देवता, यह सोचकर कि अब हमारे विनाश का समय आ गया है, चुपचाप पड़े रहे। स्वर्गलोक के निवासी तथा इहलोक के निवासी भी भ्रांत होकर थर-थर काँपते हुए, उसासें भरते हुए घबराई हुई दशा में अवाक् हो खड़े रहे।

रावण के (कोप के कारण) दाँतों से दबे हुए ओंठवाले बिल-समान मुँहों से धुआँ निकलने लगा। उसने श्वास छोड़ा, तो पंक्तिशः रहनेवाली उसकी मूँछों में आग लग गई, उसके तीक्ष्ण तथा उज्ज्वल दंत बिजली के जैसे चमक उठे, यों मेघ के गर्जन के समान गरजकर उसने पूछा—'यह किसका कार्य है?'

शूर्पणखा ने उत्तर दिया—अरण्य में मीनकेतन (मन्मथ) के समान रूपवाले, स्वर्ग-वासियों एवं पृथ्वी के निवासियों में अपना उपमान कहीं भी न पानेवाले दो मनुष्य राजकुमार आये हैं। उन्होंने ही करवाल से (मेरे अंगों को) काट दिया है।

शूर्पणखा के यह कहते ही कि मनुष्यों ने यह कार्य किया है, रावण ने ऐसा ठहाका भरा कि सारी दिशाएँ गूँज उठीं। उसकी बीसों आँखों से चिनगारियाँ निकल पड़ीं। फिर शूर्पणखा से बोला—मनुष्यों का पराक्रम तो अतिक्षुद्र होता है, क्या तुम्हारा कथन सत्य है? असत्य कहना छोड़ दो, भय को दूर करो और यथार्थ घटना बताओ।

तब शूर्पणखा कहने लगी—वे अपने रूप-सौंदर्य में मन्मथ की समता करनेवाले हैं, अपनी पुष्ट भुजाओं के बल से मेरु पर्वत की दृढता को भी मिटाने में समर्थ हैं, एक क्षण-भर में सप्त लोकों के निवासियों के पराक्रम को मिटा सकते हैं। उनके गुणों का वर्णन मैं अब कैसे कर सकती हूँ ?

वे लोग मुनियों के प्रति आदर-भाव दिखाते हैं। गगन के चंद्र के सदृश मुखवाले हैं। तरंग-भरे जल में नाल पर शोभायमान सुरभित कमल के दल-सदृश नेत्रवाले हैं; वैसे ही (अर्थात्, कमल-तुल्य ही) कर-चरणवाले हैं, अपार तपस्या से संपन्न हैं। उनकी समता करनेवाले कौन हैं ? (अर्थात्, नहीं हैं।)

वे वल्कलधारी हैं। विशाल वीर-वलयधारी हैं। वक्ष पर सुन्दर सूत्र (यज्ञोपवीत) से शोभायमान हैं। धनुर्विद्या में निपुण हैं। वेद के आवास वाणी से युक्त हैं। कोमल पल्लव-सदृश (मृदुल) शरीरवाले हैं। तुमसे भयभीत नहीं होनेवाले हैं। तुम्हें धूलि के समान भी नहीं समझनेवाले हैं। शब्द-रूप शास्त्रों के समान ही अक्षय रहनेवाले तूणीर धारण करनेवाले हैं।

उत्तम चरित्रवाले मुनियों ने उन दोनों के निकट आकर निवेदन किया कि अपने मन को संयम में रखनेवाले हमलोग राक्षसों से आशंकित हैं। इसपर उन मनुष्यों ने शपथ की कि सब लोकों को जीतनेवाले रावण के कुल का हम समूल विनाश करेंगे।

हे प्रभु ! क्या एक ही लोक में दो मन्मथ निवास करते हैं ? क्या धनुर्विद्या में उनसे अधिक निपुण कोई है ? क्या उनकी समता करनेवाला कोई एक भी व्यक्ति है ? उन दोनों में से प्रत्येक, अकेले ही, त्रिमूर्त्तियों की समता करता है।

सारे भूमंडल में अपना शासन-चक्र प्रवर्त्तित करनेवाले दशरथ नामक प्रशस्त राजा के वे दोनों पुत्र हैं। किंचित् भी दोष से रहित हैं। अपने पिता की आज्ञा से दुर्गम अरण्य में आकर निवास कर रहे हैं। उनके नाम राम और लक्ष्मण हैं।—यों शूर्पणखा ने कहा।

अमृत-सदृश प्यारी बहन (शूर्पणखा) की नासिका को तीक्ष्ण करवाल से काटनेवाले, मनुष्य हैं। काटने के पश्चात् भी वे जीवित हैं। ऐसा होने पर भी नवीन खड्ग को धारण किये हुए रावण, किंचित् भी लज्जित हुए बिना, नयन खोलकर देखता हुआ अभी तक प्राण रखे हुए है।—इस प्रकार रावण कहने लगा।

सर्वत्र विजय पाकर, अपने पराक्रम से राज्य को प्राप्त करने पर भी अन्त में मुझे यही (अपयश) मिला है। मेरा सारा यश मिट गया। संसार के समस्त वीरों के शिर कट जाने पर भी, मेरा खोया हुआ मान किस प्रकार लौटकर आ सकता है ?

मुझे इस प्रकार अपमानित करनेवाले मनुष्य भी अभी तक जीवित हैं। उनके प्राण अभी स्थिर हैं और मेरा यह खड्ग भी अभी मेरे हाथ में वर्त्तमान है। समुद्र में उत्पन्न विष को पीनेवाले (शिव) के द्वारा प्रदत्त मेरी आयु भी बनी हुई है। मेरी भुजाएँ भी हैं तथा मैं भी (वैसा ही) हूँ।

हे मेरे मन ! क्या यह सोचकर कि ऐसा अपवाद शूल बनकर तुम में चुभ गया है, तू लज्जित हो छटपटा रहा है, तू व्याकुल न हो। इस अपवाद को ढोने के लिए मेरे दस

शिर हैं। उन (शिरों) से भी अधिक संख्या में मेरी भुजाएँ हैं। फिर, तुझे क्या क्लेश हो सकता है?

यों कहकर वह (रावण) हँसने लगा और अपनी आँखों से चिनगारियाँ निकालने लगा। फिर पूछा—ऊँचे पर्वतों से भरे दंडकारण्य में रहनेवाले खर आदि राक्षसों ने क्या इन निस्सहाय मनुष्यों को अपने शस्त्रों से मिटा नहीं दिया?

रावण के ये वचन कहते ही, शूर्पणखा निर्झर के समान अश्रु बहाती हुई, अपनी छाती पीटती हुई, धरती पर लोट-लोटकर रोने लगी और बोली—हे तात! हमारे वे बन्धु भी शीघ्र उन (मनुष्यों) के द्वारा ध्वस्त हो गये। फिर, सिर पर हाथ धरकर सारा वृत्तांत कहने लगी।

खर आदि वृषभ-सदृश वीर, मेरे मुँह से घटित वृत्तांत को सुनकर अपनी सारी सेना को लेकर बड़े कोलाहल के साथ वहाँ गये और सूर्य-किरणों का स्पर्श पाकर विकसित कमल की समता करनेवाले अरुण नयनों से शोभित राम नामक वीर के धनुष से तीन घड़ी के अन्दर ही वे स्वर्ग में जा पहुँचे—यों शूर्पणखा ने कहा।

'उसके भाई (खर और दूषण), एकाकी राम के साथ के युद्ध में, अपनी विजय माला-भूषित सेना के साथ मारे गये'—यह वचन उसके कानों में पहुँचने के पूर्व ही रावण की विशाल आँखें, वज्र और जलधारा को गिरानेवाले मेघ के समान अश्रुओं के साथ अग्निकण उगलने लगीं।

उस समय रावण के मन में जो क्रोध उत्पन्न हुआ, उससे दबकर उसका दुःख, अग्नि में पड़े घृत के जैसा काम करने लगा। उसने प्रश्न किया—वे मनुष्य तुम्हारी नाक और कान काटें—ऐसा तुमने कौन-सा अपराध किया?

शूर्पणखा ने उत्तर दिया—किसी के द्वारा चित्रित करने के लिए असंभव रूपवाले उस (राम) के साथ (एक स्त्री आई हुई है, वह) कमल के आवास को छोड़कर आई हुई लक्ष्मी के समान है, बिजली के तुल्य कटि से शोभित है, बाँस के जैसे कोमल कंधोंवाली है एवं स्वर्ण के रंग की देहवाली है। उस नारी के निकट मैं गई थी, बस इतना ही मेरा अपराध था।

यह सुनकर रावण ने पूछा—वह नारी कौन है? तब उस राक्षसी ने कहा—हे प्रभु! उस नारी का जघन-तट चक्रवाला रथ है, उसके स्तन रक्त-स्वर्ण के कलश हैं, जिनपर इंगुदिक धातु के संपुट लगे हैं, यह भूमि का बड़ा सौभाग्य है कि उस नारी के पद-तल का स्पर्श उसे मिला है। अहो! उसका नाम सीता है।—यों कहकर शूर्पणखा सीता के रूप का वर्णन करने लगी।

उसकी वाणी भ्रमरों की गुंजार तथा मधु के समान रस-भरी है, उसके केशपाश मधुपूर्ण पुष्पों से सुवासित हैं। अप्सराओं के लिए भी पूजनीय, कमल में निवास करनेवाली सुन्दरी लक्ष्मी उसकी दासी बनने के लिए भी योग्य नहीं है। यह कहना भी कि हम उसके सौंदर्य का वर्णन करेंगे, अज्ञान का कार्य होगा।

हे प्रभु! अपनी वाणी को अमृत से भर-भरकर लानेवाली (अर्थात्, अमृत-समान

मीठी बोलीवाली) उस नारी के अलक, मेघ-समान हैं। सुसज्जित केश-पाश, झुके हुए सजल घन की समता करते हैं। उसकी उँगलियाँ, रक्त-प्रवाल के तुल्य हैं। उसका वदन, यद्यपि निर्दोष कमल-पुष्प के परिमाण का है, तथापि उसके नयन समुद्र से भी अधिक विशाल हैं।

'मन्मथ शिव के नेत्र की अग्नि से जल गया'—यह कथन सत्य नहीं है। सत्य बात तो यह है कि उस मन्मथ ने, स्वाभाविक सुगंधि से भरे केश-पाशवाली उस सीता को देखा, किन्तु उसके सौंदर्य को अपनाने में असमर्थ रहा, जिससे अवर्णनीय पीडा से दुःखी होकर उसका शरीर क्षीण हो गया, इसीलिए वह अनंग बन गया।

हमारे शत्रु-देवों के लोक में जाकर ढूँढ़ो, फनवाले नागों के लोक में जाकर ढूँढ़ो, कहीं भी वैसी रूपवती नहीं मिलेगी। लुहार की गरम भट्ठी में तपाकर बनाये गये बरछे और करवाल को भी परास्त करनेवाले नयनों से शोभित वह नारी इसी धरती पर है, किन्तु किसी के लिए भी उसका चित्र अंकित करना असंभव है।

क्या मैं उसके कंधों की सुन्दरता का वर्णन करूँ? या उसके उज्ज्वल मुख पर स्पंदित होनेवाले मीनों (अर्थात्, नयनों) का वर्णन करूँ? या अन्य अति मनोहर अंगों का वर्णन करूँ? मैं पुनः-पुनः चकित रह जाती हूँ; किन्तु उसका वर्णन नहीं कर पाती हूँ। तुम तो कल स्वयं ही उसे देखनेवाले हो; तो फिर मैं क्यों तुमसे उसका वर्णन करके बताऊँ।

यदि यह कहें कि उसकी भौहें धनुष के समान हैं, उसके नेत्र बरछे के समान हैं, उसके दाँत मोतियों के समान हैं, उसका अधर प्रवाल के समान है, तो यह केवल कथन-मात्र होगा। वास्तव में ये सब उपमान उसके अवयवों के योग्य नहीं हैं। अतः, कहने योग्य उपमान कुछ भी नहीं है। इस प्रकार का उपमान देने की अपेक्षा तो यही कहना अधिक संगत होगा कि धान धान के समान ही है (अर्थात्, धान की उपमा धान से ही दी जा सकती है।)

हे प्रभु, इन्द्र ने शची देवी को पाया है। षण्मुख (कार्त्तिकेय) के पिता (शिव) ने उमा को पाया है। कमलनयन (विष्णु) ने सुन्दर लक्ष्मी को पाया है। यदि तुम सीता को पा लोगे, तो फिर वे (इन्द्र, शिव और विष्णु) तुम से छोटे रह जायेंगे। इससे तुम्हारा महत्त्व उनसे अधिक बढ़ जायगा।

गगनोन्नत कंधोंवाले हे वीर ! एक (अर्थात्, शिव) ने (अपनी देवी को) अर्धाङ्ग में रख लिया, एक (विष्णु) ने कमलभव लक्ष्मी को अपने वक्ष पर रख लिया। ब्रह्मा ने वाणी देवी को अपनी जिह्वा पर रख लिया, यदि तुम घन की विद्युत् को परास्त करनेवाली सूक्ष्म कटि से शोभित उस सीता को पाओगे, तो उसे कहाँ रखोगे? (भाव यह है—सीता तुम्हारे लिए शिर पर धारण करने योग्य है।)

हे प्रभु ! हे सरदार ! शिशु की-सी मधुर बोलीवाली उस सीता को पाने पर तुम कुछ भी कमी का अनुभव नहीं करोगे। तुम अपनी इस संपत्ति को, जिसे दूसरों पर लुटा रहे हो, उसी को दे दोगे। मैं तुम्हारा हित करनेवाली हूँ, किन्तु तुम्हारे अन्तःपुर में रहनेवाली शुक की-सी बोलीवाली सब युवतियों का अहित अवश्य कर रही हूँ।

रथ-तुल्य जघन-तट से शोभित वह सीता, देवलोक में या इस लोक में किसी कंचुक-बद्ध स्तनवाली स्त्री के गर्भ से उत्पन्न नहीं है। पूर्वकाल में, शंख के समान श्वेत जलवाले समुद्र ने, देवासुरों के द्वारा मथे जाने पर प्रफुल्ल कमल में आसीन लक्ष्मी को उत्पन्न किया था। अब भूमि, उस लक्ष्मी को भी परास्त करनेवाली सीता को देकर धन्य हुई है।

मीनकेतन के आनन्द को बढ़ाते हुए, संसार की प्रशंसा का पात्र बनते हुए, भ्रमरों से आवासित पुष्पों से विभूषित कुन्तलोंवाली तथा सूक्ष्म कटिवाली सीता को तुम अपना स्वत्व बना लो और अपने पराक्रम का प्रदर्शन करके राम को मेरे वश में दे दो।

हे मेरे प्रभु! यद्यपि भाग्य हमें (जीवन के) फल प्रदान करता है, तो भी महान् तपस्वियों को भी वे फल, समय पर ही प्राप्त होते हैं। उसके पूर्व नहीं मिलते हैं। दस मुख, बीस नयन, बीस हाथ, सुन्दर रूप और मनोहर वक्ष से शोभायमान तुम अब आगे चलकर ही बड़ा गौरव प्राप्त करनेवाले हो।

इस प्रकार की सीता को तुम्हारे पास पहुँचाने के विचार से मैं उसके निकट गई, तब उस राम के भाई ने बीच में पड़कर चमकते हुए कटार से मेरी नाक काट दी। मेरा जीवन तो तभी समाप्त हो गया। फिर भी, इस विचार से कि तुम्हारे सम्मुख आकर सारा वृत्तांत बताने के पश्चात् ही अपने प्राण त्याग करूँगी, यहाँ आई हूँ, यों शूर्पणखा ने कहा।

(शूर्पणखा के वचन सुनते ही रावण के मन से) क्रोध, वीरता, अभिमान के कारण उत्पन्न ताप—ये सब इसी प्रकार मिट गये, जिस प्रकार पाप के रहने के स्थान से धर्म मिट जाता है और जिस प्रकार एक दीप, दूसरे दीप के स्पर्श से प्रज्वलित होता है। उसी प्रकार रावण के मन में काम-व्याधि और उससे उत्पन्न होनेवाले ताप ने घर कर लिया।

रावण खर को भूल गया, अपनी बहन की नाक को काटनेवाले वीर के पराक्रम को भूल गया, उससे उत्पन्न अपने अपयश को भूल गया, शिव को जीतनेवाले मन्मथ के बाणों के प्रभाव के कारण वह पूर्वकाल में प्राप्त अपने वरों को भी भूल गया, किन्तु सीता, जिसके रूप के विषय में उसने अभी सुना था, उसको नहीं भूल सका।

सूक्ष्म कटिवाली सीता का नाम और रावण का मन दोनों एक होकर रह गये। अब सीता के अतिरिक्त अन्य किसी विषय के बारे में सोचने के लिए भी उसके पास दूसरा मन कहाँ था? सीता को भूलने का कोई उपाय ही उसके पास नहीं था। पढ़े-लिखे व्यक्ति भी जबतक आत्म-ज्ञान नहीं प्राप्त करते, तबतक वे काम को कैसे जीत सकते हैं?

उन्नत प्राचीरवाली लंका का अधिपति, कलापी-तुल्य रूपवाली सीता का हरण करके बंदी बनाने के पूर्व ही उसको अपने मन-रूपी कारागार में बंदी बना लिया। धूप के स्पर्श से मक्खन जैसे पिघलता है, उसी प्रकार शूलधारी रावण का हृदय धीरे-धीरे पिघलने लगा।

विधि की विडंबना के कारण, भावी की प्रबलता के कारण एवं उस लंका का विनाश निकट आने के कारण रावण की काम-व्याधि उसकी सब इन्द्रियों में उसी प्रकार व्याप्त हो गई, जिस प्रकार विद्याविहीन मूढ व्यक्ति का छिपकर किया हुआ कोई पाप-कर्म सर्वत्र प्रकट हो जाता है।

स्वर्णमय सुन्दरी (सीता) के उसके मन में प्रविष्ट होने से, या रावण के लघुत्व को प्राप्त होने से, न जाने किस कारण से अब मन्मथ भी उस (रावण) पर बाण छोड़कर उसे पीडित करने में समर्थ हुआ। सब पराक्रम को हर लेने की शक्ति काम में होती है न ?

उस समय, रावण अपने आसन से उठा। सप्त लोकों के निवासी जयध्वनि कर उठे, सर्वत्र शंख बज उठे, पुष्प की वर्षा हुई, आसपास खड़े लोग हट-हटकर मार्ग देने लगे। यों वह (रावण) अधिकाधिक शिथिल होनेवाले मन के साथ स्वर्णमय प्रासाद के भीतर गया।

पत्नियों के समूह को हटाकर, वह एकाकी एक पुष्पमय विशाल पर्यंक पर जा पहुँचा, तब कस्तूरी की सुगन्धि से युक्त केशोंवाली सीता के नयनों और कुचों का ध्यान अधिकाधिक उसके मन में ताप बढ़ाने लगा।

अवारणीय काम-पीडा उसके मन में अत्यधिक मात्रा में बढ़ गई। इससे सुरभित मंद पवन से लाये गये हिम-तुषारों से पूर्ण, कोमल शय्या के पुष्प झुलस गये। अष्ट दिग्गजों को जीतनेवाली भुजाओं से युक्त उस रावण की देह झुलस गई। उसका मन विह्वल हो गया और उसके प्राण तड़प उठे।

(दासियाँ) शीतल-चंदन, मनोहर तथा कोमल पल्लव और मकरन्दपूर्ण पुष्प आदि को लेकर उसके समीप आईं, पर उन उपचारों से उसकी देह यों तप्त हो उठी, जैसे उसे आँच ही दिखाई गई हो। आग को भड़कानेवाली भाथी के जैसे वह श्वास भरता हुआ शिथिल हो गया।

वह अपने मन को स्थिर नहीं कर सका। पर-नारी-गमन को पाप न समझता हुआ और निरंतर सीता का ध्यान करता हुआ, वह रावण आम का टिकोरा, नीलकमल, बरछा आदि के जैसे नयनोंवाली सीता के रूप को देखने की उमड़ती हुई इच्छा के कारण अत्यन्त व्याकुलप्राण होकर पीड़ित हुआ।

वह रावण, जिसने भारी दिशाओं का वहन करनेवाले बलशाली दिग्गजों की सूँड़ों के दोनों ओर उगे हुए दाँतों को तोड़कर उन्हें पराजित किया था, अब काठ को छेदनेवाले भ्रमर के जैसे मन्मथ के बाणों से उसके वक्ष को छेदने के कारण, अत्यन्त पीड़ित होकर शिथिल पड़ा रहा।

'कोनूरें (नामक वृक्ष के) फल के समान (काले) केशोंवाली सुन्दरी मेरे हृदय में आ बसी है। मैंने उसे देख लिया।' यों कहता हुआ वह (रावण) अस्वस्थ और पीडित हो पड़ा रहा। तब सुरभित पुष्पमालाधारी मन्मथ के बाणों के समान मल्लिका पुष्प की गंध से युक्त मंद पवन उसपर आकर लगा, जिससे वह विक्षुब्ध हो उठा।

पीड़ित चित्तवाला रावण, उस समय, वहाँ से उठकर, यह न जानते हुए कि क्या करना उचित है, एक उद्यान की ओर चला और वीणा को परास्त करनेवाली मधुरवाणी से युक्त, लक्ष्मी-सदृश अनेक रमणियाँ, दीपों की पंक्तियाँ लेकर उसके आगे-आगे चलीं।

उस उद्यान में पनस-वृक्ष माणिक्यमय थे, कदली-वृक्ष मरकतमय थे, मधुर आम्र के वृक्ष हीरकमय थे, 'वेंगें' नामक वृक्ष उत्तम स्वर्णमय थे, 'कोंगु' नामक वृक्ष पद्मरागमय थे।

क्रमुक-वृक्ष दूर तक कांति बिखेरनेवाले इन्द्रनील-रत्नमय थे, नारिकेल-वृक्ष रजतमय थे, पुन्नाग-वृक्ष स्फटिकमय थे और पाटल-वृक्ष प्रवालमय थे।

गगनोन्नत तथा उज्ज्वल रत्नमय वृक्ष इस प्रकार घने होकर फैले थे कि नभ में चमकनेवाले नक्षत्र भी वहाँ के विविध पुष्पों को पृथक्-पृथक् करके पहचान नहीं पाते थे। ऐसे मधु वर्षा करनेवाले उस उद्यान के मध्य अरुण-स्वर्णमय मंडप में दूध के जैसे श्वेत पर्यंक पर, वह (रावण) जा पड़ा और बहुत पीडित हुआ।

फलों और पुष्पों के मधु को पीकर मत्त रहनेवाले पक्षी, रमणियों की-सी मीठी बोलीवाले शुक, कोकिल, भ्रमर एवं मधुर गान करनेवाले अन्य सब प्रकार के पक्षी; यह सोचकर कि उनकी ध्वनि से लंकाधिपति क्रुद्ध होगा, मौन होकर गूँगे के जैसे हो रहे।

उत्तरी वायु, उस ऋतु के लिए उचित रूप में शीतल ओसकणों को लेकर आई और मन्मथ के बाणों से विद्ध (रावण के) क्षतों में आ लगी; जिससे वह क्रुद्ध होकर चिल्ला उठा कि यह कैसी ऋतु चल रही है। शिशिर ऋतु तुरन्त भयभीत होकर वहाँ से हट गई और वसन्त ऋतु आ पहुँची।

जो शिशिर बड़े-बड़े वृक्षों तथा दावाग्नि से आवृत पर्वतों को भी ठंडा कर देता है, वह भी रावण के लिए तापजनक हो गया, तो वसन्त के बारे में क्या कहा जाय? काम-व्याधि को शान्त करनेवाली ओषधि भी कहीं होती है? सुख और दुःख मन की दशा पर ही तो आधृत रहते हैं?

रावण के मन की काम-व्याधि को वसन्त ने इस प्रकार भड़का दिया कि उसका ताप दिगंतों तक व्याप्त हो गया। तब उसने आज्ञा दी—यह कौन-सी ऋतु है? इससे तो पहले का शिशिर ही अच्छा था। अब इस ऋतु को हटाओ और शरद्-ऋतु को ले आओ।

जब शरद् आया, तब उसके पुष्ट कंधे तपने लगे। तब उसने कहा—क्या शरद्-ऋतु भी तपानेवाली होती है? यह तो पहले की शिशिर ऋतु ही विदित होती है। तब दासियों ने निवेदन किया—हे प्रभु! हम आपकी आज्ञा के विरुद्ध कुछ नहीं करते हैं। इसपर रावण ने आज्ञा दी कि सब ऋतुओं को अब यहाँ से दूर हटा दो।

रावण के यह आज्ञा करते ही सब ऋतुएँ अपने-अपने व्यापार को छोड़कर योगी के समान संसार के संबन्ध से मुक्त होकर, हट चलीं। फिर, सारा संसार दुष्कर तपस्या की साधना से कर्म-बंधन को तोड़कर प्राप्त किये जानेवाले मुक्ति-लोक के जैसे दिखाई पड़ने लगा।

समुद्र से आवृत धरती में शीतलता और उष्णता दोनों नहीं रहे। किंतु, रावण की नीलवर्ण देह, बिना तेल के ही, दीप के समान जलती रही। केवल समय के परिवर्त्तन से कोई कार्य नहीं होता। काम से उत्पन्न तीक्ष्ण ताप, शील से ही बुझाई जा सकती है; उसका उपशमन अन्य किसी उपाय से संभव नहीं होता।

जल से पूर्ण मेघ, कोमल कमल के भीतर के दल, कस्तूरी-मिलित चंदन-रस, पल्लव, मृदुल पुष्प-रज, मोती—इन सबका स्पर्श पाकर उसकी देह जलने लगी, जिससे वह

अत्यन्त शिथिल हो गया। तब उसने अपने परिजनों को आज्ञा दी कि तुमलोग जाकर शीघ्र चंद्रमा को ले आओ; क्योंकि लोग कहते हैं कि वह शीतल होता है।

परिजनों ने जाकर उस पूर्णचंद्र से, जो दारुण क्रोधवाले राक्षस (रावण) के द्वारा शासित उस विशाल लंकापुरी के ऊपर जाने से भी डरता था, कहा कि—डरो नहीं, शीघ्र आओ। राजा तुझे बुला रहा है। इसपर चंद्र अपने मन की अधीरता को छोड़कर आकर प्रकट हुआ।

युद्ध में परास्त होकर वैर को छिपाकर दबे रहनेवाले लोग, अपने शत्रु के कमजोर पड़ने पर जिस प्रकार उस (शत्रु) को सताने के लिए आगे बढ़ जाते हैं, उसी प्रकार मंडलाकार चंद्र रावण के प्राणों के लिए यम-जैसा बनकर, सूक्ष्म सिकता से युक्त जल-भरे समुद्र से उदित हुआ।

चंद्रमा, अपनी अवर्णनीय किरणों को सब दिशाओं में फैलाकर ऊपर उठा और स्वर्ग तथा धरती के निवासियों में से किसी के लिए भी प्रिय न होनेवाले उस रावण को सताता हुआ (वह चंद्र) इस प्रकार दिखाई पड़ा, जैसे आदिशेष पर शयन करनेवाले विष्णु के द्वारा रावण के वध के लिए भेजा गया चक्रायुध ही हो।

क्षीर-सागर के अमृत को छक-छककर पान करनेवाला चंद्रमा, अपनी शीतल किरणों के समुदाय को चारों ओर व्याप्त करने लगा। वह चंद्रिका टेढी भौंहों और लाल आँखोंवाले रावण को ऐसी लगी, जैसे आग में पिघली हुई चाँदी भर-भरकर चारों ओर छिड़की जा रही हो।

चंद्र-किरणें, जो धरती पर संचरण करनेवाली बिजली-सी लगती थीं, लाल धान के मनोहर खेतों से आवृत मिथिला नगर के राजा की पुत्री के सौंदर्य का वर्णन सुनकर विरह-पीडा से तप्त होनेवाले रावण को उसी प्रकार जलाने लगीं, जिस प्रकार कभी पराजित न होनेवाले शत्रु की कीर्त्ति किसी वीर को जलाती है।

वीर-कंकणधारी यम भी जिसको देखकर भयभीत होता है, उस रावण ने पूछा—मैंने कहा था कि शीतल किरणोंवाले चंद्र को ले आओ, तो जलानेवाली आग और दारुण विष में बुझी हुई तपती किरणों से युक्त सूर्य को कौन ले आया ?

उस समय, कुछ दासों ने भय के साथ निवेदन किया—हे प्रभु ! यह कथन सत्य नहीं है कि जिसे लाने की आज्ञा नहीं हुई थी, उसे हम लाये हैं। अरुण किरणवाला सूर्य सदा रथ पर ही आता है। यह चंद्रमा यद्यपि आपको उष्ण किरण-सा लगता है, तो भी विमान पर ही आरूढ है।

सर्प के फन के जैसे जघन-तट तथा शीतल वचनों से युक्त रमणियों के प्रति होनेवाले प्रेम की वेदना को उस (रावण) ने इससे पहले कभी नहीं जाना था। वह अब चंद्रमा से अत्यन्त पीडित हुआ। अब उसे ज्ञात हुआ कि शीतल और मनोहर कमल-पुष्पों का शत्रु चंद्रमा, यही है। फिर, उस चंद्र से प्रार्थना करने लगा कि हे चंद्र ! तू मेरे प्राणों को ला दे।

रावण कहने लगा—हे नक्षत्रों के पति ! तू क्षीण होता है। तेरा शरीर श्वेत

पड़ गया है। तेरा अन्तर काला हो गया है। अपना सहज गुण—शीतलता—छोड़कर तू तप रहा है, क्या तू भी अकेला रहता है और किसी सुन्दरी को देखे हुए व्यक्ति से उस (सुन्दरी) के सौंदर्य की चर्चा सुनी है ? (जिससे यों विरह से पीडित हो रहा है)। मेरे हृदय में पुष्पवाण विना रोक-टोक के लग रहे हैं। उनसे मेरी रक्षा करनेवाला कोई नहीं है। अब मेरे प्राणों को कौन बचायेगा ?

मेरे प्राणों के लिए यम बनी हुई उत्तम कुलजात उस सीता के दो कुवलयों-जैसे शोभायमान कमल (जैसे वदन) से तू पराजित हो गया है, इसीलिए तू काला पड़ गया है, क्षीण हो गया है और तप्त हो उठा है। यदि शत्रु की संपत्ति को देखकर ही इस प्रकार मिट गये, तो तू विजय कैसे पा सकता है ? बुद्धिमान् व्यक्ति (शत्रु को हराने के) पराक्रम से रहित होते हैं, तो विवेक से अपने ऊपर संयम रखते हैं।

इस प्रकार, अनेक वचन कहकर वह पीडित होता रहा। फिर, उसने परिजनों को आज्ञा दी कि इस चंद्र को रात्रि-सहित यहाँ से हटा दो और सूर्य को दिन सहित ले आओ। उसके यह कहने के पूर्व ही उपेक्षित चंद्रमा और रात्रिकाल हट गये। एक क्षण काल में ही अवर्णनीय सूर्य तथा दिन का समय आ पहुँचा।

वेद की ऋचाओं को जाननेवाले (ब्राह्मण) अग्नि में घृत डालकर जब होम करते हैं, तब जिस प्रकार वह अग्नि प्रज्वलित होती है, उसी प्रकार पिघले हुए ताँबे के जैसी किरणों-वाला सूर्य प्रकाशमान हुआ। उससे रक्त-कमल विकसित हुए। सूर्य के आगमन से रक्त कुमुद दबकर निर्जीव-से हो गये। वे उन क्षुद्र व्यक्तियों के जैसे थे, जिन्होंने अपने लिए अयोग्य उत्तम पदार्थों को प्राप्त कर उससे गर्वित होकर फिर उन्हें खो दिया हो।

विश्व के आभरण-जैसे रहनेवाला सूर्य एक दिशा में आकर प्रकट हुआ, तो चंद्रमा लज्जित हो, कांतिहीन हो, काँपता हुआ और अपनी पत्नी—रात्रि द्वारा अनुसृत होता हुआ, दूसरी दिशा में गगन-मध्य से हट चला। वह उस क्षुद्र राजा के समान था, जो किसी यशस्वी तथा पराक्रमी शासक की आज्ञा से अपने स्थान को छोड़कर चला जाता है।

विविध कर्णाभरणों से भूषित जो राक्षस-सुन्दरियाँ पुष्प-पर्यंकों पर अपने पतियों के समागम का सुख उठाती हुई प्रणय-कलह में क्रुद्ध हो गई थीं, अब हठात् रात्रि के हट जाने पर भी उस बात को न जानकर, स्वप्न में भी मान करती हुई (निद्रित) पड़ी रहीं।

कुछ राक्षस-स्त्रियाँ, अर्धरात्रि में ही हठात् रात्रि के समाप्त हो जाने के कारण, मुमूर्षु-प्राण सी हो गईं, थरथराती हुई काँप उठीं और उनकी आँखों से आँसू इस प्रकार बह चले, जिस प्रकार प्रफुल्ल नीलोत्पल से मधु-बिंदु बह चलते हैं।

कुछ राक्षस-स्त्रियाँ, जो रूई के कोमल पर्यंक पर काम-सुख का आनन्द प्राप्त कर चुकी थीं, वृक्ष की पुष्ट शाखा से लिपटी हुई लताओं के समान, अपने प्राण-पतियों के पुष्प-सदृश दोनों बाहों द्वारा दृढता से बँधी हुई, निद्रित पड़ी थीं।

उत्तम मत्तगज, जो उनके कुंभों पर गुंजार भरते हुए मँड़रानेवाले भ्रमरों के झुंड को और उज्ज्वल सूर्य-प्रकाश को न जानते हुए सोये पड़े थे, उन मद्यपों के समान ये कोमल शय्या पर प्रज्ञाहीन होकर निद्राग्रस्त रहते हैं।

जिस प्रकार कुल-नारियाँ, विद्या-बुद्धि से युक्त अपने प्रियतमों से वियुक्त होकर कांतिहीन हो जाती हैं, उसी प्रकार, वहाँ के प्रासादों में रखे हुए दीप, तेल के न घटने पर भी, निष्प्रभ हो गये।

प्रभात-काल में विकसित होनेवाले पुष्प, उनके सुन्दर दलों को खोलनेवाले सूर्योदय के होने पर भी, प्रफुल्ल न होकर, विशाल पर्यंक पर सोई हुई सुन्दरी के बन्द नयनों के जैसे बंद पड़े रहे।

सब लोग गहरी निद्रा में सो रहे थे। अतः, उनकी आँखें सचमुच प्रभात होने पर भी नहीं खुलीं। वे आँखें किसी को भिक्षा देने का विचार न करनेवाले लोभियों के बड़े घरों के दरवाजों के समान बंद थीं।

चक्रवाक दिन के निकल आने से विष-सदृश वियोग-पीडा से मुक्त हुए और कठोर कारावास से मुक्ति पानेवाले अपराधी के हृदय के समान आनंद से भर गये।

चन्द्र के कर-स्पर्श के अतिरिक्त अन्य किसी भी उपाय से विकसित न होनेवाले पुष्पों की ओर संगीत गानेवाले भ्रमर झपटे थे। लेकिन (इतने में चन्द्र के अस्त होकर सूर्य के उदित हो जाने से, उन बंद हुए पुष्पों से निकट) कला की महत्ता को नहीं जाननेवाले लोगों के दरवाजे पर दुःखी होकर खड़े रहनेवाले भाट लोगों के समान वे भ्रमर दुःखी होकर रह गये।

सूर्य की उष्ण किरणें, अपूर्व रत्नों से जटित वातायनों के मार्ग से (प्रासादों के) भीतर पहुँचकर निद्रा-मग्न सुन्दरियों को जगाने लगीं। किन्तु, वे (स्त्रियाँ) सत्य को स्पष्ट न जाननेवाले लोगों के समान, तंद्रा और जागरण की मिश्रित दशा में पड़ी रहीं।

रावण की कठोर आज्ञा से परिचय न रखनेवाले विद्वान, जो ज्यौतिष-शास्त्र लिख रखा था, उसे भली भाँति जानकर कुछ गणित-शास्त्र में कुशल व्यक्ति अभी तक सोये पड़े थे। (प्रभात-काल में) टेर लगानेवाले कुक्कुट भी सो रहे थे।

संसार में इस प्रकार के व्यापार हो उठे थे। ऐसे समय में शब्दायमान वीर-कंकणधारी रावण ने आँख उठाकर सूय को देखा और बोला—यह (सूर्य) उसका ध्यान करनेवाले के मन को भी तपाता है। अतः, पहले यहाँ आकर जिस चन्द्र ने हमको तपाया था, यह भी वही है।

तब कुछ दासों ने निवेदन किया—हे ईश ! यह चन्द्र नहीं है। यह अरुण-किरणवाला सूर्य ही है। देखिए, इसके रथ में दीर्घ केसरोंवाले मनोहर हरित अश्व जुते हैं। उष्ण किरणवाला सूर्य शरीर को तपाता है। किंतु, शीतल रहनेवाला चन्द्र नहीं तपाता।

शिखरों से शोभित नील पर्वत के जैसे रावण ने उन (दासों) से कहा कि यह सूर्य विष से अधिक दारुण है। अतः, इसे यहाँ से हटा दो। समुद्र के गर्जन को भी बन्द कर दो और संध्या-वेला में, पश्चिम दिशा में, प्रकट होनेवाली चन्द्र-कला को शीघ्र ले आओ।

राक्षस-राज ने यह वचन कहा। यह कहते ही, षोडश कलाओं से शोभायमान

चन्द्र तुरन्त तृतीया का चन्द्र बनकर एक ओर प्रकट हुआ। अब कहो तो सदा प्रभावशाली रहनेवाली तपस्या से बढ़कर योग्य कार्य दूसरा कौन-सा है?[1]

पश्चिम दिशा में उदित उस चंद्रकला को देखकर, क्रूर गुणवाला रावण कहने लगा—यह (चंद्रकला) वडवाग्नि है; वह नहीं, तो यह धरती का वहन करनेवाले शेषनाग का विष-दन्त है; अगर वह भी नहीं है तो, संध्या-काल मुझे मारने के लिए ही इस (चंद्रकला-रूपी) कटार को लेकर आया है।

पूर्वकाल में जब शीतल तरंगों से पूर्ण समुद्र से दारुण विष उत्पन्न हुआ, तब उसे अपने कंठ के भीतर रखनेवाले शिव ने इस चंद्रकला को भी पुष्प-रज से पूर्ण अपने जटाजूट में रख लिया था; शायद वह इसी कारण से होगा कि यह (चंद्र-कला) भी विषमय है।

वज्र के समान भयंकर रूप में संचरण करते हुए जिस चंद्र ने मेरे प्राण पी लिये थे, उससे, उसका यह परिवर्त्तित लघु रूप, कठोरता में कुछ कम नहीं है। दारुण कोप से भरे विषमय सर्प के बड़े आकार की अपेक्षा उस (सर्प) का छोटा रूप क्या अपने विष के प्रभाव में कुछ कम होता है?

(फिर, रावण कहने लगा) अति घोर अंधकार का गुण कैसा होता है—वह भी देखें। इस चंद्रकला से तो पूर्व आगत सूर्य ही अच्छा था। इस (चंद्रकला) को शीघ्र हटा दो। पराक्रम में प्रसिद्ध रहनेवाले मुझ को ही यह (चंद्रकला) तपाती है, तो अब यह कैसे कहा जा सकता है कि सप्त लोकों में कोई इसकी पीडा से बचकर जीवित रह सकता है?

उस समय, उस चंद्रकला के हट जाते ही अंधकार इतना घना होकर आ पहुँचा कि उसे छुआ जा सकता था। उसपर किसी भी वस्तु को रगड़ा जा सकता था। चाहे तो कोई उसे (अर्थात्, अंधकार को) खड्ग से काट सकता था या उसे (अंधकार को) खराद पर चढ़ाकर उसके खंभे बनाकर रखा जा सकता था।

अब क्या यह कहा जाय कि उस अंधकार को काठ की तरह काट-काटकर टुकड़े बनाकर फेंका जा सकता था? वह अंधकार इतना काला था, जितना निर्दोष तत्त्वज्ञान-रूपी प्रकाश के प्रविष्ट न होने से अंधा बनकर किंचित् भी दयाभाव से हीन (किसी अज्ञ व्यक्ति का) हृदय काला होता है।

कहीं भी भिन्न न रहनेवाला (अर्थात्, अत्यन्त घना रहनेवाला) वह अंधकार अंतराल को सर्वत्र भरकर व्याप्त हुआ और सारी धरती को निगल लिया। तब रावण ने कहा—(शायद) विष को निगलनेवाले शिव ने यह न सोचकर कि यह (विष) सारे विश्व को मिटा देगा, उसे उगल दिया है।

मैंने ठीक-ठीक जान लिया है कि यह (अंधकार) समुद्र से उत्पन्न होकर शिवजी के द्वारा निगला गया विष नहीं है। यह, धरती, आकाश आदि सब प्रदेशों को अपनी जिह्वाओं से चाटनेवाली प्रलयाग्नि ही है, जो काले हलाहल विष को पीकर स्वयं कालीपड़ गई है।

---

१. भाव यह है—रावण ने पूर्वकाल में बड़ी तपस्या की थी, जिसके परिणामस्वरूप चन्द्र-सूर्य आदि भी उसकी आज्ञा के पालक बने हुए थे। अतः, तपस्या ही सबसे उत्तम कार्य है। —अनु०

बाण और अग्नि भी जिसमें प्रवेश करके उसे भिन्न नहीं कर सकते, ऐसे इस अंधकार में, मुझ विरह से पीडित होनेवाले एकाकी व्यक्ति के सम्मुख अपना उपमान न रखनेवाली एक प्रवाल-लता (के सदृश सुंदरी), अपने ऊपर काले मेघ को धारण किये, नारिकेल के कोमल फल-युगल से शोभित होकर, एक चंद्र को भी धारण किये हुए, दीपक के समान प्रकाशमान हो रही है।

यह क्या मेरे मोह से उत्पन्न भ्रम है? या मेरा ज्ञान ही किसी कारण से अन्यथा हो गया है? स्पष्ट ज्ञात नहीं होनेवाला यह आकार क्या है? अंजन का प्रवाह भी जिसकी समता नहीं कर सकता, ऐसे इस घने अंधकार में एक उज्ज्वल पूर्ण-चंद्र, दो कुंडलों से शोभित होता हुआ, अति काले केशों के साथ मेरे सम्मुख आकर प्रकट हुआ है!

अपने दोनों पार्श्वों में बढ़नेवाले स्तन-युगल तथा जघन-तट से संयुक्त होकर रहनेवाली कटि को हम नहीं देख पा रहे हैं। उसके अतिरिक्त अन्य सब अवयवों को हम देख रहे हैं। विषपूर्ण नयनोंवाला यह आकार धीरे-धीरे एक नारी बनकर मेरे मन में प्रविष्ट हो रहा है।

चिरकाल से मैं सप्त लोकों की सुंदरियों को देखता आ रहा हूँ, किन्तु उनमें इसके जैसे रूपवाली किसी स्त्री को कहीं नहीं देखा है। अवश्य यह अद्भुत रूपवती रमणी मेरी बहन शूर्पणखा के द्वारा बताई गई, भ्रमरों से आवृत केशोंवाली, वह तरुणी (सीता) ही है।

मेरी इस विरह-पीडा को जानकर कदाचित् वह (सीता) स्वयं मुझे ढूँढ़ती हुई यहाँ आ गई है। उसके इस उपकार का मैं क्या प्रत्युपकार कर सकता हूँ? दर्शन-मधुर इस (सीता) को अपनी आँखों से शूर्पणखा ने देखा है। उसी से पूछकर मैं अपने संदेह को दूर कर लूँगा (यही सीता है या नहीं—यह संदेह दूर करूँगा)। इस प्रकार, विचार कर रावण ने अपने दासों को आज्ञा दी कि वे उसे (अर्थात्, शूर्पणखा को) शीघ्र वहाँ बुला लावें।

रावण की यह आज्ञा सुनते ही परिजन शीघ्र दौड़े और शूर्पणखा को समाचार दिया। तुरन्त वह (शूर्पणखा), जिसने पराक्रमी राक्षसों के कुल का समूल नाश करने के कार्य में लगी हुई, अपनी नासिका तथा कर्णाभरणों से भूषित कानों को खो दिया था, (राम के विरह में) कामाग्नि से तप्त होनेवाले मन के साथ (रावण के स्थान में) आ पहुँची।

शत्रुओं के रक्त में बुझे हुए तीक्ष्ण बरछे को धारण करनेवाले रावण ने, असत्य के आवासभूत मनवाली क्रूर शूर्पणखा को वहाँ आये हुए देखकर पूछा—हे स्त्रीरत्न! मेरे सम्मुख खड़ी हुई अंजन-अंचित करवाल-तुल्य नयनोंवाली, कलापी-समान यह स्त्री ही क्या तुम्हारी बताई हुई वह सीता है?

तब शूर्पणखा ने उत्तर दिया—अरुण कमल-जैसे नयनों, रक्त बिंबफल-समान अधर, मनोहर और उन्नत कंधों, लंबी दीर्घ बाहुओं तथा सुन्दर पुष्पमाला से भूषित वक्ष के साथ आया हुआ, अंजन-पर्वत सदृश दीखनेवाला यह दृढ धनुर्धारी रामचन्द्र है।

यह सुनकर रावण ने कहा—मैं यहाँ एक स्त्री का रूप देख रहा हूँ। हे मुग्धे ! तुम ऐसे एक पुरुष के रूप की बात कह रही हो, जो मेरे विचार में भी नहीं है, यह कैसे? हम तो दूसरों की आँखों के सामने माया उत्पन्न करके उनको भ्रम में डालनेवाले हैं। क्या क्षुद्र मनुष्य हमारे सामने कोई माया कर सकते हैं?

तब शूर्पणखा ने कहा—तुम्हारी बुद्धि सीता के ध्यान में निमग्न होकर अन्य किसी विषय में प्रवृत्त नहीं हो रही है। तुम ऐसी काम-वेदना से पीडित हो कि तुम्हारी आँखें जहाँ भी पड़ती हैं, वहाँ वही सीता दिखाई देती है। ऐसा भ्रम होना चिरकाल की बात ही है, (अर्थात्, कामुक लोग अपने प्रेम-पात्र को सर्वत्र देखते हैं) ; यह कोई नई बात नहीं है।

शूर्पणखा के यों कहने पर रावण ने उससे पूछा—ठीक है। वैसा ही होगा। किन्तु, तुम्हारी आँखों को वह राम क्यों दिखाई देता है? इसका उत्तर शूर्पणखा ने यों दिया—जिस दिन (राम) ने मेरा प्रतिकार-रहित अपमान किया, उस दिन से अबतक मैं उसे भूल नहीं पाई हूँ।

तब रावण ने कहा – सच है, तुम्हारा कथन संगत ही है। इस समय मेरी इस पीडा का निवारण किस प्रकार हो सकता है? इसका उत्तर शूर्पणखा ने दिया—तुम समस्त विश्व के एकमात्र प्रभु हो। तुम क्यों इस प्रकार दीन हो रहे हो? तुम जाओ और उस पुष्प-भूषित कुन्तलोंवाली सुन्दरी (सीता) को उठा लाओ।

यों कहकर वह (शूर्पणखा) वहाँ से हट चली। वह राक्षस (रावण) भी शक्तिहीन होकर, कुछ भी सोच नहीं पाता हुआ, व्याकुल प्राणों के साथ पड़ा रहा। उसे उस दशा में देखकर समीप खड़े रहनेवाले लोग भी काँप उठे। फिर भी, वह (रावण) अपनी शेष रही आयु के प्रभाव से मरा नहीं।

कोई मृत व्यक्ति पुनः जीवित हो उठा हो, इस प्रकार उठकर वह रावण अपने पराक्रम का स्मरण करके वहाँ स्थित लोगों से कहने लगा कि धारा-रूप में जल को प्रवाहित करनेवाली चन्द्रकान्त-शिलाओं से एक अति सुन्दर मंडप का निर्माण करो।

देवशिल्पी, रावण के मन की बात जानकर तुरन्त आ पहुँचा और अपने संकल्पमात्र से ही नहीं, किंतु हस्त-कौशल को भी दिखाकर ऐसा एक सहस्र स्तंभोंवाला अति सुन्दर मंडप निर्मित किया, जिसे देखकर ब्रह्मा भी लज्जित हो जाय।

उस (देवशिल्पी) ने उस मंडप में ऐसी चंद्रकान्त-शिलाएँ बिछाईं, जिनसे किरणों के स्पर्श के बिना ही, जल-धारा बह चलती थी। ऐसे वातायन भी निर्मित किये, जिनसे पुष्प की सुरभि से पूर्ण मन्द पवन संचरण कर सकता था। उसने सुन्दर कल्प-तरुओं का एक मनोहर और शीतल उद्यान भी बनाया।

उभरे हुए कंधोंवाला रावण एक माणिक्यमय विमान पर आरूढ होकर, उस मंडप को देखने के लिए आया। उसके दोनों पार्श्वों में, आभरणों से उज्ज्वल अप्सराएँ, गगन तक परिव्याप्त अंधकार को दूर करती हुई, अपने सुन्दर करों में ज्योति पूर्ण दीप लिये आईं।

वह अंधकार यद्यपि ऐसा था, जैसे अनेक सहस्र रात्रियों को एक करके रखा गया हो, तथापि उन सुन्दर रमणियों के वदन-रूपी शीतल चंद्रिका को बिखेरनेवाले अत्युज्ज्वल तथा अनेक सहस्र कोटि चंद्रमंडल के एक हो जाने से, वह अंधकार छिन्न-भिन्न हो मिट गया।

अति मनोहर नव रत्नों से खचित पुष्पों से युक्त कल्पतरुओं से, सूर्य को भी लज्जित करनेवाला कांतिपुंज प्रकट हो रहा था, जिससे अंधकार मिट गया और दिन का-सा प्रकाश व्याप्त हो गया। सूर्य के उदित होते ही, उसकी दीर्घ किरणों के प्रभाव से, अंधकार मिटकर प्रभात हो जाता है न? (उसी प्रकार कल्पतरुओं के प्रकाश से प्रभात हो आया।)

स्पर्श, शब्द आदि विषयों का ग्रहण करनेवाली जिसकी इंद्रियाँ एक समान मंद पड़ गई थीं, जिसका मन स्तब्ध हो गया था और जो कर्त्तव्य-ज्ञान से रहित हो गया था ऐसा वह रावण, इच्छा के आवेग से खींचा जाकर उस मंडप में इस प्रकार आकर प्रविष्ट हुआ, जिस प्रकार जन्मान्तर के समय प्राण नवीन शरीर के भीतर प्रविष्ट होते हैं।

निष्पाप तपस्या से संपन्न व्यक्तियों के सब अभीष्टों को पूरा करनेवाला तथा वर्त्तुलाकार मीनों से पूर्ण क्षीर-समुद्र ही मानों, अमृत के साथ, आ गया हो—ऐसा भ्रम उत्पन्न करनेवाले, गानेवाले भ्रमरों से आवासित, हरित वृक्षों के कोमल पल्लवों तथा पुष्प-दलों से निर्मित, शीतल पर्यंक पर आकर वह (रावण) लेट गया।

ऐसा मंद पवन, जो किसी मरनेवाले व्यक्ति के प्राणों को भी रोक सकता था, सुन्दर आभरणों से भूषित सुन्दरियों के कुंतलों की सुगंधि को लेकर, वहाँ पर यों आ पहुँचा, जैसे उस सुगंधित उद्यान में मन्मथ को भोज देने के लिए क्षीर सागर ने अमृत भेजा हो।

रक्त-बिंदुओं और अग्निकणों को बरसानेवाली आँखों से युक्त वह रावण, वातायन से मंद पवन का संचार होने पर उसका सहन नहीं कर सका और इस प्रकार घबड़ा उठा, मानों कोई, अपने घर में अजगर को घुसते हुए देखकर भयभीत हो उठा हो। फिर, अपने समीपस्थ लोगों से उसने कहा—

मानों कुएँ का थोड़ा-सा जल सारे संसार को डुबो रहा हो, इसी प्रकार, देवों में एक, यह वायु मुझे पीडित कर रहा है। मेरी आज्ञा के बिना यह पवन यहाँ किस प्रकार घुस पाया? फिर, उसने आज्ञा दी कि द्वारपालकों को शीघ्र ले आओ।

उस समय, सेवक दौड़ चले और द्वारपालकों को शीघ्र ले आये। क्रूर रावण ने कठोर नेत्रों से उन्हें देखकर पूछा—क्या तुमने मंद मारुत के वेश में आये हुए वायुदेव को भीतर आने का मार्ग दिया? तब उन द्वारपालकों ने निवेदन किया—जब आप इस स्थान में रहते हैं, तब उसे यहाँ आने से कोई रोक नहीं सकता है न?

इसपर रावण ने सोचा कि वायु पर कोप करने से कुछ प्रयोजन नहीं है। अगर मैं बरछे-जैसे नयनोंवाली सीता की कृपा को नहीं प्राप्त करूँगा, तो अभी यम आकर मेरे प्राण हर लेगा। फिर, उसने सेवकों को आज्ञा दी कि बुद्धि के कौशल से सब कार्यों को पूर्ण करनेवाले मंत्रियों को बुला लाओ।

रावण की आज्ञा पाकर वे सेवक, 'हे' ध्वनि करने के समय के भीतर ही (अर्थात्, अतिशीघ्र ही) अनेक स्थानों में दौड़े और मंत्रियों को समाचार दिया। समाचार पाते ही वे मंत्री लोग, पताकाओं से युक्त रथों पर, घोड़ों पर, शिविकाओं में तथा त्रिविध मद से युक्त गजों पर आरूढ़ होकर इस प्रकार आ पहुँचे कि उन्हें देखकर भूसुरों और देवताओं के मन भी व्याकुल हो उठे।

मन में उठे विचार को शीघ्र कार्यान्वित करनेवाले, किन्तु अब अपने कर्त्तव्य को निश्चित नहीं कर पानेवाले रावण ने अपने मंत्रियों के साथ ठीक मंत्रणा की, फिर गगन-गामी विमान पर चढ़कर अकेले ही उस मारीच के आश्रम में आ पहुँचा, जो पंचेंद्रियों का दमन करके तपस्या में निरत था।

रावण के आते ही मारीच ने, सभय तथा व्याकुल होकर काले तथा बड़े आकारवाले रावण का आगे जाकर सब प्रकार से स्वागत-सत्कार किया और उसके मुख की ओर देखकर कहने लगा--

मन में यह सोचकर चिंतित होता हुआ कि न जाने यह (रावण) किस प्रयोजन से यहाँ आया है, मारीच कहने लगा—सुन्दर तथा शीतल कल्पवृक्षों की छाया में रहकर शासन करनेवाले देवेंद्र और यमराज को भी भयभीत करते हुए राज्य करनेवाले, हे शासक! अब इस अरण्य में, मेरे इस कष्टदायक कुटीर में, दीन जन के जैसे किस प्रयोजन से आये हो? कहो।

रावण कहने लगा—अपनी शक्ति-भर प्रयत्न करके मैं अपने प्राणों को रोके हुआ हूँ। अब शिथिल हो रहा हूँ। मेरे महत्त्व, कीर्त्ति, प्रभाव—सब मिट गये हैं। इसका क्या कारण है, मैं उसके बारे में तुमसे किस प्रकार शांति के साथ कह सकता हूँ? इस घटना से हमें ऐसा अपयश प्राप्त हुआ है कि देवताओं से हमें लज्जित होना पड़ा है।

हे शूलधारी! मनुष्य पराक्रम दिखाने लगे हैं? उनके खड्ग से तुम्हारी भतीजी की नाक और कान कट गये हैं। विचार करने पर मेरे और तुम्हारे वंशों के लिए इससे बढ़कर और क्या अपमान हो सकता है? तुम्हीं कहो।

एक मनुष्य ने दृढ धनुष को लेकर, बड़े क्रोध के साथ अधिक संख्या में आकर युद्ध करनेवाले मेरे भाइयों की आयु को समाप्त कर दिया। यह तो अबतक की हमारी सब विजयों के लिए कलंक है न? दृढ शूलधारी तुम्हारे भतीजे इस प्रकार मर मिटे। वह मनुष्य तो अपनी दोनों भुजाओं को ही लेकर अबतक सुखी रहता है न?

मेरे मन की अग्नि शान्त नहीं हुई है। मरण की वेदना भोग रहा हूँ। वे मेरे समान नहीं हैं। अतः, मैं उनसे युद्ध करना नहीं चाहता हूँ। मैं यहाँ इसलिए आया हूँ कि तुम्हारी सहायता लेकर उन (मनुष्यों) के साथ रहनेवाली, प्रवाल को भी परास्त करनेवाले लाल अधर से युक्त, लता-समान सुन्दरी को उठा ले आऊँ और अपने अपमान का बदला लूँ--यों रावण ने कहा।

भड़कती हुई ज्वाला में जैसे लोहे को पिघलाकर डाला गया हो, उसी प्रकार रावण के वचन मारीच को तप्त करने लगे। उसका कथन पूरा होने के पूर्व मारीच ने

'छिः ! छिः !' कहते हुए अपने कान बंद कर लिये। उसके मन से भय दूर हो गया और क्रोध उत्पन्न हुआ। फिर वह (मारीच) कहने लगा—

हे राजन् ! तुम अपना जीवन समाप्त कर रहे हो। तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। यह तुम्हारा दोष नहीं है। मेरा विचार है कि यह कर्मों का ही परिणाम है। मेरा कथन तुम्हें मीठा नहीं लगेगा। तो भी मैं यह हित-वचन बताता हूँ-—यों कहकर उस (मारीच) ने अनेक हितकारी उपदेश उस (रावण) को दिये।

तुमने स्वयं अपने हाथों से अपने करों और शिरों को काट-काटकर अग्नि में होम किया था और दीर्घकाल तक भूखे रहकर, अपने प्राणों को पीडित करके तपस्या की थी। उसके पश्चात् ही सारी संपत्ति प्राप्त की। उस संपत्ति को यदि तुम अब अनुचित कार्य करके खो डालोगे, तो क्या उसे पुनः प्राप्त कर सकोगे ?

हे विचारणीय वेदों के पंडित ! तुमने अपूर्व तपस्या करके संपत्ति प्राप्त की है। यह धर्म के प्रभाव से हुआ या अधर्म के प्रभाव से ? बताओ तो। तुमने यह महत्त्व धर्म के प्रभाव से ही तो पाया है ? अब क्या उसे अधर्म करके खो देना चाहते हो ?

जो राजा अपने ऊपर विश्वास करनेवाले मित्रों के राज्य का हरण करते हैं, जो राजा न्यायेतर मार्ग से अपनी प्रजा से अधिक कर उगाहते हैं और जो व्यक्ति पर-पुरुष की गृहिणी को अपने वश में करते हैं—इन सबके धर्म का देवता स्वयं ही विनाश कर देता है। यह तुम जान लो, हे तात ! लोक-पीडा उत्पन्न करनेवालों में से कौन उद्धार पा सका है ?

स्वर्ग का अधिपति (इन्द्र) अहल्या के रूप की आसक्ति के कारण दुर्दशा-ग्रस्त हुआ। उस (इंद्र) के जैसे अनेक लोग हुए हैं, जो पर-स्त्री के मोह में पड़कर अधःपतन को प्राप्त हुए हैं। गौरवर्ण लक्ष्मी के समान अनेक सुन्दरियाँ तुम्हारे भोग की भागिनी हैं। तो भी तुमने बिना सोचे-समझे कुछ कह दिया है। तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है।

यदि तुम अपनी इच्छा के अनुसार काम भी करो, तो भी इससे पाप और अपयश ही तुम्हारे हाथ आयेंगे। तुम्हारी इच्छा पूर्ण नहीं होगी, नहीं होगी। संसार को उत्पन्न करनेवाला राम शाप-सदृश कठोर शरों से तुम्हारी शक्ति को मिटाकर तुम्हारी संतति और तुम्हारे सारे कुल को मिटा देगा, यह निश्चित है।

मेरे ऐसा कहने पर भी, न जाने क्यों, तुम कुछ ठीक विचार नहीं कर रहे हो। अहो ! तुम्हारी सेना का सबसे बड़ा सेनापति खर अपनी सेना के साथ उस (राम) के एक ही शर से मारा गया। वह (राम) अब सारे राक्षस-कुल को मिटानेवाला है।

क्रूर व्यक्तियों में वीर विराध से बढ़कर कौन था ? वह (राम के) एक ही शर से, परलोक में पहुँच गया, तो अब हममें से कौन बचनेवाला है ? जब मैं यह बात सोचता हूँ, तब मेरा मन व्याकुल हो जाता है। अब तुम अपने वचनों से मेरी चिन्ता को और भी बढ़ा रहे हो।

जिनको मरना था, वे मर गये। उन मरनेवालों के जैसा काम मत करो। यदि तुम भी वैसा ही कार्य करोगे, तो क्या तुम को भाग्य बचा सकेगा ? संसार में कितने ही

शासक हुए, उनमें अधर्मी राजाओं ने कभी सुख नहीं पाया। इस संसार में कौन चिरकाल तक जीवित रहनेवाला है। सब मिट जानेवाले ही तो हैं?

उस वीर (राम) से जिसने अपने बाण से मेरे भाई (सुबाहु) को और मेरी माता (ताडका) को मार डाला और जिसके निकट खड़े रहनेवाले उसके भाई से मेरा सारा पराक्रम मिट गया, उनके स्मरण से ही मेरा व्याकुल मन काँप उठता है। राम के ऐसे पराक्रम से मैं बहुत चिन्तित हूँ।

हम इस सत्य को प्रत्यक्ष देखते हैं कि सब स्थावर तथा जंगम पदार्थ अस्थिर हैं, नष्ट होनेवाले हैं, अतः हे तात! कोई नीच कार्य करने का विचार न करो; मेरी बात सुनो, अपनी महान् समृद्धि के साथ तुम चिरकाल तक जियो। इस प्रकार, मारीच ने (रावण से) कहा।

यह सुनकर रावण अपनी भयंकर आँखों से आग उगलने लगा। उसकी भौंहें तन गईं; बहुत क्रुद्ध होकर उसने कहा—तुम कहते हो कि मेरी ये पराक्रमी सुन्दर भुजाएँ, जिन्होंने गंगा को अपनी जटा में धारण करनेवाले (शिव) को उसके कैलास के सहित, एक हथेली पर उठाया था, अब एक मनुष्य से पराजित होनेवाली हैं।

अभी जो घटना हुई, उसके बारे में तुमने नहीं सोचा; पर निःसंकोच होकर मेरी निंदा की। जिन्होंने मेरी बहन के मुँह में एक गढ़ा-सा खोद डाला हो, उन (मनुष्यों)की तुमने प्रशंसा की, यह तुम्हारा एक अपराध है। फिर भी, मैंने इसके लिए क्षमा कर दिया।

तब मारीच, यह सोचकर भी कि उसके ऊपर क्रोध करनेवाला वह निर्भीक (रावण) उसके वचनों को सुनकर पुनः क्रुद्ध होगा – चुप नहीं रहा। किन्तु, फिर कहा—तुम्हारा यह क्रोध मुझ पर नहीं है, किंतु यह स्वयं तुम पर ही है और तुम्हारे कुल पर है।

यदि तुम यह सोचते हो कि तुमने कैलास पर्वत को उठाया था, तो यह भी तो सोचो कि जब जनक ने (राम से कहा कि यह धनुष शिवजी के द्वारा झुकाया हुआ पर्वत ही है, तुम इसे चढ़ाओ, तो राम ने एक क्षण में अनायास ही उस (धनुष) को हाथ में उठा लिया और उस पर डोरी चढ़ाने के निमित्त उसे झुकाकर तोड़ दिया। वह पर्वताकार शिव-धनुष गगन को छूनेवाला मेरु-पर्वत ही तो था।

तुम (राम के प्रभाव के बारे में) कुछ नहीं जानते हो। मेरे वचन को भी स्वीकार नहीं करते हो। वह (राम), युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर पुष्पमाला धारण करे, इसके पूर्व ही, उसके शत्रुओं के प्राण लुट जाते हैं। तुमने मूढता से यह समझ रखा है कि वह (सीता) एक मानव-स्त्री मात्र है। क्या वह, सीता का अपना रूप है? वह तो राक्षसों के पाप के परिणाम की ही प्रतिमूर्त्ति है।

मेरे मन में, यह सोचकर कि (यदि तुम सीता का हरण करोगे, तो) तुम अपने बंधुओं-सहित मिट जाओगे, नहीं बच सकोगे, ऐसी धड़कन उत्पन्न हो रही है, जैसे नगाड़ा बज रहा हो। इसका तुम विचार नहीं करते। अज्ञान में पड़कर जो विष पीने जा रहा हो, उससे उसके समीप रहनेवाले ज्ञानी व्यक्ति, क्या यह कहेंगे कि यह कार्य ठीक है?

उग्र तथा कलंक-रहित विश्वामित्र के द्वारा प्रदत्त अनेक ऐसे शस्त्र राम की आज्ञा में हैं, जो शिव आदि देवों के लोकों को तथा सब भुवनों को भी क्षण काल में विध्वस्त कर सकते हैं।

जिस परशुराम ने एक सहस्र बलिष्ठ हाथोंवाले (कार्त्तवीर्य अर्जुन) को अपने परसे से क्षण काल में काटकर ढेर कर दिया था, उस (परशुराम) की सारी शक्ति को, उसके दृढ धनुष के साथ ही, राम ने अपने वश में कर लिया था। क्या वैसा बल हमारे लिए प्राप्त करना संभव है?

काम-पीडा के बढ़ जाने से तुम दुर्बल हो गये हो। अतः, तुमने ऐसे वचन कहे। यह कार्य विनाशकारी है। मैं तुम्हारा मामा हूँ और तुम्हारे कुल का वृद्ध पुरुष हूँ। मैं कहता हूँ, हे तात! यह पाप-कार्य छोड़ दो।—इस प्रकार मारीच ने कहा।

राक्षसराज ने, अपने कथन के बारे में किंचित् विचार करने का परामर्श देनेवाले उस मारीच का धिक्कार करते हुए कहा—तुम, अपनी माता को मारनेवाले उस (राम) से डरकर जी रहे हो। क्या तुम्हें एक वीर पुरुष मानना उचित है?

स्वर्गवाली देवी के निवासों को भस्म करके मैं सब लोकों पर इस प्रकार शासन-चक्र चलाता हूँ कि दिग्गज सब भयभीत होकर भागकर छिप गये हैं और देवता भी दुर्दशा-ग्रस्त हो गये हैं। क्या ऐसे मुझको दशरथ के वे पुत्र कष्ट दे सकेंगे?—यह मेरी शक्ति भी अच्छी है!

मैं त्रिभुवन का एकच्छत्र राज्य वहन करता हूँ। यदि मुझे कोई शक्तिशाली शत्रु प्राप्त हो, तो उससे बढ़कर मेरे आनंद का विषय कोई दूसरा नहीं होगा। मेरी आज्ञा के अनुसार तुम्हें कार्य करना है। राजा के कार्य-संपादन करनेवाले मंत्री के कर्त्तव्य से क्या तुम स्खलित हो जाओगे?

अगर तुम मेरी आज्ञा का अतिक्रमण करोगे, तो मैं तीक्ष्ण करवाल से तुम्हें काट दूँगा। किन्तु, अपने इच्छित कार्य को पूर्ण किये बिना नहीं रहूँगा। यदि तुम जीवित रहना चाहते हो, तो इन घृणास्पद वचनों को छोड़कर मेरे मन की बात करो। यों रावण ने कहा।

राक्षसराज के यह वचन कहने पर, मारीच ने मन में विचार किया—जिसके मन में गर्व उत्पन्न होता है, वह उसी समय मिट जाता है। यही कथन सत्य है। लोग मन में काम-वासना उत्पन्न होने पर, उसी कामना पर प्राण छोड़ने के लिए भी तैयार हो जाते हैं—और वह तपाये हुए पात्र में डाले गये जल के जैसे ही, उफनकर, भीतर शांत हो गया। वह फिर कहने लगा—

तुम्हारे हित की कामना से मैंने यथार्थ बात कही। होनेवाले अपने किसी अहित को सोचकर और उससे डरकर मैंने कुछ नहीं कहा। विनाश का काल आ जाता है, तो भला भी बुरा लगता है। हे क्षुद्र स्वभाववाले! बताओ, मुझे क्या करना है? यों मारीच ने कहा।

मारीच के यह कहते ही रावण ने अपना क्रोध शान्त कर उसका आलिंगन किया

और कहा—पर्वत के समान पुष्ट कंधोंवाले ! मन्मथ के उग्र बाणों से मरने की अपेक्षा राम के बाण से मरना ही कीर्त्तिदायक है न ? अतः, मंद मारुत से मेरे हृदय में काम उत्पन्न करनेवाली (सीता) को ला दो।

रावण के यह वचन कहते ही मारीच बोला—(मेरी माँ को मारनेवाले) राम से अपना बदला लेने के लिए मैं एक बार, दो-एक राक्षसों को साथ लेकर तपोवन में गया था। तब राम के बाणों से मेरे साथी मरकर गिर पड़े। भयभीत होकर मैं भाग आया। ऐसा मैं इस समय क्या कार्य कर सकता हूँ ? बताओ।

मारीच की बातें सुनकर रावण ने कहा- तुम्हारी माता को मारनेवाले इस राम के प्राण हरने के लिए मैं तैयार हूँ। तुम्हारा यह प्रश्न कि मैं जाकर क्या करूँ, उचित ही है। हमारा कर्त्तव्य माया से धोखा देकर उस सीता का अपहरण करना ही है।

मारीच ने कहा—हे राजन् ! अब मैं और क्या कह सकता हूँ ? उस (राम) की देवी को पराक्रम से हरण करना उचित है। धोखे से हरण करना नीच कार्य है। तुम (राम से) युद्ध करके, विजय पाकर सीता को अपना लो और अपने प्रताप को बढ़ाओ। ऐसा करना नीतिशास्त्र के अनुकूल होगा।

अपने हित-चिंतक (मारीच) का कथन सुनकर रावण हँस पड़ा और बोला - उन मनुष्यों को जीतने के लिए क्या सेना की भी आवश्यकता है ? क्या मेरे विशाल हाथ का करवाल पर्याप्त नहीं है ? फिर भी, सोचने की बात यह है कि यदि वे दोनों मनुष्य मर जायेंगे, तो वह नारी (सीता) एकाकिनी होकर अपने प्राण त्याग देगी न ? अतः, धोखे से उस नारी का हरण करना ही ठीक है।

यह सुनकर मारीच ने सोचा—मैं ऐसा उपाय बताता हूँ कि राम की देवी का स्पर्श करने के पूर्व ही इस (रावण) के शिर (राम के) बाणों से बिखर जायँ, पर यह मेरी बात नहीं मानता। अब मेरे जीवित रहने का कोई मार्ग नहीं है। विधि के परिणाम को कौन जान सकता है ? अब इसकी आज्ञा का पालन करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है।

फिर उस (मारीच) ने कहा—अब मुझे कैसी माया रचनी है, बताओ। रावण ने कहा—तुम एक सोने के हिरण का रूप धारण कर लो और उस सीता के मन को ललचाओ। मारीच वैसा करने की सम्मति प्रकट करके चल पड़ा। उज्ज्वल शूलधारी राक्षसराज (रावण) भी दूसरे मार्ग से चला गया।

मारीच, पूर्वकाल में राम के बाण का प्रभाव जान चुका था। अतः, वह स्वयं हरिण का रूप लेकर वहाँ जाना नहीं चाहता था। किंतु, रावण की वैसी आज्ञा होने के कारण वह गया। अब उसके मन की दशा और उसके व्यापारों का वर्णन करेंगे।

मारीच का मन, अपने बन्धुओं का स्मरण करके दुःखी होता। वह वीर राम-लक्ष्मण से भयभीत होकर चक्कर खाता। गहरे तालाब का पानी विषमय हो जाय, तो उसमें रहनेवाली मछली जिस प्रकार विकल होती है, उसी प्रकार मारीच का मन भी व्याकुल हुआ। उसकी दशा का अनुमान करना भी कठिन है।

विश्वामित्र के यज्ञ के समय राम से पीडित होकर और (दंडकारण्य में) पहले एक बार हरिण-वेष में जाकर भी जो मरा नहीं, वह मारीच अब तीसरी बार प्रयत्न करता हुआ राघव के आश्रम में जा पहुँचा।

उसने ऐसे एक स्वर्ण-हरिण का रूप धारण किया, जिसकी अनुपम उज्ज्वल देह की कांति से गगन और धरती भी प्रकाशित हो उठी। उत्तम हरिणी-समान सीता के मन में आकर्षण उत्पन्न करने के विचार से वह (पर्णकुटी के पास) गया।

किसी पर आसक्ति नहीं रखनेवाले मन तथा कपट से युक्त वेश्याओं की ओर जिस प्रकार सब कामुक व्यक्ति आकृष्ट होते हैं, उसी प्रकार उस स्वर्ण-हरिण की ओर सब प्रकार के हरिण आकृष्ट होकर उसको घेरकर चले।

उसी समय सीतादेवी, अपने अति सुन्दर कंकण-भूषित कोमल कर-कमलों से पुष्प-चयन करती हुई, इस प्रकार वहाँ चली आई कि देखनेवालों के मन में यह संदेह उत्पन्न होने लगा कि इसके कटि है या नहीं।

जिसपर विपदा आनेवाली होती है, वे स्वप्न में ऐसे रूपों को देखते हैं, जिनका विचार तक वे अपने मन में कभी नहीं लाये होंगे। इसी प्रकार, सीता देवी ने, जिनको, इसके पूर्व कभी किसी को न प्राप्त हुई बड़ी विपदा आनेवाली थी, उस माया-मृग को देखा।

रावण की आयु अब समाप्त होनेवाली थी, और उसकी मृत्यु से धर्म की सुरक्षा होनेवाली थी। अतः, सीता उस (माया-मृग) को देखकर, यह नहीं जानती हुई कि यह धोखा है, उसके न चाहने योग्य सौंदर्य पर मुग्ध हो गई।

वह हिरण ज्यों ही अर्धचंद्र समान ललाटवाली सीता के सम्मुख आकर खड़ा हुआ, त्यों ही वह (सीता) उसके प्रति अत्यधिक आकर्षण से भरकर, इस विचार से कि राम से उस हरिण को पकड़ लाने को कहें, सत्वर विजयी धनुर्धारी (राम) के निकट जा पहुँची।

सीता ने हाथ जोड़कर राम से कहा—हमारे आश्रम में अति उत्तम स्वर्णमय, दूर तक अपना प्रकाश फेंकनेवाला, माणिक्य तथा रत्नमय सुदृढ करों और कर्णों से शोभायमान एक हरिण आया है। वह अत्यन्त दर्शन-मधुर है।

ऐसा हरिण संसार में कहीं नहीं हो सकता, ऐसा किंचित् भी विचार किये बिना ही, हमारे प्रभु और कमलभव के पिता (विष्णु के अवतारभूत) राम, हरिण-तुल्य देवी की बात सुनकर उमंग से भर गये।

यह मुझे चाहिए—यों अपनी देवी के कहने पर, राम ने यह नहीं कहा कि यह (हरिण) चाहने योग्य नहीं है। किन्तु, यह कहा कि आभरणधारी, स्वर्णलता-तुल्य हे देवि! हम उस हरिण को देखेंगे। तब अनुज लक्ष्मण ने उनका मनोभाव जानकर उस समय एक वचन कहा—

(उस हरिण के) स्वर्णमय देह है, माणिकमय पैर, पूँछ और कान हैं और वह कुदकता है—यों कहने से यह स्पष्ट है कि वह कोई मायामय मृग है। हे प्रभु! इसके विपरीत उसे यथार्थ मृग मानना ठीक नहीं है।

तब राम ने कहा — हे मेरे अनुज ! यथार्थ विवेक से सब कुछ जाननेवाले व्यक्ति भी इस अस्थिर संसार की दशा को पूरा-पूरा नहीं जान सकते। इस संसार में अनेक सहस्र कोटि प्राणी हैं। अतः, संसार में कोई वस्तु असंभव है — ऐसी बात नहीं है।

तुम्हारा मन क्या कहता है? हम अपने कानों से सृष्टि की विचित्र वस्तुओं के बारे में सुनते हैं। क्या तुम नहीं जानते कि पूर्वकाल में सात स्वर्णमय हंस[1] पैदा हुए थे?

सृष्टि के प्राणियों की कोई रूप-व्यवस्था या कोई सीमा नहीं है। यों राम ने अपने भाई से कहा। इतने में मुग्धा (सीता) देवी चिन्ता करने लगी कि वह स्वर्ण-मृग वन के मार्गों में जाकर कहीं अदृश्य न हो जाय।

इस प्रकार चिन्ता करनेवाली देवी का मनोभाव जानकर, अंजन-पर्वत सदृश प्रभु, यह कहते हुए कि हे आभरणों से भूषित देवि ! कहाँ है वह हरिण? मुझे दिखाओ ! — चल पड़े। मुखरित वीर वलयधारी अनुज (लक्ष्मण) अपने भ्राता का यह कार्य देखकर चिन्तामग्न हो, उनके पीछे-पीछे चले। उसी समय अवश्यंभावी विधि के विधान के समान आया हुआ वह माया-मृग सम्मुख दिखाई पड़ा।

सम्मुख दिखाई पड़नेवाले उस हरिण को देखकर रामचन्द्र अपनी सूक्ष्म बुद्धि से कुछ विचार न करके कह उठे — अहो ! यह तो बहुत सुन्दर है। उन (सर्वज्ञ राम) के इस प्रकार कहने का कारण क्या था? विष्णु ने सर्पशय्या को छोड़कर धरती पर (राम के रूप में) अवतार लिया था, तो वह देवताओं के पुण्यफल के परिणामस्वरूप ही तो था? वह (भाग्य) क्या व्यर्थ होगा? (अर्थात्, देवताओं के भाग्य-परिपाक के कारण ही रामचंद्र मायामृग को पकड़ने के लिए तैयार हुए थे।)

फिर, श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा — हे भाई ! इसे देखो। इसका उपमान क्या हो सकता है? इसका उपमान यह स्वयं है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपमान नहीं है। इसके दाँत उज्ज्वल मुक्ता-तुल्य हैं। हरी घास पर बढ़ाई गई इसकी जीभ बिजली के सदृश है। इसकी देह रक्त स्वर्ण के तुल्य है, जिसपर चाँदी की-सी चित्तियाँ शोभित हो रही हैं।

हे दृढ़ धनुर्धारी ! इस हरिण की सुन्दरता को देखने पर स्त्री हो या पुरुष, — कौन इसपर मुग्ध नहीं होगा? रेंगनेवाले और उड़नेवाले सब प्राणी इसे देखकर पिघल उठते हैं और इस प्रकार आकर घेर लेते हैं, जिस प्रकार दीपक पर पतंग आकर गिरते हैं।

---

१. एक कथा प्रसिद्ध है कि पूर्वकाल में भरद्वाज मुनि के सात पुत्र मानससरोवर पर योग-साधना करते थे। किसी कारण से वे योगभ्रष्ट हो गये और दूसरे जन्म में कौशिक ऋषि के पुत्र होकर उत्पन्न हुए। उस जन्म में एक दिन अत्यन्त क्षुधा से पीडित होकर उन्होंने अपने गुरु गार्ग महर्षि की गाय को मारकर खा डाला। किन्तु, खाने के पूर्व पितरों का श्राद्ध कर उन्हें तृप्त किया। इस पाप के कारण उन्हें अनेक योनियों में जन्म लेना पड़ा। किन्तु, पितरों को तृप्त करने के पुण्यफल से उन्हें सब जन्मों में अपने पूर्वजन्मों का स्मरण बना रहता था। एक बार वे सात स्वर्णहंस होकर जनमे थे। कदाचित् इसी कथा की ओर इस पद्य में संकेत है। — अनु०

आर्य (राम) के इस प्रकार कहने पर लक्ष्मण ने उस हरिण को देखकर यह स्पष्ट रूप से जान लिया कि यह (हरिण) सच्चा नहीं है। फिर कहा—हे सुरभित तथा सुन्दर मालाधारी ! यह हरिण स्वर्ण का भले ही हो, तो भी इससे हमें क्या प्रयोजन है? अतः, हमें अपने स्थान पर लौट जाना ही उचित है।

लक्ष्मण के ये वचन समाप्त करने के पूर्व ही उस अतिरूपवती (सीता) ने अनघ (रामचंद्र) को देखकर कहा—हे चक्रवर्ती-पुत्र ! मन को आकृष्ट करनेवाले इस हरिण को शीघ्र पकड़ लाओ। जब हम (वनवास की) अवधि पूरा करके नगर को लौटेंगे, तब यह खेलने के लिए अत्यंत उपयुक्त होगा।

'है या नहीं'— यों संदेह उत्पन्न करनेवाली कटि से युक्त (सीता) के यह कहने पर प्रभु उस हरिण को पकड़ने के लिए सन्नद्ध हुए, यह देखकर स्पष्ट विवेकवाले भाई (लक्ष्मण) ने उनसे निवेदन किया —हे भ्राता ! आप सोचकर जान सकते हैं कि हमें धोखा देने के लिए राक्षसों के द्वारा भेजा गया यह मायामय मृग है।

तब देवताओं के कष्टों को दूर करने के लिए अवतीर्ण प्रभु ने उत्तर दिया—यदि यह मायामृग ही है, तो भी मेरे बाण से यह मरेगा। मैं उस दशा में एक क्रोधी (क्रूर) राक्षस का वध करने का कर्त्तव्य पूरा करूँगा। यदि यह यथार्थ हरिण है, तो इसे पकड़कर लाऊँगा। इन दोनों बातों में कोई भी अनुचित नहीं।

इसपर लक्ष्मण ने फिर कहा—हे वज्रसदृश दृढ तथा अतिसुन्दर कंधोंवाले ! इस (हरिण) के पीछे किस प्रकार के राक्षस छिपे हैं—यह हमें विदित नहीं है। उनकी माया कैसी है—इससे भी हम परिचित नहीं हैं। यह हरिण क्या है—यह भी हमने समझा नहीं है। नीति-निष्ठ महाजनों ने जिस आखेट को घृणित और वर्ज्य कहा है, उसे करना कीर्त्तिकारक नहीं होता।

यह सुनकर चतुर्मुख के पिता (विष्णु के अवतार, राम) ने अपने उत्तम भाई से कहा—राक्षस वैर रखनेवाले हैं। उनकी संख्या अपार है। उनकी माया प्रभूत है—इन बातों को सोचकर ही क्या हम अपने व्रत को छोड़ दें? यह हास्यास्पद बात होगी। अतः, (हरिण) को पकड़ने का यह कार्य उचित ही है।

तब लक्ष्मण ने कहा - हे भ्राता ! योग्य कार्यों को ठीक सोच-समझकर करना उचित है। इस (हरिण) को पकड़ लाने के लिए मैं जाऊँगा। इसे यहाँ भेजकर इसके पीछे छिपे रहनेवाले राक्षस असंख्य भी क्यों न हों, उन सबको मैं अपने धनुष पर अनेक तीक्ष्ण बाण चढ़ाकर मिटा दूँगा। यदि यह मायामय मृग न हो, तो इसे पकड़कर ले आऊँगा।

उस समय हंसिनी-तुल्य उस (सीता) ने, गद्गदकंठ से शुकी की जैसी अमृत-वर्षिणी वाणी में कहा—हे नाथ ! क्या तुम स्वयं जाकर इस (हरिण) को नहीं पकड़ लाओगे? फिर रक्त रेखाओं से संयुक्त नीलोत्पल-जैसे अपने नयनों से मोती जैसे अश्रु-बिंदु बरसाती हुई और मान करती हुई पर्णशाला की ओर चल पड़ी।

इस प्रकार जानेवाली सीता का रोष देखकर रक्षक प्रभु ने (लक्ष्मण से) कहा—

हे सुन्दरमाला-भूषित ! इस हरिण को मैं स्वयं पकड़कर शीघ्र लौट आऊँगा। वन में रहनेवाली कलापी-समान सीता की रक्षा करते हुए तुम यहाँ रहो—यों कहकर बरछे-जैसे तीक्ष्ण बाण और धनुष लेकर सत्वर चल पड़े।

तब लक्ष्मण ने यह कहकर कि पहले (विश्वामित्र के) यज्ञ के समय आये हुए तीन राक्षसों में से (अर्थात्, ताडका, सुबाहु और मारीच—इनमें से) एक राक्षस हमसे बचकर निकल गया था। हे प्रभु ! मेरा अनुमान है कि उस समय बचकर भागा हुआ मारीच ही इस रूप में अब यहाँ आया है। आप सत्य को देखेंगे। जाइए। आपकी जय हो। लक्ष्मण ने हाथ जोड़कर उन्हें नमस्कार किया और लक्ष्मी-तुल्य सीता के निवास-भूत कुटीर के बाहर पहरा देते हुए खड़े रहे।

पर्वत-समान उन्नत कंधोंवाले रामचंद्र ने अपने विवेकवान् भाई के वचनों पर ध्यान नहीं दिया और, पूर्णचंद्र का उपमान बननेवाले सुन्दर मुख से शोभित (सीता) देवी के मान का स्मरण करते हुए, सिंदूर और प्रवाल के जैसे रक्तवर्ण अपने मुँह पर मंदहास भरकर उस हरिण का पीछा करते हुए चल पड़े।

वह हरिण मंद-मंद पैर रखता हुआ कभी चलता, कभी स्थिर खड़ा होता। फिर, घबराकर झपटता और कभी कान खड़े करके अपने खुरों को वक्ष से सटाता हुआ उछल पड़ता एवं अपनी गति से प्रभंजन और मन को भी मानों नवीन गति सिखाने लगता।

राम ने, त्रिभुवन को नापनेवाले अपने पैर को उठाकर आगे रखा। क्या उस चरण की पहुँच से परे रहनेवाला कोई लोक भी हो सकता है ? यों राम ने (उस हरिण का) पीछा किया। उन राम के उस समय के वेग के बारे में इससे अधिक क्या कह सकते हैं कि उन्होंने अपनी अनुपम सर्वव्यापिता को प्रकट किया ?

वह (हरिण) पर्वत पर चढ़ता, मेघों के मध्य कूद पड़ता। उसका पीछा करने पर वह बहुत दूर भाग जाता। उसका पीछा करना छोड़कर विलंब करें, तो इतना निकट आ जाता कि हाथ बढ़ाकर उसे छू सकें। स्थिर खड़ा हुआ-सा दिखता, किन्तु झट उछलकर भाग जाता। इस प्रकार, वह (हरिण), धन पर ललचानेवाली वारनारियों के मन के समान संचरण करता। अहो !

तब उदार स्वभाववाले प्रभु ने विचार किया—इस (हरिण) का रूप कुछ है और इसके कार्य कुछ और हैं। पहले ही मेरे अनुज ने जो सोचा, वह ठीक ही लगता है। यदि मैं ठीक-ठीक विचार करता, तो इसके पीछे नहीं आता। राक्षसों की माया के कारण ही मुझे यह क्लेश उठाना पड़ रहा है।

इतने में वह मायावी राक्षस यह सोचकर कि यह (राम) अब मुझे पकड़ेगा नहीं, किंतु अपने बाण से मुझे परलोक में भेजने की बात सोच रहा है—अतिवेग से गगन में उड़ गया।

उसी क्षण प्रभु ने भी अपने चक्रायुध के समान अवार्य एक रक्तवर्ण बाण को यह आज्ञा देकर छोड़ा कि यह हरिण जहाँ भी जाये, वहाँ उसका पीछा करता हुआ जा और उसके प्राण हर ले।

वह दीर्घ, तीक्ष्ण तथा पत्राकार बाण, उस मायावी के वक्ष में जा लगा। तुरन्त वह (मारीच) अपने खुले मुँह से (हा लक्ष्मण ! हा सीते ! कहकर) पुकार उठा और अष्ट दिशाओं और उनसे परे भी प्रतिध्वनि करता हुआ एक पर्वत के जैसे गिर पड़ा।

ज्योंही वह क्रूर राक्षस अपने यथार्थ रूप में मरकर गिरा, त्योंही राम अपने उस भाई के बारे में, जिसने उस (हरिण को पकड़ने के) प्रयत्न को अहितकारी बताया था, सोचने लगे—मेरा वह भाई चतुर है। मेरे प्राणों के समान प्रिय है। मेरा वह चतुर अनुज मेरा उद्धार करनेवाला है।

फिर, रामचंद्र ने उस मारीच की देह को निकट जाकर देखा, जो दिगंत को अपनी पुकार से प्रतिध्वनित करता हुआ गिरा था, और स्पष्ट रूप से यह जान लिया कि वह वही मारीच है, जो पहले कलंक-रहित विश्वामित्र के महायज्ञ के समय आया था।

फिर, यह सोचकर वे (राम) चिंतित हुए कि दारुण बाण ज्योंही उसके वक्ष में लगा, वह अपनी माया से मेरे कंठ स्वर का अनुकरण करके पुकार उठा। वह ध्वनि सुनकर मेघ-समान नयनोंवाली (सीता) देवी चिंतित हुई होंगी।

मेरा भाई इस (हरिण) को देखते ही समझ गया था कि यह मायावी मारीच है। वह मेरे पराक्रम को समझने की बुद्धि रखता है। अतः, इस (मारीच) की पुकार के यथार्थ तत्त्व को (सीता को) वह समझा देगा। यों विचार कर राम स्वस्थचित्त हुए।

फिर, यह विचार कर कि यह (मारीच) केवल मरने के उद्देश्य से ही यहाँ नहीं आया होगा, हो न हो, कोई षड्यन्त्र करने का उपाय करके ही आया है, इसकी पुकार से कोई हानि उत्पन्न होने की संभावना है, अतः, ऐसी कोई विपदा उत्पन्न होने के पूर्व ही पर्णशाला को लौट जाना उचित है। रामचंद्र लौट पड़े। (१–२५२)

●

अध्याय ८

सीता-हरण पटल

शंखों से पूर्ण अनुपम समुद्र के जैसे सुन्दर स्वरूपवाले (राम) के संबंध में हमने वर्णन किया। अब सुरभिपूर्ण पुष्पालंकृत केशोंवाली लता-सदृश (सीता) देवी के सम्बन्ध में कहेंगे।

मारीच ने अपने दाँत पीसकर, अपने कंदरा के समान मुँह को खोलकर जो करुण पुकार की थी, वह ज्योंही सीता के कानों में पड़ी, त्योंही वह वृक्ष पर से धरती पर गिरी हुई कोयल के समान व्याकुल होकर छाती पीटती हुई मूर्च्छित हो गई।

घने कुंतलोंवाली वह (सीता) देवी अवलंब से छूटी हुई लता के समान, और वज्र-ध्वनि के श्रवण से भयभीत हुए सर्प के समान मूर्च्छित होकर धरती पर लोट गई। फिर,

(संज्ञा पाकर) रोती हुई कहने लगी—हा ! मैंने अज्ञान में पड़कर हरिण को पकड़कर लाने की बात कही और उसके फल-स्वरूप अपने जीवन-सर्वस्व को खो बैठी।

फिर, सीता ने लक्ष्मण से कहा—कलंक-रहित शुभगुणों से पूर्ण हमारे प्रभु, राक्षस की माया से विपदा-ग्रस्त हो गये हैं—यह विषय जानने के पश्चात् भी उनके भाई, तुम अभी तक मेरे निकट ही खड़े हो ? क्या यह उचित है ?

तब उस सत्यनिष्ठ (लक्ष्मण) ने समझाया—क्या आपका यह कथन उचित है कि इस लघु संसार में राम से भी अधिक पराक्रमी व्यक्ति है ? स्त्रीजनोचित बुद्धि के कारण ही आपने ऐसा कहा है।

हे स्त्रीत्व-गुण से पूर्ण देवि ! सप्त समुद्र, चतुर्दश भुवन, सप्त कुलपर्वत, इन सब प्रदेशों के निवासियों के क्षुद्र बल से क्या युद्ध में राघव का विशिष्ट पराक्रम कभी घट सकता है ? (अर्थात्, कम नहीं हो सकता है।)

भूमि, जल, पवन, आकाश और अग्नि नाम के जो पदार्थ हैं, वे सब उन (राम) के क्रोध करने पर घबरा उठते हैं। मेघ-सदृश काले वर्णवाले उन कमल-नयन को आपने क्या समझा है, जो आप इस प्रकार व्याकुल हो रही हैं ?

क्या रामचंद्र निशाचरों से परास्त एवं विपदा-ग्रस्त होकर दुहाई देंगे ? यदि कभी उन्हें वैसी दुहाई देनी भी पड़े, तो सारा ब्रह्मांड अस्तव्यस्त हो जायगा और ब्रह्मा प्रभृति सब जीव विनष्ट हो जायेंगे।

(उनके बल के विषय में) और क्या कहा जाय ? हमारे प्रभु रामचन्द्र, जिन्होंने भयंकर त्रिपुरों को जला देनेवाले और भूमि और स्वर्ग के निवासियों के द्वारा प्रशंसित शिवजी के धनुष को तोड़ दिया था, उनके बल की अपेक्षा अधिक बल क्या किसी में हो सकता है।

(हमारे) रक्षक (राम) यदि ऐसी दशा को प्राप्त हुए होते, जैसा आपने सोचा है, तो तीनों लोक विध्वस्त हो गये होते। देव और मुनि मिट गये होते। उत्तम धर्म भी विनष्ट हो गया होता।

अधिक कहने की क्या आवश्यकता है ? महिमामय प्रभु ने वहाँ पर शर का प्रयोग किया है। उससे आहत होकर वह राक्षस वह दुहाई दे रहा है। उसके लिए आप द्रवीभूत होकर चिन्तित मत हों। निश्चिन्त होकर रहें।—यों लक्ष्मण ने कहा।

लक्ष्मण के इस प्रकार कहने पर, सीता का क्रोध और उबल उठा। उसे मरण की-सी वेदना होने लगी। उसका मन अत्यधिक घबरा उठा। वह निष्करुण होकर, लक्ष्मण के प्रति कठोर शब्द कहने लगी कि तुम्हारा यों खड़ा रहना नीति-मार्ग के अनुकूल नहीं है।

एक दिन का भी परिचय होने पर सच्चे बंधु (अपने मित्र की सहायता के लिए) अपने प्राण तक देने को सन्नद्ध हो जाते हैं। किन्तु, तुम अपने ज्येष्ठ भ्राता को विपदा-ग्रस्त जानकर भी निर्भय हो स्थिर खड़े हो। मेरे लिए (इससे बुरी) और क्या गति हो सकती है ? अब मैं अग्नि में गिरकर अपने प्राण का त्याग करूँगी।

कमल के उद्यान में विहार करनेवाला हंस जिस प्रकार धुआँधार दावाग्नि में कूदने जाता हो, उसी प्रकार का कार्य करने के लिए प्रस्तुत (सीता) देवी की बातों को सुनकर उनकी रक्षा के लिए धनुष धारण करनेवाले (लक्ष्मण) ने उनके छोटे चरण-कमलों के सम्मुख धरती पर गिरकर साष्टांग नमस्कार किया। फिर बोला—

आप प्राण-त्याग करना क्यों चाहती हैं? आपकी बातों से मैं भयभीत हो रहा हूँ। (आपकी आज्ञा का) मैं उल्लंघन नहीं कर सकता हूँ। आप दुःख-मुक्त होकर यहीं रहें। यह दास जा रहा है। कठोर विधि-विधान को कौन रोक सकता है?

यह दास जा रहा है, कुछ अहित होने को है। आप कह रही हैं कि मैं प्रभु की आज्ञा का उल्लंघन कर यहाँ से जाऊँ। (मेरे जाने पर) आप अकेली रह जायँगी। इसलिए सावधान रहिए।—यों कहकर उत्तप्त मन के साथ विदा होकर लक्ष्मण वहाँ से चलने लगे।

उस समय लक्ष्मण यह विचार करते हुए चले कि यदि मैं यहीं रहूँ, तो ये अग्नि में गिरेंगी। यदि मैं पर्वत-सदृश प्रभु के निकट जाऊँ, तो इनकी रक्षा न होने से कुछ अहित होगा। मुझे अपने प्राणों पर भी आसक्ति है। अब मैं क्या करूँ?—इस प्रकार सोचकर लक्ष्मण बहुत व्याकुल हुए।

यदि हो सके, तो धर्म से अहित को रोका जा सकता है। अज्ञ मैं, जो पूर्वकर्म के परिणाम के फलस्वरूप इस प्रकार का जन्म पाकर यहाँ आकर इस विपदा में ग्रस्त हुआ हूँ, इन सीता की मृत्यु का कारण बनूँ—इससे तो यही उत्तम है कि मैं इस स्थान से हट जाऊँ।

फिर, सीता से कहा—मैं जा रहा हूँ। यदि (अहित) घटित हुआ, तो गृद्धराज (जटायु) अपनी शक्ति-भर आपकी रक्षा करेगा। (यह कहकर) देवताओं के पुण्य-प्रभाव से महिमामय वह पुरुष-श्रेष्ठ (लक्ष्मण) उसी मार्ग से चल पड़ा, जिससे राम गये थे।

लक्ष्मण के वहाँ से जाते ही खड्ग-दंतोंवाला रावण, जो अवसर की ताक में छिपा बैठा था, अपनी वंचना को सफल बनाने के उद्देश्य से बाँस का त्रिदंड लिये, अंतश्शत्रुओं (अर्थात्, काम, क्रोध और मोह) के बंधनों से मुक्त हुए तपस्वी का वेष धारण करके आया।

उपवास रखनेवाले के समान उसकी देह दुर्बल थी। बहुत दूर तक पैदल चलकर आनेवाले के समान उसमें थकावट दिखाई पड़ती थी। नृत्य के संगीत के जैसे ही अति शुद्ध तथा वीणागान के समान मधुर शैली में (साम) वेद का गान करता हुआ वह (रावण) आया।

वह इस प्रकार मन्द-मन्द चलता था, जैसे पुष्पों की शय्या पर चल रहा हो। वह अपना पद इस प्रकार रखता था, मानों अग्नि-कणों पर चल रहा हो। उसके हाथ और पैर अनियंत्रित रूप से काँप रहे थे और उसमें अतिवार्द्धक्य दिखाई पड़ रहा था।

वह कमल के बीजों की एक जप-माला हाथ में लिये हुए था। उसके पास कूर्माकार एक आसन भी था। उसका शरीर झुका हुआ था। उसके वक्ष पर यज्ञोपवीत

शोभायमान था। इस वेष में वह, पवित्र अंतःकरणवाली उस अरुंधती (के समान पातिव्रत्यवाली सीता) के आवास-भूत कुटीर के समीप आ पहुँचा।

देवताओं को भी मुग्ध करनेवाला (संन्यासी का) वेष धारण करके वह (रावण) उस कलंकरहित पर्णशाला के द्वार पर पहुँचा और गलित कंठ से बोला—इस कुटीर में कौन है ?

कलापी-तुल्य वह देवी, यह सोचकर कि कपट-रहित मनवाले कोई तपस्वी आये हैं, इक्षुरस-समान मधुर स्वर में यह कहती हुई कि 'पधारिए ! पधारिए !' इस प्रकार उसके सम्मुख आ खड़ी हुई, जैसे कोई प्रवाल-लता हो।

उस (रावण) ने, लावण्य के भी लावण्य, यश के आगार और शील की मर्यादा उस देवी को अपनी आँखों से देखा और मदस्रावी मत्तगज के समान स्वेद से भरकर, लालसा-रूपी वीचियों से पूर्ण कामना-समुद्र में डूब गया।

अशिथिल कोकिल स्वर से युक्त, देव-स्त्रियों से भी उत्तम रूपवाली वह (सीता) देवी ज्योंही उसके सम्मुख प्रकट हुई, उस (रावण) के विरह-तप्त मनकी क्या दशा हुई—इसके बारे में क्या वर्णन करें ? उसकी शक्तिशाली भुजाएँ फूल उठीं और फिर कृश हो गईं।

उसकी नयन-पंक्ति, वन-मयूर जैसी (सीता) के सौंदर्य के दर्शन से, पुष्पों के समृद्ध मधु का छककर पान करके गानेवाले भ्रमरों के समान आनंद से मत्त हो उठी—ऐसा कहने में क्या बड़ाई होगी ? उसके मन के जैसे ही उसकी आँखें भी आनंदित हो गईं।

वह (रावण) यह सोचता हुआ कि अरुण-कमल के समान को तजकर मेरे ये बीस नयन यहाँ आई हुई इस सुन्दरी के रत्न-कांति से युक्त लावण्य को देखने के लिए क्या पर्याप्त हैं ? हाय ! मेरे एक हजार अपलक आँखें नहीं हैं !—व्याकुल हो खड़ा रहा।

उसने सोचा—कलाइयों पर कंकण-पंक्तियों से शोभित होनेवाली इस नारी-रत्न के साथ क्रीडा करते हुए आनंद के अपार समुद्र में निमग्न होने के लिए क्या कठोर तपस्या के प्रभाव से प्राप्त, साढ़े तीन करोड़ वर्ष की मेरी आयु भी पर्याप्त होगी।

(फिर, उसने सोचा) अब मैं इस सुन्दरी को तीनों लोकों की सम्राज्ञी बना दूँगा। सब सुर और, असुर अपनी पत्नियों के साथ इसकी सेवा में निरत रहकर जीवन व्यतीत करेंगे। और, मैं भी इसकी सेवा करता हुआ रहूँगा।

(उसने यह भी विचार किया) दुःख के समय में ही जब इसका मुख इतना लावण्यपूर्ण है, तब किंचित् दंत-प्रकाश से युक्त मंदहास फैलने पर इसका मुख कितना मनोहर लगेगा ? मैं अपनी उस बहन (शूर्पणखा) को, जिसने इस पुष्प-भरित कुंतलोंवाली का अन्वेषण कर मुझे इसकी पहचान दी है, अपना राज्य दे दूँगा।

वह (रावण) उस स्थान पर आकर इसी प्रकार के विविध विचार करता हुआ मन में अनुचित इच्छा भरकर खड़ा रहा। उसे देखकर अस्खलित शीलवाली सीता ने अपने अश्रु पोंछ लिये और कहा कि इस आसन पर आप आसीन हो जायँ। (और एक आसन डाल दिया।)

सीता ने उसका स्वागत करके एक वेत्रासन डालकर उसपर आसीन होने को कहा। तब अपने बड़े त्रिदंड को पार्श्व में रखकर वह कपटी संन्यासी उस सुन्दर पर्णशाला में बैठ गया। उस समय—

पर्वत और वृक्ष थरथरा उठे। कठोर पापकर्म करनेवाले उस राक्षस को देखकर पक्षी भी मौन हो रहे। मृग भयभीत हुए। सर्प अपने फन को समेटकर कहीं छिप गये।

आसन पर बैठने के पश्चात् उसने (सीता से) प्रश्न किया—यह कौन-सा स्थान है? यहाँ निवास करनेवाले तपस्वी कौन हैं? इसके उत्तर में विशाल नयनोंवाली वह देवी, यह सोचती हुई कि यह कोई निष्कपट संन्यासी है, जो इस स्थान के लिए अजनबी है, कहने लगीं—

हे महात्मा! दशरथ के प्रसिद्ध कुल में उत्पन्न उन प्रभु का नाम आपने सुना होगा, जो उत्तम कुल-जात अपनी माता की आज्ञा को शिरोधार्य करके अपने भाई के साथ विना किसी दुःख के इस स्थान में आकर रहते हैं।

फिर, रावण ने प्रश्न किया मैंने (यह समाचार) सुना है, किन्तु उन्हें (अर्थात्, राम को) मैंने देखा नहीं है। गंगा के समृद्ध जल से सिंचित (कोशल) देश को एकबार गया हूँ। नील कुवलय और बरछे के जैसे नयनोंवाली तुम किनकी सुपुत्री हो, जो अपने अमूल्य समय को इस अरण्य में व्यतीत कर रही हो?

तब कलंकहीन शीलवती उस (सीता) देवी ने उत्तर दिया—अनघ मार्ग पर चलनेवाले हे यतिवर! मैं उन जनक की पुत्री हूँ, जिनका मन आप (जैसे मुनियों) के अतिरिक्त अन्य देवता का ध्यान भी नहीं करता। मेरा नाम जानकी है। मैं काकुत्स्थ की पत्नी हूँ।

फिर, उत्तम आभरण-भूषित सीता ने पूछा—आप अत्यंत वृद्ध हैं। कर्मभोग से मुक्ति पाने की इच्छा रखनेवाले आप कहाँ से इस समय, इस कठोर वन-मार्ग को पार करके आये हैं?

तब रावण कहने लगा (ऐसा एक व्यक्ति है), जो इन्द्र का भी इन्द्र है (अर्थात्, इन्द्र से भी बढ़कर प्रभावशाली), (चित्र में) अंकित करने के लिए असाध्य सौंदर्य से युक्त है। चतुर्मुख (ब्रह्मा) के वंश में उत्पन्न है, स्वर्ग-सहित सब लोकों पर शासन करनेवाला है और जिसकी जिह्वा वेदों के मंत्रों का आवास है।

जो ऐसी शक्तिवाला है कि उसने पूर्वकाल में शिवजी के विनाशभूत महान् कैलासगिरि को जड़-सहित उखाड़ लिया था। जिसकी भुजाएँ ऐसी हैं कि (उन भुजाओं ने) दिशाओं को वहन करनेवाले गजों पर आघात करके उनके दाँतों को चूर-चूर कर दिया था।

जिसके द्वार के रक्षक स्वयं देवता हैं। जिसकी महिमा का गान करने की शक्ति शब्दों में नहीं है। जिसके अधीन कल्पतरु आदि देवलोक की सब विभूतियाँ हैं। जिसका सुन्दर निवास-स्थान गम्भीर समुद्र से आवृत स्वर्णमय लंका नगरी है।

जिसके वैभव से आकृष्ट होकर सुन्दर मन्दहास से युक्त तिलोत्तमा आदि अप्सराएँ

स्वर्गलोक को छोड़कर (उसकी लंका में) आ गई हैं और (उसकी सेवा में रहकर) उसके पानदान उठाना, (उसके) पैर सहलाना, उसकी पादरक्षा लाना इत्यादि कार्य करती रहती हैं।

चन्द्रमा और सूर्य, उसके मन को देखकर (उसके अनुसार) संचरण करते हैं। दिव्यकांति से युक्त इंद्र आदि देवता, इस लोक में स्थित उसके मेघस्पर्शी प्रासाद की रखवाली करते हैं।

इस धरती पर स्थित उसकी उस लंकापुरी में, जो स्वर्णमय अमरावती, मनोहर नागलोक की राजधानी और इस विशाल भूलोक के सब नगरों से बढ़कर सुन्दर है, रहनेवाली सब वस्तुएँ दोषरहित हैं।

कमलभव (ब्रह्मा) के द्वारा दिये गये वर के प्रभाव से वह अनन्त आयुवाला है। वह अपने विशाल कर में, अर्धाङ्ग में अपनी स्त्री को धारण करनेवाले (शिवजी) के द्वारा प्रदत्त करवाल रखता है। उसने सब ग्रहों को कारागार में बन्दी बना रखा है। वह सब गुणों में महान् है।

वह क्रूरता से रहित सदाचरणवाला है। विस्तृत शास्त्र-ज्ञान से युक्त है। तटस्थ स्वभाववाला है (अर्थात् , पक्षपात से हीन बुद्धिवाला है)। उसका यौवन ऐसा है कि उसे देखकर मन्मथ भी (आश्चर्य से) स्तब्ध रह जायें। सब लोकों के निवासी जिन त्रिदेवों को अपने देवता मानते हैं, उन (त्रिमूर्त्तियों) की समस्त शक्ति से वह संपन्न है।

सब लोकों में रहनेवाली असंख्य सुन्दरियाँ उसकी कृपा को प्राप्त करने की लालसा रखती हैं। उसका ध्यान करती हुई वे सुन्दरियाँ कृश होती रहती हैं। तो भी वह उन सब की उपेक्षा करके अपने हृदय को मुग्ध करनेवाली एक रमणी को खोज रहा है।

इस प्रकार के पुरुष द्वारा शासित उस वैभव-पूर्ण नगरी में कुछ दिन निवास करने की इच्छा से मैं वहाँ गया। दीर्घकाल तक वहीं रह गया। अब उस (पुरुष) से दूर होने की इच्छा न होते हुए भी किसी-न-किसी प्रकार वहाँ से चलकर इस स्थान में आया हूँ।—यों उस मायावी ने कहा।

तब सीता ने उस कपट-संन्यासी से पूछा— अपने शरीर को भी भार माननेवाले हे मुनि श्रेष्ठ ! वेदों तथा उन वेदों के ज्ञाताओं की कृपा की कामना न करके, लालच के साथ प्राणियों को खानेवाले उन क्रूरकर्मा राक्षसों के नगर में जाकर आप क्यों रहे ?

अरण्य में स्थित महातपस्वियों के समीप जाकर आप नहीं रहे, जल संपत्ति से परिपूर्ण देशों में निवास करनेवाले पवित्र स्वभाववालों के ग्रामों में जाकर भी आप नहीं रहे। किन्तु, धर्म का स्मरण तक नहीं करनेवाले राक्षसों के मध्य जाकर रहे। यह आपने क्या किया ?—इस प्रकार सीता ने कहा।

उस मर्यादाहीन (अर्थात् , धर्म की मर्यादा से परे रहनेवाले) ने यौवनवती देवी के कथन को सुना और उनकी निष्कपटता को देखा, जो यह कहते हुए भी कि वे राक्षस कठोर नेत्रवाले और भयंकर खड्गवाले हैं—भयविह्वल हो रही थीं। फिर, यों उत्तर दिया— हे चन्द्रमुखि ! राक्षस देवताओं के समान क्रूर नहीं हैं। हम जैसे व्यक्तियों के लिए वे अच्छे ही हैं।

उसके यह कहने पर सुन्दर आभरण-भूषित सीता यह न जानने से कि माया में चतुर राक्षस कामरूपी है, उसपर कुछ संदेह न करती हुई बोलीं— पापियों से स्नेह करनेवाले लोग पवित्र नहीं होते। विचार करने पर यही कहना पड़ेगा कि वे भी (अर्थात्, पापियों से स्नेह रखनेवाले भी) उस पाप के भागी होते हैं।

तब रावण ने यह आशंका करके सीता कदाचित् उसपर संदेह कर रही है, उस संदेह को दूर करने के विचार से दूसरे ढंग से कहा कि तीनों लोकों के विवेकी पुरुषों के लिए उन बलशाली राक्षसों के स्वभाव के अनुकूल रहने के अतिरिक्त अन्य क्या आचरण संभव हो सकता है ?

(दूसरों की) मनोदशा को पहचाननेवाले उस मायावी के यह कहने पर सद्‌गुणों में बड़ी हुई देवी ने कहा—धर्म के रक्षक उदार गुणवाले वे (रामचन्द्र) जबतक इस अरण्य में तपस्साधना करते रहेंगे, तबतक पाप-कर्म से जीनेवाले राक्षस अपने बंधु-सहित मर मिटेंगे। उसके पश्चात् संसार के कष्ट भी मिट जायँगे।

हरिण-समान उस सीता के यह कहते ही वह (रावण) बोल उठा—हे मीन-जैसे चमकते नयनोंवाली ! यदि मनुष्य, राक्षसों का समूल नाश करनेवाले हों तो (इसका अर्थ यह हुआ कि) एक छोटा खरगोश हाथियों के झुंड को मार देगा और एक हिरण का बचा वक्र नखोंवाले सिंह को मार देगा।

तब सीता ने कहा—घनीभूत विद्युत्-पुंज-जैसे केशोंवाले विराध तथा क्रोध के ताप से भरे मनवाले विजयी खर आदि राक्षसों के (राम हाथों) मरने का समाचार कदाचित् आपने नहीं सुना है। यह कहकर राम को उस समय जो क्लेश उठाना पड़ा था, उसका स्मरण करके वह देवी आँखों से अश्रु की वर्षा करने लगीं।

फिर, आगे उन देवी ने कहा—आप कल ही देखेंगे कि प्रतापी सिंह-सदृश मेरे प्रभु से लंका के निवासी अपने कुल-सहित कैसे मिटते हैं और देवों की उन्नति कैसे होती है। क्या अवारणीय धर्म को पाप जीत सकता है ? आप, दोषहीन मुनिवर क्या यह नहीं जानते ?

वह रावण, जिसका मांसल शरीर (सीताजी की) मधुमिश्रित अमृत-जैसी अति मृदुल वाणी के उसके कानों में पड़ने से फूल उठा था, अब इस वचन को सुनकर कि मानव अधिक बलवान् है, अभिमान के उमड़ने से क्रोध से भर गया।

उस क्रोधी ने कहा—एक मनुष्य ने (अर्थात्, राम ने) धनुर्बल में क्षुद्र उन राक्षसों को मारा। यदि तुम इस बात की बड़ाई करती हो, तो कल ही तुम इसका परिणाम देखोगी कि (रावण की) बीस भुजाओं की हवा-मात्र लगने से वह मनुष्य (अर्थात्, रामचन्द्र) सेमर की रूई के जैसे उड़ जायगा।

निरर्थक वचन कहनेवाली हे मुग्धे ! यदि मेरु पर्वत को उखाड़ना हो, ब्रह्मांड के खप्पर को तोड़ देना हो, समुद्र के जल को आलोडित करना हो, अथवा पृथ्वी को उठा लेना हो, इस प्रकार के अनेक कार्य करने हों, तो भी रावण के लिए ये सब सुलभ हैं। उसके लिए कौन-सा कार्य कठिन हो सकता है ? तुमने क्या समझकर ये बातें कहीं हैं ?

इस समय सीता के मन में संदेह उत्पन्न हुआ कि यह कर्म के द्वन्द्व से युक्त मुनि

नहीं है। फिर, यह सोचती हुई खड़ी रही कि यह कौन हो सकता है? इतने में वह कपट संन्यासी ऐसा बन गया जैसा कोई विषधर कालसर्प क्रोधानल से उत्तप्त होकर अपना फन फैलाकर खड़ा हो गया हो।

(राम के वियोग से) पहले से ही अत्यन्त विषण्ण वह देवी, इस समय जिस प्रकार के दुःख में निमग्न हुई, यदि उसके बारे में विचार करें, तो विदित होगा कि इससे बढ़कर अन्य कोई कहीं दुःख हो ही नहीं सकता। उन देवी के पास ऐसा कोई शब्द नहीं रहा, जिसे वे धीरज के साथ उस राक्षस को कह सकें। उनसे कोई काम भी करते नहीं बनता था। वे इस प्रकार विकंपित हुईं, जिस प्रकार यम के आने पर प्राण काँपने लगते हैं।

तब रावण ने कहा—देवता लोग भी मेरी सेवा करते हैं। ऐसे मेरे पराक्रम को तुमने नहीं जाना और (तुमने) मिट्टी के कीड़े-जैसे जीनेवाले मनुष्य को बलवान् कहा। तुम स्त्री हो, अतः बच गई, नहीं तो मैं तुमको पीसकर खा डालता। पर यदि वैसा करने का विचार भी करूँ, तो मेरे प्राण मिट जायेंगे—(अर्थात् , तुम्हें मार डालूँगा, तो तुम्हारे वियोग में मैं भी मर जाऊँगा, अतः तुम्हें नहीं मारूँगा)।

हे हंसिनि ! भयविकंपित मत होओ। जो मेरे सिर इसके पहले किसी के सामने नहीं झुके, उनपर बारी-बारी से, मुकुट के समान तुम्हें वहन करके मैं आनंदित होऊँगा। असंख्य आभरणों से भूषित देव-सुन्दरियाँ तुम्हारी चरण-सेवा करेंगी। यों तुम चतुर्दश भुवन की सम्राज्ञी बनकर रहेगी।

ये वचन सुनते ही सीता ने झट अपने कर-पल्लवों से कानों को बन्द कर लिया। फिर कहा—अरे राक्षस ! मनोहर तथा भयंकर धनुष को धारण करनेवाले उनके कर, तथा विजय से शोभायमान काकुत्स्थ के प्रति अनन्य प्रेम तथा पातिव्रत्य रखनेवाली मेरे प्रति तू ने संसार के उत्तम धर्म की उन्नति के लिए प्रज्वलित वह्नि में पवित्र ऋषियों के द्वारा देने योग्य हवि को खाने की इच्छा करनेवाले कुत्ते-जैसे (होकर), क्या कहा ?

घास की नोक पर रखनेवाली ओस की बूंद के जैसे क्षण-भंगुर जो प्राण हैं, उनके खो जाने के भय से क्या मैं उत्तम कुल के योग्य आचरण को त्याग दूँगी ? यह संभव नहीं। यदि तू अपने प्राणों की रक्षा करना चाहता है, तो बिजली के जैसे चमकते हुए वज्र के जैसे घोष करनेवाले तीक्ष्ण (राम के) बाण के लगने के पूर्व ही यहाँ से भाग जा।

सीता का यह वचन सुनकर उस क्रूर राक्षस ने कहा—दिशाओं को वहन करनेवाले हाथियों के अतिदृढ दाँतों को तोड़नेवाले मेरे वक्ष पर यदि तुम्हारे पति का बाण आकर लगेगा, तो वह पर्वत पर गिरी हुई पुष्पमाला-जैसा जान पड़ेगा।

लक्ष्मी के लिए भी लक्ष्मी होनेवाली हे सुंदरि ! तुम्हारे प्रति उत्पन्न प्रेम की व्याधि के कारण मेरा शरीर दुर्बल हो रहा है। मुझे प्राण-दान करो और स्वर्गवासिनी घने केशोंवाली अप्सराओं के लिए भी दुर्लभ पद को प्राप्त करो—यों कहकर भूधर से भी दृढ भुजावाले रावण ने उसे नमस्कार किया।

ज्योंहि वह (रावण) सीता के चरणों को प्रणाम करने के लिए झुका, त्योंही

क्षमा की मूर्त्ति और अनुपम सुन्दरी वह देवी, इस प्रकार व्याकुल होकर जैसे मर्मस्थान में रक्तांचित खड्ग धँस गया हो, हे प्रभु ! हे अनुज ! कहकर पुकार उठी।

उस समय, उस क्रूर (रावण) ने, पहले दिये गये अपने इस शाप[1] का स्मरण करके कि उसे परनारी का स्पर्श (उसकी इच्छा के बिना) नहीं करना चाहिए, अपनी स्तंभ-जैसी बलवान् एवं ऊँची भुजाओं से उस आश्रम के स्थान को ही नीचे से एक योजन पर्यन्त खोदकर उठा लिया।

(इस प्रकार सीता को उसके आश्रम के साथ) उठाकर उसने अपने रथ पर रख लिया। सुन्दर कंकण-भूषित सीता ने रावण का यह कार्य देखा। किन्तु, अपने प्राणों (के समान प्रभु) को नहीं देखा। वह इस प्रकार मूर्च्छित हो गिर पड़ी जैसे मेघों से छूटकर कोई बिजली धरती पर आ गिरी हो। तब उस (रावण) ने आकाश-मार्ग से जाने का विचार किया। (१—७५)

●

अध्याय ६

जटायु-मरण पटल

रावण ने अपने सारथी से कहा कि रथ आगे बढ़ाओ। उस कथन को सुनकर सीता अग्नि में पड़ी हुई पुष्प-लता के समान तड़पने लगी। वह नीचे गिरकर लोटती। विह्वल होकर काँपती। मूर्च्छित होती। पीडा से छटपटा उठती। 'हे धर्म देवता ! इस विपदा से शीघ्र मुझे बचाओ'—यों प्रार्थना करती।

(सीता कहती—) हे पर्वतो ! हे वृक्षो ! हे मयूरो ! हे कोयलो ! हे हरिणो ! हे हरिणियो ! हे हाथियो ! हे करिणियो ! हे मेरे कातर प्राणो ! तुम मेरे प्रभु के निकट शीघ्र जाओ और उन अचंचल बलवान् वीर से मेरा हाल कहो।

हे मेघो ! हे उद्यानो ! हे वनदेवताओ ! उत्तम वीर, वे मेरे प्रभु कहा हैं ? क्या तुम जानते हो ? यदि तुम मुझे अभयदान दो, तो मैं जीवित रह सकती हूँ—इससे तुम्हारी क्या हानि हो सकती है ?

हे वरद ! हे अनुज ! क्या आप (दोनों), कालमेघ के समान शरवर्षा करते हुए और राक्षस आदि क्रूर जनों का विनाश करते हुए यहाँ नहीं आयेंगे ? हे निष्कलंक भरत ! हे अनुज (शत्रुघ्न) ! क्या तुम अपयश के भागी बनोगे ?

---

१. यह कथा प्रसिद्ध है कि एक बार रंभा अपने प्रियतम कुबेर के पुत्र नलकूबर से मिलने के लिए जा रही थी। मार्ग में रावण ने बलात् उसको पकड़ लिया। तब रंभा और नलकूबर से रावण को यह शाप मिला कि यदि आगे कभी वह किसी स्त्री की इच्छा के विरुद्ध उसका स्पर्श करेगा, तो उसके सिर के टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे और पतिव्रता स्त्री के पातिव्रत्य की अग्नि में वह जल जायगा। उसी शाप के रहने से रावण ने सीता का स्पर्श नहीं किया।—अनु०

हे गोदावरि ! तू शीतल है। तू द्रवीभूत है। तू माता-समान है। तेरा अन्तःकरण स्वच्छ है। तू दौड़कर जा और कुछ न कहने पर भी (दर्शन-मात्र से मन की बात) समझने की शक्ति रखनेवाले मेरे प्रभु के निकट पहुँच जा और मुझ अभागिन का समाचार उन्हें दे।

सम्मुख दिखनेवाले हे निर्झरो ! पर्वत-कंदराओं में निवास करनेवाले सिंहो ! तुम (मेरे प्रभु को) यह समाचार देकर उनसे धरती के साथ मुझे उठा ले जानेवाले इस रावण की बीस भुजाओं और उसके दस शिरों को विध्वस्त कराके आनंदित होओ।

इस प्रकार के विविध वचन कहकर मुक्त होने की इच्छा से रोनेवाली सीता को देखकर, अपने जीवन के दिनों को व्यर्थ करनेवाले उस रावण ने कहा—हे स्वर्णहारों से भूषित संयुत स्तनोंवाली ! स्वर्णमय कर्णाभरणों से शोभायमान हे सुन्दरि ! वे मनुष्य क्या युद्ध में मुझे मारकर तुम्हें मुक्त कर सकेंगे ? और, अपने बलिष्ठ हाथों से ताली बजाकर ठठाकर हँस पड़ा।

उसके यों कहने पर सीता ने कहा—तूने माया से एक कपट-हरिण बनाया। तेरे प्राणों के लिए यम-सदृश प्रभु को तूने आश्रम से बाहर भेजने का उपाय किया। फिर, आश्रम में घुसकर मुझे हरकर ले जा रहा है यदि उनसे (अर्थात्, राम से) युद्ध करने की शक्ति तुझमें है, तो अपना रथ आगे न बढ़ा।

फिर सीता ने कहा—यदि तुम वीर होते तो, क्या यह सुनने के पश्चात् भी कि तुम्हारे कुल के राक्षसों को क्षणकाल में मारनेवाले और तुम्हारी बहन की नाक-कान काटनेवाले मनुष्य अरण्य में ही हैं। (उन मनुष्यों के साथ युद्ध कर उन्हें मारे बिना), इस प्रकार माया करके मेरा अपहरण करते ? यह भय से उत्पन्न तुम्हारे मन की कायरता ही तो है ?

सीता के यह कहने पर रावण ने उससे कहा—हे नारीरत्न ! सुनो। बलहीन शरीरवाले क्षुद्र मनुष्यों के साथ यदि मैं युद्ध करूँ, तो ललाट-नेत्र के पर्वत (हिमालय) को उठानेवाली मेरी भुजाओं का अपमान होगा। उस अपवाद की अपेक्षा ऐसी माया ही फलप्रद है न ?

मनोहर नयनोंवाली प्रतिमासमान सुन्दर देवी ने वह वचन सुनकर कहा—अपने कुल के जो शत्रु हैं, उनके सम्मुख जाना अपमान है। उनके साथ करवाल लेकर युद्ध करना अपमान है। किन्तु, पतिव्रताओं को धोखा देना अपमान नहीं है ! अहो ! निष्करुण राक्षसो के लिए अपमान क्या है ? अपयश क्या है ?

इस समय, 'अरे ! तू कहाँ जा रहा है ? ठहर, ठहर'—यों गर्जन करता हुआ, आँखों से क्रोध की अग्नि उगलता हुआ, विद्युत् के जैसे चमकती हुई चोंच के साथ जटायु ऐसा आया, मानों मेरु नामक स्वर्णमय पर्वत ही गगन-मार्ग से उड़कर आ गया हो।

उसके दोनों पंखों के हिलने से ऐसा प्रभंजन उठा कि उससे बड़े-बड़े पर्वत अपने स्थान से उखड़कर उड़ते और एक दूसरे से टकराकर चूर-चूर होकर धूल बनकर उड़ गये। समुद्र का जल गगन में भर गया और जल और थल एकाकार हो गये। ऐसा लगता था, जैसे प्रलयकालीन पवन विश्व-भर में फैल रहा हो।

वृक्ष अपनी सब शाखाओं के साथ धरती पर लंबे हो गिर गये। गगन के मेघ, अंतरिक्ष में बहुत ऊपर कहीं उड़ गये। सर्प, यह सोचकर कि उग्र रूप गरुड ही नभोमार्ग से आ रहा है, अपने फन समेटकर छिप गये।

जटायु के दोनों पंखों की हवा के वेग के कारण, हाथी, शरभ आदि मृग, वृक्ष, कुंज, शिलाएँ तथा सब अरण्य उड़कर अंतरिक्ष में भर गये। जिससे अंतरिक्ष और अरण्य दोनों स्थानांतरित-से हो गये।

जटायु अपने विशाल तथा बलवान् पंखों को फैलाये, यह कहता हुआ आया कि पुरुषोत्तम (राम) की देवी को भूखंड-सहित ऊँचे रथ पर रखे, तू कहाँ ले जा रहा है? मैं गगन को और सब दिशाओं को (अपने पंखों से) आवृत कर दूँगा (जिससे तेरे जाने का मार्ग नहीं रहे)।

गुणहीन उस (रावण) के यंत्रमय रथ की गति को रोकने के विचार से, सिंदूर जैसे लाल पैर और सिर एवं संध्याकाश-जैसे कंठ के साथ, कैलास पर्वत के जैसे आकार-वाला गृद्धराज (जटायु) आ पहुँचा।

उस समय वहाँ आकर उस (जटायु) ने उस स्त्री-रत्न को देखकर कहा—डरो नहीं। फिर यह जानकर कि (रावण ने सीता का) स्पर्श नहीं किया है, अपने उमड़ते क्रोध को किंचित् शान्त करके रावण से कहने लगा—

तू मिट गया। तू ने अपने बन्धुवर्ग-सहित, अपने जीवन को जला दिया। अरे तू यह क्या करने लगा है? यह जान ले कि तू मर गया। इस देवी को छोड़कर चला जा। यदि ऐसा करेगा, तभी जीवित रह सकेगा।

हे मूढ ! तूने अपराध किया है। विश्व की माता-समान देवी को तूने अपने मन में क्या समझा है? हे विवेकहीन ! अब तेरा सहारा कौन है? (अर्थात्, विश्व की माता के प्रति अपराध करने पर तेरी रक्षा करनेवाला कोई नहीं रहा।)

हे राजन् ! क्या तू नहीं जानता कि राम ने तेरे कुलवालों के साथ घोर युद्ध करके उनके प्राणों को यमराज का सुन्दर भोजन बनाया था और यम ने हाथों में भर-भरकर नवीन भोजन पाकर आनन्द उठाया था?

तुम को मारने के लिए दौड़कर आनेवाले क्रोधी तथा घोर मत्तगज पर तू मिट्टी का ढेला फेंकना चाहता है। घोर विष को खाकर, भले ही तू यह न जाने कि वह (विष) प्राणहारी है, फिर भी क्या अपने प्राणों को स्थिर रख सकेगा?

तीनों लोकों के निवासी, देवेंद्र, त्रिमूर्त्ति, यम आदि सब राम के आगे ऐसे रहते हैं जैसे व्याघ्र के सम्मुख हरिण हों। अति उत्तम धनुर्धारी राम को जीतने की शक्ति किसमें है?

इस संसार में अपने कुल के साथ विनाश पाने का इससे बढ़कर अन्य कुछ उपाय नहीं है। इतना ही नहीं। दूसरे जन्म में भी (यह कार्य) घोर नरक देनेवाला है। तूने इस कार्य को अपने किस जन्म के लिए सुखप्रद समझा है?

ये मानव (राम और लक्ष्मण) त्रिदेवों में प्रधान तथा (सारी सृष्टि के) आदि-

कारणभूत परमतत्त्व (अर्थात् , विष्णु) ही हैं। अतः, इनकी समता किस देवता के साथ की जा सकती है ? तुझमें विवेक नहीं है। अतः, पागल होकर तूने यह अपराध किया है।

उस अविनाशी तत्त्व (अर्थात् , रामचन्द्र) के धनुष से शर के निकलते ही त्रिपुरों को जलानेवाले वृषभारूढ शिवजी की कृपा से प्राप्त तेरे वरदान और तेरी सारी विद्याएँ विनष्ट हो जायेंगी।

स्वर्ग के राज्य में आनन्द पानेवाले चक्रवर्त्ती (दशरथ) के पुत्र (राम) अपना धनुष झुकाये हुए तेरे सम्मुख आ जायँ, तो उन्हें रोकना असंभव होगा। मैं इस सुन्दर ललाट-वाली देवी को उनके आवास में पहुँचा दूँगा। तू शीघ्र यहाँ से भाग जा। जटायु के इस प्रकार कहते ही—

रावण अपनी उज्ज्वल आँखों से चिनगारियाँ उगलने लगा। ओंठ चबाते हुए उसने जटायु को देखकर कहा—अब ज्यादा बक-बक मत कर। अब शीघ्र तू उन मानवों को दिखा।

सम्मुख आनेवाले ऐ गिद्ध ! मेरे शर से तेरी छाती में बड़ा छेद न हो जाय, इसलिए तू अभी यहाँ से हट जा। गरम किये हुए लोहे में पड़ा हुआ जल उससे कदाचित् निकल भी आ जाये, किन्तु मेरे हाथों में पड़ी इक्षु-समान बोलीवाली यह सुन्दरी मुक्त नहीं हो सकती, तू यह जान ले।

इस समय जटायु ने हंसिनी-तुल्य सीता को दुगुने डर से काँपती हुई देखकर कहा—हे माता ! इस राक्षस की देह अभी टुकड़े-टुकड़े हो जायगी। अतः, यह सोचकर कि प्रभु (राम), धनुष लेकर नहीं आये हैं, तुम चिंतित मत होओ।

तुम व्याकुल होकर मुक्ता के समान अश्रुओं को अपने मुख पर से स्तन-तटों पर गिराती हुई दुःख मत करो। इसके दस शिरों को ताड़ के फलों के गुच्छे के समान मैं तोड़ दूँगा और इसके द्वारा वशीभूत दसों दिशाओं को (उन शिरों को) मैं बलि के रूप में अर्पण करूँगा।

फिर जटायु, रावण के शिरों की पंक्ति को गरजते मुँह से काटकर गिराने के लिए अपने पंखों से वज्र की ध्वनि उत्पन्न करते हुए शीघ्र उड़कर आया और रावण की मनोहर, विशाल, वीणा के चित्र से युक्त ध्वजा को तोड़कर देवों के आशीर्वाद का पात्र बना।

रावण, जो पहले कभी इस प्रकार के अपमान का भाजन नहीं बना था, उस समय अपनी आँखों को पिघली लाख जैसे लाल करके ठठाकर हँस पड़ा और सप्तलोकों को भयभीत करते हुए पर्वत के जैसे अपने धनुष को एवं अपनी भौंहों को झुका लिया।

अर्धचन्द्र के जैसे वक्र खड्ग-दंतोंवाले उस (रावण) के शरों की घोर वर्षा जटायु पर होने लगी। जटायु ने कुछ शरों को अपने दृढ नखों से तोड़ दिया, कुछ शरों को यम को भी भयभीत करनेवाली चोंच से छिन्न-भिन्न कर दिया।

विशाल और भयंकर आँखोंवाले असंख्य सर्पों को एक साथ मिटानेवाले गरुड के समान जटायु, (रावण के) दशों शिरों पर अपनी चोंच नामक चक्रायुध को बढ़ाकर, उसके पुनः अपने धनुष को झुकाने के पूर्व ही उसके निकट पहुँच गया और उसके कुंडलों को छीनकर उड़ गया।

तब बड़ा गर्जन करता हुआ रावण ने, चौदह बाणों को जटायु के विशाल वक्ष पर इस प्रकार छोड़ा कि वे (बाण) उसके वक्ष को भेदकर पार हो गये। फिर, उसपर अनेक बाण और छोड़े। देवता, यह सोचकर कि जटायु अब गिर गया, भय-कंपित होकर उष्ण निःश्वास भरने लगे।

वह गृद्धराज अपने घावों से रक्त की अविरल धारा बहाता हुआ उस मेघ के जैसा लगता था, जो धरती पर खर आदि राक्षसों के रक्त-प्रवाह को समुद्र समझकर (उसे) पीने के पश्चात् उस (रक्त-रूपी) जल को बरसाकर श्वेत वर्ण हो रहा हो।

इस प्रकार का जटायु क्रुद्ध हुआ। निःश्वास भरा। रावण की बीस भुजाओं के मध्य झपटा। अपनी चोंच से मारा। नखों से खरोंचा। अपने पंखों से आघात किया और उस (रावण) के मुक्ताहार-भूषित वक्ष पर के कवच के बंधनों को ढीला कर दिया।

यों अपने कवच को ढीला करनेवाले जटायु पर रावण ने एक सौ बाण चलाये। तब देवता भी भय-विकंपित हुए। इतने में जटायु ने उछलकर रावण के धनुष को चोंच से पकड़कर छीन लिया। यह देखकर देवता हर्षध्वनि कर उठे।

उज्ज्वल रजताचल (हिमाचल) को उसपर निवास करनेवाले शिवजी-सहित अपने बलवान् कंधों पर उठानेवाले उस (रावण) के धनुष को जटायु ने अपनी चोंच से पकड़कर खींच लिया और ऊपर उड़ा, तो वह इन्द्र-धनुष के साथ गगन में उड़नेवाले मेघ के समान लगा। उस (जटायु) के बल का वर्णन कौन कर सकता है ?

जिस रावण ने (युद्ध में) कभी अपनी पीठ न दिखानेवाले सहस्रनेत्र (इन्द्र) को भी अपने शस्त्र से पीडित किया था और भगा दिया था, उस (रावण) के धनुष को उस जटायु ने अपनी चोंच से छीन लिया और अपने पैरों से तोड़ दिया। जो (जटायु) रक्तवर्ण देव (शिव) के धनुष को अपने हाथों से तोड़ देनेवाले (राम) का सहायक था और उनके पिता का प्रिय मित्र था।

विश्वकंटक रावण, अपने बल के योग्य उस धनुष को टूटते हुए देखकर क्रुद्ध हुआ और अपने पराक्रम में कुंठित न होकर, विषकंठ (शिव) के त्रिपुर-दाह करनेवाले अनुपम शर के समान (भयंकर) शूल को उठाकर जटायु पर प्रयुक्त किया।

तब गृद्धराज ने, इस विचार से कि वह (रावण) कहीं मुझे शक्तिहीन न समझ ले, यह कहते हुए कि, देख मेरी शक्ति को, उस (रावण के) त्रिशूल को अपनी छाती पर रोक लिया। तब स्वर्ग के निवासी (देवता) यह सोचकर कि इस प्रकार का कार्य करने-वाला पराक्रमी दूसरा कोई नहीं है, अदृश्य खड़े रहकर ही अपनी भुजाएँ ठोंकने लगे।

वह त्रिशूल (जटायु के वक्ष से टकराकर) इस प्रकार लौट आया, जिस प्रकार, धन पर लक्ष्य रखनेवाली वारनारियों की संगति की कामना करनेवाले निर्धन पुरुष (उन वारनारियों के पास से) लौट आते हैं, मधुर दृष्टि रखनेवाली गृहिणी-विहीन[1] गृहों में

---

१. अतिथि उसी घर में आतिथ्य पाना चाहते हैं, जहाँ गृहिणी मीठी वाणी से उनका स्वागत-सत्कार करती है ; अन्यथा अतिथि लौट जाते हैं।—अनु०

जानेवाले अतिथिजन (आतिथ्य-सत्कार न पाकर) लौट आते हैं और आत्मदर्शी योगियों के पास जानेवाली मनोहर कामिनियाँ (विफल होकर) लौट आती हैं।

शूल के व्यर्थ हो जाने पर रावण शीघ्र ही कोई दूसरा शस्त्र उठाकर प्रयुक्त करे, इसके पूर्व ही जटायु ने, रावण के, गगन को आवृत करनेवाले तथा ऊँचे अश्व-जुते रथ पर स्थित सारथि का शिर काट दिया और पतिव्रता-रत्न (सीता) पर आसक्त होनेवाले उस रावण के मुख पर, उसे दुःखी करते हुए, (उस शिर को) फेंक दिया।

इस प्रकार (शिर को) फेंकनेवाले के कार्य को देखकर रावण ने उस (जटायु) की हृदय की धीरता को समझ लिया और अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपनी अभ्यस्त (अर्थात्, जिसका प्रयोग करने का वह अच्छा अभ्यासी था ऐसी) स्वर्णगदा को उठाकर ऐसा आघात किया कि अग्नि की ज्वालाएँ निकल पड़ीं। (उस आघात से) गृद्धराज धरती पर एक बड़ा पर्वत-जैसा आ गिरा।

ज्योंही जटायु धरती पर गिरा, त्योंही रावण उत्तम अश्वों से युक्त अपने रथ को इतने वेग से चलाता हुआ कि (किसी की) दृष्टि भी उसका पीछा न कर सके, गगन में उड़ गया। तब मृदु स्वभाववाली सीता देवी इस प्रकार तड़प उठी, जैसे किसी के घाव में अग्निकण प्रविष्ट हो गया हो।

कोमल पल्लव-समान उस (सीता) देवी को शोक-विह्वल होती हुई देखकर जटायु कह उठा—हे हंसिनि ! शोक में मत डूबो। निर्भय रहो—और निःश्वास भरता हुआ वह उठा। फिर (रावण से) यह कहकर कि अरे ! अब तू बचकर कहाँ जायगा, उसके रथ पर झपटा, जिसे देखकर देवता हर्ष-ध्वनि कर उठे।

इस प्रकार झपटकर उस (रावण) की विविध रत्न-जटित गदा को छीनकर दूर फेंक दिया। अपनी चोंच-रूपी खड्ग को चला-चलाकर (रावण के) रथ में जुते अतिवेग-वान् सोलहों अश्वों को छिन्न-भिन्न करके विध्वस्त कर दिया। वह दृश्य देखकर यम भी (भय से) हाथ कँपाता हुआ खड़ा रहा।

जटायु ने रावण के दृढ रथ को व्यस्त करने के पश्चात् उसके दृढ कंधों से बँधे उन तूणीरों को, जो गगनोन्नत थे और धनुष के टूट जाने से युद्ध के लिए अनुपयोगी होकर लोभी के धन-कोष-जैसे लगते थे, अपने तीक्ष्ण नखों से छीनकर फेंक दिया।

फिर, जटायु ने उसके वक्ष और कंधों पर विचित्र ढंग से आक्रमण करके अपने पंखों से उसे मारा और चोंच से काटा। तब रावण शक्तिहीन होकर मूर्च्छित हो गया और सिर झुकाये पड़ा रहा। उसे देखकर जटायु ने कहा—बस ! इतनी ही तेरी शक्ति है ?

उस समय, साकार शक्ति-जैसे बरछे को धारण करनेवाला वह (रावण) क्रुद्ध हुआ और प्रयोग के योग्य अन्य कोई शस्त्र न देखकर, जटायु के प्राणों का तत्क्षण अन्त कर देने के विचार से (लक्ष्य से) न चूकनेवाले अपने करवाल को उठाकर ठीक से चलाया।

वह दिव्य करवाल किसी के लिए अवारणीय था और किसीका भी सिर काट सकता था। जटायु की आयु भी क्षीण हो गई थी। अतः, कभी शक्तिहीन न होनेवाला जटायु, देवेंद्र के कुलिश-से आहत होकर पंख-हीन होकर गिरनेवाले पर्वत के समान गिर पड़ा।

जटायु धरती पर गिरा। उसके पंख बिखरकर गिरे। देवता भय से भाग चले। मुनिगण आश्रयहीन से होकर विलाप करने लगे। वैकुंठ के निवासी (जटायु पर) स्वर्ण-वर्षा करने लगे। सीता (भय से) थरथरा उठी।

जटायु के आघात से जो (रावण) मूर्च्छित होकर लज्जित हुआ था, उसने अब अपनी हर्ष-ध्वनि से गगन-प्रदेश को भर दिया। जाल में फँसी हरिणी-जैसी सीता चिन्तामग्न होती, निःश्वास भरती, मूर्च्छित होती, कोई आश्रय न पाकर अवलंब से हीन लता के समान गिर पड़ती।

सीता यह सोचकर अपने साथी से वियुक्त क्रौंची के समान रो पड़ी कि मेरी सहायता करने के लिए आया हुआ गृद्ध-राज भी मर मिटा। हाय ! अब मेरी गति क्या होगी ?

मूढ़ होकर मैंने अनुज के वचनों का तिरस्कार कर उसे शीघ्र (आश्रम से) भेज दिया था। अब मेरे लिए युद्ध करनेवाले जटायु के मर जाने से मैं स्तब्ध हो गई हूँ। न जाने अब विधि हमपर और क्या आपत्ति डालनेवाला है।

विपदा में पड़ी हुई मुझको देखकर जिस (जटायु) ने 'अभय' कहा था, ऐसा यह सद्गुण (जटायु) पराजित हो और नरक के योग्य (रावण) विजयी हो यह कैसी बात है ? क्या पाप जीतेगा और वेद (अर्थात्, वेद-प्रदिपादित धर्म) हारेगा ? क्या धर्म कहीं नहीं रहा ? इस प्रकार वह विलाप करने लगी।

मुझ, निर्लज्ज नारी के वचन के कारण (आश्रम से) गये हुए हे नरश्रेष्ठो ! अनश्वर धर्ममार्ग पर चलनेवालों के लिए अवलंब बना हुआ तथा आपके पिता का मित्र, जटायु, यहाँ पड़ा है। इसे देखने के लिए आइए—यों कहकर व्याकुल हो रोने लगी।

पातिव्रत्य की रक्षा करना मेरा धर्म है। किन्तु अकुंठित शक्तिवाले तथा युद्ध में निपुण मेरे प्रभु (राम) का धनुष अब अपयश का भाजन हो गया। मुझ-जैसी पापिन के जन्म से मेरे कुल को अपयश उत्पन्न हुआ। इस प्रकार सोचती हुई सीता शोकमग्न हुई।

हे प्रकाशमय स्वर्ग-लोक में भी अपना शासन-चक्र चलानेवाले (दशरथ) ! क्या अब आप सद्धर्म के मार्ग पर चलनेवाले, मित्रता के योग्य, पवित्र कर्त्तव्य को पूरा करनेवाले अपने भाई (जटायु) को, उस (स्वर्ग) लोक में गले लगानेवाले हैं ? यह कहकर वह सिसक-सिसककर रो पड़ी।

रावण ने, इस प्रकार विलपती हुई सीता की निस्सहाय दशा देखी और पंखों के कट जाने से धरती पर पड़े हुए गृद्धराज को भी देखा। फिर, यह सोचकर कि अब यहाँ से हट जाना ही उचित है, रथ पर रखे हुए भूखंड को सीता-सहित उठाकर अपने पुष्ट कंधों पर रख लिया और गगन-मार्ग से चल पड़ा।

गगन में उस क्रूर के गमन-वेग से वह पतिव्रता (सीता), जिनका मन और आँखें चकरा रही थीं, प्रज्ञाहीन होकर, अपने को भी भूलकर भूमि पर गिर पड़ी।

रावण चला गया। जटायु मूर्च्छा से किंचित् ज्ञान पाकर, विशाल गगन में मायावी (रावण) का शीघ्रता से प्रस्थान देखता हुआ सोचने लगा—

पुत्र (अर्थात्, राम-लक्ष्मण) नहीं आये। जिस विधि ने अपनी पुत्रवधू की कठोर वेदना को शान्त करने का यश मुझको नहीं दिया, उसने धर्म की बाड़ को ही तोड़ दिया। अब न जाने, आगे क्या होनेवाला है।

विजयशील (राम-लक्ष्मण) यदि यहाँ रहते, तो क्या बिजली-जैसी सूक्ष्म कटि-वाली एवं स्वर्णकंकण-भूषित सीता की यह दशा होती? मैं नहीं जानता हूँ कि उन (राम और लक्ष्मण) को क्या हुआ है। क्या विमाता (कैकेयी) की वंचना इस प्रकार समाप्त हो रही है? (भाव यह है कि कैकेयी ने जो कार्य सोचा था, वह इस प्रकार पूरा हो रहा है)।

आदिशेष के पर्यंक पर शयन करनेवाले अंजन-वर्ण भगवान् नारायण ही राम होकर अवतीर्ण हुए हैं। अतः, क्रोधी तथा क्रूर राक्षस से वे (युद्ध में) परास्त नहीं हो सकते। अतएव, इस राक्षस ने माया करके इस प्रकार धोखा दिया है।

मेरा तात (राम), राक्षस-कुल को जड़ से मिटा देगा और अपने इस अपयश को दूर करेगा। रावण कमलभव सृष्टिकर्त्ता (ब्रह्मा) के शाप से आक्रान्त है, अतः आर्य (राम) की देवी का स्पर्श करने से डरेगा।

विशाल पंखोंवाला जटायु इस प्रकार अनेक बातों का विचार कर फिर सोचने लगा—अब सीता कठोर कारागार में बंदी के रूप में रहेगी। भले ही मेरे युद्ध करने योग्य पंख कट गये, किन्तु मीठी बोलीवाली सीता के पातिव्रत्य-रूपी पंख नहीं कटेंगे।

जटायु के पंख, रक्त के प्रवाह में भींगकर शिथिल हो गये। उसके मन में बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई; क्योंकि लता-तुल्य कोमलांगी (सीता) को वह छुड़ा नहीं सका। साथ ही, (उसके मन में) कुमारों (अर्थात्, राम और लक्ष्मण) के प्रति प्रेम उमड़ उठा। जिससे वह प्रज्ञा-रहित होकर अत्यन्त व्याकुल हुआ।

रावण सीता देवी को शीघ्र लंका में ले गया और उन (सीता) की देह का स्पर्श करने से भयभीत होकर वहाँ के अशोक-वन में, शिंशपावृक्ष के नीचे, विष के स्वभाव-वाली राक्षसियों के मध्य बंदी बनाकर रखा।

उस राक्षस का (अर्थात्, रावण का) वृत्तान्त हमने कहा। अब हम उस अनुज (लक्ष्मण) का वृत्तान्त कहेंगे, जो सीता की आज्ञा से, कि स्वर्ण-हिरण के पीछे गये हुए प्रभु की दशा को जाकर देखो, गया था।

उसका मन इस व्यथा से अत्यधिक धड़क रहा था कि अनुपम सीता आश्रम में एकाकी रहती हैं। उस समय लक्ष्मण की दशा भरत की उस दशा-सी थी, जब वह (भरत) अयोध्या की रक्षा करना छोड़कर, रामचन्द्र को अयोध्या लौटा लाने के लिए अरण्य में गया था।

स्वच्छ तरंगों से भरे समुद्र में चलनेवाली नौका के समान, लक्ष्मण अतिशीघ्र गया। महान् रक्त-कमल से युक्त विशाल कालमेघ-जैसे प्रभु को उसने देखा और उसके मन के जैसे ही उसकी आँखें भी आनंदित हो उठीं।

कालवर्ण प्रभु ने भी, जिनका हृदय इस विचार से व्याकुल हो रहा था कि

भयोत्पादक मारीच-ध्वनि के श्रवण से कलापी-तुल्य सीता देवी स्त्री-सुलभ अज्ञान के कारण कातर हो रही होगी, अपने अनुज को सम्मुख आते हुए देखा।

तब रामचन्द्र ने सोचा—शिथिल मन और तन के साथ यह लक्ष्मण, उसके (अर्थात्, राम-लक्ष्मण के) वचन की उपेक्षा करके (माया-मृग के पीछे आकर) थक जाने-वाले मेरे निकट, मेरी आज्ञा का उल्लंघन करके अकेले आ गया है। कदाचित् मायावी राक्षस की दुःखजनक पुकार को सुनकर और उसे धोखा न समझकर सीता ने इसे कठोर आज्ञा दी है, इसीसे मेरी दशा को जानने लिए यह आया है।

विधि-विधान को टालने का क्या उपाय हो सकता है?—यों सोचते हुए वे खड़े थे कि अनुज (लक्ष्मण), सुन्दर धनुष को हाथ में रखे हुए उनके निकट आ पहुँचा और उनके सुन्दर चरणों पर नत हुआ। तब ज्येष्ठ ने उसे झट उठाकर विद्युत्-जैसे यज्ञोपवीत से शोभायमान अपने वक्ष से लगा लिया। फिर, द्रवितमन हो उससे पूछा—हे भाई! तुम क्या सोचकर यहाँ आये? तब लक्ष्मण ने उत्तर दिया—

अलौकिक और अनुचित एक ध्वनि सुनाई पड़ी, जिससे भीत होकर उन्होंने (सीता ने) मुझे आज्ञा दी (कि मैं आपके निकट आऊँ)। तब मैंने उन्हें समझाया कि यह क्रूर राक्षस की पुकार है। किन्तु, उस (मेरे) वचन की उपेक्षा करके अत्यन्त व्याकुल होकर उन्होंने फिर कहा—यह क्या है, जानकर आओ। यहाँ मत खड़े रहो। दुबारा मेरे समझाने पर भी कुछ न मानकर, आपकी भुजा के पराक्रम को भी विस्मृत करके, वे अधिक कातर हो उठीं।

फिर, यह कहकर यदि तुम न जाकर यहीं खड़े रहोगे, तो मैं अग्नि में जा गिरूँगी—अरण्य में दौड़ने लगीं। तब मैं भयभीत हुआ। सोचा कि ये (सीता) मुझे वंचक समझ रही हैं। यदि मैं यहीं खड़ा रहूँगा, तो ये आत्महत्या किये विना नहीं रहेंगी। इन्हें नहीं मरना चाहिए; यह धर्म-विरुद्ध होगा। इसलिए, मेरा यहाँ आना हुआ—इस प्रकार लक्ष्मण के कहने पर अमल प्रभु ने विचार किया—

वह (सीता) आत्महत्या किये विना नहीं रहेगी। उसकी मृत्यु को रोकना इसके लिए (लक्ष्मण के लिए) असंभव था और भयभीत हुई सीता इसके वचन भी नहीं मान सकी। अहो! रक्षा-हीन आश्रम में कोई विपदा हो सकती है। उसको रोकना असंभव है। यह सब, हमें अलग करके, उस (सीता) को हरण कर ले जाने का उपाय करनेवाले मायावी राक्षसों का कार्य है।

फिर (राम ने) लक्ष्मण से कहा—यहाँ आने में तुम्हारा दोष कुछ नहीं। उस मुग्धा ने भ्रांत और व्यथा से कातर होकर जो किया, उसीका यह परिणाम है। तुमने पहले ही समझकर कहा था वह मृग—मायामृग है। किन्तु, उसकी उपेक्षा कर मैंने जो कार्य करने का निश्चय किया, हाय! उसीसे यह बुरा (परिणाम) हुआ।—यों कहकर चिंता में निमग्न हो रहे।

फिर, राम ने कहा—समय व्यतीत हो रहा है। अब यहाँ खड़े रहने से कुछ प्रयोजन नहीं। क्रौंची-जैसी उस (सीता) को जबतक मैं नहीं देखूँगा, तबतक मेरी व्यथा

नहीं मिटेगी, नहीं मिटेगी। और, त्वरित गति से दीर्घ मार्ग को पार करके, धनुष से निकले शर के समान चले और स्वर्ण-सदृश सीता के आवासभूत मनोहर पर्णशाला में जा पहुँचे।

इस प्रकार, राम आश्रम में दौड़े आये। किन्तु, वहाँ फुलवारी के सघन पुष्पों से आभूषित कुंतलोंवाली (सीता) को न देखकर इस प्रकार स्तब्ध खड़े रहे, जिस प्रकार प्राण शरीर को छोड़कर बाहर जाकर फिर वापस लौट आये हों और अपने शरीर को न देखकर स्तब्ध खड़े हों।

सुन्दर कर्णाभरण से भूषित सीता को न देखकर रामचन्द्र का मन विरक्त-सा हुआ। वे इस प्रकार हो गये, जिस प्रकार कोई धनी व्यक्ति, जिसकी भूमि में गाड़ी हुई सब संपत्ति को धूर्त्त व्यक्तियों ने हर लिया हो और जो जीवन के आश्रयभूत किंचित् धन से भी वंचित हो गया हो और भ्रांत होकर खड़ा हो।

उस समय धरती चकराने लगी। बड़े-बड़े पर्वत चकराने लगे। दिव्य ज्ञान से युक्त सत्पुरुषों के हृदय चकराने लगे। वीची-भरे सप्त समुद्र चकराने लगे। आकाश चकराने लगा। ब्रह्मा के नयन चकराने लगे। सूर्य और चन्द्र चकराने लगे।

समस्त लोक यह आशंका करते हुए थरथराने लगे कि यह महिमावान् (राम) धर्म पर क्रुद्ध होनेवाला है? या कृपा (नामक गुण) पर क्रुद्ध होनेवाला है? देवताओं के पराक्रम पर क्रुद्ध होनेवाला है? मुनियों पर क्रुद्ध होनेवाला है? क्रूर राक्षसों के अत्याचार पर क्रुद्ध होनेवाला है? वेदों पर क्रुद्ध होनेवाला है? न जाने, राम के क्रोध का परिणाम क्या होगा?

उस श्याम-रूप (राम) की मनोदशा के परिवर्त्तित हो जाने से अपरिमेय (चर-अचर रूप) वस्तुजाल, ऊपर के रहनेवाले नीचे और नीचे के रहनेवाले ऊपर होकर सब उसी प्रकार अस्त-व्यस्त हो गये, जिस प्रकार प्रलय-काल में, सृष्टि के कारणभूत परमात्म-तत्त्व में विलीन होने के लिए वे (सृष्टि के पदार्थ) अस्त-व्यस्त होकर मिट जाते हैं।

तब अनुज (लक्ष्मण) ने रामचन्द्र को नमस्कार करके कहा—रथ के पहियों के चिह्नों को हम यहाँ देख रहे हैं। कोई राक्षस देवी का स्पर्श करने से डरकर यहाँ के भूखंड-सहित ही उन्हें उठाकर ले गया है। अब निःशक्त-से खड़े रहकर व्यर्थ ही कुछ सोचते रहने से कुछ लाभ नहीं होगा। (उस राक्षस के) दूर जाने के पूर्व ही हम उसका पीछा करेंगे।

अमल रूप (राम) ने भी इससे सहमत होकर कहा—हाँ, यही उचित है। फिर, वे दोनों वीर अपने उज्ज्वल तूणीर आदि को लेकर उस मार्ग से होकर चल पड़े, जहाँ से रावण का बड़ा रथ सुन्दर तथा बड़े पर्वतों को चूर-चूर करता हुआ गया था।

उस मार्ग में, उस राक्षस के रथ का चिह्न कुछ दूर तक जाकर फिर अदृश्य हो गया था और ऐसा लगा, जैसे वह रथ नभ में उठ गया हो। तब रामचन्द्र ने ऐसी व्यथा के साथ, जैसे जले हुए घाव में बरछा चुभ गया हो, कहा—ऐ भाई! अब हम क्या उपाय करें?

लक्ष्मण ने उत्तर दिया—मल्लयुद्ध के लिए सन्नद्ध, पुष्ट कंधोंवाले हे महिमामय! यह बात स्पष्ट विदित हो रही है कि वह रथ दक्षिण दिशा की ओर गया है। आपके धनुष

से निकलनेवाले शर के लिए गगन-मंडल भी कुछ बड़ा नहीं है। आपका इस प्रकार दुःख से अधीर होना उचित नहीं है।

तब राम ने कहा—हाँ, तुम्हारा कथन ठीक ही है। फिर, वे दोनों दक्षिण दिशा की ओर गये। दो योजन दूर जाने पर वहाँ उन्होंने ढहे हुए ऊँचे पर्वत के समान धरती पर गिरी हुई और वीणा के चित्र से युक्त पटवाली एक ध्वजा देखी।

उस ध्वजा को देखकर उन्होंने विचार किया—कदाचित् सीता के निमित्त से देवों ने उन राक्षसों से युद्ध किया होगा। फिर, रामचन्द्र ने यह सोचकर कि (जटायु की) चोंच-रूपी शस्त्र से ही यह उज्ज्वल ध्वजा टूटकर गिरी है। अपने कमल-जैसे नयनों में अश्रु भरकर कहा—

भाई! मेरा विचार है कि हमारे पितृतुल्य (जटायु) शीघ्रता से यहाँ आये होंगे और उनकी चोंच से ही यह (ध्वजा) टूटी होगी। (जटायु) ने बड़े वेग से इसपर आक्रमण किया होगा। हमें विदित नहीं हुआ है कि उन्हें (अर्थात्, जटायु को) इस बीच में क्या हुआ। वे अकेले हैं और जरा से जीर्णदेह भी हैं।

तब लक्ष्मण ने कहा—बहुत ठीक है। यह निश्चित है कि अवार्य पराक्रम से युक्त वे (जटायु) आज दिन-भर उस राक्षस को रोके खड़े रहेंगे। हम भी शीघ्र उनके पास पहुँच जायँ। कदाचित् वे (जटायु) स्वयं ही (सीता) देवी को मुक्त कर लायेंगे। अब अन्य कुछ सोचते हुए विलंब करने से कुछ प्रयोजन नहीं है।

राम भी वैसे ही आगे बढ़ने को सहमत हुए। फिर, वे दोनों धरती पर चक्कर काटकर बहनेवाली हवा (अर्थात्, बवंडर) के जैसे, और चरखी के जैसे अतिवेग से बढ़ चले। इधर-उधर दृष्टि डालते हुए जानेवाले उन वीरों ने एक स्थान पर, गगन से टूटकर गिरे हुए इन्द्र-धनुष के समान और समुद्र से उठी हुई वीची के समान पड़े हुए एक टूटे हुए विशाल धनुष को देखा।

तब रामचन्द्र ने लक्ष्मण से कहा—हे लक्ष्मण! यह धनुष देवताओं के द्वारा क्षीर-सागर को मथने में मथानी बनाये गये मन्दर-पर्वत की समता करता है। चन्द्र की-सी देहकांति-वाले जटायु ने अपनी चोंच से काटकर इसे तोड़ दिया है, उस (जटायु) की शक्ति भी कैसी है?

फिर, कुछ दूर जाने पर उन्होंने एक स्थान में एक त्रिशूल को और अनेक बाणों से पूर्ण दो तूणीरों को पर्वत-जैसे पड़े हुए देखा और उनके निकट गये।

फिर, आगे बढ़कर उन्होंने राक्षसराज के वक्ष पर से (जटायु के द्वारा) खींचकर नीचे गिराये गये उस कवच को देखा, जो ऐसा लगता था, मानों नभ में संचरण करनेवाले सब ज्योतिष्पिंड एकत्र होकर उस रूप में वहाँ आये हों और जो अरण्य-पथ को (अपनी विशालता और कांति से) आवृत करके पड़ा हुआ हो।

फिर, वे आगे बढ़कर उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ पवन-के-से वेगवाले घोड़े, अरण्य-प्रदेश को ढककर बिखरे पड़े थे और सारथि भी मरा हुआ पड़ा था। वहाँ रक्त से युक्त मांस-खंड भी बिखरे थे। फिर, वे उस स्थान पर आ पहुँचे, जहाँ जटायु ऐसे गिरा हुआ था, जैसे गगन ही धरती पर आ गिरा हो।

प्रलय-काल में जिस प्रकार उज्ज्वल कांति बिखेरनेवाले अनेक सूर्यमंडल मनोहर नभोमंडल को छोड़कर धरती पर आ पड़े हों, उसी प्रकार अनेक रत्नमय कुंडल एवं उत्तम रत्न-जटित अनेक आभरण वहाँ बिखरे पड़े थे। उन्हें देखकर वे विस्मित हुए।

राम ने लक्ष्मण से कहा—हे भाई! यहाँ अनेक अंगद गिरे हैं। उज्ज्वल कुंडल भी अनेक गिरे हैं। रत्नमय किरीट अनेक गिरे हैं। अतः, निस्सहाय वृद्ध जटायु के साथ युद्ध करनेवाले सिंह-सदृश वीर अनेक रहे होंगे।

लक्ष्मी के पति ने जब इस प्रकार कहा, तो सुमित्रा के सिंह (सदृश पुत्र) ने कहा—वृक्ष-समान दीर्घ भुजाएँ अनेक हैं, शिर अनेक हैं, हमारे तात (जटायु) से युद्ध करनेवाला और इतनी दूर तक ले आनेवाला एक ही था। वह रावण ही रहा होगा।

पुष्पहारों से भूषित अनुज की बात से सहमत होकर रामचन्द्र अपने दृढ मन तथा नयनों से क्रोधाग्नि उगलते हुए इधर-उधर देखते हुए बढ़ चले और वहाँ एक स्थान पर अपने शरीर से प्रवाहित रक्त-धारा में, समुद्र में रखे पर्वत (मंदर) जैसे पड़े हुए तात (जटायु) को देखा।

उत्तम तथा अमल (रामचन्द्र), पुष्ट अरुण कमल-जैसे अपने नयनों से अश्रु बहाते हुए, अपने प्राणों के सदृश उपमाहीन, उदार, गुणवान् जटायु पर आकर इस प्रकार गिरे, मानों अग्निवर्ण शिवजी के रजताचल पर कोई अंजन-पर्वत आ गिरा हो।

रामचन्द्र एक मुहूर्त्तकाल तक श्वास-हीन पड़े रहे। लक्ष्मण ने यह आशंका करके कि राम मूर्च्छित हो गये हैं, उनके समीप जाकर उनको अपने अरुण करों से उठाकर आलिंगित कर लिया और निर्झर से जल लेकर उनके मुख पर छिड़का। तब राम ने अपने कमल-समान नयन खोलकर धीरे-धीरे प्रज्ञा पाई और यों कहने लगे—

कौन पुत्र ऐसे हुए हैं, जिन्होंने अपने पिता की हत्या की हो। मेरे पिता मेरे विरह से पहले ही मृत्यु को प्राप्त हो गये। हे मेरे पितृतुल्य (जटायु)! मेरी सहायता करने आकर तुम भी प्राणहीन हो गये! हाय! मैं पापी, इन (दोनों) की मृत्यु (का कारण) बन गया।

हे मेरी माता-समान (जटायु)! यह न सोचकर कि मैं अकेला हूँ, और यह भी विचार न करके कि आगे का परिणाम क्या होगा, मोह-ग्रस्त होकर (मायामृग के पीछे) गया। मेरी पत्नी की विपदा से रक्षा करने के लिए आकर तुमने अपना कर्त्तव्य निबाहा। किन्तु मैं, जो अपने कर्त्तव्यों को पूर्ण नहीं कर सका हूँ, किस प्रयोजन से व्याकुल होऊँ? (अर्थात्, अब मेरा रोना व्यर्थ है।)

मुझे मर जाना चाहिए। किन्तु, वेदज्ञ मुनियों की इच्छाओं को पूर्ण करने का व्रत मैंने लिया है। अतः, अभी तक प्राण रख रहा हूँ। वृक्ष के जैसे बढ़ा हूँ, किन्तु किंचित् भी प्रयोजन से रहित नीच कार्य करनेवाला हूँ। वंचना के विषयभूत इस क्षुद्र जन्म को मैं नहीं चाहता।

मेरी पत्नी के बन्दी हो जाने पर, उसे मुक्त करने के लिए लड़कर महिमामय तुम, यों आहत होकर पड़े हो। तुमको मारनेवाला वह शत्रु अभी जीवित है। दृढ धनुष को और शरों को ढोता हुआ मैं लंबे पेड़ के जैसे खड़ा हूँ, खड़ा हूँ। अहो!

अब मेरे समान यशस्वी (इस संसार में) और कौन है ? हे दृढ पंखोंवाले ! असंख्य दाँतोंवाले ! पुरातन पाप से युक्त मेरी पत्नी के देखते हुए, शस्त्रधारी शत्रु ने तुमको मार दिया और चला गया। मैं धनुष हाथ में रखकर व्यर्थ ही जीवित हूँ। अहो, मेरी वीरता भी कैसी है !

अपना उपमान न रखनेवाले रामचन्द्र इस प्रकार के अनेक वचन कहकर अश्रु बहाते रहे और मूर्च्छित हो गये। अनुज (लक्ष्मण) की भी वैसी ही दशा हो गई। तब गृध्र-राज कुछ-कुछ प्रज्ञा पाकर बड़ी कठिनाई से साँस लेने लगा और आँखें खोलकर उन दोनों को देखा।

(सीता की क्या दशा हुई) यह वृत्तांत कुछ न जाननेवाले, व्याकुल प्राणों के साथ उष्ण श्वास भरनेवाले जटायु ने उन विजयी वीरों को देखा। उससे उसका मन ऐसा आनंदित हुआ, जैसे उसके कटे हुए पंख, प्रिय प्राण और सप्त लोक भी उसे प्राप्त हो गये हों। उसने ऐसा सोचा कि मैंने शत्रु को ही जीतकर उससे प्रतिशोध लिया है।

फिर जटायु ने कहा—हे पुण्यात्माओ ! मैं अब अपने इस निष्प्रयोजन तथा अपयश के भाजन शरीर को त्याग रहा हूँ। सौभाग्य से ही इस समय तुम दोनों को देख सका हूँ। मेरे निकट आओ। फिर, रावण के किरीटधारी शिरों पर चोट मार-मारकर छिन्न हुई अपनी चोंच से उनके शिरों को बारी-बारी से कई बार सूँघा।

मेरे मन ने पहले ही कहा था कि उस (रावण) का यहाँ आगमन माया से हुआ है। (अर्थात्, वह माया से तुमको धोखा देकर ही वहाँ आया)। फिर भी, अक्षुण्ण पराक्रम से युक्त तुम दोनों, मधुर बोलीवाली उस अरुंधती को (अर्थात् , अरुंधती-तुल्य पतिव्रता सीता को) अकेली ही छोड़कर कैसे चले गये ?

उसके यह कहते ही कनिष्ठ (लक्ष्मण) ने मायामृग के आने से लेकर सारी घटनाओं को कह सुनाया।

रामचन्द्र की आज्ञा से वीर लक्ष्मण ने जब सब कह सुनाया, तब गृध्रराज ने सब सुनकर और यह विचार करके कि राम-लक्ष्मण को उनके दुःख में कुछ सांत्वना देना आवश्यक है, इस प्रकार के वचन कहे—

इस निंदनीय जीवन के सुख-दुःख विधि के वशीभूत हैं। कोई उनमें कुछ परिवर्त्तन नहीं कर सकता। इस तत्त्व को हमें मानना पड़ेगा। यदि इसे नहीं मानेंगे, तो क्या अपनी बुद्धि के बल से विधि के विधान को मिटा सकेंगे ?

जब विधिवश विपदा उत्पन्न होती है, तब मन की धीरता का त्याग कर व्याकुल होना अज्ञता है। जिस नियति ने सारी सृष्टि के कर्त्ता के सिर को काटा था, उसके लिए असाध्य कार्य कुछ नहीं है।

जब सुख या दुःख उत्पन्न हो, तब यह कहना कि इसको हम रोक सकते हैं, असत्य वचन होगा (अर्थात्, कर्मफल से प्राप्त सुख को कोई रोक नहीं सकता)। त्रिपुरों को जलाने के लिए जिस (शिव) ने शर का प्रयोग किया था, उसने कपाल में भिक्षा माँगकर खाते हुए तपस्या की थी। क्या यह उसके लिए योग्य था ?

फुफकार भरनेवाले घोर सर्प (राहु और केतु) गगन में उष्ण किरणों को प्रसारित करनेवाले (सूर्य) को निगलकर फिर उगल देते हैं। विशाल धरती के अंधकार को दूर करके उसे प्रकाशित करनेवाला चंद्रमा घटता-बढ़ता रहता है।

हे सुन्दर कंधोंवाले! विपदाओं का आना और जाना प्रारब्ध कर्म का परिणाम है। ज्ञानवान् देवगुरु (बृहस्पति) के शाप-वचन से देवेंद्र[1] को जो विपदाएँ उठानी पड़ीं, क्या उन्हें कोई गिन सकता है?

हे धनुर्विद्या में चतुर वीर! जब अवार्य पराक्रमशाली शंबर नामक असुर के अत्याचारों से वज्रधारी इंद्र पराजित हुआ था, तब तुम्हारे पिता ने अपने पुष्ट कंधों के प्रभाव से उस असुर को मारा था।

(गीध, चील आदि) पक्षियों और ज्ञान-रहित भूतों के लिए मातृ-तुल्य, मांसगंध से युक्त माला धारण करनेवाला (अर्थात्, राक्षसों को युद्ध में मारकर उनके मांस का भोजन भूतों तथा पक्षियों को देनेवाला) उपेक्षित धर्म एवं देवताओं की विपदा ने तुम्हें मधुर बोलीवाली सीता से विलग किया है, अतः माया-युद्ध करनेवाले राक्षस नामक काँटेदार झाड़ियों को उखाड़कर तुम जियो।

आम के टिकोरे के जैसे सुन्दर नयनोंवाली तथा दीर्घ केशपाशवाली (सीता) को रावण भूखंड-सहित उठाकर ले जा रहा था। तब मैंने अपनी शक्ति-भर उसे रोका, किंतु उसने तपस्या के प्रभाव से प्राप्त करवाल से मुझे आहत कर दिया, जिससे मैं यों गिरा हूँ। आज ही यह घटना घटी है।—इस प्रकार जटायु ने कहा।

जटायु के कहे ये वचन कानों में प्रवेश करें, इसके पूर्व ही रामचन्द्र के अरुण नयन अग्नि उगलने लगे। उनके निःश्वास से चिनगारियाँ बिखरीं। भौंहें ऊपर जा चढ़ीं। (उनके ऐसे क्रोध से) ज्योतिष्पिंड (सूर्य, चन्द्र आदि) भयभीत होकर भाग गये। ब्रह्मांड में अनेक स्थानों पर दरारें पड़ गईं। पर्वत ढह गये।

धरती घूम उठी। ऊँचे पर्वत घूम उठे। विशाल समुद्र जल, पवन और सूर्य-चन्द्र घूम उठे। ऊपर के लोक में स्थित ब्रह्मा घूम उठा। तब यह सत्य स्पष्ट हुआ कि वह वीर (राम) ही सब प्रकार के पदार्थ हैं (अर्थात्, सृष्टि के सब पदार्थ उस राम के ही अनेक रूप हैं)।

यह सोचते हुए कि रामचन्द्र अपना क्रोध न जाने, किस पर उतारेंगे, सकल लोक भय से काँप उठे। उस समय लाल अग्नि ज्वालाएँ चिनगारियों तथा धुएँ के साथ सर्वत्र

---

१. पुराणों में यह कथा प्रसिद्ध है कि एक बार देवेंद्र ने अपनी संपत्ति से गर्विष्ठ होकर अपने गुरु बृहस्पति का निरादर किया, जिसपर क्रुद्ध होकर बृहस्पति कहीं अदृश्य हो गये। गुरु के न रहने से इन्द्र त्वष्टा के पुत्र विश्व-रूप को गुरु बनाकर स्वर्ग का शासन करने लगा। विश्व-रूप ने असुरों के प्रति प्रेम दिखाकर उन्हें यज्ञों में हविर्भाग दिया, तो उसपर क्रुद्ध होकर इंद्र ने उन्हें मार डाला। तब त्वष्टा ने यज्ञ से वृत्र को उत्पन्न करके इंद्र के विरुद्ध भेजा। उसके साथ युद्ध में इंद्र ने अनेक कष्ट उठाये। पश्चात् दधीचि महर्षि की अस्थि का शस्त्र बनाकर उसे मारा। किन्तु, ब्रह्महत्या के कारण इंद्र को अनेक वर्ष तक राज्यभ्रष्ट होकर कष्ट भोगने पड़े। इस पद्य में उसी कथा की ओर संकेत है। —अनु०

उठने लगीं। एक ज्वलन्त अट्टहास भयंकर शब्द कर उठा (अर्थात्, रामचन्द्र वीरता के आवेश में ठठाकर हँस पड़े)। फिर वे कहने लगे—

एक अज्ञ राक्षस एक निस्सहाय स्त्री को उठाकर ले गया और तुम्हारी ऐसी दशा हुई। तो भी अष्ट दिशाओं में स्थित ये सब लोक विचलित हुए विना अबतक स्थिर खड़े हैं। देवता लोग अत्याचार को देखते हुए चुपचाप खड़े रहे। देखो, अभी मैं इन सबको विध्वस्त कर डालता हूँ।

अभी तुम देखोगे कि सब नक्षत्र टूटकर गिरते हैं। अनुपम किरणवाला सूर्य चूर-चूर हो जाता है। विशाल आकाश में सर्वत्र आग लग जाती है। जल, पृथ्वी, अग्नि, आकाश और पवन एवं सब चराचर वस्तुजाल समूल विनष्ट हो जाते हैं और देवता लोग मिट जाते हैं—(यह सब तुम अभी देखोगे)।

तुम यह भी देखोगे कि किस प्रकार स्थित रहनेवाले तथा महान् लगनेवाले ये चतुर्दश लोक एक क्षण में मिट जाते हैं। अष्ट दिशाओं की सीमा में स्थित तथा ब्रह्मांड के बाहर स्थित पदार्थ ही एक क्षण में जलकर भस्म हो जाते हैं—यह सारा दृश्य तुम अब देखनेवाले हो। इस प्रकार राम ने क्रोध के साथ कहा।

उष्ण किरणवाला सूर्य (राम के क्रोध से) बचने का प्रयत्न करता हुआ मेरु पर्वत के शिखरों में जा छिपा। अष्ट दिशाओं में स्थित महान् गज भय से भाग गये। अब क्या यह कहना आवश्यक है कि संसार के सब प्राणी भय से विह्वल हो गये? अत्यन्त धीर चित्तवाला लक्ष्मण भी (राम का क्रोध देखकर) भय से काँपने लगा, तो अन्य लोगों के भय की क्या कोई सीमा हो सकती थी?

जब इस प्रकार घट रहा था, तब गृध्रराज (जटायु) ने कहा—हे उत्तम गुणवाले! तुम जीवित रहो, किंचित् भी क्रोध मत करो। कठोर प्रतापयुक्त हे वीर, देव और मुनि यह विचार कर कि तुम्हारे कारण (राक्षसों पर) उनकी विजय होगी, आनंदित हैं। वे अन्य किस बल से रावण को पराजित कर सकते हैं?

कमलभव ब्रह्मा से प्राप्त वर के प्रभाव से रावण ने मुझपर जो वीरता दिखाई, इसे प्रत्यक्ष तुम देख रहे हो। अब इसके बारे में (अर्थात्, रावण के पराक्रम के सम्बन्ध में) और क्या कहना है? कमल में उत्पन्न ब्रह्मा से लेकर सब देवता उस दशमुख की सेवकाई करते हैं, न कि धर्म की रक्षा। उसकी रक्षा करनेवाला कौन है?

समुद्र से घिरी धरती पर रहनेवाले सब लोग स्त्रियों के समान उस शत्रु (रावण) की सेवकाई करते रहते हैं। देवताओं की यह दशा है। यदि क्षीरसागर के मथन के समय उन देवताओं ने अमृत नहीं पिया होता, तो उनके प्राण कभी के मिट गये होते।

दृढ शरासन को अपने सुन्दर करों में धारण करनेवाले हे वीरो! कंचुक में बँधे स्तनोंवाली लता-तुल्य उस देवी को एकाकी छोड़कर सींगवाले हरिण के पीछे जाकर तुम इस प्रकार के अपयश के भाजन हो गये। विचार कर देखने पर विदित होगा कि यह अपराध तुम्हारा ही है। संसार के लोगों का नहीं।

अतः, तुम क्रोध मत करो। अरुंधती-समान उस पतिव्रता की विपदा को दूर करो।

देवताओं के मनोरथ को पूर्ण करो। अपने सब कर्त्तव्यों को वेदोक्त विधान से संपन्न करो और संसार के पापों को दूर करो। इस प्रकार, भगवान् के चरण-कमलों को प्राप्त होनेवाले जटायु ने कहा।

मेघ-जैसे श्यामल (राम) ने उस पुण्यवान् (जटायु) की बात को दशरथ की ही आज्ञा मानकर स्वीकार किया और यह विचार कर कि दूसरों पर क्रोध करने से अब क्या प्रयोजन है, राक्षसों के कुल का नाश करना ही प्रस्तुत कर्त्तव्य है, अपने मन के क्रोध को शान्त कर लिया।

फिर, उस अमल (राम) ने जटायु से कहा—तुमने मुझे शान्त रहने की जो आज्ञा दी है, उसके अतिरिक्त मेरे लिए अन्य कोई कर्त्तव्य नहीं है। अब बताओ कि वह राक्षस (रावण) किस दिशा में गया ? किन्तु, इतने में वह गृध्रराज शिथिल हो गया। उसकी संज्ञा मिट गई। कुछ उत्तर नहीं दे पाया और धीरे-धीरे उसके प्राण निकल गये।

वह जटायु (अपनी अंतिम घड़ी में) उस भगवान् (राम) के चरणों के दर्शन कर सका, जो भगवान् शीतल कमल से उत्पन्न ब्रह्मा के लिए क्या, स्वयं वेदों के लिए भी अज्ञेय हैं। अतः, वह उस (वैकुंठ) लोक में जा पहुँचा, जो पंचभूतों को भी मिटा देनेवाले महाप्रलय में भी नहीं मिटता।

जब जटायु मुक्ति पा गया, तब राम और उनके अनुज शोक-मग्न हुए। वन के वृक्ष, मृग, पक्षी और पत्थर भी पिघल उठे। ब्रह्मा आदि देवता, नाग तथा भूलोकवासी अपने शिर पर हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए खड़े रहे।

उस समय, राम ने अपने अनुज से कहा—भाई धर्महीन राक्षस से मेरा पौरुष परास्त हुआ। क्या अब संन्यास लेकर तपस्या करूँ ? या प्राण छोड़ दूँ ? बताओ। मुझे पुत्र के रूप में पाकर पिता मर गये। ऐसा जन्म पाकर मैं अबतक मरा नहीं। मैं क्या करूँ ?

राम के इस प्रकार कहने पर लक्ष्मण ने उन्हें प्रणाम करके उत्तर दिया—हे विजयशील ! विधि के परिणाम से ऐसी विपदाएँ होती हैं। अब उनको सोचकर दुःखी होने से क्या प्रयोजन है ? उन क्रूर राक्षसों का समूल विनाश करना पहला कर्त्तव्य है। उसके पश्चात् (जटायु की मृत्यु आदि विपदाओं का स्मरण कर) दुःख कर सकते हैं (अर्थात्, यह दुःख करने का समय नहीं, वरन् शत्रु-नाश करने का है)।

हे मेरे प्रभु ! विरक्त होकर आप सुन्दर कुंतलोंवाली देवी को खोकर भी शांति के साथ रह सकते हैं, तो रहें। किन्तु, हमारे पितृ-तुल्य (जटायु) को मारनेवाले राक्षस को मारे विना आप किस प्रकार तपस्या-निरत रह सकते हैं ?

अनुज के वचनों से किंचित् स्वस्थ होकर सर्वज्ञ राम ने यह सोचकर कि इस प्रकार दुःख-मग्न होना अज्ञता है; अपनी व्याकुलता तथा अश्रुओं को भी दूर करके कहा—हे भाई ! मरे हुए पितृ-तुल्य जटायु की अंतिम क्रिया यथाविधि संपन्न करें।

उन्होंने काले अगरु-काष्ठों के साथ चंदन-काष्ठों को सजाकर उनपर दर्भों को बिछाया। फिर पुष्प बिखेरे। मिट्टी की वेदी बनाकर उसपर स्वच्छ जल को रखा। फिर, राम जटायु की देह को अपने विशाल हाथों से उठाकर लाये।

समृद्ध शास्त्रों के तत्त्वों और मंत्रों को जाननेवाले राम ने (जटायु की देह पर) जल, चंदन और पुष्प डाले। अपने दोनों हाथों से उसे चिता पर रखा। फिर, चिता के सिरहाने में अग्नि प्रज्वलित की एवं अन्य सब संस्कार पूर्ण किये।

राक्षसों के प्रति क्रोध करने से राम का दुःख किंचित् शान्त हुआ। उनके पुष्ट तथा शुक के-से रंगवाले श्यामल शरीर पर उनके नेत्रों से इस प्रकार अश्रु झड़ पड़े, जिस प्रकार प्रफुल्ल कमल से मधु-बिन्दु गिरते हैं। यों मेघ-समान उन (राम) ने नदी में स्नान किया और अंजलि में स्वच्छ जल लेकर जटायु को तिलांजलि अर्पित की।

राम के द्वारा अर्पित उस जलांजलि से ब्रह्मा से लेकर उच्च तथा नीच सब प्राणि-जात, अत्यंत तृप्त हुए। गृध्रराज को उद्दिष्ट करके प्रभु ने अपनी अंजलि से जो स्वच्छ जल अर्पित किया, वह स्वयं भगवान् के लिए भी पीने योग्य बन गया। अब उस जल-तर्पण के बारे में और क्या कहा जाय ?

विजयशील चक्रवर्त्ती कुमार (राम) ने सब संस्कार वेदोक्त प्रकार से संपन्न किये। उस समय सूर्य पश्चिमी समुद्र में जा पहुँचा, मानों वह अपने कुल से सम्बन्ध रखने-वाले जटायु की मृत्यु से उत्पन्न शोक से जल में स्नान करने और सद्गति देनेवाले संस्कार करने को जा रहा हो। (१–१५०)



अध्याय १०

अयोमुखी पटल

जब संध्या हो रही थी तब वे (राम-लक्ष्मण) उस स्थान से चलकर उस वन में स्थित एक पर्वत पर जाकर ठहरे, जिस पर्वत के शिखर पर हाथी और मेघ विश्राम करते थे। इतने में अत्यन्त दुःख का कारणभूत अंधकार इस प्रकार फैला, जैसे इंद्र के वश में न होने-वाले राक्षस सर्वत्र फैल गये हों।

उस रात्रिकाल में, जब वन्य वृक्षों तथा पर्वतों से मधु और जल की धाराएँ इस प्रकार बह रही थीं, मानों (राम-लक्ष्मण के दुःख से) शोकाकुल होकर वे आँसू बहा रहे हों, राम और लक्ष्मण के मन में अभिमान, क्रोध, दुःख तथा ज्ञान—ये सब परस्पर संघर्ष करने लगे।

उस रात्रिकाल में, जो तत्त्वज्ञान से रहित बुद्धि को पापमार्ग में चलानेवाले असत्य जन्म के जैसे ही उत्तरोत्तर बढ़ रहा था, उन (राम और लक्ष्मण) का निःश्वास घी के पड़ने पर भड़की हुई आग के समान बढ़ रहा था। तब उनके शोक का कहीं कुछ अन्त नहीं था।

मधुयुक्त पुष्पमाला से भूषित राम के नयन-रूपी अरुण-कमल रात्रि के समय में भी मुकुलित नहीं हुए। वह क्या मनोहर मंदहास से शोभित सीता नामक लक्ष्मी के वियोग

के कारण था? या उस (सीता) के मुख-रूपी चन्द्र के दर्शन न करने के कारण था? हम उसका कारण नहीं कह सकते।

स्त्री-रूप दीप के समान स्थित, अति रूपवती सीता के वियोग के कारण उत्पन्न अत्यधिक दुःख में राम ने अपने मन में क्या विचार किया—यह हम नहीं जानते, (हम इतना ही कह सकते हैं कि) उस पुष्प-स्वरूप राम के नयन भी निद्रा में मुकुलित न होकर उनके पुष्ट कंधोंवाले भाई (लक्ष्मण) के नयनों के जैसे ही (खुले) रहे[1] (अर्थात्, राम ने निद्रा नहीं की)।

जहाँ शीतल तथा मधुर मंद मारुत-रूपी सर्प संचरण करता था, उस पर्वत के समीप में गगनतल को प्रकाशित करता हुआ उज्ज्वल चन्द्रमा इस प्रकार उदित हुआ कि रामचन्द्र ने मानों भ्रमरों से गुंजरित पुष्पमाला धारण करनेवाली सीता के वदन-बिंब को ही देखा हो।

उस रात्रिकाल में गर्व-भरा मन्मथ-रूपी चोर जब छिपकर अपना प्रभाव दिखाता था, संसार-भर में प्रकाशित होकर बढ़नेवाली चाँदनी की बाढ़ (राम को) इस प्रकार जलाने लगी, जैसे अंधकार-रूपी विष से युक्त सर्प के छेदवाले विष-दंत के भीतर का विष हो।

विष के समान फैलनेवाली उज्ज्वल चाँदनी वीर (राम) को पीडित कर रही थी। सीता के हरण से उत्पन्न अपमान की भावना उनके विवेक को हर रही थी, वे अन्य सब विचारों को छोड़कर केवल उन सीता के, जो सर्पफन-सदृश जघन तटवाली थी, दुग्ध-जैसी मीठी बोलीवाली थी और दीर्घ नेत्रवाली थी, अकेलेपन के बारे में ही सोच रहे थे।

राम ओंठ चबाते, निःश्वास भरते, उनके कंधे फूलते और शिथिल होते। महान् गज के द्वारा तोड़ी गई शीतल पल्लवों तथा पुष्पों से शोभायमान शाखा-सदृश सीता के बारे में सोचते।

समुद्र में उठनेवाली वीचियों के समान उनके निःश्वास उठ-उठकर गिरते थे। वे सोचते कि सीता यह सोचकर कि रामचन्द्र अपना धनुष झुकाये हुए आते ही होंगे, मार्ग के दोनों ओर देखती हुई गई होगी।

जब विद्युत्-जैसे खड्ग-दंतोंवाला रावण—'ठहरो।' 'ठहरो।' कहता हुआ सीता के निकट (उसे उठा ले जाने के लिए) गया होगा, तब सीता ने मेरा स्मरण नहीं किया होगा—यह कहना उचित नहीं है। (उसके स्मरण करने पर भी जब मैं उसकी रक्षा के लिए नहीं आया, तब न जाने मेरे बारे में उसने क्या सोचा होगा।)

विष-दंतों से युक्त (राहु नामक) सर्प के मुँह में पड़े चन्द्र के समान कांतिहीन सीता, क्रूर राक्षस के क्रोध से भयभीत हुई होगी। हाय! यों सोचते।

अपमान और विरह-ताप—इन दोनों से व्याकुल होनेवाले उनके प्राण इन दोनों के मध्य रहकर इनके द्वारा बारी-बारी से सताये जा रहे थे, जिससे दुःखी हो रामचन्द्र सोचते—क्या अब भी मुझे धनुष की आवश्यकता है?

सनातन वेदों के पारंगत सब पंडितों के द्वारा देखे जानेवाले राम अपने धनुष को

१. इसके पूर्व अयोध्याकांड में यह कहा गया है कि लक्ष्मण वनवास के समय, कभी नहीं सोते थे, किंतु रात-दिन जागरित रहकर राम की परिचर्या में निरत रहते थे।—अनु०

देखकर हँसते, तथा संसार में, प्राप्त होनेवाले अपने अपयश को सोचकर स्तब्ध रह जाते।

वे (राम) हाथी के जैसे बड़े शब्द के साथ निःश्वास भरते। शीतल पवन-रूपी क्रूर यम को देखकर कहते—हाय ! वेदोक्त विधान से मेरे द्वारा परिणीत सीता मुझसे वियुक्त हो गई।

मैंने अनेक प्राणियों की रक्षा करने का व्रत लिया है। किन्तु, आभरणों से भूषित मेरी पत्नी बनी हुई एक कुलीन नारी की विपदा को मैं दूर नहीं कर सका। मेरा पराक्रम भी खूब है। इस प्रकार सोचकर राम लज्जित होते।

उसका मन व्याकुल होता, उसके ओंठ सूख जाते, वे मूर्च्छित होते। अनुज के द्वारा निर्मित शीतल पल्लव-शय्या पर लेट जाते। उनके शरीर-ताप से वे पल्लव झुलस जाते, तो (राम) अपने अनुज से कहते कि ये पत्ते हटा दो। फिर (लक्ष्मण के द्वारा लाये गये) नये तथा अरुण पल्लवों को देखते। किंतु, उनके शरीर-स्पर्श से वे नये पल्लव भी झुलस जाते, तो व्याकुल-प्राण हो वे थक जाते।

वे राम, जिनके कमल-समान नयनों के झँपने के एक क्षण काल में अनेक युग व्यतीत होते थे (अर्थात्, जो विष्णु के अवतार थे) इस समय वहाँ रहकर उस रात्रि का कुछ अन्त नहीं देख पाते थे। इसका कारण सीता का वियोग था या (सीता के प्रति) उनके प्रेम की अधिकता थी, यह हम (लेखक) नहीं जानते।

विजय के कारणभूत भाले को रखनेवाले अपने भाई को देखकर, वे (राम) कहते—तुमने देखा है न कि इसके पहले, सभी दिन एक ही जैसे व्यतीत होते थे। किन्तु, आज यह रात्रि क्यों इतनी दीर्घ हो रही है ?

दीर्घ लगनेवाले रात्रिकाल में प्रकाशमान चन्द्र को देखकर वे कहते—हे चन्द्र ! पहले तुम प्रतिदिन आते और (सीता के मुख की समता न कर सकने के कारण) क्षीण होकर लज्जित होते रहते थे। अब आभरण-भूषित सीता के उज्ज्वल वदन के दूर हो जाने पर तुम पूर्ण प्रकाश से चमक रहे हो।

राम फिर कहते—गगन में संचरण करनेवाला एक चक्र रथ से युक्त सूर्य भगवान्, प्रभूत चन्द्रिका के सदृश उज्ज्वल कीर्त्ति से सम्पन्न अपने कुल में अवारणीय अपयश के आ जाने से मानों लज्जित होकर ही भूलोक से अदृश्य हो गये हैं।

दुःखद रात्रि के दीर्घ लगने से शिथिल होनेवाले राम सोचते, कदाचित् क्रूर रावण ने सूर्य के सारथि अरुण के साथ सूर्य को भी बाँधकर बड़े कारागार में डाल रखा है (इसलिए दिन नहीं हो रहा है)।

राम सोचते—यदि डमरू-समान कटिवाली सीता नहीं दिखाई पड़े और घोर अंधकार से पूर्ण रात्रि-रूपी कल्पकाल भी यों ही व्यतीत हो जाये, तो समुद्र से घिरी हुई यह धरती मेरे हाथों विनष्ट हो जायगी।

राम कहते—कठोर तपस्या करनेवाले मुनिगण विपदा में पड़े रहें और उन (मुनियों) के प्राणों को पीडित करके संसार के प्राणियों को खाकर विचरनेवाले अधर्मी राक्षस बलवान् होकर जीवित रहें, तो अब धर्म से क्या प्रयोजन है ?

भ्रमरों की दिव्य डोरी से युक्त धनुष में पुष्प-शरों को रखकर प्रयुक्त करनेवाले वीर मन्मथ ने राम पर बाण प्रयुक्त करने के लिए लक्ष्य-संधान किया। तब रामचन्द्र कर्त्तव्य-मूढ होकर स्तब्ध रह गये।

जब कोई दुःखी व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है, तब उसे उसके पुराने दुःख का स्मरण अधिक सताने लगता है। उसी प्रकार मन्मथ, जो इसके पहले एक बार तपस्वी शिव के क्रोध से जल गया था, अब उसका स्मरण करके दुःखी हुआ। (भाव यह है कि अपने बाणों से भीत होकर संतप्त होनेवाले राम को देखने से मन्मथ को शिवजी के द्वारा उसको उत्पन्न पुराना दुःख स्मरण हो आया, जिससे अब वह दुःखी हुआ।)

इस प्रकार, नीलवर्ण रामचन्द्र के मन में (वियोग-दुःख) शूल-सा साल रहा था। इस समय वह रात्रिकाल ऐसे ही समाप्त हुआ, जैसे आदिकारणभूत भगवान् (नारायण) के नाभि-कमल से उत्पन्न ब्रह्मा का एक कल्प समाप्त हुआ हो।

जल-धारा से शब्दायमान क्षीरसागर में सुखमय योग-निद्रा करना छोड़कर, भ्रमरों तथा मधु से शब्दायमान पुष्पमाला से भूषित सीता के शील-रूपी समुद्र में निमग्न होनेवाले राम को देखकर सहानुभूति से पक्षी शब्द करते थे, कानन शब्द करते थे और पर्वत-निर्झर शब्द करते थे। राम के मन में (सीता का) अलंकृत रूप प्रकट था। किन्तु, नयनों के सम्मुख प्रकट नहीं था। अतः, उन (राम) के प्राणों के स्वस्थ रहने का क्या उपाय हो सकता था?

मयूर और मयूरी साथ-साथ संचरण करते थे। हरिण और हरिणी साथ-साथ विहार करते थे। करी और करिणी साथ-साथ घूमते-फिरते क्रीडा करते थे। इन सबको देखकर, रामचन्द्र, जो पिक, इक्षु, मधु, मुरली-वीणा, गाढी चाशनी, अमृत आदि को भी फीका करनेवाली मीठी वाणी से युक्त सीता से वियुक्त थे, क्या दुःखी न होंगे?

किरणों से युक्त सूर्य, किरीट-जैसे शिखरवाले उदयगिरि पर अत्युज्ज्वल रूप में ऐसे प्रकाशमान हुआ, मानों प्रभात होने पर भी सीता के दर्शन न पाने से दुःखी रहनेवाले वीर रामचन्द्र को उस समय कमल-पुष्पों को प्रफुल्ल कर यह दिखाना चाहता हो कि पहले दिन की संध्या को जिन कमलों को मैंने बन्द किया था, उनमें सीता नहीं है।

रामचन्द्र वहाँ के वन को देखते। उस वन में स्थित चक्रवाक को देखते। वृक्ष की पुष्पित शाखाओं को देखते। बाल कलापी-तुल्य सीता के केशपाश का स्मरण करते। पर्वत सदृश स्तन-द्वय को याद करते। उनपर की पत्रलेखा को याद करते और फिर अपनी भुजाओं को देखते। यों अपना समय व्यतीत करते।

उस समय, अनुज (लक्ष्मण) ने उनके चरणों को नमस्कार करके कहा—हे प्रभु! देवी का अन्वेषण किये बिना यहाँ इस प्रकार विलंब करना क्या उचित है? तब कीर्त्तिमान् प्रभु ने उत्तर दिया—उस रावण के स्थान को ढूँढकर पहचानेंगे। फिर, उज्ज्वल धनुष से युक्त वे दोनों पर्वत-श्रेणी से युक्त तथा धूप से तप्त उस कानन में चल पड़े।

दिग्गजों के समान वे दोनों हरियाली से युक्त अनेक अरण्यों को पीछे छोड़कर अट्ठारह योजन दूरी पार कर चले।

भूमि के भाग्य से पृथ्वी पर अवतीर्ण मधुपूर्ण पुष्पमालाओं से भूषित सीता का अन्वेषण करते हुए वे दोनों चलते रहे। कहीं भी सीता को न देखकर, मन के क्रोध से निःश्वास भरते हुए, पक्षियों के आवासभूत एक शीतल तथा विशाल उपवन में प्रविष्ट हुए।

उष्णकिरण सूर्य, ज्ञान में श्रेष्ठ उन राम-लक्ष्मण के मन की वेदना को जानकर, सर्वत्र सीता को ढूँढ़कर, फिर मेरु पर्वत के पीछे अदृश्य हो गया।

सर्वत्र अंधकार इस प्रकार भर गया, जैसे अंजन-पुंज उन (राम-लक्ष्मण) को कहीं जाने से रोकने के हेतु पहरा देने के लिए घिर आये हों। तब दसों दिशाएँ स्पष्ट ज्ञान से रहित व्यक्तियों के मन के समान शीघ्र तमोवृत हो गई।

मीठे स्वर में बोलनेवाले नागणवाय् (नामक पक्षी) जहाँ शुकों को मधुर संगीत सिखा रहे थे, वैसे उस उपवन में एक स्फटिक-मंडप दिखाई पड़ा, जिसके चारों ओर किंशुक-वृक्ष थे और जो प्रकाश एवं कलंक से युक्त चन्द्र-मंडल के समान शोभित हो रहा था। वे दोनों उस मंडप में जाकर विश्राम करने लगे।

तब महिमामय प्रभु ने बलवान् वृषभ-जैसे वीर अनुज से कहा—हे वीर ! कहीं से पीने के लिए जल ढूँढ़कर लाओ। शत्रुओं को भगानेवाले धनुष से युक्त वह वीर (लक्ष्मण, जल लाने के लिए) अकेले गया।

कहीं भी जल न पाकर इधर-उधर ढूँढ़ते रहनेवाले उस लक्ष्मण को उस समय उस अरण्य में स्थित अयोमुखी नामक एक राक्षसी ने देखा और उनपर मुग्ध हो गई।

वह (अयोमुखी), ज्ञानियों के मंत्रोच्चारण से भी कीलित न होनेवाले सर्प के समान लक्ष्मण का पीछा करती हुई चली, उनको देख-देखकर उन्हें मन्मथ समझती हुई उनके प्रति यों कामातुर हुई कि उसका गर्व और क्रूरता उस काम-वासना से दब गये।

अथाह काम-वासना से युक्त वह राक्षसी पीडित होकर लक्ष्मण के सम्मुख आ खड़ी हुई और यह विचार करती हुई कि मैं इसका आलिंगन कर अपनी काम-वेदना को तृप्त करूँगी, इसको मारकर नहीं खाऊँगी व्याकुल खड़ी रही।

अग्नि से भी अधिक भयंकर वह राक्षसी, यह सोचती हुई कि यदि मेरी प्रार्थना सुनकर भी यह सहमत न होकर तिरस्कार करे, तो मैं बलात् इसे अपनी गुफा में ले जाऊँगी और इसका आलिंगन करूँगी, अतिवेग से लक्ष्मण के निकट आ पहुँची।

वह अग्निमय निःश्वास भर रही थी, अपने दाँतों से हाथियों के झुंड को एक साथ चबाकर अपने पेट में भरनेवाली थी। उसने बड़े तथा दृढ सर्पों से अपने स्तनों को बाँध रखा था और उसकी आँखें धँसी हुई थीं।

बड़े सिंहों और शरभों को सर्प-रूपी रस्सी में पिरोकर उसने अपने पैरों में नूपुर जैसे पहन रखा था। उसका मुख सर्व वस्तुओं का विनाश करनेवाले युगांतकाल में प्रकाशित होनेवाले सूर्य के समान उग्र था।

उसका मुँह इतना विशाल और ऐसी गुफा के समान था कि समुद्र के सारे जल को एक साथ पीकर उसे सुखा सकता था। उसके चारों ओर लाल-लाल केश बिखरे थे, जिनसे वह प्रलयकाल की अग्नि का दृश्य उपस्थित कर रही थी।

दीर्घ मापदंड से मापने योग्य दूरी उसके एक पग में समाती थी। उसके बड़ी तेजी से चलने के कारण आँतों और चरबी से संयुक्त मांसखंड इधर-उधर गिरते थे। उसका जघन-तट अनेक पापों का स्थान था। उसके दाँत पीसने से वज्र घोष-सा शब्द होता था।

वह इस प्रकार घूरती थी कि उसकी दृष्टि शिवजी की-सी (अग्निमय) लगती थी। उसके दाँत इतने भयंकर थे कि वे अग्निमय नयन भी (उन दाँतों की तुलना में) शीतल लगते थे। उसके गमन-वेग से पर्वत अस्त-व्यस्त हो जाते थे। समुद्र परस्पर मिल जाते थे और दोषहीन भूमि भी उसे देखकर लज्जित होती थी। (अर्थात्, क्षमामय भूदेवी भी अयोमुखी जैसी एक पापिन स्त्री को देखकर उसके स्त्रीत्व पर लज्जित होती थी)।

उसके करों में दीर्घ सर्पों के वलय पड़े थे। उसने गरजनेवाले व्याघ्रों का हार पहन रखा था। अनेक शरभों को एक साथ गूँथकर ताली[1] बनाकर पहन लिया था। बलवान् सिंहों को कर्णाभरण के रूप में धारण कर लिया था।

वह (अयोमुखी) प्रकृति से ही 'घुँघची' के जैसे रहनेवाले (अर्थात्, लाल) नेत्रों में काम-वेदना से अश्रु भरकर (लक्ष्मण को) घूरती हुई खड़ी रही। तब अँधेरे में घूमनेवाले सिंह-सदृश लक्ष्मण ने उसके बिजली-जैसे दाँतों के प्रकाश में उसे देखा।

तुरंत वे लक्ष्मण समझ गये कि यह स्त्री दुष्ट राक्षसों के कुल में उत्पन्न है और पहले नाक आदि के कट जाने से दुःखी हुई, अति बलशाली शूर्पणखा, ताडका आदि के जैसे स्वभाववाली है।

इन गुणहीन तथा पापी राक्षसियों के हमारे निकट आने का और कोई उपयुक्त कारण नहीं है, यों विचारकर उससे पूछा—हिंस्र जन्तुओं के आवासभूत इस अरण्य में इस घने अँधेरे में आई हुई तू कौन है? शीघ्र बता।

लक्ष्मण ने इस प्रकार कहा। उस समय, संशय से युक्त मनवाली उस राक्षसी ने, बोलने में कुछ संकोच किये बिना, उत्तर दिया—यद्यपि तुमसे मेरा पूर्ण परिचय नहीं है, तो भी तुम पर प्रेम करके मैं आई हूँ। मेरा नाम अयोमुखी है।

फिर वह कहने लगी—हे अति सुन्दर वीर! पहले अन्य किसी से अस्पृष्ट (इसके पहले दूसरे किसीसे न छुए गये) मेरे इन स्तनों का, तुम अपने स्वर्ण रंगवाले विशाल वक्ष से आलिंगन करो और मेरे प्राणों की शीघ्र रक्षा करो।

क्रूर गुण को शांत करके उस राक्षसी ने ये वचन कहे। तब क्रोधी सिंह जैसे लक्ष्मण के नयन लाल हो उठे और उन्होंने कहा—यदि तू ऐसी बात फिर अपने मुँह से निकालेगी, तो मेरा अनुपम बाण तेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर देगा।

लक्ष्मण को अपने प्रतिकूल कुछ कहते हुए सुनकर भी वह मन में क्रुद्ध नहीं हुई। किन्तु, सिरपर हाथ जोड़कर (नमस्कार करती हुई) उसने निवेदन किया—हे नायक! यदि तुमको मैं अपने प्राण-रक्षक के रूप में पाऊँगी, तो मुझे आज नया जन्म मिलेगा।

क्रोधहीन हो वह (राक्षसी) पुनः बोली—हे उत्तम! अगर तुम्हें यहाँ स्वच्छ जल को पाना है, तो मुझे अभयदान दो। मैं गंगा का जल भी अभी यहाँ पर लाकर उपस्थित करूँगी।

१. 'ताली' एक आभूषण या पदक है, जिसे दक्षिण में विवाहिता स्त्रियाँ अपने गले में पहनती हैं।—अनु०

सौमित्रि उसके वचनों को सह नहीं सके और बोले—अभी यहाँ से भाग जा ; नहीं तो तेरे कानों और नाक को काट दूँगा। तब वह राक्षसी स्तब्ध हो, अपलक खड़ी रही और सोचने लगी—

मैं इसको अपनी गुफा में उठा ले जाऊँगी और वहाँ बन्दी बनाकर रखूँगी। जब इसकी उग्रता शान्त होगी, तब यह मेरी इच्छा पूरी करने को सहमत होगा। यही कर्त्तव्य है। इस प्रकार सोचकर वह लक्ष्मण के पार्श्व में गई।

उस क्रूर राक्षसी ने मोहन-मंत्र का प्रयोग किया और गगनोन्नत पर्वत-सदृश लक्ष्मण को उठाकर गगन-मार्ग से इस प्रकार चली, जैसे चन्द्रमंडल के साथ मेघ जा रहा हो।

लक्ष्मण को ले चलनेवाली वह अयोमुखी, मन्दर पर्वत से युक्त समुद्र, देवेन्द्र से आरूढ करिणी और भाले से शूर-पद्म नामक असुर को मारनेवाले, घोर पराक्रम से युक्त, कार्त्तिकेय से आरूढ मयूर के जैसे लगती थी।

उस समय, उस राक्षसी के वक्ष तथा हाथों में स्थित, उज्ज्वल वीर वलय-भूषित लक्ष्मण, उन शिवजी की समता करते थे, जिन्होंने क्रोध-भरे, मदस्रावी हाथी को मारकर उसके चर्म को वस्त्र के रूप में पहन लिया था।

वह (अयोमुखी) इस प्रकार गई। इधर संतप्तचित्त रामचन्द्र, यह चिंता करते हुए कि जल की खोज में गया हुआ, मेरे प्राण-समान तथा बलवान् पर्वत-समान लक्ष्मण अभीतक, न जाने, क्यों नहीं आया। वे लक्ष्मण की खोज में चल पड़े।

राम सोचते जाते थे कि लक्ष्मण कम वेगवान् नहीं है। वह शीघ्र आनेवाला है। कदाचित् धूप से जले अरण्य में जल नहीं मिला या अन्य कोई घटना घटित हुई है। न जाने क्या कारण है ?

मैंने कहा कि इस मार्ग से जाकर कहीं से जल ले आओ। किन्तु, इतना विलंब हो जाने पर भी वह अभी तक नहीं आया। क्या उसने सीता का हरण करनेवाले राक्षसों के साथ, कुछ प्रयोजन होने के विचार से, युद्ध छेड़ दिया है ?

क्या मधुरभाषिणी शुकी-जैसी सीता का हरण करनेवाला रावण, इसे भी उठा ले गया ? या विष से भी भयंकर उस रावण के माया-कृत्य से और दुर्दैव से वह मृत हो गया ?

दृढ धनुष को धारण करनेवाला मेरे प्राण-समान भाई अभीतक नहीं लौटा। क्या इस वेदना से कि मैं उसके कथन की उपेक्षा करके सीता को खो बैठा, उसने अपने प्राणों का अन्त कर दिया है ?

इस घने अंधकार में, मुझसे वियुक्त उस प्यारे लक्ष्मण के अतिरिक्त, मेरे और नेत्र नहीं है ? (अर्थात् , लक्ष्मण ही मेरे नेत्र हैं, जिसके विना मैं अंधा-सा हूँ)। पहले ही घायल हुए मेरे हृदय में अब एक नई पीडा उत्पन्न हुई है। मैं कुछ भी सोच नहीं पा रहा हूँ। अब मैं कैसे उसका अन्वेषण करूँ ?

मेरे दुर्भाग्य को बदलने का कुछ उपाय नहीं है। अब मेरे प्राण-सदृश तुम भी

अदृश्य हो गये। हे तात ! मुझे इस प्रकार छोड़कर तुमने भूल की। यह तुम्हारा कार्य कठोर है। गुरुजन तुम्हारे इस कार्य को नहीं सराहेंगे।

आई हुई विपदाओं को दूर करने में समर्थ हे वीर ! तुमने मुझे अवार्य दुःख दिया। शत्रुओं से भी प्रशंसित होनेवाले हे वीर ! क्या मुझसे घृणा करते हुए मुझे इस अरण्य में पीडित होने के लिए छोड़कर चले गये हो ? इतनी देर तक मुझसे वियुक्त होकर कहीं रह जाना, क्या तुम्हारे लिए उचित है ?

मैं अपने पिता से वियुक्त हुआ। अपनी माता से वियुक्त हुआ। लक्ष्मी-समान, स्वर्णाभरण-भूषित सीता से वियुक्त हुआ। फिर, मैं जो जीवित रहा, वह तुम, एक के वियुक्त न होने से ही तो था ?

(हरिण के पीछे मेरे जाने पर) मुझे ढूँढ़ते हुए तुम हाथी के समान चले आये थे। अब तुम अदृश्य होकर, स्वर्णमय कर्णाभरणों से भूषित सीता को ढूँढ़नेवाले मुझ दीन को, अपने भी ढूँढ़ने के लिए दुःखी बनाकर छोड़ गये हो।

कौन बतानेवाला है कि तुम कहाँ हो ? (तुम्हारे न मिलने पर) मैं आज प्राण-त्याग किये बिना नहीं रहूँगा। यदि मैं मरूँगा, तो मेरे स्वजनों में से भी कोई जीवित नहीं रहेगा। अतः, हे कठोरहृदय ! तुम, एक साथ सब स्वजनों को मारनेवाले हो गये हो। यह क्या तुम्हारे लिए उचित है ?

मान्धाता आदि हमारे पूर्वजों के आचार के अनुसार राजा बनना छोड़कर मैंने अरण्य-वास करने का साहस किया। उस समय सच्चा बन्धु बनकर जब दूसरा कोई नहीं आया, तब तुम्हीं मुझ एकाकी के साथी बनकर आये। अब तुम भी मुझे छोड़कर चले गये हो ?

इस प्रकार कहते हुए मेरे अनुपम प्रभु रामचन्द्र उठते, गिरते, स्तब्ध होते, प्रज्ञाहीन होते, फिर कहते—हाय ! इस घने अँधेरे में न बिजली है, न गर्जन। फिर भी, यह क्या विपदा आ पड़ी है ? (अर्थात्, भावी विपदा की पूर्व सूचना कुछ नहीं हुई और यह अकस्मात् क्या हुआ ?) रामचन्द्र की वह दुःखपूर्ण दशा एक-जैसी नहीं थी।

युद्ध के उन्माद से पूर्ण मत्तगज की समता करनेवाले वे (राम), अनेक स्थानों में जाकर (लक्ष्मण को) ढूँढ़ते। शीघ्र गति से जाते। (लक्ष्मण का) नाम लेकर पुकारते। व्याकुलप्राण और मूर्च्छित होते।

क्षमाशील (सीता) देवी के साथ मेरे प्राणों की भी रक्षा करते हुए अपलक रहनेवाला लक्ष्मण, क्या लौट आने में इतना विलंब करता ? धरती का भार बनकर दुर्भाग्य के साथ संचरण करनेवाले मुझ पापी का जीवित रहना अनुचित है।

फिर यह कहकर कि, 'यदि मेरे द्वारा किया गया कोई सुकृत हो और उस (लक्ष्मण) का ज्येष्ठ होकर उत्पन्न होने की कुछ योग्यता मुझमें हो, तो मैं वैसे ही पुनर्जन्म पाउँ'—रामचन्द्र अपना तीक्ष्ण करवाल कर में लेकर अपने प्राणों का अन्त करने को उद्यत हुए, इतने में—

इधर लक्ष्मण राक्षसी की माया से मुक्त हुआ और उस (राक्षसी) की नासिका

आदि अंगों को काट दिया। तब उस राक्षसी ने बड़ी व्यथा से जो चीख मचाई, वह ध्वनि राम के कानों में आ गिरी, तो उससे राम किंचित् स्वस्थ-से हुए।

फिर, राम ने सोचा—प्रस्तरमय अरण्य में अनेक वीर-कंकणों से मुखरित युद्ध करनेवाले राक्षसों की विरोध-सूचक ध्वनि यह नहीं है। यह तो विपदा में पड़ी हुई एक स्त्री की ही ध्वनि है और वह कोई राक्षसी ही है।

उस समय, नीलवर्ण राम ने आग्नेय अस्त्र को अपने अरुण कर में लेकर उसे प्रयुक्त करने का उपक्रम किया। तब वहाँ का अंधकार हटकर भूलोक के दूसरे कोने में जाकर इकट्ठा हो गया और उस स्थान में रात्रिकाल दिन के समान भासमान हो उठा।

रामचन्द्र बड़े-बड़े पर्वतों को चूर करते हुए, ऊँचे वृक्षों को तोड़ते हुए, भूमि को अपने पदचाप से पीडित करते हुए और अपने दोनों पार्श्वों में चड़चड़ाहट की ध्वनि उत्पन्न करते हुए चंडमारुत से भी तिगुने वेग के साथ (उस राक्षसी को निहत करने के लिए) बढ़ चले।

प्रलयकाल में जिस प्रकार काला समुद्र धरती पर उमड़ आये, उस प्रकार का दृश्य उपस्थित करते हुए आनेवाले, अपने सहायक ज्येष्ठ भ्राता को लक्ष्मण ने देखा और कहा—'हे उदार! चिंता न करें, चिंता न करें!'

'यह दास आ गया। आप मन में व्याकुल न हों।'—यों कहते हुए लक्ष्मण रामचन्द्र के कोमल पल्लव-जैसे चरणों पर नत हुआ। रामचन्द्र ने मानों अपनी खोई आँखें पुनः प्राप्त कीं।

उन रामचन्द्र की दशा, जिनकी आँखों से झरने के समान अश्रु वह रहे थे, उस गाय की-सी हो गई, जो अपना बछड़ा खो जाने से, उसे खोजने का मार्ग भी न देखती हुई व्याकुल रहती हो और स्वयं ही उस बछड़े के आ जाने पर अपने थन से दूध बहाती हुई खड़ी हो।

उस समय, राम ने लक्ष्मण का पुनः-पुनः आलिंगन किया और अपनी अश्रुधारा से उसके स्वर्ण-जैसे शरीर को धो डाला। फिर कहा—हे लोहे के स्तंभ-जैसे कंधोंवाले! यह सोचकर कि तुम कहीं खो गये हो, अबतक मैं अत्यंत दुःखी हो रहा था।

'क्या घटित हुआ? मुझे बताओ।'—राम के यों पूछने पर लक्ष्मण ने सारा वृत्तांत कह सुनाया। तब उन प्रभु ने, जिनसे बड़ी अन्य कोई सत्ता नहीं है, आनंद और व्यथा दोनों को एक साथ ही प्राप्त किया।

फिर, राम ने लक्ष्मण से कहा—जो विशाल समुद्र के मध्य फँसा हो, क्या प्रत्येक लहर के आते समय उसका भयभीत होना उचित है? उसी प्रकार दुर्दैव के प्रभाव से जन्म-रूपी बंधन में पड़े हुए हमें, दुःखद विपदा के प्राप्त होने पर शिथिल नहीं होना चाहिए।

तीन देव (ब्रह्मा, विष्णु और महेश), तीन लोकों के निवासी—सब मेरे शत्रु बनकर आवें, तो भी मुझे कौन जीत सकेगा? भाई! तुम मेरे साथ हो—यह एक बात ही मुझे बल देता है। इससे बढ़कर मुझे और कोई रक्षा नहीं चाहिए। (अर्थात्, अन्य कोई सेना आवश्यक नहीं है।)

मुझसे जो वियुक्त होते हों, होवें। जितनी भी आपदाएँ आती हों, आयें। किंतु दीर्घ वीर-कंकण धारण करनेवाले हे वीर! वे सारी आपदाएँ तुम्हीं से दूर होनेवाली हैं। मेरे निकट रहकर वे (विपदाएँ) मुझे सता नहीं सकतीं।

भयंकर युद्ध करने में निपुण वीर! तुमने कहा कि युद्धकुशल राक्षसी को परास्त कर लौटे हो। क्षुद्र स्वभाववाली उस राक्षसी के वचनों से उत्तेजित होकर उसे तुमने मार तो नहीं डाला? बताओ।

तब लक्ष्मण ने कहा—'मैंने उस राक्षसी की नाक, कान और बंधन में स्थित स्तनों को काट दिया। उस समय वह चीख उठी।' यह कहकर (लक्ष्मण) हाथ जोड़कर खड़े रहे।

आनंद से प्रफुल्ल होकर राम ने कहा—अँधेरे में तुम्हें मारने के लिए आई हुई राक्षसी को भी तुमने नहीं मारा। किन्तु, उसका अंग-भंग मात्र किया। तुम चतुर हो। मनु प्रभृति राजाओं के इस वंश के अनुकूल ही तुमने आचरण किया है और अपने भाई को गले लगा लिया।

वीर (राम) और लक्ष्मण—जैसे अपार दुःख से मुक्त हुए। वारुण अस्त्र को प्रयुक्त करके गगन से वर्षा उत्पन्न की और उसका जल पीकर प्रभात काल की प्रतीक्षा करते हुए एक पर्वत पर विश्राम करते रहे।

पत्थरों से भरी धरती पर, अरण्य के पल्लवों और पुष्पों को लेकर लक्ष्मण के द्वारा बनाई गई शय्या पर, बड़ी वेदना भोगते हुए रामचन्द्र ने शयन किया। लक्ष्मण उनके कोमल चरणों को सहलाते रहे।

राम ने कलापी-तुल्य सीता से वियुक्त हो जाने के पश्चात् अपमान की पीडा से कुछ आहार नहीं किया था। शोक की अधिकता से निद्रा भी नहीं की थी। उनके ऐसे दुःख का वर्णन हम कैसे कर सकते हैं? उनके निःश्वासों के मध्य उनके प्राण झूलते रहे।

राम, विरह की पीडा से बोल उठे—मेरी आँखों को अरण्य में सर्वत्र सीता का रूप ही दिखाई पड़ता है। यह क्या इसलिए कि मैं उसके रूप को नहीं भूल सका हूँ, या नहीं तो क्या यह भी राक्षसों की माया है?

काले केशोंवाली, अरुण रेखावाले नेत्रों से युक्त तथा पतिव्रता नारियों के आभरण-सदृश उस (सीता) को मैं अपने पार्श्व में देखता हूँ। किन्तु, उसका आलिंगन करने के लिए उद्यत होने पर उसका स्पर्श नहीं पाता हूँ। क्या उसकी कटि के समान ही उसका आकार भी थोड़ा-थोड़ा करके क्षीण होता हुआ अदृश्य हो गया है।

(पहले मुझे ऐसे लगा जैसे) मैंने उसके सद्योविकसित कमल (समान मुख) के मधुपूर्ण बिंब तथा प्रवाल के समान अधर के अमृत का पान किया। किन्तु, वह मेरे पार्श्व में नहीं थी। क्या पलक न लगने पर भी स्वप्न दिखाई पड़ते हैं?

यदि यह रात्रि मुझे ऐसा दुःख दे, जो पृथ्वी, गगन आदि पंचभूतों एवं मन के विचार से भी बड़ा हो, तो क्या यह (रात्रि) शीतल, सुगंध तथा नीलवर्ण से युक्त कुंतलो-वाली सीता की आँखों से भी बड़ी होगी?

जल तथा उसमें संचरण करनेवाले मीनों से युक्त समुद्र से मनोहर चन्द्र के नाम से जो प्रलयाग्नि उत्पन्न हुई है, उसकी उष्ण किरणों के स्पर्श से उत्तप्त आकाश के शरीर-भर में फफोले-से पड़ गये हैं (अर्थात्, नक्षत्र आकाश के फफोले कहे गये हैं।)

चक्रवर्त्ती राम इस प्रकार के अनेक वचन कहकर व्याकुल हो रहे थे। उसी समय अरुण किरणोंवाला सूर्य इस प्रकार उदित हुआ, जैसे उन (राम) की दुःखमय दशा को देखकर स्वयं दुःखी होकर सहानुभूति दिखा रहा हो। (१–१०१)

●

अध्याय ११

कबन्ध पटल

वे (राम-लक्ष्मण), प्रभात के समय उस कलापी-तुल्य रूपवती, पतिव्रता (सीता) देवी का, जिसकी क्षमा की तुलना में पृथ्वी का क्षमा-गुण भी निस्सार-सा लगता था, अन्वेषण करते हुए गये। पक्षी इस प्रकार शब्द कर रहे थे, मानों वे उनके दुःख को देखकर रो रहे हों।

वे दोनों धनुर्धर वीर, पचास योजन-पर्यंत अरण्य को पार करके गये और कबंध नामक उस राक्षस के वन में जा पहुँचे, जो एक ही स्थान पर पड़ा रहता था और अपनी दीर्घ बाँहों को दूर तक फैलाकर सब प्राणियों को हाथों से उठाकर अपने पेट में भर लेता था। इतने में सूर्य भी आकाश के मध्य आ पहुँचा।

(उस राक्षस के हाथों में पड़नेवाले) हाथी से चींटी तक, सब प्राणी मिट जाते थे। उसको देखने मात्र से अत्यंत भय से काँपने लगते थे। उसके चंगुल में आकर फिर उस बंधन से वे कभी छूट नहीं पाते थे।

कबंध के निकट सब प्राणी इस प्रकार काँपते रहते थे, जिस प्रकार, कुल-परंपरा से आगत नीतिमार्ग को छोड़नेवाले, शासन की दक्षता से रहित, शक्तिहीन राजा के राज्य में रहनेवाले प्राणी हों। वे बिखर जाते, एक साथ सम्मिलित होते, पीडित होकर भागते और स्तब्ध ही खड़े रहते।

बड़े-बड़े पर्वत भी कबंध के हाथों में लुढ़कते हुए चले आते। बड़े-बड़े वृक्ष भी जड़ से उखड़-उखड़कर निकल आते। अरण्य की नदियाँ उमड़कर ऊँचे स्थानों एवं सब दिशाओं में फैल जातीं। जल-भरे मेघ भी नीचे आ गिरते। यह सारा दृश्य उन वीरों ने देखा।

जिस प्रकार सारी सृष्टि के विनाश का कारणभूत प्रलय-काल जब आता है, तब प्रभंजन का थपेड़ा खाकर चतुर्दिक् से समुद्र उमड़ उठता है और गर्जन करता हुआ सारी पृथ्वी को ढक देता है, उसी प्रकार सबको चारों ओर से घेरकर आनेवाली (कबंध की) उन बाँहों में वे (राम-लक्ष्मण) भी फँस गये।

मानों चक्रवाल पर्वत ही सिमटकर आ रहा हो, इस प्रकार आनेवाली उन प्राचीर-जैसी बाँहों में फँसकर वे दोनों वीर, यह सोचकर प्रसन्न हुए कि मधु-जैसी मीठी बोलीवाली सीता की रक्षा के उद्देश्य से रावण की सेना ही आकर उन्हें घेर रही है (और उस सेना को मिटा देने का सुअवसर हमें प्राप्त हुआ है)।

राम ने अपने अनुज को देखकर कहा—हे तात ! ऐसा लगता है कि सीता का हरण करनेवाला रावण यहीं पर निवास करता है। अब हमारा दुःख मिटनेवाला है।

तब लक्ष्मण ने (राम को) प्रणाम करके उत्तर दिया—यह राक्षस-सेना होती, तो क्या नगाड़े बजने की ध्वनि और शंखनाद नहीं सुनाई देते ? यह राक्षस-सेना नहीं है और कुछ है। फिर, लक्ष्मण भी सोचने लगे (कि यह क्या है ?)।

फिर, लक्ष्मण ने (राम से) कहा—प्रलयकाल में भी अमर रहनेवाले हे प्रभु ! यह कदाचित् वह सर्प ही है, जिससे देवों ने मंदर-पर्वत को लपेटकर क्षीर-सागर को मथा था, अथवा यह कोई दूसरा सर्प है। यह (सर्प) अपने मुँह से अपनी पूँछ को जोड़कर घेरा बनाकर हमें बाँध रहा है।

आगे-आगे चलनेवाले (राम) ने लक्ष्मण के इन वचनों को सुनकर सोचा कि उसका कथन ठीक ही है। फिर (उस घेरे में) दो योजन दूर जाने पर वे दोनों उस पर्वताकार राक्षस के सम्मुख आ खड़े हुए।

वह राक्षस अपनी आँखों के साथ ऐसा दृश्य उपस्थित करता था, जैसे उष्ण किरणवाले दो सूर्यों से युक्त मेरुपर्वत हो। उसके पेट में ही उसका मुँह था, जिसमें दाँत ऐसे थे कि उनके मध्य दो-दो 'खात' (दस मील का एक खात होता था) की दूरी थी और (वह मुँह) मकर-मीनों से पूर्ण समुद्र के समान था।

उसकी बाँहें इस प्रकार पड़ी थीं, जैसे देवों के द्वारा मंदर-रूपी दिव्य मथानी को (क्षीरसमुद्र में) डालकर उसपर लपेटा गया वासुकि सर्प दोनों ओर से खींचा जाकर फैला हुआ पड़ा हो।

उसकी नासिका से इस प्रकार अग्नि और धूमलता निकल रही थी, जैसे लुहार की भाथी हो। उसके सामने उसकी जिह्वा इस प्रकार निकली हुई थी, जैसे विशाल समुद्र को एक ही दशा में रखनेवाली वडवाग्नि की ज्वाला हो।

उसके मुँह के दोनों खड्ग-दंत इस प्रकार लगते थे, मानों पूर्णचंद्र, (राहु नामक) सर्प को अपनी ओर आते हुए देखकर भय से एक सुरक्षित स्थान को खोजता हुआ आया हो और निर्झरों से पूर्ण महान् पर्वत की कंदरा के भीतर, दो खंड होकर, घुस रहा हो।

उसका शरीर शीतल जल, प्रभृति प्रसिद्ध पंचभूतों से नहीं बना था, किंतु शास्त्रों में बताये गये पंचमहापाप ही एकत्र होकर उस आकार में आ गये थे।

उसके कर्ण-कुहर ऐसे थे, जैसे उष्ण तथा शीतल किरणवाले ज्योतिष्पिंडों (अर्थात्, सूर्य-चंद्रों) को निगलनेवाले सर्पों (राहु-केतु) के, कुछ कार्य न रहने पर, विश्राम करने के लिए योग्य बिल हों। उसका उदर उस नरक का भी उपहास करनेवाला था, जिसमें असत्य भाषण आदि पाप कर्म करनेवाले नीच गुणवाले पापी रहते हैं।

वह (कबंध) अपने करों से सब प्राणियों को उठाकर अपने विशाल नाव-जैसे उदर में भर लेता था, जिससे उसका मुँह यम-पुरी के विजयशील द्वार के समान था।

वह समुद्र के समान बड़ा कोलाहल कर रहा था। उसका शरीर हलाहल विष के समान काला और उष्ण था। उसका आकार, विष्णु के चक्र के द्वारा शिर के कट जाने पर पड़े हुए कालनेमि (नामक राक्षस) के कबंध (धड़) के समान था।

वह ऐसा लगता था, जैसे मेरु पर्वत प्रभंजन के झोंके खाने से शिखरों के टूट जाने पर, शिखरहीन हो पड़ा हो। इस प्रकार के कबंध को सूक्ष्म ज्ञानवाले उन दोनों वीरों ने देखा।

उन्होंने उसके उस फटे मुँह को देखा, जिसमें चक्रवाल पर्वतों की सीमा से घिरी हुई सारी पृथ्वी समस्त समुद्रों-सहित घुस सकती थी और उन्होंने सोचा कि यह राक्षसों-जैसे किसी प्राचीरावृत नगर का द्वार है, जिसके भीतर देवता लोग भी प्रवेश नहीं कर सकते।

उस समय, अनुज (लक्ष्मण) ने, (कबंध को) भली भाँति देखकर कहा—हे धनुर्विद्या में निपुण ! यह कोई बड़ा भूत है। यह सब प्राणियों को अपने हाथों से घेरकर अपने मुँह में डालता है। हमको भी उन प्राणियों के साथ मिलाकर खा जायगा। अब हम क्या करें ! तब राम ने उत्तर दिया—

हे धरती को उठानेवाले आदिवराह जैसे बलवाले ! हाँ, यह कोई भूत ही है; क्योंकि वह देखो, इसका शरीर इस प्रकार फैला है कि यह विशाल धरती भी इसके लिए पर्याप्त नहीं मालूम होती। इसके दायें और बायें दीर्घ बाँहें फैली हैं।

हे भाई ! कलापी-तुल्य सीता वियुक्त हुई। पितृ-तुल्य जटायु मर गये। अपयश से पीडित चित्त के साथ मैं जीवित रहना नहीं चाहता हूँ। अतः, मैं इस (भूत) का भोजन बन जाऊँगा। तुम यहाँ से बचकर चले जाओ।

मुझे जन्म देनेवालों को दुःखी बनाते हुए, अपने भाई को दुःखी करते हुए, गुरुजनों के दुःखी होते हुए, सब अपयश का आश्रम बनकर, मैं उत्पन्न हुआ हूँ। अब मैं अपने प्राण छोड़े बिना इस अपयश को मिटा नहीं सकता।

क्या मैं मिथिला के राजा के पास पर्वत-जैसे दृढ तूणीर तथा धनुष को लेकर यह कहता हुआ जा सकूँगा कि गृहस्थाश्रम के योग्य आपके द्वारा प्रदत्त, मधुरभाषिणी पुष्प-लता-समान सीता राक्षसों के घर में रहती है।

'विकसित पुष्पों से भूषित सीता की रक्षा करने के सामर्थ्य से हीन होकर, मैं, अपने अनुज की रक्षा पाकर ही जीवित हूँ'—ऐसी बात सुनने की अपेक्षा यह वचन अच्छा होगा कि 'मैं परलोक में रहता हूँ।' अतः, अब इस जीवन को त्याग देना ही उचित है।

हमारी (लेखक की) दासता को स्वीकार करनेवाले राम ने जब ये बातें कहीं, तब अनुज ने कहा—मैं आपके पीछे-पीछे इस कानन में आया। मेरे आने पर भी ऐसी विपदा आपको प्राप्त हुई है। किन्तु, यदि आपके पूर्व ही मैं अपने प्राण न त्यागकर अपने प्यारे प्राण लेकर लौट जाऊँ, तो मेरी सेवा क्या बहुत भली होगी ?

फिर, लक्ष्मण ने कहा—दुःख को जीतनेवाले ही तो धीर होते हैं। यदि अपने पिता, माता, ज्येष्ठ भ्राता आदि गुरुजनों से पहले ही (उन गुरुजनों की रक्षा में) कोई अपने प्राण न त्याग करे, तो उसका जीवन अपयश का ही तो भाजन होगा ?

'हरिणी-तुल्य पत्नी के साथ ज्येष्ठ भ्राता अरण्य में निवास करने गया, तो उसका अनुज, निद्राहीन रहकर उनकी रखवाली करता रहा'—इस प्रकार मेरी प्रशंसा जो लोग करते थे, उनके द्वारा, 'उस ज्येष्ठ भ्राता तथा उस भ्राता की पत्नी से अलग होकर आ गया,'—इस प्रकार का अपयश पाना कितना बड़ा पाप होगा ?

मेरी माता (सुमित्रा) ने मुझसे कहा था—'तुम अपने ज्येष्ठ भ्राता की सब आज्ञाओं का पालन करते रहना। किसी भी विपदा को सहने के लिए तैयार रहना। यदि महान् यशस्वी राम का कभी विनाश होने की संभावना हो, तो उनसे पहले तुम अपने प्राण त्यागना।' मैं यदि अपनी माता के वचन पर स्थिर न रहूँगा, तो मेरा सत्य कैसे टिकेगा ?

हे सुन्दर स्वर्ण-आभरणों से भूषित कंधोंवाले! 'मेरी जननी तथा मैं आपकी जननी तथा आपके मन के अनुकूल और सब सज्जनों के लिए प्रिय, व्यवहार करते रहते हैं'—ऐसी प्रशंसा के पात्र हम बनना चाहते है। इसके विपरीत अपने प्राणों को बचाये रखने की इच्छा करके हम अपने कर्त्तव्य का त्याग नहीं करेंगे।

उस प्रलय-काल में भी जब सारी सृष्टि मिट जाती है, जब शाश्वत वेदों के द्वारा प्रशंसित देवता भी मिट जाते हैं, तब भी आपका अन्त नहीं होता। ऐसे आप, हाथी आदि प्राणियों को खाकर इस वन में रहनेवाले भूत के द्वारा मारे जाकर मिट जायँ, क्या यह भी संभव है ?

सुननेवाले इस बात को न मानेंगे। देखनेवाले इसे नहीं चाहेंगे। 'पुष्पमाला-भूषित कुंतलोंवाली सीता को दुःख में न रखा; किन्तु (राक्षसों के साथ) युद्ध करके (उस सीता को) मुक्त किया'—इस प्रकार का महान् यश न पाकर, 'युद्ध में (राक्षसों को) नहीं जीत सका और ऐसे ही मर गया'—ऐसी निंदा पाना क्या उचित है ? ऐसी निंदा से बढ़कर और क्या अपयश हो सकता है ?

विष के समान क्रूर इस भूत की गणना ही क्या है ? यह बात नहीं है कि इस करवाल के आघात से इसके प्राण नहीं निकलेंगे। देखिए, मैं किस प्रकार, हमें घेरनेवाले इसके हाथों को और इसके बिल-जैसे मुँह को काट देता हूँ। आप चिन्ता छोड़िए।—यों लक्ष्मण ने कहा।

इस प्रकार के वचन कहकर लक्ष्मण स्वयं प्रभु से आगे बढ़ने लगे। तब राम लक्ष्मण से आगे जाने लगे। इस समय लक्ष्मण ने राम को रोका। यह देखकर हाय! स्वयं देवता भी रो पड़े, फिर अन्यों के संबंध में क्या कहा जाय।

इस प्रकार, वे दोनों वीर-कंकणधारी वीरमुख के दो नेत्रों के समान चलकर कबंध के निकट पहुँचे। तब कबंध ने उनसे प्रश्न किया, 'कर्म के परिणामस्वरूप यहाँ आये हुए तुम दोनों कौन हो ?' यह सुनकर वे दोनों बड़े क्रोध के साथ उसके सामने अपलक खड़े रहे।

कवंध यह देखकर कि उसके प्रश्न से वे (राम-लक्ष्मण) डरे नहीं, किन्तु उसकी अवहेलना करते हुए खड़े हैं, अत्यधिक क्रोध से भर गया। उसके रोम-रोम से चिनगारी निकलने लगी। वह उन्हें निगलने की इच्छा से बढ़ा। तब उसके गगनोन्नत कंधों को उन्होंने अपने करवाल से काट दिया।

उसकी दोनों बाँहों के कट जाने से उसकी देह से रक्त की धारा नीचे की ओर बहने लगी। तब वह एक ऐसे पर्वत की समता करने लगा, जिसके दोनों ओर पत्थरों से भरे सानु होते हैं।

प्रभु के कर का स्पर्श होने से उस (कवंध) का वह शापमय रूप भी मिट गया। उसका पाप मिट गया। कटे हाथोंवाले घोर आकार को छोड़कर वह गगन में इस प्रकार जाकर प्रकाशमान हुआ, जैसे कोई पक्षी अपने पिंजरे से आकाश में उड़ चला हो।

गगन में खड़े होकर उसने सोचा कि यह राम ही ब्रह्मा प्रभृति सब देवों के ध्यान में प्रत्यक्ष होनेवाले हैं, और उनके गुणों का गान करने लगा। जब पुण्य-फल अनुकूल होता है, तब कौन-सा पदार्थ दुर्लभ हो सकता है ?

कवंध ने राम से कहा—हे प्रभु ! मुझ, पापी के शाप को तुमने दूर किया। क्या तुम्हीं सारी सृष्टि के निर्माता हो ? तुम्हीं अविनश्वर धर्म के साक्षीभूत हो ? तुम्हीं देवों की पूर्वकृत तपस्या के फल के साकार रूप हो ? क्या तुम्हीं वह परमतत्त्व हो, जो तीन मूर्त्तियों में विभक्त हुआ है ?

हे कारण-रहित आदिपरब्रह्म ! तुम्हारे अवतार के तत्त्व को कोई भी नहीं पहचान सकता। क्या तुम वह वटवृक्ष हो, जो प्रलय-काल में उत्पन्न होता है। या, क्या उस वृक्ष का पत्ता हो ? या उस वट-पत्र में शयन करनेवाले बालक हो। या सृष्टि के आदिकारणभूत परमपुरुष हो ? कहो, तुम कौन हो ?

संसार में जो देखनेवाले जीव हैं और जो देखे जानेवाले पदार्थ हैं, तुम उन सबकी दृष्टि हो। तुम सब पदार्थों में संलग्न रहते हो, किन्तु तुम्हें सुख-दुःख से कुछ सम्बन्ध नहीं रहता। अपने दिव्य प्रभाव से तुम सब लोकों को अपने उदर में समा लेते हो और फिर उन्हें प्रकट कर देते हो। क्या तुम पुरुष हो ? स्त्री हो ? अथवा उन दोनों से परे हो (अर्थात् , उभय से पृथक् हो) ? अथवा और कोई हो ?

सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा तुम्हीं हो। उस ब्रह्मा का कारणभूत परमपुरुष (विष्णु) तुम्हीं हो। उस परमपुरुष का भी कोई कारणभूत तत्त्व हो, तो वह भी तुम्हीं हो। प्रसिद्ध वेद तुमको परम ज्योति कहते हैं। तो क्या अन्य देवता लोग उससे लज्जित नहीं होते (अर्थात्, अन्य देवों को परम ज्योति कहना उचित नहीं है) ?

अष्ट दिशारूपी प्राकार से युक्त, चौदह मंजिलों के इस ब्रह्मांड-रूपी महान् मंदिर को सर्वत्र प्रकाशित करनेवाले तीनों ज्योतिर्मंडलों (अर्थात्, चंद्र-मंडल, सूर्य-मंडल और नक्षत्र-मंडल) के ऊपर स्थित परमपद में कभी प्रफुल्ल न होनेवाले कमल-कोरक के भीतर रहनेवाला बीज ही तुम्हारा आवास है।

हे परमेष्ठिन् (अर्थात्, परमपद के स्थान में निवास करनेवाले) ! अनंत अष्ट

दिशाओं में स्थित भूदेवों (ब्राह्मणों) के द्वारा किये जानेवाले उत्तम यज्ञों में हविर्भाग का भोजन करनेवाले तुम्हीं हो। वह भोजन देनेवाला (अर्थात्, यज्ञकर्त्ता) भी तुम्हीं हो। तुम्हारे इन दो रूपों में रहने के तत्त्व को कौन जान सकता है?

हे परात्पर! जिस प्रकार स्थिर जलाशय में बुद्बुद उत्पन्न होकर मिटते रहते हैं, उसी प्रकार अनेक अंड तुमसे एक समान निकलते हैं और (प्रलय-काल में) तुझमें विलीन हो जाते हैं। इस तत्त्व को कौन ठीक-ठीक समझ सकता है?

क्या तुम्हारी लीलाओं को देखकर ही वेद प्रकाशित किये गये हैं? या वेदों में प्रतिपादित ढंग से तुम्हीं अपने कार्य करते रहते हो? तुमने मुझे ऐसा फल दिया है, जिसे पापकर्म करनेवाले लोग कभी प्राप्त नहीं कर सकते। न जाने, पूर्वजन्म में मैंने क्या पुण्य किये थे (जिससे यह भाग्य मुझे अब प्राप्त हुआ है)?

प्रेत के समान मेरे पापों के आश्रयभूत राक्षस-जन्म के दोषों को मिटाकर तुमने मुझे निर्दोष दिव्य जन्म प्रदान किया। मुझे दुःख-समुद्र के पार लगाया और तुम्हारे प्रति अज्ञान-जन्य मेरे विरोध को मिटा दिया। हे मेरे प्रभु! श्वान-सदृश रहनेवाला मैंने, न जाने कौन-सा बड़ा सुकृत किया था?

इस प्रकार के मधुर वचन कहकर कबंध यह सोचकर कि यदि मैं सारे भविष्य को स्पष्ट रूप से कह दूँ, तो वह देवताओं की इच्छा के अनुकूल नहीं होगा, माँ को देखकर प्रसन्न होनेवाले गाय के बछड़े के जैसे चुपचाप खड़ा रहा। तब धर्मनिष्ठ लोग जिनका साक्षात्कार प्राप्त करते हैं, उन प्रभु (राम) ने उसकी ओर देखा।

फिर, राम ने अपने अनुज से पूछा—हे भाई! यह अत्युज्ज्वल दुर्लभ देह धारण कर खड़ा रहनेवाला क्या वही है, जो अभी हमारे हाथों मरा था? या नहीं तो, यह कोई दूसरा प्रभावशाली व्यक्ति है? तुम इसे भली भाँति देखो। तब लक्ष्मण ने उस (कबंध) से प्रश्न किया कि तुम कौन हो?

तब कबंध ने कहा—मनोहर आभरणों तथा पुष्पमालाओं से भूषित हे वीर! मैं तनु नामक एक गंधर्व हूँ। शाप के कारण मुझे यह राक्षस-जन्म मिला था। तुम दोनों के कर-कमल का स्पर्श पाकर मैं अपने पूर्वरूप को प्राप्त कर सका। तुम मेरे पितामह-तुल्य[1] हो। मेरे वचन सुनो—

तुम दोनों शर-प्रयोग के लिए उपयुक्त धनुष को धारण करनेवाले हो। यद्यपि तुम्हारी सहायता करनेवाला कोई नहीं है, तथापि सीता का अन्वेषण करने के लिए तथा अन्य आवश्यक कार्य करने के लिए किसी सहायक का होना उत्तम होगा। जिस प्रकार बिना नाव के समुद्र को पार करना कठिन है, उसी प्रकार बिना सहायक के शत्रु-पक्ष का विनाश करना भी कठिन है।

दोषरहित शिव के प्रताप के बारे में क्या कहें? वह देव, पद्म में उत्पन्न ब्रह्मा के द्वारा बनाई हुई सारी सृष्टि का विनाश करनेवाला है, किन्तु वे भी अवार्य बलशाली भूतों को अपने साथी बनाकर रखते हैं। यह तुम जानते ही हो।

---

१. कबंध के दुःख को दूर करने के कारण वह राम-लक्ष्मण को अपने पितामह-तुल्य समझता है। —अनु०

कर्त्तव्य कार्य क्या है?—इसका भली भाँति विचार करना चाहिए। धर्म क्या है?—इसका विचार रखना चाहिए। दुर्जनों को साथी न बनाकर सज्जनों को ही सहायक बनाना चाहिए। अतः, तुम दोनों उस शबरी के पास जाओ, जो सब प्राणियों के लिए माता के तुल्य है। उसके कथन के अनुसार चलकर ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचो।

वहाँ रहनेवाले सूर्य-पुत्र, स्वर्ण की कांतिवाले सुग्रीव से मित्रता कर लेना। उसकी सहायता से, दीर्घ बाँस-जैसे कंधोंवाली (सीता) का अन्वेषण करना उचित होगा। इस प्रकार कबंध ने कहा। शब्दायमान वीर-वलयधारी वीर (राम-लक्ष्मण) वैसे ही करने को सहमत हुए।

फिर, कबंध ने उन्हें प्रणाम किया और उनकी 'जय' बोलकर गगन-मार्ग से उड़कर चला गया। मनुवंश के उत्तम कुमार वे (राम-लक्ष्मण) भी दक्षिण दिशा में चलकर पर्वतों और अरण्यों को पार करते हुए गये। जब रात्रि का समय आया, तब मतंगमुनि के आश्रम में जा पहुँचे। (१–५८)

●

अध्याय १२

शबरी-मुक्ति पटल

सब अभीष्टों को प्रदान करनेवाले कल्पवृक्षों के सदृश दिव्य वृक्षों से परिपूर्ण सुगंधित वह (मतंगाश्रम का) उपवन उस स्वर्गलोक के समान था, जहाँ स्पृहणीय सुख ही रहते हैं, कोई दुःख नहीं रहता है, और जहाँ पुण्यकर्म करनेवाले लोग ही जाते हैं।

वे राम, जिनके मूलभूत कोई पदार्थ नहीं है, उस आश्रम में पहुँचे, जहाँ उन (राम) का ही ध्यान करती हुई तपस्या करनेवाली शबरी रहती थी। निकट पहुँचकर उन्होंने उससे प्रश्न किया—'सुख से रहती हो न?'

उस समय, उस (शबरी) ने बड़ी भक्ति से उन (राम) की प्रस्तुति की। अपनी आँखों से अश्रु की धारा बहाते हुए कहा—'मेरा मायामय सांसारिक बंधन अब टूटा। चिरकाल से मैं जो तपस्या करती रही, उसका फल अब प्राप्त हुआ। मेरा जन्म (संकट) मिटा।' यह कहकर फिर उसने बड़े प्रेम से एकत्र कर रखे हुए फल-कंद आदि लाकर उन (राम-लक्ष्मण) को भोजन कराया। तब—

शबरी ने राम से कहा—'हे प्रभु! शिव, कमलभव (ब्रह्मा), इंद्रादि देवता आनन्द के साथ यहाँ आये और मुझसे यह कहकर गये कि तुम्हारी पवित्र तपस्या की सिद्धि का काल आ गया है। और कुछ दिन यहीं रहो। जब रामचंद्र यहाँ आयेंगे, तब उनका सत्कार करके उसके पश्चात् हमारे लोकों में आना।

हे मेरे प्रभु! तुम यहाँ आनेवाले हो—यह समाचार पाकर मैं तुम्हारे दर्शन की

अभिलाषा से यहीं रहती हूँ। आज ही मेरा सुकृत सफल हुआ है। इस प्रकार, शबरी ने कहा। तब उस महातपस्विनी को प्रेम से देखकर राम ने कहा—'हे माता! हमारे मार्ग-गमन के श्रम को तुमने दूर किया। तुम्हारा श्रेय हो।'

राम तथा उनके अनुज उस दिन वहीं रहे। तब पापनाशक तपस्या करनेवाली (शबरी) ने उन्हें सच्चे प्रेम के साथ देखकर शीघ्रगामी अश्वों से युक्त रथ पर चलनेवाले और उष्णकिरण सूर्य का पुत्र सुग्रीव जिस स्थान पर रहता था, वहाँ जाने का मार्ग पूरे विवरण के साथ बताया।

शास्त्र-श्रवण से जिनके कर्ण पवित्र हुए हैं, ऐसे महात्मा लोग जिस अमृतमय आस्वाद (ब्रह्मानंद) को अपने सूक्ष्म तत्त्व-ज्ञान के द्वारा प्राप्त करते हैं, उस (ब्रह्मानंद) के साकार रूप प्रभु (राम) ने शबरी के उन वचनों को सुना, जो महान् आचार्यों के द्वारा मोक्ष-प्राप्ति के लिए दिये जानेवाले उपदेशों के समान थे।

फिर, वह शबरी बड़ी कठिनाई से संपन्न की गई तपस्या के प्रभाव से अपनी देह का त्याग कर अनुपम मोक्ष-लोक में आनंद से जा पहुँची। उस दृश्य को उन वीरों ने आश्चर्य से देखा। और फिर, उस (शबरी) के कहे मार्ग पर अपने वीर-वलयों को झंकृत करते हुए चल पड़े।

वे (राम-लक्ष्मण), शीतल वनों, पर्वतों तथा विभिन्न दिशाओं को पीछे छोड़ते हुए आगे बढ़ चले और उस पंपा सरोवर के निकट जा पहुँचे, जो ऐसा था, मानों धरती के मानवों के प्रतिदिन आकर उसमें स्नान करने के कारण, उनके प्रभूत पाप-रूपी अग्नि से पुण्य ही पिघलकर उस सरोवर के रूप में रहता हो। (१–६)



कंब रामायण

किष्किन्धाकाण्ड

मंगलाचरण

तीन वर्ण के तीनों गुण (सत्य, रज, तम) वाली मूल प्रकृति, उससे उत्पन्न सब तत्त्व, उस प्रकृति को गोचर करनेवाले नानारूपात्मक लोक तथा इन लोकों में स्थित सब पदार्थ, जिस परब्रह्म का शरीर बने हैं, वही (हमारे) सद्ज्ञान का मधुर विषय बना है, (जिसका चरित्र हम गा रहे हैं)।



अध्याय १

पंपा पटल

वह (पंपा-सरोवर) मधुपूर्ण पुष्पों से भरा था। उसमें रक्तनेत्र एवं उष्ण शुंड से युक्त मत्तगज गोते लगाते थे; वह स्वच्छ था। वह ऐसा था, मानों जल से भरा समुद्र बिजली से युक्त मेघों के सहित आकाश को भी साथ लेकर धरती के मध्य आकर विराजमान हो गया हो।

काटकर चिकना किये गये स्फटिक-खंड के समान अति स्वच्छ (उस सरोवर का) शीतल जल, नवविध रत्नों से जडित सीढ़ियोंवाले घाटों पर जब-जब तरंगें उठाकर टकराता था, तब-तब वह जल रत्नों की कांति से रंजित होकर, (अनेक शास्त्रों का) विवेचन करके भी सत्यज्ञान से विहीन रहनेवाले लोगों के चित्त की समता करता था।

मुक्ताओं से पूर्ण उस सरोवर के मध्य, प्रवाल-सदृश टाँगोंवाले राजहंस और हंसिनियाँ, एक साथ दृष्टि-गोचर होते थे, जिससे वह सरोवर उस विशाल आकाश के समान दिखता था, जिसमें अनेक राका-चंद्र उज्ज्वल नक्षत्रों-सहित निखर रहे हों।

वह सरोवर ऐसा लगता था, जैसे असमान गाधिसुत (विश्वामित्र) ने समुद्र से आवृत लोक, प्राणिवर्ग तथा वेद-पारग (ब्राह्मण) आदि की प्रतिसृष्टि करते समय, शीतल लवण-समुद्र के बदले मधुर जल से पूर्ण इस (सरोवर) का सर्जन किया हो।

वह सरोवर इतना गंभीर और इतना स्वच्छ जल से पूर्ण था कि (उसके संबंध में) यह कहा जा सकता है कि सूर्य के प्रतिस्पर्धी नागों का लोक यही है (अर्थात्, उसके जल की स्वच्छता के कारण पाताल तक दिखाई पड़ता था)। कल्पवृक्ष-सदृश तथा महाकवियों के शब्दों के अर्थ के समान ही वह सरोवर, पाताल तक अत्यन्त स्वच्छता से परिपूर्ण था।

विशाल दलों से युक्त पुष्पों में विश्राम करनेवाले और अव्यक्त मधुर शब्द करनेवाले हंस आदि पक्षियों की ध्वनियों से युक्त वह सरोवर, नाना प्रकार की वस्तुओं से संपन्न किसी बड़े नगर की पण्यवीथी की समता करता था।

उस सरोवर में सर्वत्र फैले हुए रक्तकमलों के मध्य जो हंस विचर रहे थे, वे ऐसे लगते थे, मानों यह सोचकर कि हम सुवासित कुंतलोंवाली सीता का पता नहीं लगा सके, इसलिए हम (रामचन्द्र का) मुख देखे विना ही अपना प्राण त्याग कर देंगे, वे (हंस) अग्नि के मध्य कूद पड़े हों।

वह सरोवर इतना स्वच्छ था कि उसके अंतर्गत (रहनेवाले) मुक्ता आदि स्पष्ट दिखाई पड़ते थे। साथ ही वह यत्र-तत्र सेंवार आदि के फैले रहने से मलिन भी दिखाई पड़ता था। वह उस ज्ञान के सदृश था, जो अविद्या के स्पर्श से कलंकित हो गया हो।

उस सरोवर में जो मीन थे, वे मानों यह सोचकर छिपे हुए थे कि दुःखी मनवाले श्रीरामचन्द्र यदि हमें देख लेंगे तो, वे साकार सतीत्व-जैसी और शुकमधुर-भाषिणी देवी (सीता) के नयनों (की छाया) को हम में देखकर, कभी अश्रु न बहानेवाले अपने नयनों में कहीं आँसू न भर लावें।

बाँसों में उत्पन्न मोतियों, मदजल बरसानेवाले मेघ-सदृश हाथियों के दंतों से उत्पन्न मोतियों, तथा अन्य रत्नों को लिये हुए पर्वत-निर्झर, आभरणों से भूषित वस्तु के जैसे होकर उस सरोवर में आकर गिरते थे। अतः, वह (सरोवर) कर्णाभरणों से शोभायमान वदनवाली सुन्दरियों की छवि की समता करता था।

उष्ण मदजल बहानेवाले हाथी उस सरोवर में निमग्न होते थे, जिससे उसका जल पंकिल हो जाता था। अतः, वह (सरोवर) उन आभरण-भूषित वारनारियों की समता करता था, जिनका शरीर, रात्रिकाल में मन्मथ-समर से श्रांत हो गया हो।

गगन-चुंबी पर्वतों से प्रवाहित मेघ-धाराएँ और हाथियों के, भ्रमरों को आकृष्ट करनेवाले सुरभित मदजल-प्रवाह, उस सरोवर में भर जाते थे, जिससे उस जल को पीनेवाले प्राणी भी मस्त हो जाते थे। इस कारण से वह (सरोवर) मनोहर केशोंवाली सुन्दरियों के बिंब-सदृश अधर की समता करता था।

आर्यवाणी (संस्कृत) आदि अठारहों भाषाएँ किसी एक अल्पज्ञ व्यक्ति को प्राप्त हो गई हों, (और शब्दायमान हो गई हों) इसी प्रकार उस सरोवर में विविध पक्षी निरंतर ऐसी विविध प्रकार की ध्वनियाँ करते रहते थे, जिन (ध्वनियों) को पृथक्-पृथक् पहचानना असंभव था।

एक हंस, जो प्राणों के समान ही उसका आलिंगन करके रहनेवाली अपनी

हंसिनी से इस प्रकार बिछुड़ गया था, जैसे शरीर प्राणों से अलग हो गया हो, देवांगनाओं के (जो वहाँ स्नान करने के लिए आई थीं) नूपुरों के मधु-सदृश शब्द को कान लगाकर सुन रहा था।

असंख्य पर्वतों से निर्झर के द्वारा बहाकर लाये गये सुगंधित अगरु, चंदन इत्यादि उस सरोवर में निमग्न रहते थे, जिससे वह (सरोवर) उस पात्र के समान था, जिसमें नगर-वासियों ने चंदन इत्यादि के सुगंध-रसों को भरकर रखा हो।

उस सरोवर के मकर, हरिणनयना बालाओं के अधर की समता करनेवाले रक्त कुमुद के सुरभित मधु का पान करके (रमणियों का अधर) पान करनेवाले पुरुषों के जैसे ही मत्त हो उठते थे। करंड पक्षी (जलकौए), मानों जन्म-मरण की प्रक्रिया को दिखाने के लिए, अपनी चोंचों में मीन को पकड़े हुए बार-बार जल में डुबकियाँ लगाते और बाहर निकलते थे।

हंस, मानों यह सोचकर कि हम पुष्ट हाथी-सदृश श्रीरामचन्द्र को, सुरभित कमल में निवास करनेवाली लक्ष्मी (अर्थात् , सीता) को लाकर नहीं दे सके, अतः उनकी और कोई, अल्प ही सही, सेवा करें—इस खयाल से मनोहर पद-गति दिखा रहे थे (जिससे रामचन्द्र को सीता की पदगति का स्मरण हो आये)। वहाँ के नीलोत्पल (सीता के) नेत्रों की सुन्दरता को दिखा रहे थे और रक्त कुमुद (सीता के) अधर का दृश्य उपस्थित कर रहे थे।

वहाँ के कुछ हंस (सरोवर के) तट की पुष्पित शालाओं पर बैठे थे। वे शाखाएँ ऐसी लगती थीं, मानों उस सरोवर में अपने आभरणों की कांति को चारों ओर बिखेरती हुई नित्य स्नान करनेवाली देवांगनाओं की चोटियाँ उनके कृत्रिम-हंसों को अपने करों में लिये हुए (उस सरोवर के) तट पर खड़ी हों।

वहाँ, पद्मराग मणियों की कांति इस प्रकार व्याप्त हो रही थी कि एक ओर लगी हुई नीलमणियों की कांति उससे दब जाती थी, जिससे वहाँ रात्रिकाल में भी दिन-जैसा प्रकाश व्याप्त रहता था। चक्रवाकों के जोड़े भी (उसे दिन समझकर) तरुणियों के स्तनद्वय के समान एक दूसरे से मिले रहते थे।

बड़ी-बड़ी मछलियाँ, वेग से फेंके गये खड्ग के समान झपटती थीं। क्रमशः उठ-उठकर बहनेवाली तरंगों में लुढ़क-लुढ़ककर चलनेवाले जल-नकुल, उन नटों के जैसे लगते थे, जो (अपने पैरों में पायल बाँधकर) मुखरित गति के साथ नाचते हैं। दादुर (उन नृत्यों को देखकर) 'वाह-वाह !' कहते-से लगते थे।

रामचन्द्र, उस विशाल जलमय सरोवर के निकट पहुँचे। वहाँ के बालहंस, कमल-पुष्प इत्यादि को देखकर वे कोमल पल्लव-तुल्य सीता देवी का स्मरण करके द्रवित मन हो उठे। उनका विवेक भी मंद पड़ गया, जिससे वे रो पड़े।

रेखाओं से युक्त सुन्दर पैरवाले चक्रवाको ! बालहंसो ! कभी मुझसे अलग न होनेवाली सीता मुझसे बिछुड़ गई है। अब वह (मेरे साथ) नहीं है। मैं विरह से पीडित हूँ। अब तुम्हारे लिए कोई बाधा नहीं रही (अर्थात् , तुम मुझे सता सकते हो)। फिर भी, यदि तुम दुःखी प्राणों पर दया करोगे, तो वह तुम्हारे यश का ही कारण होगा।

कभी वियोग का अनुभव न किये हुए मुझ-जैसे को यदि कुछ सांत्वना दोगे, तो इससे क्या तुम्हारी कोई हानि होगी ?

हे सरोवर ! सुन्दर कमलों और सद्योविकसित सुवासित नीलोत्पलों को दिखाकर तूने घाव के जैसे जलनेवाले मेरे मन पर मलहम-सा लगा दिया। तुम (सीता के) नयनों तथा उसके वदन को दिखा रहे हो। क्या उसके रूप को एक बार भी नहीं दिखाओगे ? (जो अपने लिए संभव हो, उस वस्तु को) न देकर लोभ करनेवाले व्यक्ति अच्छे नहीं होते।

विकसित नील उत्पलों, रक्त कुमुदों, सुगंधित कोमल कमलों, 'वलै' (एक जल-लता) के पत्तों, तरंगों, मीनो, कछुओं तथा ऐसे ही अन्य पदार्थों को देखकर, रामचन्द्र उस सरोवर से कह उठे—हे सरोवर ! मैं अमृत-समान उस (सीता) देवी के अवयवों को तुम्हारे अंतर में देख रहा हूँ। क्या विशाल आकाश में जब बलवान् राक्षस (सीता को) खाने लगा, तब उसके ये अवयव यहाँ गिर पड़े थे ?

दौड़ते और खेलते रहनेवाले हे मयूर ! तू उस (सीता) की छवि से पराजित होकर मन मसोसकर शत्रु के जैसे फिरता रहता था। क्या अब आनंदित हो रहा है ? उस (सीता) को खोजनेवाले मेरे (विकल) प्राणों को देखकर तू मन में उमंग से नाच रहा है ? तू सहस्र नेत्रवाला है। तुझे कुछ भी अज्ञात (अदृश्य) नहीं है (अर्थात् , तूने सीता के अपहरण को जान लिया होगा, इसीलिए तू आनन्द से नाच रहा है)।

हंस-मिथुनो ! यद्यपि तुम मेरे निकट नहीं आओगे, तथापि (सीता के संबंध में) कुछ कहो। क्या कुछ भी नहीं कहोगे ? मैंने तुम्हारा कुछ अपकार नहीं किया है, तो क्या तुम मेरा अपकार करोगे ? कटि-रहित उस (सीता) ने ही तो तुम्हारी गति की सुन्दरता को परास्त किया था ? उससे (सीता से) तुम्हारा वैर है। किन्तु, मैं तो तुम्हें देखकर आनंदित हो रहा हूँ। तुम मुझपर क्यों कोप करते हो ?

सुनहले और सुरभित अंतर्दलों के मध्य मकरंद में रहनेवाले एवं मधुर गान करने-वाले भ्रमरों से शोभायमान हे कमल ! (सीता) देवी मेरे पार्श्व में नहीं हैं। वह (मुझसे) अन्यत्र रहनेवाली भी नहीं हैं। यदि तुम भी यह कह दो कि वह तुम्हारे पास नहीं है, तो तुम सत्य को छिपा रहे हो। यों सत्य को छिपानेवालों से मित्रता कैसे हो सकती है ?

सीता के मुख की समानता करते हुए भी कुछ भी न बोलकर सरोवर में छिपे रहनेवाले रक्त कुमुद के पास पड़ी हुई हे रक्तजटे ![1] तुम मेरे सम्मुख आओ और अमृतवर्षी, अति सुन्दर बिंब-सदृश (सीता के) अधर को मुझे दिखाओ। उस अधर के अमृत-रस को तथा शीतल वचनों को मुझे दो।

हे जल-लता के पत्र ! तुम तो पुष्पलता-सदृश मुग्धा सीता के कान ही हो, और कुछ नहीं। अतः, मुझ दुःखी की सहायता करने में तुम्हें क्या आपत्ति है ? फिर भी, तुम जो स्वर्ण-कुंडल, वक्र ताटंक और मुक्तामय झुमके को छोड़कर यहाँ आये हो (सीता के संबंध में) कुछ न कहकर, क्यों वैर निकाल रहे हो ?

महावर-लगी उँगलियों से जिसके चरण ऐसे लगते थे, मानों पद्म से प्रवाल फूट

१. रक्तजटा, पानी में फैलनेवाली एक प्रकार की लता है, जो बहुत लाल होती है।—अनु०

निकला हो, जो मेरे हृदय-रूपी कमल में रहती है, जो काले बादल-जैसे और पुष्पों से भूषित केशोंवाली है, उस (सीता) के नयनों की समता करनेवाले हे मनोहर नीलोत्पल ! तू ऐसा हँसता है कि उससे विष-सा फैल जाता है। तू क्यों इस प्रकार मुझे सता रहा है ?

मन की वेदना से आह भरते हुए श्रीरामचन्द्र ने उस सरोवर के पुन्नाग-वृक्षों से पूर्ण तट पर खड़े होकर फिर कहा—हे निर्दय, कठोर सरोवर ! मैं मिटा जा रहा हूँ, फिर भी तुम कुछ भी नहीं कहते।—इस प्रकार वे अत्यंत पीडित हुए।

प्रभूत करुणा के जन्मस्थान उन प्रभु ने देखा—काले भ्रमरों से घिरे हुए, मदजल बहानेवाले काले हाथी, मीठे पत्ते खानेवाली बड़ी हथिनियों के मुँह में (अपनी सूँड़ से) जल उठा-उठाकर भर रहे हैं। उस दृश्य को देखते हुए वे खड़े रहे।

उस समय प्रेम नामक अपूर्व आभरण से सुशोभित अनुज (लक्ष्मण) ने प्रभु से कहा—दिन व्यतीत हो गया। अतः, हे आर्य ! इस सरोवर के दिव्य जल में स्नान करके, आप अपनी कीर्त्ति के समान ही सर्वत्र व्याप्त हुए भगवान् के चरणों की वंदना करें।

राजा (श्रीराम) उस स्थान से बड़ी कठिनाई से हटे और तरंगों से भरे उस सरोवर के सुरभिपूर्ण जल में ऐसे स्नान करने लगे कि पर्वत-जैसे मत्तगज भी उन (राम) की शोभा को देखकर लज्जित हो गये।

ज्योंही प्रभु उस जल में निमग्न हुए, त्योंही उनकी वियोगाग्नि की ज्वाला से वह जल ऐसा तप्त हो गया, जैसे लुहार ने खूब तपाये हुए लोहे को शीतल जल में डुबो दिया हो।

हंस का रूप धारण कर (ब्रह्मा के प्रति) दुर्गम वेदों का उपदेश देनेवाले उन (विष्णु के अवतार, रामचन्द्र) ने स्नान करके अनादि वेदों में उक्त विधि से चक्रधारी (विष्णु) के प्रति अर्घ्य-प्रदान किया ; फिर मुनियों से आवासित एक वन में जाकर ठहरे। उष्णकिरण (सूर्य) भी डूब गया।

संध्या-रूपी स्त्री आ पहुँची। किन्तु, कंचुक से बद्ध स्तनवती (सीता) नहीं आई। उस देवी के वियोग में रहकर अनुपम नायक (राम) उसका स्मरण करके विकल हो रहे थे। तब शीतल जल से पूर्ण समुद्र से चन्द्रमा आकाश-मध्य यों उठ आया, मानों तप्तकिरण (सूर्य) ही हो।

उस समय विविध कमल-पुष्प बंद हुए ; पक्षी उद्यानों में अपने-अपने नीड़ों में बंद हुए। मृग के कार्य-कलाप बंद हुए। वृक्षों के पत्ते बंद हुए। शुकों का बोलना बंद हुआ। कलापियों के नृत्य बंद हुए। कोकिल के गान बंद हुए। हाथियों के गर्जन भी बंद हुए।

धरती के प्राणी निद्रित हुए। पर्वत के प्राणी निद्रित हुए। स्वच्छ जल से भरे सरोवर निद्रित हुए। भूत भी पलक मूँदने लगे। किंतु, क्षीर-सागर में निद्रा करनेवाले दोनों हाथी[1] अपनी आँखें बंद न कर सके।

विमल स्वरूप (राम) को दारुण वेदना से मुक्त करते हुए उष्णकिरण पुनः

---

१. राम और लक्ष्मण—दोनों, विष्णु के अंश माने जाते हैं। अतः, उन दोनों को क्षीरसागर में निद्रा करनेवाले हाथी कहा गया है।—अनु०

समुद्र से उदित हुआ। रात्रि भी जो अंतहीन-सी लगती थी, अब उसी प्रकार मिट गई, जिस प्रकार स्वच्छ आत्मज्ञान के प्राप्त होने पर धूम एवं कीचड़ के पुंज-जैसे पाप मिट जाते हैं। कमल-पुष्पों का मुख विकसित हुआ।

गन्ने पेरने के कोल्हू से बहनेवाले रस-प्रवाह की ध्वनि से युक्त (कोशल) देशवासी, वे दोनों (राम-लक्ष्मण) क्षीरसागर से उत्पन्न अमृत के समान मधुरवाणी तथा हरिण-समान नयनों से युक्त देवी का अन्वेषण करते हुए, समुद्र-जैसे वनों से घिरे पर्वतों, तथा वहाँ के अरण्यों के दीर्घ मार्गों को पार करके, त्वरित गति से आगे चले। (१–४२)

●

अध्याय २

हनुमान् पटल

उस प्रकार चलकर राम-लक्ष्मण, उस बड़े ऋष्यमूक पर्वत पर, जिसपर दीर्घकाल तक शबरी निवास करती थी, सुगमता से शीघ्र चढ़ गये। तब उस पर्वत पर स्थित महिमामय वानराधिप (सुग्रीव) ने उन्हें देखकर सोचा कि वे कोई शत्रु हैं और भयभीत और कर्त्तव्य-विमूढ़ होकर अपने प्राण लेकर भागा और एक कंदरा में जा छिपा।

उस सुग्रीव ने (हनुमान् से) कहा कि 'हे वायु के वीर पुत्र! दृढ धनुष धारण करनेवाले महान् पर्वत-सदृश वे दोनों हमारे वैरी वाली की आज्ञा से ही आये हैं। तुम जाकर देखो। सत्य को पहचानो।'—यह कहकर वह बिना कुछ जाने-बूझे ही अति व्याकुल हो, कंदरा के भीतर जा छिपा।

तार, नील, तेजस्वी हनुमान् आदि वीरों के साथ, सूर्यपुत्र (सुग्रीव) मेरु पर्वत समान उस ऊँचे पर्वत के एक ओर जा छिपा। इधर हार-भूषित वक्षवाले वे दोनों (राम-लक्ष्मण) यह सोचकर उस पर्वत पर चढ़े कि वहाँ सीता का अन्वेषण करने का कोई उपाय विदित होगा।[1]

वे सीता का अन्वेषण करने में तत्पर हुए। इतने में कुछ वानरों ने उस पर्वत-कंदरा में जाकर सुग्रीव से कहा—वे दोनों वाली की आज्ञा से आये हुए नहीं हो सकते; क्योंकि वे बहुत दुःखी हैं, व्याकुलमन और शिथिलप्राण हैं। तब हनुमान् ने अपने (दिव्य) ज्ञान से विचार किया।

---

१. अरण्यकांड में कबंध-वध के प्रसंग में यह उल्लिखित है कि कबंध मरकर गंधर्व का रूप लेता है और राम से यह कहता है कि आप दक्षिण दिशा में जायें और ऋष्यमूक पर्वत पर सूर्यपुत्र के साथ मैत्री करें। उनसे सीता के अन्वेषण में आपको सहायता मिलेगी। रामचन्द्र उसी बात का स्मरण करके इस पर्वत पर चढ़ते हैं। —अनु०

उस समय, जब वे वानर व्याकुल तथा भयभीत हो साहस छोड़कर खड़े थे, तब हनुमान् ने सोच-विचार करके उन्हें उसी प्रकार सांत्वना दी, जिस प्रकार लंबी जटायुक्त रुद्रदेव ने (क्षीरसागर के मथन के समय) हलाहल विष को देखकर डरे हुए देवों तथा दानवों के भय को दूर करते हुए उन्हें सांत्वना दी थी।

अंजनि-पुत्र एक ब्रह्मचारी का रूप धारणकर नील पर्वत-सदृश रामचन्द्र के निकट जा पहुँचा और एक स्थान में छिपकर उन्हें देखकर सोचने लगा— ये तपस्वी के वेष में हैं, किंतु हाथों में धनुष धारण किये हैं और कठोर क्रोध से भरे लगते हैं। फिर, विवेक से विचार करने लगा—

क्या इन्हें, देवों के अद्वितीय नायक त्रिमूर्त्ति मानें ? किन्तु वे तो तीन हैं, जबकि ये दो ही हैं ; ये धनुर्धारी भी हैं। इनकी समता करनेवाले संसार में कौन हो सकते हैं ? इनके लिए असाध्य कार्य ही क्या हो सकता है ? उनके स्वभाव को मैं किस प्रकार सरलता से पहचान सकता हूँ ?

इन्हें देखने से ऐसा लगता है, जैसे चित्त की किसी व्यथा से ये शिथिल हों। ये ऐसे नहीं लगते कि किसी सामान्य विषय पर ये चिंतित हो सकते हों। क्या ये स्वर्गवासी देव हैं ? पर नहीं, ये तो मानव-रूप में हैं। अपने मन को मुग्ध करनेवाली किसी वस्तु के अन्वेषण में अनन्यचित्त होकर व्यस्त हैं।

ये धर्म एवं चारित्र्य को ही सर्वस्व माननेवाले हैं। इनका यहाँ आगमन अन्य किसी उद्देश्य से नहीं हो सकता। ये दोनों ओर किसी ऐसी वस्तु को ढूँढते जा रहे हैं, जो इनके लिए अलभ्य अमृत-सदृश है और बीच में ही खो गई है।

ये कोप नामक दोष से हीन हैं। करुणा के समुद्र हैं। (पर) हित को छोड़कर दूसरा व्यापार जानते नहीं हैं। ऐसी गंभीर आकृतिवाले हैं कि इन्हें देखकर इन्द्र भी सहम जाय। ऐसे चरित्रवाले हैं कि धर्मदेवता भी इनके सम्मुख परास्त हो जाय और ऐसे पराक्रमवाले हैं कि यम भी त्रस्त हो जाय।

अपने उत्तम गुणों के कारण, अपना उपमान स्वयं ही बननेवाले, अन्य उपमान से रहित उस (हनुमान्) ने इस प्रकार अनेक तरह से विचार करके दोनों को ध्यान से देखा। फिर, उनके प्रति अधिक प्रेम (भक्ति) से खड़ा रहा, जैसे वह अपने बिछुड़े हुए प्रियजनों को देख रहा हो।

फिर, हनुमान् सोचने लगा—बड़े मुखवाले, भय-रहित हाथी इनको देखकर ऐसे खड़े हैं, जैसे अपने बच्चों को देख रहे हों (अर्थात्, इनके प्रति प्रेम से भरे हैं)। बिजली को भी (अपनी उज्ज्वलता से) मंद करनेवाले दाँतों से युक्त सिंह, बाघ-जैसे हिंस्र प्राणी भी इनके प्रति आकृष्ट होकर इनके पीछे-पीछे चल रहे हैं। भूत भी उनका आदर करते हुए द्रवितमन हो जाते है। तो, उनके संबंध में विविध प्रकार की बातें सोचकर व्याकुल क्यों होना चाहिए ?

मयूर आदि पक्षी भी इनकी मनोहर देह पर धूप लगने से (मन में) पिघल उठते हैं और वितान-जैसे अपने पंखों को फैलाकर और प्राचीर-जैसे उन्हें चारों ओर से घेरकर

साथ-साथ चल रहे हैं। गगन की घटाएँ मंदगति से इनके साथ चलकर, सर्वत्र वर्षा-विंदुओं को घने रूप में छिड़क रही हैं।

धूप में तपकर आग-जैसे गरम कंकड़, इनके स्वच्छ रक्त-कमल जैसे चरणों का स्पर्श पाते ही मधु-भरे पुष्पों के समान मृदुल हो जाते हैं। जहाँ-जहाँ ये जाते हैं, वहाँ-वहाँ के वृक्ष एवं पौधे वंदना-से करते हुए भुक जाते हैं। अतः, कदाचित् ये ही धर्म-देवता हैं।

अथवा, क्या ये वही भगवान् हैं, जो (जीवों के) मायाजन्य चिरकर्म बंधन को मिटाकर, जन्मदुःख से मुक्त करके, दक्षिण दिशा के यमलोक के बदले उन्हें अपुनरावृत्ति के (मोक्ष के) मार्ग में भेजते हैं ? इन्हें देखकर (मेरे मन में) अपार प्रेम उमड़ रहा है। मेरी हड्डियाँ भी पिघल रही हैं। मेरे मन में इस प्रेम के उत्पन्न होने का क्या कारण है ?

जब सन्मार्गगामी मनवाला हनुमान् इस प्रकार सोच रहा था, तब वे दोनों (राम-लक्ष्मण) उधर ही आ पहुँचे। तब हनुमान् उनके सम्मुख गया और बोला—आपका आगमन शुभप्रद हो ! करुणामूर्त्ति (राम) ने उससे पूछा—तुम कौन हो ? कहाँ से आ रहे हो ? हनुमान् कहने लगा—

हे सजल मेघ-सदृश मनोहर आकारवाले ! स्त्रियों के लिए विष बननेवाले (अर्थात् , स्त्रियों को अपनी ओर आकृष्ट करके उन्हें प्रेम से पीडित करनेवाले) तथा हिम से अम्लान रक्त-कमल की समानता करनेवाले प्रफुल्ल नयनों से युक्त ! मैं वायु का पुत्र हूँ और अंजना के गर्भ में उत्पन्न हूँ। मेरा नाम हनुमान् है।

उस (हनुमान्) ने, जिसकी यश का भार वहन करनेवाली भुजाएँ ऐसी हैं कि कुलपर्वत भी उन्हें देखकर लज्जित हो जायँ, कहा—हे प्रभु ! इस ऋष्यमूक पर्वत पर रहनेवाले, उज्ज्वल सहस्रकिरण (सूर्य) के पुत्र की सेवा में मैं रहता हूँ। आपको आते हुए देखकर वह व्यग्र हुआ और आपके बारे में जानने के लिए मुझे भेजा है।

(हनुमान् के) वह वचन कहते ही, दृढ धनुर्धारी चक्रवर्त्ती कुमार (राम) ने मन में कुछ विचार करके यह जान लिया कि इस (हनुमान्) से उत्तम और कोई नहीं है। पराक्रम, शास्त्र-संपत्ति, ज्ञान तथा अन्य सभी गुण इसमें अभिन्न रूप में वर्त्तमान हैं। फिर, वे (लक्ष्मण से) बोले—

हे धनुर्भूषित कंधेवाले वीर (लक्ष्मण) ! कोई कला (शास्त्र), समुद्र-सदृश वेद, ऐसा कहीं भी नहीं है, जिसे इस (हनुमान्) ने प्रशंसनीय रूप में अधीत न किया हो। इसका गंभीर ज्ञान इसके वचनों से ही प्रकट होता है। मधुर भाषा से संपन्न यह क्या ब्रह्मदेव है ? या वृषभवाहन (शिव) है ? नहीं तो यह कौन है ?

हे भाई ! इसका (यथार्थ) स्वरूप एक साधारण ब्रह्मचारी का नहीं हैं। किन्तु, मुझे निश्चित रूप से यह ज्ञात हो रहा है कि यह सर्वलोकों के लिए आधार बन सके, ऐसे पराक्रम तथा अत्यधिक महिमा से संपन्न है। इसकी सत्यता तुम आगे देखोगे (पहचानोगे)। अतिसुन्दर प्रभु (राम) ने इस प्रकार कहा—

और, इस संसार के निवासी मुनियों, तथा (स्वर्ग के निवासी) देवताओं में

कौन-ऐसा है, जो इसकी जैसी वाक्पटुता रखता हो ? समस्त वेदों में पारंगत इस ब्रह्मचारी के वचनों के सम्मुख सर्वश्रेष्ठ त्रिमूर्त्तियों का महान् कौशल भी कुछ नहीं है।

फिर (रामचन्द्र ने हनुमान् से) कहा—उस कपिकुलनायक को, जिसके संबध में तुमने कहा है, देखने की इच्छा से ही हम यहाँ आये हैं। यहाँ तुमसे साक्षात् हुआ है। तुम्हारे मधुवचन के सदृश ही, सन्मार्ग पर चलनेवाले मन से युक्त उस (कपिराज) को हमें दिखाओ।

(तब हनुमान् ने ये वचन कहे—) भूधर-सदृश कंधोंवाले वीरो! इस विशाल धरती पर, जो आठों दिशाओं के (चक्रवाल) पर्वत-पर्यंत फैली है, आप लोगों के समान पवित्र कौन हो सकते हैं ? यदि आप ही उस (कपिराज) से, बड़े आदर के साथ मिलने आये हैं, तो उसका संयम के साथ अर्जित किया हुआ तप-रूपी धन कितना अत्यधिक है ?

पर्वत से भी अधिक पुष्ट भुजाओंवाले (हे वीरो)! प्रेमहीन इन्द्र-पुत्र (वाली) के क्रुद्ध होने से रवि-पुत्र (सुग्रीव) एकाकी दुःख भोगता हुआ, निर्झरों से युक्त इस पर्वत पर आकर, मेरे साथ (छिपकर) रहता है। अब आप ऐसे आये हैं, जैसे उसकी संपत्ति ही आ गई हो।

(धार्मिक व्यक्ति) इस विशाल संसार के सब लोगों के सभी अभीष्ट पदार्थों का दान देते हुए यज्ञ करते हैं तथा अन्य (तप आदि) कार्य भी करते हैं, इस प्रकार वे अनादि धर्म को स्थिर रखते हैं। किन्तु, किसी ऐसे व्यक्ति को, जो मारने के लिए यम के समान आये हुए अपने कुल-शत्रु से डरकर, शरण में आया हो, उसको अभयदान देने से भी श्रेष्ठ धर्म और कोई हो सकता है ?

यह कहना कि आप हमारी रक्षामात्र करेंगे, बहुत छोटी-सी बात होगी; क्योंकि आप अपलक देवताओं से लेकर सब चर-अचर पदार्थों से भरे हुए, तीन प्रकार से बने हुए सप्तलोकों की भी रक्षा करने में समर्थ हैं, मुरुगन (कार्त्तिकेय) के समान सौंदर्य तथा पराक्रम से युक्त हैं। आपकी शरण में आने से बढ़कर हमारा और क्या भला हो सकता है ?

सत्य (रूपी शस्य) के लिए (उसकी रक्षा करनेवाले) घेरे के जैसे रहनेवाले उस हनुमान् ने कहा—हे वीर! अपने नायक को मैं यह बताऊँगा कि आप कौन हैं। अतः, आप हमसे कहें (कि आप कौन हैं)। तब वीर-कंकण से भूषित लक्ष्मण, ठीक विचार करके, किंचित् भी सत्य से स्खलित न होकर, अपना सारा वृत्तांत स्पष्ट रूप में कहने लगे—

सूर्यवंश में उत्पन्न आर्य चक्रवर्त्ती, जो एक श्वेतच्छत्रधारी हो, सर्वत्र अपने उज्ज्वल शासन-चक्र को चलाते थे, जिन्होंने अपने पराक्रम से असुरों के प्राण पी डाले थे, अनेक यज्ञों को संपन्न करके स्वर्गलोक पर भी अपना प्रभाव डाला था, जो करुणामय दृष्टि-युक्त थे;

जिन्होंने मेघ के सदृश मंद वर्षा करनेवाले, दृढ दंतवाले, लाल बिंदियोंवाले पर्वत-सदृश श्रेष्ठ गज पर आरूढ होकर अपने दृढ धनुष को लेकर ऐसा युद्ध किया था, जिससे मदमत्त असुर विध्वस्त हो गये थे, जो सहजात ज्ञान और राजनीति से युक्त थे, जिनकी समता मनुप्रभृति नरेशों में कोई भी नहीं कर सकता था, ऐसे दशरथ नामक वह (चक्रवर्त्ती) स्वर्ण-प्रासादों तथा विशाल प्राचीरों से शोभायमान अयोध्या के राजा थे।

उन्हीं चक्रवर्त्ती के पुत्र हैं, यह तेजस्वी पुरुष, जो अपनी माता (कैकेयी) की आज्ञा से अपने स्वत्वभूत राज्य-संपत्ति को अपने अनुज को प्रेम से देकर बड़े अरण्य में प्रविष्ट हुए हैं, इन पुरुष का नाम है, राम। दीर्घ धनुष के प्रयोग में कुशल इस वीर पुरुष का किंकर हूँ मैं।

इस भाँति, रामचन्द्र के जन्म से प्रारंभ कर रावण के मायामय क्षुद्रकार्य (सीता-हरण) तक की सारी कथाएँ, किंचित् भी त्रुटि के विना, बताईं। सारा वृत्तांत सुनकर वायु-कुमार अत्यंत आनंदित हुआ और (राम के) चरणों पर प्रणत हुआ।

यों उसके प्रणाम करने पर, राम ने उससे कहा—वेद-शास्त्रों के ज्ञाता हे ब्रह्म-चारिन्! तुमने यह कैसा अनुचित कार्य किया (ब्राह्मण होकर मुझ क्षत्रिय के चरणों पर क्यों नत हुए) ? यह सुनकर बलवान्, सुन्दर तथा विशाल भुजावाले वीर मारुति ने कहा—पंकज-समान रक्तनेत्र तथा चक्रधारी हे वीर! यह दास कपिकुल में उत्पन्न व्यक्ति है।

फिर, धर्म को अनाथ होने से बचानेवाला वह (हनुमान्), अपना वास्तविक रूप लेकर इस प्रकार खड़ा हुआ कि स्वर्णमय मेरु पर्वत भी उसकी भुजाओं की समता नहीं कर सकता था। मानों, वेद तथा शास्त्र ही बड़ा आकार लेकर खड़े हो गये हों। सभी बड़े-बड़े पदार्थ उसके सम्मुख छोटे लगने लगे। तब उसे देखकर विद्युत्-जैसे धनुष को धारण करने-वाले वे वीर (राम-लक्ष्मण) विस्मय करने लगे।

तीनों लोकों को अपने चरण से मापनेवाले पुंडरीक-नयन, चक्रधारी (विष्णु के अवतार, श्रीरामचन्द्र), स्वर्णमय उज्ज्वल कुंडलों से भूषित उसके मुख को नहीं देख पाते थे (अर्थात्, हनुमान् उतना ऊँचा हो गया था)। तो, अब उसके विश्वरूप का वर्णन किस प्रकार कर सकते हैं, जिसने सूर्य से प्राचीन शास्त्रों को अधीत किया था।

ताल से पृथक् हुए कमल-सदृश विशाल नयनवाले राम ने अपने भाई से कहा—हे तात! वह मोक्ष-पद ही इस वानर का रूप लेकर उपस्थित हुआ है, जो क्षुद्र गुणों से रहित होकर (अर्थात्, केवल सत्त्वगुणमय होकर) अमंद प्रकाश से युक्त, नित्य वेदों एवं दोष-रहित ज्ञान से भी दुर्ज्ञेय है।

(फिर राम ने लक्ष्मण से कहा—) इस महानुभाव से भेंट हुई। एक अच्छा साधन हमने प्राप्त किया (अर्थात्, सीता के अन्वेषण के लिए अच्छा साधन मिला है)। अब हमारी विपदा मिट जायगी। सुख प्राप्त होगा। हे धनुर्धर! यदि यह महावीर, कपिकुलनायक (सुग्रीव) की आज्ञा का पालक है, तो न जाने वह स्वयं किस प्रकार के प्रभाव से संयुत है।

यों आनंदित होकर, प्रसन्नवदन रहनेवाले, पर्वत-सम पुष्ट कंधोंवाले वीरों (राम-लक्ष्मण) को देखकर वानर-श्रेष्ठ ने निवेदन किया—मैं अभी जाकर उस (सुग्रीव) को ले आता हूँ। हे पराक्रमशीलो! किंचित् समय तक आप यहीं रहें और उनकी अनुमति पाकर वह त्वरित गति से चला गया। (१–३८)

अध्याय ३

सख्य पटल

मंदर पर्वत-सदृश भुजाओं तथा दीर्घ यश से युक्त हनुमान् अपने ज्ञान से, मनुवंश में उत्पन्न उस (राम) के सद्गुणों का चिंतन करता हुआ चला और युद्धोचित क्रोधयुक्त राजा (सुग्रीव) के समीप जाकर बोला—मैं, तुम्हारा कुल और यह लोक, तीनों तर गये।

सुरभित हारधारी, अपार बल से संपन्न वाली नामक वीर के प्राण-हरण के लिए काल आ गया है। हम दुःख-सागर के पार पहुँच गये—अंतरिक्षगामी (सूर्य) के पुत्र (सुग्रीव) के प्रति इस प्रकार कहा और हलाहल विष पीनेवाले (रुद्र) के समान अपूर्व नृत्य करने लगा।

वे (राम-लक्ष्मण) इस धरती के रहनेवाले हैं। स्वर्ग के हैं (अर्थात्, सर्वत्र इनका प्रभाव है)। वे (हमारे) मन में रहते हैं, क्रियाओं में रहते हैं, वचनों में रहते हैं और नेत्रों में रहते हैं। वे शत्रुवान् हैं (अर्थात्, उनके कुछ शत्रु भी हैं) और शत्रुओं के द्वारा किये गये अनेक घावों से युक्त लोगों के अपूर्व प्राणों के लिए अमृत-समान भी है।

वे अपने पराक्रम से समस्त लोकों को एकच्छत्र की छाया में लानेवाले विजयी शासक, मुखपट्टधारी हाथियों की सेनावाले राजाओं से वंदित चरणवाले, दशरथ के श्रीकुमार हैं। वे महान् ज्ञानवाले हैं। अतिसुन्दर हैं और अनायास ही तुम्हें अपना राज्य दिलाकर तुम्हारी सहायता कर सकनेवाले हैं।

वे नीतिमान् हैं। मधुर करुणा से भरे हैं। सन्मार्ग से कभी न हटनेवाले हैं। सबसे अधिक महिमावान् हैं। बिना सीखे ही, स्वयं उत्पन्न अपार ज्ञान से संपन्न हैं। महान् कीर्त्तिमान् हैं। गाधिसुत (विश्वामित्र) के द्वारा प्रदत्त समुद्र-सदृश विशाल दिव्य अस्त्र-समुदाय के स्वामी हैं।

(उनमें से ज्येष्ठ वीर ने) बड़े क्रोध से युक्त, शूलधारी ताडका को अपने बाण से निहत किया। उसके क्रूर कर्मवाले बेटे (सुबाहु) को मारा। अपने चरण की रज से एक बड़े प्रस्तर के रूप में पड़ी हुई अहल्या को दुष्प्राप्य आत्म-स्वरूप प्रदान किया।

उत्तम सामुद्रिक लक्षणों से युक्त उन वीरों में ज्येष्ठ (राम) ने मिथिला नगरी में जाकर, उस शिवजी के महान् धनुष का भंग किया था, जिन (शिव) ने अंधकार के नाम तक को मिटा देनेवाले उज्ज्वल किरण-समुदाय से युक्त सूर्यदेव के दाँतों को गिरा दिया था।[1]

केसर से शोभायमान अश्ववाले दशरथ का वर प्राप्त करके अपार पातिव्रत्य से संपन्न छोटी माता (कैकेयी) ने उन्हें (राम को) आदेश दिया, तो (उसे मानकर) शंख-भरे समुद्र से घिरी धरती का सारा राज्य अपने छोटे भाई को देकर वे यहाँ आये हैं।

---

१. यह कहानी पुराण में प्रसिद्ध है कि दक्षयज्ञ के समय शिवजी ने दक्ष को मारकर उसके यज्ञ का विध्वंस किया था और उस यज्ञ में आये सब देवताओं का अपमान किया था। उस समय उन्होंने पूषा (सूर्य) को तमाचा मारकर उसके दाँतों को गिरा दिया था।—अनु०

इस राघव ने, संसार को शत्रुहीन बनानेवाले, ज्वालामय परशु से युक्त उस राम के असीम बल को मिटा दिया। क्रोध करके आक्रमण करनेवाले अंधकार-सदृश क्रूर विराध को मिटा दिया।

समुद्र-जैसी सेनावाले खर आदि करुणाहीन राक्षसों के शिरों को अपने धनुष को झुकाकर (बाणों का प्रयोग कर), काट दिया। वह सब दिशाओं में रहनेवाले शत्रुओं को मिटानेवाला है। उत्तम देव शंकर आदि से भी अधिक पराक्रम से युक्त है।

हे राजन्! यह (मानव) शरीर धारण कर आया हुआ पुरुष, दिव्य देवताओं से वंदित चक्रधारी (विष्णु) ही हैं। तुम उस महानुभाव से मित्रता कर लो। यह मायामृग बनकर आये हुए राक्षस मारीच के लिए भयंकर यम बना था।

जो कबंध अपने दीर्घ करों को सब दिशाओं में फैलाकर, बड़े क्रोध के साथ सब प्राणियों का विनाश करता था, उसे मारकर, उसके भारी शरीर को गिराकर, उसी प्रकार उसको मोक्षपद में जाने दिया, जिस प्रकार उसने देवताओं के द्वारा पूजित शबरी को (मोक्ष पद) दिया था। उसकी उस महिमा का वर्णन हम-जैसे लोग किस प्रकार कर सकते हैं?

हे रविकुमार! मुनि तथा दूसरे लोग अनादिकाल से इनके आगमन के लिए अपनी-अपनी शक्ति-भर तपस्या करते रहे और कर्म-बंधन से मुक्त होकर मोक्षपद को प्राप्त कर गये। मैं कैसे उन (राम-लक्ष्मण) का बखान कर सकता हूँ?

हे प्रभो! बुद्धिहीन राक्षसराज उनकी पत्नी को माया से हरण कर भयंकर अरण्य-पथ से ले गया। उसी देवी का अन्वेषण करते हुए ये वीर, तुम्हारे सत्कर्म और तुम्हारी निष्कपटता के कारण तुम्हारी मित्रता प्राप्त करने की इच्छा से आये हैं।

हे ज्ञान-संपन्न! उनकी करुणा हमारी ओर है। हमारे प्रतापवान् शत्रु वाली की मृत्यु निकट आ गई है। अतः, उनसे सख्य करने के लिए चलो—प्रसिद्ध नीतिशास्त्रों की रीति को जानकर मंत्रणा देनेवाले (हनुमान्) ने यों कहा।

अपने सूक्ष्म ज्ञान से इस प्रकार के वचनों को ठीक-ठीक विचार कर सुग्रीव ने सब कुछ समझ लिया। फिर, यह कहकर कि हे स्वर्णपुंज-सदृश! जब तुम मेरे साथी बने हो, तब मेरे लिए कौन-सा कार्य असाध्य है? 'चलो'—यह कहकर अपने ही सदृश रहनेवाले (अर्थात्, पत्नी से वंचित) राम के चरणों के समीप आया।

सूर्यपुत्र ने प्रफुल्ल पंकज-पुष्पों से भरे, काले मेघ से ढके हुए और उदीयमान चंद्रमा से शोभित मरकत-गिरि की समता करनेवाले (राम) के उस वदन को, जो सुन्दर कुंडलों से रहित होकर भी देखने में अति मनोहर था, तथा उनके शीतल नयनों को देखा।

(सुग्रीव ने राम को) देखा। देखता हुआ देर तक खड़ा रहा और सोचने लगा कि क्या अवर्णनीय कमलासन (ब्रह्मा) की सृष्टि में रहनेवाले प्राणियों का, आदिकाल से अबतक किया हुआ, समस्त भाग्य पुंजीभूत होकर इन दोनों अत्युन्नत स्कंधवाले वीरों के आकार में उपस्थित हुआ है?

अथवा, देवों के अधिदेव आदि भगवान् (विष्णु) ने ही अपना रूप बदलकर इस अवतार में मनुष्य-रूप धारण किया है। इस कारण से मनुष्य-जन्म ने गंगाधारी जटा-

वाले शिव और ब्रह्मा प्रभृति के दिव्य जन्मों को भी जीत लिया है—यों सुग्रीव ने सोचा।

इस प्रकार सोचकर, अधिकाधिक उमड़ते हुए प्रेम-रूपी तरंगायमान समुंद्र का पार न पाता हुआ, अपने आनंदपूर्ण नयनयुग्म से उस अनघ राम को देखता हुआ उनके निकट आ पहुँचा। उस महानुभाव ने प्रेम के साथ अपने रक्तकमल-सदृश करों को पसार-कर कहा—यहाँ आकर आराम से बैठो।

जिसके चित्त ने कामना को समूल मिट दिया था, वह अनघ (राम) तथा कपिकुल के राजा (सुग्रीव), अमावास्या के दिन परस्पर मिले हुए चंद्र तथा सूर्य के सदृश थे, मानों, वे अक्षीण बलवाले राक्षस नामक अंधकार को मिटाकर पुंजीभूत धर्म को सुस्थिर रखने के लिए उपयुक्त समय पर परस्पर मिले हों।

मित्र बनकर रहनेवाले वे दोनों वीर (राम और सुग्रीव) अभिलषित कार्य की पूर्त्ति के लिए संयुक्त—पूर्व-अर्जित पुण्य एवं वर्त्तमान में किये जानेवाले प्रयत्न के समान थे और क्रूर राक्षस-रूपी पाप का उन्मूलन करने के लिए सम्मिलित हुए (आचार्यों से) श्रुत विद्या एवं यथार्थ विवेक के समान थे।

जब वे दोनों इस प्रकार आसीन हुए, तब सूर्यपुत्र ने रामचन्द्र को देखकर कहा—हे संपन्न! सब लोकों में अत्युत्तम कहलाने योग्य अनेक सद्‌गुणों से पूर्ण तुमसे मिलने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। अतः, मुझसे बढ़कर पापनाशक तपस्या करनेवाले व्यक्ति और कौन हैं? यदि स्वयं भाग्य ही कुछ देना चाहे, तो उसके लिए असंभव क्या हो सकता है?

तब राम ने कहा—हे उत्तम! दोष-रहित तपस्या से संपन्न शबरी ने कहा था कि तुम इस ऋष्यमूक पर्वत पर रहते हो। यह सोचकर कि हमारी बड़ी विपदा तुमसे दूर हो सकती है, हम यहाँ आ पहुँचे हैं। हमारा दुःख तुमसे ही दूर होगा। तब कपिकुल-नायक ने कहा—

मेरा अग्रज, मुझे छोटे भाई को मारने के लिए अपने बलिष्ठ कर को ऊपर उठाये दौड़ा और मुझे इस संसार में सर्वत्र और संसार के परे रहनेवाले तपोमय प्रदेश में भी खदेड़ता रहा। तब मैं केवल इस पर्वत को अपना दुर्ग बनाकर बच गया। यहीं पर अपने प्यारे प्राणों को रखे जी रहा हूँ। मैं आपकी शरण में आया हूँ। मेरी रक्षा करना आपका धर्म है।

तब, उस कपिकुल के राजा को कृपा के साथ देखकर, राम ने ये वचन कहे—तुम्हारे सुख-दुःखों में से जो व्यतीत हो चुके है, उन्हें छोड़कर अब आगे होनेवाले तुम्हारे सब दुःखों को मैं दूर करूँगा। अब से होनेवाले सब सुख-दुःख, तुमको और मुझे एक समान होंगे (अर्थात्, तुम्हारे सुख-दुःख मेरे सुख-दुःख होंगे)।

अब अधिक क्या कहूँ? स्वर्ग में या धरती में, तुमको दुःख देनेवाले मुझे दुःख देनेवाले होंगे। दुष्टजन ही क्यों न हों, यदि वे तुम्हारे मित्र हैं, तो मेरे भी मित्र होंगे। अब से तुम्हारे लोग मेरे लोग हैं। मेरा प्यारे बन्धुवर्ग तुम्हारे भी बन्धु हैं। तुम मेरे प्राण-समान हो।

तब वानर-सेना यह सोचकर कि अनघ (राम) के वचन सब कुलों के व्यक्तियों के लिए वेदवाक्य से भी अधिक सत्य प्रमाणित होंगे, आनन्द से कोलाहल कर उठी। अंजनि-

पुत्र की देह पुलकित हो उठी। देवता लोग पुष्प-वर्षा करने लगे। मेघ वर्षा की बूँदें बरसाने लगे।

तब अंजना का सिंह-सदृश पुत्र उठकर (राम के) चरणों पर नत हुआ और निवेदन किया—हे स्तंभ-समान पुष्ट स्कंधवाले चक्रवर्त्ती कुमार ! आपके मित्र (सुग्रीव) और आप चिरकाल तक जीते रहें। इस समय मेरी इच्छा है कि आप दोनों अपने आवास में (अर्थात्, सुग्रीव के निवास-स्थान में) चलकर आराम से रहें। आपकी इच्छा क्या है ? तब राम ने कहा—तुम्हारा विचार उत्तम है।

रविपुत्र चल पड़ा ! दोनों वीर भी चल पड़े। वानर-सिंह (हनुमान्) भी अन्य वानरों के साथ चल पड़ा। तब धर्म-देवता भी उनका अनुसरण करके चल पड़ा और आनंद के साथ उन्हें अशीर्वाद देता रहा। वे लोग पुन्नाग, नरंद आदि वृक्षों तथा कमलमय सरोवर से युक्त होने से भोग-भूमि (अर्थात्, स्वर्ग) को भी निंदित कर देनेवाले नवपुष्पों से भरे उद्यान में जा पहुँचे।

(उस उद्यान में) चंदन और अगरु के वृक्ष अधिक संख्या में थे। स्थान-स्थान पर स्फटिक-शिलाओं के वितान तने हुए थे, जो ऐसे लगते थे, मानों स्वच्छ जल ही खड़ा कर दिया गया हो। नूतन पुष्पों से पूर्ण सरोवरों के दोनों तटों पर, दिव्य सुन्दरता से युक्त वृक्षों से, जलक्रीडा करनेवाली अप्सराओं के झूले लग रहे थे—इस प्रकार की शोभा से (वह उद्यान) युक्त था।

वहाँ के रत्नों की कांति के सम्मुख सूर्यातप और चंद्र की रजत-चन्द्रिका भी उसी प्रकार प्रकाशहीन हो जाती थी, जिस प्रकार प्रगाढ शास्त्रज्ञान से युक्त विद्वानों के सम्मुख शास्त्र-ज्ञान से हीन व्यक्ति प्रकाशहीन हो जाते हैं।

इस प्रकार के सुन्दर उद्यान में, राम-लक्ष्मण तथा कपिराज एक शुद्ध पुष्पमय आसन पर आसीन होकर स्नेहालाप करने लगे।

वानरों ने फल, कंद, शाक तथा अन्य शुद्ध रसों से पूर्ण भोजन ला दिया और पवित्र प्रभु ने स्नान आदि से निवृत्त होने के उपरांत सुखासीन होकर उनका आहार किया।

इस प्रकार, भोजन समाप्त करने के पश्चात्, सत्य स्नेह से पूर्ण होकर वे सुग्रीव के साथ बैठ गये और कुछ समय तक विचार करके सुग्रीव से पूछा—क्या तुम भी गृहस्थ-जीवन के लिए अनुकूल सहायक अपनी पत्नी से वियुक्त हो गये हो ?

जब राम ने ऐसा प्रश्न किया, तब मारुति पर्वत के समान उठ खड़ा हुआ और अपने हाथ जोड़कर (राम से) निवेदन किया—हे स्थिर धर्मवाले ! इस दास को कुछ कहना है। आप सावधानी से सुनें।

वाली नामक एक असीम पराक्रमी वानर वीर रहता है जो, चतुर्वेद-रूपी समुद्र के लिए किनारे जैसे रहनेवाले, अनादि (कैलास) पर्वत पर निवास करनेवाले त्रिशूलधारी (शिव) के वर से अत्यन्त प्रबल हो गया है।

वह इतना बलशाली है कि पूर्वकाल में उसने विख्यात देवों तथा असुरों के सम्मुख

क्षीरसागर को अकेले ही इस प्रकार मथ डाला था कि घूमनेवाला मंदर पर्वत और वासुकि सर्प के शरीर घिस गये थे।[1]

पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन—इन चारों भूतों की समस्त शक्ति उस (वाली) में एकत्र हुई है। वह सप्त समुद्रों से परे स्थित चक्रवाल पर्वत से इस पर्वत तक फाँद सकता है।

कोई उसके साथ युद्ध करने के लिए उसके निकट आ जाय, तो युद्ध करने के लिए आये हुए व्यक्ति के प्राप्त वरों का अर्धभाग उस (वाली) को प्राप्त हो जाता है।

उस (वाली) के वेग के आगे पवन भी नहीं वह सकता। उसके वृक्ष में स्कंद का बरछा भी धँस नहीं सकता। जहाँ वाली की पूँछ चलती है, वहाँ रावण का अधिकार नहीं चल सकता। और, उस रावण की विजय भी उसके सामने कुछ नहीं है।

यदि वह (आक्रमण कर) उठे, तो मेरु आदि पर्वत, सब जड़ से उखड़ जायँ। उसकी विशाल भुजाओं में विशाल मेघ, आकाश, सूर्य-चंद्र और पर्वत सब छिप जायँ।

वह आदिवराह, जिसने पूर्वकाल में भूमि को अपने दंत से ऊपर उठाया था, आदिकूर्म, जो क्षीरसागर का मंथन करने के लिए उपयुक्त साधन बना था और वह नरसिंह, जिसने अपने नख से हिरण्यकशिपु का वक्ष फाड़ डाला था—वे भी उस वाली की विजयमाला-भूषित भुजाओं से संघर्ष नहीं कर सकते।

आदिशेष अपने विशाल फनों को फैलाकर, उनपर भूमि का बोझ रखे, (भूमि के) नीचे से इसकी रक्षा कर रहा है। किंतु, इस पर्वत पर निवास करनेवाला (वाली) स्वयं (इस भूमि पर) चलता-फिरता हुआ ही इस (धरती) की रक्षा करता है !

हे शक्ति तथा विजय से विभूषित ! समुद्र निरंतर गरजता है, पवन बहता है, (द्वादश) सूर्य अपने रथों पर संचरण करते हैं, तो यह सब उस (वाली) के क्रोध का लक्ष्य बन जाने के डर से ही है—अन्य किसी कारण से नहीं।

हे वदान्य ! उस वाली के जीवित रहते हुए, उसकी अनुमति के विना यम भी वानरों के प्राण-हरण करने से डरता है। अतः, पाँच सौ साठ समुद्र[2] संख्यावाले वानर, जो

---

१. तमिल में एक पुराण, कांचीपुराणम्, है। उसमें यह कथा है कि देव तथा असुर, मंदर पर्वत को मथानी, वासुकि को रस्सी तथा चंद्र को मथानी का चक्राकार आधार बनाकर क्षीरसागर को मथने लगे। किंतु, उसे मथ नहीं सके। इतने में वाली, जो नित्य विभिन्न दिशाओं के समुद्रों में जाकर संध्या आदि नित्यकर्म किया करता था, क्षीर-सागर में संध्या करने के लिए आया। देवासुरों ने उससे प्रार्थना की कि क्षीरसागर को वह मथे। तब वाली ने अकेले ही एक हाथ से वासुकि का सिर और दूसरे हाथ से उसकी पूँछ पकड़कर क्षीरसागर को मथ डाला। इस घटना का उल्लेख कंबन ने अनेक स्थानों पर किया है।—अनु०

२. एक हाथी, एक रथ, तीन अश्व और पाँच पदातियों का दल एक पंक्ति होता है। तीन पंक्तियों का एक सेनामुख होता है। तीन सेनामुखों का एक गुल्म, तीन गुल्मों का एक गण, तीन गणों की एक वाहिनी, तीन वाहिनियों की एक पृतना, तीन पृतनाओं की एक चमू, तीन चमुओं की एक अनीकिनी, दस अनीकिनियों की एक अक्षौहिणी होती है। आठ अक्षौहिणियों का एक 'एक', आठ 'एक' की एक कोटि, आठ कोटियों का एक शंख, आठ शंखों का एक विंद, आठ विंदों का एक कुमुद, आठ कुमुदों का एक पद्म, आठ पद्मों का एक देश तथा आठ देशों का एक समुद्र होता है।—शुक्रनीति

इतने शक्तिमान् हैं कि मेरु पर्वत को भी ढाहकर गिरा सकते हैं, जीवित रहते हैं।

उस (वाली) से डरकर उसके निवास-स्थान पर मेघ भी नहीं गरजते। क्रूर सिंह अपनी कंदराओं के भीतर भी नहीं गरजते। शक्तिमान् वायु इस डर से नहीं बहता कि कहीं एक छोटा पत्ता न गिर पड़े।

जब वाली ने अपनी पूँछ से बलवान् रावण की पुष्ट भुजाओं को एक साथ बाँध दिया था, तब उस (रावण) के शरीर से जो रक्त बह चला, उसने किस लोक को सिंचित नहीं किया ? (अर्थात्, सभी लोकों में रावण का रक्त प्रवाहित हो चला।)

हे पराक्रमशालिन्! इन्द्र का अनुपम पुत्र वह वाली शीतल राकाचन्द्र का-सा रंगवाला है। उसकी आज्ञा का उल्लंघन यम भी नहीं कर सकता। वह इस (सुग्रीव) का अग्रज है।

वह वाली हमारा राजा था और यह (सुग्रीव) युवराज। उस समय एक दिन विद्युत्-जैसे दाँतवाला एक करवाल-सदृश क्रूर असुर[1] हमारे कुल का शत्रु बनकर आया और वाली पर आक्रमण किया।

युद्ध करता हुआ वह असुर वाली के पराक्रम से भीत होकर भागा और यह सोचकर कि इस धरती पर सजीव रहना असंभव है, एक दुर्गम गुफा में प्रविष्ट होकर पाताल में जा छिपा।

तब क्रोध-पूर्ण वाली, सुग्रीव से यह कहकर उस गुफा में प्रविष्ट हुआ कि हे शक्तिशालिन्! मैं इस गुफा में प्रविष्ट होकर शीघ्र उस असुर को पकड़ लाऊँगा। तुम इस गुफा के द्वार की रखवाली करते रहो।

गुफा में प्रविष्ट होकर वाली चौदह ऋतुओं (अट्ठाईस मास) तक उस असुर को खोजता रहा और अंत में उसे पाकर उसके साथ युद्ध करता रहा। इधर उसका भाई सुग्रीव व्याकुल हो खड़ा रहा।

रो-रोकर व्याकुल होनेवाले सुग्रीव को देखकर हम सब वानरों ने आदर के साथ उसकी प्रार्थना की, कि हे प्रशंसनीय विजयशालिन्! राज्य करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। अतः, शासन का भार तुम अपने ऊपर लो। यह सुनकर उसने कहा—ऐसा करना अनुचित है।

फिर, यह कहकर कि मैं भी इस गुफा में प्रवेश करूँगा और यदि उस असुर ने मेरे भाई को मार दिया हो, तो मैं उसको मारूँगा, नहीं तो वहीं युद्ध में मरूँगा—सुग्रीव उस गुफा के भीतर प्रविष्ट होने लगा।

तब वाक्चतुर मंत्रियों ने उसको रोककर बहुत समझाया और उसके दुःख को कम किया। फिर, राज्य का भार इसे दिया। यह सुग्रीव उन वानरों की बात को नहीं टाल सका और किसी-न-किसी प्रकार से राज्य-भार को स्वीकार किया।

उस समय, इस विचार से कि मायावी (नामक वह असुर) कहीं फिर इस बिल से बाहर न आ जाय, हमने, मेरु को छोड़कर, अन्य सब पर्वतों को ला-लाकर उस गुफा के द्वार पर चुन दिये।

---

१. यह असुर मायावी नामक था।—अनु०

इस प्रकार, उस गुफा को सुरक्षित करके हम अरुणकिरण के पुत्र के साथ इस पर्वत पर रहने लगे। तब वाली उस मायावी के प्राण पीकर—

उन प्राणों को पीने से उत्पन्न नशे से मत्त होकर लौटा। गुफा-द्वार पर (अपने भाई को) पुकारता रहा। किन्तु, कोई उत्तर न पाकर यह सोचता हुआ कि मेरा भाई भी कैसी रखवाली कर रहा है, अत्यंत क्रुद्ध हुआ।

फिर, उस (वाली) ने अपनी पूँछ उठाई और अपने पैरों को उठाकर ऐसा आघात किया, जैसे प्रभंजन वह उठा हो। तब (गुफा के द्वार पर रखे) सब पर्वत आकाश में उड़कर समुद्र में जा गिरे।

वाली (उस गुफा से) बाहर निकलकर सबको भयभीत करनेवाले क्रोध से भरा हुआ इस पर्वत के ऊँचे शिखर पर आ पहुँचा, तब सत्य-मार्ग पर चलनेवाले और कपटहीन इस सूर्यपुत्र ने उसके समीप आकर उसके चरणों को नमस्कार किया।

प्रणाम करके वाली से सुग्रीव ने कहा—हे अग्रज! हे प्रभु! बहुत दिनों तक तुम्हारे न लौटने पर मैं बहुत चिंतित हुआ और तुम्हारे निकट आना चाहता था। किन्तु, तुम्हारी प्रजा ने इससे सहमत न होकर कहा कि राज्य पर शासन करना ही मेरा कर्त्तव्य है।

हे आभरणों से भूषित भुजावाले! प्रजा की आज्ञा मानकर, राज्यभार वहन करता हुआ मैं निर्लज्ज-सा जीवित रहता हूँ। तुम मेरे इस अपराध को क्षमा करो। सुग्रीव का कथन सुनकर वैरभाव से भरे हुए वाली ने अत्यंत क्रोध के साथ अनेक निष्ठुर वचन कहे।

बलिष्ठ भुजाओं से युक्त उस (वाली) से हम सब वानर यों डरने लगे कि हमारी आँतों में हलचल मच गई। पूर्वकाल में समुद्र को मथनेवालों ने अपने करों से सुग्रीव को मारा-पीटा, जिससे यह बहुत पीडित हुआ।

यह बहुत पीडित होकर सप्त समुद्रों के पार, ब्रह्मांड की बाहरी सीमा की दीवार पर जा पहुँचा। पीडा-हीन वाली भी पवन के समान इसके पीछे चलकर सप्त समुद्रों को सिंह के समान फाँद गया।

वायुपुत्र के इस प्रकार कहने पर, प्रभु कह उठे—अच्छा! अति वेग से पीछा करनेवाले वाली के आगे-आगे भागनेवाला सुग्रीव वाली से भी अधिक वेग से फाँद सकता था।

वीर-कंकणधारी कृपामूर्त्ति (राम) ने अपने भाई लक्ष्मण-समेत इस प्रकार आश्चर्य करते हुए फिर कहा—इन दोनों वीरों ने आगे क्या किया, सुनाओ। तब विजय से भूषित मारुति कहने लगा—

सुग्रीव मकरों से भरे सातों समुद्रों के पार चला गया। किन्तु, उस चक्रवाल पर्वत को भी, जहाँ सूर्य की रक्तिम किरण भी नहीं पहुँचती है, पारकर वह (वाली) वहाँ आ गया और सुग्रीव को पकड़ लिया।

भाई को पीडित करने के अपवाद से न डरकर उसने सुग्रीव को अपने क्रूर करों से मारने के लिए अपना हाथ ऊपर उठाया। किन्तु, सुग्रीव मौका पाकर झट वहाँ से निकल भागा।

हे प्रभु! यदि वह (वाली) क्रोध करके दाँत पीसे, तो यम को भी सुरक्षित रहने

के लिए कोई स्थान नहीं मिलेगा। तो भी (वाली के प्रति) पूर्व में दिये गये एक शाप के कारण यह (सुग्रीव) इस पर्वत पर आकर बच गया।

हे भगवन्! इसके स्वत्व को तथा दुर्लभ अमृत-समान इसकी पत्नी को भी उसने छीन लिया। यह, राज्य और पत्नी दोनों से एक साथ वंचित हो गया। यही सारा वृत्तांत है।—यों हनुमान् ने कहा।

असत्य-हीन (हनुमान्) ने जब सारा वृत्तांत कह सुनाया, तब सहस्र नामयुक्त उस अमल प्रभु के समस्त लोकों को (प्रलय-काल में) निगलनेवाले मुख का अधर फड़क उठा। नेत्र-रूपी कमल रक्तकुमुद के समान लाल हो उठे।

अनेक श्रृंगों से युक्त वेदों को अधिगत करनेवाले ब्रह्मा, पंचमुख (रुद्र) तथा अन्य देव, अपने बाहर और अन्तर में खोजकर भी जिसे पा नहीं सकते, वह भगवान् यदि अपने सुन्दर पद-कमलों को दुखाकर और उन्हें अधिक लाल करते हुए इस धरती पर अवतीर्ण होता है, तो यह धर्म की रक्षा तथा अधर्म का विनाश करने के लिए ही तो है?

करुणाहीन विमाता के कहने पर जिस प्रभु ने अपने स्वत्वभूत राज्य को, रत्न-भूषित पुष्ट भुजावाले अपने भाई को दे दिया, वे यह सुनकर भी कि एक निष्ठुर व्यक्ति ने अपने कनिष्ठ भ्राता की पत्नी का अपहरण किया है, कैसे चुप रह सकते हैं?

प्रभु ने सुग्रीव से कहा—चौदहों भुवनों के सब प्राणी भी उस (वाली) के प्राणों को बचाने के लिए आये, तो भी मैं अपने धनुष से प्रयुक्त शर से उसे मार दूँगा और तुम्हारे राज्य के साथ तुम्हारी पत्नी को भी तुम्हें दिला दूँगा। हे विज्ञ! दिखाओ, वह कहाँ रहता है।

यह सुनकर सुग्रीव (बहुत आनन्दित हुआ), मानों वह महान् आनन्द-रूपी समुद्र की बड़ी-बड़ी तरंगों के उमड़ उठने से, दुःख-रूपी समुद्र के किनारे पर आ लगा हो। उसने यह सोचकर कि वाली की शक्ति अब समाप्त हुई, आदर के साथ (वाली-वध की) प्रतिज्ञा करनेवाले महावीर से कहा—पहले हमें कुछ विचार करना है।

उसके पश्चात् सूर्यपुत्र, विद्या, विवेक नीति, मंत्रणा आदि में कुशल हनुमान् आदि के साथ पृथक् रहकर कुछ मंत्रणा करने लगा। उस समय पवनपुत्र ने कहा—

हे शक्तिशालिन्! तुम्हारे मनोभाव को मैं समझ गया। तुम शंका कर रहे हो कि उस (वाली) को यम के मुँह में भेजने की शक्ति इन वीरों में है या नहीं। मेरे वचन को ध्यान से सुनो। फिर, वह कहने लगा—

(श्रीराम चन्द्र के) विशाल हाथों और चरणों में शंख और चक्र के चिह्न हैं। इनके जैसे उत्तम लक्षण कहीं किसी में नहीं हैं। अरुणनयन और धनुर्धारी श्रीराम, धर्म की रक्षा करने के लिए धरती पर अवतीर्ण, लक्ष्मी के वल्लभ विष्णु ही हैं।

जिन शिवजी ने लोककंटक तथा अतिशक्तिशाली त्रिपुरासुरों को अपने क्रोध की अग्नि से जला दिया था और निष्ठुर क्रोध से युक्त काल को भी अपने पद के आघात[1] से

१. इस पद्य में मार्कण्डेय के जीवन की ओर संकेत है। मार्कण्डेय शिवभक्त था, किंतु उसकी आयु की अवधि सोलह वर्ष की ही थी। जब काल उसके प्राण-हरण करने के लिए आया, तब वह शिवलिंग का आलिंगन करके शिव के ध्यान में निमग्न हो गया। काल उसको पाश से खींचने लगा, तो शिवजी ने क्रुद्ध होकर उसे पदाघात से हटा दिया और मार्कण्डेय को अमर कर दिया।—अनु०

दूर हटा दिया था, उनके हस्त के स्वर्णमय अनुपम धनुष को तोड़ देना उस विष्णु के अति-रिक्त अन्य किसी के लिए संभव नहीं था।

हे राजन्! मेरे पिता ने मुझसे कहा था—तुम इस संसार के सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा की भी सृष्टि करनेवाले भगवान् (विष्णु) की सेवा करोगे। वह सेवा ही उत्तम तपस्या है। हे तात! उससे मेरा (पिता का) भी बड़ा हित होगा। यह श्रीराम ही वह भगवान् हैं, इसका और भी एक प्रमाण है।

मैंने अपने पिता से पूछा था—तुम्हारे कथित उस भगवान् के अवतार को मैं कैसे पहचान सकूँगा? तब मेरे पिता ने कहा था—जब समस्त लोकों को विपदा उत्पन्न होगी, तब वह भगवान् अवतार लेंगे। उसे देखते ही तुम्हारे मन में उसके प्रति प्रेम (भक्ति) उत्पन्न होगा। यही उसे पहचानने का प्रमाण होगा। हे स्वामिन्! इसी वीर को देखते ही (मेरे मन में ऐसा प्रेम उमड़ा, जिससे) मेरी अस्थियाँ भी गल गईं, जिससे उनका रूप तक पहचानने में नहीं आया। फिर, और क्या शंका हो सकती है?

हे उत्तम! यदि तुम अब भी उस वीर (श्रीराम) के अपार पराक्रम की परीक्षा करके देखना चाहते हो, तो उसके लिए एक उपाय है। वह यह—अतिविशाल सप्त साल-वृक्ष, जो एक ही पंक्ति में खड़े हैं, उनको एक ही शर से वह वीर छेद डाले।

यह सुनकर सुग्रीव आनंदित हुआ और कहा—अच्छा। अच्छा। उसने अपने साथी मारुति की पर्वतों को भी लज्जित करनेवाली दोनों भुजाओं का आलिंगन कर लिया। फिर, श्रीरामचन्द्र के निकट जाकर कहा—आपसे मेरा एक निवेदन है। श्रीरामचन्द्र ने वह सुनकर कहा—कहो, क्या कहना चाहते हो? (१–८४)



अध्याय ४
सालवृक्ष-छेदन पटल

सुग्रीव, यह कहता हुआ कि इस ओर से जाना है, इधर से आइए (राम को) ले चला और (सालवृक्षों के निकट जाकर) कहा—गगन को छूनेवाले, आकाश छोटा करते हुए, शाखाओं को फैलाकर खड़े रहनेवाले सात सालवृक्षों को एक ही शर से आप छेद डालें, तो मेरे मन की व्याकुलता दूर होगी।

उस निष्कलंक (सुग्रीव) के यह कहने पर देवताओं के प्रभु (राम) उसका विचार जानकर मुस्करा उठे। फिर, अपने विशाल करों से अपने धनुष पर डोरी चढ़ाई। और कल्पना से भी दुर्ज्ञेय उन सालवृक्षों के समीप गये।

वे वृक्ष ऐसे थे कि प्रलय-काल में भी अपने स्थान से विचलित नहीं होनेवाले थे। जब सब लोक विध्वस्त हो जाते थे, तब भी खड़े रहनेवाले थे। मानों, धरती का आधार बने हुए सातों कुलपर्वत वहाँ आकर एक साथ खड़े हो गये हों।

कमल पर आसीन रहनेवाले ब्रह्मदेव भी उन वृक्षों के बारे में इतना ही कह सकता था कि 'षोडश कलावाले चंद्रमा और सहस्र किरणवाले (सूर्य) को भी उन वृक्षों के शिखरों को पार करके जाने के लिए तपस्या करनी पड़ती है। मैंने अत्युन्नत उन पर्वतों[1] के ढालों को ही देखा है।' इनके अतिरिक्त (वह ब्रह्मा भी) यह नहीं कह सकता था कि मैंने (उन वृक्षों के) पत्ते देखे हैं।

नित्य एक समान वेग से दौड़ते रहनेवाले सूर्य के रथ के घोड़े अन्यत्र कहीं अपनी थकावट मिटा पाते हों—यह हम नहीं जानते, किंतु (इतना हम जानते हैं कि) वे घोड़े आकाश में चारों ओर व्याप्त इन वृक्षों की शाखाओं के बीच से होकर जाते समय इनकी शीतल छाया में अपनी थकावट दूर कर लेते हैं।

वे वृक्ष इतने ऊँचे थे कि नक्षत्र तथा ग्रह, उन (वृक्षों) की शाखाओं में लगे पुष्पों-जैसे थे। आकाशगामी धवल चंद्रमा में जो कलंक है, वह इन वृक्षों की शाखाओं की रगड़ लगने से ही उत्पन्न चिह्न है, यों कह सकते हैं।

वे वृक्ष अनश्वर विशाल शाखा-प्रशाखाओं से युक्त होने के कारण वेदों के समान थे। स्वर्ग से भी ऊँचे थे। ब्रह्मांड की सृष्टि करनेवाले उस (ब्रह्मा) का वाहन हंस अपनी हंसिनी के साथ इन वृक्षों में ही निवास करता था।

पवन के चलने पर उन वृक्षों के सुगंधित पत्र, पुष्प, फल इत्यादि विविध वस्तुएँ धरती पर नहीं गिरती थीं, कोलाहलयुक्त विशाल आकाशगंगा में गिरती थीं और तरंगायित समुद्र में जाकर मिलती थीं।

उन वृक्षों के शिखर, चतुर्वेदों के ज्ञाता ब्रह्मा के अंडगोल से भी परे बढ़े हुए थे। अतः, वे अनंत विष्णु भगवान् की समानता करते थे। वे जल-मध्य-स्थित धरती पर जो मेरुपर्वत खड़ा है, उससे भी अधिक भारी थे।

उन वृक्षों में हीर (निर्यास) उसी प्रकार फैला था, जिस प्रकार इंद्रकुमार वाली और उसके भाई के हृदयों में परस्पर वैर फैला था। उनकी जड़ें, जल-मध्य-स्थित पृथ्वी को ढोनेवाले शेषनाग के रजत-जैसे धवल फनों को भी चीरकर नीचे चली गई थीं।

उनकी शाखाएँ सब दिशाओं को नापती थीं, जिससे देवों को यह आशंका होती थी कि कदाचित् सूर्य का मार्ग ही न रुक जाय। वे वृक्ष सूर्य-चंद्र जहाँ संचरण करते हैं, उन पर्वतों से भी (मेरुपर्वत अथवा उदयगिरि या अस्ताचल) ऊँचे थे। किसी भी दृष्टि से वे वृक्ष उनसे कम नहीं थे और एक दूसरे से अनेक योजन दूर पर खड़े थे।

अमल (श्रीराम) ने उन वृक्षों को ध्यान से देखा और दीर्घ बाण को छोड़ने के लिए धनुष की डोरी से ऐसा टंकार किया कि देवलोक और दिशाएँ बधिर हो गईं। देवों को ऐसा भय उत्पन्न हुआ, जैसा पहले कभी नहीं हुआ था।

वह टंकार-ध्वनि सब लोकों में एक समान व्याप्त हो गई। उस समय समीप में खड़े रहनेवालों की क्या दशा हुई—यह कैसे कहें? उस ध्वनि से दिग्गज मूर्च्छित हो गये और दिशाएँ व्याकुल हो उठीं। उस ध्वनि से सत्यलोक भी काँप उठा।

---

१. वे वृक्ष इतने विशाल थे कि वे पर्वत-जैसे लगते थे।—अनु०

ज्यों ही उस अरिंदम (राम) के धनुष की ध्वनि हुई, त्यों ही देवता इस भय से त्रस्त होकर भागे कि कहीं प्रलय-काल ही तो नहीं आ गया। भक्तिपूर्ण कनिष्ठ प्रभु (लक्ष्मण) ही उन (राम) के समीप दृढ खड़े रह सके। यदि दूसरे लोगों की दशा का वर्णन करने लगेंगे, तो उन सबकी बदनामी होगी।

असत्य-रहित मारुति आदि वीर यह सोचकर कि राम का शर-प्रयोग हमें अवश्य देखना चाहिए, किसी प्रकार उनके निकट आकर उपस्थित रहे। तब कुशल धनुर्धारी (राम) ने दृढ तथा दीर्घ कोदंड में लगी डोरी को भली भाँति खींचकर शर का संधान किया।

वह राम-बाण, सातों सालवृक्षों का भेदकर चला। नीचे रहनेवाले सातों लोकों को भेदकर चला। फिर, उनसे आगे सप्त-संख्या से युक्त किसी वस्तु के न होने से लौट आया। अब भी यदि वह बाण सप्त संख्यावाली किसी वस्तु को देखे, तो उसे छेदे बिना नहीं रहेगा।

सप्त समुद्र, ऊपर के सप्त लोक, सप्त कुलपर्वत, सप्त ऋषि, सप्त अश्व और सप्त कन्याएँ भी यह आशंका कर काँप उठीं कि कदाचित् सप्त संख्या का कोई भी पदार्थ इस बाण का लक्ष्य हो सकता है।

ऐसा भय होने पर भी सब लोग, श्रीराम के उस स्वभाव को जानकर स्वस्थ हुए, जो धर्म के आधारभूत सभी पदार्थों को सुरक्षित रखता है। तब सूर्यकुमार ने स्वर्णमय वीर-कंकणों से भूषित श्रीराम के चरणों को अपने शिर पर रखकर ये वचन कहे—

तुम पृथ्वी हो, आकाश हो, अन्य सब भूत हो, पंकज से उत्पन्न देव (ब्रह्मा) हो, क्षीरशायी भगवान् हो, पापों का विनाश करनेवाले सद्धर्म के देवता हो। तुमने आदिकाल में लोकों को उत्पन्न किया। अब मुझ श्वान-जैसे दास को तारने के लिए यहाँ आये हो।

हे राजाओं के अधिराज! मेरे पूर्वपुण्यों ने ही तुम्हें यहाँ लाकर मेरी सहायता की है। तुम मातृ-सदृश प्रभु के दासों का मैं दास हूँ। अब मेरे लिए सब कार्य संभव हो गये। कौन-सा कार्य अब असंभव रह गया?—इस प्रकार उस दोषहीन सुग्रीव ने कहा।

चिरकाल से दुःखी रहनेवाले सब वानर यह विचार कर कि वाली के लिए यम बननेवाले एक व्यक्ति हमें मिल गया है, आनंद-मधु का पान करके मत्त हो गये और उनकी भुजाएँ फूल उठीं। वे नाचने लगे, गाने लगे तथा यत्र-तत्र झुंडों में दौड़ने और कूदने लगे।

रामचन्द्र ने उस पर्वत पर, समुद्र-सदृश दुंदुभि के एक दूसरे पर्वत-जैसे शरीर को (अर्थात्, उसके अस्थिपंजर को) वहाँ देखा, जो रक्तहीन होने पर भी आकाश को छूता हुआ पड़ा था, मानों सारा ब्रह्माण्ड ही अग्नि में जलकर झुलस गया हो।

श्रीराम ने सुग्रीव से प्रश्न किया—यह क्या दक्षिणदिशाधिप (यम) का वाहन महिष है? या दिग्गजों में से कोई मरकर यहाँ पड़ा है? या कोई तिमिंगिल सूखकर अस्थिशेष रह गया है? असीम प्रेमयुक्त तुम, कहो। तब सुग्रीव ने दुंदुभि की कहानी सुनाई। (१-२३)

अध्याय ५
दुंदुभि पटल

दुंदुभि नामक असुर, जो शत्रु-विध्वंसक क्रोध से युक्त था, जो इतना ऊँचा बढ़ा हुआ था कि गगन तक पहुँचकर चंद्र को भी छूता था। जिसके दो सींग थे (महिषाकार था)। वह क्षीरसागर को मंदर-पर्वत के समान मथकर कालवर्ण विष्णु को ढूँढने लगा।

तब विष्णु भगवान् उसके सम्मुख आये और उससे पूछा—तू यहाँ किसलिए आया है? दुंदुभि ने उत्तर दिया—मैं तुम्हारे साथ युद्ध करने आया हूँ। तब विष्णु ने कहा—तुझ-जैसे महान् शक्तिसंपन्न व्यक्ति से युद्ध करने की शक्ति केवल नीलकंठ (शिव) में ही है।

तब वह असुर शीघ्र वहाँ से चलकर शिवजी के कैलाश को अपने सींगों से ढकेलने लगा। तब शिवजी उसके सामने आये और पूछा कि तुझे क्या चाहिए? उसने उत्तर दिया—मैं तुम्हारे साथ ऐसा युद्ध करना चाहता हूँ, जिसका कभी अंत न हो।

तब शिव ने उससे कहा—तू बड़ा दक्ष है और वीरता से युक्त है। तुझसे युद्ध करना संभव नहीं। तू देवताओं के पास जा। यह कहकर (शिवजी ने) उसे वहाँ से भेज दिया। तब उसने देवेंद्र के पास जाकर अपनी इच्छा प्रकट की। देवेंद्र ने उत्तर दिया—यदि अनेक दिन तक युद्ध करने की इच्छा है, तो तू वाली के पास चला जा।

देवेंद्र से प्रेषित होकर वह प्रसन्नतापूर्वक (ऋष्यमूक पर) आ पहुँचा और यह गर्जन करता हुआ कि हे वानरराज, आओ, मेरे साथ युद्ध करो, पर्वतों को अस्त-व्यस्त करने लगा। तब मेरा अग्रज क्रुद्ध होकर उसके साथ युद्ध करने लगा।

वे दोनों ऐसा भयंकर युद्ध करने लगे कि जब वे वेग से घूम जाते थे, तब यह पहचानना कठिन हो जाता था कि कौन कहाँ है। किसी भी लोक में न डरनेवाले वे दोनों कभी गिरते और कभी उठकर खड़े होते। उनके भयंकर युद्ध से भीत हो असुर और देवता भी उनके निकट नहीं आ पाते थे।

जब वे अपना पद भूमि पर पटकते थे, तब ऐसी आग निकलती थी, जो आकाश को छू लेती थी। उनका निनाद दीर्घ दिशाओं में सुनाई पड़ता था। उनकी उस अग्नि का धूम सर्वत्र फैल गया। जलमय समुद्र तथा महान् पर्वत भी अपने-अपने रूप को खो बैठे। (अर्थात्, जहाँ पर्वत थे, वहाँ गढे पड़ गये और समुद्र ऊपर उठ आये।)

मेघ, आकाश, विशाल समुद्र, समुद्र से घिरी पृथ्वी, सब उनके द्वारा उठाई गई धूलि से इस प्रकार आवृत हो गये कि वे अपना रूप-रंग खो बैठे। मय नामक असुर का पुत्र दुंदुभि और वाली दोनों बारह मास पर्यंत युद्ध करते रहे।

वैसा भयंकर युद्ध करते समय, विजयी वाली ने अपनी भुजाओं के बल से उस असुर के, दिशाओं में फैले हुए दोनों सींगों को उखाड़कर (उन्हीं से) उसे मारा। तब वह असुर मेघगर्जन के जैसे चिग्घार उठा।

उसके शिर पर चोट लगी। उसकी टाँगें टूट गईं। वह पर्वत की गुहा-जैसे

अपने मुख-गह्वर को खोलकर रक्त उगलने लगा। तब वाली ने उसपर ऐसा घूँसा मारा, जैसे पर्वत पर बिजली गिरी हो। उसके शब्द से ऊपर के सब लोक काँप उठे और सब दिशाएँ बहरी हो गईं।

वाली ने उसे अपने हाथों में यों उठा लिया जैसे चामर हो, और उसे घुमाने लगा। उससे (दुंदुभी का) रक्त चारों ओर छितरा गया, जिससे सब दिग्गज, जो दीर्घ दंतों तथा मद से युक्त थे, लाल हो गये।

वाली ने अपने वज्रमय करों से उस असुर को उठाकर इस प्रकार ऊपर फेंका कि मेघ-मंडल, सूर्य-मंडल तथा देवलोक को पार कर वह (दुंदुभि का शरीर) ऊपर उठ गया। फिर, उसके प्राण ऊपर चले गये और शरीर धरती पर आ गिरा।

दुर्गंध-भरित उसका शरीर गगन की ऊपरी सीमा से टकराकर फिर नीचे आ गिरा। तब करुणालु मतंग मुनि ने जो शाप दिया, वह अब मेरे लिए सहायक बना है।—इस प्रकार (सुग्रीव ने) पूरा वृत्तांत कह सुनाया।

अमल प्रभु (राम) ने सारी कथा सुनी और अपने युद्ध-कुशल भाई (लक्ष्मण) से कहा—हे वीर! इस शव को तुम दूर फेंक दो। लक्ष्मण ने अपने पैर के अगूँठे से उसे उठाकर फेंका। तब वह अस्थिपंजर पुनः एक बार सत्यलोक तक जाकर नीचे आ गिरा।

उस समय कपि-समूह मुँह खोलकर वज्र के समान गरज उठा। जब श्रीराम उद्यान में लौटकर आये, तब सुग्रीव ने राम से कहा—हे प्रभु! मेरा आपसे एक निवेदन है। (१-१५)



अध्याय ६

आभरण-दर्शन पटल

पहले एक दिन, हम (वानर) इस स्थान पर बैठे थे, तब पापी रावण एक स्त्री को (अपहरण करके) लिये जा रहा था, न जाने वह आपकी पत्नी ही थी या अन्य कोई स्त्री। वह स्त्री दूर आसमान पर से इस वन की ओर देखकर विलाप कर उठी थी।

कदाचित् यह विचार करके कि उसके आभरण दूत का काम देंगे, ताटंकों तक फैले हुए नयनोंवाली उस नारी ने अपने आभरणों को एक वस्त्र में बाँधकर वर्षा के समान नयन-जल के साथ धरती पर गिरा दिया। हमने उस (आभरणों की गठरी) को अपने हाथों से पकड़ लिया।

हे वदान्य! हमने उन्हें सुरक्षित रखा है। हम आपके पास उन्हें ला देंगे। आप देखकर समझें (कि वे सीता के ही हैं या नहीं)।—ये वचन कहकर घृत-मिश्रित दूध-जैसे सख्यवाले उस (सुग्रीव) ने आभरणों को अपने हाथ से लाकर दिखाया।

देवी सीता के आभरणों को (रामचन्द्र ने) भली भाँति देखा। उस समय

रामचन्द्र की क्या दशा हुई, उसका वर्णन हम कैसे कर सकते हैं ? हम यह नहीं कह सकते कि उनका शरीर जलती आग में गिरे मोम-जैसा पिघल उठा। और यह भी नहीं कह सकते कि उन्होंने अपने प्राणों को शक्ति देनेवाले अमृत का पान किया।

देवी के स्तनों को विभूषित करनेवाले वे आभरण उनको उन (आभरणों) से युक्त स्तनों-जैसे ही दिखाई पड़े। कटि के आभरण कटि ही जैसे दिखाई पड़े। अन्य अंगों पर धारण किये जानेवाले आभरण अन्यान्य अंग ही जान पड़े। अब उन आभरणों से और अधिक क्या प्राप्त हो सकता था ?

क्या यह कहूँ कि (रामचन्द्र की) खोई हुई सुधि को वे आभरण वापस लाये ? या यह कहूँ कि उन (आभरणों) ने उनके प्राणों को आहत किया ? या यह कहूँ कि वे शरीर पर लगाये चंदन-लेप के समान शीतल लगे ? या यह कहूँ कि उन आभरणों ने उन्हें जला ही दिया ? क्या कहूँ ?

सीतादेवी के वे आभरण (रामचन्द्र के) नासिका-आघ्राण के लिए सुरक्षित पुष्प बने। कंधों पर धारण करने के लिए उत्तरीय वस्त्र बने। उनपर (स्वर्ण और मणियों की) कांति के फैलने से चंदन-लेप बने तथा उनकी देह को आवृत करने से वे (आभरण) उनकी सुन्दर चादर बन गये।

उन (रामचन्द्र) के दोनों अरुण नयनों से जो अश्रुजल बहा, उसमें सब वस्तुएँ बह चलीं। रोमांच ने उनकी देह को ढक दिया। फूली हुई भुजाएँ, स्वेद से भर गईं या यह कहूँ कि ताप से तप्त हो उठीं। उस समय की उनकी दशा का मैं क्या वर्णन करूँ ?

राम की देह में ऐसी वेदना उत्पन्न हुई, मानों उसमें विष व्याप्त हो गया हो, जिससे वे दीर्घकाल तक, श्वास के साथ अपनी सुध भी खोकर (मूर्च्छित हो) पड़े रहे। तब उन विशाल-नयन को सुग्रीव ने सँभाल लिया। तब उसके शरीर पर के रोम (राम की देह में) चुभ गये।

सुग्रीव ने रामचन्द्र को सँभालकर बिठाया। उनके दुःख से स्वयं भी संतप्त होकर द्रवितचित्त हुआ और अश्रु बहाने लगा। वह यह कहकर विलाप कर उठा कि—हे पुष्ट कंधोंवाले ! मुझ पापी ने उन आभरणों को देकर आपके प्राणों को हरा है।

हे श्रुति-शास्त्र-निपुण ! इस ब्रह्मांड से भी परे जाकर हम आपकी देवी का अन्वेषण करेंगे। हम अपना पराक्रम दिखाकर आपकी उत्तम पत्नी को ला देंगे। आप क्यों व्याकुल होते हैं ?

लक्ष्मी के समान, और दिव्य सतीत्व से युक्त उस देवी को भय-विकंपित करनेवाले उस निष्ठुर पापी (रावण) की बीस भुजाएँ तथा दस शिर, आपके एक शर के लिए भी पर्याप्त लक्ष्य नहीं बन सकेंगे। सातों लोक भी क्या आपके एक बाण का लक्ष्य बनने की योग्यता रखते हैं ?

आप यहीं रहें। मैं अपने पराक्रम से चौदहों भुवनों में प्रवेश करूँगा और वहाँ देवी का अन्वेषण करूँगा। मेरी छोटी सेवा को भी देखिए मैं किस प्रकार आपकी पत्नी को यहाँ ले आता हूँ।

हम आपका आदेश पूरा करनेवाले आपके तुच्छ साथी हैं। यह आपका अनश्वर पराक्रमी अनुज भी यहाँ उपस्थित है। हे पुरुषश्रेष्ठ ! यदि आपमें इतना बल है, तो क्या त्रिलोक भी आपकी आज्ञा का उल्लंघन कर सकता है? आप क्यों अपने को छोटा समझते हैं?

उत्तम जन, बड़े होने पर भी अपनी महिमा को स्वयं नहीं बताते। संसार उनके कार्य को ही देखता है। धर्म ही आपके रूप में साकार बना है, आपके अतिरिक्त और धर्म क्या है? आपके लिए असाध्य क्या है? इतने पर भी आप क्यों शोक-उद्विग्न होते हैं?

हे संशयहीन वचनवाले ! पंकजभव (ब्रह्मा), कार्त्तिकेय के पिता एवं कोमलांगी को अपने वाम भाग में धारण करनेवाले (शिव) तथा चक्रधारी (विष्णु)—ये तीनों एक साथ मिलकर आपकी समता कर सकते हैं। पृथक्-पृथक् होने पर वे भी आपकी समता नहीं कर सकते।

हे उज्ज्वल धनुष धारण करनेवाले ! मेरे छोटे-से अभाव की पूर्त्ति अब नहीं तो पीछे भी आप कर सकते हैं (अर्थात् , वाली का वध पीछे ही हो)। पहले हम उन दुःखी देवी को मुक्त करके लायेंगे। इस प्रकार सुग्रीव ने कहा—

उष्णकिरण के पुत्र के यह कहने पर लक्ष्मी-अंकित वक्षवाले (श्रीराम), किसी-न-किसी प्रकार मूर्च्छा त्यागकर संज्ञा प्राप्त कर सके और अपने अश्रुसिक्त मनोहर नयनों को खोलकर स्नेह के साथ (सुग्रीव को) देखा ; फिर कहने लगे—

पर्वत-सदृश उन्नत भुजाओंवाले ! मुझ पापी के इस उज्ज्वल धनुष को हाथ में रखकर जीवित रहने पर भी, उस (जानकी) ने अपने आभरण उतारकर फेंक दिये। क्या ताटंकधारिणी, पतिव्रता नारियों में इस प्रकार करनेवाली अन्य कोई स्त्री भी थी? (अर्थात् , नहीं।)

उधर, करवाल-सदृश दीर्घ नयनोंवाली (जानकी) मेरे आगमन की प्रतीक्षा करती हुई व्याकुल बैठी है। इधर मैं बड़े-बड़े पर्वतों और सरोवरों में भटकता हुआ, उसके आभरणों के साथ रोता हुआ व्यर्थ समय व्यतीत कर रहा हूँ। डोरीवाले इस दीर्घ धनुष को ढोने पर मुझे लज्जित होना चाहिए।

यदि कोई किसी नारी का अपमान कर दे, तो राह चलनेवाले व्यक्ति भी उस अपमान करनेवाले को रोकेंगे और उनसे युद्ध करके अपने प्राण भी त्याग देंगे। मैं तो, अपने-आप पर भरोसा रखकर जीवित रहनेवाली (सीता) के दुःख को भी दूर नहीं कर रहा हूँ।

मेरे कुल में ऐसे राजा उत्पन्न हुए हैं, जिन्होंने समुद्र खोदा था। जिन्होंने व्याघ्र और हरिण को एक ही घाट पानी पिलाया था। किन्तु, उसी वंश में उत्पन्न हुआ मैं ऐसा हूँ कि आभरण-धारिणी अपनी पत्नी को दुःख-मुक्त करने का भी सामर्थ्य मुझमें नहीं है।

मेरे पिता ने उस (शंबर नामक) असुर को, जो यमराज के लिए दुर्निवार था और जो त्रिलोक-कंटक था, मिटाकर देवेन्द्र का दुःख दूर किया था। उनका पुत्र होकर जनमा हुआ मैं, अपने धनुष के साथ, अत्यन्त पीडा देनेवाले क्रूर अपवाद को भी ढो रहा हूँ।

सब से प्रशंसनीय महिमा से युक्त मेरे पिता का सत्य-व्रत यदि टूट जाय, तो उससे बड़ा अपवाद होगा—यह विचार करके मैंने राज्य-मुकुट धारण नहीं किया। अब यहाँ इक्षुरस-सदृश बोलीवाली (पत्नी) के शत्रु से अपहृत होने का सबसे बड़ा अपवाद मुझे प्राप्त हुआ है। अपवाद-मुक्त मैं कब हुआ?

राम, इस प्रकार के वचन कहकर वर्णनातीत दुःख से मूर्च्छित हो गये। उनकी वेदना को देखकर सहस्रकिरण के पुत्र ने उन्हें सांत्वना दी और उन्हें दुःख-सागर के तट पर लाकर खड़ा किया।

(तब राम ने सुग्रीव से कहा—) हे मित्र! तुम्हारे वचनों से मेरा दुःख शांत हुआ। नहीं तो क्या मैं जीवित रह सकता था? मेरे लिए मृत्यु से बढ़कर हितू अन्य कोई नहीं है। अपवाद-मुक्ति के लिए वही कर्त्तव्य है (अर्थात्, मर जाना ही भला)। फिर भी, जबतक मैं तुम्हारे दुःख को दूर न करूँ, तबतक मैं मृत्यु को नहीं अपनाऊँगा।

राघव ने इस प्रकार कहा। इसी समय अतिबली मारुति ने (राम को) नमस्कार किया और कहा—हे उन्नत पर्वत-सदृश कंधोंवाले! मुझे कुछ निवेदन करना है। आप ध्यान से सुनने की कृपा करें।

हे अपने आज्ञाचक्र को सर्वत्र चलानेवाले! क्रूरकर्मी वाली का वध होना चाहिए। सूर्यपुत्र को राजा बनाना चाहिए और फिर बड़ी सेना का संगठन करना चाहिए। तभी भयंकर आयुधधारी राक्षसों के निवास-स्थान को ढूँढकर हम वहाँ जा सकते हैं। अन्यथा, यह कार्य असंभव है।

हे भ्रमरों से संकुल पुष्पमालाधारी! राक्षसों का निवास धरती पर है? कहीं पर्वतों में है? अंतरिक्ष में है? इनसे पृथक् नागलोक में है?—अल्पशक्तिवाले नर-जन्म[1] में उत्पन्न होने के कारण हम यह निश्चित रूप से नहीं जान सकते कि उनका निवास कहाँ है।

वे राक्षस पलमात्र में किसी भी लोक में जा सकते हैं। वहाँ अपने अभिलषित किसी भी पदार्थ को ग्रहण कर सकते हैं। किसी विपदा के समान ही वे अकस्मात् आ गिरते हैं और फिर लौट जाते हैं। अतः, उनके निवास को पहचानना आसान नहीं है।

एक ही समय में सर्वत्र जाकर सीता का अन्वेषण करना है। यदि एक-एक करके सब दिशाओं में ढूँढ़ने लगेंगे, तो उसमें बड़ी कठिनाई होगी। धरती अनंत रूप में फैली है और अन्वेषण में असंख्य वर्ष लग जायँगे।

सत्तर 'धारा' संख्यावाली वानर-सेना युगांत में उमड़नेवाले सागर के समान सर्वत्र फैल जायगी। समुद्र को पी डालना हो, ब्रह्मांड को उठाना हो, आज्ञा पाने पर वह सेना सब कुछ कर सकेगी।

अतः, हे नीतिज्ञ! यही उचित होगा—(कि पहले वाली-वध हो, फिर सीता का अन्वेषण हो)—यों हनुमान् ने कहा। तब उस सद्गुणागार प्रसिद्ध धनुर्धारी ने कहा—चलो, वाली के निवास-स्थान पर जायेंगे। फिर, वे सब चल पड़े।

---

१. वानर भी नर के जैसे होते हैं, अतः नर-जन्म शब्द से वानर-जन्म को भी लिया गया है।—अनु०

(सुग्रीव, उसके चार मंत्री, राम और लक्ष्मण) वे सब ऐसे चले, जैसे भयंकर नेत्रवाला एक शरभ (सुग्रीव), दो पराक्रमी व्याघ्र (नल और नील), शीघ्र गतिवाले दो गज (हनुमान् और तार) तथा दो सिंह (राम और लक्ष्मण) जा रहे हों। साल, हरे-भरे तमाल, ऐला, कदली, आम्र, नाग आदि वृक्षों से होकर पर्वत के सानु-मार्ग पर वे चले।

उस मार्ग में हरिणनयनोंवाली वानरियों के झूले लगे थे। जहाँ झूले नहीं थे, वहाँ हवा में स्पंदित होनेवाले पत्रों से शोभायमान चंदन के वृक्ष लगे थे। जहाँ चंदन के वृक्ष नहीं थे, वहाँ मेघों से आवृत सानु-प्रदेश थे। जहाँ वैसे सानु-प्रदेश नहीं थे, वहाँ सुरभिमय चंपक-उद्यान थे। जहाँ वैसे चंपक-उद्यान नहीं थे, वहाँ स्वर्ण से भरे टीले थे।

धर्म-स्वरूप वे दोनों (राम-लक्ष्मण) वानर-वीरों के साथ उस पर्वत-मार्ग में कहीं उतरते, कहीं चढ़ते हुए जा रहे थे। उनके मुखर वीर-वलय अपार शब्द करते थे। उस शब्द को सुनकर सोये पड़े रहनेवाले मेघ भी मानों जग जाते थे और आकाश में उड़ जाते थे।

मेघ ऊँचे आकाश में उड़ रहे थे। झरने झर रहे थे। पुन्नाग-वृक्षों से भरित सानुओं में फनवाले सर्प इनकी आहट पाकर हट जाते थे। मत्तगज इधर-उधर बिखर जाते थे। सिंह भाग जाते थे। सोतों में विचरण करनेवाली मछलियों के साथ जल-सर्प भी त्वरित गति से जाकर छिप जाते थे और व्याघ्रों के साथ काले मुखवाले लंगूर भी भाग जाते थे।

जब मदमत्त गज ढालों पर के वृक्षों से टकराते थे, तब वज्रमय काले रंगवाले अगरु और चंदनवृक्ष टूटकर लुढक जाते थे, जिससे (उनपर लगे हुए) मधु के छत्ते बिखर जाते थे और उनसे मधु बह चलता था, उस मधु के कारण उस विकट पर्वत-मार्ग पर चलना कठिन हो रहा था।

वहाँ चमकनेवाले रत्नसमुदाय, अपनी कांति को गगन तक फैला रहे थे और ऐसे लगते थे, मानों पर्वत पर अग्नि-ज्वाला फैल रही हो। स्वर्णमय टीलों की कांति इस प्रकार फैल रही थी, मानों उस अग्नि-ज्वाला को बुझाने के लिए जल-धाराएँ बह रही हों।—उन धनुर्धारियों के मार्ग पर ऐसा दृश्य उपस्थित हो रहा था।

उस पर्वत पर के सब जलस्रोतों में आकाश-गंगा बहती थी। जलाशयों के मीन आसपास के वृक्षों पर झपटते थे। जल-स्रोत नदियों पर झपटते थे। हाथी एक दूसरे पर झपटते थे। पक्षी शालि के पौधों पर झपटते थे और लंगूर वृक्ष-शाखाओं पर झपटते थे।

स्वर्गवासियों को भी आकृष्ट करनेवाली ऐला की सुगंधि से युक्त वे पर्वत-शिखर मधु के बहने के कारण पिच्छिल हो गये थे। उनपर जल के बहने से गगन के नक्षत्र भी फिसल जाते थे। आकाश में दिखाई पड़नेवाला इन्द्र-धनुष भी फिसल जाता था। धवल चंद्र-बिंब फिसल जाता था और अंतरिक्ष में संचरण करनेवाले ग्रह भी फिसल जाते थे।

इस प्रकार के पर्वत-मार्ग से चलनेवाले वे सब वीर दस योजन चलकर वाली के निवासभूत उस पर्वत के निकट पहुँचे, जो ऐसा था, मानों स्वर्णमय स्वर्ग ही उतर आया हो। फिर, वे अपने कर्त्तव्य का विचार करने लगे। (१-४२)

अध्याय ७

वाली-वध पटल

उस समय, शत्रु-विजयी राम ने विचार कर तथा अपने निर्णय को उचित मानकर सुग्रीव से कहा—तुम जाकर वाली नामक उस अनुपम क्रूर विष के साथ युद्ध करो। उस समय मैं अलग एक स्थान पर रहकर (वाली पर) शर का प्रयोग करूँगा। यही मेरा निश्चित विचार है।

रामचन्द्र का वचन सुनते ही गगनगामी रथवाले (सूर्य) के पुत्र ने ऐसा बड़ा गर्जन किया कि उस शब्द को सुनकर तरंगों से पूर्ण जलधि भयभीत हो उठी। नीले मेघ लज्जित हो गये। भूमि के निवासी थरथराकर भागने लगे। स्वर्गवासी व्याकुल हुए। वह गर्जन ब्रह्मांड-भर में गूँज उठा।

सुग्रीव किष्किन्धा के निकट जा पहुँचा। अपना ओंठ चबाता हुआ उसने गर्जन के साथ वाली के प्रति यह कहा—यदि तुम युद्ध करने के लिए आओगे, तो मैं तुम्हारे प्राण हर लूँगा। यह कहकर वज्र के समान शब्दों में धमकी देता हुआ, पैर पटकता हुआ और भुजाओं को ठोंकता हुआ वह खड़ा रहा। यह ध्वनि किष्किन्धा में सोये हुए वाली के कानों में जाकर पड़ी और उसके वाम अंग फड़क उठे।

पर्यंक पर मानों एक क्षीरसमुद्र ही लेटा हो, यों पड़े हुए वाली ने सुग्रीव के गर्जन की उस महान् ध्वनि को सुना, जैसे हिंस्र सिंह ने किसी मत्तगज का चिंघाड़ सुना हो।

पर्वत-सदृश कंधोंवाला वाली, अपने भाई को युद्ध करने के लिए आया हुआ जानकर हँस पड़ा। उसकी उस हँसी से चौदहों भुवन तथा दिशाओं के परे रहनेवाले प्रदेश भी काँप उठे।

ऊँची तरंगों से पूर्ण समुद्र प्रलय-काल में उमड़ उठा हो, उसी प्रकार वाली सत्वर उठा। तब उसके भार से वह पर्वत धँस गया। उसकी बाँहों के हिलाने से जो हवा उठी, उससे समीपस्थ पर्वत ढह गये।

उसका शरीर रोमांचित हो उठा। तब उसके रोओं से चिनगारियाँ निकल पड़ीं। उसके नेत्र यों आग उगलने लगे कि वडवाग्नि की आँखें भी उसकी तीव्रता को देखकर अंधी हो जायँ। उसके श्वास से धुआँ ऐसा उठा कि वह देवलोक के भी ऊपर पहुँच गया।

वाली ने हाथ से ताल ठोंका। उसे सुनकर दिशाओं के रक्षक गज भी मदरहित हो गये। वज्र शक्ति-हीन हो गये। ऊपर के लोक थरथरा उठे। धरती पर स्थिर खड़े हुए पहाड़ भी ढह गये।

वाली का यह शब्द कि, 'मैं आ गया, मैं आ गया'—पूर्व आदि अष्ट दिशाओं में गूँज उठा। वह उठ खड़ा हुआ। तब उसके मणिमय किरीट के स्पर्श से नक्षत्र झड़ पड़े।

उसके चलते समय हवा बड़े वेग से वह चली, जिससे पर्वत-समूह जड़ से उखड़

गये और दिशाओं की सीमा पर जा गिरे। उसके श्वेत रोमों से निकली हुई चिनगारियाँ ब्रह्मांड की भित्ति पर छा गईं। यम भी उन चिनगारियों को देखकर त्रस्त हो उठा। अन्य देवता लोग व्याकुल हुए।

वाली के दाँतों के पीसने से जो अग्नि-कण निकले, वे वर्षाकाल में बिजलियों-जैसे सर्वत्र झड़ पड़े। उसके अत्युत्तम भुजा-वलयों के रत्न इस प्रकार चूर-चूर हो झड़ पड़े, जैसे विद्युत् ही झड़ रही हो।

वह सर्वभयंकर (वाली) उस कालाग्नि की समता करता था, जो प्रलय-काल में पृथ्वी, चारों दिशाओं के समुद्र और देवलोक तथा सृष्टि के कारणभूत तत्त्वों को जला देती है। वह उस (वाली) के द्वारा मथे गये क्षीरसागर से उत्पन्न हलाहल की भी समता करता था।

उस समय, अमृत-सदृश, वाँस के जैसे कंधोंवाली 'तारा' नामक स्त्री (वाली की पत्नी), उसके मार्ग में आ खड़ी हुई। वाली के नेत्रों से निकलनेवाली चिनगारियों से उस (तारा) के लंबे केश झुलस गये।

हे पर्वतवासी कलापी! मुझे मत रोको। हटो। जिस प्रकार क्षीरसागर का मंथन करके मैंने अमृत निकाला था, उसी प्रकार युद्ध का आह्वान देनेवाले सुग्रीव के बल को मथकर उसके प्राणों का पान करूँगा और शीघ्र लौट आऊँगा—यों वाली ने कहा। तब उसकी पत्नी ने कहा—

हे विजयी प्रभु! वह (सुग्रीव) पूर्व-जैसा नहीं है। तुम्हारी पुष्ट भुजाओं की शक्ति से आहत होकर वह भागा था। अब उसे नई शक्ति कुछ नहीं मिली है। अपना यह जन्म छोड़कर कोई दूसरा जन्म भी उसने नहीं पाया है। फिर भी, वह पुनः युद्ध करने के लिए आया है। अवश्य ही उसे कोई बड़ा सहायक मिल गया है।

अंतहीन तीनों लोकों के रहनेवाले समस्त प्राणी भी यदि एक साथ मिलकर मुझसे युद्ध करने के लिए आयें, तो भी सब मुझसे हार जायँगे। इसके जो कारण हैं, उन्हें तुम सुनो—

मंदर-पर्वत को मथानी, वासुकि सर्प को रस्सी, चक्रधारी (विष्णु) को कटावदार खोरिया, चंद्र को आधार (लकड़ी का वह तख्ता, जो मथानी को खंभे से लगाये रखता है) बनाकर इन्द्र आदि देवता तथा उनके शत्रु असुर, क्षीरसागर को मथने लगे थे।

किंतु, उस मथानी को घुमाने की शक्ति उनमें नहीं थी, इसलिए वे थक गये। तब मैंने उन्हें देखा और स्वयं क्षीरसागर को मथ डाला एवं उन्हें अमृत निकालकर दे दिया। ऐसी मेरी शक्ति को, हे कलापी-सदृश रूप तथा कोकिल-सदृश कंठ से युक्त रमणी! क्या तुम भूल गई हो?

युद्ध में मुझसे अनेक देव और असुर हार गये हैं। उनकी संख्या मैं कैसे बताऊँ। यम भी मेरा नाम सुनकर थरथरा उठता है। ऐसा होने पर भी यदि कोई मेरे शत्रु (सुग्रीव) की सहायता करने के लिए आया हो, तो—

वह बुद्धिहीन है। यदि मेरे साथ युद्ध करने के लिए कोई आ भी जाय, तो

वरदान के प्रभाव से उनके बल का अर्धांश मुझे मिल जायगा। अतः, कोई मेरे साथ क्या वैर कर सकता है? तुम निश्चिन्त रहो।—यों वाली ने तारा से कहा।

यह सुनकर उस (तारा) ने कहा—हे प्रभु! अपने हितचिन्तक लोगों से मैंने सुना है कि राम नामक व्यक्ति उस (सुग्रीव) का प्राण-मित्र बन गया है। अब वही तुम्हारे प्राणहरण करने के लिए आया है।

तब वाली ने तारा से कहा—हे पापिन! तुमने यह कैसा वचन कहा? वह महाभाग (राम) पुण्य-पाप रूपी द्विविध कर्मों का अंत न देखकर, दुःखी होकर पुकारने-वाले प्राणियों को अपने आचरण के द्वारा धर्म का स्वरूप दिखाता है। ऐसे व्यक्ति के प्रति तुमने अनुचित वचन कहे। स्त्री-सुलभ अज्ञान के कारण तुमने कैसा अपराध कर दिया।

इहलोक और परलोक, दोनों लोकों के फलों का विचार रखनेवाले उस महाभाग के लिए, तुम्हारा कथित यह कार्य क्या शोभा देनेवाला होगा? ऐसा करने से उनको लाभ ही क्या होगा? सब प्राणियों की रक्षा करनेवाला वह अपूर्व पदार्थ धर्म ही क्या स्वयं अपना नाश कर लेगा?

विशाल संसार के राज्य को प्राप्त करके जिसने अपनी माता की सपत्नी के कहने से उस राज्य को अपार आनन्द के साथ उसके पुत्र को दे दिया, उस प्रभु की स्तुति करना छोड़कर तुम (उनके संबंध में) इस प्रकार के निंदा-वचन कहने लगी?

यदि सारे लोक एक साथ मिलकर सामना करने आयें, तथापि उनपर विजय पाने के लिए, उस (राम) के भयंकर कोदण्ड के अतिरिक्त अन्य किसी की सहायता आवश्यक नहीं है। वह प्रभु जिसकी समता करनेवाला वही है, अन्य कोई नहीं है, क्या क्षुद्रकार्य करनेवाले एक मर्कट (अर्थात्, सुग्रीव) के साथ मित्रता करेगा?

मेरे भाइयों के अतिरिक्त मेरे अन्य प्राण नहीं हैं—ऐसी भावना रखकर चलने-वाला तथा कृपापूर्ण समुद्र-जैसा वह प्रभु (राम), क्या मैं जब अपने भाई के साथ युद्ध करता रहूँगा, तब बीच में मुझपर बाण-प्रयोग करेगा?

तुम कुछ समय तक यहीं ठहरो। मैं एक पल में उस वैरी (सुग्रीव) के प्राण पीकर, उसके साथियों को भी मिटाकर लौट आऊँगा। व्याकुल मत हो।—यों वाली ने कहा। इसके पश्चात् सुरभित केशोंवाली तारा डर से कुछ नहीं कह सकी और मौन रह गई।

वाली, युद्ध के उत्साह से सत्वर ऊँचा बढ़ गया। उसकी बलशाली भुजाएँ देवलोक की सीमा से भी ऊपर उठ गईं। अपने कंधे-रूपी दो पर्वतों के साथ, प्रकृति के वैभव से संपन्न उस पर्वत पर से वह इस प्रकार निकला, जिस प्रकार प्राची के पुरातन पर्वत पर सूर्य उदित होता है।

अपने पुष्ट कंधों से मनोहर और महान् पर्वत की समता करनेवाला वाली, क्रूर हिरण्यकश्यप के निर्देश पर बड़े स्तंभ से प्रकट होनेवाले महान् नरसिंह-जैसे उस पर्वत के एक भाग से ऐसे निकला कि देखनेवाले सभी मन में काँप उठे।

गर्जन करनेवाले अपने अनुज को देखकर वह (वाली) भी गरज उठा। उसके गर्जन से भीत होकर स्वेद से भरे हुए मेघों से वज्र गिरे। उस गर्जन की ध्वनि सभी लोकों

में इस प्रकार व्याप्त हो गई, जिस प्रकार कालवर्ण पर्वत-सदृश विष्णु के चरण हों, जो लोकों को नापने के लिए बढ़ गये थे।

उस समय, रामचन्द्र ने अपने प्रिय भाई (लक्ष्मण) से कहा—हे तात ! भली भाँति ध्यान से इसे देखो। दानवों और असुरों को रहने दो, सारे संसार में कौन समुद्र ऐसा है, कौन मेघ ऐसा है, कौन पवन ऐसा है, अथवा कौन-सी ऐसी भयंकर प्रलयाग्नि है, जो इसकी देह की समता कर सके ?

तब उस महाभाग को देखकर अनुज (लक्ष्मण) ने उत्तर में कहा—यह (सुग्रीव) अपने ज्येष्ठ भ्राता के प्राणों का हरण करने के लिए यम को बुला लाया है। वानरों के लिए सहज, निंदा रहित युद्ध यह नहीं कर रहा है। यही बात मेरे मन में खटकती है।[1] इसके अतिरिक्त मैं और कुछ भी सोच नहीं पा रहा हूँ।

अशांत मन से (लक्ष्मण ने) फिर कहा—हे वीर ! धर्म के विरुद्ध विश्वासघाती कार्य करनेवालों पर विश्वास करना हितकारी नहीं है। यह (सुग्रीव) किसी शत्रु के समान, अपने भाई को ही मारने के लिए सन्नद्ध खड़ा है। भला यह पराये लोगों का सहायक किस प्रकार बन सकेगा ?

तब रामचन्द्र कहने लगे—हे तात ! सुनो, इन विवेकहीन मृगों के चारित्र्य के संबंध में कुछ कहना ठीक नहीं है। यदि सभी माताओं के गर्भ से उत्पन्न कनिष्ठ पुत्र अपने बड़े भाइयों के अनुकूल ही आचरण करनेवाले होते, तो भरत अत्यंत उत्तम सहोदर कैसे कहलाता ?

प्रकाशमान पर्वत-सदृश मनोहर कंधोंवाले ! यथार्थ यह है कि (इस संसार में) संपूर्ण रूप से धर्माचरण करनेवाले बहुत कम लोग हैं। विरुद्ध आचरण करनेवाले (अधार्मिक) व्यक्ति अनेक हैं। अतः, हम जिनसे मिलते हैं, उनमें विद्यमान सद्गुणों का ही ग्रहण करना चाहिए। सर्वथा निर्दोष कहलाने योग्य व्यक्ति (संसार में) कौन है ?—यों राम ने कहा।

वे पराक्रमी वीर (राम-लक्ष्मण) जब आपस में इस प्रकार के वचन कह रहे थे, तब रथ पर संचरण करनेवाले (सूर्य) का पुत्र और इन्द्र का पुत्र—दोनों, जो धरती पर चलने-फिरनेवाले महान् हिमाचल के जैसे थे, एक दूसरे से ऐसे टकराये, जैसे दो भारी दिग्गज हों।

जैसे एक पर्वत के निकट दूसरा पर्वत आ गया हो, वैसे ही वे दोनों परस्पर समीप हो गये। जैसे हिंस्र तथा विजयी दो सिंह, एक दूसरे से लड़ने के लिए खड़े हों, वे दोनों वैसे ही लगते थे। वे दोनों, अनेक बार एक दूसरे के दाईं और बाईं ओर चक्कर लगाने लगे, जिस प्रकार दृढ बाहुओंवाले कुम्हार के द्वारा घुमाया गया चाक हो।

समीप आये हुए दो ग्रहों के समान स्थित वे दोनों, क्रोधाविष्ट होकर, परस्पर की भुजाओं से टकरा उठे। उनके पैर, जिनके भार से यह पुरातन धरती धँसी जा रही थी,

---

१. भाव यह है—लक्ष्मण को यह बात खटक रही है कि सुग्रीव धर्म-युद्ध नहीं कर रहा है, बल्कि बाली को मारने के लिए रामचन्द्र को ले आया है।—अनु०

परस्पर रगड़ा उठे, जिससे अग्निकण निकलकर अंतरिक्ष में ऐसे उड़ चले, जैसे उज्ज्वल विद्युत्-खंड उड़ रहे हों।

अत्यधिक भुजबल से युक्त, एक ही माता से उत्पन्न तथा एक ही मुग्धा स्त्री के लिए लड़नेवाले वे दोनों, (उनके शरीरों पर) फैली हुई रक्त रेखाओं से शोभित, उज्ज्वल नेत्रोंवाली सुन्दरी तिलोत्तमा के लिए लड़नेवाले प्राचीन काल के सुन्द-उपसुन्द नामक दो राक्षसों के जैसे लगते थे।

एक समुद्र को दूसरे समुद्र से लड़ते हुए, भूमि की रक्षा करनेवाले मेरुपर्वत को दूसरे मेरुपर्वत से लड़ते हुए, क्रोध को स्वयं दो रूप धारण कर आपस में युद्ध करते हुए, हमने कभी नहीं देखा है। अतः, इस संसार में उन बलवानों (वाली-सुग्रीव) के भयंकर युद्ध के लिए कोई उपमान भी हम नहीं दे सकते।

उन वानरों के नायकों (वाली-सुग्रीव) के नयनों से जो अग्नि-ज्वालाएँ उठीं, उनसे मेघ जल गये, पहाड़ जल गये, दिग्गज काँप उठे, धरती के चारों प्रकार के प्रदेश[1] अस्त-व्यस्त हो गये, अंतरिक्ष में रहनेवाले देवता दूर भागकर कहीं छिप गये।

देखनेवाले यह सोचकर विस्मय करते थे कि ये (वाली-सुग्रीव) अंतरिक्ष में हैं, ऊँचे पर्वत पर हैं, भूमि पर हैं, चारों दिशाओं की सीमाओं पर हैं अथवा हमारे नयनों में ही हैं, वे कहाँ खड़े हैं? (अर्थात्, वे दोनों इतनी त्वरित गति से लड़ रहे थे कि यह विदित नहीं होता था कि वे कहाँ खड़े हैं)। इस प्रकार, वे दोनों वानर एक दूसरे को मुष्टि से आहत करते थे और दाँतों से काटते थे, जिससे क्षत उत्पन्न होकर रक्त वह चलता था।

दसों दिशाओं में स्थित सातों समुद्र एक साथ गरज उठें, तो उनके उस गर्जन से भी पाँचगुना अधिक था उन दोनों वानर-नायकों का गर्जन-घोष। एक दूसरे की बड़ी भुजाओं और वक्ष पर वे तीव्र मुष्टि-प्रहार करते थे, तो उससे उत्पन्न शब्द युगांत के मेघों के गर्जन की समानता करता था।

वे बलवान् वीर एक दूसरे पर झपटकर अपने कराल दाँतों से काटते थे। तब उनके क्षतों से बहकर रक्त सब दिशाओं में छितरा जाता था, जिससे अंतरिक्ष के सब नक्षत्र मंगल-ग्रह के समान हो गये—(मंगल-ग्रह रक्त कांति से चमकता है, उसी प्रकार अन्य नक्षत्रों की कांति भी रक्त वर्ण हो गई)। बादल भी लाल आकाश-जैसे दीखने लगे।

जिस प्रकार अत्यधिक तपाये गये लौह-खंड को बड़े हथौड़े से मारने पर चिनगारियाँ छिटक उठती हैं, उसी प्रकार इन्द्र-पुत्र (वाली) की भुजाओं द्वारा रवि-पुत्र (सुग्रीव) के वक्ष पर दीर्घ करों का आघात होने से चिनगारियाँ निकल रही थीं।

वे दोनों एक दूसरे को छाती से ढकेलते, टाँगों को फैलाकर लात मारते, बड़े वेग के साथ हाथों से मारते, काटते, खड़े होकर टकरा जाते, पेड़ों से पीटते हुए चिल्लाते,

---

१. तमिल-साहित्य में चार प्रकार के प्रदेशों का वर्णन होता है, जिन्हें मुल्लै, कुरिंजी, मरुदम और नेयिदल कहते हैं। जो क्रमशः अरण्य-भूमि, पर्वतीय स्थान, खेती से भरी समतल भूमि और समुद्र-तट का प्रदेश होते हैं, पाँचवें प्रदेश पालै, अर्थात्, मरुभूमि का भी उल्लेख होता है। किंतु, वहाँ प्राणियों का निवास न होने से कदाचित् प्रस्तुत प्रसंग में उसे नहीं लिया गया है। —अनु०

शिलाओं को उखाड़कर एक दूसरे के शिर पर फेंकते और धमकी देकर डराते। ऐसे घूरते कि आँखों से चिनगारियाँ निकल पड़तीं।

वे एक दूसरे को पकड़कर ऊपर उठाते, दूर फेंक देते, फिर समीप आकर अपना वक्ष फुलाकर दिखाते। मुष्टि का ऐसा प्रहार करते कि हाथ शरीर में गड़ जाता। अति वेग से लट्टू के समान दायें और बायें पैंतरे बदलते, एक दूसरे को रोककर खड़े हो जाते, पीछे हटते, (परस्पर की) भुजाओं को बंधन में बाँधकर नीचे गिर जाते।

कभी पूँछ से एक दूसरे के वक्ष को बाँधकर ऐसे खींचते कि उनकी हड्डियाँ भी चूर-चूर हो जातीं। अपनी टाँग से दूसरे की टाँग को उलझाकर कष्ट देते। फिर, कुछ ढील देते। जैसे भाला तानकर मारा हो, ऐसे ही अतिदृढ तीक्ष्ण नखों से परस्पर की देह को चीर देते, जिससे शरीर का चर्म ऐसा फट जाता, जैसे पर्वत की कंदरा हो।

धरती में गड़े हुए पर्वत, वृक्ष तथा दृष्टि में पड़नेवाले सभी पदार्थों को वे अपने बलवान् हाथों से उखाड़-उखाड़कर फेंकते थे और उनसे आघात करते थे, जिससे वे (पर्वत, वृक्ष आदि) टूटकर कुछ अंतरिक्ष में अदृश्य हो जाते और कुछ समुद्र में जा गिरते।

उस युद्ध में कोई किसी से हारा नहीं। दोनों उग्र युद्ध-जन्य उमंग से मत्त होकर लड़ रहे थे। उनके श्वेत रोमों से रक्त वर्ण अग्नि-कण निकल रहे थे, जैसे सूखी घास से भरी भूमि पर आग फैल रही हो। (उस भयंकर युद्ध को देखकर) देवता भी भय से व्याकुल हो उठे, तो अब उस युद्ध के बारे में और क्या कहा जाय?

जब इस प्रकार वे दोनों बड़े पराक्रम से लड़ रहे थे, तब दीर्घ तथा पुष्ट भुजाओं तथा शत्रुध्वंसकारी पराक्रम से युक्त वाली ने सुग्रीव को अपने भयंकर नखों तथा करों से ऐसे मारा, जैसे सिंह हाथी को मारता है।

तब रविकुमार (सुग्रीव) बहुत पीडित हो उठा और श्रीराम के पास गया। तब रामचन्द्र ने उससे कहा—दुःखी मत होओ। मैं तुम दोनों में कोई अंतर नहीं देख सका। अब तुम वनपुष्पों की माला पहनकर जाओ—यों कहकर उन्होंने सुग्रीव को दुबारा भेजा। सुग्रीव फिर जाकर वाली से युद्ध करने लगा।

सुग्रीव, जिसके शिर पर की पुष्पमाला ऐसी थी, मानों उज्ज्वल नक्षत्रों की गुँथी हुई माला हो, अपने गर्जन से भयंकर व्याघ्र और मेघ-गर्जन को भी चकित करता हुआ त्वरित गति से आया और शत्रु-विनाशक वाली को मुक्कों से मार-मारकर त्रस्त कर दिया।

तब वाली मन में आशंकित हुआ। वह क्रोध के साथ इस प्रकार घूरा कि यम भी उससे डर गया। वह मंदहास कर उठा। फिर, अपने दृढ हाथों और पैरों से सुग्रीव के मर्म-स्थानों में आघात किया, जिससे वह मूर्च्छित हो गया।

सुग्रीव अपने निःश्वासों के साथ प्राण भी उगलने लगा। उसके कानों और नेत्रों से अग्नि-ज्वालाओं के साथ रक्त की धारा भी बह चली। तब सूर्यपुत्र (सुग्रीव) चारों दिशाओं में व्याकुल होकर देखने लगा और इन्द्रपुत्र (वाली) गर्व से आगे बढ़कर अधिकाधिक प्रहार करने लगा।

(फिर) वाली ने, यह सोचकर कि इसे धरती पर पटककर मार दूँगा, अपने

भाई की कटि और कंठ में अपने करों को डालकर ऊपर उठा लिया। इतने में रामचन्द्र ने एक बाण लेकर अपने धनुष पर चढ़ाया और उसकी डोरी के साथ अपने हाथ को भी पीछे खींचकर (बाण को) छोड़ दिया।

वह शर जल, जल के कारणभूत अग्नि, वेगवान् वायु, नीचे की पृथ्वी—इन चारों भूतों के बल से युक्त हो वाली के वक्ष को उसी प्रकार छेदकर चला, जिस प्रकार भली भाँति पके हुए कदली फल को सूई छेद देती है। अब और कहने को क्या शेष रह गया ?

वह वाली, जिसने भुजबल से रहित हुए अपने अनुज (सुग्रीव) पर करुणा-रहित होकर, दृढ भूमि पर पटककर उसे मार डालना चाहा था, (राम का शर लगते ही) अत्यन्त व्याकुल हुआ और युगांत के प्रभंजन के लगने से जिस प्रकार मेरुपर्वत जड़ से उखड़कर गिरता हो, उसी प्रकार गिर पड़ा।

वज्र के आघात से उखड़े हुए पर्वत के समान, धरती पर गिरे हुए, युद्ध में शत्रु-भयंकर वाली ने, सूर्य-पुत्र (सुग्रीव) को पकड़े हुए अपने हाथों को शिथिल कर दिया। किंतु उग्र शर, जो उसके प्राणों को पकड़े हुए था, उसे वह ढीला नहीं कर सका।

विजयशील महावीर (राम) का वह अमोघ बाण उस (वाली) के वलिष्ठ वक्ष में जा लगा। वाली ने उस बाण को (अपने वक्ष को छेदकर पीठ की ओर से) बाहर निकल जाने के पहले ही अपने वलिष्ठ हाथ से पकड़ लिया और अपनी पूँछ और पैरों से उसे बाँधकर रोक लिया। (उसके उस बल को देखकर) विजयी यमराज भी शिर हिलाने लगा (अर्थात्, यम भी वाली की प्रशंसा करने लगा।)

वाली कभी यह विचार कर कि मैं उछलकर अंतरिक्ष रूपी ढक्कन से टकराकर उसे चूर-चूर करके गिरा दूँगा, ऊपर उछलता। कभी यह विचार कर कि एक उड़द के लुढ़क जाने के समय के भीतर ही (अर्थात्, क्षणार्ध में) समस्त दिशाओं को विध्वस्त कर दूँगा, आगे लपकता। कभी यह विचार कर कि पृथ्वी को समूल खोद डालूँगा, नीचे गिर जाता। कभी यह सोचने लगता कि मेरे वक्ष में घुस जानेवाले ऐसे (तीक्ष्ण) बाण का प्रयोग करनेवाला कौन है ?

वह धरती पर अपने हाथों को पटकता। चारों ओर आँख उठाकर यों घूरता कि उनसे चिनगारियाँ निकल पड़तीं। उस उग्र बाण को अपने दोनों हाथों से पकड़कर पूँछ और पादों से दृढतापूर्वक खींचता। लेकिन, उस शर के न निकलने से अत्यंत पीडित होता। फिर, पर्वत के समान लुढ़क जाता।

वह यों शंका करता कि (उस शर का प्रयोग करनेवाले) कदाचित् कोई देवता ही हैं; फिर यह सोचता कि ऐसा कार्य करने की शक्ति क्या उन देवताओं में है ? तो यह अन्य कौन है ?—यह विचार कर हँसने लगता। कभी यह कहता कि यह ऐसे व्यक्ति का ही कार्य होगा, जो त्रिदेवों की समता करता है।

मेरे वक्ष में लगा हुआ यह क्या (विष्णु का) चक्र ही है ? या नीलकंठ (शिव) का त्रिशूल है ? यदि उनमें से कोई नहीं है, तो क्या पर्वतों को ध्वस्त करनेवाले प्रसिद्ध इन्द्र

के आयुध वज्र में इतनी शक्ति है कि वह मेरे वक्ष में प्रवेश कर सके ? यह क्या है ?—इस प्रकार सोच-सोचकर वाली व्यथित होता।

अति वेग से अपने वक्ष में धँस जानेवाले उस शर को देखकर वाली यह सोचता हुआ आश्चर्य करने लगता कि यह वाण एक धनुष से प्रयुक्त हुआ हो, यह असंभव है। तब क्या ऋषियों ने मंत्रों के प्रभाव से इसे प्रयुक्त किया है ? फिर, दीर्घकाल तक अपने दाँतों को पीसता रहता।

अब उसे यह ज्ञात हुआ है कि यह एक शर ही है। अनेक शंकाएँ करते रहने से क्या प्रयोजन है ? प्राणों के साथ मेरे वक्षःस्थल को छेद डालनेवाले इस अनुपम शर को दोनों हाथों, पूँछ और पैरों से निकालकर इसे प्रयुक्त करनेवाले वीर का नाम जान लूँगा—(अर्थात्, शर पर लिखे नाम को पढ़कर उसके प्रयोक्ता को जान लूँगा)—यों विचार कर वह बाण को निकालने लगा।

अत्यधिक दृढता से युक्त मनवाले तथा अत्यन्त व्याकुलता से भरे सिंह-समान वाली ने उस शर को पकड़कर थोड़ा खींच लिया। वह दृश्य देखकर देवताओं, असुरों तथा अन्य लोगों ने विस्मय में पड़कर अपनी भुजाओं को फुला लिया। वीरों के प्रति विस्मय भी न दिखावे, ऐसे कौन होंगे ?

उस समय (वाली के वक्ष से) जो रक्त-प्रवाह हुआ, वह जंगलों और ऊँचे पर्वतों को लाँघकर वह चला, मानों वह समुद्र में जाकर मिलने के लिए ही वहा हो। क्या उसका ऐसा वर्णन करना उचित हो सकता है कि वह (रक्त-प्रवाह) ऊँची तरंगों से पूर्ण समुद्र-जैसे गर्जन करता हुआ, सब लोकों को पार कर उमड़ चला ?

सुरभित पुष्पहारों से भूषित (वाली) के वक्ष-रूपी पर्वत से बहनेवाले शब्दायमान रक्तप्रवाह को देखकर, सहोदरत्व-रूपी बंधन से बँधा हुआ उसका भाई सुग्रीव, अपनी पीली आँखों से प्रेमाश्रु बहाता हुआ धरती पर गिर पड़ा।

मेरु को तोड़ने की शक्ति से युक्त वह यशस्वी (अपने शरीर से) निकाले हुए शर को अपने विशाल तथा बलवान् हाथों में लेकर पहले यह सोचा कि मैं इसे तोड़ दूँगा। किन्तु, फिर यह कहता हुआ कि मेरे प्रयत्न करने से भी यह बाण टूटनेवाला नहीं है, उसपर अंकित नाम को देखने लगा।

जो तीनों लोकों के लिए मूलमंत्र है, जो उसका जप करनेवालों को स्वयं को ही (अर्थात्, अपने वाच्य भगवान् को ही) पूर्ण रूप से दे देता है, जो इसी जन्म में सातों प्रकार की (योनियों[1] में जन्म लेने की) व्याधियों से मुक्ति देनेवाला औषध है, उस अनुपम महिमामय राम शब्द को वाली ने अपनी आँखों से देखा।

गृहस्थ-धर्म का त्याग कर (वनवास में) आये हुए तथा मेरे जैसे व्यक्ति के लिए अपने कुल-क्रमागत धनुर्युद्ध के धर्म को भी छोड़नेवाले, ऐसे वीर के उत्पन्न होने के कारण, वह सूर्यवंश भी, जिसने वेद-प्रतिपादित धर्म को कभी नहीं छोड़ा था, आज सनातन धर्म से

---

१. सात योनियाँ—मनुष्य, देवता, पशु, पक्षी, रेंगनेवाले प्राणी, स्थावर और जलचर।—अनु०

रहित हो गया।—यों विचार कर वह (वाली) हँस पड़ा और फिर मन में लज्जा से भर गया।

बड़ी पीडा से शिथिल हो पड़ा हुआ वह वाली, जो एक बड़े गड्ढे में गिरे हुए बलवान् मत्तगज के समान था, मन में लज्जा से भरकर अपने किरीट-भूषित शिर को झुकाता, अट्टहास करता, फिर (मौन हो) सोचता और विचार करता कि क्या इस प्रकार शर का प्रयोग करना धर्म हो सकता है ?

यदि सब (लोकों) के प्रभु (राम) ही धर्म से च्युत हो गये, तो निम्न व्यक्तियों का स्वभाव कैसा होगा ? मेरे विषय में उस प्रभु ने अन्याय कर दिया है।—ऐसे वचन मुँह से बोलनेवाले उस (वाली) के सम्मुख वे रामचन्द्र आ उपस्थित हुए, जो वेद-प्रतिपादित सत्य और क्षत्रियों के लिए विहित प्राचीन धर्म को अस्खलित रूप में सुरक्षित रखने के लिए अवतीर्ण हुए थे।

वाली ने अपनी आँखों के सामने उस विष्णु के अवतार (राम) को देखा, जो ऐसा था, मानों वर्षाकालिक नीलजलद-धनुष को धारण किये, अपने पार्श्व में विकसित कमल-वन (लक्ष्मण) के साथ, धरती पर उतर आया हो। उस (वाली) ने अपनी आँखों से, घावों से बहनेवाले रुधिर के सदृश ही रक्तवर्ण अग्नि-कणों को निकालते हुए राम को देखा और कहा—'तुमने क्या सोचा ? क्या किया ?' फिर उनकी निंदा में कहने लगा—

सत्य तथा कुल-धर्म की रक्षा करने के लिए अपने उत्तम प्राणों को भी छोड़नेवाले उदारगुण एवं पवित्रात्मा (दशरथ) के हे पुत्र ! तुम भरत से पूर्व (अर्थात्, भरत का बड़ा भाई होकर) जनमे। यदि दूसरों को बुरा काम करने से रोककर स्वयं बुरा काम करो, तो क्या वह पाप नहीं माना जायगा ? संसार के लिए मातृ-वात्सल्य के साथ मित्रता तथा धर्म का भी निर्वाह करनेवाले (हे राम) ! कहो तो।

उत्तम कुल तुम्हारा है। श्रेष्ठ विद्या तुम्हारी है। विजय तुम्हारी है। उचित सत्कर्म तुम्हारे हैं। त्रिभुवन का नायकत्व भी तुम्हारा ही है न ? बल तुम्हारा। इस संसार की रक्षा करनेवाली महिमा भी तुम्हारी। तो भी सबको विस्मृत-सा करके, उस सारी महिमा को विनष्ट करनेवाला ऐसा कार्य करना क्या तुम्हारे लिए उचित है ?

हे चित्र में अंकित करने के लिए दुष्कर सौंदर्य से विशिष्ट ! तुम्हारे कुल के सब लोगों के लिए क्षत्रिय-धर्म स्वत्व बना हुआ है न ? तो अब क्या तुम अपने प्राण-समान, हंसिनी-तुल्य, जनक की पुत्री, जो तुम्हें अमृत के सदृश प्राप्त हुई थी, उस देवी को खोकर अपने कर्त्तव्य में भी भ्रांत हो गये हो ?

यदि राक्षस तुम्हारा अहित करें, तो उसके बदले, उनसे भिन्न एक वानर-राजा को मार दो—क्या यही तुम्हारे मनु-धर्मशास्त्र में लिखा है ? दया नामक गुण को तुमने कहाँ खो दिया ? मुझमें तुमने कौन-सा दोष देखा ? हे तात ! तुम्हीं यदि ऐसे अपयश का भाजन हो जाओगे, तो यश को धारण करनेवाला और कौन होगा ?

हे कृपामय ! उदारचरित ! शब्दायमान समुद्र से आवृत पृथ्वी पर दौड़ते, उछलते रहनेवाले वानरों के मध्य ही क्या कलिकाल आ गया है ? क्या सत्कर्म तथा उत्तमशील अब

बलहीनों के पास ही रहने योग्य हो गये हैं ? यदि बलवान् लोग नीच कार्य करेंगे, तो उससे क्या उन्हें अपयश न होकर सुयश प्राप्त होगा ?

हे (युद्ध में) किसी की सहायता की अपेक्षा न रखनेवाले वीर ! पिता से दिये गये ऐश्वर्य को उसी समय अपने भाई का स्वत्व बनाकर तुम वनवास के लिए आये। इस प्रकार नगर में तुमने एक (विलक्षण) कार्य किया, किंतु मेरे अनुज को यह राज्य देकर वन में तुमने एक दूसरा ही कार्य किया, इससे बढ़कर भी क्या कोई कार्य हो सकता है ? (यहाँ वाली व्यंग्य करता है।)

मुखर वीर-वलय तथा विजयमाला को धारण करनेवाले वीर लोग जो भी काम करते हैं, वह वीरों के योग्य ही तो माना जायगा। सब पुरातन शास्त्रों के प्रभु बने हुए तुमने यदि मेरे विषय में ऐसा क्षुद्र कार्य किया है, तो हे क्रोधरहित ! अब लंकाधिप के अधर्म-कृत्य पर तुम कैसे क्रोध कर सकते हो ?

जब दो व्यक्ति युद्ध करने में निरत हों, तब उन दोनों को समान रूप से न देखकर यदि एक पर दया दिखाओ और दूसरे पर आड़ में खड़े होकर अपने दृढ धनुष को भली भाँति झुकाकर तीक्ष्ण बाण को मर्म-स्थान में प्रयुक्त करो, तो क्या यह धर्म है अथवा और कुछ है ? जैसे भी हो, ऐसा पक्षपात अनुचित है।

(तुम्हारे इस कार्य में) वीरता नहीं है। (शस्त्र में) विहित विधि भी नहीं है। वह सत्य में सम्मिलित होनेवाला कार्य भी नहीं है। तुम्हारा स्वत्व बनी हुई इस पृथ्वी के लिए मेरा यह शरीर भारभूत भी नहीं है। मैं तुम्हारा शत्रु भी नहीं हूँ। तो, सद्गुण का त्याग कर ऐसा दया-रहित कार्य तुमने क्यों किया ?

द्विविध कर्मों (इस लोक के और परलोक के लिए हितकारी कर्म) का भली भाँति विचार करके, सबके लिए (अर्थात्, शत्रु, मित्र और तटस्थ—तीनों प्रकार के लोगों के लिए) समान रूप से उत्तम कार्य करना ही तो धर्म की रक्षा है और उसी में महत्त्व है। अन्यथा पक्षपात से एक को सहायता पहुँचाना क्या धर्म माना जा सकता है और क्या ऐसा करके कोई अपने को दोष से मुक्त रख सकता है ?

तुम्हारी रक्षा को दूरकर (सीता का) अपहरण करनेवाले शत्रु (रावण) को विनष्ट करने के लिए यदि तुम किसी दूसरे की सहायता पाना चाहते हो, तो तुम्हारा यह कैसा प्रयत्न है कि काले मेघ-जैसे हाथी के प्राण पीनेवाले, क्रोध से उमड़नेवाले सिंह को छोड़कर, तुम एक मगर को अपना साथी बना रहे हो ?

विश्व में विचरण करनेवाले चंद्र में प्राचीन काल से ही कलंक लगा है, कदाचित् यह देखकर ही सूर्य के वंश में तुमने जन्म लेकर उस वंश के लिए भी एक अमिट कलंक उत्पन्न कर दिया है।

युद्ध के लिए किसी दूसरे के आह्वान करने पर मैं यहाँ आया था। तुमने छिपकर मेरा प्राण-हरण किया। अब जब मैं धरती पर गिरा हूँ, तब तुम दूसरों की दृष्टि में सिंह बनकर यहाँ आ खड़े हुए हो। वाह !

हे प्रतापी वीर ! शास्त्र-विधान की, अपने वंश के पितृ-पितामहों के शील तथा

स्वभाव की रक्षा किये बिना, तुमने (मुझे निहत करके) वाली को नहीं, किंतु राजधर्म की बाड़ को ही गिरा दिया है।

किसी ने तुम्हारी पत्नी का हरण किया, तो तुमने किसी दूसरे पर हाथ उठाया। तुम्हारे हाथ का भार बना हुआ यह धनुष वीरता के लिए कलंक है। तुम्हारी धनुर्विद्या की प्रवीणता, क्या सामने न आकर आड़ में खड़े होकर एक निःशस्त्र के वक्ष में शर छोड़ने के लिए ही है ?

यों अपने दाँतों को पीसता हुआ और अपनी आँखों से चिनगारियाँ निकालता हुआ वाली बोला। तब उसके सामने खड़े हुए महावीर (राम) कहने लगे—

जब तुम (मायावी का पीछा करते हुए) गुहा के भीतर गये थे और अनेक दिनों तक नहीं लौटे थे, तब दुःखी होकर सुग्रीव भी उसी गुहा में जाना चाहता था। उसे देखकर तुम्हारे कुल के बुद्धिमान् वृद्धों ने समझाया कि हे स्वर्णहार-भूषित (सुग्रीव) ! हमारी बात सुनो। अब तुम्हारा राजा बनना ही उचित है।

इसपर सुग्रीव ने कहा—मेरे ज्येष्ठ भ्राता वाली को मायावी ने मारकर वीर-स्वर्ग का शासन दिया है, अतः मैं उस मायावी को उसके परिवार-सहित मिटा दूँगा। या स्वयं प्राण-त्याग करूँगा। मैं जीवित रहकर राज्य करना नहीं चाहता। आपके वचन मेरे लिए योग्य नहीं हैं।

तब उत्तम सेनापतियों और सर्वज्ञ तथा अनुभवी वृद्धों ने उसका मार्ग रोककर समझाया—तुम्हारा राज्य करना ही सब प्रकार से उचित है। तब उस दोषहीन (सुग्रीव) ने विजय-किरीट धारण किया।

वह (सुग्रीव) तुम्हें लौट आया देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने तुम्हें नमस्कार कर निवेदन किया—हे प्रभु, यह तुम्हारा राज्य है, जिसका भार वृद्धों ने मुझपर हठ करके रखा है। इस प्रकार, गर्वरहित सुग्रीव ने पूर्व-घटित सारा वृत्तांत तुमसे निवेदन किया था। किंतु तुम उसपर क्रुद्ध हुए और—

उसको निरपराध जानकर भी उसपर तुमने दया नहीं की। जब वह तुमसे यह प्रार्थना कर रहा था कि मैं तुम्हारी शरण में हूँ, मेरे अपराध को क्षमा करो, तब भी उसको क्षमा न करके तुमने बड़े क्रोध के साथ उसे मारा-पीटा।

बल-समृद्ध सुग्रीव, यह कहकर कि मैं तुम्हारे साथ युद्ध में पराजित हो गया हूँ, अपने शिर पर हाथ जोड़े खड़ा रहा, किंतु तुम उसके प्राण यम को सौंप देना चाहते थे। तब वह चारों दिशाओं में भागने लगा था।

उसे उस प्रकार भागते जानकर भी तुमने उसपर दया नहीं की। यह विचार न करके कि वह तुम्हारा अनुज है, तुम उसका पीछा करने लगे। फिर मुनि के शाप से सुरक्षित पर्वत (ऋष्यमूक) पर जब सुग्रीव चला गया, तब तुम वहाँ से हटे।

दया, कुलीनता, वीरता, विद्या और उसके द्वारा प्राप्त नीति—इन सबका प्रयोजन तो यही है कि पर-नारी के शील की रक्षा करे।

यदि स्वच्छ विवेकवाला भी यह सोचकर कि मैं बड़ा बलवान् हूँ, अपने मन को

कुमार्ग पर चलाये और बलहीनों पर क्रोध करे, तो वह वीरधर्म से च्युत हो जाता है। ऐसे ही यदि कोई पर-पुरुष की सुरक्षित शीलवाली स्त्री के चारित्र्य को मिटाता है, तो वह भी धर्म से च्युत होता है।

धर्म क्या है?—तुमने यह नहीं सोचा। इहलोक तथा परलोक के फलों (यश और पुण्य) का विचार भी नहीं किया। यदि तुमने यह सोचा होता, तो क्या अधर्मता के साथ अपने छोटे भाई की प्राण-समान पत्नी की संगति प्राप्त करते?

इन कारणों से, तथा उस सुग्रीव के मेरे प्राणसम मित्र होने से, मैंने तुम्हारे प्राण हरण किये। इतना ही नहीं, पराया होने पर भी, बलहीनों के दुःख को दूर करना ही मेरा ध्येय है।

तुम्हारा यही अपराध है। जब अतिसुन्दर महावीर राम ने इस प्रकार कहा, तब अनुचित कार्य करनेवाला वाली फिर कहने लगा—तुम्हारा यह कथन मेरे लिए लागू नहीं होता। क्योंकि, हम वानरों के लिए अपनी इच्छा के अनुकूल कार्य करना कुछ अधर्म नहीं होता।

वाली ने कहा—हे प्रभु! पातिव्रत्य धर्म तथा उसके अनुकूल अन्य सद्गुणों से युक्त कर्म, तुम्हारे असत्य-रहित कुल की स्त्रियों के लिए, कमलभव (ब्रह्मा) ने जिस प्रकार विवाह का विधान किया है, उसी प्रकार हमारे कुल की स्त्रियों के लिए नहीं किया। किंतु, हमारे यहाँ जब जैसा संयोग मिले, तब वैसा ही संबंध करने का विधान है।

हे शत्रुओं की मज्जा तथा घृत से लिप्त चक्रायुध धारण करनेवाले! हमारा मन जैसा चाहता है, वैसा ही हमारा आचरण भी होता है। इसके अतिरिक्त, हम वानरों के लिए वेद-प्रतिपादित विवाह का कोई विधान नहीं है। कुल-परंपरागत गुण भी हममें वहीं होते।

मुझे जीतनेवाले हे विजयशील! यही हमारे कुल की रीति है। अतः, मैंने अपने कुल-धर्म के अनुसार कोई पाप नहीं किया है। यह तुम समझ लो। वाली के यह कहने पर रामचन्द्र ने उत्तर दिया—

तुम उत्तम गुणवाले देवों के पुत्र बनकर उत्पन्न हुए हो और शाश्वत धर्म-मार्ग के ज्ञाता हो। तुम मृग नहीं हो। अतः, विजय-मालाओं से भूषित रहनेवाले तुम-जैसे वीर के लिए ऐसा कार्य अनुचित ही है।

क्या धर्म, पंचेंद्रियों के वशीभूत शरीर से ही संबंध रखता है? क्या वह विषयों का विवेचन करनेवाले विवेक से संबंध नहीं रखता है? तुमने तो (शरीर से वानर होने पर भी विवेक से) धर्म के महत्त्व को भली भाँति जाना है। अतः, क्या पापकर्म करना तुम्हारे लिए उचित है?

वह गजेंद्र भी जन्म से मृग-जाति का ही तो था, जिसने एक मगर से ग्रस्त होकर शंखधारी विजयशील भगवान् (विष्णु) को पुकारा था और अपने अनुपम विवेक के कारण मोक्ष-पद प्राप्त किया था।

मेरे पितृ-तुल्य वह जटायु भी तो एक गृद्ध ही था, जिसने धर्म-मार्ग में अपने मन

को निरत रखकर स्वर्ण-कंकण-धारिणी लक्ष्मी (-सदृश सीता) के दुःख को दूर करने के प्रयत्न में भयंकर युद्ध किया था और इस संसार से मुक्ति प्राप्त की थी।

पशुओं का स्वभाव ऐसा होता है कि वे भले और बुरे के विवेक से हीन रहकर जीवन व्यतीत करते हैं। किंतु, तुम्हारे मुख से निकले वचन ही बता रहे हैं कि चिरंतन धर्म का ऐसा कोई मार्ग नहीं है, जिसे तुमने नहीं जाना हो।

यह उचित है, यह अनुचित है—इस प्रकार का विवेक किसी व्यक्ति में भी न हो, तो वह भी पशु ही होता है। यदि कोई पशु भी मनु के बताये मार्ग पर चले, तो वह देव-तुल्य हो जाता है।

तुमने यम के प्रभाव को भी मिटा देनेवाले, परशु धारण करनेवाले शिव के प्रति जो भक्ति की थी, उसी के फलस्वरूप, विष्णु के द्वारा सृष्ट चार महाभूतों की शक्ति प्राप्त की थी।

जन्म से नीच कहे जानेवाले, धर्म-मार्ग पर चलनेवाले, निष्पाप तपस्या करनेवाले, अनेक गुणों से युक्त देवता तथा पाप-कृत्य करनेवाले—इन सब लोगों में भी बुरे आचरण करनेवाले होते हैं।

अतः, किसी भी कुल में उत्पन्न व्यक्ति की महत्ता या क्षुद्रता उसके कार्य से ही होती है। यह जानते हुए भी तुमने अन्य की पत्नी के शील को मिटाया—इस प्रकार, मनु-नीति पर दृढ रहनेवाले (राम) ने कहा।

(रामचन्द्र का) यह कथन सुनकर कपियों के राजा वाली ने राम से पूछा—हे प्रभु! ऐसी बात है, तो तुम को युद्ध-क्षेत्र में आकर मुझसे युद्ध करते हुए बाण छोड़ना चाहिए था। किंतु, ऐसा न करके, कहीं छिपकर धनुष से शर का प्रयोग तुमने क्यों किया?—इस प्रश्न का उत्तर लक्ष्मण देने लगा।

तुम्हारा भाई (सुग्रीव), पहले ही उन (राम) की शरण में आ गया था। तब उन्होंने उसे यह वचन दिया था कि नीति से भ्रष्ट हुए तुमको वे निहत करेंगे। यदि वे युद्ध-क्षेत्र में तुम्हारे सम्मुख आते, तो कदाचित् तुम भी अपने प्राणों के मोह से उनकी शरण माँगते—यही सोचकर मेरे भ्राता ने तुम्हारे सामने न आकर छिपकर शर-संधान किया।

कपिकुल के प्रभु वाली ने, जिसने शास्त्रों का ज्ञान-रूपी संपत्ति प्राप्त की थी, लक्ष्मण के कथन को हृदयंगम किया और यह जानकर कि अति महिमावान् रामचन्द्र धर्म का विनाश कभी नहीं करेंगे, शांत हो गया और (राम के प्रति) सिर नवाकर क्षुद्र विचारों से हीन वाली कहने लगा—

हे पुरुषोत्तम! तुम प्राणियों पर मातृ-समान प्रेम रखते हो। धर्म, निष्पक्षता आदि सद्गुणों की साकार मूर्त्ति हो। (वेद-प्रतिपादित) सन्मार्ग के अनुसार देखा जाय, तो हम श्वान-समान हैं, और हम दोषहीन भी नहीं हैं। हमारे पापों को क्षमा करो।

फिर, रामचन्द्र से वाली ने प्रार्थना की—हे प्रभु! मुझे विवेकहीन वानर तथा श्वान-सदृश तुच्छ व्यक्ति समझकर मेरे वचनों को मन में न रखो। दुःखद जन्म-व्याधि के लिए अपूर्व औषधि-समान मेरे स्वामी! सब अभीष्टों को देनेवाले हे उदार! मेरी एक बात सुनो—यह कहकर वाली फिर बोला—

संधान कर प्रयुक्त किये गये बाण से मुझे आहत कर, प्राण छूटने के समय, श्वान-सदृश मुझ क्षुद्र व्यक्ति को तुमने आत्मज्ञान प्रदान किया। त्रिदेव तुम्हीं हो। आदि परब्रह्म तुम्हीं हो। पाप और पुण्य भी तुम्हीं हो। शत्रु और मित्र भी तुम्हीं हो। अन्य सब भी तुम्हीं हो।

तुम्हारे शर ने, त्रिपुर-दाह करनेवाले (शिव) आदि देवों के द्वारा मुझे दिये गये सब वरों को निष्फल बनाकर मेरे दोषहीन दृढ वक्ष में प्रविष्ट होकर मेरे प्राणों को पी लिया। तुम्हारे ऐसे शर के अतिरिक्त अन्य पृथक धर्म क्या है? (अर्थात्, तुम्हारा शर स्वयं धर्म-स्वरूप है।)

हे देव! विचार करने पर ज्ञात होता है कि अति-बलिष्ठ शूल को धारण करने-वाले (शिवजी), उनकी प्रार्थना करनेवाले सब लोगों को श्रेष्ठ वर देते हैं, तो वह तुम्हारे अनुपम नाम का जप करने के ही प्रभाव से ऐसा करते हैं। वैसे प्रभावशाली नाम के विषयभूत तुमको प्रत्यक्ष देखने पर अब मेरे लिए दुष्प्राप्य फल क्या रह गया? (अर्थात्, मेरी सब अभिलाषाएँ पूर्ण हो गइ।)

तुम सब प्राणी, सब पदार्थ-समूह, सब ऋतुएँ तथा उन ऋतुओं के फल बनकर इस प्रकार व्याप्त रहते हो, जिस प्रकार पुष्प के भीतर सुगंधि रहती है। हे अनुपम! तुम कौन हो और तुम्हारा रूप क्या है?—यह मेरे ज्ञान ने मुझे जता दिया। अब क्या शाश्वत परमपद भी मेरे लिए दुष्प्राप्य हो सकता है? (अर्थात्, वह भी सुलभ है।)

सद्धर्म को ही अपना स्वरूप बनाये रहनेवाले तुमको मैंने देख लिया है। अब मुझे और क्या देखना शेष रह गया है? मेरा बहुत बड़ा दीर्घकालिक कर्मजात आज समाप्त हो गया (अर्थात्, अब मैं उस कर्म-बंधन से मुक्त हो गया)। तुम्हारा दिया हुआ यह दंड ही मुझे सद्‌गति देनेवाला है।

हे गगन से भी उन्नत महत्त्व और विजय से युक्त नरेश! मेरा भाई मुझे मरवाने के लिए तुम्हें ले आया और तुच्छ वानरों की अच्छी मंत्रणा से शासित किये जानेवाले मेरे इस चिरकालीन क्षुद्र राज्य को स्वयं लेकर मुझे मुक्ति का राज्य दिया है। इससे बढ़कर मेरा और क्या उपकार हो सकता है?

हे चित्र-सदृश आकारवाले! इस दास को तुमसे कुछ माँगना है। मेरा भाई (सुग्रीव) पुष्प-मधु का पान करने से कभी विकृतबुद्धि होकर कोई अपराध भी कर दे, तो उसपर तुम क्रोध मत करना और जिस शर-रूपी यम का प्रयोग मुझपर किया है, उसका प्रयोग उसपर मत करना।

एक और प्रार्थना है। तुम्हारे भ्राता लोग यह सोचकर कि उसने अपने बड़े भाई को मरवा डाला है, मेरे भाई को कभी अपमानित न करें। हे उत्तम गुणवाले! तुम उन्हें वैसा करने से रोकना। हे प्रभु! तुमने पहले इसके कार्य को पूर्ण करने का वचन दिया था, अतएव इसने जो किया है (अर्थात्, अपने बड़े भाई को मरवाया), वह भाग्य का ही खेल है। क्या भाग्य के परिणाम से मुक्त होना संभव है?

हे विजयी प्रभु! मुझसे और कुछ नहीं हो सकता था, तो भी मैं अपने वानर

जन्म के योग्य, कम-से-कम इतना कार्य तो कर दिखाता कि उस मायावी राक्षस (रावण) को अपनी पूँछ में बाँधकर तुम्हारे सम्मुख ला खड़ा कर देता। मेरा उतना भी भाग्य नहीं हुआ। पर जो बीत गया, उसके बारे में कहने से कुछ लाभ नहीं। कोई कार्य पूरा करवाना हो, या कुछ महत्त्व का कार्य हो, तो उसे करने के लिए यह हनुमान् योग्य व्यक्ति है।

हे चक्रधारी! हनुमान् को तुम अपने अरुण हस्त में रखा हुआ धनुष समझो। इसके सदृश सहायक अन्य कोई नहीं है। नभ से भी उन्नत कंधोंवाले! तुम उस देवी (सीता) का अन्वेषण करके उसे प्राप्त करो।

राम के प्रति ये वचन कहकर, उस वाली ने, अपनी दोनों बाँहों को बढ़ाकर निकट-स्थित अपने भाई का आलिंगन किया और कहा—हे तात! तुम्हें कहने योग्य एक हित-वचन है। उसे अपने मन में ठीक से बिठा लो। हे पर्वतोन्नत कंधोंवाले! मेरी मृत्यु पर तुम शोक मत करना। यह कहकर वह फिर आगे बोला—

हे अधिक विवेकवाले! जिस परम तत्त्व के बारे में वेद, शास्त्र, मुनि तथा कमलासन ब्रह्मा आदि वर्णन करते हैं, वही परब्रह्म धर्म-मार्ग को सुरक्षित रखने के लिए शब्दायमान वीर-कंकणधारी राम के रूप में अवतीर्ण हुआ है और शत्रुनाशक धनुष लेकर यहाँ आया है। इसमें कोई संदेह नहीं है। तुम इसे भली भाँति जान लो।

हे स्वर्णमय पर्वत-सदृश अति उज्ज्वल कंधोंवाले! शाश्वत आनंद (अर्थात्, मुक्ति) रूपी संपत्ति की कामना करके, उसके योग्य मार्ग पर चलनेवाले सब प्राणी इसी का नाम जपते हैं। इसी का ध्यान करते हैं। इस बात को तुम जान लो। यदि इसके सामान्य गुणों का ही विचार करें, तो भी इसके प्रभाव का प्रमाण देने के लिए इतना पर्याप्त है कि इसने मुझे मारा है। इससे बढ़कर और कोई प्रमाण आवश्यक नहीं।

हे तात! जो वंचक हैं, जिन्होंने असंख्य असाध्य पाप किये हैं, वैसे जन भी इस उदार के शर-प्रयोग से मारे जाकर अति उत्तम मुक्ति-पद को प्राप्त करते हैं, तो उन लोगों के द्वारा मुक्ति-पद प्राप्त करने के बारे में कहना ही क्या है, जो इनके उभय चरणों की सेवा में निरत रहते हैं?

जब भाग्य ही स्वयं सहायता देने के लिए प्रस्तुत हो, तो फिर दुर्लभ वस्तु क्या हो सकती है? अतः, इहलोक और परलोक, दोनों के फल तुमने प्राप्त कर लिये हैं। अब यही तुम्हारा कर्त्तव्य रह गया है कि लक्ष्मी तथा श्रीवत्स-चिह्नों से अंकित वक्षवाले इस (राम) की आज्ञा को शिरोधार्य करके, उसी में अपने चित्त को एकाग्र बना लो। यों त्रिभुवनों में तुम उन्नति पाओगे।

वानर-सुलभ अज्ञान और चपलता को दूर कर दो। उदारमना (रामचन्द्र) के द्वारा किये गये उपकार को कभी न भूलो। उसके लिए आवश्यक होने पर अपने प्राण भी त्यागने के लिए सन्नद्ध रहो। परमपद को प्रदान करनेवाले उस परब्रह्म की सभी आज्ञाओं का सुचारु रूप से पालन करके अपार जन्म-परंपरा से अनायास ही मुक्त हो जाओ।

राज्य प्राप्त करने के आनन्द से मत्त होकर इसकी उपेक्षा न कर बैठना। उसके कमल-चरणों की छाया से कभी न हटना। इसी भाँति जीवन बिताना। यह स्मरण रखना

कि नरपति जलती अग्नि की उपमा के योग्य होते हैं। इसके बताये गये सब कार्य पूर्ण करना। यह न सोचना कि नरपति तुच्छ सेवकों के अपराधों को क्षमा कर देते हैं।

इस प्रकार के हित-वचन अपने दुःखी भाई के प्रति कहकर वाली ने अपने सम्मुख स्थित सुन्दर (राम) को देखकर कहा—हे चक्रवर्त्ती कुमार ! यह (सुग्रीव) अपने सारे परिवार-सहित तुम्हारी ही शरण में है। यह कहकर अपने अनुज को राम के समीप प्रेषित किया और अपने दोनों कर शिर पर जोड़ लिये।

इस प्रकार, हाथ जोड़ने के पश्चात् अपने प्रेम-पात्र अनुज का मुख देखकर (वाली ने) कहा—तुम मेरे प्यारे पुत्र (अंगद) को शीघ्र बुलाओ। सुग्रीव के बुलाने पर, अपने हाथों से समुद्र को मथनेवाले उस (वाली) का पुत्र अंगद शीघ्र वहाँ आ पहुँचा।

वह अंगद, जिसने कभी कल्पना में भी दुःखी मनवाले व्यक्तियों को नहीं देखा था, उज्ज्वल पूर्णचन्द्र के समान वहाँ आ पहुँचा। आकर उसने अपनी आँखों से अपने प्रिय पिता को, पुष्पमय सुगंधित शय्या के बदले रक्त-समुद्र के मध्य पड़ा हुआ देखा।

सूर्य-चन्द्र के सदृश दो उज्ज्वल लोल कुंडलों से विभूषित तथा पुष्ट कंधोंवाले कुमार ने अपने पिता को उस दशा में पड़े हुए देखा। देखकर अपने पिता के शरीर पर ऐसा गिरा, जैसे अश्रु तथा रक्त के प्रवाह के मध्य, धरती पर पड़े हुए चन्द्र-मंडल पर, गगन तल से कोई उज्ज्वल नक्षत्र आ गिरा हो।

हाय मेरे पिता ! मेरे पिता ! तुमने अपने मन से या कर्म से, उत्तुंग तरंग-भरे समुद्र से आवृत इस धरती पर, किसी को हानि नहीं पहुँचाई। फिर, भी तुम पर यह विपदा क्यों आई ? खैर जो हो, किंतु यह कैसे हुआ कि तुम्हारी आँखों के सामने ही यम भी तुम्हारे पास आ पहुँचा ? उस (यम) के सामर्थ्य को निर्भय होकर मिटा देनेवाले (तुम्हारे) अतिरिक्त और कौन है ?

जिस रावण ने, अष्ट दिशाओं में कील के समान ठोंके गये-से अविचल रहनेवाले दिग्गजों को भी परास्त किया था, उसका मन भी तुम्हारी पुष्ट मूलवाली सुन्दर पूँछ का स्मरण होने मात्र से ऐसा धड़क उठता है, जैसे पटह बजाया जा रहा हो। हाय ! उसका वह भय अब समाप्त हो गया।

हे पिता ! कुलपर्वतों तथा चक्रवाल नामक गगनोन्नत पर्वतों के शिखर अब तुम्हारे सुन्दर पद-चिह्नों से रहित हो जायेंगे। मंदर पर्वत, वासुकि सर्प, चन्द्रमा तथा अन्य उपकरणों को लेकर तरंगायमान समुद्र को मथने के लिए किसी से प्रार्थना करनी हो, तो अब कौन उसे मथ सकेगा ?

रूई-जैसे कोमल चरणोंवाली पार्वती को अपने अर्धभाग में धारण किये हुए शिवजी के चरणों के अतिरिक्त और किसीके प्रति कभी तुमने अंजलि नहीं दी। ऐसे शासन-चक्र से युक्त हे मेरे पिता ! तुम्हारे द्वारा क्षीरसागर के मथे जाने से ही देवगण भी मरणहीन बने हुए हैं। किन्तु, मधुर अमृत देनेवाले तुम, मृत्यु को प्राप्त हो रहे हो। तुम्हारे सदृश महिमा-वाले अन्य कौन हैं ?

इस प्रकार के विविध वचन कहकर अंगद रोने लगा। उसे देखकर अतिशोकातुर,

रक्त-नेत्र वाली ने, जिसका मन आग में पड़े मोम के-जैसा पिघल गया था, उसे आलिंगन करते हुए कहा—अब तुम दुःखी मत होओ। यह, प्रभु (राम) का किया हुआ पुण्य-कार्य है।

त्रुटिहीन रूप से यदि विचार करके देखो, तो विदित होगा कि जन्म लेना और मृत्यु पाना—तीनों लोकों के निवासियों के लिए आदि से ही नियत हैं। मेरे पूर्वकृत तप के कारण ही मुझे इस प्रकार की मृत्यु मिली है। सर्वसाक्षी बने हुए महावीर ने स्वयं आकर मुझे मुक्ति प्रदान की है।

हे तात ! हे पुत्र ! तुम बाल्यावस्था को पार कर चुके हो। यदि मेरी बात मानो, तो कहूँगा कि वही परमतत्त्व, जिससे परे और कोई तत्त्व नहीं है, हमारी दृष्टि के गोचर बनकर, (मनुष्य-रूप में) अपने चरणों को धरती पर रखे और कर में धनुष धारण करके उपस्थित हुआ है। अज्ञान में डालनेवाली जन्म-रूपी व्याधि की यह (राम) ओषधि है। यह जान लो और इसको नमस्कार करो।

हे स्वर्णमय आभरणधारी ! इसने मेरे प्राण हरण किये—यह बात किंचित् भी न सोचना। तुम अपने प्राणों की रक्षा करो। यदि इस (राम) का शत्रुओं के साथ युद्ध छिड़े, तो तुम इसका साथी बनना। यह (राम), सब जीवों का उनके संस्कार के अनुसार, हित करनेवाला है। इसके कमल सदृश-चरणों को अपना शिर पर धारण करके जीना।

इस प्रकार के हित-वचन कहने के उपरांत पर्वत से भी अधिक दृढ कंधोंवाले वानर-राज ने अपने पुत्र (अंगद) का अपनी दीर्घ बाँहों से आलिंगन कर लिया। फिर, स्वर्णमय रत्नखचित आभरण पहननेवाले रक्षक राम को देखकर बोला—

हे असत्य मनवालों के लिए अदृश्य ज्ञान-स्वरूप ! यह मेरा पुत्र ऐसे कंधोंवाला है, जो घृत लगे दीर्घ त्रिशूलधारी कालवर्ण राक्षस-सेना-रूपी तूल-समुदाय के लिए अग्नि-स्वरूप है। दोषहीन आचरणवाला है। यह तुम्हारी शरण में है।—यों कहकर वाली ने उसे राम को दिखाया। तब—

वह (अंगद) राम के चरणों पर नत हुआ। कमल-सदृश विशाल नयनोंवाले राम ने अपने सुन्दर करवाल को अंगद के आगे बढ़ाकर उससे कहा—यह लो। तब सातों लोक उन (राम) की प्रशंसा कर उठे। वाली अपना शरीर छोड़कर उत्तम लोकों के परे रहनेवाले परमपद को जा पहुँचा।

उस समय वाली के हाथ शिथिल पड़ गये। वेगवान् बाण वाली के यम-समान कठोर वक्ष में न रहकर उसको पार करके निकल गया और ऊपर उठ गया। फिर, पवित्र समुद्र के जल में धुलकर, देवताओं के दिये पुष्पहारों से विभूषित होकर, प्रभु (राम) की पीठ से कभी न हटनेवाले विजयी तूणीर में जा पहुँचा। (१-१५३)



अध्याय ८

शासन पटल

वाली स्वर्ग को सिधारा। वटपत्र पर शयन करनेवाले (विष्णु के अवतार राम) उसको अनंत आनंद (अर्थात्, मोक्ष) देकर अपने सम्मुख खड़े सूर्यपुत्र के अरुण हस्त को अपने कर में लिये, अंगद को भी साथ लेकर वहाँ से चले गये। जब शूल-जैसे नयनोंवाली तारा ने (वाली की मृत्यु का) समाचार पाया, तब वह वहाँ आकर उसके शरीर पर गिर पड़ी।

वाली के शरीर से बहनेवाले भयंकर रक्त-प्रवाह से, उसके पर्वतोपम स्तन, जिनका अग्रभाग मुकुलित था, कुंकुमरस-लिप्त जैसे हो गये। उसके घुँघुराले केश लाल हो गये। वह, वहाँ गिरे हुए मनोहर तथा विशाल कंधोंवाले वाली के वक्ष पर इस प्रकार लोटने लगी, जिस प्रकार सूर्य के अरुण किरणों से आवृत विशाल गगन में कोई विद्युत् कौंध रही हो।

तारा विषण्ण हुई। दीन और व्याकुल हुई। आह भरी। द्रवितहृदय हुई। अपने दोनों करों को सिर पर जोड़कर रखा। शिथिल हुई। उसका केश-पाश गलित होकर बिखर पड़ा। वह ऊँचे स्वर में निम्नलिखित प्रकार के वचन कह-कहकर रो पड़ी। उसके कंठ की ध्वनि से बाँसुरी, मधुर नादवाला याक् और वीणा के नाद भी लज्जित हो गये :

हे मेरे अत्युत्तम अपूर्व प्राण! हे मेरे हृदय! हे मेरे प्रभु! तुम्हारी पर्वत-सदृश भुजाओं के मध्य, नित्य सुरक्षित रहती हुई, मैंने कभी वेला-हीन दुःख-सागर को देखा भी नहीं था। अब मैं तुम्हारी यह दशा देखकर बहुत त्रस्त हो रही हूँ।

तुम कभी मेरे प्रतिकूल नहीं हुए। तुम्हारे इस दुःख को देखकर भी मैं प्राण छोड़े विना जीवित हूँ। अतः, अब तुम मुझे अपने निकट नहीं बुलाओगे। हे मेरे भाग्य-देवता! प्राणों के जाने पर क्या देह जीवित रह सकती है?

हे मेरे प्रभु! क्या यमदेवता यह नहीं जानते कि तुम्हारे द्वारा सुरभिमय अमृत दिये जाने के कारण ही वे अमर बने हुए हैं? क्या वे इतने क्षुद्र हैं कि अपने प्रति (तुम्हारे द्वारा) किये उपकार का स्मरण नहीं करते?

तुम सब दिशाओं में जाकर, सच्ची भक्ति के साथ, न कुम्हलानेवाले पुष्पों से, अपने अर्धांग में उमादेवी को धारण करनेवाले देव की पूजा किये विना, इतनी देर तक यहीं पड़े हो। क्या यह उचित है?

हे प्रभो! पुष्पशय्या पर, मृदु वस्त्रों के आवरण पर, शयन करनेवाले तुम अब भूमि पर पड़े हो। यह देखकर मेरा मन द्रवित हो रहा है। मैं तुम्हारे सम्मुख खड़ी होकर आँसू बहा रही हूँ। फिर भी, तुम मुझसे कुछ नहीं कह रहे हो। मुझसे कौन-सा अपराध हुआ है?

हे कभी असत्य न बोलनेवाले पुण्यात्मा! मैं यहाँ रहकर इस प्रकार दुःखी हो रही हूँ और तुम सत्य-परायण देवों के लोक में जाकर सुख भोग रहे हो। हे प्रभु! क्या

तुम्हारा यह कथन असत्य ही है कि मैं तुम्हारा प्राण हूँ ? (अर्थात्, तुम जो यह कहते थे कि तुम मेरे प्राण हो, क्या वह कथन झूठ ही था ?)

युद्ध के अभ्यस्त कंधोंवाले ! यदि यह सत्य है कि मैं तुम्हारे हृदय में हूँ, तो शत्रु का शर मेरे प्राण भी हर लेता। यदि यह सत्य है कि तुम मेरे हृदय में रहते हो, तो तुम निश्चय ही जीवित रहते। हम दोनों ही एक दूसरे के हृदय में नहीं थे।

हे मेरे प्रभु ! देवताओं ने तुम्हारा यह उपकार स्मरण करके कि तुमने उन्हें अमृत ला दिया था, जिससे वे अमर बन सके, अब क्या (तुमको स्वर्ग में आये हुए देखकर) उन्होंने तुम्हें कल्पपुष्प प्रदान करके, तुम्हें अपना मित्र समझकर; तुम्हारी आवभगत करके तुम्हारा सत्कार कर रहे हैं ?

तुम तो अमरता प्रदान करनेवाला अमृत भी (देवों को) ला देनेवाले हो। छिपे रहकर शर छोड़ने के लिए तैयार होकर आया हुआ राम यदि अपने मुँह से माँगता, तो क्या तुम अपना सर्वस्व भी उसको नहीं दे देते ?

मैंने पहले ही कहा था (कि राम सुग्रीव की सहायता करने के लिए आया है)। मेरा कहना न मानकर, यह कहते हुए कि वह राम वैसा अनुचित कार्य नहीं करेगा, तुम अपने भाई से युद्ध करने लगे और युगांत तक जीवित रहने योग्य तुम मृत्यु को प्राप्त हो गये। मैं तुम्हें फिर कब देखूँगी ?

यदि तुम प्रहार करते, तो मेरुपर्वत भी चूर-चूर हो जाता। आह ! एक शर ने तुम्हारे सामने होकर तुम्हारे वक्ष को कैसे विदीर्ण कर दिया ? क्या यह देवों की माया है? मैं नहीं समझ रही हूँ। अथवा यहाँ जो मरा पड़ा है, वह कोई दूसरा ही वाली है ?

हे नाथ ! तुम्हारे भाई ने उत्तम यश की गरिमा से युक्त रहकर तुम से वैर किया, जिसके परिणाम-स्वरूप तुम मृत्यु को प्राप्त हुए और हमारा सर्वस्व विनष्ट हो गया। हाय! तुम हमारी यह दशा क्यों नहीं देखते ?

अपूर्व अमृत के समान विपदाओं को दूर करनेवाले उस राम ने अब एक वीर का अहित सोचकर क्या कार्य कर दिया ? क्या यह वचन केवल कथन ही है (किंतु, यथार्थ नहीं है) कि धर्म पर स्थिर रहनेवालों की कसौटी, उनके कार्य ही होते हैं ?

इस प्रकार के अनेक वचन कहकर, अति दुःखित हो, बुद्धिभ्रष्ट हो वह निश्चेष्ट पड़ी रही। उसकी वह दशा देखकर नीतिनिपुण तथा दृढ पर्वत के सदृश हनुमान् ने—

वानर-स्त्रियों के द्वारा उसको उसके निवास पर पहुँचवा दिया और वाली के अंतिम कृत्य करवाये। फिर, श्रीरामचन्द्र के पास जाकर सब वृत्तांत सुनाया।

तब सूर्यदेव, जो अपने प्रकाश से अंधकार को निर्मल कर देता है, अपने गम्य-स्थान अस्ताचल पर जा पहुँचा। वह (सूर्य) पर्वत-सदृश वानरराज (वाली) के मुख की समता कर रहा था (अर्थात्, रक्तवर्ण दीखता था)।

संध्या के समय सूर्य अस्त हुआ। उदारशील (राम) सीता का स्मरण करते हुए, विश्रांत होकर शिथिल तथा द्रवितहृदय हो उठे। और, इस प्रकार (कष्टों से) भरे हुए उस निशा-सागर को बड़ी कठिनाई से पार किया।

सूर्य, यह सोचकर कि उसका पुत्र (सुग्रीव) स्वर्ण-मुकुट धारण करनेवाला है, बड़ी उमंग से भर गया। (उस राजतिलक के उत्सव में) सहयोग देने के लिए लक्ष्मी का भी आगमन हो—इस उद्देश्य से, उस (सूर्य) ने अपने अरुण करों से उत्तम कमल-दल-रूपी कपाट खोल दिये।

उस समय, करुणानाथ (राम) ने अपने उत्तम मतिवाले अपने अनुज को देखकर यह आदेश दिया—हे तात ! तुम अपने हाथों से सूर्य-पुत्र को यथाविधि राज्य पर अभिषिक्त कर दो।

आज्ञापालक, महिमावान् लक्ष्मण ने तुरत ही जाकर नीति से स्खलित न होनेवाले तथा युद्ध में कुशल हनुमान् से कहा—हे वीर ! इस शुभ कार्य के लिए आवश्यक समस्त सामग्री को तुम अभी ले आओ—तब,

अभिषेक के योग्य तीर्थ-जल, मंगल-द्रव्य, प्रशंसनीय स्वर्णमुकुट आदि उपकरण—सब हनुमान् के द्वारा लाये गये। पुरुषोत्तम (राम) के भाई लक्ष्मण ने महिमा-भरे सुग्रीव से व्रत आदि कर्त्तव्य कराये। फिर—

ब्राह्मण लोग आशीर्वाद दे रहे थे। देव मधु-पूर्ण पुष्प बरसा रहे थे। सद्धर्म के पथपर चलनेवाले मुनि (पुरोहित बनकर) कृत्य करा रहे थे। धर्मात्माओं के बताये विधि से लक्ष्मण ने उस महाभाग (सुग्रीव) को मुकुट पहनाया।

स्वर्णमय किरीट धारण करके सुग्रीव ने असत्य-रहित प्रभु (राम) के महिमामय चरणों को प्रणाम किया। तब प्रभु ने, जो अर्थपूर्ण वाणी के भी परे हैं, अपने सुन्दर वक्ष से उसे लगा लिया, और कहा—

हे वीर ! तुम यहाँ से अपने प्राकृतिक निवास-स्थान (अर्थात् , किष्किन्धानगर) में जाओ, और अपने द्वारा करणीय कार्यों का ठीक-ठीक विचार कर, यथाविधि उन्हें पूरा करो। यों जिस राज्य-भार को तुमने अपने ऊपर लिया है, उसके लिए आवश्यक सब कार्य करो और युद्ध में मरे हुए वाली का जो प्रिय पुत्र है, उसके साथ उत्तम ऐश्वर्य के साथ चिरकाल तक जीते रहो।

सत्य से भरित, विवेकपूर्ण मंत्रियों के साथ तथा दोष-रहित सदाचारी एवं पराक्रमी सेनापतियों के साथ पवित्र मैत्री का भाव रखो, और तुम स्वयं भी त्रुटिहीन कार्य करते हुए इस प्रकार रहो कि वे (मंत्री तथा सेनापति) तुम्हारे अति निकट या अति दूर न रहकर तुम्हें देवता के समान मानकर व्यवहार करें।

संसार इतना विवेक-पूर्ण है कि यदि कहीं धूम दिखाई पड़े, तो यह अनुमान कर लेता है कि वहाँ जलती आग भी होगी। अतः, तुम्हें चाहिए कि तुम शास्त्रज्ञों के द्वारा कथित कूटनीति को भी अपनाओ। तुम हँसमुख रहो। मधुर वचन बोलो और दूसरों के स्वभाव को जानकर, इस प्रकार आचरण करते रहो कि उससे तुम्हारे प्रति वैर रखनेवालों का भी हित हो।

वह दोष-रहित महान् ऐश्वर्य, जिसे देखकर देवलोग भी मुग्ध होते हैं, तुमको प्राप्त हुआ है। तो उस संपत्ति के महत्त्व को ठीक-ठीक पहचानकर सदा सजग रहो। क्योंकि,

तीनों लोकों के निवासी ऐसे होते हैं, जो मुनियों के प्रति भी घनी मित्रता रखते हैं, कुछ उनके वैरी होते हैं, तो कुछ तटस्थ स्वभाव रखते हैं।

उपर्युक्त तीनों प्रकार के स्वभाववालों में से तुम किसी के प्रति अहित कार्य न करना। अपने कर्त्तव्य कार्य पूरा करना। यदि कोई तुम्हारी निंदा करे, तो भी उसके प्रति निंदा-रहित मधुर वचन कहना। दूसरों के धन का अपहरण करने का लोभ न रखना। ये सब धर्म किसी व्यक्ति का, उसके बंधु-परिवार-सहित, उद्धार करनेवाले होते हैं। अतः, तुम इसी प्रकार के धर्म का आचरण करना।

हे पुष्ट कंधोंवाले! किसी को बलहीन जानकर उसे दुःख न देना। मैं (अपने बाल्यकाल में) इस धर्म-मार्ग की सीमा को पारकर गया था और शरीर से विकृत होकर भी बुद्धि से बढ़ी हुई कुबड़ी के कारण राज्यभ्रष्ट हो गया[1] और कठोर दुःख-सागर में डूबा।

यह निश्चित जानो कि स्त्रियों के कारण पुरुषों को मृत्यु प्राप्त होती है। वाली का जीवन ही इसका प्रमाण है और उन्हीं स्त्रियों के कारण दुःख और अपवाद भी उत्पन्न होते हैं। यह तुम मेरे जीवन से जान सकते हो। इस विषय के ज्ञान से बढ़कर अन्य हित-कारी शिक्षा क्या हो सकती है?

अपनी प्रजा की इस प्रकार रक्षा करना कि वे यह कहें कि, हमारे राजा राजा नहीं हैं, किन्तु हमारा लालन-पालन करनेवाली माता हैं। ऐसा आचरण करते हुए भी यदि कोई व्यक्ति तुम्हारा अहित करे, तो उसे धर्म से स्खलित न होते हुए दंड देना।

यथार्थ का विचार करें तो (विदित होगा कि) जन्म और मृत्यु सर्वदा, अपने-अपने कार्यों के परिणामस्वरूप ही होती है। कमलभव ब्रह्मा ही क्यों न हो, धर्म से स्खलित होने पर विनाश को प्राप्त होता है। धर्म का अंत जीवन का अंत है—यह बड़े लोगों का कथन है, अब अन्यों के बारे में क्या कहा जाय?

परस्पर के आघात से उन्माद उत्पन्न करनेवाले मल्लयुद्ध में कुशल वीर! संपन्नता और निर्धनता—दोनों जीवों के पुण्य और पाप के फलों के अतिरिक्त और भी कुछ है, इसे अनुपम शास्त्रों में निपुण विद्वान् भी नहीं जानते (अर्थात्, प्राणियों के पाप-पुण्य के फलस्वरूप ही निर्धनता और संपन्नता होती है)। अतः, पुण्य को छोड़कर क्या पाप को ग्रहण करना कभी उचित हो सकता है?

यही राजाओं के योग्य कर्त्तव्य है। विधि के अनुसार तुम राज्य करो और समीप आई हुई वर्षा ऋतु के व्यतीत होने के पश्चात् अपनी समुद्र-सदृश विशाल सेना को लेकर मेरे पास आओ। अब तुम जाओ—यों उस सुन्दर (राम) ने कहा। तब सुग्रीव ने कहा—

हे उदार! वृक्षों तथा जलाशयों से भरा हुआ (किष्किन्धा के) पर्वत वानरों का निवास है, केवल यही तो इसमें दोष है। अन्यथा यह स्थान सभा-मंडप से विभूषित

---

१. इस पद्य में उस घटना की ओर संकेत है कि रामचन्द्र बचपन में अपने धनुष से मंथरा के कूबड़ को लक्ष्य करके मिट्टी की गोली मारते थे, जिससे मंथरा मन-ही-मन चिढ़ती थी। इसी का बदला लेने के लिए मंथरा ने ऐसा उपाय किया, जिससे रामचन्द्र को राज्य-भ्रष्ट होकर वन जाना पड़ा।—अनु०

स्वर्ग से भी अधिक मनोहर है। अतः, तुम कुछ दिन हमारे यहाँ आकर ठहरो, जिससे हम तुम्हारी करुणापूर्ण आज्ञा का पालन कर सकें।

हे अरिंदम! तुम्हारी शरण में आकर हम तुम्हारी करुणा के पात्र बने हैं। तुमसे वियुक्त होकर जो ऐश्वर्य हम पायेंगे, वह दरिद्रता से भी अधिक गर्हित होगा। अतः, जबतक तुम्हारी देवी का अन्वेषण करने का समय न आवे, तबतक तुम हमारे साथ (नगर में) आकर ठहरने की कृपा करो—यों कहकर सुग्रीव (राम के) चरणों पर गिर पड़ा।

यह वचन सुनकर महाभाग ने मधुर मंदहास करते हुए कहा—राजाओं के निवास-योग्य नगर, मेरे जैसे व्रतधारियों के लिए योग्य नहीं है और यदि मैं वहाँ आऊँ, तो मेरी सेवा में ही तुम्हारा सारा समय लग जायगा। तुम, विचार कर किये जाने योग्य शासन-कार्य से, स्खलित हो जाओगे।

हे चिरंजीव! मैंने यह प्रण किया है कि चौदह वर्ष वन में रहूँगा। अतः, (इस अवधि में) मैं राजाओं के निवास में नहीं ठहर सकूँगा। हे दृढ तथा सुन्दर कंधोंवाले! वीणा-नाद-सदृश स्वरवाली अपनी देवी के विना क्या मैं सुख भोग सकूँगा? यह तुमने कदाचित् सोचा नहीं।

हे तात! यह अपवाद क्या त्रिभुवनों के विनाश होने पर भी मिट सकेगा कि, राक्षस के द्वारा अपनी पत्नी के बंदी बनाकर रखे जाने पर भी राम, स्वयं, अपने प्यारे मित्रों सहित, अपार सुखों का भोग करता रहा।

जिन लोगों ने गृहस्थाश्रम का त्याग नहीं किया है, वैसे लोगों के लिए योग्य धर्म को मैंने पूरा नहीं किया। युद्ध में धनुष लेकर किये जानेवाले कर्त्तव्य को भी मैंने पूर्ण नहीं किया। यों व्यर्थ जीवन बितानेवाले मुझ-जैसे के लिए सब (सुग्रीव के साथ नगर में रहना इत्यादि) महत्त्वहीन क्षुद्र कार्य हैं। उत्तम गृहस्थ-धर्म को छोड़कर, वानप्रस्थ व्रत का आचरण करके मैं अपने पापों का परिहार करूँगा।—यों राम ने कहा।

फिर कहने के लिए सुकर, किंतु करने के लिए दुष्कर सच्चारित्र्य में स्थिर रहने-वाले (राम) ने आगे कहा—हे वीर! शासन के सब कार्यों को यथाविधि पूर्ण करके चार मास व्यतीत होने पर, उत्तुंग तरंगों से पूर्ण समुद्र-सदृश अपनी सेना को साथ लेकर मेरे निकट आओ। यही तुमसे मेरी प्रार्थना है।

वानरों का नेता इसके विरुद्ध कुछ नहीं कह सका। यह सोचकर कि गगनोन्नत (गंभीर) आकारवाले तथा तपस्वी वेषधारी (राम) के मन के अनुसार करना ही दोष-मुक्त बनने का उपाय है, अपने विशाल नयनों से अश्रु बहाता हुआ दंडवत् किया और अकथनीय दुःख को मन में भरकर वहाँ से चला।

वाली-पुत्र (अंगद) राम के चरण-कमलों में प्रणत हुआ। उसे सकरुण देखकर नीले मेघ-जैसे उस महान् ने कहा—तुम शीलवान् हो। इस (सुग्रीव) को अपने पिता का भाई जानकर उसकी आज्ञा में स्थिर रहो।

इस प्रकार के वचन कहकर सुग्रीव के साथ उसको भेज दिया। तब तुरंत ही यशस्वी तथा गुणवान् अंगद, उनके उत्तम चरणों को नमस्कार करके विदा हुआ। फिर,

प्रभु ने मारुति को देखकर कहा—हे सुन्दर वीर ! तुम भी उस राजा (सुग्रीव) के शासन के योग्य कार्य अपने विवेक से पूरा करते रहो।

प्रेम से परिपूर्ण तथा असत्य-रहित मनवाले हनुमान् ने यह कहकर कि, यह दास यहीं रहकर (आपकी) आज्ञा के अनुसार योग्य सेवा करता रहेगा, उनके पदयुगल पर गिर पड़ा। तब सत्य में दृढ रहनेवाले प्रभु ने कहा—

एक प्रतापी राजा के द्वारा शासित अपार ऐश्वर्य से युक्त राज्य को जब दूसरा कोई वीर बलात् हस्तगत कर लेता है, तब उससे सदा भलाई ही हो, ऐसी बात नहीं। किन्तु, उससे कभी बुराई भी उत्पन्न हो सकती है। अतः, हे तात ! वैसा राज्य तुम-जैसे बड़े दायित्व का वहन कर सकनेवाले विवेकी पुरुष से ही स्थिर रह सकता है।

(गुणों से) परिपूर्ण उस (सुग्रीव) के राज्य को स्थिर बनाकर, उसके पश्चात् मेरे कार्य को पूरा कर सकनेवाला (पुरुष) तुमसे बढ़कर और कौन है ? अतः, तुम मेरी इच्छा के अनुसार, साकार धर्म-जैसे उसके पास जाओ।

चक्रधारी के ये वचन कहने पर मारुति ने नमस्कार करके कहा—हे प्रभु ! आप विजयी हों ! यदि आपकी यही आज्ञा है, तो यह दास वैसा ही करेगा। और, वहाँ से चला गया। पुरातन सृष्टि के नायक (राम) भी मुखपट्टधारी बड़े हाथी के सदृश अपने भाई के साथ एक ऊँचे पर्वत पर चले गये।

आर्य (राम) की आज्ञा से सुग्रीव विशाल किष्किन्धा में जा पहुँचा और महिमा-वान् मंत्रियों तथा बंधुजनों से युक्त होकर तारा को प्रणाम किया और उसको अपनी माता तथा अपने अग्रज के उपदेशों को ही अपना पिता मानकर, उत्तम रीति से शासन करता रहा।

वह अपार ऐश्वर्य को प्राप्त कर, आनंद से शासन करता रहा। अन्य वानर उसके अनुकूल आचरण करते रहे। उसका शासन-चक्र दिगन्तों में व्याप्त हुआ। अपार पराक्रम-युक्त अंगद को उसने राज्य का युवराज-पद दिया।

उदार (राम), वहाँ से चलकर मतंग महर्षि के आवासभूत गगनस्पर्शी (ऋष्यमूक) पर्वत पर जाकर ठहरे, जहाँ उनके उस भाई ने, जिसके मन की सच्ची भक्ति को भर-भरकर लिया जा सकता है, प्रेम से पर्णशाला बनाई थी। यों वे विश्राम करते रहे। (१—५४)

●

अध्याय ९

वर्षाकाल पटल

सूर्य, महिमा-भरी उत्तर दिशा से (दक्षिण दिशा को ओर) चल पड़ा, मानों चित्रप्रतिमा-समान उज्ज्वल तथा लावण्ययुक्त (सीता) देवी का अन्वेषण करने के लिए देवाधिप (राम) के द्वारा पहले भेजा गया दूत हो।

सजल मेघ इस प्रकार शोभायमान हो रहे थे, जिस प्रकार अनेक फनवाले सूर्यराज के द्वारा धारण की गई पृथ्वी-रूपी दीपक में शब्दायमान समुद्र-रूपी तैल के मध्य मेरुपर्वत-रूपी वत्ती की सूर्य-रूपी ज्वाला से उत्पन्न अंजन हो।

घने बादलों के छा जाने से अंधकार-भरा आकाश का रंग ऐसा था, जैसे समुद्र से उत्पन्न अति भयंकर हलाहल विष को पीनेवाले ललाट-नेत्र (शिव) का कंठ हो। उससे सूर्य की किरणें भी तापहीन हो शीतल हो गईं।

नील आकाश, विष के समान, शीतल तथा विशाल सागर के समान, तरुणियों के अंजन-लगे नयनों के समान, (उनके) बिखरे केश-पाशों के समान, मायावी राक्षसों के शरीरों के समान, (उनके) पापकर्मों के समान और (उनके) मन के समान ही कालिमामय हो गया।

वे मेघ, जिन्होंने अनेक दिनों से शीतल समुद्र के जल को अपनी जिह्वा से अघाकर पिया था और जिनमें बिजलियाँ चमक रही थीं, ऐसे लगते थे, जैसे करवालधारी वीरों के युद्ध में करवालों के आघात से घायल होकर मदजलस्रावी गजराज पड़े हों।

उदर में जल से भरी हुई काली घनी घटाएँ बड़े-बड़े काले हाथियों की पंक्तियों के समान थीं और उनके उमड़ने से ऐसा घोर शब्द होता था, मानों तरंग-समान काले समुद्र का विशाल जल ही अनन्त आकाश में छा गया हो।

कौंधनेवाली बिजलियाँ, इन्द्र आदि देवताओं के चमकते हुए आभरणों की जैसी थीं, पर्वतों में फैलकर सब वस्तुओं को जलानेवाली अग्नि के समान थीं तथा अनिन्दनीय दिशाओं की हँसी की जैसी थीं।

वर्षाकालिक काली घन-घटा एक भट्ठी की समता करती थी, जहाँ दिशा-रूपी लुहार, सब वस्तुओं से अधिक कालिमापूर्ण आकाश-रूपी कोयले की राशि में उत्तर दिशा की अतिवेगवान् पवन-रूपी बड़ी भाथी लगाकर तीक्ष्ण अग्नि-ज्वालाओं को भड़का रहा था।

आकाश में तथा दिशाओं में बिजलियाँ इस प्रकार कौंध उठीं, जैसे अपने प्रियतम के वियोग में तरुणियाँ तड़प उठी हों, धरती के गर्भ में स्थित सर्प जलकर तड़प उठे हों, या सूर्य-किरणों को काट-काटकर दिशाओं में फेंक दिया गया हो, अथवा वज्र की लपलपाती जिह्वाएँ तड़प उठी हों।

वे बिजलियाँ ऐसी थीं, जैसे मणिकिरीटधारी मायावी विद्याधरों के द्वारा कोश से निकालकर घुमाये जानेवाले (शत्रुओं के) रक्त-सिंचित करवाल हों, अथवा दिक्पालों के साथ यात्रा करनेवाले दिग्गजों के मुखपट्ट हों, जो हिल-डुलकर चमक रहे हों।

वे बिजलियाँ यों चमक उठीं, मानों अष्ट दिशाओं में धरती को धारण करनेवाले अष्ट महानागों की जिह्वाएँ व्याप्त हो रही हों। उस समय झंझावात यों बह चला, मानों विष्णु की कांति के समान काली बनी हुई घटाएँ (अपने गर्भ के भार से) निःश्वास भर रही हों।

वह वर्षाकालिक पवन ऊँच-नीच का भेद किये विना पर्वतों, वृक्षों तथा अन्य सब प्रदेशों में वारनारियों के उस चंचल मन के समान फैल गया, जो (मन) केवल धन की कामना करके धन देनेवाले किसी भी व्यक्ति के समीप जा पहुँचता है।

उत्तर दिशा का वात, अपने प्रियतमों के विरह में पीडित रहनेवाली तरुणियों के तप्त स्तन-तटों को और भी तपाता हुआ बह चला और उस प्रकार बढ़ चला, मानों कोई पिशाच हो, जो (उन स्तनों को) पुष्ट मांसखंड समझकर उनको काटकर खा डालने के लिए चल पड़ा हो।

बड़े शब्द के साथ धूलि ऊपर उठकर आकाश को रूँधने लगी, बिजलियाँ तीक्ष्ण तलवारों के समान घूम-घूमकर चमकने लगीं। मेघ पुष्प-मालाओं से अलंकृत बड़े नगाड़ों के जैसे गरजने लगे। आकाश एक बड़े युद्ध-रंग के समान दृष्टिगत होने लगा।

मधुर मंदहास करनेवाली जानकी से बिछुड़े हुए रामचन्द्र पर मन्मथ पुष्प-बाण बरसा रहा हो—उसी प्रकार बिजलियों से पूर्ण मेघ-मण्डल उस स्वर्णमय पर्वत पर जल-धाराएँ बरसाने लगा।

जल-धाराएँ मेघों के मध्य-स्थित धनुष से प्रयुक्त शरों के समान वेग से पहाड़ों पर आकर गिरती थीं, मेघों से उत्पन्न रक्तवर्ण वज्राग्नि के कण ऐसे गिरे, जैसे रात्रि के समय अत्युज्ज्वल रत्न-कण बरस रहे हों।

योद्धा लोग शत्रुओं के बड़े हाथियों पर चमकते हुए बरछे प्रयुक्त कर रहे हों—ऐसे ही मेघ पर्वत पर जल-धाराएँ बरसा रहे थे। उन अवार्य जल-धाराओं के प्रहार से शिलाखंड टूट-टूटकर ऐसे लुढक रहे थे, जैसे लाल बिंदियोंवाले उत्तम लक्षण-सम्पन्न गज आहत होकर लुढ़क जाते हों।

मेघ, मीनकेतन (मन्मथ) था, इन्द्र-धनुष ईख का कमान था, बरसती जल-धाराएँ पुष्प-शर थीं, पर्वत की दीर्घ घाटियाँ विरहीजन थीं, उन पर्वत-शिलाओं पर जल-धाराएँ यों गिरती थीं, जैसे मांसल शरीर में शर चुभ जाते हों।

देवता, यह कहकर कि पवित्र मूर्त्ति (श्रीराम) तथा कपिगण दोनों मिलकर अब हमारे शत्रुओं (रावणादि राक्षसों) को शीघ्र ही मिटा देंगे, गर्जन कर उठे हों—यों मेघ गरज उठे, जल-बिन्दु पुष्प-वर्षा के समान बरस पड़े।

सुन्दर धनुष धारण करनेवाला राक्षस रावण, जब करवाल लिये हुए (सीता को) उठाकर आकाश-मार्ग से त्वरित गति से ले जा रहा था, तब उस नारी-रत्न, आभरण-भूषित देवी (सीता) के नयन जिस प्रकार अश्रुवर्षा करने लगे थे, उसी प्रकार मेघ बरस पड़े।

शिर पर चन्द्र को धारण करनेवाले भगवान् (शिव) आकाश-मार्ग में उड़नेवाले तीनों पुरों को दग्ध करने के लिए अग्निमुखी शर प्रयुक्त कर रहे हों—ऐसी लगती थी चमकती हुई बिजलियाँ; वे सान पर रगड़कर पैनाये गये और चमकते हुए बरछों के समान ही विरह-तप्त पुरुषों के मन को दग्ध कर रही थीं, जिससे विरहीजन तड़प उठे।

वे वर्षाकालिक संपत्ति का अर्जन करने के लिए दूर देशों में गये हुए जनों के वियोग में निष्प्राण बनी हुई विरहिणियों को उनके प्रियतम-रूपी प्राणों को चक्रवाले रथों-पर शीघ्र ला देते थे, अतः मूर्च्छा उत्पन्न करनेवाली विरह-व्याधि-रूपी सर्प के विनाश के लिए वे (मेघ) गरुड के समान थे।[1]

---

१. वर्षाऋतु में प्रवास में गये हुए प्रेमी अपने घर वापस आ जाते हैं, अतः मेघ विरहिणियों का, वियोग में दुःख को दूर करनेवाला, साथी है।— अनु०

बड़े मेघ, बारी-बारी से गरज रहे थे, और जल बरसाते हुए एक-दूसरे के निकट आकर टकराते थे, जैसे बड़े-बड़े हाथी गरजते हुए और मदजल को बहाते हुए क्रोध के साथ दौड़कर एक दूसरे से टकरा जाते हों।

हवाएँ बारी-बारी विभिन्न दिशाओं से बहती थीं। मेघ अपने चंचल तथा छोटे जल-बिन्दुओं को शरों की बौछार के समान अपने लक्ष्य पर प्रयुक्त करते थे। वह दृश्य ऐसा था, जैसे एक दिशा दूसरी दिशा से युद्ध कर रही हो।

अपनी प्रियतमाओं को छोड़कर दूसरे राज्यों पर विजय प्राप्त करने के लिए गये हुए राजा लोग (वर्षा के आगमन पर) लौटकर आ गये हों और उनके आगमन से पहले निष्प्राण बनी हुई (उनकी पत्नियों की) देह में प्राण के लौट आने से वे तरुणियाँ निःश्वास भर उठी हों—उसी प्रकार वृक्षों की सूखी शाखाएँ वर्षा के आगमन से पल्लवित होकर नव सौन्दर्य के साथ विकसितमुख-सी दिखाई पड़ती थीं।

पाटलवृक्ष (पुष्पहीन हो) दरिद्रता प्रकट करते थे। दिनकर शीतल बन गया, श्वेतकुमुद समृद्ध बन गये। कुवलय-पुष्प निर्धन बन गये। मयूर संपत्ति पाये हुए व्यक्ति के समान नाच उठे। कोकिल वियुक्त प्रियतमों के जैसे शिथिल हो चुप हो रहे।

उन पर्वत-सानुओं में जहाँ विविध रंगवाले भ्रमर तथा तितलियाँ उत्तम रत्नों के समान विश्राम करती थीं, मधु के भार से झुककर हिलनेवाले अर्द्ध-विकसित रक्त कांदल-पुष्प ऐसा दृश्य उपस्थित करते थे, मानों विशाल धरती-रूपी तरुणी वर्षाकाल के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर, यह विचार कर कि वसंत को भी इस वर्षाकाल ने जीत लिया है, अपने हाथ हिलाती वसन्त ऋतु का तिरस्कार कर रही हो।

करवाल-समान तीक्ष्ण दंतोंवाले सर्प, दीर्घनाल, श्वेतकुमुद की लताओं से जोडन (सर्पों) के फन के जैसे ही पुष्पों को शिर पर धारण किये हुए थे, प्रेम से लिपट जाते थे और उनसे हटते नहीं थे। वे श्वेतकुमुद भी उन काममत्त सर्पों के समान ही होकर उनसे उलझे पड़े रहते थे।

इन्द्रगोप इस प्रकार फैले थे कि धरती पर तिल रखने का भी स्थान नहीं था, वे चिरकाल के प्रवास के उपरांत लौटे हुए अपने प्रियतमों से मिलनेवाली अगरु तथा पुष्प-वासित कुंतलोंवाली तरुणियों के द्वारा बार-बार थूकी हुई पान की पीक के समान ही बिखरे हुए थे।

उस गगनचुंबी मेरुपर्वत से, जिसपर मधुर जंबूफलों से भरे हुए वृक्ष होते हैं, स्वर्ण को बहाकर ले चलनेवाली (जंबू-नामक) नदी जिस प्रकार बहती है, उसी प्रकार जलधाराएँ कर्णिकार, वेंगे आदि पुष्पों को बहाती हुई उस पर्वत से बह रही थीं।

सुन्दर तथा दीर्घनाल रक्तकुमुद तथा कर्णिकार मनोहर इन्द्रगोपों से भरे हुए ऐसे लगते थे, जैसे पृथ्वी देवी मधुरगान करनेवाले भ्रमरों को अपने विकसित करों को उठाकर स्वर्ण तथा रत्न प्रदान कर रही हो।

धैवत स्वर में गानेवाले भ्रमर 'याल्' के समान थे। बिजली, गर्जन तथा वर्षा से युक्त मेघ चर्म से आवृत 'मर्दल' के समान थे। मयूर, कंकण-धारिणी नायिकाओं के समान थे।

रक्तकुमुद नाट्य-रंग पर रखे हुए दीपों की पंक्तियों के समान थे। कोमल 'करुविल' पुष्प दर्शकों के नेत्रों के समान थे।

भ्रमर और भ्रमरी के वेग से उड़कर आने से उत्पन्न होनेवाली ध्वनि, उनके टकराने से उत्पन्न होनेवाली ध्वनि—दोनों ध्वनियाँ—देवांगनाओं के नृत्य की ध्वनि की समता करती थीं। 'कूदाल' के विशाल पुष्प ऐसे विकसित थे, जैसे उन (देवांगनाओं) के अमृत-समान आर्यभाषा (संस्कृत) के गीतों के गायन के उपयुक्त बड़े झाल हों।

पुन्नाग के वनों से बहनेवाली नदियाँ अपने पुत्रों के लिए पुष्ट पर्वत-रूपी स्तनों से स्रवित धरतीमाता की दुग्ध-धाराओं के समान थीं। कर्णिकार वृक्ष ऐसे थे, मानों धन की इच्छा से आकर याचना करनेवालों को सदा दान देने के लिए अपनी शाखाओं में स्वर्ण-खंडों को लटकाये हुए खड़े हों।

पुष्प-भरे वनों में सर्वत्र मधुर गान करनेवाला विविध चित्तियों से युक्त भ्रमर आदि कीड़े भरे हुए थे, जो दर्शकों को बड़ा आनन्द देते थे, हरिण अपने मार्ग में पड़नेवाले वृक्षों से रगड़ खाते हुए और उस कारण से (चन्दन, अगरु आदि) विविध सुगंधों से युक्त होकर आते थे और हरिणियाँ उन्हें (उनकी गंध के कारण) कोई दूसरा मृग समझकर उनसे रूठ जाती थीं।

अपने प्रियतम के रथारूढ होकर प्रवास में चले जाने पर जिस प्रकार विरहिणी तरुणियों के भाले-सदृश नयन आनन्दहीन हो मुकुलित हो जाते हैं, उसी प्रकार कुवलय-पुष्प बंद हो गये। मन्मथ-सदृश अपने प्रियतमों के आगमन पर जिस प्रकार उमंग से भरी उन तरुणियों का किंचित् दंत-प्रकाशन से युक्त मंदहास छिटक पड़ता है, उसी प्रकार कुंदलताएँ पुष्पित हो उठीं।

पर्वत से प्रवहमाण जलधाराएँ स्वर्ण को बहुलता से दोनों ओर बिखेरने लगीं, मानों आनन्द-नृत्य करनेवाले मयूरों को देखकर उन्हें नटवर्ग समझकर राजा लोग उन्हें भूरि-भूरि पुरस्कार दे रहे हों। कमललताएँ जल-मध्य इस प्रकार उठी हुई थीं, मानों गगनपथ में आनेवाले मेघों को देखकर उन्हें अतिथि समझकर आनन्दित हुई (गृहस्थ-धर्म में निरत) तरुणियों के वदन हों।

कामशास्त्र में निपुण विटों के समान ही भ्रमर सद्योविकसित मधुपुर्ण पुष्पों का आलिंगन करते हुए उनके मधु का संचय करने लगे। वे ऐसे थे, मानों कविगण भरतशास्त्र के अनुसार नाटक का निर्माण करने के उद्देश्य से सफल अर्थ-व्यवस्था के अनुकूल रस-संचय कर रहे हों।

हिरण अत्यन्त आनन्दित हो उठे, मानों यह सोचकर ही वे ऐसे प्रसन्न हुए हों कि हमें अपनी चितवन से परास्त करनेवाली सूक्ष्म कटि-युक्त अति सुन्दरी (सीता) को एक राक्षस ने हमारा ही रूप धारण कर दुःसह दुःख दिया है, इस कारण से उत्पन्न अपने आनन्द को हम शब्दों में व्यक्त नहीं कर पाते।

हंस छोटी नदियों में गोते लगाकर इस प्रकार आनन्दित होने लगे, मानों

दीर्घकाल के विरह से पीडित होने के कारण अब अति प्रेम के साथ अपनी प्रियतमाओं से मिलकर भरपूर आनन्द उठा रहे हों।

अपार सागर से जल भरकर चलनेवाले काले मेघों के निकट ही पंक्ति बाँधकर उड़नेवाले अति धवल बगुलों का झुण्ड कृष्ण नामक काले वर्णवाले भगवान् के वक्ष पर शोभायमान मुक्ताहार के सदृश लगता था।

सारस पक्षी, जो पंक्ति बाँधकर एक-दूसरे से सटकर वर्षाकालिक काले मेघ के निकट हो गगन में उड़ रहे थे, वे दिव्य देवों के द्वारा लक्ष्मी के नायक के रूप में वर्णित अनुपम भगवान् के वक्ष पर शोभायमान उत्तरीय वस्त्र की समता करते थे।

अधिक ताप उत्पन्न करनेवाले धूप-रूपी राजा के हट जाने तथा उत्तम सद्गुणों से भरे वर्षाकाल-रूपी राजा के आगमन के कारण विशाल पृथ्वी देवी अपने महिमामय मन में आनन्दित और शरीर से रोमांचित हो उठी हो—हरियाली इस प्रकार का दृश्य उपस्थित कर रही थी।

मयूर ऐसे लगते थे, मानों मधुवर्षी कमलपुष्प में उत्पन्न ब्रह्मा अति ज्ञानवान्, (देव) तत्त्व-ज्ञान के नायक (अर्थात्, वेद आदि के द्वारा प्रशंसित विष्णु के अवतार श्रीरामचन्द्र) के दुःख को देखकर उनका उपकार करने के उद्देश्य से कानन में सर्वत्र अपनी आँखें फैलाये हुए देवी सीता का अन्वेषण कर रहे हों।

कमलपुष्प ऐसे शोभित हो रहे थे, जैसे तरुणियों के वे चरण हों, जिनमें (शत्रुओं के रक्त से) रक्तवर्ण हुए भालों तथा दृढ धनुषों को धारण करनेवाले वीर पुरुषों के केशों को भी नया रंग देनेवाले महावर का रस लगा हुआ हो। (भाव यह है कि तरुणियों के चरण महावर से अंजित थे। प्रणय-कलह के समय वे तरुणियाँ अपने प्रियतमों के सिर पर पदाघात करतीं, तो उससे उन पुरुषों के काले केश भी लाल रंगवाले बन जाते थे।)

कोकिल मौन हो रहे, मानों उनके प्रति राघव के यह आदेश देने पर कि तुम अपनी जैसी ही बोलीवाली देवी को ढूँढ़कर लाओ, पृथ्वी में सर्वत्र घूम-घूमकर (देवी सीता को) बुलाते रहे हों और अब थककर चुप हो गये हों।

वर्षा-सिंचित भूमि पर उगी हुई हरी घास को अघाकर चरनेवाली गायें यत्र-तत्र उगे हुए 'मालान' नामक छोटे पौधों को अपने खुरों से उखाड़ देती थीं। वे पौधे, जिनमें सफेद पुष्प लगे थे, बिखरे हुए गाढ़े दही का दृश्य उपस्थित करते थे। 'पिडव' नामक पौधे के पुष्प, मधु-सदृश मीठी बोलीवाली कुड्मल-सदृश स्तनोंवाली ग्वालिनों के घटों में से छलकनेवाले दूध के झाग का दृश्य उपस्थित करती थीं।

'वैंगें' नामक वृक्ष, भीलनियों के केशों के समान सुरभित थे। पुन्नाग-वृक्ष मछुआ-स्त्रियों के केशों के समान गंध से युक्त थे, जिससे शीघ्रगामी भ्रमरकुल आकृष्ट हो रहा था। उत्पल-पुष्प अंत्यज जाति की स्त्रियों के केशों के समान गंध से युक्त थे। सद्योविकसित कुंदलताएँ ग्वालिनों के केश के समान महक रही थीं।

श्रीरामचन्द्र ने देवी सीता के वदन को नहीं, किन्तु मरणदायक मन्मथ को असंख्य सहस्र पुष्पबाण प्रदान करनेवाले वर्षाकाल को ही देखा। वे दुःख-सागर का पार नहीं देख पा

रहे थे। वे मूर्च्छित हो गये, नहीं तो वे किसको देखकर अपने प्राण को वश में रख सकते थे?

सीमाहीन वर्षाकाल के आगमन से मनुष्य शिथिलमन हो जाते हैं—यह कथन तपस्या करनेवाले मुनियों के विषय में भी सत्य सिद्ध होता है। तब उन प्रभु के दुःखी होने में क्या आश्चर्य हो सकता है, जो मधु तथा अमृत से भी अधिक मधुर बोलीवाली धवल (शंख)-वलयधारिणी सीता की भुजाओं का आलिंगन-सुख प्राप्त करते रहते थे।

नीलोत्पल, नीलकमल, अतसी-पुष्प आदि की समानता करनेवाले वे प्रभु शोकोद्विग्न हुए; वे ऐसी आशंका उत्पन्न करते थे कि कदाचित् इनकी देह में प्राण नहीं हों। इस प्रकार, व्याकुल होकर हंसिनी-सदृश सहज सुन्दरी सीता देवी के संबंध में निम्नलिखित वचन कह उठे—

हे काले मेघ! राक्षसों ने कंचुकाबद्ध स्तनोंवाली सीता को कहाँ ले जाकर छिपा रखा है? उन (राक्षसों) का आवास कहाँ है? यह भी मैं नहीं जान पाया हूँ, तो भी मैं जीवित हूँ। तुम जल से भरे हो, तो भी क्या तुम में दया नहीं है? मेरे प्राणों को क्यों व्याकुल कर रहे हो?

तुम विद्युत्-रूपी दंतों से भयंकर हो। अपने काले रूप को गगन में सब ओर फैलाकर तुम बढ़ते हो। पापी तथा मायावी राक्षसों की समता करनेवाले तुम क्या मेरे प्राणों का हरण किये बिना नहीं हटनेवाले हो?

हे मयूर! बरछे तथा तीर के समान तीक्ष्ण नयनोंवाली तथा समुद्र में उत्पन्न दिव्य अमृत एवं कोकिल के सदृश बोलीवाली मेरी देवी को ढूँढ़कर नहीं लाते हो। तुम बड़े कठोर हो। मुझ एकाकी तथा निद्राहीन रहनेवाले की मनोव्यथा को जानते हुए भी क्यों अपना बल दिखाकर मुझे सताते हो?

हे लता! वर्षाकालिक उत्तरी पवन के अनुसार तुम हिल-डुलकर मेरे प्राणों में घुस जाती हो। तुम अब पुष्पमय हो गई हो और उज्ज्वल ललाटवाली सीता की कटि के समान ही लचक-लचककर क्यों मेरे प्राणों को गला रही हो?

हे हरिण! किसी भी स्पृहणीय वस्तु को मैं अब नहीं चाहता हूँ। पराक्रमपूर्ण कार्य भी कुछ नहीं कर पा रहा हूँ। प्रज्ञा के मिट जाने से अब मैं कैसे जीवित रह सकूँगा? मेरे प्राण-समान देवी मुझसे वियुक्त हो चली गयी है। तुम कहो कि वह अब कहाँ है?

हे मेरे प्राण! पाद-कटक से भूषित तथा रूई के समान मृदुल चरणोंवाली दोषहीन जानकी के साथ ही क्या तुम भी मुझे छोड़कर जाना चाहते हो? यदि ऐसा करना था, तो जब देवी मुझसे वियुक्त हुई, तभी तुम भी निश्शंक होकर मुझे छोड़ जाते। हे मिटनेवाले, (मेरे प्राण)! क्या तुम्हें उस देवी के साथ का अपना सम्बन्ध तब ज्ञात नहीं हुआ था?

हे निष्ठुर! 'कानरै' वृक्ष, जानकी के केशों के साथ तुम्हारा वैर था, अतः तुम मेरे साथ भी कड़ा वैर निकाल रहे हो? तुम उस (जानकी) को मुझे नहीं ला देते। उसके बारे में कुछ कहते भी नहीं, भला तुम कब मेरे हितकारी रहे?

कुरवक पुष्प-सदृश तीक्ष्ण एवं उज्ज्वल दंतोंवाले घोर सर्प विष के समान ही यह कोमल पुष्पों से भरित कुंदलता भी प्राणहारी बन गई है। दुस्सह पीडाग्नि को प्रज्वलित कर

मुझे निरन्तर सताते रहनेवाले यह (इन्द्रगोप) क्या एक ही हैं ? (अर्थात्, पीडा देनेवाले अनेक हैं)। इस 'रावणकोप' के रहते हुए यह इन्द्रगोप[1] भी क्यों मुझे सताने लगा है ?

स्वर्णमय ललाट-पट्ट (ताज) पहनने योग्य ललाटवाली सीता को धोखे से हरण करने के लिए मारीच एक स्वर्णमय हिरण के रूप में आया था। अब यम (मेरे प्राणों का हरण करने के लिए) उत्तरी पवन के रूप में आया है। अहो, अहित करनेवालों को अपने इच्छानुसार रूप धरना भी संभव होता है।

भयंकर कृत्यवाले राक्षसों के समान आकाश में घोर गर्जन करनेवाले हे मेघ ! तुम बार-बार चमककर कमल-पुष्प के आवास को तजकर (मिथिला में) अवतीर्ण हुई उस (लक्ष्मी) देवी को दिखा रहे हो। क्या तुम्हारे मन में मुझपर इतनी दया उत्पन्न हो गई है कि उस सीता को लाकर मुझे देनेवाले हो ?

हे मोर (प्राणियों को पीडा देनेवाला हे मन्मथ) ! विरह-ताप मेरे अन्तर में न समाकर उमड़ रहा है और मेरे प्राणों को जला रहा है। अब (प्राणों के जल जाने के बाद भी) तुम मेरे अन्दर में पुनः-पुनः शर छोड़कर घाव कर रहे हो। यह तुम्हारा कार्य व्यर्थ है। प्रशंसनीय विद्या से युक्त मेरा अनुज यदि तुम्हें एक बार भी देख ले, तो फिर उसके क्रोध को रोकना असंभव होगा।

हे अनंग ! धनुष और तीक्ष्ण बाण इसलिए नहीं है कि भयंकर युद्ध से डरे हुए योद्धाओं पर उनका प्रयोग किया जाय, उनका प्रयोग तो उनपर करना चाहिए, जो (प्रयोग करनेवाले के) पराक्रम का आदर नहीं करते हों। तुम तो निर्दय हो, यह सोचकर कि तुम्हारा बल हम जैसे दुर्बलों पर ही सफल होगा, रात-दिन हमें सताया करते हो। क्या तुम्हारा यह कार्य प्रशंसा के योग्य है ?

इस प्रकार के वचन कहकर शिथिल तथा दुःखित होनेवाले, अपने भाई को, जो अपना उपमान स्वयं ही था, देखकर लक्ष्मण व्याकुल हुआ और अपने सिर पर कर जोड़कर इस प्रकार सांत्वना के वचन कहने लगा—हे महात्मन् ! आपने अपने को क्या समझा है ?

विवेक एवं विद्या से सुसंपन्न हे सिंह ! हे तपःसंपन्न ! वर्षाकाल का भी अन्त होता है। आप क्यों इस प्रकार दुःखी हो रहे हैं ? क्या आप इसलिए चिंतित हैं कि वर्षा का आगमन हो गया है ? अथवा काले राक्षसों के पराक्रम का विचार करके आप दुःखी हो रहे हैं ? या यह सोच रहे हैं कि वाली के द्वारा निर्मित वानर-सेना अभी तक देवी के अन्वेषण के लिए आई नहीं है ?

वेद भले ही भ्रम में पड़ जाय, चन्द्र अपने स्थान से विचलित हो जाय, गगन तथा गंभीर समुद्र से आवृत धरती भी हिल उठे, किन्तु तुममें वैसी अस्थिरता (चांचल्य) कभी संभव नहीं है। अनेक चन्द्रकला-समान बड़े दाँतों से युक्त अज्ञ राक्षसों का प्रभाव क्या तुम्हारे भव्य भृकुटि-रूपी धनुष के वक्र होने मात्र से विनष्ट नहीं हो जायगा।

---

१. 'कोप' और 'गोप'—दोनों शब्द तमिल में एक ही जैसे लिखे जाते हैं। अतः, तमिल में 'रावणगोप' और 'इन्द्रगोप शब्दों को 'रावणकोप' और 'इन्द्रकोप' भी पढ़ा जा सकता है।—अनु०

हे ज्ञानवान् ! हनुमान् नामक व्यक्ति के (ज्ञान, शक्ति इत्यादि गुणों के) परिमाण को हमने जान लिया है। किन्तु, अंगद आदि ५६० समुद्र संख्यावाले वानरों के स्वरूप को हमने देखा नहीं है। पाप के समान दुःखदायक (वर्षाकाल के) मास भी शीघ्र बीत रहे हैं, आपकी धनुष-समान भौंहोंवाली देवी सुलभता से आ पहुँचेगी, यह निश्चित है, (अतः) आप शोक छोड़ें।

हे प्रभो ! पहले जब अरण्यवासी वेदों के पारगामी मुनि तुम्हारी शरण में आये थे, तब तुमने प्रतिज्ञा की थी कि 'तुम लोगों को सतानेवाले मायावी राक्षसों को परास्त करके तुम्हारे कष्ट दूर करूँगा।' विधिवश तुम्हारे प्रति भी उन (राक्षसों) ने अपराध किया है, अतः उन राक्षसों का विनाश करो और मधुर यश प्राप्त करो तथा और देवों को भी स्वर्गलोक दिलाओ। अब इस प्रकार प्रज्ञाहीन हो रहना उचित नहीं है।

हे मेरे प्रभु ! शत्रु-विजय करने का श्रेय तुमको ही प्राप्त होगी, अन्यथा यह यश और किसको मिल सकता ? शोक करना वीरता का कार्य नहीं है, वह तो दुर्बलता है। यह उचित है कि हम समय की प्रतीक्षा करें और उसके अनुसार कार्य करें। यदि आप अभी प्रयत्न करना चाहते हों, तो भी आपके लिए असाध्य कार्य कुछ नहीं है। आप शोक से उद्विग्न न हों—इस प्रकार (लक्ष्मण ने) कहा।

शिथिलप्राण हो निश्चेष्ट बैठे हुए आदि भगवान् (के अवतार रामचन्द्र) अनुज के वचनों से सांत्वना पाकर शोक-मुक्त हुए, इस प्रकार अनेक दिन व्यतीत हुए। एक रोग के शान्त होते ही दूसरा रोग उत्पन्न हो गया हो, ऐसे ही अब वर्षाकाल का उत्तरार्ध आरम्भ हुआ।

बड़े-बड़े जलाशय भर गये। उनमें तरंगें घनी होकर उठने लगीं। काले वर्णवाले कोकिल दुर्बल हुए, ऊँचे पर्वत ठंडे हुए, विशाल दिशाएँ अदृश्य हुईं, अपने प्रियतमों से वियुक्त व्यक्ति दुःखी हुए, क्रौंचों के जोड़े एकप्राण होकर परस्पर गाढालिंगन में बँध गये।

उत्तरी पवन, स्वर्णमय आभरणों से भूषित अप्सराओं के अनिंदनीय विशाल जघन-तट के वस्त्रों तथा उनके झूलों का स्पर्श करके उनके प्रेम से पीडित हुए व्यक्तियों पर ऐसे जा लगता था, जैसे जले हुए घाव में तीक्ष्ण वाण चुभ गया हो।

समुद्र भर गये, सूर्य-किरणें अपना ताप तजकर ठंडी हो गई। जल से आँके जानेवाले घटी-यन्त्र के द्वारा ही समय का ज्ञान संभव था, अन्यथा यह जानना असंभव था कि कब दिन हुआ है और कब रात।

मयूर-सदृश तरुणियों की कोमल मधुर बोली से पराजित होनेवाले तोते धान के पौधों में जा छिपते थे, जिससे धान की बालियाँ टूट जाती थीं। (रमणियों के) धवल तथा मृदु दंतों से पराजित मुक्ताएँ विशाल सागर की लहरों में छिपी पड़ी रहती थीं। 'नेयिदल' प्रदेश (समुद्री तटों) की युवतियों के आँगनों में उत्पन्न होनेवाले पुष्पित 'पुन्नै' वृक्ष मानों सोने की गठरी को खोल रहे थे।

ऊँचे हाथी उज्ज्वल तथा बड़ी बूंदों के गिरते रहने पर भी पर्वत के समान अचल तथा निद्राहीन स्थिर खड़े थे, जैसे काली रात तथा दिन के समय में निरंतर ध्यानरत रहनेवाले दृढचित्त तपस्वी हों।

शीत से काँपनेवाले हंस, चन्दन-वृक्ष के पत्तों से छायी हुई झोपड़ियों के भीतर, वेदिकाओं के निकट होम-कुण्डों में प्रातः और संध्या को जलाई जानेवाली अगरु की लकड़ियों के धुएँ में घुस-घुसकर अपनी ठंड दूर कर लेते थे। वानरियाँ पर्वत-कंदराओं में सोई पड़ी थीं। बलिष्ठ वानर ऐसे सिकुड़े बैठे थे, जैसे अष्टांगयोग की प्रक्रिया के द्वारा अपनी इंद्रियों का दमन करनेवाले अनुपम योगी हों।

मेघ घोर वर्षा कर रहे थे, जिससे निर्मल पर्वत निर्झरों की धाराएँ तरुणियों के केश-पाश की सुगन्धि से सुवासित नहीं हो पाती थीं—(अर्थात्, तरुणियाँ उनमें स्नान नहीं करती थीं)। रत्नमय स्तंभों पर डाले गये झूले सूने पड़े थे। मंच, चमकते हुए रत्नों को आकाश में नहीं फेंकते थे (अर्थात्, अनाजों के खेत में बने मंचों पर खड़े होकर अब कोई पक्षियों को उड़ाने के लिए रत्नमय पत्थरों को नहीं फेंकता था।)

केतकी-वृक्षों के काले तथा शीतल पत्तों के मध्य कामोद्दीपक पुष्प पंक्तियों में खिले थे और उनके घेरे के मध्य सारसियाँ अपने विशाल तथा सुन्दर पंखों को सिकोड़े ऐसे बंदी थीं, जैसे अपने प्रियतम के विरह में पीडित स्त्रियाँ हों।

नाना विहग मृदंग के समान नाद कर रहे थे। विविध भ्रमर संगीत कर रहे थे। मयूर नृत्य की विविध भंगियाँ दिखा रहे थे और अनेक प्रकार के नृत्य दिखानेवाली वेश्याओं की समता करते थे। और, हरिण-समुदाय, जो मेघ-गर्जन से भयभीत होकर वृक्षों के नीचे आ ठहरते थे, (उस नृत्य के) दर्शक बने थे।

कोमल पुष्प-शाखा को परास्त करनेवाली कटि से शोभित तरुणियाँ तथा युवक अगरु-धूम से आवृत होनेवाले दीपों के प्रकाश में पर्यन्त पर शयन करते थे। शीत से काँपनेवाले भ्रमर पुष्प का त्याग कर, चन्दन-वृक्ष के कोटरों में विश्राम करते थे।

मनोहर हंसों के जोड़े कमल-शय्या को तजकर बड़े वृक्षों से भरे उद्यानों में आ ठहरे थे। सुगन्धित लकड़ियों से बने हुए झोपड़ों में धवल दंतोंवाली व्याध-स्त्रियों के साथ उनके प्रियपुरुष निद्रा करते थे।

ग्वाले लताओं से आवृत अत्युन्नत तथा छोटे पत्तोंवाले वृक्ष के नीचे बकरियों के बच्चों को गोद में लिये पड़े थे। चोरों के समान छिपकर फिरनेवाले भूत भी भूखे ही दाँत कटकटाते हुए एक स्थान में खड़े थे।

बड़े-बड़े दृढचित्तवाले हाथी आकाश के मेघों से बाण-सदृश पानी की बूँदों के अपने शरीर पर गिरने से सिकुड़ जाते थे और पर्वत के सानुओं के ऊपर जहाँ मधु के पुराने तथा असंख्य छत्ते लगे थे, नहीं रह पाते थे और कन्दराओं के भीतर घुस जाते थे।

इस प्रकार के वर्षाकाल में रात्रि का अंधकार भी आ पहुँचा। तब ज्ञानवान (रामचन्द्र) ने अंजन-सदृश आँखोंवाली तथा मंदहास-युक्त जानकी की याद में ज्वाला-सी निःश्वास भरते हुए लक्ष्मण से कहा—

आभरण-भूषिता, पीनस्तनी वह (सीता) मेघ के सदृश काले रंगवाले तथा बिजली के सदृश दाँतोंवाले राक्षस की माया का लक्ष्य बनकर पीडित हो अपने प्राण छोड़ेगी। मेरे लिए भी जीवित रहना सर्वथा असम्भव है। आह! यह कैसी अवस्था है।

शुभ्र वर्णवाले तथा विनाशकारी शर मेरे तूणीर में सोये पड़े हैं। मैं गगनोन्नत भुजावाला होकर भी इस प्रकार की पीडा भोग रहा हूँ। मेरी ऐसी दशा है, मानों मेरे कंठ में बरछा चुभा हो, फिर भी मैं निष्प्राण नहीं हुआ हूँ।

पक्षी जोड़ों के भीतर चमकते हुए जुगनुओं के प्रकाश में अपनी संगिनियों के साथ सो रहे हैं। (मन्मथ के द्वारा) चुनकर फेंके गये पुष्पबाणों से मेरा हृदय छिन्न हो गया है और दुःसह पीडा से पीडित हो रहा हूँ। फिर भी, मैं जीवित हूँ।

मेघ में विद्युत् की कौंध को और वज्र के गर्जन को देखता तथा सुनता हुआ मैं विषदंतवाले सर्प के समान पीडित होकर चुप पड़ा हूँ। वनवास में मैंने जो कार्य किये हैं, उनपर स्वर्गवासी (देवता) और धरतीवासी (मनुष्य) हँसेंगे। अब (मेरे अपमान के लिए) और क्या आवश्यक है ?

वेदना से पीडित होता हुआ मैं (सीता को) भूलकर जीवित नहीं रह सकता हूँ। यदि वर्षा इसी प्रकार रहेगी, तो मेरा प्राण त्याग कर स्वर्ग पहुँचना निश्चित है। तो क्या मैं इस अपयश को अगले जन्म में ही मिटा सकूँगा। कदाचित् अगले जन्म में भी मैं गृहस्थी से संन्यास लेकर ही यह अपयश मिटा सकूँगा।

हे वीर ! इस स्थान पर रहकर यदि हम राक्षसों का पता लगावें, तो बहुत समय व्यतीत होगा। अतः, यह प्रयत्न (सीता का अन्वेषण) आवश्यक नहीं। मेरे लिए इसी में यश है कि मैं (सीता की) विरह-पीडा में प्राण त्याग दूँ।

मैं शर-सदृश उज्ज्वल कटाक्ष-पूर्ण नयनोंवाली तथा श्रेष्ठ आभरणों से भूषित (सीता) के प्रवाल वर्णयुक्त तथा कुमुद-सदृश अधर का अमृतपान करता रहा। यह वर्षा मानों ताँबे को पिघलाकर बरसा रही है और मेरे शरीर को जला रही है। तो, क्या अब ऐसे ही मरना मेरे लिए उचित है ?

घृत की आहुति देकर प्रज्वलित की हुई अग्नि के समक्ष, जनक ने मुझसे कहा था कि यह (सीता) तुम्हारी शरण में है। उनके उस वचन को मैंने असत्य कर दिया है। ऐसे मुझ अधार्मिक व्यक्ति में सत्य कैसे टिक सकता है ? अतः, अब मुझे मर जाना ही उचित है।

सांत्वना देने के लिए तुम हो। सांत्वना पाकर सहन करने के लिए मैं हूँ। कंकण-धारिणी (सीता) अब यहाँ आ जाय—यह संभव नहीं है। इस पीडा को कौन दूर कर सकता है ? क्या इस पीडा का कभी अन्त भी होनेवाला है ?

मैं श्रेष्ठ शरों को चुन-चुनकर प्रयोग करूँ, तो उनसे जब सत्यलोक जल जाय, देवता प्रभृति सृष्टि के अतिप्राचीन व्यक्ति मिट जायँ तथा सभी लोक एवं वहाँ के प्राणी अशेष रूप से ध्वस्त हो जायँ, तभी क्या मैं मयूर-सदृश उस (सीता) को देख सकूँगा ?

वज्र-निर्घोष-सदृश टंकार से युक्त धनुष को धारण करनेवाले हे वीर ! इस प्रकार मैं सब लोकों तथा वहाँ के प्राणियों को न मिटाकर पीडा का अनुभव करता हुआ बैठा हूँ, तो यह इसी डर से कि (वैसा करके) मैं धर्म की रक्षा नहीं कर पाऊँगा ; अन्यथा शत्रु-राक्षस सब देवताओं के साथ मिलकर मेरे विरुद्ध आवें, तो भी वे मुझसे बच नहीं सकते।—राम ने इस प्रकार कहा।

तब अनुज ने कहा—हे आज्ञा-रूपी चक्र से युक्त प्रभु ! जिस वर्षा ऋतु को हमने यहाँ व्यतीत करना चाहा, वह अब व्यतीत हो चुका है। शरद्-काल भी अब समाप्ति पर आ गया है। अतः, उस चोर (रावण) के आवास को खोजकर पहचानने का समय आ पहुँचा है। अब आप क्यों शिथिलमन हो रहे हैं ?

अरुण नयनवाले विष्णु भगवान् के यह आज्ञा करने पर कि तुम अमृत-तरंगों से पूर्ण विशाल क्षीरसागर से अमृत को दे सकते थे, फिर भी वैसी आज्ञा देना उचित न समझकर, पर्वत आदि सभी मंथन-उपकरणों के द्वारा उसे मथकर ही अमृत को निकलवाया था।

चक्रधारी भगवान् यदि मन में संकल्प-मात्र कर लें, तो समस्त लोकों के टुकड़े-टुकड़े करके उन्हें अपने मुँह में डालकर चबा डालें, तो भी वह वैसा नहीं करता ; परन्तु अनेक बड़े शास्त्रों को लेकर युद्ध करके ही सब (दुर्जनों) को वह विजित करता है।

हे महाभाग ! ललाटनेत्र तथा परशुधारी शिव भगवान्, जब क्रुद्ध होकर, आकाश में संचरण करनेवाले त्रिपुरों को ध्वस्त करने लगे, तब उन्होंने जो-जो उपाय किये थे और जो-जो उपकरण जुटाये, उन्हें कौन जान सकता है ?

यदि हम अपने अनुकूल रहनेवाले सब (मित्रों) को अपना साथी बना लें, मंत्रणा करने योग्य सब विषयों को भली भाँति विचार कर निर्णय करें, फिर उचित समय को पहचानकर उचित ढंग से कार्य करें, तब 'विजय' नामक वस्तु क्या हमसे दूर रह सकती है ?

बलवान् राक्षसों ने धर्म-मार्ग से विमुख होकर अधर्म-मार्ग को ही अपने लिए ग्राह्य मान लिया है, उचित सन्मार्ग से जब वे (राक्षस) भ्रष्ट हो गये हैं, तब यश और विजय दोनों (तुम्हारे सिवा) अन्य किसके पास होंगे ?

स्वर्ण-आभरण पहननेवाली उन देवी के कष्टों को दूर करने का समय धीरे-धीरे आ पहुँचा है। अब आप दुःख-मुक्त हो जायँ ? ऋषि-मुनियों की सहायता करनेवाले हम क्या राक्षसों के (शस्त्रों के) लक्ष्य बनेंगे ? हे मनोहर धनुष धारण करनेवाले ! आप ही कहिए।—इस प्रकार लक्ष्मण ने कहा।

युगों के अधिपति (विष्णु भगवान् के अवतार रामचन्द्र ने) लक्ष्मण के वचनों को उचित समझा। इसी प्रकार, जब वे यह सोचते हुए कि क्या इस वर्षाकाल का भी कभी अन्त होनेवाला है, कृश हो रहे, तब वर्षाकाल भी समाप्ति पर आ गया।

महान् दान-कार्य में निरत कोई उदार व्यक्ति, धरती के सभी लोगों को उनके इच्छानुसार सभी पदार्थ का दान देकर निर्धन हो गया हो और फिर, किसी उत्तम याचक के द्वारा कुछ माँगे जाने पर उसे दान देने के लिए अपने पास कुछ न होने से लज्जित हो गया हो। इसी प्रकार सब मेघ श्वेत वर्ण हो गये (अर्थात्, शरत्काल आ गया)।

पाप-पुण्य नामक दो कर्मों के फल को जानने से सद्विवेक के प्राप्त होने पर जिस प्रकार अविद्या के तम मिट जाते हैं, उसी प्रकार (शरत्काल के आगमन पर) वर्षाकाल का गाढ अन्धकार मिट गया।

जिस प्रकार घोर युद्ध के समाप्त होने पर युद्ध की भेरी निःशब्द हो जाती है, उसी प्रकार जल-भरे मेघ भी गर्जन करना छोड़कर निःशब्द हो गये। भयंकर बाणों के सदृश

वर्षा की बौछार भी थम गई। जैसे करवाल कोषों में बंद करके रख दिये गये हों, वैसे ही विद्युत् भी अदृश्य हो गई।

विशाल प्रान्तवाले ऊँचे पर्वत अपने सानुओं के निर्झरों से रहित हो गये। उनके केवल कुछ जल-स्रोत ही बहते रह गये। वे (पर्वत) ऐसे लगते थे, मानों वे यज्ञोपवीत और उत्तरीय के साथ श्वेत वस्त्र भी कटि में धारण किये हों।

पर्वतों के ऊपर से मेघों के हट जाने से दिगंतों तक प्रवाहित होनेवाली नदियाँ जल-रहित हो गईं। अतः, वे (नदियाँ) सन्मार्ग पर न चलनेवाले उस व्यक्ति के समान थीं, जो उत्तम पुण्य के घट जाने पर निर्धन हो गया हो।

गंड-स्थलों से मद-जल बहानेवाले हाथियों के समान स्थित काले मेघ गगन के प्रदेश को उन्मुक्त छोड़कर उड़े जा रहे थे। चन्द्रमा इस प्रकार चमक उठा, जिस प्रकार यवनिका के उठने पर विविध नाट्य-भंगियाँ दिखानेवाली नर्त्तकी का वदन हो।

उत्तरी पवन पुष्प-मकरन्द को बिखेरता हुआ इस प्रकार प्रवाहित हो उठा, जिससे स्वर्णमय आभरण धारण करनेवाली तरुणियों के विशाल तथा मनोज्ञ स्तनों पर अंकित चन्दन, कस्तूरी, कुंकुम आदि का लेप सूख गया।

हंस गगन में सभी दिशाओं में मानों यह सोचकर उड़ रहे थे कि दशरथ चक्रवर्त्ती के कुमार (श्रीराम) के दुःख को दूर करने के लिए उचित समय अब आ गया है। अतः, हम भी (सीता) देवी का अन्वेषण करने चलें।

सरोवरों का जल छल-कपट से रहित तपस्वी जनों के मन के सदृश स्वच्छ हो गया। उन जलाशयों में विचरनेवाले मीन, 'रुई पर चलना है'—इस कथन को सुनने मात्र से जिनके कोमल चरण लाल हो जाते हों, ऐसी सुन्दर युवतियों के अंजन-लगे नयनों के समान घूम रहे थे।

नालों पर विकसित कमल-पुष्प रूठी हुई तरुणियों के वदन की समता करते थे। 'किडै' नामक पौधे, जिनमें अतिसुन्दर, सुगंधित तथा रक्तवर्ण पुष्प भरे थे, सुरत-श्रांत युवतियों के रक्त अधरों का दृश्य उपस्थित करते थे।

अनेक प्रकार के मेढ़क जो (वर्षाकाल में) शिक्षा देने में चतुर अध्यापकों के पास पाठ सीखनेवाले कोलाहल से पूर्ण बटुकों के समान बोल रहे थे, अब उन बुद्धिमानों के समान ही मौन हो गये, जो अपना वचन जहाँ फलप्रद होता हो, वहीं बोलते हैं और अन्यत्र मौन रहते हैं।

मेघों की विशाल वर्षा से हीन होकर मयूर अपने पंखों को सिकोड़े हुए दुःखी बने हुए और मन में कोई भी उमंग या फल की कामना से रहित होकर मिथिला-नगर के हंस (अर्थात्, देवी सीता) के समान ही व्याकुल हो दबे पड़े रहे।

समुद्र, मानों अपने तरंग-रूपी करों से नदी-रूपी अपनी पत्नियों के उमड़ते हुए जल-रूपी सुन्दर आँचल को पकड़कर खींच रहे थे और वे नदियाँ मानों अपने बलवान् पति का आलिंगन करके मंदहास कर रही थीं, जो (मंदहास) मुक्ताजल का दृश्य उपस्थित करते थे।

गुवाक (सुपारी)-वृक्षों के फल, शास्त्रों के ज्ञानमय वचनों का श्रवण करनेवाले

पुरुषों के समान तथा विरह से पीडित तरुणियों के समान ही धीरे-धीरे अपने पूर्व रंग का त्याग कर अनिन्दनीय सुनहले रंग को प्राप्त करने लगे।

मगर नामक प्राणी, अनेक दिनों तक जल में रहने से शीत की पीडा से व्याकुल होकर जलाशयों से बाहर धूप में ऐसे पड़े हुए थे कि सूर्य की कांति उनके शरीर पर बिखर रही थी। इस प्रकार, जलाशयों के तटों पर अनेक स्थानों में अपने मुख को बन्द किये वे सोये पड़े थे।

'वंजी' नामक लताएँ, जिनमें (बैठकर) तोते मधुर स्वर में बोल रहे थे, जिनमें मनोहर पंखोंवाले भ्रमर केशों का दृश्य उपस्थित करते हुए उड़ रहे थे, जिनमें अतिसुन्दर पल्लव थे (जो कान की समता करते थे) और जो कटि के समान ही लचक-लचक जाती थीं, तरुणियों के समान शोभायमान थीं।

घोंघे, जिनकी पीठ झुकी हुई थी, अपने नेत्रों को सिकोड़कर कीचड़ में धँस गये, मानों उनके द्वारा उत्पन्न किये गये मोती के (रमणियों के दाँतों से) पराजित हो जाने से वे हरिण-सदृश रमणियों के सम्मुख प्रकट होना नहीं चाहते हों।

वर्षा के कारण पुष्ट हुए समतल प्रदेशों के कमल-पुष्पों के विशाल पत्तों की छाया में विश्राम करनेवाले दोषहीन केंकड़े अब अपनी स्त्रियों के साथ अपने बिलों में उनके द्वारों को बन्द करके ऐसे पड़े थे, जैसे लोभी व्यक्ति हों। (१–१२१)

अध्याय १०

किष्किन्धा पटल

इस प्रकार शरत् काल जब व्यतीत होने लगा, तब वीर अग्रज राम ने अपने अनुज को देखकर कहा—हे वीर ! निश्चित अवधि व्यतीत हो गई। किन्तु, निद्रा में पड़ा हुआ वह राजा (सुग्रीव) अभी तक नहीं आया। उसका यह कैसा कार्य है ?

वह (सुग्रीव) दुर्लभ राज्य-संपत्ति को पाकर हमारे उपकारों को भूल गया है। अतः, उत्तम सदाचार से वह भ्रष्ट हो गया है, धर्म को भुला दिया है, इसके प्रति किये हमारे स्नेह की बात छोड़ दो, वह हमारे पराक्रम को भी भूल गया है। इस प्रकार वह सुखी जीवन में मत्त हो गया है।

जो कृतघ्न होकर अपूर्व रूप में प्राप्त स्नेह को भी भुला दे, उचित सत्य को मिटा दे एवं अपने प्रण को पूर्ण न करे, उसको मारना दोष नहीं है। अतः, तुम जाओ और उसकी मनोदशा को जानकर लौट आओ।

तुम जाकर यह मेरा संदेश उस (सुग्रीव) को दो कि घोर पापियों को युद्ध में निर्मूल करके स्वर्ग भेजने तथा (लोक में) धर्म को सुरक्षित बनाने के लिए मैंने जो धनुष

उठाया है, वह अभी वर्त्तमान है। भयंकर यम भी है। तुमलोगों को मारनेवाला बाण भी मेरे पास है।

विष के समान व्यक्तियों को दण्ड देना पाप नहीं है। मनु का यही विधान है। इस बात को तुम उस (सुग्रीव) के हृदय में बिठा दो, जिसने पाँच वर्ष (की आयु) में कुछ नहीं जाना।

तुम उससे यह सत्य वचन भी कहना कि यदि वह चाहता है कि नगर, प्रजा, राज्य तथा अपने बन्धुजन—इन सबके साथ स्वयं भी राज करता हुआ सुखी रहे, तो अविलंब यहाँ चला आये। यदि वह इस प्रकार नहीं आयगा, तो संसार में वानरों का नाम तक शेष नहीं रहेगा।

यदि सुग्रीव प्रभृति वानर, हमसे भी अधिक बलवान् वीर को खोजने का विचार करें, तो उनसे कहना कि तुमको (अर्थात् , लक्ष्मण को) जीतनेवाला तीनों भुवनों में तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं है।

तुम पहले उन्हें नीतिमार्ग को समझाना। यदि उस वचन से उनका मन न बदले, तो तुम क्रुद्ध न होना और वहीं उन्हें मिटा न देना। किन्तु, उनके दिये उत्तरों को मेरे पास आकर कहना।—यों कहकर यशोभूषित (रामचन्द्र) ने लक्ष्मण को विदा किया।

रामचन्द्र की आज्ञा को सिर पर धारण करके, उनके चरणों को नमस्कार करके, किंचित् भी विलंब न करके अपनी विशाल पीठ पर तूणीर बाँध तथा शर-प्रयोग के लिए अतिश्रेष्ठ धनुष को कर में लिये हुए, अनन्यचित्त से वह (लक्ष्मण) दुर्गम मार्ग पर चल पड़ा।

(राम की) आज्ञा से चलनेवाला वह (लक्ष्मण) सुकुमार होते हुए भी (पूर्व में सुग्रीव जिस मार्ग से उन दोनों को किष्किंधा तक ले गया था उसी) पूर्व-प्रसिद्ध मार्ग से नहीं गया ; किन्तु वृक्षों और शिलाओं को चूर-चूर करके उन्हें दूर फेंकता हुआ एक नया मार्ग बनाकर उसपर चला। (भाव यह है कि सुग्रीव ने प्रसिद्ध मार्ग में कोई रुकावट अथवा हानिकारक उपाय कर रखा होगा, इस विचार से लक्ष्मण उस मार्ग से नहीं गये।)

वीर-कंकण से भूषित लक्ष्मण के अरुण चरणों की चाप से, स्वर्ग को छूनेवाले मेरु पर्वत-जैसे ऊँचे उठे हुए पर्वत धरती में धँसकर समतल हो गये। पाताल में स्थित कर्ण-नेत्र (अर्थात् , सर्प या आदिशेष) भी लोगों की दृष्टि में आ गया।

बलिष्ठ वाली के भाई के पास जानेवाला मनुकुल श्रेष्ठ का अनुज, भयंकर अरण्य को भेदकर अतिवेग से आगे बढ़ता हुआ, गगन-चुम्बी सालवृक्षों को छेदनेवाले (राम के) बाण की समता करता था।

किसी दिग्गज के बच्चे के खो जाने पर उसे ढूँढ़ता हुआ, उसके पद-चिह्नों का अनुसरण करके दूसरा कोई दिग्गज चल पड़ा हो—सुग्रीव को ढूँढता हुआ जानेवाला वह लक्ष्मण वैसे ही लगता था।

जिस प्रकार सूर्य ऊँचे उदयाचल से अस्ताचल पर जा पहुँचा हो, उसी प्रकार स्वर्ण की कांति से युक्त शरीरवाला लक्ष्मण एक ऊँचे उज्ज्वल पर्वत से (ऋष्यमूक से) दूसरे पर्वत पर (किष्किंधा पर) शीघ्र जा पहुँचा।

अपने रक्षक अग्रज के अनुपम शर के समान वह अत्युन्नत किष्किन्धा-पर्वत पर जा पहुँचा। वह एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर फाँदकर जानेवाले स्वर्णरंग केसरी की समता करता था।

उसे देखकर वानर, ऐसे भागे, जैसे यम को देख लिया हो। वे वालिकुमार के निकट जा पहुँचे और उससे कहा—हे प्रभु! अतिक्रुद्ध रामानुज चंडवेग से यहाँ आ रहा है। यही सुनते ही—

वह कुमार भी, साहसिक कृत्य करनेवाले लक्ष्मण के आगमन का कारण जानने के लिए (लक्ष्मण के) समीप आया और उस चक्रवर्ती कुमार के मन का भाव पहचानकर स्वर्ण का वीर-कंकण धारण करनेवाले अपने पितृव्य (सुग्रीव) के प्रासाद में जा पहुँचा।

नल (नामक वानर-शिल्पी) के द्वारा निर्मित प्रासाद में पुष्प-दलों की शय्या पर पड़े उस सुग्रीव के निकट जा पहुँचा, जो दीर्घ कुंतलों तथा बाल-स्तनोंवाली रमणियों के द्वारा अपने सुन्दर पैरों को सहलाये जाते हुए, निद्रा का अतिथि बनने की इच्छा कर रहा था।

जो स्वच्छ ज्ञानवाले राम-लक्ष्मण के द्वारा प्रदत्त उस विशाल राज्य-सम्पत्ति-रूपी मदिरा का पान करके अतिमत्त हो गया था, जो अति उज्ज्वल स्वर्ण-पर्वत के मध्य ठहरे हुए ऊँचे रजत-पर्वत के समान शोभायमान था।

जो, सिंधुवार, साखू, अगरु, चंदन तथा सुगन्धित लताओं तथा सुरभित पुष्पों का स्पर्श करके बहनेवाले बाल-पवन के कारण सुख-निद्रा में मग्न था।

जो मधुर 'किडै' (नामक फूल) के समान अधखिली स्त्रियों के, धवल हास करनेवाले मुक्ता-सदृश पैने दंतों से मधु-समान जो रस उत्पन्न होता था, उसका पान करके उन्माद, मूर्च्छा तथा अन्य (तंद्रा, शिथिलता आदि) गुणों के बढ़ जाने से मत्त गज के समान पड़ा था।

जो, मुकुट, कुंडल आदि के कांति-पुंजों के व्याप्त होने से ऐसा उज्ज्वल लगता था, जैसे सूर्य-किरणों से आवृत हिमाचल हो।

वह सुग्रीव लेटा था। तारा के गर्भ से उत्पन्न वीर अंगद पहले उसके समीप गया और अपने विशाल करों को जोड़े, उसे निद्रा से जगाने के लिए मृदु वचन कहने लगा—

हे मेरे पिता! मेरे वचन सुनिए। उन रामचन्द्र का अनुज, अपने मुख से अपने मन के महान् क्रोध को प्रकट करते हुए अवार्य वेग से आ पहुँचा है। अब आपका विचार क्या है? कहिए।

वह (सुग्रीव) राज्य-सम्पत्ति के मोह में भूला हुआ था और सुगंधित मद्य-रूपी विष भी उसके शिर पर चढ़ा हुआ था। अतएव प्रज्ञा-रहित हो कोमल पर्यंक पर पड़ा था; अंगद के वचनों को वह सुन नहीं सका।

यह दशा देखकर करिशावक एवं केसरी की समता करनेवाला वह युवराज (अंगद), यह सोचकर कि अब सुग्रीव के सम्मुख खड़े रहने से कुछ न होगा, दोषरहित चित्तवाले हनुमान् को बुलाने के लिए उसके पास गया।

इंद्रपुत्र का सुत (अंगद) मंत्रणा में अतिकुशल वायुकुमार को साथ लिये हुए उग्र सेनापतियों के साथ चलकर (सुग्रीव के प्रासाद से) बाहर निकलकर अपनी माता के प्रासाद की ओर चला।

वहाँ पहुँचकर उसने (तारा से) प्रश्न किया कि अब क्या करना चाहिए ? तब तारा ने उत्तर दिया—तुमलोग न करने योग्य पाप-कर्म सुलभता से कर डालते हो, फिर उन कर्मों के परिणाम को अनायास ही दूर करने का उपाय भी करना चाहते हो। क्या उपकार को भूलकर (कृतघ्न होनेवाले) तुमलोग (पाप से) मुक्त हो सकते हो ?

उसने फिर आगे कहा—विजयी (रामचन्द्र) ने तुम्हें सेना-सहित आने की जो अवधि दी है, यदि वह व्यतीत हो जायगी, तो तुम लोगों के जीवन की अवधि भी समाप्त हो जायगी—यों मेरे कहते रहने पर भी तुमलोगों ने कुछ सुना नहीं। अब देखो, तुमलोग कैसे फँस गये हो।

जिन वीर ने अपने धनुष को ऐसा झुकाया कि यम ने वाली के अपूर्व प्राणों का हरण कर लिया और जिन्होंने तुमलोगों को अतुलित राज्य-सम्पत्ति प्रदान की, वे भी आज तुम्हारी उपेक्षा-योग्य हो गये हैं। तुम्हारे जैसे स्वभाववाले लोगों के लिए यह कार्य (रामचन्द्र की उपेक्षा करना) ठीक ही तो है।

देवताओं से भी उत्तम वे (राम) अपनी पत्नी के वियोग में निष्प्राण-से हो मूर्च्छित पड़े हैं। इधर तुम उनकी उस व्यथा को मन में भी न लाकर सद्योविकसित नीलोत्पल-समान नेत्रवाली रमणियों के प्रेमामृत का पान कर रहे हो।

(तुमलोग) सत्य से मुकर गये हो, कृतघ्न हो गये हो। तुमलोगों के पापों का परिणाम अब दीख रहा है। तुमलोग इस प्रकार गुणहीन हो गये हो। यदि उन महावीर (राम) से युद्ध मोल लोगे, तो विनष्ट हो जाओगे।—जब तारा इस प्रकार उनकी भर्त्सना करती हुई बोल रही थी, तब—

उधर बड़े-बड़े पराक्रमी वानरों ने नगर के विशाल कपाट को, जो बड़ी अर्गला से बंद करने योग्य था, बन्द करके भीतर से अर्गला डाल दी और बड़ी शिलाओं को लाकर (उस कपाट के पीछे) चुन दिया।

वे वानर-वीर इस प्रकार नगर-द्वार को सुरक्षित करके और यह विचार कर कि (यदि कदाचित् लक्ष्मण भीतर प्रविष्ट हो जाय तो) उनसे युद्ध करने के लिए सन्नद्ध रहना चाहिए, वृक्षों को तोड़कर एवं बड़ी शिलाओं को उखाड़कर हाथ में लिये हुए, प्राकार के समीप खड़े रहे।

राजपुंगव (लक्ष्मण) ने यह सोचते हुए कि ये हमसे बचना चाहते हैं, क्रोध से मंदहास करके, लक्ष्मी के निवास कमलपुष्प की समता करनेवाले अपने चरण से, उस नगर के कपाट पर अनायास ही आघात किया।

उनके दिव्यचरण का स्पर्श पाते ही वह नगर-कपाट, सुरक्षा के लिए द्वार पर रखी शिलाएँ तथा दृढ़ प्राचीर, सब ऐसे विध्वस्त हो गये, जैसे अस्पृश्य पाप-पुंज हों।

वह दृढ़ कपाट, वह पुरातन नगर-द्वार, शिलाओं से निर्मित प्राचीर, सब सहज ही

ढहकर सब दिशाओं में दस योजन तक बिखर गये। तब वानर भय से विह्वल हो उठे।

उस दृढ तथा उन्नत प्राचीर और उस विशाल नगर-द्वार के ढहकर गिरने से पत्थरों के प्रहार से शिर में चोट खाये हुए वानर व्याकुल होकर दीर्घ दिशाओं में भागकर अपने अपूर्व प्राणों को बचा पाये।

अकथनीय घोर दुःख पाकर, अपना स्थान छोड़कर भागे हुए दोषहीन वे वानर, भयभीत होकर घोर शब्द करने लगे। उस ध्वनि से वह (किष्किन्धा) नगरी, उन्नत शिखरवाले मंदर-पर्वत से मथे जानेवाले मीन-भरे तथा शब्दायमान समुद्र की समता करने लगी।

अनेक वानर, भयभीत होकर, किष्किन्धा पर्वत से हटकर समीपवर्त्ती वनों में जा छिपे। उससे वह ऊँचा (किष्किन्धा) पर्वत, ऐसा लगने लगा जैसा नक्षत्रपूर्ण आकाश नक्षत्रहीन होने पर दीखता है।

उस समय प्रतापी (रामचन्द्र) की आज्ञा-रूपी चक्र के जैसे लगनेवाले वे (लक्ष्मण) उस स्वर्णमय नगर की वीथियों में प्रविष्ट हो चलने लगे। तारा को घेरकर खड़े रहनेवाले (अंगद आदि) वानर कह उठे—अहो। वे आ गये हैं। अब क्या करें?

हे उत्तम कंकण धारण करनेवाली ! उन (लक्ष्मण) का हृदय पुष्प के समान कोमल है। यदि आप राजप्रासाद के द्वार पर जाकर उन्हें रोक दें, तो वह वीर, जो विचारवान् हैं, उस ओर आँख उठाकर भी नहीं देखेंगे। यही उत्तम उपाय है।—यों हनुमान् ने कहा।

तब तारा ने (उनसे) यह कहकर कि, तुम सब लोग जाओ। मैं जाकर उन वीर (लक्ष्मण) के मन को शांत करूँगी—साहस के साथ पुष्पालंकृत केशोंवाली अन्य सखियों-सहित चल पड़ी। इधर अन्य वानर उनसे हटकर दूर पर खड़े हो गये।

कंठ में रस्सी (का आभरण) धारण किये हुए हाथी-जैसे लक्ष्मण, प्रसिद्ध वानरों के आनन्दपूर्ण आवास किष्किन्धा की राजवीथियों को पार कर विशाल राज-सौध में ज्यों ही प्रविष्ट होनेवाले थे, त्यों ही सहज सुगंध-भरित केशोंवाली तारा उनके मार्ग के मध्य उन्हें रोककर खड़ी हो गई।

मनोज्ञ लावण्य, धवल चंद्र-सदृश मंदहास, सुन्दर कटि, उत्तम तथा नित्य यौवन-पूर्ण मृदु स्तन—इनसे युक्त उत्तम मयूर-तुल्य रमणियों के साथ वह तारा उस श्रेष्ठमार्ग को रोके खड़ी रही।

रमणियों की सेना ने दृढता से (लक्ष्मण को) इस प्रकार घेर लिया कि (लक्ष्मण के) धनुष तथा करवाल उनके आभरणों में चमक उठे। उन (रमणियों) के मंजीर, जिनमें छोटे-छोटे कंकड़ भरे थे, बज उठे। मेखलाएँ भी बड़ा कोलाहल कर उठीं। सर्वत्र विविध भ्रू-लताएँ फैल गई।

शब्दायमान नूपुर नगाड़े बने थे। रमणियों के जघन बड़े रथ थे। परस्पर अनुरूप नयन-युगल बरछे थे। कठोर भौंहें युद्ध करनेवाले धनुष थीं। इस प्रकार, जब वे रमणियाँ घेरकर खड़ी हो गई, तब स्वयं गौरव से भी गुरु होनेवाली भुजाओंवाले उन (लक्ष्मण) का

शांत न होनेवाला क्रोध भी शांत हो गया। वे अपने सिर को झुकाकर उनकी ओर दृष्टि उठाने से भी संकोच करते हुए खड़े रहे।

लक्ष्मण, अपना कमल-वदन नीचा किये, अपने विशाल धनुष को धरती पर टेके, ऐसे खड़े रहे, जैसे अपनी साँसों के बीच खड़े हों। तब मनोहर कंधों, परिशुद्ध हृदय और दीर्घ नयनोंवाली तारा, उन वानर-रमणियों में से, जो धरती की अप्सराएँ जैसी थीं, पृथक होकर गद्‌गद स्वर में ये वचन कहने लगी—

हे वीर! हमारा यह बड़ा भाग्य है कि तुम हमारे इस घर में पधारे हो। अनंतकाल तक तप करने पर ही ऐसा भाग्य प्राप्त होता है, अन्यथा इन्द्र आदि के लिए भी ऐसा भाग्य दुर्लभ है। (तुम्हारे आगमन से) हम कर्मरहित हो उत्तम-गति प्राप्त कर चुकीं। इससे बढ़कर अन्य क्या सुकृत हो सकता है?

फिर, संगीत से भी मधुर बोलीवाली उस तारा ने प्रश्न किया—हे वीर! तुम उग्र रूप धारण करके यहाँ आये हो। तुम्हें देखकर वानर-सेना (तुम्हारे) आगमन का कारण न जानने से भयभीत हो रही है। तुम्हारा क्या उद्देश्य है? हे प्रभो! आज्ञा-रूपी चक्र को प्रवर्त्तित करनेवाले (चक्रवर्त्ती श्रीराम) के चरण-युगल को कभी न छोड़नेवाले तुम अब (उन्हें छोड़कर) किस कार्य से यहाँ आये हो?

पुष्पहार-भूषित वक्षवाले (लक्ष्मण) करुणा से आर्द्र हुए। उनका क्रोध कम हुआ। यह सोचते हुए कि कौन यह वचन कह रही है, उस तारा के मुख को, जो मानों दिन में धरती पर अवतीर्ण उज्ज्वल पूर्ण चन्द्र-जैसा था, निहारकर देखा। तब उसे देखकर उन्हें अपनी माताओं का स्मरण हो आया, जिससे वे व्याकुल हो उठे।

मंगल-सूत्ररहित, रत्नमय अन्य आभरणों से हीन, सुगंधित मधुपूर्ण पुष्पहार से आभूषित, कुंकुम, चंदन आदि के रस से अलिप्त, पीन एवं तापमय स्तनों तथा क्रमुकवृक्ष-सदृश अपने कंठ को (अपने आँचल से) ढके हुए उस नारीरत्न (तारा) को देखकर उदार स्वभाववाले वे (लक्ष्मण) अपने नयनों में अश्रु-भरे खड़े रहे।

उन (लक्ष्मण) के मन में यह विचार उठने से कि मेरी दोनों माताएँ (अर्थात्, कौसल्या और सुमित्रा) इसी वेश में रहती होंगी, वे शिथिलचित्त होकर दीर्घकाल तक वैसे ही खड़े रहे। फिर, यह सोचकर कि उनसे पूछे गये प्रश्नों का उन्हें कुछ उत्तर देना है, सुन्दर कुंतलोंवाली उस (तारा) को देखकर अपने उद्दिष्ट कार्य के बारे में यों कहने लगे—

सूर्यपुत्र सुग्रीव, मनुकुल के श्रेष्ठ नरेश (राम) के प्रति दिये अपने इस वचन को कि 'मैं अपनी सेना के साथ आपकी देवी का अन्वेषण कर उनका समाचार प्राप्त करूँगा' भूल गया है। मेरे अग्रज ने आदेश दिया है कि तुम शीघ्र जाकर उस सुग्रीव का हाल जानकर आओ। इसलिए मैं यहाँ आया हूँ। उसके उत्तम राज्य-शासन का हाल तुम बताओ—लक्ष्मण ने कहा।

हे प्रभु! क्रोध न करो। छोटे लोगों के अपराध को क्षमा करके तुम शांत हो जाओ। इस प्रकार क्षमा कर सकनेवाला तुम्हारे अतिरिक्त और कौन है? वह अपने वचन

को भूला नहीं है। उसने संसार में सर्वत्र अपने अनेक दूतों को भेजा है और सब स्थानों से वानरों की सेना के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा है। (तुम लोगों के) उपकार का प्रत्युपकार भी क्या संभव है ?

सहस्र कोटि वानर-दूत, सेनाओं को बुला लाने के लिए (सुग्रीव की) आज्ञा से गये हैं। उनके लौट आने का समय भी आ गया है। तुम जो शरणागत के लिए माता से भी अधिक हितकारी हो, अपने क्रोध को शांत करो। यही धर्म है, यदि अपराधी ही न हो, तो दंडनीय कौन होगा ?[1]

तुम लोगों ने अपने शरणागत को अभयदान देकर जो अपार संपत्ति प्रदान की है, उसे प्राप्त कर यदि वह कभी तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन करे, तो वह भी तुम्हारे ही कार्य का परिणाम होगा न ? स्त्री के निमित्त होनेवाले युद्ध में (अपने मित्र के साथ जाकर) यदि कोई अपना शरीर न त्याग करे, तो क्या उसकी मित्रता टिक सकेगी ?

तुम सरल स्वभाववाले ने उग्र शत्रु को मिटाकर (सुग्रीव को) राज्य का वैभव प्रदान किया और उसके साथ शाश्वत रहनेवाला महान् उपकार किया है। यदि वही तुम्हारी उपेक्षा करे, तो अपनी इस क्षुद्रता के कारण वह अपना महत्त्व ही नहीं खो बैठेगा, किंतु इसी जन्म में दारिद्र्य को पाकर इह एवं पर दोनों लोकों के सुख से वंचित हो जायगा।

उस समय, युद्ध-कुशल वाली के प्रताप को मिटानेवाला एक ही बाण तो था। अब (यदि तुम इस सुग्रीव को मिटाना चाहो तो) तुम्हें किसकी सहायता अपेक्षित है ? तुम्हारे धनुष से बढ़कर तुम्हारा अन्य सहायक कौन है ? तुम्हें तो देवी का अन्वेषण करने-वाले लोगों की आवश्यकता है। तुम्हारे चरणों की शरण में आये हुए (सुग्रीव आदि) जन तुम्हारा कार्य करके कृतार्थ होंगे।

तारा के ये वचन सुनकर बहुश्रुत लक्ष्मण, करुणार्द्र होकर मन में लज्जा का अनुभव करता हुआ खड़ा रहा। उसको इस दशा में देखकर और समझकर कि, इनका क्रोध शांत हो गया, घोर युद्ध में सहायक बननेवाले दृढ कंधों से युक्त हनुमान् उनके समीप आया।

क्रोध के समय में भी अंकुरित प्रेमवाले लक्ष्मण ने अपने समीप आकर चरणों को नमस्कार करके खड़े हुए हनुमान् को देखकर कहा—तुम तो अपार शास्त्र-ज्ञान से युक्त हो। तुम भी कैसे पूर्व-घटित वृत्तांत को भूल गये ? तब वचन-चतुर हनुमान् ने उत्तर दिया—हे प्रभो ! सुनो—

अविकृत प्रेमवाली माता का, पिता का, गुरु का, दिव्य शक्ति से युक्त ब्राह्मणों का, गाय का, शिशुओं का और स्त्रियों का वध करनेवालों का भी कुछ प्रायश्चित्त हो सकता है। किन्तु, अनश्वर उपकार को भूल जाने का भी क्या कोई प्रायश्चित्त हो सकता है ?

हे स्वामिन् ! आप और वानराधिप सुग्रीव में जो सच्चा स्नेह उत्पन्न हुआ, वह

---

१. भाव यह है कि जो अपराध करे और दंड के योग्य हो, वही क्षमा के योग्य भी होता है। यदि कोई अपराधी न हो और दंडनीय भी न हो, तो क्षमा का भाव कहाँ रहेगा ? —अनु०

मेरा ही तो कार्य था। यदि वह मैत्री मिट जाय, तो उस पाप से क्या कोई मुक्त हो सकता है ? उस कारण से हमारा भी चित्त मलिन हो जायगा न ?

हे हमारे प्रभु ! (हमारे) तप, सुकृत, धर्म-देवता तथा अन्य सब कुछ आप ही हैं। ऐसा मेरा सुदृढ विश्वास है। पर, यह सब रहने दीजिए। यदि त्रिलोक की रक्षा करनेवाले आप क्रोध करें, तो हमारे लिए अन्य आश्रय क्या रहेगा ? (आपकी) करुणा ही (हमारे लिए) गति है।

वानरराज (आपके कार्य को) भूले नहीं हैं। उन्होंने बलवान् वानर-सेनाओं को एकत्र करने के लिए स्थान-स्थान पर दूत भेजे हैं और उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इसीलिए विलंब हो रहा है। आप स्वयं धर्म के रक्षक हैं। यदि वह आपको दिये हुए अपने वचन को तोड़ दें, तो इस लोक में उसका जन्म ही व्यर्थ होगा और नरक से भी उसको मुक्ति नहीं मिलेगी।

हे मत्तगज-सदृश वीर ! हमसे उपकार पाये विना ही जो हमारा उपकार करता है, उसके लिए, यदि आवश्यकता पड़े, तो युद्ध में उसके सहायतार्थ जाकर, उसके शत्रुओं को निहत करना हमारा धर्म है। यदि हम उसके शत्रु का नाश न भी कर सकें, तो कम-से-कम उन शत्रुओं से आहत होकर अपने प्राण तो त्याग सकते हैं। इससे बढ़कर संसार में क्या उपकार हो सकता है ?

हे प्रतापी सिंह-सदृश ! यहाँ अब आपका खड़ा रहना उचित नहीं है। यदि हमारे शत्रु जान लेंगे, तो उससे आपकी और हमारी मित्रता भंग हो जायगी। आपकी प्रदान की हुई संपत्ति को तथा आपके ज्येष्ठ भ्राता (राम-सदृश) वानराधिप को अब चलकर देखें।

हनुमान् के वचन सुनकर पर्वत-समान पुष्ट भुजाओंवाले लक्ष्मण ने अपना क्रोध शांत करके मन में विचार किया—यह सुग्रीव, नई सम्पत्ति के प्राप्त होने से बेसुध हो गया है और अन्यत्र जाना नहीं चाहता है; अतएव संकीर्णबुद्धि हो गया है ; यह राम की आज्ञा का उल्लंघन करनेवाला नहीं है।

यों सोचकर फिर वीरकंकण-भूषित चरण तथा बलिष्ठ भुजाओंवाले राजकुमार (लक्ष्मण) ने हनुमान् को देखकर कहा—अभी तुमसे एक बात और कहनी है ; यह तुमसे कहना ही उचित है ; तुम इसपर विचार करो ; यह कहकर वह आगे कहने लगा—

मैंने अपनी आँखों देखा है कि (सीता) देवी के अपहरण के कारण उत्पन्न क्रोध तथा मानभंग से उत्पन्न अग्नि किस प्रकार उनके प्राणों को सता रही हैं ; राजधर्म छोड़कर दूसरों पर अत्याचार करनेवाले पापियों को उचित दंड देने का मैंने निश्चय कर लिया है। उससे मुझे भले ही अपयश प्राप्त हो, फिर भी मुझे उसकी कोई चिन्ता नहीं है।

अपने कोप को शांत करके मैं जीवित रहता हूँ, तो यह अपने प्रभु को सांत्वना देने के लिए ही ; अनेक दिन व्यर्थ व्यतीत हो गये हैं ; अन्यथा (हम दोनों के क्रोध से) त्रिभुवन भी दग्ध हो जायँगे ; देव भी मिट जायँगे ; इतना ही नहीं, उत्तम धर्म भी विनष्ट हो जायँगे ; अविनाशी प्रारब्ध कर्म को कौन मिटा सकता है ?

प्रभु ने (पहले) तुमको देखा ; (तुम्हारे द्वारा मित्रता करके) आपत्ति के समय में तुम्हारे स्वामी (सुग्रीव) की सहायता की और मेरे समान ही उस (सुग्रीव) को भी अपना भाई समझा ; इसी कारण से उन्होंने इतने दिन यहाँ व्यतीत किये हैं ; अन्यथा एक धनुष की सहायता से ही विद्युत्-सदृश देवी का अन्वेषण करना कोई बड़ी बात नहीं थी।

केवल आकाश में ही नहीं, किंतु इस सारे ब्रह्मांड में। जिसमें चतुर्दश भुवन, सात बड़े पर्वत और सात कुलपर्वत हैं। जहाँ भी सीताजी हों, उस स्थान को पहचान कर, उन्हें मुक्त करके लाना (श्रीराम के शर के लिए) कोई असंभव कार्य नहीं है ; फिर भी, उस दिन तुमलोगों ने जो वचन दिया था, उसकी उपेक्षा करना तुम्हारे लिए उचित नहीं।

तुम लोगों ने विलंब-मात्र नहीं किया। किन्तु, चिरकाल से गर्व से फूले हुए राक्षसों को जीवित रहने दिया। देवताओं को दुःखी होने दिया। परम्परा से आगत शास्त्रज्ञान तथा होमाग्नि से युक्त मुनियों को विपदा में पड़ने दिया, पाप को बढ़ने दिया। क्रोध न करनेवाले (श्रीराम) को क्रुद्ध कर दिया। तुम्हारा तो इससे अंत ही हो जायगा— यों (लक्ष्मण ने) कहा।

उत्तम कुल में अवतीर्ण (लक्ष्मण) के यह कहते ही मारुति ने उनको नमस्कार करके कहा—हे प्राचीन शास्त्रों के ज्ञाता ! बीती बातों को मन में न रखो। यदि हम लोग अपने ऊपर लिये हुए कार्य को पूर्ण नहीं करेंगे, तो हम मरण के योग्य हैं ; इसका साक्षी धर्म ही है। आप भीतर आइए और अपने ज्येष्ठ भ्राता (सुग्रीव) से मिलिए।

स्वर्ण-वलयों से भूषित धनुष को धारण करनेवाले (लक्ष्मण) यह कहकर कि, पूर्व में हमने तुम्हारे कहे अनुसार कार्य किया और अब भी हम तुम्हारे कहे अनुसार करने को तैयार हैं, सुग्रीव के मन की थाह लेने के लिए हनुमान् के संग चल पड़े।

तारा भी, भाले-सदृश नयन, रक्तकुमुद-सदृश अधर, धनुष-सदृश ललाट, हंस की गति, कलापी-तुल्य छवि, ध्वजायुक्त रथ-सदृश जघन, मुक्ता-सदृश दंत, बलिष्ठ बाँस-जैसी मृदु भुजाएँ, कोकिल-सदृश ध्वनि, स्वर्ण-कलश-तुल्य स्तन, बिजली-जैसी कटि, कुमिल (नामक) पुष्प-सदृश नासिका, कालमेघ-तुल्य केश—इनसे युक्त रमणियों के साथ वहाँ से (अंतःपुर में चली)।

वालिपुत्र (अंगद) भी चतुर मंत्रियों के साथ जाकर वीर (लक्ष्मण) के कमल-सदृश चरणों पर नत हुआ और भयमुक्त हो खड़ा रहा। तब धनुर्धारी (लक्ष्मण) ने उससे कहा—हे वीर, तुम शीघ्र जाकर अपने पिता को मेरे आगमन का समाचार दो। अंगद 'हाँ !' कहकर उन्हें नमस्कार करके चला गया।

दीर्घ बाहुवाला (अंगद) वहाँ से चलकर अपने चाचा के सौध में प्रविष्ट हुआ। वहाँ सुग्रीव के सुन्दर चरणों को दृढता से पकड़ लिया और उसे निद्रा से जगाकर कहा— उस महान् (राम) का अनुज आपके सौध के द्वार पर उपस्थित है। उसका क्रोध मीनों से भरे समुद्र से भी विशाल है। फिर, उसने सारा वृत्तांत भी सुनाया।

अविमुक्त निद्रावाला (सुग्रीव) रमणियों के चलने से उत्पन्न कोलाहल को सुनकर जाग पड़ा। पूर्वघटित किसी भी वृत्तांत को न जानने के करण उसने अंगद से प्रश्न

किया। घने स्वर्णहारों तथा पुष्पहारों से विभूषित हे वीर! हमने कोई अपराध नहीं किया। ऐसी अवस्था में उनका हमपर क्रोध करने का क्या कारण है?

(तब सुग्रीव से अंगद ने कहा—) हे पिता! निश्चित तिथि को आप (श्रीरामचन्द्र के समीप) गये नहीं। अपार संपत्ति प्राप्त करके गर्व में फूल गये। उपकार को भूल गये। इन कारणों से (लक्ष्मण का) क्रोध भड़क उठा है। नीतिशास्त्र के पंडित हनुमान् ने उनका क्रोध शांत करने के लिए उनसे प्रार्थना की, तब (लक्ष्मण ने) हमें जीवित रहने दिया।

वानर-वीरों ने (लक्ष्मण के) आगमन का वेग (उग्रता) देखकर किष्किन्धानगर के गगनचुंबी दरवाजे को बंद कर दिया और आसपास के एक भी पर्वत को छोड़े बिना, सब पर्वतों को लाकर (दरवाजे पर) रख दिया। एवं उमड़ते क्रोध के साथ उन (लक्ष्मण) से युद्ध करने के लिए सन्नद्ध हो खड़े रहे।

पौरुषवान् (लक्ष्मण) ने (वानरों का) वह कार्य देखकर अपने सुन्दर कमल-सदृश चरण से (फाटक को) छुआ—(अर्थात्, पदाघात किया)। उसके छूने के पहले ही, दक्षिण से उत्तर तक फैली हुई, शिला-निर्मित प्राचीर, सुदृढ नगर-द्वार तथा फाटक पर चुने गये पर्वत, सब टूटकर बिखर गये और चूर-चूर हो गये।

यह देखकर बलवान् वानर-सेना किस दशा को प्राप्त हुई—मैं क्या कहूँ? कहाँ भागकर छिपी—मैं क्या कहूँ? (वानरों की) वह दशा देखकर माता (तारा) आभरण-भूषित रमणियों के साथ, बिजली-सदृश तथा पत्राकार बरछा धारण किये हुए (लक्ष्मण) के सम्मुख जाकर (उनके) मार्ग में खड़ी हो गई।

कुमार (लक्ष्मण) ने स्त्रियों की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा, मन-ही-मन उमड़नेवाले क्रोध के साथ खड़े रहे। तब नारी-रत्न (तारा) ने मधुर वचन कहकर प्रश्न किया—हे उत्तम! हमारे यहाँ आपका यों आगमन कैसे हुआ? तब उन कुमार ने अपने आगमन का कारण कह सुनाया।

माता (तारा ने) उनके आगमन का प्रयोजन ठीक-ठीक समझ लिया। उनके क्रोध को शांत करते हुए ये वचन कहे—(सुग्रीव) आपकी आज्ञा को नहीं भूला है। भयंकर सेना को शीघ्र लाने के लिए दूतों को पर्वतों तथा पत्थरों से भरी विविध दिशाओं में प्रेषित कर दिया है और उनके लौटने की प्रतीक्षा कर रहा है। यही अब घटित वृत्तांत है।—यों (अंगद ने) कहा।

(अंगद के यों) कहते ही, सूर्यपुत्र कह उठा—यदि वे (राम-लक्ष्मण) क्रोध करके उठ आयेंगे, तो इस धरती में तथा स्वर्ग में कौन उनके सम्मुख खड़ा रह सकेगा? धनुर्धीर वह कुमार (लक्ष्मण) जब इस प्रकार क्रोध के साथ, शीघ्र गति से आया, तो मुझे समाचार दिये बिना तुम लोगों ने क्या किया?

तब अंगद ने उत्तर दिया—विविध पुष्प-मालाओं से भूषित बलिष्ठ तथा उन्नत भुजावाले हे मेरे पिता! मैंने पहले ही आपसे निवेदन किया था। किंतु, तब आप मत्त होकर पड़े थे। अतः, आपने ध्यान नहीं दिया। फिर, अन्य कोई उपाय न देखकर मैंने

हनुमान् से जाकर कहा। अब शीघ्र ही आप जाकर (लक्ष्मण से) मिलें—यही कर्त्तव्य है।

(राम-लक्ष्मण के प्रति) स्नेह से पूर्ण मनवाले (सुग्रीव) ने कहा—हे कुमार! उन्होंने मेरा जैसा उपकार किया है, क्या वह अन्य किसी के द्वारा संभव है? मुझे जो संपत्ति प्राप्त हुई है, क्या उसका कोई अंत भी है? उन्होंने (रामचन्द्र ने) मुझसे अपने जिन कष्टों को दूर करने की आशा की थी, उन्हें मैं मदिरा के नशे में पड़कर भूल गया। अब मैं उन्हें (लक्ष्मण को) देखने के लिए लज्जित हो रहा हूँ।

मुझसे जो कार्य हुआ है, इससे बढ़कर अज्ञान-भरा कार्य और क्या हो सकता है। (मद्य पीने से) यह पत्नी है, यह माता है—ऐसा विवेक भी जब नहीं रह जाता, तब अन्य धर्म के विषय में क्या कहना? यह (मद्य-पान) पंच महापापों में एक है। यही नहीं, हम तो पहले ही से माया में पड़े हुए हैं, उसपर मद्य के नशे में भी चूर हो जायँ, तो फिर क्या कहना?

अविनश्वर ज्ञान से युक्त महात्माओं तथा वेदों ने कहा है कि जो माया-वशीभूत न होकर विवेक के साथ पापों से दूर रहते हैं, जन्म-मरण के दुःख से मुक्ति पायेंगे। पर, हम तो ऐसे हैं, जो मदिरा में पड़े हुए कीड़ों को निकालकर मद्य पी लेते हैं। हम ऐसे हैं, जैसे घर में लगी आग को घी डाल-डालकर बुझाने की चेष्टा करते हैं।

वेद-शास्त्र तथा अन्य सब यही कहते हैं कि यदि कोई अपना स्वरूप पहचान लेगा, तो उसका क्षुद्र जन्म मिट जायगा। हम तो पहले से ही, आत्म-स्वरूप को न पहचानने के कारण व्याधिपूर्ण गंदे शरीर को पाये हुए हैं। फिर, ऊपर से मद्य पीकर मति-भ्रष्ट भी हो जायँ, तो क्या यह उचित होगा?

अभयदान देकर (शरणागत की) रक्षा करनेवाले, पंचेन्द्रियों पर नियंत्रण रखनेवाले, तत्त्वज्ञान (के समुद्र) में निमग्न रहनेवाले, सुख-दुःख के द्वन्द्व को मिटानेवाले ऐसे व्यक्तियों को छोड़कर क्या वे लोग सद्गति पा सकते हैं, जो दूसरों की आँख बचाकर मद्य पीते हैं और संसार के सम्मुख प्रकट रूप में हँसते-खेलते रहते हैं?

शत्रुओं के द्वारा कृत हानि को, मित्रों के द्वारा कृत उपकार को, अधीत विद्या को, प्रत्यक्ष देखे पदार्थों को, शास्त्रज्ञों के उपदेशों को, अपने को प्राप्त गौरव के कारण को, अपने को प्राप्त दुःख को—यदि कोई जान ले, तो इससे बढ़कर हितकारी ज्ञान उसके लिए और क्या हो सकता है?

मद्यपान करनेवाले में वंचना, चौर्य, असत्य, मोह, परंपरा के विरुद्ध विचार, शरणागत को छोड़ देने का स्वभाव, दंभ—ये सब (दुर्गुण) आकर निवास करते हैं। कमल-पुष्प में निवास करनेवाली लक्ष्मी उन्हें तजकर चली जाती हैं। विष तो केवल खानेवाले के प्राण हरण करता है, किंतु नरक में नहीं पहुँचाता—(मद्यपान नरक का निवास भी देता है)।

मैंने सुना था कि मदिरा-पान से हानि होती है, वह सुना हुआ वचन अब प्रत्यक्ष प्रमाणित हो गया। अब फिर कहने को क्या शेष रह गया है? हनुमान् की नय-निपुणता

से मैं बचा। अन्यथा उग्र गति से आनेवाले वीर के क्रोध से मेरी मृत्यु होने में क्या संदेह था?

हे तात! इस मद्यपान[1] से उत्पन्न होनेवाले दुष्परिणाम से मैं भीत हो रहा हूँ। उसका कर से स्पर्श ही नहीं, मन से स्मरण करना भी अच्छा नहीं है। यदि मैं फिर, कभी उस (मद्य) की इच्छा करूँ, तो वीर (राम) के रक्त कमल-समान चरण मुझे विनष्ट कर दें—इस प्रकार सुग्रीव ने कहा।

फिर, अनेक सद्गुणों से पूर्ण (सुग्रीव) ने उपयुक्त प्रकार से कहकर अंगद को यह आज्ञा देकर प्रेषित किया कि तुम लक्ष्मण के स्वागतार्थ आवश्यक सामग्री लेकर स्वयं उनके समीप जाओ। वह स्वयं भी अपनी सहधर्मिणी पत्नियों तथा परिवार के व्यक्तियों के साथ विशाल सौध-द्वार पर जा पहुँचा।

(लक्ष्मण के आगमन के समय) चंदन-लेप, पुष्प, सुगंधित चूर्ण, (अगरु आदि) का सुरभित धूम, पंक्तियों में रखे हुए स्वर्ण-कलश, दीपों की आवलियाँ, श्रेणियों में लटकनेवाले मुक्ताहार, वितानों में हिलनेवाले मयूरपंख, ध्वजाएँ, ऊँची ध्वनि करनेवाले शंख तथा मृदंग—ये सब वीथियों में भरे थे।

वह किष्किन्धानगर इस प्रकार शोभायमान हो रहा था कि उसकी शुद्ध, दृढ स्फटिकमय भित्तियों के मध्यभाग में तथा चारों ओर उत्तम रत्नों के बने स्तंभों के मध्यभाग में (लक्ष्मण की) परछाइँ पड़ने से दर्शकों के मन में संदेह होता था कि क्या सहस्रों वीर हाथ में धनुष लिये आ रहे हैं।

अंगद उस समय समीप आकर (लक्ष्मण के) चरणों पर प्रणत हुआ। तब लक्ष्मण ने उससे पूछा—हे तात! तुम्हारे महाराज कहाँ हैं? अंगद ने उत्तर दिया—हे वीर केसरी! वे पुण्यवान् आपका स्वागत करने के लिए मेघस्पर्शी सौध-द्वार पर खड़े हैं।

चूड़ियों और कंकणों से भूषित करोंवाली वानर-रमणियाँ सुगंधित चूर्ण और वस्त्रों को उछाल रही थीं और विशाल चामरों को हिला-हिलाकर हवा कर रही थीं। श्वेत छत्र ऐसा सुशोभित हो रहा था, जैसा पूर्ण उज्ज्वल चन्द्रमा आसमान में चमक रहा हो—इस प्रकार कपिकुलराज, सुन्दर धनुष को धारण करनेवाले पराक्रमी वीर (लक्ष्मण) के सम्मुख आया।

पलाश-पुष्प-समान अधरोंवाली रमणियाँ अर्घ्य इत्यादि के लिए उपयुक्त सामग्री लिये आ रही थीं। नगाड़े मेघों के समान गरज रहे थे। ऋषिगण वेद-पाठ कर रहे थे। संगीत-नाद सब दिशाओं में फैल रहा था। इस प्रकार सुग्रीव आ रहा था, तो उसके नवीन वैभव को देखकर देवता लोग भी विस्मय में पड़ गये।

महिमावान् (लक्ष्मण) का स्वागत करने के लिए श्रीयुक्त सुग्रीव आ पहुँचा। (उसके साथ आनेवाली) स्पृहणीय स्तनोंवाली वानर-स्त्रियाँ नक्षत्रों के समान चमक रही थीं और सुग्रीव स्वयं उदयाचल पर उदित होकर आकाश में दृष्टिगत होनेवाले, कलाओं से

---

१. मद्यपान-संबंधी ऊपर के कुछ पद्य प्रक्षिप्त-से लगते हैं।—अनु०

परिपूर्ण चन्द्रमा के समान शोभित था तथा उस उदयाचल पर उदित होनेवाले अपने पिता (अर्थात् , सूर्य) के समान प्रकाशमान था।

वीर लक्ष्मण ने अपने सम्मुख कपिकुल के राजा को प्रकट होते देखा। तब उनका क्रोध भड़क उठा। किन्तु, उन्होंने धर्म की व्यवस्था का विचार करते हुए अपने क्रोध को निर्मल विवेक से शांत कर लिया।

उन दोनों ने लौह-स्तंभों तथा पर्वतों से भी भारी भुजाओं से परस्पर आलिंगन किया। फिर, वानर-स्त्रियों तथा वानर-वीरों के समुदाय के साथ स्वर्ण-निर्मित सौध के भीतर जा पहुँचे।

कपिकुलाधिप ने पहले से तैयार किये हुए एक उत्तम आसन को दिखाकर (लक्ष्मण से) कहा—हे वीर ! इसपर आसीन होओ। तब (लक्ष्मण) मन में सोचने लगे कि जब लक्ष्मी के नायक (राम) तृणमय पृथ्वी पर विश्राम करते हैं, तब ऐसे आसन पर बैठना मेरे लिए उचित नहीं है।

फिर (सुग्रीव से) कहा—पत्थर-जैसे (कठोर) मनवाली कैकेयी के लिए उज्ज्वल रत्न-किरीट को त्यागकर वन में आये हुए मेरे स्वामी (राम) जब तृण-शय्या पर सोते हैं, तब क्या स्वर्ण-विनिर्मित, पुष्पालंकृत मृदुल आसन पर बैठना मेरे लिए उचित है ?

लक्ष्मण के यों कहने पर सूर्यपुत्र अपने कमल-सदृश नयनों में आँसू भरकर खड़ा रहा। तब मनु के वंश में उत्पन्न उत्तम क्षत्रियकुमार (लक्ष्मण) पर्वत-जैसे ऊँचे उठे हुए उस प्रासाद की फर्श पर बैठ गये।

युवक, वृद्ध, असंख्य स्त्रियाँ—सब उस समय अश्रुमय नयनों और मलिन दृष्टि के साथ, कुछ कह न सकने के कारण मौन रहे। मन की व्यथा से विह्वल हो रहे और पंचेंद्रियों का दमन करनेवाले मुनियों के समान स्थित रहे।

महाराज (सुग्रीव) ने (लक्ष्मण से) कहा—आप यथाविधि स्नान करके मधुर भोजन करें, तो हम सब कृतार्थ हो जायेंगे। उसके यह कहने पर अंजनवर्ण (राम) के अनुज कहने लगे—

दुःख और अपवाद हमारे पेट को भर रहे हैं। इसीसे हम जीवित हैं, तो अब हमें मधुर लगनेवाला अन्य पदार्थ क्या चाहिए ? अत्यन्त बुभुक्षा के होने पर भी, यदि दुःख के कारण मन फिरा हुआ रहता है, तो अमृत भी तो कड़ुआ ही लगता है।

प्रभु की देवी का अन्वेषण करके उनका पता लगा दोगे, तो तुम मानों हमारे अपयश-रूपी अग्नि को बुझाकर हमें गंगाजल में स्नान करानेवाले होओगे। समुद्र में उत्पन्न अमृत पिलानेवाले होओगे और हमें अन्य कोई दुःख नहीं रह जायगा।

पत्ते, कंद, शाक-फल आदि प्रभु के आहार करने के पश्चात् शेष का आहार मैं करता हूँ। वही मेरा भोजन है। उससे अन्य कुछ मैं नहीं खा सकता। यदि वैसा कुछ खाना चाहूँ, तो वह कुत्ते के जूठन के बराबर होगा। इसमें सन्देह नहीं।

हे राजन् ! इतना ही नहीं, एक बात और सुनो। यहाँ से जाकर मैं शाक-कंद

आदि लाकर सन्नद्ध करूँगा, तो तुम्हारे मित्र (राम) भोजन कर सकेंगे, इसलिए अब एक क्षण भी मेरा यहाँ विलंब करना उचित नहीं है—यों लक्ष्मण ने कहा।

वानरपति ने यह कहकर कि जब वह मनुकुलाधिप दुःख में डूबा है, तब मैं सुखी जीवन व्यतीत कर रहा हूँ—यह कर्म वानर-जाति में उत्पन्न हम-जैसे लोग ही कर सकते हैं, व्याकुल होकर अत्यन्त दुःखी हुआ।

सूर्यपुत्र तब झट उठा, अश्रु बहाता हुआ, ऐश्वर्यमय जीवन से विरक्त होकर, अत्यंत दुःखी तथा व्याकुल चित्त के साथ, उत्तम (राम) के निकट जाने की इच्छा से हनुमान् को देखकर कहने लगा—

हे नीति-निपुण ! गये हुए दूतों के द्वारा जो सेना लाई जायगी, उसको तुम अपने साथ ले आना। उस समय तक तुम यहीं रहो।—यों हनुमान् को आदेश देकर शीघ्र प्रभु के आवास के लिए चल पड़ा।

अरुण किरणवाले (सूर्य) का पुत्र आशंका से मुक्त चित्तवाले (लक्ष्मण) का आलिंगन करके शीघ्रता से अपने भाई (राम) के आवास की ओर चल पड़ा। उसके साथ अंगद भी चला। वानर वीर आगे-आगे जा रहे थे। वानर-रमणियों का मन उनके पीछे-पीछे जा रहा था। मार्ग पीछे-पीछे छूट रहा था।

नौ सहस्र कोटि वानर उसके आगे और पीछे और दोनों ओर जा रहे थे। अति उत्तम बन्धुजन समीप में चल रहे थे। बिजली के समान उज्ज्वल आभरण धारण किये हुए सुग्रीव यों जा रहा था। उस समय—

ध्वजाओं के समुदाय सर्वत्र भर गये। बजनेवाले नगाड़ों की ध्वनि सर्वत्र भर गई। शंख सर्वत्र बज उठे। चमकनेवाले आभरणों की कांति-रूपी विद्युत्-पुंज सर्वत्र भर गये। (धरती से) धूल उठने लगी और आकाश में सर्वत्र छा गई।

स्वर्ण, मुक्ता, मनोहर एवं महीन वस्त्रों, उज्ज्वल रत्नों, स्फटिक-खंडों तथा रजत-खंडों से निर्मित शिविकाएँ समीप में आ रही थीं, श्वेत छत्र आकाश में ऊँचे उठे मनोहर ढंग से आ रहे थे।

रामचन्द्र के अनुज के उज्ज्वल अरुण चरण धरती पर चलने से, सूर्य-पुत्र भी, अपने चरणों के वीर-वलयों को शब्दित करता हुआ, अपनी पालकी के पीछे-पीछे (पैदल ही) धरती-रूपी रथ पर जा रहा था।

वीर-कंकण तथा मनोहर धनुष धारण करनेवाले लक्ष्मण तथा सुग्रीव, इतनी शीघ्रता से चलकर रामचन्द्र के आवास-पर्वत पर पहुँचे कि वानरों की सेना पीछे रह गई, अंगद भी उनके पार्श्व से पीछे रह गया। किन्तु, उनका (रामचन्द्र के प्रति) प्रेम आगे-आगे जा रहा था।

स्पृहणीय अपार संपत्ति की आसक्ति त्यागकर प्रभु के चरणों की सेवा करने के लिए भक्ति-सहित आगत सुग्रीव, नित्य धर्म-स्वरूप (राम) के चरणों की नित्य सेवा करते रहनेवाले भरत की समता करता था।

अपने से कभी पृथक् न होनेवाले (अनुज लक्ष्मण) के चले जाने से एकाकी

रामचन्द्र इस प्रकार स्थित रहे, जिस प्रकार वे समस्त सृष्टि के विनष्ट हो जाने पर एकमात्र अवशिष्ट रहते हैं। उन प्रभु के रक्त कमल-जैसे चरणों को सुग्रीव ने अपने शिर से यों स्पर्श किया कि उसके वक्ष पर के रत्नहार तथा मुक्ताहार शब्द करते हुए धरती पर लोटने लगे।

इस प्रकार, सुग्रीव के प्रणाम करने पर, प्रभु ने अपनी दीर्घ; लंबी, मनोहर बाहुओं को फैलाकर उसे अपने वक्ष से गाढालिंगन कर लिया। तब उनके वक्ष पर स्थित लक्ष्मी भी पीडित हो उठीं। प्रभु का उमड़ता हुआ क्रोध शांत हो गया और पूर्ववत् प्रेमभाव उमड़ आया। फिर, उससे आसीन होने को कहा।

रामचन्द्र ने (सुग्रीव को) अपने निकट सुखासीन करके पूछा—तुम्हारा शासन ठीक चल रहा है न ? कोई विरोध नहीं है न ? तुम्हारी मेघ-सदृश भुजाओं के द्वारा सुरक्षित सब प्राणी, तुम्हारे श्वेत छत्र की छाया में तापहीन होकर रहते हैं न ?

अर्थ-गर्भित उन वचनों को सुनकर गगनचारी एक चक्रवाले रथ पर चलनेवाले (सूर्य) का पुत्र कह उठा—युगांतकालिक घने अंधकार से आवृत पृथ्वी के लिए जब आप सूर्य बने हुए हैं और मैं आपकी कृपा का पात्र बना हूँ, तो ये कार्य (शासन आदि कार्य) असाध्य कैसे हो सकते हैं ?

सुग्रीव ने फिर कहा—हे महिमाशालिन् ! हे प्रभु ! आपकी मधुर कृपा से मैं संपत्ति प्राप्त कर सका। किन्तु, आपकी आज्ञा का उल्लंघन कर मैंने अपनी क्षुद्र वानर-बुद्धि को प्रकट किया।

दीर्घ दिशाओं में जाकर, अन्वेषण कर (देवी सीता को) लाने की शक्ति रखकर भी मैंने उस प्रकार नहीं किया। किन्तु, उत्तम आभरणधारिणी (सीता) के वियोग में जब आपका निर्मल अंतःकरण व्याकुल हो रहा था, तब मैं सुखी जीवन व्यतीत करता रहा।

वीर-कंकण तथा दृढ धनुष धारण करनेवाले हे उदारमना प्रभु ! जब मेरा स्वभाव और विचार ऐसा है और आपकी मनोदशा ऐसी हैं, तो मैं भविष्य में क्या कर सकता हूँ। क्या पराक्रम दिखा सकता हूँ ? इनके बारे में आपसे क्या कहूँ ? (अर्थात्, अपने कार्य के बारे में मैं आपसे कुछ निवेदन करने का साहस नहीं कर पा रहा हूँ।)

लक्ष्मी का निरंतर आवास बने वक्षवाले प्रभु ने सुग्रीव से कहा—बड़ी कठिनाई से व्यतीत होनेवाला वर्षाकाल भी बीत गया। तुम्हारा यह अधिकार-पूर्ण वचन भी ऐसा है कि उससे (देवी सीता का अन्वेषण) कार्य पूरा करने की तुम्हारी दृढता व्यक्त होती है। अतः, वह (वचन) क्षुद्र कैसे हो सकता है ? तुम (मेरे लिए) भरत-समान हो। ऐसे (दीनतापूर्ण) वचन कैसे कह रहे हो ?

फिर, आर्य ने पुनः प्रश्न किया कि विशद ज्ञानवाला मारुति कहाँ है ? तब सूर्य-पुत्र ने कहा—वह जल-भरे समुद्र के समान विशाल सेना को लेकर आ रहा है।

एक सहस्रकोटि दूत विशाल वानर-सेना को लाने के लिए शीघ्र गति से गये हैं। सेना को जुटाकर लाने की अवधि भी पूरी होनेवाली है। अतः, आज या कल, बलवान वानर-सेना के साथ वह (हनुमान्) भी आ जायगा।

आपकी नौ सहस्र कोटि की एक विशाल सेना अब मेरे साथ है। दूसरी सेना भी

अब मेरे साथ है। दूसरी सेना के आने की अवधि भी कल ही है। वह सेना भी आ जाय, तो तब आगे के कर्त्तव्य के बारे में विचार करना उचित होगा।—यों सुग्रीव ने कहा।

प्रेम-भरे रामचन्द्र ने कहा—हे वीर! तुम्हारे लिए यह (सेना-संगठन) कोई कठिन कार्य नहीं हैं। तुम्हारी विनम्रता भी अच्छी है। फिर, आगे कहा—अब दिन का अधिक भाग बीत गया है। अब तुम जाओ, अपनी सेना के आने के पश्चात् आओ—यों प्रभु के आदेश देने पर उन्हें प्रणाम करके सुग्रीव विदा हुआ।

अरुण कमलदल-सदृश नेत्रवाले (रामचन्द्र) ने अंगद के प्रति मधुर वचन कहकर यों आदेश दिया कि हे तात! तुम भी जाकर अपने पिता (सुग्रीव) के साथ विश्राम करो। फिर, अपने भाई तथा अपने ध्यान में स्थित (सीता) देवी के साथ स्वयं भी उस रात को वहीं विश्राम करते रहे।

अति महान् कीर्त्तिवाले ने (अपने अनुज के प्रति) आदेश किया कि सुग्रीव के पास तुम्हारे जाने तथा वहाँ घटित अन्य सभी घटनाओं का वृत्तांत सुनाओ। तब सबको सत्य रूप में समझने की शक्ति रखनेवाले पराक्रमी लक्ष्मण ने (सारा वृत्तांत) कह सुनाया। (१—१३६)

●

अध्याय ११

सेना-संदर्शन पटल

उस दिन रात को वे (रामचन्द्र) वहीं ठहरे। प्राची दिशा के स्वर्णमय उन्नत गिरि पर सूर्य का प्रकाश फैलने के पहले ही किस प्रकार, बलवान् वानर-दूतों के द्वारा लाई गई पर्वत-समान सेना वहाँ आ पहुँची—अब यह हम उसका वर्णन करेंगे।

शतबली नामक वानर-वीर, दस लाख गजों के बल से युक्त एक सहस्र वानर-सेनापतियों को तथा सुचारु रूप से दलों में विभाजित, शंख-समान उज्ज्वल, अति मनोहर दस सहस्र कोटि संख्यावाली वानर-सेना को साथ लेकर आ पहुँचा।

सुषेण नामक उत्तम वानर-वीर, मेरु पर्वत को उखाड़नेवाली, सचेत होकर मदिरा का पान करने से स्वच्छ मनवाली शत सहस्र कोटि वानर-सेना को साथ लेकर आ पहुँचा।

अमृत-सदृश बोलीवाली रूमा का पिता, अड़तालीस सहस्र कोटि वानर-सेना को लेकर आ पहुँचा, जो अपार समुद्र को भी क्षणमात्र में कीचड़ बना सकती थी।

इस धरती तथा ऊपर के लोकों में भी अपनी कीर्त्ति को सुस्थिर बनानेवाले उत्तम (हनुमान्) को जन्म देनेवाला केसरी (नामक वानर-वीर) पचास लाख कोटि, उन्नत पर्वत-सदृश कंधोंवाले वानरों की सेना को लेकर ऐसे आ पहुँचा, मानों कोई समुद्र ही आ गया हो।

क्रोध करने पर एक-एक वानर सूर्य को भी प्रतापहीन कर देने तथा अपने बल का

अभिमान करने पर एक-एक वानर अकेले ही सारी धरती को मिटा देने की शक्ति रखनेवाले प्रसन्न चित्तवाले चार सहस्र वानर-वीरों की सेना को संचालित करते हुए, गवाक्ष आ पहुँचा।

अति बलवान् धूम्र नामक ऋक्षपति, दो सहस्र कोटि भालुओं की विशाल सेना को साथ लिये आ पहुँचा। ये ऋक्ष उज्ज्वल दंतवाले उस आदि वराह के सदृश बलवान् थे, जिसने अपने दाँत पर धरती को उठा लिया था और रक्ष, जो इतने भयंकर रूपवाले थे, मानों ऊँचे तथा विशाल, पर्वतों को अपने एक रोम-कूप में समा सकते थे।

चलते-फिरते किसी पर्वत के सदृश रूपवाला, क्रोध के कारण स्मरण करने मात्र से विष एवं वज्र-जैसे ही कँपा देनेवाला, पनस नामक वीर, बारह सहस्र कोटि, कठोर क्रोधवाले वानरों की सेना को लेकर आ पहुँचा।

नील नामक वीर, वज्रघोष तथा समुद्रघोष को भी परास्त करनेवाली अपार कोलाहल ध्वनि से युक्त, अतिविशाल, बलवान् तथा कठोर यम की समानता करनेवाले पचास करोड़ वानरों की सेना लेकर आया।

दरीमुख नामक वानर-वीर, भारी भुजावाले, दृढ़ वक्षवाले, बलशाली, स्थिर (स्वभाववाले), उग्र, कठोर नेत्रों से अग्नि उगलनेवाले, तथा पर्वत से भी अधिक विशाल आकारवाले तीस करोड़ वानरों की सेना-रूपी समुद्र को लेकर आ पहुँचा।

प्रख्यात गज नामक वानर वीर, तीस हजार कोटि की संख्या में, संसार-भर में फैले हुए कठोर क्रोध से सिंह-समूह को भी कँपा देनेवाले (सेना-रूपी) समुद्र के साथ आया, जिसकी सेना को देखकर ऐसा विचार होता था कि इसके लिए यह धरती भी पर्याप्त नहीं है। और दूसरी एक विशाल धरती की आवश्यकता है।

विशाल पर्वत के सदृश कंधोंवाला जांबवान् समुद्र की वीचियों-जैसे लपककर चलनेवाली एक सहस्र साठ सौ करोड़ संख्यावाली, समस्त प्रदेश पर छाई हुई चलनेवाली बड़ी वानर-सेना को साथ लेकर आ पहुँचा।

असमान बल से युक्त दुर्मुख नामक वानर-वीर, कमल में उत्पन्न ब्रह्मा के यह आदेश देने से कि तुम जाकर राक्षसों को मिटा दो, दस लाख के दलों में विभाजित दो करोड़ वानर-सेना को साथ लेकर आया।

पुष्प-मालाओं से अलंकृत, पर्वत-समान विशालकाय द्विविध नामक वीर, कठोर क्रोधवाले अनेक लाखों वानरों को लेकर ऊपर के गगन और पृथ्वी को धूल से आवृत करता हुआ आ पहुँचा।

साकार विजय-जैसे रूपवाला, प्रभूत पराक्रमवाला, मैन्द नामक वानर, मल्लयुद्ध में श्रेष्ठ गजगोमुख नामक वीर के साथ तथा अति क्रोधवाली शतलक्षसंख्य वानर-सेना के साथ आ पहुँचा।

कुमुद नामक वीर, चरखी-जैसे (वेग से) चलनेवाली, पवन से भी अधिक वेगवाली तथा यम से भी अधिक कठोर, इस प्रकार चलनेवाली, जैसे उज्ज्वल वीचियोंवाला समुद्र अपने स्थान से उमड़कर जा रहा हो—ऐसे नौ करोड़ बलवान् वानरों की सेना को लेकर आ पहुँचा।

युगांत में समुद्र के उमड़ आने पर भी नाश न होनेवाला, पद्ममुख नामक वानर, उनचास कोटि बलवान्, सुन्दर तथा दीर्घ भुजावाले वानरों की सेना लेकर ऐसे आ पहुँचा कि धरती की धूल उड़कर गगन में छा गई।

ऋषभ नामक वीर, नौ सहस्र कोटि संख्यावाले ऐसे वानरों की सेना को लेकर आ पहुँचा, जिनकी भुजाएँ युगांत में भी विनष्ट न होनेवाले ऊँचे पर्वतों के समान बलवान् थीं।

दीर्घपाद, विनत और शरभ नामक वानर-वीर तरंगों से पूर्ण नीले महासमुद्र से भी अधिक विशाल रूपवाले, किसी के लिए भी गणना करने में असाध्य, काले मुखवाले करोड़ों वानरों की सेना को लेकर, एक के पश्चात् एक ऐसे आ पहुँचे कि ब्रह्मांड के अंतर में और उसके बाहर भी धूलि व्याप्त हो गई।

मनोहर सहस्र किरणोंवाले सूर्य को देखकर भी भयभीत न होनेवाला हनुमान्, पच्चीस सहस्र कोटि वानरों को लेकर ऐसे आ पहुँचा कि सारी दिशाओं का अंतर छोटा ज्ञात होने लगा और धरती एक ओर झुक गई।

देवशिल्पी विश्वकर्मा का मनोहर तथा सत्यनिष्ठ नल नामक पुत्र, शीघ्र एकत्र हुए लक्ष कोटि वानरों की सेना को लेकर आ पहुँचा, तो देवता भी अनुमान नहीं कर सके कि उसकी सीमा क्या है और यम भी भ्रांत तथा व्याकुलचित्त हो उठा।

कुंभ, शंख इत्यादि वानर-सेनापतियों के साथ आनेवाली वानर-सेना की गणना करना इस संसार के लोगों के लिए असंभव है। यों कह सकते हैं कि वह सेना उतनी थी, जितनी राघव के तूणीर में बाण थे। इसके अतिरिक्त दूसरे ढंग से उसका वर्णन करना असंभव है।

यदि वह वानर-सेना निमज्जित हो, तो सप्त महासमुद्रों का भी जल सूख जायगा और उसके स्थान में श्वेत धूलि फैल जायगी। यदि (वह सेना) एक ओर झुके, तो भूमंडल और महामेरु भी एक साथ झुक जायेंगे। यदि (वह सेना) उठकर चलने लगे, तो इस पृथ्वी में तिल भर भी स्थान नहीं रह जायगा। यदि क्रोध कर उठे, तो कठोर अग्नि तथा सूर्य भी झुलस जायेंगे।

धरती पर एकत्र हुई उस वानर-सेना की गणना करने लगें, तो सत्तर सहस्र ब्रह्माओं से भी उसकी गणना नहीं हो सकती। यदि (वह वानर-सेना) खाने लगे, तो सभी अंडगोल उनके लिए एक-एक मुट्ठी भरकर खाने के लिए भी पर्याप्त नहीं होंगे। यदि (वह सेना) आँख उठाकर देखे, तो ललाट में अग्निमय नेत्रवाले (शिव) को भी मात कर देगी।

वह वानर-सेना यदि तोड़ने लगे, तो उत्तर के मेरु को भी तोड़ देगी। यदि टकराना चाहे, तो विशाल आकाश के ढक्कन से भी टकरा जाय। यदि पकड़ना चाहे, तो महान् प्रभंजन को भी पकड़ ले। यदि पीना चाहे, तो सप्त समुद्रों के जल को भी अंजलि में भरकर पी जाय।

वे वानर, प्रख्यात दिशाओं के उस पार भी कूद जा सकते थे। अपने प्रभु अनुपम सुग्रीव के सोचे हुए प्रत्येक कार्य को तुरंत कर देने की क्षमता रखते थे। ऐसे सड़सठ

संख्या में वानर-सेनापति उत्तरोत्तर उमड़ आनेवाली विशाल सेना को एकत्र करके अनायास ही आ पहुँचे।

वे वानर-सेनापति ऐसी वानर-सेना को लेकर आये, जो सप्त समुद्रों की विस्तीर्णता से भी अधिक विशाल थी। 'एक चक्र तथा उत्तम अश्ववाले रथ पर चलनेवाले सूर्य के पुत्र (सुग्रीव) के चरण जीते रहें!'—यों जयघोष के साथ उन्होंने प्रणाम करके पुष्प बरसाये।

उस प्रकार की वानर-सेना के आ पहुँचते ही सूर्यपुत्र, दशरथ-पुत्र के निकट शीघ्र जा पहुँचा और कहा—पाप-कर्मों के लिए यम-सदृश आपकी यह विशाल सेना विचार करने के पहले ही (अर्थात्, अति-शीघ्र ही) आ एकत्र हुई है। आप उसे देखने की कृपा करें।

प्रभु, प्रसन्न हुए और उनके मन के समान ही उनका मुख भी विकसित हो उठा। वे इस प्रकार आनंदित हुए, जैसे देवी को ही देख रहे हों। वहाँ स्थित एक ऊँचे पर्वत के शिखर पर वे जा पहुँचे। सूर्य-कुमार फिर, उस सेना के मध्य लौट गया।

सुग्रीव ने उस अपार वानर-सेना को यह आदेश दिया कि वह पंद्रह योजन के विस्तार में, उत्तर से दक्षिण की ओर पंक्तियों में खड़ी हो जायें। फिर, अतिक्रोधी वानर-सेनापतियों को साथ लेकर वह (रामचन्द्र के निकट) लौट आया।

सुग्रीव लौटकर रामचन्द्र के समीप आ पहुँचा और बोला—हे पराक्रमी, विजयशील शूल धारण करनेवाले! आप उस ओर दृष्टि डालें—यों कहकर क्रमशः (अपने सेनापतियों का) परिचय कराया और वहीं खड़ा रहा। इधर एकत्र वानर-सेना तरंगायमान क्षीर-सागर के समान बड़े कोलाहल के साथ बढ़ चली।

अष्ट दिशाओं, धरती के विस्तृत प्रदेश, देवताओं के आवासभूत ऊपर के वर्तुलाकार लोक तथा वीचियों से पूर्ण सप्त समुद्रों को भी आवृत करके धूलि नीचे से ऊपर तक उठ चली, जिससे यह ब्रह्मांड धूलि से भरे हुए कुंभ के समान दीखने लगा।

यदि कहें कि (इस सेना का) समुद्र उपमान हो सकते हैं, तो (यह कथन अनुचित होगा; क्योंकि) उन समुद्रों के परिमाण को पहचाननेवाले लोग भी हैं—(किन्तु उस वानर-सेना के परिमाण को जानना कठिन था।) अब विद्वान् उस वानर-सेना का अन्य क्या उपमान दे सकते हैं? बीस दिन पर्यंत, दिन-रात लगातार देखते रहने पर भी राम-लक्ष्मण उस सेना के मध्य को भी नहीं देख पाये। फिर, उसकी अंतिम सीमा को कैसे देखा जाय?

रामचन्द्र—जो ऐसे थे कि विजय प्राप्त करने में उनके उपमान वे स्वयं ही थे और ऊपर के लोकों में, सुन्दर समुद्र से आवृत धरती पर तथा नागों के लोक में उनका उपमान अन्य कोई नहीं था, अपनी आँखों से, मन से, शास्त्र-ज्ञान से तथा सहज ज्ञान से भली भाँति विचार करके, महिमापूर्ण अपने अनुज को देखकर कहने लगे—

हे विकसित पुष्पों की माला धारण करनेवाले! हमने अपनी बुद्धि से, इस विशाल वानर-सेना के कुछ भाग को तो किसी प्रकार देख लिया। इसकी सीमा को देखने का भी

कोई उपाय है ? लोग कहते हैं कि उन्होंने इस भूलोक में समुद्र की सीमा को देखा है। किन्तु, इस सेना-समुद्र की सीमा को भली भाँति देखनेवाले कौन हैं ?

हे सुगंधित पुष्पमाला को धारण करनेवाले ! ईश्वर के स्वरूप को, दस दिशाओं को, पंच महाभूतों को, सूक्ष्म ज्ञान को, उच्चारित शब्दों को, विभिन्न धर्मों के परस्पर के विभेद को तथा यहाँ एकत्र इस दोषहीन वानर-सेना को, संपूर्ण रूप से कौन देख सकता है ?

यदि हम इस विशाल सेना को यहाँ रहकर संपूर्ण रूप से देख लेंगे और फिर कार्य करने लगेंगे, तो उसीमें अनेक दिन व्यतीत हो जायेंगे। अतः, ठीक-ठीक विचार करके कर्त्तव्य कर्म पर मन लगाना ही उचित होगा—रामचन्द्र के यों कहने पर लक्ष्मण ने हाथ जोड़कर कहा—

हे देव ! यहाँ एकत्र इन वानर-वीरों के लिए जिस लोक में जो कार्य करना है, वह अत्यन्त सुलभ है। इनके लिए अमुक कार्य कठिन है—यह कैसे कह सकते हैं ? देवी का अन्वेषण करना (इनके लिए) अत्यन्त सुलभ है। इस सेना से पाप परास्त हो गया और धर्म जीत गया।

तरंगों से भरे जल में उत्पन्न कमल से उद्भूत ब्रह्मदेव ने इस विशाल लोक में जिन महान् प्राणियों की सृष्टि की है, वह इसलिए ही कि वे सजीव पर्वत जैसे इन वानरों की सेना को गिनने के लिए संख्यासूचक चिह्न बन सकें।

हे महान् शास्त्रों में निपुण ! आठों दिशाओं में अन्वेषणार्थ जानेवाले इन वानरों को सत्वर न भेजकर यहाँ रोक रखना ठीक नहीं—यों लक्ष्मण ने कहा। तब महिमामय (प्रभु) ने अलंकृत रथवाले सूर्य-पुत्र से कहा। (१–४०)



अध्याय १२

अन्वेषणार्थ प्रेषण पटल

(श्रीरामचन्द्र ने सुग्रीव को देखकर कहा—) यह सेना श्रेणियों में विभाजित है। (इसके सैनिक) अहंकार और परस्पर के वैरभाव से रहित हैं। अतः, विशाल रूप में एकत्र यह सेना किसी से भी अभेद्य है, क्या इसका परिमाण भी कुछ है ?

(सुग्रीव ने उत्तर दिया—) बुद्धिमानों के द्वारा विचार कर निश्चय किया हुआ एक संख्यावाचक शब्द है—'वेल्लम' (१८,३५,००८ करोड़ का एक वेल्लम होती है)। वैसे सत्तर वेल्लम के परिमाण में यह सेना है। इसको छोड़कर, यह कहना असंभव है कि इस सेना के परिमाण को सूचित करनेवाला अन्य कोई शब्द है।

इस सेना के वीरों में सड़सठ करोड़ विजयी सेनापति हैं। इन सेनापतियों में सब से प्रमुख महासेनापति, कठोर यम को भी भस्म करने की शक्ति रखनेवाला नील (नामक) वानर है। यों (सुग्रीव ने) कहा।

यों कहनेवाले उष्णकिरण के पुत्र को देखकर विजयी धनुर्धारी ने कहा—यहाँ खड़े रहकर बातें करते रहने से क्या प्रयोजन है ? अब चलकर आगे के कार्यों के संबंध में विचार करें।

तब उस (सुग्रीव) ने महानुभाव हनुमान् को देखकर इस प्रकार आज्ञा दी—हे तात ! तुम अपने पिता (पवन) के समान ही त्रिभुवन में संचरण करने की शक्ति रखते हो, तो भी उस शक्ति को न पहचान कर व्यर्थ ही विलंब कर रहे हो। क्या तुम पहले दूसरे बड़े वेगवान् वानरों का कार्य देखना चाहते हो ?

तुम अब जाओ। उत्तम आभरणधारिणी देवी कहाँ है, इसका पता लगाओ। पहले तुम नागों के लोक (पाताल) में जाकर खोजो। धरती पर खोजो। तुम्हारा वेग तो ऐसा है कि तुम भोगभूमि स्वर्ग में भी जा सकते हो। तुम्हारा वह वेग भी तो अब प्रकट होना चाहिए।

मेरी बुद्धि कहती है कि रावण का विशाल (लंका) नगर दक्षिण दिशा में है। हे मारुति ! अब इस बलपूर्ण दिशा को जीतकर यश पाने का अधिकारी तुम्हें छोड़कर और कौन है ?

हे स्वच्छ ज्ञानवाले ! मेरा खयाल है कि उदारशील (प्रभु) की देवी का अपहरण करके दक्षिण दिशा की ओर ले जाते हुए हमने रावण को देखा था। तुम इसपर विचार करो।

तारा पुत्र (अंगद), जांबवान् आदि अनेक वीर बड़े गौरव के साथ तुम्हारे संग जावें। दो 'वेल्लम' संख्यावाली वानर-सेना भी अपने साथ ले जाओ।

पश्चिम दिशा में ऋषभ, कुबेर की उत्तर दिशा में शतबली तथा इन्द्र की प्राची दिशा में विनत, बड़ी-बड़ी सेनाएँ लेकर जायँ—यों सुग्रीव ने कहा।

फिर, सुग्रीव ने उन ऋषभ आदि वानरों से कहा—हे विजयी वीरो, विजय करनेवाली दो 'वेल्लम' वानर-सेना के साथ घूम-घूमकर देवी का अन्वेषण करना और एक मास व्यतीत होने के पूर्व ही यहाँ लौट आना।

फिर, दक्षिण दिशा में जानेवाले वानरों को देखकर सुग्रीव ने कहा—तुम यहाँ से चलकर उस विन्ध्याचल पर्वत पर जाओ, जो अपने अतिसुन्दर सहस्रों उज्ज्वल शिखरों के कारण विष्णु के विराट् रूप-सा दिखाई पड़ता है और आगे बढ़कर प्रणाम करने योग्य है।

उस (विन्ध्य) पर्वत पर खोजने के पश्चात् नर्मदा नदी पर जाना, जिसमें देवता भी स्नान करते रहते हैं। जहाँ भ्रमर (पुष्पों के) मधु का पान करके पंचम स्वर में गाते रहते हैं तथा जहाँ के विविध रत्नों (के प्रकाश) से अंधकार दूर होता रहता है।

फिर, हेमकूट नामक पर्वत पर जाना, जहाँ धूम्रवर्ण के अशुभ पक्षी (जो संगीत सुनकर तल्लीन हो जाते हैं) मनोहर मेखलाधारिणी देव-रमणियों के, आनन्द से गाये जानेवाले संगीत-रूपी मधु का पान करते हुए निद्रा लेते हैं।

शीघ्र ही उस (हेमकूट) पर्वत से चलकर वहाँ के अपने साथी वानरों के साथ आगे बढ़ जाना। फिर, काले रंगवाली पेन्ना नदी के तटों में उत्तम गुणवाली देवी को ढूँढ़ना और वहाँ से सत्वर आगे बढ़ जाना।

सुगन्धित दीर्घ अगरु-वृक्ष तथा और ऊँचे बढ़े हुए चंदन-वृक्ष, जिस देश की बाड़ बने हुए हैं, उसे धीरे-धीरे पार करना और अनेक अन्य देशों को भी पीछे छोड़कर जल से समृद्ध दंडकारण्य में जाना।

दंडकारण्य में मुंडकोपवन नाम से प्रसिद्ध एक वन है, जहाँ प्राचीन अगस्त्य मुनि निवास करते हैं। तपस्या-निरत मुनियों से युक्त होने के कारण वह उपवन, दर्शन-मात्र से मन की पीडा को दूर करनेवाला है। तुमलोग वहाँ भी देखना।

पुष्प-भरित वह उपवन, उत्तम धार्मिक व्यक्तियों की संपत्ति के समान शोभायमान है, जिसका उपभोग सारे संसार के लोग करते हैं। वहाँ के वृक्ष उत्तम शील-संपन्न सुन्दरियों के अधरों के समान अकाल में भी फले रहते हैं। वह दृश्य भी तुम लोग देखना।

वहाँ के निवासी सदा अपलक रहते हैं। कभी गाढ़ी निद्रा में नहीं सोते। वह स्थान सूर्य के लिए भी दुर्गम है। सभी प्रकार की भोग्य वस्तुएँ वहाँ प्राप्त होती हैं।

उस स्थान को पार कर, उससे आगे पांडुगिरि नामक पर्वत पर जाना, जो गगन में स्थित चन्द्र को छूता है और जिसे देखकर अरुणकिरण सूर्य भी यह विचार करता है कि इसपर किंचित् विश्राम करके ही आगे बढ़ना चाहिए।

उस पर्वत के समीप एक नदी बहती, है जिसकी अनादि धारा मोतियों को बहाती हुई, स्वर्ण-धूलि को बटोरती हुई, रत्नों को लुढ़काती हुई, ग्वालों के आँगनों से मथानियों को समेटती हुई, वृक्षों को ढहाती हुई, पर्वत-शिलाओं को ढकेलती हुई, मृगों को भी खींचती हुई बहती है। वह धारा किसी भी व्यक्ति को, पुत् नामक नरक में जाकर क्लेश भोगने से बचाती है। उस पावन धारा का नामक गोदावरी है।

उस नदी को पारकर उसके आगे सुवर्ण नामक नदी पर जाना, जो धर्म-मार्ग के समान है, निर्मल करुणा के अभिलषणीय मार्ग के समान है, जिसके दोनों कूलों पर शीतल तथा विकसित पुष्पों से पूर्ण घने वृक्ष यों छाये रहते हैं कि सूर्य की किरणें भी उसके भीतर प्रवेश नहीं पातीं। जिसमें रत्न ऐसे चमकते हैं कि अंधकार का नाम भी मिट जाता है और जहाँ देवताओं की प्रार्थना से छह मुखवाला विलक्षण देव (कार्त्तिकेय) एकांत में रहता था।

सुवर्ण नदी को पारकर उस सूर्यकांत पर्वत को जाकर देखना, जहाँ की (कृषक) बालाएँ जब फंदे में रखकर पत्थर के टुकड़े फेंकती हैं, तब वे पत्थर धूप-जैसी कांति को बिखरते हैं। वहाँ से आगे चलकर चंद्रकांत पर्वत को भी देखना। उन पर्वतों को लाँघकर अनेक विशाल देशों को पार करना। फिर, कोंकण देश में जाना, जहाँ आदि-शेष, पक्षिराज (गरुड) से डरा हुआ, छिपकर अपना जीवन बिताता है। फिर, कुलिन्द देश में जाना।

जो इस बात पर झगड़ते रहते हैं कि शिव बड़े हैं या विश्व को नापनेवाले हरि बड़े हैं, ऐसे ज्ञान-हीन लोगों के लिए जिस प्रकार सुगति दुर्गम होती है, उसी प्रकार दुर्गम रहनेवाला अरुन्धति नामक एक पर्वत वहाँ है, जो आकाशगंगा के अति निकट रहता है। जिसके गगनोन्नत शृंगों पर दोनों ज्योतिष्पिण्ड (सूर्य-चंद्र) विश्राम करते हैं, जिसमें ऐसी

शक्ति है कि उसको नमस्कार करनेवालों को वह सब अभीष्ट प्रदान करता है। उसको प्रणाम करके आगे बढ़ना।

भयंकर तथा जलते हुए रेगिस्तानों, नदियों, विशाल जल-स्रोतों, ऊँचे पर्वतों, जो अगरु, चंदन आदि वृक्षों एवं मेघों से आवृत रहते हैं, तथा समृद्धि-युक्त देशों को पीछे छोड़कर आगे के मार्ग पर बढ़ जाना। फिर, मरकत पर्वत के पास जाना, जहाँ गरुड ने विषमुख नागों को अमृत देकर अपनी माता विनता को (दासता से) मुक्त किया था। उस (पर्वत) को नमस्कार करके उसके पार्श्वमार्ग से आगे जाना।

फिर, उस ऊँचे वेंकटाचल पर जाना, जो उत्तरी भाषा तथा दक्षिणी भाषा (तमिल) की सीमा-रेखा बना है, जिसपर स्वयं भगवान् विराजमान रहते हैं, जो वेदों तथा शास्त्रों में प्रतिपादित सब पदार्थों की सीमा है, जो स्वयं सब धर्मों की पराकाष्ठा है, जिसका उपमान बनने योग्य कोई वस्तु नहीं है, जो ऐसा शोभायमान है, जैसा साकार यश हो और जिसके सानुओं में मधु के छत्ते भरे रहते हैं।

उस वेंकटाचल पर ऐसे महात्मा लोग रहते हैं, जो दोनों प्रकार के (पाप और पुण्य) फलों से संबद्ध कोई कर्म नहीं करते, जो देवताओं से प्रशंसित संपन्न जीवन तथा दूसरों पर निर्भर रहनेवाला दरिद्र जीवन—दोनों को समान मानते हैं तथा जो ऐसे अपार आत्मज्ञान से संपन्न हैं, जिससे इस जन्म के कारणभूत कर्म-बंधन मिट जाते हैं। वे ऐसे महान् हैं कि हमारे द्वारा यहाँ से भी नमस्कार करने योग्य हैं।

वहाँ ऐसी नदियाँ हैं, जिनमें कपटहीन उत्तम ब्राह्मण स्नान करते हैं। ऐसे आश्रम हैं, जिनमें वेद तथा प्राचीन शास्त्रों के ज्ञाता मुनि निवास करते हैं। ऐसे रत्नमय पर्वतशृंग हैं, जिनके मध्य मेघ विश्राम करते हैं। ऐसे स्थान हैं, जहाँ देव-रमणियों के संगीत के उपयुक्त किन्नरवाद्य की तंत्रियों से उत्पन्न नाद से गजों तथा व्याघ्रों के बच्चे सो जाते हैं।

ऊँचे शिखरों से युक्त उस वेंकटाचल के निकट जाओ, तो तुम लोगों के सभी पाप मिट जायँगे और मोक्ष प्राप्त कर लोगे। अतएव (उस पर्वत के निकट न जाकर) वहाँ से दूर हटकर जाना। फिर, वहाँ से आगे स्थित जल से समृद्ध 'तोंडे' देश में जाना। वहाँ खोजने के पश्चात् फिर, गंभीर गतिवाली, 'पोन्नि' नामक महिमामय शीतल जल से पूर्ण दिव्य कावेरी नदी के किनारों पर जाना।

तुम उस चोल देश में जाना, जहाँ (कावेरी नदी का) जल इतना स्वच्छ है, जितना स्वर्ग को प्राप्त किये हुए महात्माओं का मन होता है। जहाँ प्रारब्धकर्म से मुक्त पुरुष गुप्त रूप से निवास करते हैं। उसे पार करके तुम लोग सत्वर आगे बढ़ जाना और निद्राशील व्यक्ति किस परिणाम को पहुँचते हैं, उसका स्मरण करके वहाँ से हट जाना। फिर, रत्नमय पर्वतों से युक्त मलय देश में जाकर ढूँढना। उसके पश्चात् विशाल तमिल देश—पांड्यदेश में जाना।

दक्षिण में स्थित, तमिल देश में विशाल पोदिय नामक पर्वत है, जहाँ मुनिश्रेष्ठ (अगस्त्य) का तमिल-संघ है। वहाँ जाकर उस मुनि के निरंतर आवासभूत उस पर्वत को नमस्कार करके आगे बढ़ना। फिर, सुन्दर जलधारा से युक्त ताम्रपर्णी नदी को पार करके

गजों के आवास बने ऊँचे सानुओं से शोभित महेंद्र पर्वत को एवं दक्षिण के समुद्र को देखोगे।

उन स्थान को पार कर आगे जाना और वहाँ सर्वत्र खोजकर, एक मास की अवधि में तुम यहाँ लौट आना। अब तुम लोग शीघ्र विदा हो—(सुग्रीव के) इस प्रकार आज्ञा देने पर, त्रिविक्रम (के अवतारभूत राम) ने मारुति को कृपा-भरी दृष्टि से देखकर कहा—हे नीतिनिपुण! सीता के लक्षण सुनो, जिनसे तुम्हें उसका अन्वेषण करने में सुविधा हो। फिर, आगे कहने लगे—

हे तात! (सीता की) पादांगुलियाँ ऐसी हैं, मानों क्षीरसागर में उत्पन्न प्रवाल के खंडों में महावर लगाकर उनके ऊपरी भाग में अनेक चंद्रों को रख दिया गया हो। प्रसिद्ध कमल तथा अन्य पदार्थ भी उन पादों के उपमान नहीं बन सकते। इतना कहने के अतिरिक्त उन पादयुगल का उपमान क्या कहा जाय?

हे तात! जिस कच्छप को, बुद्धिमानों ने, कंकण-पंक्तियों से भूषित रमणियों के चरणों के ऊपरी भाग का उपमान बताया है, उससे रात्रिकाल की वीणा से भी अधिक मधुर बोलीवाली सीता के चरणों की उपमा देना उस (चरण-युगल) का अपमान करना है। इसे निश्चित जानो।

हे सत्यनिरत! चित्रकारों के लिए जिनके चित्र खींचना दुस्साध्य है, वैसे केश-पाशों से विशिष्ट उस देवी की जानुएँ ऐसी हैं कि बहुत सोच-विचार करने पर भी कोई उनका उचित उपमान नहीं पा सकता। विद्वान् लोग, गर्भिणी 'वराल' (नामक मछली), तूणीर, पुष्ट धानका गाभा,[१] इत्यादि को जानुओं के उपमान कहते हैं। ऐसा तो कोई भी कह सकता है। उसे पुनः मैं कहूँ, तो इसमें क्या रस है?

केशपाश से सुशोभित सुन्दरियों की जाँघों के अति उत्तम उपमान बननेवाले जो कदली-वृक्ष हैं, वे भी जब उन (सीता की) जाँघों से परास्त हो गये हैं, तब उन जाँघों की अन्य उपमा क्या दी जाय? वीणा की ध्वनि को, अमृत-समान मधु को और जल से पूर्ण खेतों में उत्पन्न ईख के रस को भी परास्त करनेवाली बोली से युक्त उस (सीता) की जाँघ इतनी सुन्दर है।

हे उत्तम! कंचुक-बद्ध, चक्रवाक एवं कलश-समान स्तनों से युक्त, 'वंजि' लता-समान (पतली) कटिवाली उस (सीता) के, मेखला-भूषित, चक्राकार वस्त्रावृत जघन-रूपी समुद्र का क्या उपमान हो सकता है—यह मैं तुम-जैसे को क्या कहूँ, जिसने समुद्रावृत धरती को शिर पर धारण करनेवाले आदिशेष के फन को देखा है तथा हिम को दबाकर ऊपर उठनेवाले एक चक्रवाले (सूर्य के) रथ को भी देखा है।

वह ऐसी है कि उसके आकार को देखकर ही (ब्रह्मा) अन्य किसी सुन्दरी का निर्माण कर सकता है। उसकी सूक्ष्म कटि के आकार का वर्णन यदि तुम सुनना चाहो, तो उसके लिए उपमान ढूँढ़ना व्यर्थ है। उस कटि को आँखों से नहीं देखा जा सकता है, केवल मैं हाथ के स्पर्श से ही उसे जान सकता हूँ। अन्य किसी उपाय से उसका वर्णन करने के लिए शब्द ही नहीं है।

---

१. धान का डंठल, जिसमें से अभी बाली नहीं निकल आई हो, जानु का उपमान होता है। —अनु०

साधारण दृष्टि से यह कथन कि (सुन्दरियों के) उदर, वटपत्र, चित्र से अंकित सूक्ष्म चित्र-फलक, दुग्ध-सदृश मृदुल रजत-फलक, वर्त्तुलाकार दर्पण—ऐसे ही अन्य पदार्थों के समान होते हैं, अत्युक्तिपूर्ण कथनमात्र होता है। किंतु, सीता का उदर इतना सुन्दर है कि उन वस्तुओं के साथ उसकी उपमा देना भी उचित नहीं है।

हे समुद्र से भी अधिक विस्तृत ज्ञानवाले ! यदि (सीता देवी की) नाभि का उपमान निर्दोष 'कूदालि' (नामक पुष्प) तथा 'नंदि' (नामक पुष्प) को कहें, तो वे भी क्षुद्र ही होंगे। हाँ, मैं सोचता हूँ कि नदी की भँवर उसका उपमान हो सकती है। गंगा (की भँवर) को देखकर तुम यह बात समझ सकते हो।

लता-सदृश उस (देवी) के उदर पर जो रोमावली है, वह मेरे प्राणों की धारा ही है। यदि उसकी कोई उपमा देनी हो, तो उस अलान से दी जा सकती है, जिसपर दोषहीन कटि के तुल्य कोई छोटी लता स्थिर होकर लिपटी हो।

वह सीता, यह सोचकर कि कमल-दल पर रहने से उसके कोमल शरीर को कष्ट होता है, कमल का आसन छोड़कर धरती पर अवतीर्ण हुई है। उसके उदर पर स्वर्णवर्ण की त्रिवली ऐसी है, मानों मन्मथ ने तीनों भुवनों की सुन्दरियों की (सीता से) पराजय को सूचित करने के लिए ही तीन रेखाएँ अंकित कर दी हों।

उसके स्तनों के उपमान रत्न-संपुट (रत्न की डिबिया) कहूँ, स्वर्ण-कलश कहूँ, रक्तवर्ण कोमल नारिकेल कहूँ, प्रवाल को सान पर चढ़ाकर बनाई हुई चौसर की गोटी कहूँ, दिन में प्रकट हुए चक्रवाक कहूँ ? क्या कहूँ ? उसके स्तनों का कोई भी उचित उपमान मैंने नहीं देखा है।

गन्ने को देखने पर या सुडौल बाँस को देखने पर, मेरी आँखों से अश्रु की वर्षा होने लगती है। इस प्रकार पीडा का अनुभव करने के अतिरिक्त, भ्रमरों से गुंजरित पुष्प-माला को धारण करनेवाली उस (सीता) की भुजाओं के उचित उपमान खोजने या कहने की दृढता मुझमें नहीं है। अब और क्या कहूँ ?

(सीता के) करों के सदृश कोई पदार्थ त्रिभुवन में कहीं है—ऐसा कहना भी अनुचित है। यदि कुछ उपमान कहने भी लगें, तो क्या 'कांदल' पुष्प को उसका उपमान कहें ? वह तो (सीता के करों के सामने) अत्यन्त कठिन है। यदि मकरवीणा को उसका उपमान कहें, तो कुछ गुणों में समान होने पर भी अन्य गुणों में वह उसके अनुरूप नहीं है। जो स्वयं अत्यन्त सुन्दर है, उससे भी अधिक सुन्दर क्या वस्तु हो सकती है ?

मनोहर अशोक-वृक्ष के पल्लव तो दूर रहें। कल्पवृक्ष के नवपल्लव या कमल-लता के कोमल दलवाले पुष्प भी उसकी हथेली के उपमान नहीं हो सकते। वे, सूत्र-सदृश सूक्ष्म कटिवाली उस सीता के नूपुरों से मुखर, चरणों के भी उपमान जब नहीं बनते, तब उसकी हथेली के उपमान कैसे हो सकते हैं ?

धवल दंत, अरुण अधर और चमकते आभरणों से युक्त, यौवनपूर्ण, मनोहर पुष्प-शाखा-सदृश उस सीता के नोकदार हस्त नखों के उपमान कहना असंभव है। तोते, पलाश-पुष्पों पर इसलिए क्रुद्ध रहते हैं कि उन्हीं के कारण (जो सीता के नखों के उपमान

बनते हैं) उन (तोतों) के चञ्चु सीता के नखों के उपमान नहीं रह गये हैं, और उन (पलाश-पुष्पों) को फाड़ते रहते हैं। अब उन नखों के और क्या उपमान कहें ?

हे उत्तम ! (सीता के) अरुण कर एवं अरुण चरण देखकर जिस प्रकार तुम्हें लाल कमल स्मरण आयेंगे, उसी प्रकार रक्त कुमुद-सदृश मदभरे दिव्य नयनोंवाली उस (सीता) का कंठ देखकर, यदि तुम्हें बढ़नेवाला क्रमुक-वृक्ष तथा जल में उत्पन्न होनेवाला शंख स्मरण आवें, तो तुम उन्हीं को उपमान मान लेना।

नील कुवलय के समान, काजल-लगे नयनोंवाली सीता का मनोहर मुँह ऐसा है कि 'किडै' (नामक लाल सेंवार), बिंबफल, नवीन रक्तकुमुद, इन्द्रगोप, पलाश-पुष्प इत्यादि उपमान के योग्य पदार्थ भी, उस मुँह के सम्मुख श्वेत-से पड़ जाते हैं। ऐसे रक्त तथा अमृत-भरे उस मुख का उपमान वही मुख है।

रक्तवर्ण का अमृत नहीं होता। उस रंग का मधु भी नहीं होता। यदि वैसा अमृत और मधु कहीं होते भी हों, तथापि उनका पान करने पर ही वे मधुर लगते होंगे। स्मरणमात्र से वे आनंददायक नहीं होंगे। अतः, उज्ज्वल ललाटवाली सीता के प्रवाल-सम अधर के उपमान यदि हम अपने मन की पसंद के कोई पदार्थ बतावें, तो क्या वे उचित उपमान हो सकते हैं ? (अर्थात्, नहीं हो सकते)।

हे अनुपम महिमावान् ! (सीता के) दंत कुंद मोर-पंखों के मूल, मुक्ता इत्यादि की समता करते हैं—यह कथन ऐसा ही है, जैसा यह कहना है कि उसकी वाणी अमृत, दुग्ध तथा मधु की समता करती है। वास्तव में, उन दाँतों के उपयुक्त उपमान कुछ नहीं हैं। यदि (देव) अमृत का कोई उपमान हो सकता है, तो उन (दाँतों) का भी उपमान हो सकता है।

हे अपार ज्ञानयुक्त ! गिरगिट (की नाक), तिल-पुष्प, रंध्र-सहित कुभिल (नामक पुष्प) सीता की नासिका के उपमान हैं—यदि ऐसा कहें भी, तो वे सब उपमान, निखारे गये स्वर्ण तथा उज्ज्वल रत्न की समता नहीं करते (सीता की नासिका तो स्वर्ण एवं रत्न के समान भी है)। वह (नासिका) निपुण चित्रकार के लिए भी अंकित करने को दुस्साध्य है। तुम इसका विचार कर स्वयं समझ लो।

'वल्लै' लता के पत्र और कैंची—ये कानों के उपमान होते हैं ?—यह बच्चों का कथन-मात्र है। यदि बड़े लोग भी इसी को दुहरायेंगे, तो वह उनका पागलपन होगा। तुम यह समझो कि शुक्रतारा के समान उज्ज्वल ताटंकों ने जो तपस्या की थी, वह तपस्या (सीता के कानों को प्राप्त कर) सफल हुई। जो संसार की सब वस्तुओं के स्वयं उपमान हैं, उनके उपमान कहाँ मिल सकते हैं ?

(सीता के) करवाल-सदृश दीर्घ नयनों के, जो देवाधिदेव (विष्णु) के समान काले हैं तथा श्वेत वर्ण से भी युक्त हैं, अति-विशाल समुद्र भी उपमान नहीं हो सकते। अहो ! यदि कोई दूसरा उपमान खोजना भी चाहें, तो वे नयन किसीके मन में ही नहीं समाते।

यदि करवाल-सदृश नेत्रवाली सीता की भौंहों का वर्णन करने लगें, तो क्या उपमान दें ? यदि ऐसा उपमान दें, जो पूर्ण रूप से उपमेय की समता न करें, तो वह अधम होगा। यदि किसी पदार्थ को सुन्दर मानकर उसे उपमान कहें, तो भी उससे (सीता की भौंहों

की) सहधर्मिता सिद्ध नहीं हो सकेगी। दोनों छोरों पर झुके हुए दो मन्मथ चाप नहीं होते। अतः उसके भौंहों के उपमान भी कहीं नहीं हैं।

शुक्लपक्ष की प्रथमा का चन्द्रमा, यदि उस सीता के ललाट की शोभा का अनेक दिनों तक ध्यान करता रहे और पूर्णिमा के दिन भी पूर्ण न होकर अर्द्ध ही बना रहे, तो उस सीता के ललाट की कुछ-कुछ समता कर सकेगा, जिसके चरणों की सुन्दरता से दिन में प्रफुल्ल कमल-प्रभा भी लजा जाती है।

हमारे अरण्य-वास में आने के उपरान्त (सीता के केशों को) सजाने के लिए कोई (दासी) नहीं रही। ऐसा होने पर भी उन केशों की सुन्दरता घटी नहीं। कंघी करने से नहीं, किन्तु स्वभाव से ही उसके केश घुँघराले हैं। नीलरत्न के समान वे अलक नित-नवीन रहते हैं। अतः, उनका कोई उपमान नहीं है।

ब्रह्मदेव ने, काले मेघ के टुकड़े को, लाल कुमुद को झुके हुए धनुषों को, 'वल्लै' (नामक लता) के पत्तों को, उत्तम मीनों को, तथा उज्ज्वल मुक्ताओं को चन्द्रमा में जोड़कर उसको सीता का वदन बना दिया। जब उस पुंडरीक (-सदृश वदन) के दर्शन तुम करोगे, तभी इस कथन को सच्चा मानोगे।

अनेक सूक्ष्म केशों से भारी बना हुआ अति सुगन्धित उसका केशभार ऐसा है, मानों काले मेघ को काटकर उसपर मधु, अगरु-धूम आदि की सुगन्ध चढ़ा दी गई हो, फिर उसे घने अंधकार के द्रव में डुबो दिया गया हो और उसे ही घने तथा दीर्घ केश-पाश का नाम दिया गया हो।

दिव्य कमल-पुष्प में भी आवरण के दल लगे रहते हैं। सौंदर्य की सीमा बना हुआ चन्द्र भी कलंक से युक्त है। इनके अतिरिक्त अन्य सभी उत्तम पदार्थों में कोई ऐसा नहीं है, जिसमें कुछ-न-कुछ दोष न हो। हंसिनी-समान मनोहर गतिवाली सीता के अंग में सब गुण-ही-गुण हैं। कहीं कुछ दोष नहीं है।

हे तात! विचार कर देखने पर (विदित होता है कि) उत्तम नारी के सभी लक्षण मनोहर तथा सुरभित कमल में निवास करनेवाली लक्ष्मी में भी नहीं होते। किन्तु, कोकिल-सदृश मधुर बोली, मनोज्ञ मीन-सदृश नयनों, अरुण अधर तथा अप्सराओं को भी लज्जित कर देनेवाले स्तनों से युक्त उस (सीता) में सभी लक्षण विद्यमान हैं।

कमलासन (ब्रह्मा) ने बाँसुरी, वीणा, पिक, शुक, तोतली बोली आदि की सृष्टि करके अच्छी कुशलता प्राप्त करने के पश्चात् ही हार-युक्त स्तनोंवाली (सीता) की मधुर-वाणी की सृष्टि की है। उस निर्दोष वाणी का कोई उपमान उस ब्रह्मदेव ने नहीं उत्पन्न किया है। क्या भविष्य में कभी करेगा भी?

स्वर्ग, भूमि और पाताल—तीनों भुवन अतिविशाल रूप में फैले हैं। इनमें कहीं मीन-सदृश नयनवाली उस (सीता) की मधुरवाणी का उपमान कोई वस्तु नहीं है। यदि कह सकते हैं, तो एक मधु है और एक क्षीर है। तो भी वे दोनों श्रवण को मधुर नहीं लगते। एक दूसरा उपमान अमृत भी है, पर वह भी केवल रसना को स्वाद देनेवाला ही है; (श्रवण-सुखद नहीं है)।

हे उत्तम गुणवाले ! कमल-पुष्प में निवास करनेवाली मधुर बोलीवाली राजहंसिनी तथा मनोहर बालकरिणी ऐसी सुन्दर गतिवाली होती हैं कि उन्हें देखकर देवता भी विस्मय करते हैं। किन्तु, मुझे (यह) निश्चय नहीं होता है (कि वे सीता के उपमान हो सकती हैं या नहीं)। हाँ, कविता करने में निपुण, प्राचीन कवि द्वारा विरचित सरस शब्द-गुंफन से युक्त कविता की गति ही उस (सीता) की गति की समता कर सकती है।

(सीता की देह-कांति का क्या उपमान दें ?) आम्रवृक्ष का कोमल पल्लव भी (सीता के सम्मुख) गाढ़ा दीख पड़ता है। सोने का रंग मंद पड़ जाता है। रत्नों की कांति-पूर्ण समता नहीं करती। विद्युत् की चमक (सीता से) लज्जित होकर छिप जाती है और बाहर नहीं निकलती। कमल का रंग पीछे रह जाता है। तो, अब अन्य कौन-सा रंग उपमान के योग्य है ? सीता की देह की कांति का उपमान उनकी देह ही है।

हे उत्तम गुणवाले ! उस (सीता) की समता करनेवाली स्त्री कोई भी नहीं है—केवल इस विचार को ही मन में दृढ रख लो और अपने चित्त से सीता को, उसके स्थान में पहचान लो, फिर उसके समीप जाकर ये अभिज्ञान-वचन कहो—यों कहकर (रामचन्द्र) आगे कहने लगे—

मैं पूर्व में (विश्वामित्र) मुनि के संग जल-संपन्न प्राचीन मिथिला नगरी में दीर्घकेशधारी जनक महाराज के यज्ञ को देखने के लिए गया था। तब उस परिखा के समीप, जिसमें हंस खेल रहे थे, कन्या-निवास के सौध में स्थित सीता को मैंने देखा। यह बात तुम उससे कहना।

अपार समुद्र से भी अधिक (विशाल तथा गंभीर) पातिव्रत्य धर्म से युक्त सीता ने प्रतिज्ञा की थी कि पर्वत-समान धनुष को तोड़नेवाला व्यक्ति, यदि वह मुनि के संग आया हुआ राजकुमार (राम) न होगा, तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगी। यह बात उसे सुनाना।

उस दिन, जनक महाराज की सभा में मैंने उस सीता को देखा। वह अपने मनोहर स्तन-रूपी गिरि-युगल का भार वहन करती हुई इस प्रकार आई, जिस प्रकार कोई मत्तगज, मुखपट्ट से आवृत परस्पर तुल्य दंतद्वय को लिये आ रहा हो। वह (स्तन-भार के कारण) गगन की विद्युल्लता के समान लचकती हुई आई थी।

तुम उस (सीता) से मेरे ये वचन कहना, जिन्हें मैंने उससे पहले कहा था—'हे मुग्धे। तुम मेरे संग ऐसे भयंकर कानन में जाना चाहती हो, जिसे पहले तुमने देखा भी नहीं है। अबतक तुम मेरे लिए मुझे सुख देनेवाली रही। मेरे अपूर्व प्राणों के अनुकूल बनी रही। अब क्या तुम दुःख देनेवाली बनना चाहती हो ?'

तब सीता ने कहा—'हे अपने स्वत्व-राज्य को भी त्यागकर वन में जानेवाले प्रभु ! क्या अब मेरे अतिरिक्त अन्य सब पदार्थ आपके लिए आनन्ददायक हो गये ?' और वह अपने मीन-सदृश तड़पते हुए विशाल कमल-दल की समता करनेवाले नयनों से अश्रु बहाती हुई, शरीर से निकलने के लिए तड़पते हुए अपने प्राणों के समान ही अत्यंत व्याकुल हो गई और मूर्च्छित होकर गिर पड़ी।—यह भी उससे कहना।

जब हम समृद्ध (अयोध्या) महानगर को छोड़कर चले थे, तब चन्द्र को छूनेवाली

पत्थरों के बने ऊँचे प्राचीर के सुन्दर द्वार को पार करने के पूर्व ही वह (सीता) कह उठी—सीमाहीन घोर अरण्य कहाँ है ?—यह भी उससे कहना।

(रामचन्द्र ने हनुमान् से) इस प्रकार के वचन कहे। फिर, यह कहकर कि सुख से जाओ, उत्तम रत्न से जड़ी मुँदरी भी दी और कहा—'हे बुद्धिमान्! तुम्हारे सब कार्य सफल हों'—ऐसा आशीष देकर रामचन्द्र ने हनुमान् को विदा किया। हनुमान् वीर-वलय-धारी (रामचन्द्र) की कृपा को आगे करके चल पड़ा।

अंगद प्रभृति वीर वानर, जिनका क्रोध शत्रुओं को विनष्ट कर सकता था, सूर्यपुत्र के प्रति नतशिर होकर फिर उत्तम धनुर्धारी (राम-लक्ष्मण) को भी नमस्कार करके, विशाल समुद्र-सम सेना के साथ दक्षिण दिशा की ओर चले। (१–७४)

●

अध्याय १३

बिल-निष्क्रमण पटल

अंगद प्रभृति वे वीर, दक्षिण दिशा की ओर चले। उनके चले जाने के पश्चात् सूर्यपुत्र दक्षिण के अतिरिक्त सब दिशाओं में अन्य वानरों को भेज दिया। वे वानर आदेश दिये हुए कार्य (सीतान्वेषण) को संपन्न करने के लिए सारे संसार को भी जीतनेवाली विशाल सेना को लेकर, एक मास की अवधि के भीतर लौट आने का निश्चय करके, प्रबल गति से चल पड़े।

पर्वत-सदृश कंधोंवाले वानर, विद्युल्लता-समान कटिवाली (सीता) का अन्वेषण करते हुए किस प्रकार पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशाओं में गये—यह न कहकर, हम समृद्ध तमिल (भाषा और साहित्य) से संपन्न दक्षिण दिशा में गये हुए वानरों के कार्यों का वर्णन करेंगे।

वे वीर, सिंदूर और पुंजीभूत माणिक्य की कांति फैलने से संध्याकालिक गगन की समता करनेवाले तथा सर्पों से, चंद्र से एवं नदियों से संयुक्त रहने के कारण शिवजी की जटा की समता करनेवाले विंध्य-पर्वत के सानुओं पर शीघ्र जा पहुँचे।

उन दोष-रहित वीरों ने, उस दीर्घ पर्वत के मध्य उज्ज्वल रत्नों से पूर्ण शिखरों पर, मनोहर घाटियों में स्थित कंदराओं में, पर्वत के सानुओं तथा दीर्घ एवं सुन्दर प्रान्त-प्रदेशों (तलहटियों) में इस प्रकार ढूँढ़ा कि अनेक दिनों तक अन्वेषण करने का कार्य एक ही दिन में समाप्त कर लिया।

(धरती की) सीमाओं पर स्थित समुद्र ही जिसके उपमान हैं, ऐसी वह वानर-सेना उस सीता के, जो समृद्ध भूमि को निष्पाप करने के लिए अवतीर्ण हुई थी और जो सोने की पट्टी से अलंकृत अंधकार-सदृश केशोंवाली थी—रहने के स्थान को खोजते हुए उस भू-प्रदेश

में (विंध्य-प्रांत में) ऐसे फैल गई कि उनके अतिरिक्त अन्य किसी के लिए वहाँ स्थान ही नहीं रहा।

उत्तम बुद्धिवाले वे वानर, पृथक्-पृथक् होकर चलते। कुछ (घाटियों में) उतरकर चलते। कुछ (शिखरों पर) चढ़कर चलते। कुछ गगन-मार्ग से उछलकर चलते। उस पर्वत के पेड़ों के मध्य तथा जल की धाराओं में रहनेवाले जीवों में से कहीं कोई ऐसा नहीं रहा, जिसे उन वानरों ने नहीं देखा हो। ऐसा कोई हो, तो वह ब्रह्मा की सृष्टि में ही नहीं है।

धरती के शिरोभूषण के समान रहनेवाली दक्षिण दिशा (देश) में शीघ्र गति से जानेवाले वे वानर-वीर, चौदह योजन दूर गये और उस नर्मदा नदी पर जा पहुँचे, जहाँ भैंसों के बछड़े काले मेघों की पंक्तियों के मध्य मिले पड़े रहते हैं।

हंसों के क्रीडा-स्थल, देव-रमणियों के स्नान के घाट, स्वर्गस्थ देवों के विहार-स्थान, मधुपान से मत्त भ्रमर-कुलों के गान से गुंजरित प्रदेश—सर्वत्र घूम-घूमकर उन वानरों ने (सीता का) अन्वेषण किया।

वे वानर, जो अपूर्व नारी (सीता) का अन्वेषण करने के लिए चले थे, काली मिट्टी-रूपी केश-पाश को, अलक-रूपी भ्रमरों से आवृत सुगंधित कमल-रूपी वदन को तथा (लहरों से छिटकाई जानेवाली) मुक्ता-रूपी दाँतों को देखते थे, किंतु कहीं सीता के पूर्ण रूप को नहीं देख पाते थे।

युद्ध करने के उत्साह से पूर्ण शरीरवाले, अनन्य चित्तवाले, धर्म एवं करुणा से पूर्ण स्वभाववाले वे वानर, उस नर्मदा नदी को पार करके गये, जिसमें मत्तगज और करिणियाँ पैठकर क्रीडा करती थीं।

फिर, हेमकूट नामक एक ऊँचे पर्वत पर आ पहुँचे, जिसके उज्ज्वल शिखरों से लहराती हुई जल-धाराएँ बह रही थीं, जिसपर कांति-पुंज से भरे हुए रत्न-जल पड़े थे और जो प्रसिद्ध दक्षिण दिशा की रक्षा करता है।

वह पर्वत अपने चारों ओर इतना महान् प्रकाश फैलाता था कि आस-पास के सभी पर्वत, वृक्ष तथा अन्य पदार्थ भी तपाये हुए सोने के समान चमक रहे थे। वह मुक्तों के लोक (स्वर्ग) से भी अधिक ज्योतिर्मय था।

वह पर्वत सब वस्तुओं पर अपनी घनी स्वर्ण आभा को इस प्रकार फैलाता था कि उससे उस पर्वत पर निवास करनेवाले पक्षी तथा विविध मृग, स्वर्ण-धूलि से अंकित रहनेवाले अत्युन्नत मेरु के निवासियों के समान बन जाते थे।

सर्वत्र फैलनेवाली स्वर्ग-कांति के व्याप्त होने से स्वच्छ कांतिवाले लाल पद्मराग समूह के साथ झड़नेवाले निर्झर एवं नदियाँ ऐसी लगती थीं, जैसे भड़कती अग्नि-ज्वाला में पिघला हुआ स्वर्ण बह रहा हो।

(उस पर्वत पर आये हुए) विद्याधरों के संगीत का नाद, स्वर्ण से उतरी शंख-समान (धवल) वलयधारिणी एवं रूई-सदृश कोमल चरणोंवाली अप्सराओं के नृत्य एवं ताल का नाद, हाथियों का चिंघाड़, वाद्यमान मृदंग के समान मेघ-ध्वनि—ये सब मिलकर उस पर्वत में गूँज रहे थे।

वानरों ने उस पर्वत को देखा। भ्रम से यही सोचकर कि यह पर्वत तीक्ष्ण शूलधारी रावण का निवास है, उमंग से भर गये और क्रोध से आँखें लाल करके चिनगारियाँ उगलने लगे।

इस पर्वत में हम मुग्धा हरिणी (समान देवी सीता) के दर्शन करेंगे और प्रभु के मन के ताप को दूर करेंगे।—यों विचार कर हर्ष से उत्फुल्ल हो निश्शंक उस पर्वत पर चढ़ने लगे।

(उन वानरों को देखकर) हाथी और शरभ डरकर भागने लगे। सर्वत्र व्याप्त हिंस्र सिंह अस्त-व्यस्त होकर भागे। पर्वत पर सर्वत्र ढूँढने पर भी सीता को कहीं न देखकर वे वानर समझ गये कि (वह रावण का आवास नहीं, किन्तु) यह दूसरा कोई स्थान है। तब वे वहाँ से चले गये।

वे वानर, शत योजन विस्तीर्ण, स्वर्ग को छूनेवाले उस स्वर्णमय पर्वत में दिन-भर खोजते रहे। वहाँ देवी सीता की टोह न पाकर फिर वहाँ से उतर चले।

अंगद आदि सेनापतियों ने दो 'वेल्लम' संख्यावाली अपनी सेना को आज्ञा दी कि तुमलोग स्वच्छ जल के पूर्ण दक्षिण दिशा के सारे भू-भाग में खोजकर महेंद्र पर्वत पर आ जाओ। फिर, वे उस उन्नत हेमकूट पर्वत से पृथक्-पृथक् दिशाओं में चल पड़े।

वज्रमय कंधोंवाले उत्साही तथा विजयी हनुमान् आदि वानर-वीर झुंड बाँधकर चल पड़े। उस मार्ग में वे एक ऐसे मरु-प्रदेश में जा पहुँचे, जहाँ जल का नाम तक नहीं था और जिसे देखकर सूर्य भी भयभीत हो जाता था।

वहाँ कोई पक्षी नहीं था। कोई जंतु भी नहीं था। मधुपूर्ण पुष्पोंवाले वृक्ष और घास का चिह्न तक नहीं था। वहाँ पत्थर भी जलकर भस्म बन गये थे। वहाँ शून्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। वहाँ सब वस्तुएँ धूल बनकर उड़ती थीं।

वहाँ पहुँचने पर उन वानरों की सब इन्द्रियाँ काँप उठीं। उनकी मति भ्रष्ट हो गई। उनके शरीर तपकर पसीने-पसीने हो गये और वे दक्षिण दिशा में स्थित (कुंभी-पाक आदि) अग्निमय नरक में पड़े हुए अस्थिहीन कीटों के समान तड़प उठे।

वे अपनी जिह्वा को निकाले हुए थे। ज्यों-ज्यों अपने चरण धरती पर रखते थे, त्यों-त्यों ताप से उनके पैरों में छाले निकल आते थे। उनके शरीर वहाँ की बालू से भी अधिक तप उठे, जिससे वे यों तड़पने लगे, जैसे जले हुए पत्थर से चिनगारियाँ निकल रही हों।

कहीं विश्राम करने के लिए थोड़ी भी छाया न देखकर वे ऐसे व्याकुल हुए कि उनके प्राण शरीर से निकलने को हो गये। उनकी वह वेदना अपार थी। उस ताप से बचने के लिए उपाय करके अंत में एक विवर के विशाल द्वार पर आ पहुँचे।

उन्होंने विचार किया—अब उस रेगिस्तान में मरने के सिवा आगे जाना असंभव है। यदि इस विवर में प्रवेश करेंगे, तो कम-से-कम इस उष्णता से तो बच जायेंगे। यों उस विवर के भीतर देखने का निश्चय करके वे उसमें उत्तर पड़े।

उस विवर के भीतर जाकर वे एक ऐसी कंदरा में प्रविष्ट हुए, जिसमें चारों

दिशाओं तथा धरती का सारा अंधकार, यों एकत्र हुआ था, मानों वह भूखे सूर्य से त्राण पाने के लिए ही वहाँ आ छिपा हो।

वे वानर वहाँ से हट नहीं पाते थे। आगे भी पग नहीं बढ़ा पाते थे। उन्हें यह ज्ञान भी नहीं होता था कि आगे जाने के लिए कोई मार्ग भी है, या नहीं। वे उस गाढ़ अंधकार में इस प्रकार छिप गये, जैसे जमे हुए घी में पड़ गये हों। उनके आकार भी अदृश्य हो गये और वे निःश्वासमात्र भरते खड़े रहे।

अपने अगले कर्त्तव्य का कुछ निर्णय न कर पाते हुए स्तब्ध खड़े होकर तथा मुमूर्षु-से बनकर सब वानरों ने हनुमान् से प्रार्थना की कि हे अतिबली मारुति! क्या तुम हमें इस विपदा से नहीं बचाओगे।

तब हनुमान् ने उन वानरों से कहा—मैं तुम्हें बचाऊँगा, व्याकुल मत होओ। तुम सब मेरी पूँछ को क्रमशः दृढ़ता से पकड़ लो, छोड़ना नहीं। फिर, वह उस उत्तम मार्ग को अपने हाथों से टटोलता और शीघ्र गति से पैर बढ़ाता हुआ चला।

दीर्घ स्वर्ण-पर्वत-सदृश कंधोंवाला वह (हनुमान्) बारह योजन तक गया। उस समय उसके कानों के दो विद्युत्-खंड-सदृश प्रकाशमान कुंडल, अपनी कांति से घने अंधकार को दूर कर रहे थे।

उस विवर के भीतर जाकर उन वानरों ने एक अति सुन्दर नगर को देखा। वह नगर ऐसा था, मानों कमल को विकसित करनेवाली किरणों से युक्त सूर्यमंडल ही वहाँ आ छिपा हो। उसके प्रकाश से देवपुरी भी लज्जित होती थी। वह नगर कमल में निवास करनेवाली (लक्ष्मी) के वदन के समान भासमान रहता था।

उस नगर में कल्पतरु के समान वृक्ष थे। कमल-वन शोभायमान थे। उसके प्राचीरों में स्वर्ण-निर्मित गुंबज शोभा दे रहे थे। उन्हें देखकर देवता भी आश्चर्य-चकित हो जाते थे। असुर शिल्पी मय के द्वारा अति परिश्रम से वह निर्मित किया गया था।

देवेंद्र का नगर (अमरावती) भी उस नगर की समता नहीं कर सकता था। गगन में चमकनेवाले ज्योतिष्पिण्ड (सूर्य-चन्द्र) उस नगर की भूमि पर अपने प्रकाश नहीं फैलाते थे, तथापि उसके प्रासादों में लगे हुए रत्न एवं स्वर्ण, अपनी कांति से दुर्निवार अंधकार को मिटाते रहते थे।

संसार में प्रशंसित राजाधिराज कुलोत्तुंग चोल की कीर्त्ति का गान करनेवाले कवियों के प्रासादों के समान ही वहाँ के प्रासादों में स्वर्ण-राशि, अमूल्य तथा प्रकाशमान वस्त्रों का ढेर, कोमल चंदन-रस, पुष्पहार, उज्ज्वल आभरणों की राशियाँ, ये असीम रूप में वर्त्तमान थे।

उस नगर में मुखरमान नूपुरों से भूषित चरणोंवाली रमणियाँ और सच्चरित्र पुरुष एक भी संचरण नहीं करते थे। अतः, वह नगर उस चित्र के समान था, जो न निद्रा कर सकता है, न देख सकता है और न जिसमें प्राण ही होते हैं।

उस नगर में अमृत को जीतनेवाले भोज्य पदार्थ थे। तमिल-भाषा-सदृश (मधुर)

मधु था। अनुपम शीतल मद्य था। मीठे फलों की राशियाँ थीं। इसी प्रकार की अन्य अनेक वस्तुएँ वहाँ भरी पड़ी थीं और सर्वत्र सुरभि फैली हुई थी।

वानर-वीरों ने इस प्रकार के अविनश्वर तथा विशाल नगर को अपने सम्मुख देखा और यह सोचा कि यही शत्रु रावण की नगरी है। वे परस्पर यही बात करते हुए आनन्द और आश्चर्य से भर गये और उस स्वर्णमय नगर के द्वार में होकर उसमें प्रविष्ट हुए।

उस नगर में प्रविष्ट होकर वे सर्वत्र (सीता को) ढूँढ़ने लगे। उन्होंने घूम-घूमकर देवताओं, मनुष्यों तथा त्रिभुवन के अन्य प्राणियों के चित्र-मात्र देखे। किन्तु, किसी सजीव प्राणी को नहीं देखा।

वहाँ तालाब थे, सरोवर थे। दिव्य सुगंधि से पूर्ण उद्यान थे। नील कुवलय-तुल्य नयनोंवाली रमणियों की कंठ-ध्वनि-जैसे गानेवाले कोकिल-बाल थे। शुक एवं मनोहर पंख-वाले हंस थे। किन्तु, वहाँ मयूर-सदृश आकारवाली (नारी) एक भी दिखाई नहीं पड़ी।

उन्होंने उस नगर के भीतर जाकर उसकी दशा देखी और सोचा--यह कोई मायापुरी है। फिर विचार किया—हमें पाताल का कठोर जीवन प्राप्त हुआ है। फिर संदेह किया---कदाचित् हमलोग पवित्र स्वर्गलोक में पहुँच गये हैं।

फिर सोचा—हम तो मरे नहीं हैं, नहीं, हमने इस स्वर्ग को पाने के लिए कुछ प्रयत्न ही किया है। हम पिछली (जीवन की) घटनाओं को भूले भी नहीं हैं। हमारे मन में अब भी संशय उत्पन्न हो रहा है (यदि हम देवता होते, तो संशयहीन होते)। हम पलकें भी मार रहे हैं। मूर्च्छित व्यक्तियों जैसे व्यापार भी हम में नहीं है। हम किस दशा में हैं—यह हम कैसे जान सकते हैं?—यों कहते हुए वे भ्रांत-से खड़े रहे।

उस समय जांबवान् कहने लगा—जिस राक्षस (रावण) ने अपनी सहज वंचकता से नवोत्पन्न बाँस के समान भुजावाली (सीता) देवी का अपहरण किया है, उसीने हमें फँसाने के लिए यहाँ ऐसा एक यंत्र बना रखा है। इसका कहीं कोई अंत नहीं दिखाई पड़ता। (ऐसा जान पड़ता है कि) प्राचीन पापों के परिणामस्वरूप, अबतक का हमारा सारा उत्साह मिट जायगा।

तब जांबवान् को देखकर हनुमान् ने क्रोध से कहा—यदि इस विवर से हमारा बाहर निकलना असंभव हो जाय, तो हम सगर-पुत्रों से भी अधिक बलवान् होकर इस पृथ्वी को खोद डालेंगे और उस पार निकल जायेंगे। वैसा न हो, तो इस प्रकार हमें धोखे में डालनेवाले सब राक्षसों को मिटाकर हम ऊपर उठ जायेंगे। तुम किंचित् भी भय मत करो।

हनुमान् के वचन से दृढचित्त होकर कुछ वानर-वीर नगर में गये। वहाँ एक स्वयं-प्रभा नामक तपस्विनी को देखा, जो ऐसी थी, मानों सारी तपस्या स्त्री के उस रूप में साकार बनी बैठी हो और जो स्वर्णमय जटा धारण किये हुए थी।

उसका वदन सोलहों कलाओं से पूर्ण चन्द्र के समान था, कटि में आभूषण पहने थी। रेखावाले चक्रवाक तथा स्वर्णकलश-सदृश उसके स्तन धूलि-धूसरित हो रहे थे। उज्ज्वल, अरुण तथा काले रंगवाले मीन-सदृश उसके नयनों की दृष्टि नासाग्र पर स्थिर थी।

वह अपने रथ-सदृश जघनभाग को, परस्पर तुल्याकार कदली के समान जाँघों के

साथ संयुत करके, (सब अंगों को) समेटकर, श्वास को रोककर बैठी थी, जिससे उसकी अत्यन्त कंपनशील सूक्ष्म कटि विलकुल निःस्पन्द हो गई थी और उभरे स्तनों का भार थम गया था।

कमल-पुष्पों के उपमान बननेवाले उसके अति सुन्दर पल्लव के समान कर, मनोहर स्वर्ण-जाँघों के मध्य स्थिर रूप में संयुत पड़े थे। (उसके हृदय में) कामादि अंतःशत्रु का समूल विनाश हो गया था। उसमें कामना का नाम तक नहीं रह गया था। उसकी इंद्रियाँ सद्‌ज्ञान में निमग्न हो गई थीं।

घने, दीर्घ तथा काले रंगवाले उसके केश-पाश घनी जटा बनकर पृथ्वी पर लोट रहे थे। काम-बंधन उसे छोड़कर चला गया था। मन का पाश (आसक्ति) भी छूट चुका था। उसके नयनों से करुणा फूट रही थी।

वह तपस्विनी इस प्रकार आसीन थी। उसके समीप पहुँचकर वानरों ने उसको प्रणाम किया और अरुन्धती कहने-योग्य सीता ही समझकर उतावले हो उठे। फिर, हनुमान् से उन (वानरों) ने कहा—क्या यही (सीता) देवी हैं? (राम के द्वारा) बताये चिह्नों को देखकर कहो?

मारुति ने उत्तर दिया—(देवी सीता का) कौन-सा गुण, कौन-सा चिह्न इसमें है—मैं क्या बताऊँ? (अर्थात्, कोई भी चिह्न इसमें नहीं है)। क्या इस प्रकार के लक्षणवाली कहीं राम की पत्नी हो सकती है? यदि अस्थियों की माला मुक्ताहार की समता कर सके, तो यह स्त्री भी सीता की समता कर सकेगी।

उस समय, उस दिव्य स्त्री ने अपना ध्यान भंग करके उन वानरों को देखा। उनका अपने सम्मुख आना अनुचित समझकर वह क्रुद्ध हो उठी और उनसे प्रश्न किया—मेरे इस नगर में किसी का प्रवेश करना असंभव है। तुम इस नगर के निवासी भी नहीं हो, तो तुम यहाँ क्यों आये? कौन हो तुम? बताओ।

वानरों ने उत्तर दिया—उपद्रवी राक्षसों ने माया और वंचना करके सीता का अपहरण किया है। दोषरहित धर्ममार्ग की रक्षा करनेवाले रामचन्द्र के हम दूत हैं और उस स्थान की खोज में इस संसार में घूम रहे हैं, जहाँ राक्षस ने सीता को छिपा रखा है।

वानरों के यह कहते ही, बैठी रहनेवाली वह (स्वयंप्रभा) उठकर खड़ी हो गई। उसके हृदय में उन (वानरों) पर दया उत्पन्न हुई और वह पर्वत-सदृश आनन्द से फूल उठी। फिर, उन (वानरों) से यह कहकर कि आप सबका स्वागत है, (आपके आगमन से) मैं आनन्दित हुई—दोनों नयनों से आनंदाश्रु बहाने लगी।

नवीन तथा मनोहर हरिण के सदृश दीर्घ नयनोंवाली उस तपस्विनी ने प्रश्न किया—रामचन्द्र कहाँ रहते हैं? तब कठोर आसक्ति से हीन मारुति ने (रामचन्द्र का) सारा वृत्तांत, आदि से अंत तक, कह सुनाया।

उन वचनों को सुनकर वह बोली—अपने दोषरहित तप के प्रभाव से आज मुझे शाप से विमुक्ति प्राप्त हुई। यह कहकर उन वानरों के प्रति आदर-भाव दिखाने लगी।

उन्हें सुगंधित जल से स्नान कराकर, अमृत-समान सुस्वादु भोजन दिया और मन को मोद देनेवाले मधुर वचन कहे।

मारुति ने उस तपस्विनी के पुष्प-चरणों को नमस्कार करके प्रश्न किया—सार्वभौम यश के योग्य तपस्या करनेवाली हे देवी ! आप मुझसे कहें कि इस नगर के अधिपति कौन हैं ? तब घनी जटाधारिणी उस तपस्विनी ने सारा वृत्तांत कह सुनाया।

हे उत्तम ! हरिणमुख मय ने, शास्त्रोक्त विधान से, अपना मुँह ऊपर की ओर उठाये, धूप और वायु का ही आहार करते हुए कठोर तपस्या की थी। उसी के फलस्वरूप चतुर्मुख ने यह विशाल नगर उसको प्रदान किया।

इसी प्रकार यह नगर उत्पन्न हुआ। उस दानव (मय) ने अप्सराओं में से एक सुन्दरी का संग प्राप्त करना चाहा। वह सुन्दरी मेरी प्राण-सखी थी। उस असुर की प्रार्थना पर मैं स्वर्णनगर (अमरावती) से उस सुन्दरी को इस विवर के भीतर ले आई।

वह अप्सरा और वह दानव—दोनों चक्रवाक के जोड़े के समान समागम-सुख में मत्त होकर, सब कुछ भूलकर अनेक दिनों तक इस विशाल नगर में निवास करते रहे ! तांटक-धारिणी उस अप्सरा के साथ गाढ़े स्नेह-पाश में बँधी हुई मैं भी यहीं रहने लगी।

हे बलशालिन् ! जब अनेक दिन व्यतीत हुए, तब देवेंद्र उस उत्तम आभरण-धारिणी अप्सरा का अन्वेषण करने लगा। फिर, क्रोधी होकर उसने उस बलवान् असुर को मिटा दिया और मयूरपंख के मूल भाग के समान धवल-हासवाली उस अप्सरा से क्रोध से कहा कि तुम्हारा कार्य अत्यन्त क्षुद्र है।

देवेंद्र ने यों क्रुद्ध होकर उससे कहा—तुम सारी घटनाओं को कह सुनाओ। भली भाँति पके हुए बिंबफल-जैसे अधरवाली (हेमा नामक) उस अप्सरा ने आँखों के संकेत से सूचित किया कि इस मेरी सखी के कारण ही यह अपराध हुआ। तब इन्द्र ने सत्य को जानकर मुझसे कहा—तुम इसी नगर में इसकी (नगर की) रक्षा करती हुई पड़ी रहो।

उसकी यह आज्ञा होते ही, उसे नमस्कार कर मैंने उससे पूछा—इस दुःख से मुझे कब मुक्ति मिलेगी ? कुछ अवधि निर्धारित कीजिए। तब इन्द्र यह कहकर अदृश्य हो गया कि जब राम की आज्ञा से बलवान् वानर इस नगर में आयेंगे, तब तुम्हारी विपदा का अंत होगा।

हे उत्तम ! यहाँ मेरे भोजन के लिए फल आदि हैं, लेप के लिए चंदन आदि हैं, पुष्प हैं, इतना ही नहीं, मनोहर वर्णवाले अनेक वस्त्र हैं, अन्य (आभरण आदि) वस्तुएँ भी हैं। किंतु इन सबका त्याग कर, आपके आगमन की ही प्रतीक्षा करती हुई चिरकाल से मैं तपस्या करती रही हूँ ?

हे उत्तम ! यह विवर शत योजन विस्तीर्ण है। इस विवर से बाहर के लोक में जाने का मार्ग मैं नहीं जानती ! यदि तुम लोग मेरी सहायता करो, तो मेरे उद्धार का मार्ग निकल आयगा। उसका कोई उपाय अपने मन में सोचो—यों उसने कहा।

स्वयंप्रभा के इस प्रकार कहने पर हनुमान् ने इन्द्रियों पर दमन करनेवाली उस

तपस्विनी के कमल-समान चरणों को प्रणाम करके कहा—तुम्हें मैं देवताओं के निवासभूत स्वर्ग प्रदान करूँगा।

अन्य वानरों ने हनुमान् से विनती की—हे महिमामय! तुमने इस विवर के द्वार के घने अंधकार में प्रवेश करके मृत्यु के मुख से हमें बचाया। अब आगे का कर्त्तव्य भी तुम्हीं सोचो। अवर्णनीय महिमावाले हनुमान् ने वैसा ही करने का निश्चय किया।

हनुमान् ने अन्य वानरों से यह कहा कि तुम लोग डरो नहीं और मंदहास के साथ सिंह-जैसे उठ खड़ा हुआ। उसने अपने हाथों को ऊपर उठाकर, अपने शरीर को गगनतल तक यों बढ़ाया कि वह विवर, जो ऊपर के गगन से बहुत नीचे स्थित था, फट गया और गगन से एकाकार हो गया।

वायुपुत्र के दोनों हाथ दो उज्ज्वल दंतों के समान ऊपर उठे हुए थे। जब वह विवर को भेदता हुआ ऊपर की ओर उठा, तो देखनेवालों के मन भय से भर गये। (उस समय) वह क्रोध के साथ पृथ्वी को उठा लानेवाले महावराह के समान दृष्टिगत हुआ।

उस समय वह (हनुमान्) उस वामन भगवान् के सुन्दर चरण की समता कर रहा था, जिस (वामन) ने (बलि से) तीन पग वसुधा माँगकर, दो पग से सारी सृष्टि को मापते हुए, कमल में निवास करनेवाले, उत्तम स्वरूपवाले ब्रह्मा की सृष्टि (अर्थात्, ब्रह्माण्ड) को आवृत करनेवाले आकाश-रूपी आवरण को छेद दिया था।

हनुमान् ने एक शत चतुर्दश योजन दूर तक उस विवर को भेद दिया और विवर में स्थित उस नगर को उखाड़कर पश्चिम के समुद्र में फेंक दिया। फिर, मेघ के समान गरज उठा। वह दृश्य देखकर देवता भी काँप उठे।

हनुमान् के द्वारा फेंका गया वह नगर अब भी पश्चिमी समुद्र में, विवर-द्वीप के नाम से प्रख्यात है। विशाल ललाटवाली स्वयंप्रभा के साथ, पर्वत के समान कंधोंवाले वानर-वीर वहाँ से बाहर निकले और अपने मार्ग पर आये। सुन्दर ललाटवाली स्वयंप्रभा स्वर्णमय स्वर्ग में जाने के लिए उद्यत हुई।

मेरु-सदृश सुन्दर स्तनोंवाली वह अति सुन्दरी स्वयंप्रभा, अत्युत्तम हनुमान् की अनेक प्रकार से प्रशंसा करने के पश्चात् कल्प वृक्षों से युक्त स्वर्णमय स्वर्गलोक में जा पहुँची, जहाँ हेमा नामक उसकी सहेली निवास करती थी।

पराक्रमी वानर हनुमान् के बल-विक्रम की प्रशंसा करते हुए चल पड़े। वे दिन-भर चलकर एक जलाशय के तटपर जा पहुँचे। उस समय रथारूढ प्रतापी सूर्य भी अस्ताचल पर जा पहुँचा। (१–७४)

●

अध्याय १४

मार्ग-गमन पटल

वानरों ने उस सुन्दर जलाशय को देखा। उसके मधुर जल को अंजलि में भर-भर कर पिया। उसके तट पर स्थित मधुर फल और मधु का आहार किया। वहाँ एक मनोहर स्थान पर सुखद निद्रा की। उनके सोते समय, एक असुर वहाँ आ पहुँचा।

वह पर्वत की समता करता था। विशाल समुद्र की बराबरी करता था। कठोर हिंसक यम की तरह लगता था। क्रूरता का आगार जान पड़ता था। किंचित् भी सद्गुण से नितान्त विहीन था। गगनगत चन्द्रकला के सदृश एवं विष-समान दाँतोंवाला था और अपनी आँखों से कोपाग्नि उगल रहा था।

बड़े-बड़े मेघ, जो सृष्टि के आदिकारण थे, उसकी बाँहों पर एवं उसके महदाकार शरीर पर फैले हुए थे, जिससे उसके शरीर पर अनुपम जल-धारा बहती रहती थी। अतः, वह निर्झरों से युक्त पर्वत के समान था।

वह दुष्ट असुर इतना प्रतापी था कि देव और असुर—दोनों के लिए वह अजेय था, तो अन्य कोई उसके साथ युद्ध करने का विचार तक कैसे अपने मन में ला सकता था।

चमकते हुए लाल-लाल केशोंवाला, अपनी गति से चाक की समता करनेवाला वह असुर अपने हाथों को मलता हुआ उन वानरों के पास, जो धर्म से पूर्ण चित्तवाले थे और मार्ग-गमन से श्रांत होकर निद्रा में मग्न पड़े थे, जा पहुँचा।

यम-सदृश उस (तुमिर नामक) असुर ने, यह कहता हुआ कि यह मेरा जलाशय है, यह जानते हुए भी यहाँ आनेवाले ये क्षुद्र प्राणी कौन हैं? यह कैसा आश्चर्य है? उत्तम अंगद के पुष्पालंकृत वक्ष पर हाथ से प्रहार किया।

वीर अंगद निद्रा से जगकर और यह सोचकर कि यह असुर ही लंकेश्वर है, अपने को मारनेवाले उस असुर को ऐसा मारा कि युद्ध में निपुण वह असुर निष्प्राण हो गिर पड़ा।

उस समय, बिजली गिरने से टूटनेवाले पर्वत के समान, आहत होकर चिल्लाता हुआ जब वह असुर गिरा, तब भूतग्रस्त-से होकर सोये पड़े रहनेवाले सब वानर अंगद नामक आभरण से भूषित अपनी भुजाओं पर ताल ठोंकते हुए उठ खड़े हुए।

मारुति ने तारा-पुत्र से पूछा—यह कौन है? इसने क्या किया? अंगद ने उत्तर दिया—हे सत्यनिरत! मैं कुछ नहीं जानता।

तब जांबवान् ने कहा—मैंने भली भाँति सोचकर जान लिया कि यह असुर कौन है। मांस-लगे शूल को धारण करनेवाला यह असुर तुमिर नामधारी दैत्य है और इस गंभीर सरोवर का रक्षक है।

मार्ग-गमन से विश्रांत वे वानर-वीर, यह सोचकर कि इस असुर के समान ही यहाँ और भी कई असुर होंगे, अपनी मीठी निद्रा त्याग कर उठ बैठे और जब अरुणकिरण

प्राची दिशा में निकला, तब सद्योविकसित कमल पर आसीन लक्ष्मी (के अवतारभूत सीता) को ढूँढ़ने लगे।

सीता का अन्वेषण करनेवाले वे वानर पेन्ना (उत्तर पेन्नार) नदी-रूपी सुन्दरी के पास जा पहुँचे, जो चक्रवाक को लज्जित करनेवाले पुलिन (सैकत-राशि) रूपी स्तनों, अमृतरस से पूर्ण, जल से स्थित रक्तकुमुद-रूपी अधर, मनोहर तथा उज्ज्वल दंतों एवं प्रकाशमान वदन से युक्त थी।

ज्ञान की सीमा पर पहुँचे हुए उन वानर-वीरों ने, पर्वत की घाटियों में, जहाँ मयूर नृत्य करते थे, नदी के मध्य में स्थित टापुओं में, पुष्प-वाटिकाओं में, शीतल किनारों-वाले पोखरों में, शुभ्र पुष्पों से भरे हुए सरोवरों में और निर्मल स्फटिक-शिलाओं में— सर्वत्र (सीता को) खोजा।

फिर, वे उस नदी के (दक्षिणी) तट पर आ ठहरे, जो (नदी) अपने जल में स्नान करनेवाले लोगों की जन्म-व्याधि को वहा देती थी और अपने अलंघ्य भँवरों में उत्तम रत्नों को विखेरती थी।

(सीता के) अन्वेषण में लगे वे वानर, स्नान करने के योग्य उस नदी को तैरकर अनेक अरण्यों एवं पर्वतों को पारकर, लहराती जलधाराओं से युक्त उस (दशनव नामक) देश में जा पहुँचे, मानों वे मुक्तिलोक में ही पहुँच गये हों।

चंपक-वनों से युक्त तथा सस्यों से समृद्ध उस दशनव (दशार्णव) नामक देश को पार कर, अति प्रख्यात उस विदर्भदेश में जा पहुँचे, जहाँ उशनस् नामक कवि (शुक्राचार्य) उत्पन्न हुए थे।

वे वानर, वैदर्भ की भूमि में आकर, वहाँ के सब ग्रामों में गये और वहाँ दर्भ एवं यज्ञोपवीत से शोभित शरीरवाले मुनियों के दर्शन करते हुए (सीता का) अन्वेषण करते रहे।

वे ज्ञानवान् वानर-वीर, इस प्रकार अन्वेषण करते हुए, रक्त धान की फसलों से भरे विदर्भ देश को भी शीघ्र पारकर उस दंडकारण्य में जा पहुँचे, जहाँ आत्मध्यान में निरत अनेक मुनि तप करते थे।

जहाँ मुनि, अपने शरीर में विषयों का उपभोग करते हुए निवास करनेवाले पंचेंद्रिय-रूपी शत्रुओं के लिए कठोर यम बनकर तपस्या करते रहते थे, ऐसे दंडकारण्य में जाकर (सीता को) ढूँढते हुए मुंडकसर नामक स्थान में पहुँचे।

उस सरोवर का जल देवस्त्रियों के पीनस्तनों पर चंदन-लेप एवं पुष्प-मालाओं के संसर्ग से अत्यन्त सुगंधित हो रहा था। उसमें स्थित पक्षी भी वहाँ की (सुगंधि से भरी) मछलियों को नहीं खाते थे।

वहाँ विद्याधरों के विरह में पीडित स्त्रियाँ, वीणा-वाद्य का श्रवण कर, मन में अत्यन्त द्रवित होकर, व्याकुलता से काँप उठती थीं और उनकी आँखों से अश्रुजल यों वह चलता था कि हाथी भी उसमें डूब सकते थे।

रक्तकुमुद के समान मुँहवाली, कोकिल को लज्जित करनेवाली, मन्मथ के शरपुँज-

सदृश दृष्टियों एवं उस (मन्मथ) के धनुष के सदृश ही भौंहों से शोभित एवं अमृत-सदृश संगीत गानेवाली सुन्दरियाँ क्रमुक-वृक्षों पर लगे झूलों में बैठकर झूलती रहती थीं।

इस प्रकार के सुन्दर मुंडकसर के तट पर पहुँचकर वे वानर-वीर मन से भी अधिक तीव्र गति से ढूँढ़ने लगे। किंतु (पंचविध) शैलियों[1] में सजाने योग्य सुन्दर केश-पाशोंवाली लक्ष्मी के अवतार सीता को कहीं भी न देखकर अत्यन्त खिन्न होकर त्वरित गति से आगे बढ़ चले।

फिर, वे वानर, विशाल गगन को व्याप्तकर रहनेवाले उस पांडुपर्वत पर जा पहुँचे, जो ऐसा लगता था, मानों त्रिविक्रम के दीर्घ चरण के कारण (आकाश के छिद जाने से) गगन-तल से गंगा की धारा ही नीचे उतर रही हो।

वह पर्वत अपनी कांति से समस्त अंधकार को मिटा देता था। आकाश के चंद्रमा को भी मंद कर देता था। वह करुणाहीन बलवान् राक्षस (रावण) को दबानेवाले कैलाश-पर्वत की समता करता था।

उस गगनोन्नत उज्ज्वल पर्वत के पास पहुँचकर वानर-वीर दत्तचित्त हो सीता को ढूँढ़ने लगे। किंतु, कहीं भी मधुर राग-सदृश बोलीवाली सीता को न देखकर मन में अत्यन्त व्याकुल और शिथिल हुए।

पवन के समान वेगवाले, निष्ठुर दृष्टियुक्त व्याघ्र के समान बलवाले, वे वानर-वीर उस पांडुपर्वत के प्रदेश को छोड़कर आगे बढ़े। फिर, वे गोदावरी नदी के समीप जा पहुँचे, जो राक्षस के द्वारा अपहृत हो जानेवाली सीता के केश-पाश से धरती पर खिसककर गिरी हुई पुष्पमाला से समान लगती थी।

उस गोदावरी नदी की तरंगायमान जलधारा, मुक्ता के सदृश स्वच्छता लिये हुए बह रही थी। वह ऐसी थी, मानों पृथ्वी देवी, सर्वपूज्य जनक के द्वारा वेदपाठ के साथ यज्ञार्थ धरती को जोतते समय उत्पन्न अनुपम सीता के दुःख से व्याकुल होकर अश्रु बहा रही हो।

वह (गोदावरी) नदी, जो रत्नों को और स्वर्ण को बहाती हुई अनेक अरण्यों से होकर मनोहर गति से प्रवाहित हो रही थी, ऐसी थी, मानों इस धरती को नापने का सूत्र हो। या जटायु के साथ युद्ध करते समय रावण के वक्ष पर से (जटायु के द्वारा) खींचकर फेंका गया रत्नहार हो।

वे वानर-वीर, जो भले-बुरे का विवेचन करने में चतुर थे, उस गोदावरी नदी में भली भाँति ढूँढ़कर, उत्तम कंकण-धारिणी सीता को कहीं भी न पाकर आगे बढ़ चले और बहुत दूर चलकर, सब पापों को मिटानेवाली सुवर्णनदी के तट पर पहुँचे।

स्वर्णकीट, मधुमक्खी, काले भ्रमर, हंस तथा अन्य पक्षिगण—सबके समीप से होकर जानेवाले वानर, लाल धान तथा कमल-युक्त सरोवरों से भरे हुए जल-समृद्ध समतल

---

१. तमिल के प्राचीन ग्रन्थों में केश को सजाने की पाँच शैलियों का वर्णन है।—अनु०

प्रदेशों को पार कर, अमृतसम जल से पूर्ण नारिकेल-फलों के बागों से भरे कुलिंद-देश को पार कर गये।

उन्होंने सप्तकोंकण-प्रदेशों को पार किया। पश्चिमी समुद्र तट पर उन प्रदेशों को, जहाँ मुक्ताराशियों, शंख, नीलोत्पल आदि से पूर्ण अनेक जलाशय थे, पार किया। फिर, उस अरुंधती-पर्वत के निकट पहुँचे, जिसके शिखर की परिक्रमा चंद्र की कला करती थी और देवता जिसे प्रणाम करते थे।

अरुंधती-पर्वत के निकट जाकर, वहाँ सुन्दरता को भी सुन्दर बनानेवाली सीता को कहीं न देखकर वे आगे बढ़ चले। फिर, उस मरकत-पर्वत पर जा पहुँचे, जहाँ गोपांगनाएँ आकर (पार्वत्य स्त्रियों से) दधि के बदले में मधु ले जाती थीं। फिर, वहाँ से चलकर (तमिल-देश की उत्तरी) सीमा बनी हुई वेंकटाचल-पर्वत पर जा पहुँचे।

उस वेंकटाचल-पर्वत के निर्झरों में मुनि, वेदज्ञ ब्राह्मण, पूर्वजन्म के पापों को मिटानेवाले तत्त्ववेत्ता, देव, अमरस्त्रियाँ, सिद्ध—सभी नित्य आकर स्नान करते हैं।

उस पर्वत पर देवता अपनी पंचेन्द्रियों को, तीव्र काम-वासना को, दूसरों के निंदा-वचनों को, रमणियों के सुन्दर दृष्टिबाणों को, जीतकर उत्तम तपस्या का आचरण करते रहते हैं।

उस वेंकटाचल पर, जो विजयी चक्रधारी कालमेघ-सदृश भगवान् के उज्ज्वल चरणों को धारण किये है, निवास करनेवाले जीव-जंतु भी मोक्ष-पद प्राप्त करते हैं, तो उन तपस्वियों के संबंध में क्या कहा जाय, जो सत्य ज्ञानवाले हैं!

इस प्रकार के उस वेंकटाचल को अपूर्व तपस्या-संपन्न भाग्यवान् लोग ही प्राप्त करते हैं। वे वानर-वीर, शाश्वत सुख को प्रदान करनेवाले प्रभु (श्री-निवास) के चरणों की नित्य सेवा करनेवाले उन तपस्वियों के चरणों पर प्रणत हुए।

कामरूप धारण करनेवाले उन वानर-वीरों ने (उन तपस्वियों की) चरण-धूलि को शिर पर धारण करने के पश्चात् उस वेंकटाचल पर, घुँघराले केशोंवाली, कलापितुल्य (सीता) देवी को ढूँढ़ा और फिर, ब्राह्मण का वेष धारण कर उस तोंडमंडल प्रदेश में जा पहुँचे, जो स्वच्छ एवं तरंगायमान जलाशयों से भरा है।

वहाँ (तोंडमंडल) के सब प्रदेशों में, पर्वतों की घाटियों, गोपों के आँगनों को घेरे हुए उद्यान, प्रभूत जल से संपन्न प्रदेश और स्वच्छ वीचियों से युक्त समुद्र से आवृत विशाल खेत हैं।

वहाँ कृषक झुंड बाँधकर हल जोतते हैं। जब वे अपने हाथ की छड़ी हिलाकर हाँक लगाते हैं, तब चर्ममय पैरोंवाले हंस उड़कर उन खेतों में भाग जाते हैं, जहाँ शालिधान, कटहल के पेड़ों की जड़ में लगे (पके) फलों से प्रवाहित मधु से सिंचित होते हैं। वे हंस अपने पैरों से धान के अंकुरों को रौंद देते हैं।

सुन्दरियों के केशों तक फैले हुए नयनों-जैसे मधु-भरे नीलोत्पल-समुदाय जिन खेतों के प्रांतों में उगे रहते हैं, उनमें ग्वालिनों के जाँघों के सदृश कदली-वृक्ष लगे रहते हैं और उन कदली-वृक्षों पर सारस एवं कोकिल सोये रहते हैं।

वीथियों में अनेक वाद्यों की बड़ी ध्वनि को सुनकर मयूर, (संसार की) वृद्धि के कारणभूत मेघ का घोष समझकर नाच नहीं उठते।[1] नृत्य करनेवालों के मृदंग की ध्वनि को सुनकर हंस भी (उसे मेघ-गर्जन समझकर) उड़ नहीं जाते। क्योंकि (ऐसी ध्वनियों से) चिर परिचित रहनेवाले प्राणी उनको सुनकर भ्रम कैसे कर सकते हैं?

अलंकृत रथ-सदृश नारिकेल-वृक्ष के कोमल तथा मुकुलित पुष्पों को देखकर मीन उन्हें सारस समझते हैं और भय से कंपित हो उठते हैं। मेंढ़क, नुकीले कोरवाले शीतल कुमुद पुष्पों को देखकर, उन्हें अपने को निगलने के लिए आये हुए सर्प समझ लेते हैं और डर से चिल्ला उठते हैं।

केंकड़ों को पकड़नेवाली पंचम जाति की युवतियाँ, अति धवल शंखों से उत्पन्न मोतियों को देखकर उन्हें चित्तियोंवाले सारस पक्षियों के अंडे समझ लेती हैं और उन्हें (खाने के लिए) कछुए की पीठ पर तोड़ने लगती हैं।

शिशु-मर्कट के अत्यन्त छोटे हाथ में, शाखाओं पर पकनेवाले कटहल का कोया है। उसपर पुष्पों से भरे उद्यान में जिस प्रकार भौंरे मँड़राते रहते हैं, उसी प्रकार मक्खियाँ मँड़रा रही हैं।

उस तोंडमंडल-प्रान्त में निवास करनेवाले लोग—संपन्न, संस्कृत एवं तमिल के पारंगत विद्वान् हैं, दुष्टों को दमन करनेवाले हैं, दानी हैं—इत्यादि विशेषताओं से प्रशंसित होते हैं। अतः, क्या कामधेनु भी ऐसे गृहस्थ-जनों की समता कर सकती है?

वे अनुपम वानर-वीर उस सुन्दर तोंडमंडल को पारकर विशाल कावेरी नदी से संयुत चोल देश में जा पहुँचे और लाल धान, ईख, सुपारी आदि से संकुल मार्गों से होकर कठिनाई से आगे बढ़ने लगे।

वहाँ के उन जलाशयों के तटों पर, जहाँ उभरी चोंचवाले सारस पक्षी निवास करते हैं, नारिकेल के वृक्ष बढ़े हुए हैं। वानर, कभी उन वृक्षों के कंठभाग पर से खूब पककर नीचे गिरे हुए अति मनोहर मधुर फलों से टकराकर गिरते, तो कभी वहाँ प्रवाहित होनेवाली मधुधारा में फिसलकर गिर पड़ते थे।

काले रंगवाले जलकौवे, बाजों की-सी ध्वनि करनेवाले ईख के कोल्हुओं के पास इक्षुरस से भरे बड़े-बड़े पात्रों को देखकर उन्हें जलाशय समझ लेते थे और पंक्तियों में जाकर उनमें गोते लगाते थे।

पुष्पों से भरे, भ्रमर-समूहों से संकुल उद्यानों से मधु की धारा बहती रहती थी। उन प्रवाहों के यथार्थ रूप को न जानकर वानर, उन्हें मीनों से पूर्ण सरोवर समझकर उनसे हट जाते थे और वृक्षों पर जाकर विश्राम करते थे।

वहाँ के केतकी-वृक्ष फूलों के गुच्छों से लदे रहते हैं। उनके पास उगे हुए आम के पेड़ों के झुके हुए फल, केतकी-फूलों के पुष्प-रज से भर जाने से वैसी ही गंध से महँकने

---

१. भाव यह है कि वहाँ सदा वाद्यों के घोष तथा मृदंग की ध्वनि होती रहती है और मयूर तथा हंस उन शब्दों से भली भाँति परिचित रहते हैं।—अनु०

लगते हैं। सस्य के अंकुरों के समीप का कीचड़ लाल कुमुदपुष्प की गंध से सुगंधित रहता है।

पाप से रहित वे वानर-वीर, कावेरी नदी से सिंचित चोल देश को पारकर गृहस्थ धर्म से सुशोभित पर्वतमय चेर देश (मलयदेश) में जा पहुँचे। फिर, वहाँ से मधुर तमिल भाषा से युक्त दक्षिण (पांड्य) देश में पहुँचे।

वह (पांड्य) देश सप्तलोकों में विख्यात मुक्ताओं को एवं त्रिविध तमिल[1] को प्रदान करने की महिमा से पूर्ण है। अतः, यदि यह कहें कि वह देश देवलोक के सदृश है, तो यह उपमा कैसे उचित होगी?

सरल चित्तवाले वे वानर, इस प्रकार के पांड्यदेश में सर्वत्र ढूँढ़कर और घने केशपाशोंवाली (सीता) देवी को कहीं भी न देखकर दुःखी हुए और ऐसे शिथिल होकर चलते रहे, जैसे उनकी मृत्यु ही निकट आ गई हो।

फिर, वे वानर, दक्षिण समुद्र से चलनेवाले पवन से युक्त भूभाग को तय करके अंत में दिग्गज-सदृश प्रसिद्ध महेंद्र पर्वत पर जा पहुँचे। (१—५५)

●

अध्याय १५

संपाति पटल

वानर-वीरों ने दक्षिण के समुद्र को देखा, जो जल-भरे बादलों से पूर्ण आकाश के समान गरज रहा था और गगन को छूनेवाली ऊँची तरंग-रूपी हाथों को उठाकर उन वानरों के सम्मुख आकर उनका यथाविधि स्वागत कर रहा था और कह रहा था कि हरिण-सदृश विशाल नयनोंवाली सीता लंका में है।

अंगद आदि वीरों ने जिस सेना-समुदाय को आज्ञा देकर चारों ओर भेजा था कि तुमलोग आठों दिशाओं में अन्वेषण करके महेंद्र-पर्वत पर आ जाओ, वह सेना-समुदाय भी ऊँची तरंगों से पूर्ण एक दूसरे समुद्र के समान वहाँ आ पहुँचा।

सब वानर विना कुछ बाधा के वहाँ आ पहुँचे। किन्तु, कमल में उत्पन्न घुँघराली अलकों से भूषित, अनुपम पातिव्रत्य से युक्त लक्ष्मी को कहीं नहीं देखा। वे अपने अगले कर्त्तव्य को न जानते हुए अटपटे शब्दों से कुछ कहने लगे।

(सुग्रीव के द्वारा निश्चित) एक मास की अवधि बीत गई। हम अपने कार्य में सफल नहीं हुए। अब श्रीरामचन्द्र भी अपने प्राण छोड़ देंगे। हमने अपने राजा (सुग्रीव)

---

१. त्रिविध तमिल : तमिल में साहित्य के तीन अंग माने गये हैं—इयल् = कविता, इशै = संगीत और नाटकम् = नाटक।

की आज्ञा का तो पूरा पालन किया (अर्थात्, सीता का अन्वेषण किया)। अब हमारे लिए करने को और कुछ नहीं रह गया है—यों कहते हुए अनेक प्रकार से विचार करने लगे।

क्या हम यहीं रहकर तपस्या करें ? यदि वह न हो, तो असाध्य विष को पीकर प्राण-त्याग करें ? इन दोनों में से जो उचित हो, वही करेंगे। वे वानर, जिन्हें अपने प्राणों का भी भय नहीं था, यों सोचने लगे।

बलवान् सिंह के सदृश युवराज अंगद बहुत खिन्नचित्त हुआ और उन वानरों को देखकर जो तट पर टकराती हुई बड़ी वीथियों से युक्त समुद्र के निकट रहनेवाले महेन्द्र-पर्वत पर ऐसे खड़े थे, जैसे अनेक मेरु-पर्वत पंक्ति बाँधकर खड़े हों, कहने लगा—तुमलोगों से मुझे कुछ कहना है।

हमलोगों ने पुरुषोत्तम रामचन्द्र के समक्ष, बड़ी भक्ति रखनेवालों के जैसे ही, प्रण किया था कि हमलोग आकाश से आवृत विश्व में सर्वत्र जाकर सीता का अन्वेषण करेंगे। हमारा वह प्रण केवल गर्वमात्र नहीं था। उससे हम बड़े अपयश के पात्र हो गये हैं।

'हम पूरा करेंगे'—यों कहकर जो कार्य हमने अपने ऊपर लिया, उसे पूरा नहीं कर पाये। अवधि के भीतर ही लौटकर यह कहना भी हमसे नहीं हो सका कि हम ढूँढ़कर भी सीता को कहीं नहीं देख सके। अब आगे भी यह कार्य पूरा हो सकेगा—इसका भी कोई लक्षण नहीं दीखता, ऐसी अवस्था में हमारा जीवित रहना क्या उचित है ?

(अवधि के व्यतीत हो जाने के पश्चात्, यदि हम लौटकर भी जायँ, तो) मेरे पिता (सुग्रीव) क्रुद्ध होंगे। हमारे प्रभु राम को भी बहुत दुःख होगा। उस दशा को मैं अपनी आँखों से नहीं देख सकूँगा। अतः, मैं अपने प्राण त्याग देना चाहता हूँ। हे ज्ञानवान् लोगो ! मेरे इस निश्चय के बारे में तुमलोग अपनी सम्मति दो—यों अंगद ने कहा।

तब जांबवान् ने कहा—हे लौह-स्तंभ तथा पर्वत की समता करनेवाली भुजाओं से युक्त ! तुमने ठीक कहा, पर यदि तुम अपने प्राण छोड़ दोगे, तो क्या हम यहाँ तुम्हारे लिए रोते बैठे रहेंगे ? या प्रेमहीन होकर लौट जायँगे और (सुग्रीव की) सेवा में लग जायँगे ?

हे युवराज तथा पौरुषवान् वीर ! लौट आकर कहने के लिए हमारे पास है ही क्या ? हमारा भी यही निर्णय है कि हम भी अपने प्राण त्याग देंगे। अतः, तुम्हारे लिए जीवित रहना ही उचित है।

जांबवान् का कथन सुनकर अंगद ने वानरों से कहा—हे पर्वत-तुल्य कंधोंवाले वीरो ! तो क्या यह उचित है कि तुम सब यहाँ मृत्यु को प्राप्त होओ और अकेले मैं लौटकर आऊँ ? क्या संसार को यह भायगा ?

इस विशाल संसार के निवासी यह कहें कि बड़े लोगों के अपवाद से डरकर जब इसके प्राण-प्रिय साथियों ने प्राण त्याग दिये, तब यह जीवित ही लौट आया, इससे पहले ही मैं स्वर्गलोक में जा पहुँचूँगा। यह कहकर उसने फिर आगे कहा—

तो, मृत्यु-समाचार कोई-न-कोई मेरी माता और मेरे पिता सुग्रीव को देगा ही। यह समाचार पाकर कदाचित् वे अपने प्राण त्याग देंगे। वह देखकर धनुर्धर वीर (राम)

एवं उनके अनुज भी निष्प्राण होंगे। फिर, वह समाचार जब अयोध्या में विदित होगा, तब भरत आदि क्या जीवित रह सकेंगे ?

भरत, उनका अनुज, उनकी माताएँ, (अयोध्या) नगर के निवासी—सब मर जायँगे; यह निश्चित है। हाय ! मैं मिटा। हाय ! जानकी नामक जगत्-प्रसिद्ध तपस्या-संपन्न दीप-समान नारी के कारण संसार के सब लोगों को कैसी अपार विपदा उत्पन्न हो गई है !—यों कहकर अंगद दुःखी हुआ।

पर्वत-समान दृढ कंधों तथा युद्धोत्साह से युक्त सिंह-सदृश अंगद के वचनों से जांबवान् के मन में ऐसी व्याकुलता उत्पन्न हुई, जैसे किसी ने अवार्य ज्वाला को उभाड़ दिया हो। भालुओं के राजा ने बड़े प्रेम से अंगद को देखकर कहा—

तुम और तुम्हारे पिता (सुग्रीव) दोनों को छोड़कर तुम्हारे वंश में और कोई पुत्र नहीं है (जो शासन-कार्य सँभाल सके), यही सोचकर हमने कहा (कि तुमको जीवित रहना है)। यदि यह कारण न भी हो, फिर भी नायक की मृत्यु की बात जिह्वा पर लाना उचित नहीं है।

हे विजयशील ! तुम जाओ। राम और सुग्रीव जहाँ रहते हैं, वहाँ पहुँचकर उन्हें बताना कि सीता का पता नहीं मिला और हम सबने प्राण त्याग दिये—तुम उन लोगों के दुःख को शात करने का प्रयत्न करना—यों अपार पराक्रमवाले जांबवान् ने कहा।

जांबवान् के यों कहने पर हनुमान् ने कहा—हे सूर्यसदृश वेगवालो ! हमने अभी तक त्रिभुवन के एक भाग में भी पूरा-पूरा ढूँढ़कर नहीं देखा है ; तो भी तुम लोग क्यों इस प्रकार शिथिल हो रहे हो, जैसे आगे चलने की शक्ति ही नहीं रह गई हो या कुछ सोचने का सामर्थ्य नहीं रह गया हो ?

फिर, हनुमान् कहने लगा—पाताल में, ऊपर के लोक में, स्वर्णमय मेरु के शिखर पर तथा ब्रह्मांड के अन्य स्थानों में यदि हम उज्ज्वल ललाटवाली सीता का अन्वेषण करेंगे, तो हमारे राजा अवधि के व्यतीत हो जाने पर भी कुछ न कहेंगे।

अतः, अब भी सीता का अन्वेषण करना ही अच्छा है और इसी कार्य में, जिस प्रकार पुष्पालंकृत केशोंवाली देवी की विपदा को रोकने के लिए जटायु ने प्राण त्याग किये थे, उसी प्रकार हमें भी अपने प्राण छोड़ना उचित होगा। वैसा न करके यदि हम सभी प्राण छोड़ देंगे, तो इससे अपयश ही होगा—यों हनुमान् ने कहा।

हनुमान् के यह कहते ही, गृद्धों का राजा संपाति, यह सुनकर कि उसका अनुज, अमोघ शक्तिवाला जटायु, मृत्यु को प्राप्त हो चुका है, शोक से भर गया और एक पर्वत के समान चलकर उन वानरों के निकट आ पहुँचा।

वह यह सोचकर कि हाय, नीतिवान् मेरा भाई मर गया, विक्षुब्धमन हो रहा था। उसका शरीर काँप रहा था। वह ऐसे चल रहा था, जैसे देवेंद्र के कुलिश से पंखों के कट जाने पर कोई पर्वत पैदल ही जा रहा हो।

मेरे बलवान् भाई का वध करने की शक्ति रखनेवाला ऐसा शस्त्रधारी इस धरती

पर कौन है ?—यों सोचता हुआ वह अपनी आँखों से इस प्रकार अश्रु बहाने लगा, जो धारा के रूप में बहकर समुद्र को भी भर दे।

वह संपाति ऐसा था कि उसके आभरणों में स्थित, सान पर चढ़ाये गये रत्न विद्युत् की कांति बिखेर रहे थे। मद्धिम कांतिवाली उसकी आँखों से अश्रु-बिंदु झर रहे थे। मन की व्यथा के कारण वह मुँह खोलकर रो रहा था। वह ऐसा था, मानों कोई मेघ गरजता हुआ धरती पर चल रहा हो और बरस पड़ा हो।

वह शीघ्र गति से इस प्रकार चल रहा था कि उसके पैरों के नीचे आकर लता, वृक्ष, पर्वत आदि चूर-चूर हो रहे थे। उसका आकार ऐसा था, मानों रजताचल (कैलास-पर्वत) अति प्रबल प्रभंजन के चलने से लुढ़कता आ रहा हो।

इस प्रकार वह (संपाति) आ पहुँचा। वहाँ स्थित वानर उसे देखकर भयभीत हो काँपने लगे। केवल ज्ञानवान् हनुमान्, अपनी आँखों से अग्नि-कण निकालता हुआ क्रोध-पूर्ण वचन कह उठा कि हे धूर्त्त ! तुम कोई कपटी राक्षस हो, जो मायावेष धारण करके आये हो। मेरे सामने पड़कर अब कैसे बच सकते हो ? और उस (संपाति) के सम्मुख जाकर खड़ा हो गया।

किन्तु, हनुमान् ने उसकी मुखाकृति से पहचान लिया कि यह पापहीन चित्त-वाला है। मन में दुःखी है। वर्षा के समान आँखों से अश्रु बरसा रहा है, अतः निष्कपट है।

उस (संपाति) को आते हुए देखकर सूक्ष्म-शास्त्र ज्ञानवाला हनुमान् खड़ा हुआ। वह अपने मुँह से एक शब्द निकाले, इसके पहले ही संपाति ने प्रश्न किया—किसके लिए अजेय जटायु को किसने बड़ी वीरता से आहत किया ? विस्तार के साथ सारा वृत्तांत बताओ।

तब हनुमान् ने कहा—यदि तुम अपना यथार्थ परिचय दोगे, तो मैं सब घटनाएँ सविस्तर तुम्हें सुनाऊँगा। तब गृध्रराज अपना वृत्तांत कहने लगा।

हे विद्युत्-समान दाँतोंवाले ! मैं अभी तक मृत प्राणियों में सम्मिलित नहीं हुआ और फिर भी मेरा भाई मुझसे वियुक्त हो गया है, ऐसा दुर्भाग्य है मेरा। मैं उस (जटायु) का पूर्वज (बड़ा भाई) होकर उत्पन्न हुआ हूँ—यों अपने जीवन के बारे में (संपाति ने) कहा।

उसके कहे वचनों को सुनकर, दोषहीन हनुमान् दुःख के समुद्र में डूबने-उतराने लगा और बोला—वैरी रावण की तलवार से तुम्हारे अनुज की मृत्यु हुई।

हनुमान् का वचन सुनते ही संपाति ऐसे गिरा, जैसे वज्राहत पर्वत ढह गया हो। फिर, उष्ण निःश्वास भरकर व्याकुलप्राण हो निम्नलिखित वचन कहकर रोने लगा—

हे मेरे अनुज ! मेरे दीर्घ पंख (सूर्य के ताप से) झुलसकर नष्ट हो गये। पंख खोकर बँधे हुए-से पड़े रहने की अपेक्षा प्राण जाना ही उचित था। किन्तु, अविनाशी एक रथवाले (सूर्य) के अति उग्र आतप से भी भयभीत न होनेवाले (हे मेरे अनुज)! यह कैसा आश्चर्य है ? (कि मेरे पहले ही तुम्हारी मृत्यु हो गई।)

कमल में उत्पन्न ब्रह्मदेव स्थिर है, धरती और आकाश स्थिर हैं, अविनश्वर धर्म भी अभी बना है, शाश्वत कल्पवृक्ष भी मिटा नहीं है। किन्तु, तुम नहीं रहे, यह कैसी दशा है !

हे वेगवान् गरुड से भी अधिक वेगवाले ! पूर्वकाल में दो अंडों के एक साथ उत्पन्न होने पर, हम दोनों एक साथ ही जनमे थे, हम दोनों दीर्घकाल तक जीवित रहे। किन्तु, अब मुझे जीवित ही छोड़कर तुम अकेले वीरता-पूर्ण कार्य करके मृत हो गये। यह क्या उचित था।

हे वीर ! रावण ने, यद्यपि त्रिभुवन में अपने शत्रुओं का वध किया था, तथापि क्या वह तुम्हारे सामने टिक भी सकता था ? उसने तुम्हें मार डाला ? यह कैसा समाचार है !

इस प्रकार कहकर रो-रोकर संपाति अत्यन्त शिथिल पड़ गया और मरणासन्न हो गया। तब अतिवली पर्वत-समान कंधोंवाले हनुमान् ने समय के अनुकूल सांत्वना के वचन उससे कहे।

हनुमान् की सांत्वना पाकर संपाति कुछ शान्त हुआ। पूछा— यमतुल्य जटायु ने, उसको मारनेवाले करवालधारी रावण से किस कारण से युद्ध किया ? तब वायु-पुत्र यह वृत्तांत सुनाने लगा।

हमारे प्रभु की देवी, नीति से अस्खलित शासनवाले (जनक) महाराज की पुत्री और उत्तम लक्षणों से पूर्ण सीता, कठोर मायावी के कपट के कारण अपने पति से वियुक्त हो गई।

धर्म-मार्ग से कभी न हटनेवाले तुम्हारे भाई ने सीता का अपहरण करके ले जाने-वाले राक्षस को देखा और (रावण से) यह कहकर कि भ्रमरों से अलंकृत कुंतलोंवाली देवी को छोड़कर तुम हट जाओ, बलवान् रथ से युक्त उस रावण के साथ क्रुद्ध होकर युद्ध करने लगा।

उस सत्यव्रत (जटायु) ने उस निष्ठुर पापी के रथ को ध्वस्त कर दिया। उसकी भुजाओं को छिन्न कर डाला। यों धीरे-धीरे जब इस प्रकार उसने उस (रावण) की शक्ति को भग्न किया, तब उसने महादेव के द्वारा प्रदत्त करवाल का प्रयोग किया, जिससे जटायु निहत हुआ—यों हनुमान् ने कहा।

हनुमान् का कथन सुनकर अश्रु-भरित नयनोंवाला संपाति, यह कहकर अत्यंत प्रसन्न हुआ कि हे सत्यपूर्ण ! निर्मल अंतःकरण से ही जिसकी पवित्र मूर्त्ति जानी जा सकती है, ऐसे प्रभु के निमित्त मेरे भाई ने प्राण छोड़े। यह कार्य उत्तम है ! उत्तम ही है !

हे वीर ! मेरा भाई, नव-पुष्पधारी हमारे रामचन्द्र की देवी, अरुण चरणोंवाली एवं 'वंजी'-लता सदृश सीता की रक्षा के निमित्त अपने प्राण छोड़े। अतः, अनन्त कीर्त्ति का भाजन बनकर अमर हो गया। उसे मृत मानना उचित नहीं है।

धर्म-रूप प्रभु से प्रेम के साथ बंधुत्व स्थापित करके मेरे भाई ने अपनी इच्छा से प्राण-त्याग दिये। ऐसे दुर्लभ पुरुषार्थ से युक्त उस जटायु की मृत्यु से क्या हानि हो सकती है ? इस भाग्य से बढ़कर सुखदायक वस्तु और क्या हो सकती है ?

वह (संपाति) यों अनेक प्रकार से रोता रहा। फिर, शीतल जलाशय में जाकर अनुपम बलवाले उस संपाति ने स्नान किया। तदनंतर घनी मालाओं से भूषित वानरों के प्रति ये वचन कहे—

हे वीरो ! तुमलोग बहुश्रुत हो, इसलिए पापहीन हो गये हो। तुमलोग असत्य-रहित भी हो। तुमलोगों ने यहाँ आकर मुझे जीवन ही प्रदान किया। मेरे भाई की मृत्यु का समाचार देकर मुझे दुःख-सागर में नहीं डुबोया, किन्तु मेरी विपदा ही दूर की।

हे मधुरभाषियो ! सत्य की वृद्धि करने की महिमा से युक्त हे वीरो ! तुम सब उसी राम-नाम का जप करो। वैसा करने पर उस प्रभु की अत्युत्तम करुणा मुझे प्राप्त होगी।

संपाति ने यों कहा। तब वानर यह सोचकर कि हम इस कथन की परीक्षा करेंगे, वैसे ही खड़े रहकर नीलवर्ण उस प्रभु के हितकारी नाम का उच्चारण करने लगे। तब बलवान् भुजावाले संपाति के पंख निकल आये।

उज्ज्वल शरीरवाला संपाति, सब लोकों में व्याप्त महाविष्णु (के अवतार राम) की कृपा को प्राप्त कर पंखों से युक्त हुआ। उसको पंख क्या मिल गये, मानों धुँआधार अग्नि को उगलनेवाले करवाल को कोष मिल गया हो।

सभी वानर, प्रख्यात रामचन्द्र का नाम उच्चारण करने से, पहले लुढ़कते हुए आनेवाले (संपाति) का हित होते हुए देखकर विस्मय से भर गये। वे प्रसन्न हुए और स्तब्ध भी हो गये। फिर, देवाधिदेव (राम) की प्रशस्ति गाने लगे।

उन वानरों ने उस (संपाति) को नमस्कार किया। फिर, प्रश्न किया कि तुम अपना सारा पूर्व-वृत्तांत कह सुनाओ। उनका वचन सुनकर संपाति अपने जीवन के बारे में कहने लगा।

हे मातृ-तुल्य मित्रो ! हम दोनों, (संपाति और जटायु) तरंगायमान समुद्र से आवृत धरती के अंधकार को मिटानेवाले सूर्य के सारथी अरुण के पुत्र होकर जनमे और मनोहर रंगवाले पंखों से युक्त अति वेगवाले गिद्धों के राजा बने।

हम दोनों, स्वर्ग में स्थित देवलोक का दर्शन करने का विचार करके आकाश में बहुत ऊपर उड़े, किन्तु उष्णकिरण (सूर्य) का रथ देखकर भी पूर्ण रूप से उसे नहीं देख पाये। तब अग्नि को भी तपानेवाले दिव्य अरुण किरणों से युक्त सूर्य हम पर क्रुद्ध हो उठा।

ऊपर उड़े हुए मेरे अनुज के शरीर को, सूर्य का आतप अत्युग्र होकर तपाने लगा। तब वह बोला—हे मेरे बड़े भाई ! मुझे बचाओ। तब मैंने अपने पंखों को उस (जटायु) पर फैला दिया और वह मेरी छाया में आ गया। मैं मरा तो नहीं। किंतु मेरे पंख झुलस गये और मैं धरती पर आ गिरा।

मुझ धरती पर गिरे हुए को आकाश में चमकनेवाले सूर्य ने देखा और अपार करुणा से भर गया। उसने यह कहा कि जनक की प्रिय पुत्री का अपहरण हो जाने पर (उसका अन्वेषण करते हुए) आनेवाले वानर जब राम-नाम का उच्चारण करेंगे, तब पहले-जैसे ही तुम्हारे पंख निकल आयँगे।

जब मेरे पंख झुलस गये, तब मैं उष्ण निःश्वास भरता हुआ, लोकसारंग नामक महान् तपस्वी के निवासभूत पर्वत के सानु पर आ गिरा। मेरा शरीर और मन शिथिल हो गये थे। पीडा के बढ़ने से प्राणों का भार भी मैं वहन नहीं कर सकता था। मैंने प्राण-त्याग

करने का निश्चय कर लिया। इतने में अपूर्व तपस्या-संपन्न लोकसारंग मुनि ने मेरे सम्मुख आकर मुझे सांत्वना दी।

(उन्होंने कहा—) अशिक्षित मूढजनों के समान मन के (अनुचित) उत्साह के कारण तुमने देवताओं के सुरक्षित लोक में जाने का प्रयत्न किया। तुम्हारे बहुत ऊपर उड़ जाने से तुम्हारे पंख झुलस गये और तुम धरती पर आ गिरे हो। अब और कुछ दिनों तक अपने प्राणों को सुरक्षित न रखकर उनको त्यागने की चेष्टा करना उचित नहीं है। (अर्थात्, सूर्य के कथनानुसार वानरों के आगमन तक तुम्हें प्राण रखे रहना ही उचित है)।

फिर संपाति ने कहा—हे अति बलाढ्य वीरो! उस दिन उन मुनिवर ने करुणा करके मुझसे यह भी कहा था कि जो घमंडी होता है, उसका विनाश निश्चित है। मायावी (रावण) के द्वारा जब सीता हरी जाकर अदृश्य हो जायगी, तब उसका अन्वेषण करते हुए वानर लोग आयँगे। उनके राम-नाम का उच्चारण करने पर तुम्हारे पंख निकल आयँगे। अतः, तुम दुःखी मत होओ।

हे देवविस्मयकारी कार्य करनेवाले, उत्तम वीरो! मेरे दुःख से दुःखी जटायु, मेरी आज्ञा का भंग करने से डरकर, गगनगामी गिद्धों का राजा बना। यही हमारा वृत्तान्त है। अब तुमलोग इस स्थान पर आने का अपना वृत्तांत भी सुनाओ।

संपाति के यह कहने पर वानरों ने राम के प्रति नमस्कार करके उससे कहा—हे मातृ-तुल्य! नीच कृत्यवाला राक्षस (रावण) दक्षिण दिशा में सीता देवी को ले गया है। यही सोचकर हम उस (देवी) को ढूँढ़ते हुए यहाँ आये हैं। वानरों का यह कथन सुनकर संपाति ने कहा—तुमलोग चिंता मत करो। मैं इस संबंध में तुम्हें कुछ बातें बताऊँगा।

शर्करा-रस के समान मधुर बोलीवाली सीता को जब वह पापी राक्षस ले जा रहा था, तब मैंने उसे देखा। वह उसे लंका में ले गया है। व्याकुल चित्तवाली उस देवी को घोर बंधन में डाल रखा है। वह देवी अब भी वहीं है। तुम लोग जाकर देखो।

शब्दायमान समुद्र से आवृत वह लंका यहाँ से सौ योजन पर स्थित है। उस लंका पर, कठोर पाश से युक्त यम भी अपनी दृष्टि नहीं डाल सकता। उस क्षुद्रगुणवाले राक्षस का क्रोध अग्नि को भी शान्त करनेवाली दूसरी अग्नि है। हे दोषरहित एवं सद्गुणों से पूर्ण वीरो! तुम्हारे लिए उस लंका में जाना कैसे संभव होगा?—यों संपाति ने पूछा।

आगे उसने कहा—चतुर्मुख और अर्द्धनारीश्वर की बात तो दूर, क्षीर-समुद्र में शेषनाग पर शयन करनेवाला विष्णु भी हो और यम भी हो, तो उनके लिए भी विशाल समुद्र के पार-स्थित उस लंका में प्रवेश करना असंभव है। हे चिरजीवियो! भावी कार्यों के परिणामों को सोचकर आगे बढ़ो।

उस प्राचीन (लंका) नगरी में तुम सबका प्रवेश करना असंभव है। यदि किसी में सामर्थ्य हो, तो वह अकेले वहाँ जाय। अदृश्य रूप में, वहाँ रहकर सीता देवी को (प्रभु का दिया हुआ) संदेश देकर उसके दुःख को शांत करे और लौट आये। यदि ऐसा सामर्थ्य तुममें से किसी में नहीं है, तो मेरी बात पर विश्वास करो और रामचन्द्र के पास जाकर उन्हें समाचार दो।

शासक के न होने से सारा गृध्र-समाज अपने आवास को छोड़कर बिखर जायगा। उस दुर्दशा को रोकने के लिए मुझे शीघ्र जाना आवश्यक है। हे मित्रो! जिसमें हित हो, वही कार्य करो।—यों कहकर संपाति अपने पंखों से आकाश को ढकता हुआ उड़ चला। (१–६६)



अध्याय १६

महेन्द्र-शैल पटल

कुछ वानर, यह निश्चय कर कि गृध्रराज झूठ बोलनेवाला नहीं है, अन्य वानरों से कहने लगे—कर्त्तव्य को शीघ्र संपन्न करनेवाले हे वीरो! हमने (सीता के समाचार को) हाथ के आँवले के समान पूरा जान लिया है। जीवन देनेवाला एक वचन हमने सुन लिया। अब कर्त्तव्य का ठीक-ठीक विचार करके कुछ करो।

यदि हम सूर्यपुत्र और उज्ज्वल धनुष को धारण करनेवाले को नमस्कार करके सारा वृत्तांत उन्हें सुना दें, तो हमारा कर्त्तव्य पूरा हो जायगा। फिर, भी वीरता का कार्य तो यही होगा कि हम स्वयं समुद्र को पार कर सीता के दर्शन करें। हममें से समुद्र को पार करने का सामर्थ्य रखनेवाला कौन है?—यों परस्पर प्रश्न कर वे एक-एक करके अपनी-अपनी शक्ति का वर्णन करने लगे।

पहले हमने मरने का साहस किया। सदा अमिट रहनेवाले अपयश को लेकर लौटने का भी साहस किया। अब उन दोनों कार्यों से छुटकारा पाने का एक अच्छा मार्ग (संपाति के द्वारा) हमने प्राप्त किया है। अब समुद्र को पार कर काले राक्षसों को मिटाने का सामर्थ्य रखनेवालो! हमारे प्राणों को बचाओ।

युद्ध में विजय से भूषित होनेवाले नील आदि उत्तम वीरों ने, समुद्र पार करने की अपनी असमर्थता को स्पष्ट कह दिया। वीरता से पूर्ण युद्ध में विजयी वाली-पुत्र ने कहा—मैं समुद्र के उस पार तो जा सकता हूँ, किंतु लौट आने की शक्ति मुझमें नहीं है।

चतुर्मुख (ब्रह्मा) के पुत्र (जांबवान्) ने कहा—हे भुजबल से पूर्ण वीरो! वेदों के लिए भी दुर्जय भगवान् (विष्णु), सारी धरती को एक ही पग से नापने लगा था। उस समय, मैं आठों दिशाओं में उस (त्रिविक्रम) की परिक्रमा करता हुआ गया और (उस भगवान् के अवतार होने की) घोषणा करता हुआ घूमने लगा था। मेरु के आघात से मेरे पैर दुखने लगे थे। अतः, अब इस महान् समुद्र पर उछलकर जाने और लंका की परिखा के पार बने हुए प्राचीर पर कूदने और उस नगर के राक्षसों को भयभीत कर सीता का अन्वेषण करने की शक्ति मुझमें नहीं रह गई है।

फिर, ब्रह्मपुत्र जांबवान् ने अंगद से कहा—वानर-वीरों में उत्तम सिंह-सदृश हे कुमार ! हम अब अत्यन्त दुःखी होकर किसके पास जाकर प्रार्थना करें कि तुम समुद्र के पार जाओ। ऐसा विचार करने से भी तो हमारा यश मिटता है।

अब हमारे यश को सुरक्षित रखनेवाला वह मारुति ही है, जिसने पूर्व में रामचन्द्र के सम्मुख जाकर (सुग्रीव को) उनका सखा बनाया था। वही (मारुति) कर्त्तव्य का ठीक-ठीक विचार करके उसे पूरा करने का सामर्थ्य रखता है। उसकी समानता करनेवाला और कोई नहीं है। इस प्रकार कहकर फिर, जांबवान् हनुमान् के भुजबल की प्रशंसा करते हुए ये वचन कहने लगा।

(जांबवान् हनुमान् को देखकर कहने लगा—) ब्रह्मदेव भी मर सकता है, किन्तु तुम्हारी मृत्यु कभी नहीं होगी। तुमने सर्वशास्त्रों का गहन अध्ययन किया है। विषयों का ठीक-ठीक प्रतिपादन करने की शक्ति भी तुममें है। तुम्हारे बल और क्रोध को देखकर काल भी काँप उठता है। तुममें कर्त्तव्य कर्म करने की दृढ़ता है। विष का पान करनेवाले शिवजी के समान ही तुममें घोर युद्ध करने की शक्ति भी विद्यमान है।

अत्युष्ण रक्तवर्ण अग्नि से, जल से तथा वायु से भी तुम मरनेवाले नहीं हो। अनेकविध प्रसिद्ध दिव्य आयुधों से भी तुम्हारा विनाश नहीं हो सकता। तुम्हारा उपमान कुछ बताना हो, तो केवल तुम्हीं अपने उपमान हो। एक बार कूदो, तो तुम इस ब्रह्मांड से परे भी जा पहुँचोगे।

अच्छे गुणों को ही नहीं, बुरे गुणों को भी पहचान कर स्पष्ट कहने की सामर्थ्य तुममें है। स्वयं ही कर्त्तव्य को जानकर उसे पूर्ण करने की शक्ति तुममें है। तुम (शत्रुओं पर) विजय पा सकते हो। (लंका में जाकर) लौट आने की शक्ति भी तुम रखते हो। यदि वे अपना बल दिखावें, तो उन्हें मारने की शक्ति भी तुममें है। तुम्हारा भुजबल कभी घटता नहीं।

तुम्हारी महिमा मेरु से भी ऊँची है। मेघ से बरसनेवाले जल की बूँद में भी प्रवेश कर जाने की शक्ति तुममें है। धरती को भी उठा लेने का बल तुममें है। कोई भी पाप-भावना तुममें नहीं है। तुम्हारी ऐसी शक्ति है कि सूर्य को भी अपने सुन्दर करों से छू सकते हो।

तुमने उचित उपायों को ठीक-ठीक सोचकर, धर्म का नाश किये विना, युद्ध-कुशल वाली का वध करवाया। तुम्हारा बुद्धि-कौशल ऐसा है। प्रसिद्ध देवेन्द्र ने जब वज्र से तुम पर आघात किया था, तब तुम्हारा एक छोटा-सा रोंया भी टूटकर नहीं गिरा।

तुम्हारी भुजाओं में ऐसी शक्ति है कि यदि तीनों लोक भी तुम्हारा सामना करने आयें, तो उन भुजाओं के लिए त्रिभुवन की वस्तुएँ भी कुछ चीज नहीं होंगी। धरती के अंधकार को मिटानेवाले सूर्य के निकट, उसके रथ के आगे-आगे चलते हुए, तुमने संस्कृत (के व्याकरण) का ज्ञान प्राप्त किया था।

तुम नीति में स्थिर हो, सत्य-पूर्ण हो, मन में कभी स्त्री-संगति का विचार

तक नहीं लाते। सब वेदों का अध्ययन किया है। ब्रह्मा की आयु से भी अधिक आयु-वाले हो। तुम भी ब्रह्माओं में से एक कहलाते हो।

उस महिमामय प्रभु (राम) की भक्ति से युक्त हो। अपने कर्त्तव्य का पूर्ण ज्ञान रखते हो। तुमने अपने ऊपर (सीता का अन्वेषण करने का) दायित्व लिया है। विना किसी बाधा के उसे पूर्ण करने का सामर्थ्य भी तुममें है। तुमने अपने मन में दृढ रूप से यह स्थापित कर लिया है कि एकमात्र पुण्य ही सदा स्थिर रहनेवाला है।

समय अनुकूल न होने पर तुम दबकर रह सकते हो। यदि युद्ध छिड़ जाय, तो उसमें सिंह के समान शक्तिमान् हो सकते हो। सोच-विचार करके जो कार्य आरंभ किया हो, केवल उसी को नहीं, किंतु, किसी भी कार्य को पूर्ण करने की शक्ति तुममें है। कठिन बाधाएँ उत्पन्न होने पर भी तुम पीछे हटनेवाले नहीं हो।

विजयशील इन्द्र से लेकर, सब व्यक्ति तुम्हारे चारित्र्य को ही आदर्श मानकर चलते हैं। तुम अत्यन्त सहनशील हो। अतः, सब कार्यों को ठीक ढंग से सोचकर करने का सामर्थ्य तुममें है। सभी इच्छित वस्तुओं को प्राप्त करने की शक्ति भी तुममें है।

तुम्हीं इस समुद्र को पार करने की शक्ति रखते हो। अतः, यहाँ से शीघ्र जाओ और हम सबको जीवन देकर यश प्राप्त करो। इससे तुम्हारी माता-तुल्य सीता देवी भी प्रसन्न होंगी और विपदा-रूपी अपार सागर को पार कर सकेंगी—इस प्रकार ब्रह्मपुत्र (जांबवान्) ने कहा।

जांबवान् ने जब ऐसा कहा, तब अत्यन्त ज्ञानवान् हनुमान् के दीन मुख पर मंदहास इस प्रकार विकसित हुआ, जिस प्रकार कमलपुष्प के मध्य रक्तकुमुद विकसित हो उठा हो। उसके कमल-जैसे कर मुकुलित हो गये। सब वानरों के आनंदित होते हुए, उसने अपने भावों को इन शब्दों में प्रकट किया—

तुम लोग ऐसे हो कि कुछ सोचने के पूर्व ही, ऊँची तरंगों से पूर्ण सातों समुद्रों को पार कर सकते हो, सब लोकों को जीत सकते हो और सीता देवी का अन्वेषण करके उन्हें ला सकते हो। ऐसा होने पर भी मुझ ज्ञानहीन की लघुता को प्रकट करने के लिए ही तुमने मुझे यह आदेश दिया है। अब मेरे समान भाग्यवान् और कौन होगा?

यदि तुम लोग कहोगे कि लंकापुरी को उखाड़कर ले आओ, या यदि कहोगे कि लोक-कंटक राक्षसों को मिटाकर, स्वर्णमय ताटंकधारिणी कलापी-तुल्य सीता को ले आओ, तो मैं तुम्हारे आदेश के अनुसार ही वह कार्य करूँगा। शीघ्र ही तुम अपनी आँखों से देखोगे।

जिस प्रकार विष्णु भगवान् ने धरती को नापा था, उसी प्रकार एक शतयोजन को एक पग में समाता हुआ मैं इस विशाल समुद्र को पार करूँगा। यदि इन्द्र आदि देवता भी आकर (रावण की ओर से) मेरे साथ युद्ध करेंगे, तो भी लंका में निवास करनेवाले सब राक्षसों का विनाश करके अपने कार्य को मैं अवश्य पूरा करूँगा।

यदि समुद्र उमड़कर सारी धरती को डुबोने लगे, या यह सारा ब्रह्मांड ही टूटकर अंतरिक्ष में उड़ जाय, तो भी मैं, मेरे प्रति दिखाई गई तुम्हारी कृपा और प्रभु की आज्ञा इन

दोनों को दो पंख बनाकर गरुड़ के समान इस समुद्र को पार कर जाऊँगा। तुम लोग देखोगे।

मैं तरंगायमान समुद्र के मध्य स्थित लंकापुरी में जाऊँगा। मेरे लौट आने तक तुम लोग यहीं शांति से रहो। मुझे शीघ्र (जाने की) आज्ञा दो—यों हनुमान् ने कहा। तब वानर आनंदित होकर आशीष देने लगे और देवता पुष्प-वर्षा करने लगे। हनुमान गगनोन्नत शिखरवाले महेंद्र-पर्वत पर जा पहुँचा।

अनुपम समुद्र को पार करने का विचार करके हनुमान् इस प्रकार ऊँचा बढ़ा, जिस प्रकार त्रिभुवन को नापने के लिए विराट् रूप धारण किये हुए त्रिविक्रम का पैर हो। वह ऐसा हो गया, जिससे लोगों को विदित हुआ कि वह नाम से ही नहीं; किंतु, आकार से भी 'विष्णुपाद'[1] ही है।

इसके पहले ही कि संसार में प्रकाश फैलानेवाली उष्ण किरणों से युक्त सूर्य जो युद्ध में पराक्रम दिखानेवाले के यश के समान सर्वत्र संचरण करता रहता है—विशाल समुद्र में जा पहुँचे, संध्या की कांति को फैलानेवाली स्वर्णवर्ण भुजाओं से युक्त हनुमान जलमय तथा मनोहर लंका में जा पहुँचने को सन्नद्ध हुआ।

विशाल वदनवाले सिंहों के आवासभूत महेंद्र-शैल (हनुमान् के भार से) दब गया। पंक्तियों में खड़े रहनेवाले, दूर-दूर पर रहनेवाले शिखर समीप आये हुए-से लगने लगे। हनुमान्, विष उगलनेवाले सर्प-समान अपनी पूँछ को लपेटे, विराट् आकार धारण करके ऐसा खड़ा रहा, मानो महाकच्छप पर मंदर पर्वत खड़ा हो।

अंतरिक्ष के विद्युत्-भरे मेघ हनुमान् के पाद-वलय (वीर-कंकण) जैसे शब्द कर रहे थे। उसका विराट् रूप देवलोक के निवासियों के दृष्टि-पथ में पहुँच गया था। महान् तथा बलवान् शिखरों से युक्त वह महेंद्र-पर्वत ऐसा लगा, मानो ब्रह्मांड के विशाल स्वर्ण-स्तंभ (हनुमान्) का पादपीठ हो, यों शोभायमान होकर हनुमान् खड़ा रहा। (१—२६)

●

---

१. तमिल में हनुमान् का एक नाम है 'तिरुवड़ि', अर्थात् विष्णुपाद। —अनु०